महाभारत

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई

श्रीः ।

महाभारत-सभापर्व ।

* धर्माश्वमेध. *

सरल छन्दोबद्ध.

" भगतन कौं भीर पै; पीर यदुवीर को । "

लेखक-

कविरत्न श्री पं० शैलेन्द्रकुमारजी वाजपेयी.

धर्मालङ्कार, कीर्तनकलानिधि.

आनन्द भवन, गणेशगंज, खण्डवा C.P.

और

काव्य-कला-भूषण अभिनयाचार्य्य कुशल-कवि,

श्री पं० गोविन्ददासजी विनीति, तालबेहट-झाँसी.

मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

संस्करण : दिसंबर २०१५, सवंत् २०७२

मूल्य : ६०० रुपये मात्र ।

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass
Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004,
at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial
Estate, Pune 411 013.

विज्ञप्ति।



माननीय सज्जनों !

जिस प्रकार आपने हमारे अन्य ग्रन्थोंको अपनाया है, आशा है उसी प्रकार आप इस छन्दोबद्ध महाभारतको भी अपनानेकी कृपा करेंगे। यदि आपको इससे कुछ भी लाभ पहुँचा तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे, और समयानुसार अन्य नवीन ग्रंथ लेकर आपकी सेवामें भेंट करेंगे। हमारे परम माननीय प्रेसाध्यक्ष श्रीमान् सेठजी महोदयने जो इस ग्रंथको प्रकाशित करनेकी कृपा की है उसके निमित्त मैं हृदयसे धन्यवाद देता हुआ सदैवके लिये इसके प्रकाशन का पूर्ण अधिकार भी उक्त प्रेसको दे दिया है। साथही मुरादाबाद निवासी विद्यारत्न पं० जगदीशप्रसादजीमिश्रका भी कृतज्ञ हूँ कि जिन्होंने इस ग्रंथके छपते समय प्रूफ़ इत्यादि देखनेकी व्यवस्था यथाशक्ति बड़े परिश्रमसे की है।

सज्जनोंका कृपाकांक्षी,
शैलेन्द्रकुमार वाजपेयी.
आनन्दभवन–गणेशगञ्ज,
खण्डवा, सी. पी.

वसन्तपञ्चमी, संवत् १९९१.
८ फरवरी १९३५.

दो शब्द ।

प्रिय महानुभावो !

उस सच्चिदानन्द आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र व्रजचन्दके चारु चरणोंमें बारम्बार-प्रणाम है कि जिनकी कृपाकोरसे मूक वाचाल और पंगुगण पर्वतोंपर आरोहण कर जाते हैं, यह उसीकी महिमाका विकाश है कि आजकल समस्त भारतमें श्रीवेंकटेश्वर प्रेस और श्री लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस आदि प्रेसों द्वारा संस्कृत विद्याके प्रचारकी ध्वनि प्रतिध्वनित होकर सनातनधर्मावलम्बियोंको प्रमुदित कर रही है ।

आज आप सज्जनोंकी सेवामें एक अमूल्य तथा दुर्लभ भेंट उपस्थित की जारही है, आशा है आप उसको स्वीकार कर अनुगृहीत करेंगे ।

यह आजकी भेंट जगत्प्रसिद्ध अष्टसिद्धि नवनिधिकी खान 'महाभारत' इतिहास है, जिसका घनिष्ट सम्बन्ध हमारे देशकी उन्नति और अवनतिसे है । भारतवर्ष संसारमें आदर्शरूप है इसका सौभाग्य और दुर्भाग्य अलौकिक ही है, यहांका धर्मभाव भी अलौकिक है । सम्पूर्ण विद्वानोंका इस विषयमें एक मत है कि इतिहासकी शिक्षापर ही देशकी उन्नति और अवनति निर्भर है, यदि समयानुसार अच्छे और सच्चे इतिहास देशवासियोंको पढ़ने और सुननेको मिलें तो उनका प्रभाव देशपर अच्छा और सच्चा होता है ।

इसमें समस्त महाभारतकी मार्मिक कथाओंका पूर्णतया समावेश सरल छन्दोबद्ध भाषामें किया गया है । यदि द्वापरके अन्त और कलियुगके प्रारम्भ-कालका कोई इतिहास मिलता है, तो वह महाभारत हीं है कि जिसको आज ५५७५ पांच हजार पांच सौ पिछत्तर वर्ष होते हैं । इस ग्रंथके पढ़नेसे आपके पक्षमें आमके आम और गुठलियोंके दामवाली कहावत पूर्णतया चरितार्थ होगी । अर्थात् कविताका आनन्द मिलनेके अतिरिक्त मुरलीमनोहर भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दमें दृढ भक्ति भी

होगी। यह परम पवित्र महान् ग्रन्थ भगवान् श्रीवेदव्यासजी महाराजकी लेखनीसे सवा लक्ष श्लोकोंमें प्रसव हुआ था। यह बृहद् ग्रन्थ संस्कृतमें होनेके कारण सर्व साधारणके उपयोगमें नहीं आता था, अस्तु इस कमीकी पूर्तिके निमित्तही यह सरल छन्दोबद्ध महाभारत अठारहोंपर्व युक्त खण्डवा निवासी धर्मालंकार कविरत्न श्रीमान् पं० शैलेन्द्रकुमारजी वाजपेयी H. S. B. कीर्तन-कलानिधिकी सुललित तथा चित्ताकर्षक ओजस्विनी लेखनीसे लिखा गया है, इसमें कौरव-पाण्डव सम्बन्धी संपूर्ण कथायें विद्यमान हैं। इसकी भाषा भी बहुत ही सरल तथा मनोहर रखी गई है, साथही स्थान स्थानपर ललित गायनोंका सुन्दर तथा भव्य समावेश किया गया है। यथासम्भव इसमें महाभारतकी किसी कथाको भी नहीं छोड़ा गया है। यह बात आपको ग्रन्थावलोकनसे स्वयं विदित हो जायगी। इस प्रकारका यह "छन्दोबद्ध" महाभारत रोचक—ललित और वीररसप्रधान अद्वितीय ग्रन्थ उक्त कविकी लेखनीसे लिखा गयाहै, कि जिसके पढ़नेसे हृदयमें वीरताका सागर उमड़ता चला आता है और हाथमें उठाये पीछे बिना समाप्त किये छोड़नेको चित्त नहीं चाहता। सचमुच इस ग्रन्थमें जो भाव खींचा है वह प्रशंसनीय और अलौकिक है। इसको पढ़नेसे कवित्वशक्तिकी प्रशंसा किये बिना आप भी नहीं रह सकेंगे।

जहांतक हो सका है इसको सर्वाङ्ग पूर्ण बनाने आदिमें कोई बात उठा नहीं रखी है, यदि पाठकगणोंको यह रुचिकर हुआ तो लेखकोंका परिश्रम सफल समझा जायगा, हमें विश्वास है कि आप महानुभाव इसको अवलोकन कर अवश्य प्रसन्न होंगे।

यदि दीनहितकारी—संकटहारी—मुरारि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कुंजविहारीने—कृपा की तो इस ग्रन्थका हिन्दी संसारमें बहुत बड़ा आदर होगा और एक बड़े अभावकी खासी पूर्ति होगी।

सर्वसज्जनोंके कृपाभिलाषी—

बसंतपञ्चमी संवत् १९९१.

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

प्रार्थना



केकि-पृष्ठ-वाहनी-शारदे ! कर करुणा-कटाक्ष-अनुकूल ।
कर कम्पित, आह्वान-निरत-जन; लिये द्वार श्रद्धाके फूल ॥
वत्स-भावके पतित-पात्रपर; कर दे कुछ अञ्चलकी झूल ।
स्थिर कर दे ज्ञान-दीपका; बहे न विषय-वायु-प्रतिकूल ॥
जो पदाब्ज भव-बोहित बनकर; काट रहे जगके त्रैशूल ।
उसी चरण-रज-कण-पुहुमीमें; छिपा हुआ है आशा-मूल ॥
लिखे महाभारतकी गाथा; सूक्ष्म-तत्व, लेखनि स्थूल ।
कवि-कोविद-गिरि डिगत; तहाँ किस गणनामेंहै? शठ-मति-तूल ॥
साहस करे "विनीत" अम्बिके! यदि वह मिले रसायन-धूल ।
जो "शैलेन्द्र" स्व-कर कमलोंसे; शुद्ध करे माँ ! मेरी भूल ॥

शैलेन्द्रकुमार.



श्रीहरिः ।

मङ्गलाचरण और प्रस्तावना ।

नाट्य, नाट्य–शाला, नटी; है जिनका प्रतिभास ।
उद्भव, स्थिति, प्रलय है; केवल भृकुटि–विलास ॥
वे राधा, राधा–रमण; दें यदि शक्ति–प्रसाद ।
भगवति–भारति दें सुना; भारत–वीर–निनाद ॥
गरल–सुधा-रिस-शांति-निधि; हरि-प्रिय-कृपा-निकेत ।
द्रवैं दीन अनजान पर; वे शिव, शिवा–समेत ॥
सुर–मुनि–नर किन्नर–असुर; हों सहाय भगवान ।
तो कौरव–पाण्डवोंका; लिखूँ बीर–आख्यान ॥

कमलाक्ष,कमल-कर,कमल-बदन;कल-कमल-कलेवर-कान्तिनिधे!।
साहित्यक-सिन्धु-सुधाकर्षक; शाश्वत, सरलाकृति-शान्तिनिधे ! ॥
तेजोनिधान, विज्ञान–भानु; विद्वान कहें–"निष्काम" तुम्हें ।
कवि–पति–महर्षि–वेद–व्यास; है बारम्बार प्रणाम तुम्हें ॥
अपने ही योग–विभूति–रचित;यह रचना, रुचिर दिखाई है ।
फिर अपनी ही वाणी द्वारा; उसकी विरुदावलि गाई है ॥
अर्थात् इसी अभिनय–द्वारा; सन्देश दिया भू–मण्डलको ।
या–अपने ही आदर्शोंसे; उपदेश दिया भू–मण्डलको ॥
"निश्छल-अनन्य-गति-भक्तोंकी; दुर्जेय–दलोंपर भी जय है ।
शांति-मय सत्यकी अटल-शक्ति;उस महा-प्रलय तक अक्षय है॥

जो न "महाभारत" कहे; भारतका इतिहास ।
तो उस पूर्व–विकासपर; हो किसको विश्वास ? ॥

इस ह्रास-कालमें भारतको; "कायर" बतलाया जाता है।
एवं उसका सारा लाञ्छन; जल-वायु, धर्मपर आता है॥
अर्थात् यहाँकी गर्म-वायु; हमको आलसी बनाती है।
या वर्ण-व्यवस्था भारतकी; आपसमें फूट बढ़ाती है॥
इसलिये देशकी उन्नतिमें; जीवन न कभी आ सकता है।
जल-वायु, धर्मका भारतसे; वह असर नहीं जा सकता है॥
कहता है मगर-"महाभारत"-"यह कहना-कहनेवालोंका।
झूँठा है, उनको पता नहीं; भारतके भावी लालोंका॥"
"भारत"वह है-भारती वही; हां, पहिला नहीं अनुसरण है।
जल-वायु-धर्म दोनों ही हैं; पर-उनका नहीं अनुकरण है॥

पूर्व-परिस्थिति प्राप्त हो; यदि भारतको आज।
तो फिर गौरव दिखा दे; जगको यही समाज॥

वह नीति-धर्म,वह व्रत-संयम;वह शासन-नियम यहांका था।
जिसके कारण ही यह भारत; पहिले सरताज जहां का था॥
वह फूल हजारी फूले थे; इस भारतकी फुलवारीमें।
नन्दन-वन ठोकर खाता था; इस वनकी क्यारी क्यारीमें॥
सुर-राज इसीके चरण-चूम; सुर-पुरका राज्य सँभाले थे।
त्रैलोक जिन्हें अपनाता था; वे भारतके रखवाले थे॥"
यह सारी कथा-" महाभारत "; डंकेकी चोट सुनाता है।
जिसके आगे विपक्षियोंका; ढोलक-"चूँ"कर रह जाता है॥

धार त्रिधार " भगीरथी "; किया लोक-उद्धार।
प्रकटी भारत-गाथ यह; सवा-लक्ष ले धार॥

वह विष्णु-चरणसे प्रकटी है; यह विष्णु-भक्ति-रस-खानी है।
वह शम्भु-प्रसाद-निशानी है; यह व्यास-देवकी बाणी है॥

वह भक्त भगीरथके द्वारा; भारतमें आकर प्रकटाई।
यह श्रीगणेशके हाथोंसे; साकार-धार धर कर आई॥
जिस समय महर्षि व्यासजीने; यह "महा-काव्य" निर्माण किया।
एवं मानसिक-विचारोंको; लेखकका अनुसन्धान किया॥
तीनों लोकोंमें ढूँढ फिरे; लेकिन उत्तम लेखक न मिला।
जो हो विचार गतिसे आगे; वह कोई पथ-दर्शक न मिला॥

मिले अन्तमें तो वही; लम्बोदर-गुण-खान।
जिनकी मति-गति-लेखनी; दोनों एक समान॥



व्यासने कहा-"हे वाणी-पति; यह भार तुम्हीं स्वीकार करो।"
गणपति बोले-"तत्पर हूँ-पर; कुछ कहना अंगीकार करो॥
जिस समय लेखनी लिखनेको; मेरे द्वारा उठ जायेगी।
फिर कहीं बीचमें क्षणभर भी; वह नहीं ठहरने पायेगी॥
इसलिये बोलिये लगातार; तो लिखने का भी तार बने।
जो सोच विचार किया कुछ भी; तो लेखकका शहतार बने॥

क्षण—मात्र कहीं रुक जाओगे; तो मनमानी लिख जाऊँगा।
आपके ठहरने पर भगवन् !; लेखनी नहीं ठहराऊँगा ॥"

ठहरा दोनों ओरसे; जब एक ही विचार।
चली तीव्र-गति लेखनी; वाणी के आधार ॥

मानो गंगा रथके आगे; या रथ गंगासे आगे है।
वह लाख कदम बढ़जाता है; तो कोट कदम यह भागे है ॥
बँध गया तार दोनों प्रकार; तारमें न अन्तर आया है।
पर कहीं व्यासने कारण-वश; क्षण भरको कण्ठ रुकाया है ॥

बस, क्या था ? होने लगा, मनमाना निर्माण।
उसी एक क्षण मात्रमें; बना "गणेश—पुराण ॥"
ऐसे लेखक, लेखनी; उस लेख को प्रणाम।
शक्ति-सिन्धु ! दो दासको; कुछ मति-गति-अविराम ॥
जो अगाध-जल-राशिकी; बूँद-मात्र मिलजाय।
दीन भिखारीके लिये; महा—मेघ कहलाय ॥

तो यह उमंग, यह भव्य--भाव; कुछ भावी—आशा प्रकटायें।
हमसे कुपूत कुछ करणी कर; वैतरणी पार निकल जायें ॥
अनुवाद करूँ-किसका ? उसका; जो "पञ्चम-वेद" कहाता है।
अर्थ—या--भाव तो दूर रहा; उच्चारण--मात्र न आता है ॥
उसके लिखनेकी चाह यहाँ; अपने बलका यह हाल यहाँ।
चलना है साथ पवन—सुतके; भगवन् ! चिउँटीकी चाल यहाँ ॥
भाजी—भक्षक भुखियारे को; अमृत--व्यञ्जनकी चाह उठी।
काँचके बेचनेवालेको; मणि—मय—कञ्चनकी चाह उठी ॥

छन्द—भेद—रस—भेद—गुण; अलंकार—गति—हीन।
आज "महाभारत" लिखे; विषयी, कूर, कमीन ॥

जिसका अक्षर-अक्षर भगवन्!; अक्षय-कर-मन्त्र कहाता है।
जो गिरी हुई आत्माओंमें; जागृतिकी ज्योति जगाता है॥
जो भूले हुए मनुष्योंको; सद्-पथ पर पुनः लगाता है।
भारतका भूत-भव्य--वैभव; प्रण-पूर्वक नित्य सुनाता है॥
स्वर्गका मार्ग, मुक्तिका धाम; लोकका मित्र, परलोक-सगा।
हे प्रभु! उसके अनु-लेखनका; मुझसे मलीनको चाव लगा॥

तुम्हीं जानते हो-हरे!; इस जनका बल-वेश।
किस आशाके आसरे; साहस हो? सर्वेश!॥

साहित्य-सिन्धुमें बूँद नहीं; भाषाका समुचित ध्यान नहीं।
दास हूँ, बैठ कर एक जगह; लिखनेका भी स्थान नहीं॥
लिखने बैठूँ तो--बल यह है; दो सतर लिखूँ--सिर चकराये।
दीनेश! कौनसा बल पाकर; यह अनुष्ठान जन निबटाये॥

केवल तुमसे आश है; प्यारे नन्द-कुमार!।
बन जाओ, पतवार तो; जाये बेड़ा पार॥

सौगन्ध तुम्हारे चरणोंकी; तुम पर ही सारा भार है यह।
केशो! थामो, माधव रोको; नैयाही बे पतवार है यह॥
जो तनिक सहारा चूक गया; तो वहीं डूब जायेगी यह।
विश्वास रहे सारी कथनी; प्रभु की ही कहलायेगी यह॥

अस्तु, जिस तरह उचित हो; लिखवादो घनश्याम!।
पार लगा दो, साँवरे!; हमसे दीन--निकाम॥
अस्तु, "महाभारत" हुआ; उन्हीं दिनों निर्माण।
जब भारतके शूद्र भी; थे साहित्य--निधान॥

वह देव--नागरी भाषा थी; जो नियमित--शुद्ध कहाती है।
जिसके उच्चारण करनेसे; बाणी पवित्र हो जाती है॥

वह नुक़्तोंकी भरमार नहीं; जो--''जून''बदलकर''ख़ून''करें ।
इतनी हरफ़ोंकी कमी नहीं; जो''बेल''-''बैल''मज़मून करें ॥
उस भाषामें कुछ भी लिखना; दैवीय-कला कहलाती है ।
पर शोक ! आज इन हृदयोंमें; साया भी दृष्टि न आती है ॥
आज द्विजोंको भी नहीं; देव-भाष्यका ज्ञान ।
या वास्तवमें यों कहो--नहीं राज्य-सम्मान ॥
अब चलती है उस भाषाकी; जिससे रोज़ी या दफ़्तर है ।
''शैली'' शासन पर निर्भर है; ''पेशा''-पैसे पर निर्भर है ॥
प्राचीन लेखकोंके समान; हममें सामर्थ्य या त्याग नहीं ।
सच यह है-वैसे कर्म नहीं; वह भक्ति-भरा अनुराग नहीं ॥
जब तक आत्मा-मन-कर्म-बचन; एकही न होने पाता है ।
तब तक उत्तम शब्दोंमें भी; वह उत्तम भाव न आता है ॥
करणी न करे,कथनी गाये;यह छल क्योंकर निभ पायेगा ? ।
पापी अभक्तके हाथोंसे; क्या भक्ति-भाव उपजायेगा ? ॥
जो हो--अब तो ठान ली; माधव तुम पर ठान ।
जैसे जानो--त्यों करो; इसका हमें विधान ॥

गायन

चला दो,जैसी भी चाल माधव !;उसी चलनसे चला करेंगे ।
लिखा दो,लेखक जो बनके तुमतो;हम लेखनी बन लिखा करेंगे॥
न 'ना' कहेंगे, न 'हाँ' कहेंगे; न 'क्यों ?' कहेंगे, न 'क्या?' कहेंगे ।
नचा दो जैसा भी नाच नटवर ! वह नाच हम भी नचा करेंगे ॥
'विनीत'-'शैलेन्द्र' साया समझो;बनाव कर्मोंकी माया समझो ।
इसी बनावेके बीच हम भी; बना करेंगे-मिटा करेंगे ॥

श्रीः ।

प्रसङ्ग—योग।

राज—सभामें एक दिन; "जन्मेजय" नर-राज।
बैठे थे परिषद—सहित; भारत के सरताज॥
उसी समय आये वहाँ; व्यास—देव, मुनि—नाथ।
स्वागत किया नृपाल ने; समारोहके साथ॥

षोडश प्रकार पूजन करके; सिंहासन पर बिठलाते हैं।
जिज्ञासा भरी याचना में; अपनी इच्छा प्रकटाते हैं॥
सौभाग्य! आज चैतन्य—त्याग; आया रागी के महलोंमें।
कोटिशः धन्य! कान्ति-धर स्वयं;प्रकटाया मुरझित-कमलोंमें॥
यदि ऐसा स्वर्ण—समय पाकर; सेवक न लाभको उठा सके।
चैतन्य—कल्प—तरुके नीचे; कल्पना न अपनी मिटा सके॥
पारस लोहा हो पास पास; लोहा, लोहा ही बना रहे।
कर्णसे दानियों के द्वारे; भिक्षुक भूखा ही बना रहे॥

ज्ञान—धामके सामने; बना रहे अज्ञान।
तो समझेंगे हम यही; है दुर्भाग्य प्रधान॥"
व्यास देव कहने लगे—"इच्छा कहो, नरेश!।
करें कदाचित पूर्ण वह; कमला—पति करुणेश॥"

जनमेजय बोले–"दीनबन्धु; भारतकी कथा सुनाइयेगा ।
प्यासे कानोंको, पुरुषोंका; चरितामृत पान कराइयेगा ॥
कलियुगके पतित–प्राणियोंमें; उद्धार–भाव उपजाइयेगा ।
इन लम्पट-कुटिल-कामियोंको; वीरोंका दृश्य दिखाइयेगा" ॥

ऋषिवर ने उत्तर दिया–"हूँ राजन् ! लाचार ।
किसी दूसरे काम का; है इन दिनों विचार ॥

मेरी अनिवार्य–विवशता है; इस कारण मुझे बिदाई दो ।
जो"भारत"सुनना चाहो तो; "वैशम्पायन" को बुलवाओ ॥
उनका अनुभव भी ऊँचा है; शुभ–शब्द–कोषमें व्यापक हैं ।
वे कुशल–कथा–बाचक भी हैं; एवं उत्तम उपदेशक हैं " ॥

तपोभूमिको चल दिये; "व्यास–देव" तप–वेश ।
" वैशम्पायन " के लिये; भेजा गया सँदेश ॥

मुनिवर आये, जनमेजयने; सब भाँति मान–सत्कार किया ।
उस विनय भरी जिज्ञासा पर; "भारत"कहना स्वीकार किया ॥
सुन्दर–कदली का मण्डप रच;व्यासासन दिया मुनीश्वर को ।
सबसे पहिले ऋषि–भूषणने; आदेश किया अवनीश्वर को ॥

"राजन ! भारत–गाथका; है प्रसिद्ध–इतिहास ।
श्रवण–मात्रहीसे समझ; त्रि–विधि–तापका नाश ॥

भवमें भावुकता–भरणी है; कलि-युगको कल-युग-करणी है ।
नरकी संकल्प–सुमरणी है; वैतरणीकी वर–तरणी है ॥
यह कोई"मानव-चरित" नहीं;जो प्रकृति-नियमपर निर्भर हों ।
कोई लौकिक-इतिहास नहीं;जिसमें-"क्यों-क्या?"-के उत्तर हों ॥

निष्कारण कोई बात नहीं; कारण गम्भीर अगोचर हैं।
सारी गाथा के भाव-मात्र; श्रोताओंकी श्रद्धापर हैं॥
उस आदि-पुरुषका नाट्य-दृश्य; अनुभव-गत-सूक्ष्म-रसीला है।
इतने परही सन्तोष करे; सब लीलाधरकी लीला है॥
इस भाँति शान्ति-श्रद्धा-समेत; संयम-पूर्वक जो श्रवण करे।
एकाग्र-भाव, जिज्ञासु-वृत्ति; धारण कर इसका मनन करे॥
जिसकी मति-गति, प्रति संभ्रमपर; केवल हरि-चरित विचारेगी।
यह पतित-तारणी उस जनको; गंगा बन पार उतारेगी॥
इससे प्रतिकूल भाव वाले; दोनों लोकोंसे जाते हैं।
लौकिक-पथ से गिर जाते हैं; एवं परलोक नसाते हैं॥

यथा-शक्ति संभ्रमोंका; किया जायगा नाश।
किन्तु अगोचर पर कहाँ; पहुँचे ? बुद्धि प्रकाश॥
अस्तु-उन्हें विश्वाससे; सच मानियो नरेश।"
यों कह, भारत का किया; ऋषिने प्रथम गणेश॥

उनके वचनोंका अनु-वाचक; कुछ भाव-मात्र दरशाता है।
प्रचलित-हिन्दी-भाषा द्वारा; "भारत, की गाथा गाता है॥
भाषा भदेस, उद्देश-श्रेष्ठ; श्रीकृष्णचन्द्रका कीर्त्तन है।
पस इसी एक लालच-वशात्; सेवकका यह आयोजन है॥
इसलिये पूज्य-वाचक-वृन्दो ! भाष्य पर न ध्यान दीजियेगा।
टूटी फूटी लुटिया ही से; "कृष्णामृत" पान कीजियेगा॥

गायन

श्रेष्ठ–जन वह हैं–जो; बिगडी को बना लेते हैं।
सन्त–जन वह हैं–जो; नीचोंको निभा लेते हैं॥

मिला हो दूधमें, पानी–तो, जला देते हैं;
पड़ा हो कीचमें, मोती–तो, उठा लेते हैं।

प्रेम भाषा से नहीं–भाव से रखने वाले–
बेतुकी बात भी, रागोंमें–जमा लेते हैं।

"विनीत"–आश है–"शैलेन्द्र" उन्हीं माधवसे–
गिद्ध से नीच जो, अपनेमें मिला लेते हैं।



कथा--प्रारम्भ ।

हैं प्रसिद्ध क्षत्रियोंके, सूर्य्य—चन्द्र दो वंश ।
महाराज "शान्तनु" हुए; *चन्द्र-वंश-अवतंस ॥

× वह समय आत्म-विज्ञानका था; सारा बल था आत्मिक-बलपर ।
शासन था केवल धर्म-तत्त्व; था एक भाव सब भूतलपर ॥
मोटर-रेलों के बदले में; शारीरिक-शक्ति यहां तक थी ।
ब्रह्मा की सृष्टि जहाँ तक थी; उनकी भी पहुँच वहाँ तक थी ॥
दस बीस सहस मन बोझा तो; बालक ही लेजा सकते थे ।
घर बैठे ही त्रैलोकों के; सन्देशे मँगवा सकते थे ॥

क्वचित—तार बिगड़ी कहीं; बाजा मानस--तार ।
बिना तार के तार में; था सारा संसार ॥

---

* चन्द्र—वंशावली इस प्रकार है—कि जिसका जनमेजयसे सम्बन्ध है। १—ब्रह्मा। २—मरीच । ३—सूर्यसभा । ४—सूर्य । ५—स्वायंभुवमनु । ६—नक्षत्रपति । ७—बुद्ध। ८—अनुपम । ९—नहुष। १०—संयत। ११—बृहस्पति। १२—भोज। १३—सन्तावतार। १४—भरत । १५—मञ्चमीठ। १६—सत्यसुत। १७—शान्तनु । १८—चित्रवीर्य। १९—पाण्डु। २०—अर्जुन। २१—अभिमन्यु। २२—परीक्षित। २३—जनमेजय।

× प्राचीन भारतने भौतिक-विज्ञानको चरम-सीमा तक पहुँचाकर लगभग छोड़ दिया था, क्योंकि वे उसे अनित्य कहते थे, और सारा काम आत्मिक—योग—बलसे लेते थे। अन्यथा—
इच्छासे जिनके बाण, जाकर लौट आते थे; अग्नि—मेघ—वायु—वज्र ऐसे हथियार थे।
उड़ते आकाशमें थे, वेगवान—वायुयान; प्रचलित त्रिलोकोंमें बिना तार तार थे॥
निश—दिंव बदल दें, पुत्र—पुत्री बदल दें; तन तक बदल दें, विज्ञान—भण्डार थे।
रातमें बसा दें, नग्र, सिन्धु पै बना दें राह; प्यारे हिन्द ! तेरे पूत, ऐसे शिल्पकार थे॥

लेखक—

सम्राट स्वयं घर घर जाकर; कष्टों का पता चलाता था ।
एवं अपने तन, धन द्वारा; जनता की विपद बटाता था ॥
बे पाई पैसा लिये हुए; वह न्याय चुकाया जाता था ।
दूध का दूध रह जाता था; पानी-पानी दिखलाता था ॥
"झूठी-गंगा" का समय न था; दोषी, खुद दोष सुनाता था ।
बे कहे, सुने अपराधी जन; अपना प्रायश्चित गाता था ॥
भूमि-कर किसी पर बँधा न था; दशमांश चुकाया जाता था ।
अपने आप ही किसान वहीं; वह राज-भाग रख आता था ॥

योग--तपस्या-भक्ति-बल; ब्रह्मचर्य-अनुकूल ।
ज्ञान, सत्य, संयम, मनन; था उन्नतिका मूल ॥

योगाग्नि अग्नि पैदा कर दे; योग-बल स्वर्ग में पहुँचा दे ।
जब चाहें सूर्य प्रकट कर दे; जब चाहे पानी बरसा दे ॥
मुँह से केवल कह देना ही; करणी में लेखा जाता था ।
जो कहा गया, सो कहा गया; फिर करके देखा जाता था ॥

यथा राज, वैसी प्रजा; किसे कहूँ शिर-मौर ? ।
काल-चक्रके चक्रमें; हुआ और से और ॥
भानु-वंश-गुरु पुरोहित; मुनि-वशिष्ठ, तप-धाम ।
है प्रसिद्ध संसारमें; उनकी कीर्त्ति-ललाम ॥
शान्ति-कुटीमें शान्ति-निधि; करते थे विश्राम ।
कामधेनु पर मुनीका; निर्भर था सब काम ॥

यह काम धेनु है वही धेनु; जो इन्द्र-लोक की बासिन है ।
सारी इच्छायें पूर्ण-करण; दुख-दारिद-बिपद-विनाशिन है ॥
यह महा-सिद्धि केवल कुछ दिन; रहती है पास तपस्वी के ।
है यही धेनु, जो किसी समय; थी ऋषि-कुल-पति-"जमदग्नी"के ॥

इसी सिद्धिके लिये ही; "सहस बाहु" ललचाय ।
मार गया था ऋषीको; ले भागा था गाय ॥
परशुरामके हाथसे; उसका हुआ विनाश ।
अब बशिष्ठकी कुटीमें; था धेनुका निवास ॥
एक बार बसु-वृन्द मिल; पहुँचे मुनिके द्वार ।
कामधेनु-सेही हुआ; वहाँ अतिथि-सत्कार ॥

छः रस छत्तीस व्यञ्जनोंसे; सुन्दर भोजन करवाया गया ।
जब जिस पदार्थका काम पड़ा; गउ मातासे मँगवाया गया ॥
उस महा-महिमकी महिमा पर; महिमा-धारी भी ललचाये ।
अवसर पाकर ऋषि-आश्रमसे; उसको रातमें चुरा लाये ॥
चोरी, त्रिकाल-दर्शी-मुनिसे; छल, भरा ज्ञान, ज्ञानेश्वरसे ।
इतना अयोग्यता-पूर्ण-कर्म; योग्यसे, नहीं-योग्येश्वरसे ॥

ध्यान-मात्रसे खुल गया; कपट सभी तत्काल ।
शान्ति-सिन्धुके हृदयमें; आया एक उबाल ॥
देव-देहकी दिव्यता; अथवा छलका भूत ।
कान्ति-कलेवरमें अहो !; यह काली करतूत ॥

यदि ऐसे धूर्त-पिशाचों को; करणी का फल न दिया जाये ।
या नाम और पद के कारण; उनका ताड़न न किया जाये ॥
तो आगे सभी धनी-मानी; मनमानी चाल निकालेंगे ।
साधू-सन्तों को धमका कर; जी चाही चीज़ छिना लेंगे ॥
इस शाप-ताप के दण्डों से; वह अपना पाप-प्रकाश करो ।
हे अमर-लोक-बासी बसुओ; तुम मृत्यु-लोकमें वास करो ॥
चोरी ही तुम को प्यारी है; तो चोरों में रहने जाओ ।
माया-मय-जन्म-मरण वाले; वह कठिन-कष्ट सहने जाओ ॥

सुनते ही संवाद यह; धाये "बसु" बिलपाय ।
"त्राह-त्राह" को छोड़ कर; था क्या शेष उपाय ॥

गह रहे चरण, बह रहे नयन; गिर रहे धरणि पर रो रो कर ।
कर दिये सजल-पद मुनि-वर के; जल-धाराओं से धो धो कर ॥
"हे करुणाकर ! करुणा कर दो; इन कारुणीय-करुणाओं पर ।
हे दया-धाम ! कीजिये दया; इन दलित-दुष्ट-दुखियाओंपर ॥
अपनी करणी का भोग-भोग; अघ-वैतरणी में आन मिले ।
कोप का प्रमाण पूर्ण होकर; अब शान्ति-सहित वरदान मिले ॥

ऋषिवर ने उत्तर दिया-"डूब मरो" खल-जात ! ।
क्या मुँह लेकर सामने; करने आये बात ? ॥

लजवन्ते थे, तो किसी जगह; लज्जासे गल कर मर जाते ।
था आन मानका कुछ बिचार; तो मुँह न लौटकर दिखलाते ॥
वह ऊँचा-पद, यह नीच-कर्म, वह देव-देह, यह खोटा-पन ।
इस सुलझी हुई दशामें भी; साधू-सन्तों तकसे उलझन ॥
जाओ, अब मेरा अटल-शाप; ब्रह्मा भी टाल नहीं सकते ।
ब्राह्मणका बचन-वज्र-मारा; हरि-हर भी पाल नहीं 'सकते ॥"

बसुओंने फिरसे कहा; बार बार बिलखाय ।
"न्याय-दण्ड प्रभु ! हो चुका; दो कुछ कृपा-सहाय" ॥

ऋषिवर बोले-"अच्छा जाओ; इतना फल निश्चय पाओगे ।
हाँ, शेष-कष्ट संसारीके; अब आगे नहीं उठाओगे ॥
प्रत्येक व्यक्ति पैदा होकर; तत्क्षण ही मारा जायेगा ।
वह गाय चुराने वाला " बसु "; भारतका वीर कहायेगा ॥
वीरोंमें वीर नाम पाकर; मुँह-माँगी मुक्ती पायेगा ।
इस भाँति अल्प-कालान्तरमें; यह शाप-मोक्ष हो जायेगा ॥"

विदा हुए वसु वहाँ से; पाकर यह वरदान ।
मृत्यु-लोक के दृश्य पर; बँधा यकायक ध्यान ॥

लाखों भाँति की योनियोंमें; लाख ही बार आना जाना ।
अजगर बन कभी अचल होना; कीड़े बन कभी बिलबिलाना ॥
सैकड़ों वर्ष तक एक जगह; बन कर पेड़ ही खड़े रहना ।
या उलटे कहीं टँगे रहना; या पत्थर बने पड़े रहना ॥
करना फुलेल का व्यसन कभी; तो कुम्भीपाक कभी होगा ।
तन कभी सड़ेगा पड़ा पड़ा; तो जल कर खाक कभी होगा ॥

एक एक तनके लिये; लगे लाख हा रोग ।
दिन दिन और फँसायगे; विषय-मोह-मद-भोग ॥

लुट गये लुटेरे धोके में; अथवा ठगियों की ठगी हुई ।
लग गई लाग-बे लाग लगे; दिल्लगी, एक दिल-लगी हुई ॥
काम की कामना-मय-कलियाँ; कामारि-धाममें मुरझाई ।
अथवा मधु-धेनु-मक्षिकायें; मकड़ी जालों में उलझाई ॥
अथवा "त्रशंकु"का भाग्य-भाव; बढ़ते बढ़ते ही बदल गया ।
अथवा कुबेर-धन मिलते ही; यक बयक दिवाला निकल गया ॥
रोते, चिल्लाते, विलपाते; अपने मण्डल में आ पहुँचे ।
मानो पञ्चों के आगे वे; दुखिया-हत्यारे जा पहुँचे ॥

"वसुओं" ने बर्णन किया; देवोंसे संवाद ।
रो रो कर कहने लगे, दारुण-व्यथा-विषाद ॥

" बन्धुओ ! बन्द आखें खोलो; बन्दी बेचारे रोते हैं ।
यह आठ बन्धु आजीवनको; आजसे बिराने होते हैं ॥
कर्मोंके मारे दुखियारे; दर दर की ठोकर खायेंगे ।
जाते हैं, वहाँ-जहाँसे हम; आजीवन लौट न पायेंगे ॥

जिस मायाका ना कुछ झोंका; दैवी–मायाको झुका गया ।
जिस ममताका छोटा बहाव; स्वर्गिक–ममताको बहा गया ॥
जाते हैं अब उस मायाकी; उन प्रबल प्रचण्ड–आँधियोंमें ।
तैरेंगे कुछ ही दिन पीछे; ममताकी गहरी नदियोंमें ॥
जिसकी एक ही बूँद द्वारा; दैवी–देह तक छुटानी है ।
उस विषम-विषय-धर–सागरमें; विष–ही विष, सारा पानी है ॥

"भोग" न जब तक सकेंगे; एक कर्मका भोग ।
तब तक पीछे लगेगा; और भोग का रोग ॥

वह–वह मकड़ीका जाला है; जिसमेंसे निकल न पाना है ।
ज्यों ज्यों पंखे फड़काना है; त्यों त्यों फँसते ही जाना है ॥
भेंट लो, बन्धुओ ! एक बार; जब तक यह दैवी–काया है ।
फिर क्या है ? हम हैं मायाके; और सगी हमारी माया है ॥

आखों में फिर रहा है; जन्म-मरणका कष्ट ।
लेकिन हो सकता नहीं; वह कदापि फिर नष्ट ॥

गायन

वह कष्ट बार बार; उठाया न जायगा ।
माया का महा–जाल; छुटाया न जायगा ॥
जब बन गया है, हम से; सुर-देह में भी पाप–
नर–देह के पापों को; गिनाया न जायगा ।
सम्बन्धियों की भाँति, खड़े आज सामने–
फिर मुँह भी तुम्हें, मातु !; दिखाया न जायगा ।
यह दुर्दशा हुई है, जहाँ एक पाप से;
लाखोंहीका हिसाब चुकाया न जायगा ॥

गर्भ-स्थली के कूप में; ऊपर को पैर कर-
जठराग्नि का उत्ताप उठाया न जायेगा।
आयेगा कौन दूसरा, " शैलेन्द्र " तेरे काम-
"गोविन्द" को जब तक कि मनाया न जायगा।

यद्यपि वह कष्ट मिटाने के; शास्त्रों में यत्न बताये हैं।
लेकिन उनके फल पाने को; विरले समर्थ उपजाये हैं॥
लाखों जन्म की तपस्या हो; वैराग्य, त्याग का ज्ञान रहे।
जीवन के जितने भी दिन हों; केवल सत्संग प्रधान रहे॥
हरि-भक्ति सदा अवलम्ब रहे; अभिमान न मन में आजाये।
ऐसे कोटों साधन करके; कोई जन मुक्ती पा जाये॥
हम इन सब से निराश से हैं; बन जाय, तो तुम्हीं सहाय करो।
जो सच्चा मान चाहते हो; तो पहिले जाति-सहाय करो॥

देवोंने उत्तर दिया;-"बहुत ग़ौरके बाद।
बसुओं! है बेकार सी; हम सबकी इमदाद॥

हम देव सही, लेकिन, केवल; तप का फल यहाँ पा रहे हैं।
या यों समझो, जो कमा चुके; वह बैठे हुए खा रहे हैं॥
सुर-लोक कर्मका लोक नहीं; यह भोग-लोक कहलाता है।
प्रत्येक सकाम-धर्म-कर्त्ता; वह कर्म भोगने आता है॥
है मृत्यु-लोक दोनों लायक; भोग भी करो कर्म भी करो।
दोनों साधन हैं उसी जगह; पेट भी भरो, धर्म भी करो॥

लेकिन यह तुमने ठीक कहा; उस जगह न धर्म दिखाता है ।
माया के झाँसों, पाँसों में; पेट ही पेट रह जाता है ॥

ऐसी सूरतमें फ़क़त; हैं दोही सुख—द्वार ।
या हरि—पद—आधार है, या गंगाकी धार ॥

इस लिये चलो गंगा जी पर; वह ही त्रैलोक—बिहारिण हैं ।
पतितोंकी भी सहकारिण हैं; हरि-पद की भी अधिकारिण हैं ॥
उनकी गोदी ही दीनों को; उन की ही गोद पापियों को ।
उनकी ही गोद मनुष्यों को; वह ही सुर—लोक—वासियों को ॥

गायन

जेती शक्ति विष्णु—पाद, विधि के प्रसाद माहिं;
गौरी की गुरुता माहिं, शम्भु के जहर में ।
शेष की समीर माहिं; सारद सुधीर, माहिं;
आयुध सुरेश माहिं; सिन्धु की छहर में ।
पौन की मरोरन में, अग्नि के झकोरन में;
केहरि के ज़ोरन में, यम के क़हर में ।
तेती शक्ति, शान्ति, तेज "शैलेन्द्र", "विनीत" आज,
योगी की महर में कै, गंगा की लहर में ।

परामर्श इस तरह कर; गये गंग के तीर ।
ध्यान—सहित यों बन्दना; करने लगे अधीर ॥

श्रीगङ्गा-स्तवन

नमो त्रिधार-धारिणीम् । त्रिलोक-शोक-वारणीम् ।
हरिष्पदे-निवासनीम् । त्रिताप-पाप-नाशनीम् ॥
महेश-माथ-मण्डनीम् । प्रचण्ड-दण्ड-खण्डनीम् ।
भगीरथी-भयासनीम् । भवाम्बु-भव्य-भासनीम् ॥
सरोजनी सरिन्मया । महद्यशी, महद्दया ।
किलोलनी, सुचंचला । सुचारणी चतुष्कला ॥
प्रसारणी-मणि-प्रभा । विदारणी व्यथा-सभा ।
नमामि गंग अम्बिके ! । प्रसीद स्वानुराग मे ॥

इस प्रकार स्तवन कर; देव रहे शिर नाय ।
विपद-विदारन, दुखहरन; प्रकटी गङ्गामाय ॥
दया-दृष्टि कर देविने; पूछा उनका हाल ।
देवोंने उत्तर दिया-"कर अम्बे" प्रतिपाल ॥

यह आठों वसु भावीके वश; मुनिवर वशिष्ठके यहाँ गये ।
अथवा होनी ले गई जहां; यह होनी वाले वहां गये ॥
मुनिवरकी कामधेनु लेकर; चोरीसे चलने लगे इधर ।
पर पकड़ गये उस तपसीसे; फिर पड़ी शापकी मार उधर ॥
मुनिवरने इनको जन्म-मरण; पानेका शाप दे दिया है ।
अब मृत्यु-लोकमें जानेका; सारा सामान कर लिया है ॥
यह करणी हुई हमारी माँ !; तेरी तरणीकी बारी माँ ! ।
लीला बन जाय तुम्हारी माँ !; लज्जा रह जाय हमारी माँ ! ॥

हे पतित–पावनी ! किसी तरह; इन दुखियोंका उद्धार करो ।
हे लोक–तारणी ! जैसे हो; वसुओंका बेड़ा पार करो ॥

गंगा देवीने कहा–"रक्खो कुछ दिन धीर ।
शाप–मोक्षके लिये कुछ; सोचूँगी तदबीर ॥
गंगा अन्तर्हित हुईं; देकर यों वरदान ।
अब शान्तनु महाराजका; कहता हूँ आख्यान ॥
पतिव्रता, पुण्यात्मा; रूप–खानि, गुण–खानि ।
शील–वान उनकी प्रिया; देवि "अमोघा" रानि॥
कुछ कारण-वश हो गया; उसका तन-अवसान ।
शान्तनु नृप रहने लगे; एक विरक्त–समान ॥

वह शान्ति-सदन, सदना-विहीन; मरघटका पट दिखलाता है ।
आमोद-प्रमोद-समाज साज; नाहर बन खाये जाता है ॥
शासनमें सारा तन, मन दे; वनमें सन्ध्याको जाते हैं ।
आनन्द–केलिका समय वहीं; प्रभुकी यादमें बिताते हैं ॥

गंगा देवी उस तरफ; प्रकटीं जग में आय ।
जंगल में फिरने लगीं; रमणी–रूप बनाय ॥

उस ओर गये "शान्तनु" नृपाल; उस सुन्दर नारीको देखा ।
सुख-मय-छबि-धारीको देखा; विरहिण दुखियारीको देखा ॥
कोमल–कामनी–कमल–वदनी; सुरमई रसीलीसी आँखें ।
शरमीलीसी, तरसीलीसी; चंचल चटकीलीसी आँखें ॥
वेणी विशाल, रद विशद लाल; दाड़िम-दन्तावलिकी दमकन ।
सर्वाङ्ग सुघर, मुसकान मधुर; चन्द्रानन पर चपला चमकन ॥

"शान्तनु" को कामनी के; लगे कटीले बाण ।
हुआ मनों बसु-मुक्तिका, यह दैवीय-विधान ॥

बिथकेसे रुके भुलानेसे; चुपकेसे हुए लुभानेसे ।
ठग गये ठगीमें आनेसे; बोले कुछ वचन भुलानेसे ॥



बलिहार, बहार विपिनकी क्या ?; शृङ्गार धार कर आई है ।
किस तपसीके तप-खण्डनको; "रम्भा" इन्द्रने पठाई है ॥
यदि कोई रसिक-भाग्य-शाली; रस-मूर्त्ति भाग्यसे पाजाता ।
तो जीवन-रसका स्वरस समझ; आंखोंमें इसको बिठलाता ॥

यह कुसुम-कली, यह विकट-विपिन; यह ललित-बेल यह हरियाली।
किसकी रखवाली बाली है; है कहाँ, कौन इसका माली ?॥
अये मृग-नयनी! किस मृग-मनकी; मृगया करनेको आई है ?।
भामिन ! बतला किसकी भावी; भावी बनकर मुसकाई है ॥

रूपवती कहने लगी—"सुनिये राजन् ! हाल।
दे न किसी को दैव यह; सुन्दरताका जाल ॥

यह जाल किसी एक पर नहीं; चाहे जिसपर पड़ जाता है।
इस फन्देमें फँसने वाला; पंखे भी नहीं हिलाता है॥
वह जाल किसी एकको फाँस; मालिकका काम चलाता है।
यह जाल शिकार, शिकारीकी; एक ही दशा करवाता है॥
उस तरफ शिकार तड़पता है; फड़काता इधर शिकारी है।
बस इसी समस्याके अन्दर; हालत इस समय हमारी है॥
मेरा कोई शिकार होगा; या वही शिकारी भी होगा ?।
इस यौवन–धनका धनी भूप !; आजन्म भिखारी ही होगा ॥

गायन

बुरे हैं, शोभा और रूप दोनों; न जाने क्यों सब लुभा रहे हैं ?।
किसीकी आंखोंके रोशनी हैं; किसी की आंखें जला रहे हैं॥
जो रूप वाले शिकारियोंको; शिकार अपना बना रहे हैं।
वह रूप वाले शिकारियोंके; शिकार बननेको जा रहे हैं॥
अगिनसे बढ़कर जलन है इनकी; नशोंसे बढ़कर नशा है इनका-
इधरको बिरही तड़प रहे हैं; उधरको वह झोंके खारहे हैं।
'विनीत' 'शैलेन्द्र' इसके ऊपर; पड़ी है क्या २ न किसके सिरपर-
भले हैं, वे-जो यह रत्न पाकर; सुशील-अंचल गिरा रहे हैं।,,

राजा बोले-"यह छवि-विकार; उस पर यह निर्विकार बातें।
कोकिल-वयनी बस रहने दे; करती हैं बे क़रार बातें॥
रखती है सार त्रिलोकी का; करती है बिना सार बातें।
जो जान किसी की रखना हो; तो कर कुछ जानदार बातें"॥

रमणीने उत्तर दिया; करो न व्यर्थ विवाद।
खूब जानती हूँ नृपति; इस दिलकी बुनियाद॥

भौंरा, जब कली देखता है; तब सौ सौ चक्कर खाता है।
रस पाकर ज्यों ही अलग हुआ; फिर उसकी ओर न जाता है॥
कामी जन जान लड़ाते हैं; लाखों सौगन्धें खाते हैं।
हो गया काम, तो काम पड़े; वह राह काट कर जाते हैं॥
इस लिये यही अभिलाषा है; हे प्रभु! जग के जालसे बचा।
जो दुख देना है दे भगवन्!; चालाकोंकी चालसे बचा॥
बस यही सोच कर, नीति--धाम!; मैं वन वन फिरती रहती हूँ।
सुनती हूँ दुख सुख ना मैं कहीं; "ना अपनी बीती कहती हूँ॥"

राजा बोले—"सुन्दरी!; साफ साफ मत खोल।
सरस बोलमें, माधुरी; सीधे सीधे बोल॥

कौन हो? कहाँ से आई हो?; क्या नाम--धाम है बतलाओ।
क्या असली वृत्ति तुम्हारी है; स्पष्ट रूपसे प्रकटाओ॥
सब पुरुषोंमें पुरुषार्थ नहीं; हर नारी है नारि ही नहीं।
तुम स्वयं जानती हो, विदुषी!; पाँचों उँगली एक सी नहीं॥
अपना स्पष्ट विचार कहो; तन, मन, धनसे बलिहार हूँ मैं।
जो कुछ भी इच्छा प्रकट करो; जीवन देकर तैयार हूँ मैं॥"

राजाके यह वचन सुन; कहा-सुनो नर-नाथ !।
गला न अपना फँसाओ; इस दुखियाके साथ ॥

राजा बोले-"क्या वस्तु गला ?; जब जान फँसाये बैठा हूँ ।
क्या डर दुखका ? प्राणों तक की; बाज़ियाँ लगाये बैठा हूँ ॥"
रमणी बोली-"तो सुनो भूप ! ; मैं सुर-कन्या कहलाती हूँ ।
विरहिन,कामिन कुछ भी समझो; प्रेमी का पता लगाती हूँ ॥
लेकिन दुनिया के द्वन्द्वों से; धोखा सा खाती जाती हूँ ।
इस लिये प्रणय के पूर्व भूप!; थोड़े से वचन हराती हूँ ॥"

राजा बोले-"वचन क्या !; सब हमको स्वीकार ।
बस सुमुखे ! अब मत करो:हमें अधिक लाचार ॥"

गायन

माँग कर, हर माँग पर, अधिकार कर ।
किन्तु-मेरी माँग अङ्गीकार कर ॥
देह, गेह, सनेह, धन, जन, प्राण भी-
-दूँ अभी इस मूर्ति पर, बलिहार कर ।
त्यागने को जो कहे, तो त्याग भी-
-धर्म तज, लूँ शेष सब स्वीकार कर ॥
राज्य ले, सर्वस्व ले, तयार है-
"शैलेन्द्र"लेकिन"हाँ" मगर इक बार कर ।

फिर भी जो कुछ कहना चाहो; इस समय साफ़ कह सकती हो।
सुमुखे, बोलो, भद्रे, बोलो; किन शर्त्तों पर रह सकती हो ॥
रमणी बोली-" जो चाहेंगे; करडालेंगे, करवायेंगे।
जो उस में अन्तर आयेगा; हम चले उसी दिन जायेंगे ॥
मेरे कामों में किसी तरह; बाधा न आप दे पायेंगे।
जिस रोज़ प्रतिज्ञा भंग हुई; हम चले महल से जायेंगे ॥

स्वीकृति दे दी नृपतिने; हर्षित हुवे सुरेन्द्र।
गंगा माँकी बधाई; गा "विनीत-शैलेन्द्र" ॥

गायन

जग की तारन,कुल की तारन बनि आई।
गंगा माई को, दें किस भाँति बधाई ? ॥
श्री विष्णु-चरण की चेरि; बनी नृप-दासी;
कैलासी की शिर-मौरि; हुई गृह-वासी;
अघ-दुर्ग, स्वर्ग-गढ़-विजय हेतु दुर्गा सी;
सो भक्त-जनों के लिये; बनी अबला सी;
त्रैलोक्य-देवि ने; रमणी-छबि दिखलाई।
गंगा माई को, दें किस भाँति बधाई ?।

कुछ दिन पीछे देविसे; प्रकट हुई सन्तान।
उसी समय कर दी गई; गंगा में बलिदान ॥
इसी भाँतिसे हो चुके; बालक सात हलाल।
वचन-बद्ध थे-शब्द भी; कह न सके,नर-पाल ॥

किन्तु; आठवें बालपर; आया प्रेम–उबाल ।
भूल गया प्रण भूपको; बोल उठे तत्काल ॥



ओ हत्यारी ! यह हत्यायें; तू नारी नहीं, अनारी है ।
नागिन है किसी जन्म की तू; या अय्यारीकी यारी है ॥
ऐसे प्रण, ऐसे वचनों पर; लानतकी ठोकर मारता हूँ ।
उस गलती पर पछताता हूँ; उस ममता पर धिक्कारता हूँ ॥
यह चन्द्र–वंशके चन्द्र–हार; आगे कुछ होनहार होकर ।
होते बलिहार स्वधर्मों पर; भारतके कर्णधार होकर ॥
उफ़ ! नाकुछ विषय–वासना पर; कितनी हत्यायें करवादीं ? ।
ओ सुन्दरता ! तेरे हाथों; कैसी कियारियाँ लुटवादीं ? ॥

गायन

अगर कामका, श्रेष्ठ–परिणाम होता ।
तो कामोंमें, इसका ही सरनाम होता ॥

न होता अगर, कामका काम कमतर-
तो कामी कहाँ ?, आज ना काम होता।
यही है, यही है, सु-कर्मों का दुश्मन-
इसी नाम पर, नाम बदनाम होता ॥
जहर है, अगिन है, महा-पाप है, यह-
अगर यह न होता; तो हर काम होता।
बचो, बन्धु " शैलेन्द्र " ये कह रहा है॥
भला था, कहीं; काम गुम नाम होता।,,

अब शान्ति भरी यह आत्मा भी; इन हत्याओं पर ऊबेगी।
जो यह बाल भी डुबायेगी; तो शर्त्त साथ ही डूबेगी ॥
आया उबाल क्रोधका प्रथम; फिर लाचारीसे डरने लगे।
शान्ति-मय-मोह-मय-करुणामय-;रमणीसे करुणा करने लगे॥

"मन मानी मन-माननी; मानी, मान अमान।
अब मन सो मानी नहीं;मान न मन अभिमान ॥

गायन

दया कर, अरी निर्दया ! कर्कशा है।
मेरी दुर्दशा, क्यों हुई दुर्दशा है ?॥
हुआ चन्द्र-वंशी लला चन्द्रसा है।
मनो नन्दका नन्द आनन्द सा है ॥
सँभालो, निभालो, मेरा भाल-साहै।
नरेबालसा है, निरे बालसा है॥
अरी-कालसा है, मही-पालसा है।
ये "गोविन्द-शैलेन्द्र" की, लालसा है॥"

वचन-भंग ज्योंही हुआ; प्रकटी माता गंग ।
रंग-महलका एक दम; बदल गया वह रंग ॥

हँस बोली—"राजन ! देखो मैं; कामिन हूँ या कि मानवी हूँ ।
हरि–पद–नख–नीच–किंकरी हूँ; या भागीरथी, जान्हवी हूँ ॥
यह बालक–वही अष्ट–वसु थे; जिनको वशिष्ठने शाप दिया ।
मैंने उनकी माता बनकर; इस मायासे उद्धार किया ॥
उस जन्म–मृत्युका कष्ट–जाल; मैंने इस तरह मिटाया है ।
रमणीका रूप बनाकर भी; रोमाञ्चक–दृश्य दिखाया है ॥
यह अन्तिम–बाल रह गया है; इसने ही धेनु चुराई थी ।
इसके निमित्त ऋषिवरने भी; कुछ भावी और बताई थी ॥
अब यही तुम्हारा लाल हुआ; जो "गंगादत्त" कहायेगा ।
देवोंका होगा कृपा–पात्र; वीरोंका विरद बढ़ायेगा ॥

चारों युगमें रहेगा; इसका गौरव–गान ।
यों कहकर गंगा हुई; तत्क्षण अन्तर्द्धान ॥"

मधु–वंशी–वीर–वेणु राजा; खेलने शिकार गया वनमें ।
भँवरा, भँवरी का केलि देख; कामेच्छा हुई प्रबल मनमें ॥
हो गया स्वयं ही वीर्य्य–पात; तो कहा सुएसे राजाने ।
प्यारे, तोते ! यह अकस्मात; हो गया पाप, हम क्या जाने ? ॥
लेकिन देवीजीका वर है; यह वीर्य्य न खाली जायेगा ।
जिस जगह बिन्दु गिर जायेगा; उस जगह असर दिखलायेगा ॥
इसलिये, इसे ले जाओ तुम; रानीपर फौरन पहुँचाओ ।
सारा किस्सा समझा करके; उलटे पैरों वापिस आओ ॥

कमल-पत्रमें वीर्य धर; उड़ा सुआ तत्काल ।
किन्तु मार्ग ही में पड़ा; उसपर उलटा जाल ॥

लपका ऊपरसे एक बाज़; और झपट सुएको पकड़ लिया।
तोतेने भी साहस करके; अपने दुश्मन पर वार किया॥
लेकिन लड़ते ही लड़तेमें, चोंचोंसे दोना फूट गया।
दो बूँद नदीमें वीर्य गिरा; पत्ता पृथ्वी पर छूट गया॥
भावी–वश एक बड़ी मछली; वह दोनों बूँदे निगल गई।
या यों कहिये–इस भावीसे; भावीकी भावी निकल गई॥

डाला धींवरने कहीं; उसी नदीमें जाल।
फँस आई संयोग–वश; वही मीन तत्काल॥

मछली कीमती, बडी, मोटी; देखी तो धींवर उछल पड़ा।
आनन्द–मग्न होकर सहसा; अपनी किस्मतसे कहने लगा॥
"वाह रे भाग्य! एकही दफ़े; वह हीरा हाथ लगाया है।
दिन भरकी सारी मिहनतका; बे मिहनत फल दिखलाया है॥
क्या करूँ? चीड़ लूँ–लाभ नहीं; माँस ही हाथ रह जायेगा।
बेच दूँ किसी को, तो कोई; पैसा पाई ठहरायेगा॥
ले चलूँ राज गृहमें यद्यपि; तो सब मिहनत बर आयेगी।
कीमतसे कई गुना ज्यादा; कोई इनाम मिल जायेगी॥"

इस प्रकार कहता हुआ; गया राज–दरबार।
बोला–"उत्तम मीन यह; लाया हूँ सरकार!॥

आज्ञा हो, इसको रख छोड़ूँ; या पाकालयमें पहुँचा दूँ।
या किसी दूसरेको दे दूँ; या किसी हौज़में डलवा दूँ॥"
राजाने उसे इनाम दिया; एवं मछली को चिड़वाया।
उसके अन्दरसे एक पुत्रि; और एक सलौना प्रकटाया॥

मछली में दो बूँदसे; दो मनुष्य प्रकटाय।
माया, माया–धामकी; क्यों कर समझी जाय?॥

मित्रो ! यह ग्रन्थ महाभारत; इतिहास नहीं, विज्ञान कहो ।
सोचने समझनेमें मुश्किल; कहते सुनते आसान कहो ॥
ऐसी ही कितनी सन्तानें; दूसरे युगोंमें गाई हैं ।
भारतके ग्रन्थोंमें ऐसी; सैकड़ों कथाएँ आई हैं ॥
इस कारण भारत वालों को; इसमें भ्रम की है राह नहीं ।
जो नास्तिक और अधूरे हैं; उनसे कहने की चाह नहीं ॥
इन दिनों अम्रिका वालोंने; इसका प्रमाण दिखलाया है ।
नर-वीर्य्य नारिका रक्त जोड; गेंदमें शरीर बनाया है ॥
कुछ कारण-वश, उसमें अबतक; जीवनका अंश न आया है ।
या यों समझो, विज्ञान अभी; पूरा न समझने पाया है ॥

समझ न पाना और है; कर दिखलाना और ।
अब भी करना चाहिये; इस रहस्य पर ग़ौर ॥

अचरज में "दासा राम" हुए; केवटने सारा हाल कहा ।
राजा ने उसको लड़की दी; वह पुत्र उन्हीं के पास रहा ॥
केवटने उसे पुत्रि-वत् रख; "मत्स्योदरि" नाम धराया है ।
बालिग़ होने पर कन्या को; घरका ही काम सिखाया है ॥
कोई यह दन्त-कथा समझो; कुछ समझे "इसको मिथ्या है ।"
मैं केवल इतना समझा हूँ; ❀सब इच्छा-धर की इच्छा है ॥

---

* महाभारत उन्हीं व्यास देवका बनाया है, उनकी उत्पत्ति "मत्स्योदरी" से है, इस ग्रन्थका निर्माण-कालहीमें काफ़ी प्रचार हो चुका था, यदि यह कपोल-कल्पित होती तो तत्कालीन अनेक विद्वानों और समालोचकों द्वारा उसका भण्डाफोड़ हो जाता, सच तो यह है कि उन दिनोंके लिये यह ऐसी ही साधारण घटनायें थीं, जैसी बीसवीं शताव्दीके लिये रेल, तार, वायुयान आदि । इसलिये उन लेखकोंको ऐसी बातोंके प्रमाण देनेके लिये माथा न पचाना पड़ता था ।

कहने वालों को कहने दो; अपना उसमें जाता क्या है ? ।
हे भक्त-जनो ! आगे देखो; माया-पति की क्या माया है ? ॥

मध्य-दिवस मत्स्योदरी; शोभित सरिता-तीर ।
यथा मैनका भूमिपर; आई बाल-शरीर ॥

सुर-मानसरोवर की मानो; फूली कुमोदिनी जंगलमें ।
वैकुण्ठ-धाम की सुर-कन्या; शोभित है मानो भूतलमें ॥
वह कलित-कमलनी कान्ति-मयी; कँकरीले तटसे मिली हुई ।
अथवा छोटी सी सीमामें; थी विमल चांदनी खिली हुई ॥

आ पहुँचे उस घाटपर; पुन्य-धाम-मति-धीर ।
योगिराज-ऋषि पराशर; तेज-पुञ्ज, तप-वीर ॥

मानो दुर्भाग्य-दुराशा का; आशा बनकर सुहाग आया ।
अथवा उस ललित-रागिनी का; अनुरागी बन विराग आया ॥
गूदड़ में छिपी हुई मणि का; परखैया रत्न-पाल आया ।
या घोर-शाप से सन्तापित; कन्या का मुक्ति-कालआया ॥
देखा महर्षि ने-चन्द्र-कान्त; कमली में दैव छिपाई है ।
केशर-क्यारी की एक कली; हींग के विपिन में आई है ॥
सुर-कन्या पड़ी पिशाचों में; दामिनी दबी अँधियारी से ।
भारत की भावी-रत्न खानि; आई है हाथ भिखारी के ॥

यह-वह दैवी-देवि है; जिससे देव-कुमार ।
सकल-लोक-उद्धार-कर;लेगा मुनि अवतार ॥
कन्याकी भावी तथा; देखा अपना योग ।
योगिराज योगोक्तिसे; मांगा भोग-नियोग ॥

निष्काम लोक-कामना सोच; सांसारिक कामी बनते हैं ।
साधारण लोगों की नाईं; अब अन्तर्यामी बनते हैं ॥

यद्यपि जब घास अग्नि दोनों; एक ही जगह मिल जाते हैं ।
तो समय और मौका पाकर; निश्चय ज्वाला प्रकटाते हैं ॥
लेकिन इस जगह न यह घटना; एक भी युक्ति से घटती है ।
वह देवी केवल कन्या है; एवं वह शक्ति तपस्वी है ॥

केवल लौकिक-काज-वश; होता है प्रतिकाज ।
भावी-भव्य-समाजका; जोड़ा गया समाज ॥



मुनिवर बोले-"प्यारी बाले !; रति-दान माँगने आया हूँ ।
वैराग-भूमि से इसी लिये; इस राग भूमि में आया हूँ ॥"
कन्या बोली-"श्री महाराज !; किस पर यह आँख उठाते हो? ।
कुछ सोच समझ कर बात करो; क्यों अपना लोक नसाते हो ?॥"

मुनिवरने उत्तर दिया;-"सुमुखि, सुलोचनि-वाम ।
विषय-वासना का नहीं; इस योगीको काम ॥

यह कोई विषय और ही है; जिस पर विषयी तपसी होगा।
यह है रहस्य भावी द्वारा; जिस पर कामान्ध ऋषी होगा॥
मैं व्यभिचारी या लोल नहीं; जो तुझको देख लुभाया हो।
मैं वह हूँ कामासक्त नहीं; जो काम-कलाको आया हो॥
केवल मेरे तेरे द्वारा; कर्त्ता-कारण का नाम बने।
भारत का रत्न प्रकट होवे; भारत-जननी का काम बने॥

इसी हेतु तेरे निकट; आया हूँ मैं आज।
तेरे हाथों लिखा है; भारतका कुछ काज॥"
कन्याने उत्तर दिया; सोचो, कुछ मुनि-नाथ!।
कैसे मानेगा ? हृदय; धींवरनीके साथ॥

यह योग-तपस्या सिद्ध-देह; किस म्लेच्छनी को देते हैं।
जिसकी दुर्गन्ध-मात्र ही से; सब नाक बन्द कर लेते हैं॥
मुनिवर बोले "बधिका मत बन; मत्स्योदरि ! देव बालिका है।
अपने मुख से न म्लेच्छिन बन; मंगल-मय-मोद मालिका है॥
देवी है, किसी शाप-कारण; शूद्र से हुआ प्रतिपालन है।
अन-मोल, लाल की रत्न-खानि; भावी-वश, मानो निर्धन है॥
मणि, छिपी हुई है गूदड़ में; चन्द्रिका दबी है मेघों में।
रम्भा रमती है मरघट में; कोकिला पड़ी है कागों में॥

तेज, रूप, छबि, शौर्य्य, बल; पूर्व-पुन्य-फल-जान।
नहीं छिपाये से छिपे; वर्ण, जाति-कुल-मान॥

कन्या बोली-" यह सत्य सही; लेकिन भावी न विचारोगे।
सम्भोग-योग पश्चात् मुने !; जङ्गलके लिये सिधारोगे॥
मैं कुल-कलंकनी, कुलटा बन; किस की गृहिणी कहलाऊँगी।
किस जाति-वंश में महाराज !, जीवन को टेर कराऊँगी ?॥

मेरा प्रति पालक उसी समय; दासी को अलग हटा देगा ।
संसार नाक सिकुड़ायेगा; रहने का ठौर मिटा देगा ॥

जिस हीरेकी आशमें; वचन रही हूँ हार ।
बस उसके उपहारमें; पाऊँगी धिक्कार ॥"
कहा पराशरने-"प्रिये !;कर मत इसका ध्यान ।
इन विषयोंमें सर्वथा; है भावी बलवान ॥

यह भोग कलंक न लायेगा; उलटी सुकीर्ति तू पायेगी ।
सारी घटना होने पर भी, तू कन्या ही कहलायेगी ॥
इससे आगे हे सौभागिन ! तू श्रेष्ठ-वंशमें जायेगी ।
तेरी सन्ततिकी धवल-ध्वजा; चारों युगमें फहरायेगी ॥"

मत्स्योदरिने फिर कहा-"हे मुनि, तेज-निवास ! ।
यह लज्जा-कृति-कामना; यह सूर्य का प्रकाश ॥

यह आम राह, यह सरित-कूल;यदि कोई नर दिखलायेगा ।
तो लाज, शर्म, तप, तेज नाम; सब मिट्टीमें मिल जायेगा ॥
मैं यहीं डूब मर जाऊँगी; वह, खड़ा २ मुसकायेगा ।
सोचिये तनिक हे ज्ञान-धाम !; मुँह भी न दिखाया जायेगा ॥"

कहा पराशर ने-"प्रिये ! ; इसे व्यर्थ अकुलाय !
देख यहीं, क्षण-मात्रमें; काया-पलट दिखाय ॥

दुर्गन्ध निकल कर योजन भर; तेरी सुगन्ध महँकायेगी ।
एवं इसके कारण तू भी; "योजनगन्धा" कहलायेगी ॥
वह कुहरा अभी प्रकट होगा; जिसमें कि सृष्टि फँस जायेगी ।
जिसके कारण जग-जीवाको; उँगली भी नजर न आयेगी ॥"

अस्तु पराशर ने किया; वहाँ नियोग-विहार ।
उसी योग का योग है; व्यास-देव-अवतार ॥

तेजोनिधान, मुख-भासमान; आभास-दानि सकुचाया है ।
मानो तप-पुञ्ज-पराशरका;तप ही शिशु बन प्रकटाया है ॥
पकंजी-पलक,काञ्चनी-झलक; गोलक-अमलक पर छाये हैं ।
मानो फणीन्द्र, शिव-जूटोंमें; फणसे दो इन्दु छिपाये हैं ॥
प्रतिभा विशेष,मुसकान लेश;शुभ-शान्ति अशेष,अलौकिक है ।
माधुरी-मूर्ति, स्फूर्ति-पूर्ण; श्रीमन्-मन-महिमा मौलिक है ॥

पैदा होते ही, सुवन; चला पिता के साथ ।
मत्स्योदरि ने-"विनय से; कहा पकड़ कर हाथ ॥

हे जीवन-धन ! जीवन बिगाड़; जीवनकी आश छोड़ जाओ ।
हे अभागनीके महा-भाग्य !; हर तरह न भाग्य फोड़ जाओ ॥
हे नाथ ! मयंक-लाभ दिखला; दे दिया कलंक अभागिनको ।
चल दिया मयंक साथ प्रभुके; रह गया कलंक अभागिनको ॥"
करुणा-मय-शब्द श्रवण करके; करुणाकर, करुणा, कर बोले ।
दुख-सागरमें डूबती हुई; देवीसे सुख-सागर बोले ॥
भामिन ! फिर उसी मोह-मतिने; तेरे ज्ञानको दबाया है ।
देवी-रहस्यका सब प्रसंग; मैंने पहिले जतलाया है ॥
विदुषे ! इसको सुत मत समझो; अपना तो कारण आया है ।
सारी ईश्वरकी माया है; दैवीय-अंश प्रकटाया है ॥
यह वह अवतार हुआ, सुमुखे !; जो सब अवतार बतायेगा ।
भारतका सारा गुण-गौरव; गाथा द्वारा समझायेगा ॥
तप-पुञ्ज, तेज-निधि, त्रिकालज्ञ; साहित्यक-कर्णधार होगा ।
भारतकी भावी-लीलाका; लीलाधर सूत्रधार होगा ॥
इसलिये इसे तू जाने दे; तुझको न कलंक कभी होगा ।
कुछ दिनमें तेरा नाम, प्रिये ! ; भारतमें सत्यवती होगा ॥

कोई सम्राट तुझे अपना, सहकारिन शीघ्र बनायेगा।
इस नाटकके अन्तरपटमें; तेरा भविष्य दिखलायेगा॥
इस प्रकार आशीश दे; चले गये मुनि–नाथ।
कहना है, इस जगह कुछ; अपने मन की गाथ॥
कामी–जन ऐसी गाथासे; यह अपना भाव जताते हैं।
कोई प्राचीन कथा कहकर; अपना अपकर्म छिपाते हैं॥
" जब पराशरादि महामुनि भी; इस तरह आचरण करते हैं।
तो बतलाओ कामी लोलुप; हमको क्यों सज्जन कहते हैं॥
हिन्दू–समाज हम लोगोंको; निष्कारण ही बहकाता है।
परजाति-रमण इस गाथासे; शास्त्रोक्त साफ दिखलाता है॥"
ऐसे अन्धे नरों को; हैं केवल दो बोल।
इन भेदों को, सोचकर; देखो आँखें खोल॥
यह वीर्य्य–रत्न वह अमृत है; जो महा–शक्ति दिखलाता है।
जिसके एक ही बिन्दु द्वारा; बालक पैदा हो जाता है॥
वीर्य्य ही सजीव जीव–धर है; जो इसे अकारथ खोता है।
वह जीव, जीव–वध करता है; निश्चय हत्यारा होता है॥
इसलिये विदुष–जन वीर्य–रत्न; सर्वदा स्वरक्षित रखते हैं।
अधिकारिण ही को देते हैं; विषयेच्छा परिमित रखते हैं॥
कह सकते हो, तुम यहाँ; यही हमारा नेम।
अधिकारिण ही के लिये; है अपना रति–प्रेम॥
इस दावे पर हर्षसे; है मेरी भी राय।
तुम भी मुनिवरकी तरह; हो हिन्दके सहाय॥
तुम भी अपने तप–बल द्वारा; दिनमें अन्धेरा दिखला दो।
उस दुर्गन्धा की गन्ध हटा; "योजन–गन्धा" सी बनवा दो॥

भावी का ज्ञान प्रकट कर दो; व्यास सी शक्तियाँ प्रकटा दो ।
कन्या को रमणीकर डालो; फिर कन्या करके दिखला दो ॥
पैदा होते ही बालक को; चलने फिरने की शक्ती दो ।
व्यास के समान सुपूत करो; और मत्स्योदरि सी पदवी दो ॥
हर पहलू से उनके समान; होने का प्रथम प्रयत्न करो ।
पीछे भैयाजी ! इस बाबत; अपनी आत्मासे प्रश्न करो ॥
अपने स्वार्थ और मोह के हित; यह दावा खाली हीला है ।
किसमें समर्थ है ? जो समझे;क्या उन लोगोंकी लीला है ?॥
वह क्या थे ? क्या महिमायें थीं ?;दो ध्यान,न व्यर्थ मरो बाबा ! ।
हम सभी इशारा बता चुके; जो मर्ज़ी हो, सो करो बाबा ! ॥

गायन

जिन शैलियोंको, शास्त्र का; आधार न होगा ।
उनका कभी समाजमें; सत्कार न होगा ॥
पायेगा सत्य ही जय, मिथ्या–विवादपर–
शास्त्रांश स्वप्न में भी; निस्सार न होगा ।
जिसमें कि स्वार्थ की कुछ गन्ध रहेगी–
ऐसा कदापि वैदिक–व्यवहार न होगा ॥
"शैलेन्द्र" व्यर्थ उन्नति-आशा है अये "विनीत"
जबतक कि यहाँ, पूर्ण सदाचार न होगा ।

कुछ दिनमें पहुँचे वहाँ; "शान्तनु" सहज-स्वभाव ।
समा गया शुच-भावमें; भवना का अनुभाव ॥
चके भके, ठिठके, ठगे; बिलगे, लगे बिकान ।
आन-कान बिसरा गई; मदना की मुसकान ॥

"सर्वेश ! कहाँ इस निर्जनमें; शोभित सौन्दर्य-सुराती है ? ।
परमेश ! कहाँ प्रतिबिम्ब-रूप; प्रकटी प्रेमार्द्र-प्रभाती है ? ॥
करुणेश ! कहाँ यह कञ्ज-कली; विकसी करीलकी डालीमें ? ।
महिमेश ! मदमयी यह मृणालि; क्यों है ? थूहर हरियालीमें ॥"
"अये विधु-वदनी, शोभा-सदनी; किस महाभागकी भविताहै ? ।
किस विशद-वंशकी भूषण है ?; किस देव-मनुजकी दुहिता है ? ॥
यह छबि-रत्नोंकी, माला ले; जंगलमें किसे दिखायेगी ? ।
यह राज-महलकी महा-देवि; वनमें क्या शोभा पायेगी ? ॥
जो मणि कंकणके क़ाबिल है; वह पड़ी हुई पाषाणोंमें ।
जो राज-सभा की शोभा है; वह घूम रही वीरानोंमें ॥"

मत्स्योदरि कहने लगी;-"सुनिये नीति-निधान ।
इस दैवीय-विधान में; है भाग्य ही प्रधान ॥

प्रतिभा हूँ-मगर खंडहर की; करुणा-मय-घोर-प्रभाती हूँ ।
हूँ कली कटीली-कुञ्जोंकी; दुखकी सौन्दर्य-सुराती हूँ ॥
शोभा हूँ, घृणा-योग्य-कुलकी; सौभाग्य-भरी दुर्भागिन हूँ ।
सम्पति हूँ किसी नीच घर की; अनुराग भरी वैरागिन हूँ ॥
मणि मत समझो, मणि-धारिन हूँ; "योजनगन्धा" कहलाती हूँ ।
जोवन-उपवन सरसाती हूँ; जीवन-वनमें बिलपाती हूँ ॥"

शान्तनुने उत्तर दिया;-"विदुषे ! कर न विषाद ।
प्रेमी की बन प्रणयनी; दे दे प्रेम-प्रसाद ॥

हो कली कटीली डालोंमें; तो अली वहां भी जाते हैं ।
कीचड़ में पड़ी हुई मणि को; जौहरी उठा कर लाते हैं ॥
विद्या हो किसी नीचपर भी; पर, दिव्य-मान वह पाती है ।
देवी जा रहे मलच्छोंपर; लेकिन अपनाई जाती है ॥"

ऋषिवर के वरदान का; आया तब तक ध्यान।
समझ गई–हो रहा है; यह दैवीय–विधान॥
यही सोच कहने लगी–"सुनो धर्म–अवतार।
मेरा–मेरे पिता को; है सारा अधिकार॥

हैं इसी किनारे के केवट; हर तरह वही अधिकारी हैं।
आज्ञा–दाता हैं वही हमें; हम केवल आज्ञा–कारी हैं॥
उन वृद्ध–पिता जीके सिवाय; दूसरा मुझे आधार नहीं।
स्वीकार उन्हें शादी हो, तो; मुझको कोई इनकार नहीं॥
केवट को नृप ने बुलवा कर; अपनी इच्छा को प्रकटाया।
धीवँर उस दैवी–माया पर; आंखों में आँसू भर लाया॥
सोचा–बेशक, जो उत्तम है; वह उत्तम ही पद पाता है।
पालन–पोषण हो किसी जगह; मानमें न अन्तर आता है॥
माली से पली हुई कलियाँ; देवों के शीश सुहाती हैं।
नागों में जड़ी हुई मणियाँ; मुकुटों में शोभा पाती हैं॥
राजन्! मुझको इनकार नहीं; सानन्द इसे स्वीकार करो।
पर प्रेम–प्रणय से पहिले कुछ; भावी पर सोच विचार करो॥
यह नीच–वंश में पली हुई; उस राज–वंश में जायेगी।
यौवन–विकास है जितने दिन; मनमानी मौज उड़ायेगी॥
अथवा जब तक हैं महाराज; हर तरह प्रतिज्ञा पालेंगे।
पर भीष्म–कुँवर मौका पाकर; लातें से मार निकालेंगे॥
दो दिन को राज–वधू बनकर; फिर टुकड़ों को तरसायेगी।
केवट–कन्या है आज, मगर; कल किसकी? कौन? कहायेगी॥
हे न्याय-धाम!सोचिये तनिक;वास्तव में उचित खयाल है यह।
गुड़ियों का कोई खेल नहीं; जीवन–मौत का सवाल है यह॥

आजाये जब ऐसी विपत्ति; तो यह असहाय कहाँ की रहे? ।
न हमीं में रहे, न तुम्हीं में रहे;न यहाँ की रहे,न वहाँ की रहे ॥"

" शान्तनु " ने उत्तर दिया;–" है साधारण बात ।
क्षत्रिय का निश्चल–वचन; है विशेष–विख्यात ॥

मैं शर्त्त तुझे लिख कर दूँगा; आजीवन इसे निभाने का ।
दे जाऊँगा अधिकार खास; अन्तिम जिन्दगी बिताने का ॥
मेरे पीछे भी उसी तरह; जीवन सानन्द बितायेगी ।
मेरी सन्तति माता कहकर; इसकी सब टहल बजायेगी ॥ "

केवट बोला–" आपको; है इससे स्नेह ।
किन्तु, हमें सन्तानसे; होता है सन्देह ॥

इस लिये निवेदन है मेरा; पटरानी इसे कीजियेगा ।
एवं इसकी सन्तानों को; शासन–अधिकार दीजियेगा ॥
सुलझा कर प्रथम समस्या यह;"योजनगन्धा"को अपनायें ।
श्री महाराज स्वीकार करें; भट–भीष्म प्रतिज्ञा कर जायें ॥

केवट की यह बात सुन; चुप हो गये भुवाल ।
इधर–प्रेम–संकट पड़ा; उधर धर्मका ख्याल ॥

सोचने लगे मनही मन में; उफ ! कैसा नीच अनारी हूँ ? ।
वास्तव में, मैं अज्ञानी हूँ; पामर, कामी, व्यभिचारी हूँ ॥
क्या इस नाकुछ रूप के लिये; बेटे का हक चौपट कर दूँ ? ।
क्या इस आबादी के पीछे; पुत्र का भाग्य मरघट करदूँ ? ॥
धिक्कार, जरा से भोगों पर; लाल के भोग बलिदान करूँ ।
अपने आनन्द-विलासों पर; सुतको शोक का विधान करूँ ॥
मैं अपनी इच्छा पूर्ण करूँ; सुत की इच्छायें मर्दन कर ।
लानत है अपनी शान्ति करूँ; बेटे की नीची गर्दन कर ॥

वह राज्य-विभवका अभिलाषी; कल को दर दर भटकायेगा।
वह राज तिलकका अधिकारी; कल से सेवक कहलायेगा॥

ना कुछ काम-विकार पर; छीनूँ पर-अधिकार।
शान्तनु ! ऐसे काम पर; लाख बार धिक्कार॥

गायन

जो बेटी-धन खाय; मित्र से कपट विचारे।
गौ की गर्दन काट; धर्म-व्याख्यान प्रचारे॥
करे पितृ-गण-घात; बहिन से भोग सँभारे।
हरे प्रजा-धन-धाम; माय से गारि उचारे॥
छीन पुत्र-अधिकार; सुशील कुमार बिगारे।
काम-तृप्ति के हेतु; धर्म की वाचा हारे॥
जिसे जाति के ताप से; हुआ नहीं सन्ताप है।
ऐसे अधम-पिशाचका; मुहँ देखे ही पाप है॥

इस प्रकार शशपंज में; बीत गया कुछ काल।
बिना उसे उत्तर दिये; लौट पड़े भूपाल॥
कहा न कुछ भी किसी से; बैठ रहे मनमार।
किन्तु कभी छिपता नहीं; मन का विषय-विकार॥

वह मधुर-मूर्ति, तिरछी चितवन; क्षण क्षणपर हृदय जलाने लगी।
उस कुञ्ज-कोकिला की कूकू; कानों में पुनः समाने लगी॥
उस मन मोहनी-मूर्ति ने वह; मन मोहन जादू डाल दिया।
सब कामों से उच्चाटन कर; सारा नय-ज्ञान निकाल दिया॥

उस कनक-लताकी लाली ने; लालिमा खींचली लालन में ।
पीताम्बर वाली की प्रतिभा; प्रकटी प्रत्यक्ष पीले पन में ॥
मुख उतर चला, रद सूख चले; देह में शिथिलता आने लगी ।
श्वाँस के राग में रह रह कर; वह आतम-तन्त्रिका गानेलगी ॥

गायन

हे विधि ! किहि विधि बाँधहु धीर ? ।
जिवन, मरन, रहसन, विहँसन, रस, रहस रहे रस-तीर ॥
सरवस तज, अस अनरस-बस कस, निवसत विवस समीर ।
धरमु, करमु, नय, भव-संसय-मय, जम जुग जरी जँजीर ॥
सुवन रतन, भामिनि मनि मनहर, दुमन विमन मन भीर ।
प्रभु कस करहुँ, कवन गुन धारहुँ, सुत-सनेह, निज पीर ॥
जुगत भुगत गति विगत अनत मति, विहरत सत-वन कीर ।
जन "विनीति-शैलेन्द्र" पकरि, पिंजरे पालें यदुवीर ॥

प्रकट होगया अन्त में; भीष्म कुँवर पर हाल ।
पूज्य पिता के पास में; आ पहुँचा तत्काल ॥
पूँछा माथा टेक कर, उनका सारा हाल ।
बोले नीची दृष्टि कर; न्याय-सिन्धु प्रणपाल ॥

"बेटा, मेरा न विचार करो; पापी हूँ, पाप कमाने दो ।
इस मन मूढ को मचलने का; मन चाहा दण्ड उठाने दो ॥
अच्छा हो, इसी वेदना से; ऐसे मलेच्छका तन न रहे ।
यों कलप कलप कर मर जाऊँ; ऐसा विषयी जीवन न रहे ॥"

शान्तनु के यह वचन सुन; बोले भीष्म कुमार ।
मैं देखूं, तुम दुख सहो; मुझे लाख धिक्कार ॥

पूज्यों की विपद बँटाने को; विरचा सुपूत का जीवन है ।
जो अधम अवज्ञा कारी है; वह पुत्र नहीं है, दुश्मन है ॥
मुझको सब भेद खुल चुका है; इसका संकोच न कीजेगा ।
भावी की प्रबल-प्रेरणा पर; अपने को दोष न दीजेगा ॥
केवट की शर्तें स्वीकृत कर; आपे में आप आइयेगा ।
हे पूज्य पिता ! संकोच त्याग; माता जी को अपनाइयेगा" ॥

शान्तनु बोले-"लाड़ले; करो न मेरा ख्याल ।
पिता नहीं हूँ, शत्रु हूँ; किसी जन्म का लाल! ॥

तेरा करतब तो सेवा है; मेरा करतब यह हत्या है ।
मैं भोग करूँ, तू योग धरे, यह कौन शास्त्र में लिक्खा है ? ॥
तेरे हक़ का बलिदान करूँ; अपने हित की बलि-वेदी पर ।
स्नेह-पात्र का नाश करे; धिक है ऐसे स्नेही पर ॥
यदि मैं अपने वश में होता; तो कुछ कर्त्तव्य निभा देता ।
प्राणों की शर्त लगा देता; शर्तों में आग लगा देता ॥
क्या करूँ ? किन्तु, कोई स्ववशी; बेवश सी किये जा रही है ।
क्या कहूँ ? कौन सी गुप्त-शक्ति; यों खींचे लिये जा रही है॥
इस लिये मौन से बढ़कर अब; दूसरा सहारा रहा नहीं ।
"होनी" पर सारा निश्चय रख; शब्द भी किसी से कहा नहीं ॥

बेटे के आगे करूँ; यों अश्लील-विचार ।
अरे विधाता मार दे; किसी वज्र की मार ॥"

भीष्म कुँवर तत्काल ही; पहुँचे केवट-तीर ।
हर्ष तथा आनन्द से; बोले यों मति-धीर ॥

" नाना जी ! कहो; हुक्म क्या है ? सेवक सेवा में आया है ।
किस ख़ास शर्त के बन्धन में; माता को नहीं पठाया है ?॥"
केवट बोला—" हे भीष्म कुँवर !; तुम सत्य व्रती कहलाते हो ।
जो कुछ मुँह से कह देते हो; उसको आजन्म निभाते हो ॥
इस लिये तुम्हारी आशा पर; सब शर्त हमारी निर्भर है ।
हे पितृ-भक्त ! क्या पूँछ रहे; सारा क़िस्सा तो ज़ाहिर है ॥
माता का नाता पाला है; तो ताँता तोड़ न दीजो—सुत ! ।
जो अपना हाथ लगाते हो; तो आगे छोड़ न दीजो सुत ! ॥
इस के बेटे को हक़ दीजो; अपना व्रत तोड़ न दीजो सुत! ।
जो इसकी किस्मत लेते हो;तो किस्मत फोड़ न दीजो सुत!॥"

भीष्म कुवँर कहने लगे—" नाना परम-सुजान ! ।
मानो आज्ञा पिता की; छोड़ो झूठा ध्यान ॥

माताकी क्वचित—कामना पर; अपना सर्वस्व लगा दूँगा ।
बूंद भर पसीना गिरने पर; शोणित की धार बहा दूँगा ॥
राज्य ही नहीं, इन्द्रासन तक; चाहें, तो आज दिला दूँ मैं ।
माताके तनिक इशारे पर; जल—थलमें प्रलय मचा दूँ मैं ॥
यदि पद—त्रानोंके लिये कहें; तो चमड़ी आज खिंचा दूँ मैं ।
चरणोंको जहाँ कष्ट कुछ हो; पलकोंको वहाँ बिछा दूँ मैं ॥
कुछ राज्य-भोग का लोभ नहीं; परलोक—लोककी चाह नहीं ।
यदि पितृ-भक्ति बन आये-तो;मुक्ति की मुझे परवाह नहीं ॥"
प्रण करता हूँ-"भूल कर कभी;राज्य का न लालच लाऊँगा ।
है शपथ जान्हवी माता की; आजीवन वचन निभाऊँगा ॥
पृथ्वी माता ! तुम साक्षी हो; आकाश, सूर्य्य हमराही हैं ।
हैं पवन देव सुनने वाले; दो सच्चे हृदय गवाही हैं ॥

आजीवन अगर व्याहका भी; भगवन ! विचार ही लाऊँ मैं ।
तो दूँ बट्टा गंगा मां को; शान्तनु का सुत न कहाऊँ मैं ॥

गायन

टलें सूर्य्य–शशि–मेरु; गगन–महि–शेषहु डोलें ।
टलें विष्णु–विधि–शम्भु; करम–गत रेषहु डोलें ॥
टलें पवन–व्यवहार; अनल शिथिलाई लाये ।
गिरि पर पंकज खिलें; ब्योम अवनी तल आये ॥
टलें प्रकृतिके काज सब; शीत धूपहो ग्रीष्म की ।
तब भी टल सकती नहीं; अटल प्रतिज्ञा भीष्म की ॥

भीष्म–प्रतिज्ञा पर हुआ; चहुँ–दिश जय २ कार ।
वेद–रीतिसे हो गया; पाणि–ग्रहण–व्यवहार ॥
"योजनगन्धा" का हुआ; "सत्यवती" शुभ–नाम ।
जनमें "चित्राङ्गद" तथा; "चित्रवीर्य्य" गुण-धाम ॥
शान्ति–सहित सुख–भोगकर; भूप गये सुर–धाम ।
" चित्रांगद " के हाथमें; आया शासन–काम ॥

उस ओर न्याय–पूर्वक नरेश; जनता का काज चलाने लगे ।
इस ओर भीष्म विधवा मां की; तन-मनसे टहल बजाने लगे ॥
आबादी वाले महलोंमें; आबादी अब तक हुई न थी ।
था शादी का सामान सभी; पर शादी अबतक हुई न थी ॥

अम्बा, एवं अम्बिका; अम्बालिका–सुनाम ।
काशी–पति की बेटियाँ; थीं सुन्दर गुण–धाम ॥

एक ही फवन; एक ही रहन; एक ही चलन,एक ही ढलन ।
साथ ही हुआ,पालन-पोषण;साथ ही व्याह की पड़ी लगन ॥

सत्यवतीने भीष्मसे; कहा प्रेमके साथ ।
आज सुनी है लाड़ले !; स्वयंवरोंकी गाथ ॥
बल वीर ! वीर तेरे बल पर; शासन की डोर सँभारे हैं ।
पर; बात बड़ी अनहोनी है; वे दोनों कुँवर कुँवारे हैं ॥
कुछ और समय जाने पर फिर; जाओगे किसे मनानेको ।
राजाका बिन व्याहा रहना; बट्टा है राज-घरानेको ॥
इसलिये उचित यदि समझो तो;काशीको तात ! तुम्हीं जाओ ।
बल-बुद्धि-युक्ति जैसे समझो; तीनों कन्यायें ले आओ ॥
आज्ञा पाकर चलदिये; भीष्म-वीर सुखमान ।
जाकर काशी-भूमि पर; फहरा दिया निशान ॥
उस ओर स्वंयवर-तिथि पाकर;"वर"-वीर-मण्डलीआनेलगी ।
वह रंग-रँगीली-रंग-भूमि; अब नया रंग दिखलाने लगी ॥
रंगीन-रंग-मञ्चानों पर; बैठे रंगीले राजा-गण ।
मानो प्रभात-मय-उषः-काल; छिटके झुरमुटमें तारा-गण ॥
वीरासन बाण-शरासन धर; बैठे बल-वीर वरासनपर ।
"जान्हवी-नन्द"जनु पूर्ण-चन्द्र;शोभित सवर्ग सिंहासनपर ॥
पीठ की ओर कुछ धवल-धाम; धवलाधरसे थे खड़े हुए ।
उन छज्जेदार द्वारियोंमें; झिंझरीके पर्दे पड़े हुए ॥
मद भरे मतंगों की नाईं; मद-माते-महिप सुहाते हैं ।
मंगल-मुखियोंके मधुर-गीत; मोहनी-मन्त्र बन आते हैं ॥
जिस समय सुरीले बाजोंसे; सुर भरी रागनी बाज उठी ।
तब सहेलियोंसे हिली मिली;छबि-मय-शृङ्गार-समाजउठी ॥
मधुर-गीत-मुख, मन्द-गति; लिये काञ्चनी-थाल ।
कुछ पछिसे चल रहीं; नवल-लावणी-बाल ॥

चौकन्ना हुए नृपाल सभी; आखोंमें झपकीसी आई।
मानो घन–पटल चीड़ करके; चञ्चला चतुर्दिक चमकाई॥
दृग झुके, तथा झाँकते हुए; कर कम्पितसे कुछ खिंचे हुए।
लजवंते–लोल–लचकतेसे; कुछ उठे हुए, कुछ दबे हुए॥
भूपों की भावी–आशायें; कलियोंकी कलित–कामनायें।
वह राज–वंशकी ललनायें; कर–कंजोंमें जयमालायें॥

देख न पाये नयन भर; मृगनयनी–गण–ओर।
दबी न थी दो ही कदम; रंग–भूमिकी कोर॥
चला नथा–"मागध" अभी; चला–"चलाचल-नाद"।
चली चञ्चलायें गईं; कुछ हलचलके बाद॥

छाई थी चकाचौंध पहिले; अब आयी यह झपकाई सी।
मिट गये मनों मन–मोदकसे; सपने की हुई सगाई सी॥
चलना चाहे–पर चल न सके; चलने वाला चल चालगया।
आया कुछ होश सँभलने का; एकायक बिसर ख़याल गया॥

टूटा मोहन–मन्त्र जब; जागा वीर–समाज।
लाज–भरी–आवाज़में; बोला काशी–राज॥

"वीरो! दौड़ो, लुट गया माल; उठ गई लाज काशी-पतिकी।
यह आन बान मर्य्यादा सब; मिट गई आज काशी-पतिकी॥
राजाओ! यदि जय माल चहो; तो इस पापीसे जय पाओ।
जय हारों के पहिले वीरो!; उस "विजय-हार" पर मिट जाओ॥

प्राण–प्रियायें हो चुकीं; अब प्राणों के मोल।
तोलो जीवन, भटवरो!; तलवारों की तोल॥"

घिर गया वीर, छिड़ गया समर; वह घमाशान संग्रामहुआ।
एक ही हाथ से एक साथ; लाखोंका काम तमाम हुआ॥

वह सुभट-विकट नट वर बनकर; मरकट की तरह नचाता है।
वह वर-बिलाव, खिलवाड़ उन्हें; चूहों की तरह खिलाता है॥
कुछ कटे, मिटे, अधकटे, छटे; कुछ पिटे कुटे से भाग पड़े।
कुछ जुटे रहे; कुछ छुटे हटे; कुछ लोग लुटेसे भाग पड़े॥
उस रंग-भूमि के बाजे की; वह रंगीली-गति भंग हुई।
सारी उमंग काफूर हुई; वह रंग-भूमि बदरंग हुई॥
वह "सेहरा" के उम्मेदवार; वे शहर हुए सहराओंमें।
उन की वे ललित कामनायें; बाकी रह गईं हवाओंमें॥

दल मल कर दल विपुल-बल; निकल गया दल-नाथ।
सत्यवती के सामने; कहा जोड़ कर हाथ॥

"माता! आज्ञानुसार सेवक; तीनों कन्यायें लाया है।
हे दयामयी! इन तीनों को; बतलाओ अब आज्ञा क्या है?।"
माता जी की सम्मति पाकर; वैदिक-विधान-उत्साह हुआ॥
"अम्बा" देवी का यथा-समय; प्रिय चित्रवीर्य्य" से व्याह हुआ।
"चित्राङ्गद" से "अम्बिका" देवि; उनकी इच्छा से व्याही गई॥
अब केवल "अम्बालिका" वहाँ; आशाहीमें अनव्याही रही।

किन्तु; न देखा एक भी; अपने लिये प्रबन्ध।
सोचा-शायद करेंगे; भीष्म-वीर सम्बन्ध॥
कहा एक दिन भीष्मसे;--" प्राणनाथ, प्रण-पाल!।
--दासी का कब आयगा?; वह सुहाग-शुभ-काल॥

दो बहिनों ने गृहिणी बन कर; अधिकार राज्य में पाया है।
हे आर्य्यपुत्र! जान्हवी-नन्द!; दासी को क्या ठहराया है?॥"
भीष्म ने कहा-"जिससे चाहो; शादी आज ही करा दूँ मैं।
करलो पसन्द जो राज-पुत्र; उसके घर तुम्हें पठा दूँ मैं॥"

देवी बोली—"क्या कहते हो !; मेरे तो आर्य्य-कुमारहो तुम।
भरतार हो तुम, करतार हो तुम; दासीको देव-कुमार हो तुम ॥
जो हाथ पकड़ कर लाये हो; तो बीच धार में छोड़ न दो।
अये अभागनी के महा-भाग्य !; यह भाग्य अचानक फोड़ न दो ॥
यदि प्रण कर जीवन-भार लिया; तो आजीवन निर्वाह करो।
यदि मेरी लज्जा रखनी हो; तो मेरे साथ विवाह करो ॥"

कहा भीष्म ने—" होचुका; मेरा प्रण कुछ और।
करूँ न शादी जन्म भर; धरूँ न माथे मौर ॥"

देवी थर थर काँपने लगी; आँखों से धारा बहने लगी।
बिलखा बिलखा कर बेचारी; फिर भीष्म वीरसे कहने लगी ॥
" लज्जा-पति ! पहिले लाज तोड़; हर लाये मुझे स्वयंवरसे।
ओ घर वालीके घर-वर ! क्यों ?; खोया मुझको दोनों घरसे ॥
जिस समय मुझे हर लाये थे; क्या तब पहिला प्रण याद न था ?।
जीवन बिगाड़ने से पहिले; क्या मेरा जीवन याद न था ?॥
मेरी भी यही प्रतिज्ञा है—" इस घर से अन्त न जाऊँगी।
या तो पति तुम्हें बनाऊँगी; या अपने प्राण गवाऊँगी ॥"

कहा भीष्म ने—" दे चुका; सीधा तुझे जवाब।
एक राह के अलावा; बाकी नहीं हिसाब ॥

मेरे सिवाय जिसके चाहो; सानन्द अभी जा सकती हो।
यदि ब्रह्मचर्य्य से रहना हो; तो पड़े पड़े खा सकती हो ॥
स्वर्गिक सुख भी यदि चाहो; तो सब देने को तैयार हूँ मैं।
पर देवी ! केवल शादी से; प्रण के कारण लाचार हूँ मैं ॥"

देवी ने आवेग में, कहा—"अरे छल बान !।
एक सती को नाश कर; अब चाहे कल्याण ॥

अन्याय, और यह मनमानी; द्वारे द्वारे चिल्लाऊँगी ।
जैसी दुर्गति मेरी होगी; वैसा फल तुझे चखाऊँगी ॥"
भीष्मने कहा-"अधिकार तुझे; पर शादीका अधिकार नहीं ।
शादी के सिवा, मौत से भी; देवी मुझको इनकार नहीं ॥"

हार गई अम्बालिका; देखा पर न उपाय ।
इन्द्र प्रस्थ से चल पड़ी; वह अबला असहाय ॥

घर जाने में घर जाता था; बाहर कोई आधार न था ।
जीवन की नाव धार में थी; पर कोई खेवन हार न था ॥
वीरों में कोई वीर न था; जिस में समता की ताकत हो ।
भूपों में ऐसा भूप न था; जिसकी उस जगह हुकूमत हो ॥
देवेन्द्र जिसे थर्राते हैं; यमराज जहाँ सकुचाते हैं ।
साधारण शैली के मनुष्य; क्या पेश वहाँ पर पाते हैं ?॥

नज़र न आया कहीं से; आशा का आभास ।
केवल ब्राह्मण-शक्ति पर; था बाक़ी विश्वास ॥
"परशुराम" की कुटी पर; कहा ज़ोर के साथ ।
"तपसी हो तो थामलो; इस अनाथ का हाथ ॥

हो कोई अगर जटा-धारी; रोके गति मुकुट धारियों की ।
हो कोई बाल-ब्रह्मचारी; जो सुने पुकार नारियों की ॥
बल-बीरों पर जय पा जाये; है क्या कोई तप वीरों में ।
गर्द में मिला दे राज-महल; रहता हो " दीन-कुटीरों में ॥

गायन

बहती जाती हूँ-कोई; धर्म का पतवार बने ।
नाव मँझधार में है; कोई करण धार बने ॥

योग-आधार से-त्रैलोक का आधार बने-
कौन है ? वह जो-निराधार का आधार बने।
ताजदारों के मुकाबिल में-साजदार बने-
है बली कौन ? जो; अबला का तरफ़ दार बने।"

करुणा भरी पुकार पर; उठे "परशु-धर" धीर।
मानो निकला "वीर-रस"; तज कर "शान्त-कुटीर" ॥

"बेटी ! बेटी ! क्यों रोती है ?; बतला क्या विपदा आई है?।
किस अभिमानी, अन्यायी की; फ़रियाद यहां पर लाई है ?॥
अबला बोली-हे बल-निधान !; मारी हूँ, राज झमेले की।
कर गई किसी का काला मुँह; करतूति तुम्हारे चेलेकी ॥
वह भीष्म कुँवर शहज़ोरी से; हर लाये हमें स्वयंवर से।
दोनों बहिनों को व्याह दिया;पर मुझे निकाल दिया घर से॥
यौवन-विकास से पहिले ही; मानो आगया बुढ़ापा है।
अथवा सुहाग-तिथि आ न सकी;पहिले आगया रँडापा है॥
घर की न रही, वर की न रही; लज्जा-शोक की सताई हूँ।
जब कहीं आसरा रहा नहीं; तब द्वार आपके आई हूँ॥"

परशुरामने धैर्य्य दे; बैठायी वह बाल।
एवं भीष्म कुमार को; बुलवाया तत्काल ॥

बोले-"अये होनहार भीष्म !; बलिहारी ! यह बलधारीपन।
अबला के लिये सबलता यह; नारी के साथ अनारी पन ॥
जब इसे "स्वयंवर" से लाये;तब तुम "वर"हो, यह नारी है।
शास्त्रोक्ति तथा लौकिक-मत से;अपने हक़ की अधिकारी है॥

इस लिये हमारी सम्मति है; शादी स्वीकार करो बेटा ! ।
परलोक-विचार करो बेटा !; लौकिक-व्यवहार करो बेटा ! ॥
यह बाज़ारी सम्बन्ध नहीं;जो आज किया कल छोड़ दिया ।
बच्चों का नहीं खिलौना है; जो खेल खेल में तोड़ दिया ॥"

प्रणधारी-भट भीष्म ने; कहा झुका कर माथ ।
"गुरुवर ! आज्ञा दीजिये; कुछ विचार के साथ ॥
यद्यपि है गुरु-राज को; सब प्रकार अधिकार ।
फिर भी होना चाहिये; यथा-समय-व्यवहार ॥

ऐसा समुचित-व्यवहार रहे; जो गुरुता-भाव निकाल न दे ।
ऐसी विचार कर आज्ञा दे;जो "शिष्य-मण्डली" टाल न दे॥
यदि यह प्रण आज निभाता हूँ; तो पहिले प्रणसे जाता हूँ ।
यानी माता की समता में; नारी का मान बढ़ाता हूँ ॥
इस कारण ऐसी आज्ञा दो; जो आज्ञाकारी निभा सके ।
भगवन्! उतना ही भार धरो; जितना आभारी उठा सके" ॥

"जामदग्नि" कहने लगे-"अरे नीच, नादान ! ।
आया देने के लिये; गुरुओं को भी ज्ञान ॥

माता के प्रण का था खयाल;तो इसका प्रण क्यों नाश किया ।
आशामय-शुद्ध-यौवना का;यों नव-जीवन क्यों नाश किया ॥
जो हाथ पकड़ कर लाया है; तो हाथ गहे की आन निभा ।
उस योधापन का मान दिखा; क्षत्रीपन का अभिमान निभा॥
यह राज-वंश से निकली है; तो किस वंश के निभायेंगे ? ।
तू ही बतला क्या लोग इसे; कुलटा, कुटिला न बतायेंगे ॥
है लाख शुद्ध-पर कौन ? व्यक्ति; विश्वास सत्य पर लायेगा ।
वह कौन लोक से बाहर है ?; जो लोक-रीति ठुकरायेगा ॥"

भीष्म वीर ने फिर कहा--" है एक ही उपाय ।
मुझे छोड़ कर किसीसे; शादी कर दी जाय ॥

अपने सिवाय, जिससे चाहे; उससे शादी करवादूँ मैं ।
जी चाहे, जैसे सुख-पदार्थ; जीवन के लिये दिलादूँ मैं ॥
जिस तरह कहो-जो कहो नाथ !; सब करने को तैयार हूँ मैं ।
लेकिन गुरु-राज ! भोग-पथपर; अब जानेसे लाचार हूँ मैं ॥"

गुरु बोले-"बस मौन हो; यों न चलेगा काम ।
या शादी स्वीकार कर; या कर ले संग्राम ॥

तुझको न हाथका ध्यान रहा; पर साथ गहेकी आन मुझे ।
क्षत्रीपनका अभिमान तुझे; ब्राह्मण पनका अभिमान मुझे ॥
तू अपने प्रणको पालेगा; मैं अपने प्रणको पालूँगा ।
या तो विवाह करवा दूँगा; अथवा तबाह कर डालूँगा ॥"

भीष्म वीर ने हँस कहा--"यह आज्ञा स्वीकार ।
इसी तरह यदि जाय टल, इसके ऋणका भार ॥

सौभाग्य एक ही युक्ती से; जो सफल गुरू की दीक्षा हो ।
उनके ही द्वारा शिक्षा हो; उनके ही हाथ परीक्षा हो ॥
सौभाग्य ! आप ही के द्वारा; पढ़ सकूँ पाठ प्रण-पालनका ।
सौभाग्य ! एक प्रण के पीछे; रण हो-जन और जनार्दनका ॥

गायन

कर्त्तव्य है-वचन पर; सर्वस्व लगा देना ।
बल-वेदियों पै अपना, बलिदान चढ़ा देना ॥

यह स्वर्ण--कान्ति-मय तन; इतना अमूल्य-जीवन;
हँस हँस के एक प्रण पर; मिट्टी में मिला देना ।

धन-जनके खिलौनोंसे; खिलवाड़ बनके खेले--
प्रणके लिये बनाना; बन बनके मिटा देना ॥
परलोक-लोकका सुख-यश-कीर्त्ति-मुक्ति--साधन-
संसार को भी प्रण पर; निस्सार बना देना ।
देवेन्द्र रूठ जाये; यमराज सामने हो,
प्राणों को हटा देना; पर "आन" बचा देना ॥
"शैलेन्द्र और गोविन्द" विनयी हैं गरुड़-गामी ।
सर्वस्व छुड़ा लेना; पर बात निभा देना ॥"

बाण छोड़ कर वीरने; गुरु को किया प्रणाम ।
दो प्रण--वीरोंका छिड़ा; महा--घोर--संग्राम ॥

चढ़ गईं प्रत्यञ्चायें दोनों; दोनों, के शर कराल दौड़े ।
दोनों के भक्षण करने को; दोनों के विषम--व्याल दौड़े ॥
वह विषम--व्याल आते आते; व्यालके शाल शर आये हैं ।
दोनों के बाण बीच हीमें; दोनों ने काट गिराये हैं ॥
काट पर काट ने काट किया; हरघाट घाट पर खेले हैं ।
हैं "परशुराम" भी धनुर्वीर; पर भीष्म उन्हीं के चेले हैं ॥

मल्लयुद्ध होने लगा; बाण--युद्धके बाद ।
मानो मत्त--मतंग दो; भिड़े भरे उन्माद ॥

गायन

दोऊ हैं लड़ाँके बाँके; उँमग उड़ाँके लेत-
दोऊ दड़ाँके मिल; शेष ससकत हैं ।
घूँसन घुमाके देत; हींसत हुमाके लेत-
परत धमाके पीठ; कोल कसकत है ॥

झूमत झपेट झार; मारत चपेट चोट-
सटक समेट फेंट; मोच मसकत हैं।
खसके सुरेश-धूर भसके दिगेश दूर,
टसके सुरासनसों, धरा धसकत हैं॥

किसे बतादें ? हम जयी; कह दें किसकी हार ? ।
धार्मिक--युद्ध--प्रहार में; दोनों के बलिहार॥
लड़ते लड़ते "परशुधर" ; रुके आपही आप।
बोले--"व्यर्थ दिखा रहा; इस पर देह-प्रताप॥

यदि आज धनुर्विद्या द्वारा; यह वीर हराया जायेगा।
तो कल को निश्चय ही मेरी; विद्या को बट्टा आयेगा॥
अपने हाथोंका बढ़ा हुआ; अपने ही हाथ गिराऊँ क्या ? ।
गुरु हूँ-गुरुताके नातेसे; शिष्यका शिकार बनाऊँ क्या ? ॥
इसलिये मूर्ख ! तन-बल-द्वारा; अब तुझको नहीं हराऊँगा।
इस देह--शक्तिके बदले में; कुछ आत्म-शक्ति दिखलाऊँगा॥
तूने दो का प्रण टाल दिया; रणमें--तेरा प्रण जायेगा।
शस्त्रास्त्र बिना ही किसी समय; दुश्मनसे धोखा खायेगा॥"
प्रण करता हूँ-यह धनुर्वेद; क्षत्रिय को नहीं सिखाऊँगा।
आगे इन काले नागों को; भूल कर न दूध पिलाऊँगा॥

हँसते हँसते भीष्म ने; किया शाप स्वीकार।
उसी समय "अम्बालिका" ; बोली आह ! पुकार॥

"ओ छली भीष्म ! इस छलका फल; छलके ही द्वारा पायेगा।
ज्योंही मैं आगे आऊँगी; त्यों ही तू मारा जायेगा॥"
यों कह कर चिता बनाने लगी; करुणित-कामिन कलपाने लगी।
जीवित देहको जलाने लगी; बवश--बाला बिलपाने लगी॥

"हे ताप-हारणी ! तपोभूमि !; सन्तप्तों का सन्ताप हरो ।
वे पूर्व-जन्म-कृत-पतिताके; हे पतित-पावनी ! पापहरो ॥
जिस दुखियाने जीवन-धनकी; जीवनमें आशा खोदी है ।
उस बेचारीको जीवनमें; बस अग्निदेव की गोदी है ॥
श्रीधर्मराज ! खोलो किवाड़; दुर्भागिन टेर लगाती है ।
जिस तरह यहाँ पर आई थी; वैसीही लौटी आती है ॥"

नर-जीवन-योवन-समय; पर न मिले भरतार ।
आजीवन उस दुखीको; जीवन, जीवन-भार ॥

गायन

जो जिसका भाग है; हम उसको दिये जाते हैं ।
हिसाब आखरी बेबाक किये जाते हैं ।
न साथ लायेथे कुछ; और न कमाया है- यहाँ-
कुछ आशायें थी;- सो साथ लिये जाते हैं ॥
जिन्हे " कि एक भी सामान सुःखका न रहे-
न जाने वे यहाँ, किस बल पै जिये जाते हैं ।
तूतो "शैलेन्द्र" इस मायाको समझ मृगतृष्णा-
भक्त-जन, कृष्ण-सुधा-पान किये जाते हैं ॥

क्षण भरमें उस देविका; टूटा जीवन फन्द ।
भीष्म शापको शीशधर, घर आये सानन्द ॥
हुई "शिषण्डी"-रूपमें; वही द्रुपदके धाम ।
लो "विनीति-शैलेन्द्र" अब; राधापतिका नाम ॥

इति भीष्म-प्रतिज्ञा ।



श्रीः ।

महाभारत-आदिपर्व ।

कौरव-पाण्डव उत्पत्ति ।

सरल छन्दोबद्ध.

किस किसने न उपकार किया; हिन्दके लिये ।
ईश्वरने भी अवतार लिया; हिन्दके लिये ॥

"शैलेन्द्र"-"विनीति" कृत-

प्रार्थना ।

गोपि-धन सा धन न हो यदि; भक्त निर्धन के लिये ।
कौन सा आधार है ? फिर-उस अकिञ्चन के लिये ॥
कष्ट-साध्य-करोड़-साधन, आत्म-चिन्तन के लिये ।
प्रेम ही पर्याप्त है, श्री कृष्ण-कीर्त्तन के लिये ॥
दृश्य हो, कण कण जिसे; उस माधुरी-मुसकान का-
क्या पड़ी है ? व्यर्थ जो वह; जाय निर्जन के लिये ।
मन-मुकुर ही में मनोहर-मूर्त्ति-मन-रञ्जन रमें-
कौन ? योगाञ्जन लगाये; फिर निरञ्जन के लिये ॥
नैन नीलोत्पल-नयन हित; दृष्टि दर्शन-मात्र को-
हो प्रगति-प्रेमाश्रु ही; पद-पद्म-सिञ्चन के लिये ।
ज्ञान की गुदड़ी में मत; "शैलेन्द्र-गोविन्द" भूलियो-
भावसे कीर्त्तन लिखो; उन "भक्त-भावन" के लिये ॥

श्रीः।

कथा प्रारम्भ।

"चित्राङ्गद" करते रहे, कुछ दिन राज—विलास।
था मानो हस्तिनापुर; नीति—न्याय—आवास॥

उस ओर भीष्म फिर धावा कर; उस "विदर-राज्य" में जाते हैं।
घन-घोर-समर कर बल-निधान; उसकी कन्या ले आते हैं॥
जब आये लौट हस्तिनापुर; तब उसके लिये विचार किया।
पर "चित्रवीर्य्य" का चेरी—पद; उसने खुद अङ्गीकार किया॥
एक दिन शूर—सेना लेकर; राजा खेलने अहेर चला।
या फिरा हुआ सौभाग्य-समय; फिर से अपना मुँह फेर चला॥
उस जगह एक गन्धर्व—राज; सेना—समेत आगे आया।
"पशु-बल" के बदले "नर-बल" का; संयोग भाग्यने दिखलाया॥
चित्राङ्गद तथा सैनिकों ने; जी जान तोड़ घमशान किया।
लेकिन गन्धर्वी—वीरों ने; प्रतिपक्षी का मैदान किया॥

हाथी—घोड़े—सुभट सब; हुए वहीं संहार।
तथा शिकारी भूप भी; लड़कर बना शिकार॥
ख़बर न पाई भीष्म ने; हुआ कहाँ ? क्या हाल।
ढूंढ़ फिरे चारों तरफ़; मिला न किन्तु नृपाल॥
"चित्राङ्गद" की मृत्यु का; आया तब विश्वास।
"हा हा"—कर रोने लगा; राज—वंश, रनिवास॥
"चित्र वीर्य्य" को भीष्मने; दिया राज्य-अधिकार।
तथा किया अपने लिये; सेवा—पद, स्वीकार॥

नौकर--चाकर दो दिन रोकर; फिर वहीं बधाई गाने लगे ।
सरदारों ने कुछ ग़म माना; फिर अपना काम चलाने लगे ॥
झण्डा झुक गया एक दिनको; फिर वैसा ही फ़हराने लगा ।
बाज़ार बन्द कुछ समय रहा; फिर से गुलज़ार दिखाने लगा ॥
रुक गया घड़ी भर को शासन; फिर उसी रूपसे चलता है ।
सत्य है–किसी के मरने से; लौकिक-व्यवहार न टलता है ॥
पत्नी रोई दो चार मास; फिर हृदय थाम कर मौन हुई ।
वाचको ! बताओ वास्तवमें; इस जगह अनाथा कौन हुई ? ॥
शासन वैसा ही चलता है; बन ठन वैसी ही चलती है ।
है अब भी वह जलने वाली; जो महा–ज्वालमें जलती है ॥
वह कौन ?-कौन ?-वह माता है; जिसने वह बिरवा पाला है ।
जिसने उस जीवन के धन पर; अपना जीवन दे डाला है ॥
वह सच्ची एक वियोगिन है; जिसका लाल से वियोग हुआ ।
वह उस श्रेणी की रोगिन है; जिसका रोगी न निरोग हुआ ॥
जनता का कारबार जारी; शासन का कारबार जारी ।
परिवार–मात्र में एक मात्र; माता की अश्रु–धार जारी ॥

आठ पहर दिन रात में; हुआ जहाँ एकान्त ।
वह दो आँसू गिरा कर; पाजाती है शान्त ॥

खाने पीने का ध्यान गया; वह हँसी खुशी सब विसराई ।
जो ज़बरन बहू पकड़ लाई; तो रो धो कर कुछ खा आई ॥
माता के सच्चे पूत भीष्म; माता की करुणा सह न सके ।
बहुतेरा मनको समझाया; पर स्वयं शान्तिसे रह न सके ॥
कामना–कली कुछ खिलती है; फिर क्षण भरमें मुरझाती है ।
माता के उस रूखे पन से; सूखा सी पड़ती जाती है ॥

कितने दिन तक भीष्म को; घेरे रहा विचार ।
किन्तु शोक के नाश का; कर न सके निर्धार ॥

अन्तमें एक निश्चय ठहरा; माता का मन बहलाने का ।
प्रण-धारी ने संकल्प किया; दुखिया को ग्रन्थ सुनाने का ॥
दैनिक-कर्मों से फ़ुरसत पा; सन्ध्या को महलों जाते हैं ।
दो पहर-रात तक नियम-सहित; माता को कथा सुनाते हैं ॥

"सत्यवती" के हृदयमें; हुआ शान्ति-सञ्चार ।
पर भाई के भावमें; भ्रम का बढ़ा विकार ॥

आधी आधी रात तक वहाँ; किस लिये भीष्म ठहराते हैं? ।
माना-सेवा को जाते हैं; पर इतना समय बिताते हैं ॥
भगवान् ! न ज्वाला प्रकटा दे; यह आग फूस का पाला है ।
मुझको तो साबित होता है; कुछ वहाँ दाल में काला है ॥
नव-यौवन, विरह, शक्ति, शोभा; शृङ्गार, स्वतन्त्र-भाव होना ।
एकान्त, पुरुष का सम्भाषण; दोनों का एक चाव होना ॥
क्या ठीक ? इस दशा में दोनों; चक्कर में कहीं आगये हों ।
प्रणवीर भीष्म भी किसी तरह; धोका उस जगह खा गये हों ॥

गायन

विषय की प्रेरणा में-काम; ही बेकाम होते हैं ।
मदन की कामना के भी; कठिन--परिणाम होते हैं ॥
विवेकी भूल जाते हैं, जितेन्द्रिय चूक जाते हैं ।
महाज्ञानी-मुनीश्वर भी; कहीं बदनाम होते हैं ॥
बडी मुश्किलसे बचता है; जिसे यह बाण लगता है ।
वह मीठे मीठे झोंके ही; ज़हर का जाम होते हैं ॥

बचा चाहें अगर "गोविन्द"; और "शैलेन्द्र" विषयोंसे
तो केवल भक्तिके द्वारा; अटल विश्राम होते हैं।

"चित्रवीर्य्य" चलता हुआ; इस विचारके बाद।
छिपे छिपे सुनने लगा; दोनोंका संवाद॥
जमी हुई थी वहाँ पर; रामायणकी गाथ।
लक्ष्मणको उपदेश कुछ; देते थे रघुनाथ॥

" लक्ष्मण! यह मुक्ति-तत्त्व वह है; जो सब तत्त्वोंके ऊपर है।
जो जाति-पाँतिसे बाहर है; कैवल्य भक्तिपर निर्भर है॥
लौकिक-विचारसे वर्ण-भेद; या ऊँच नीचमें अन्तर है।
परलोक मार्गमें कोई हो; कर्मोंमें एक बराबर है॥

ऊँचा है संसारमें; केवल कर्म-विवेक।
कर्म-मार्ग हो एक तो; ऊँच नीच है एक॥
अन्तर है बस भावका; भाव-मात्र है ज्ञान।
विना भाव संसारमें; विष-रस एक समान॥"
"शवरी"को निर्वाण दे; कौशल-राज-किशोर।
धीरे धीरे बढ़ चले; "पम्पापुर" की ओर॥

राहमें एक गिरके ऊपर; सुग्रीव दुखारे रहते थे।
भाईके भयसे बेचारे; बे बश मनमारे रहते थे॥
उस पर्वतसे जाते देखा; इन कौशल-राज-दुलारोंको।
जग-जीवनको, रघुनन्दनको; सुन्दर-सुशील-सुकुमारोंको॥
समझे सुग्रीव-कदाचित यह; वालिने दूत पहुँचाये हैं।
यह परम-पराक्रम-शील-पुरुष; कुछ भेद लगाने आये हैं॥

अस्तु; कहा हनुमानसे;-"जाओ प्रिय बलवीर ।
देखो तो यह कौन है !; श्यामल--गौर--शरीर ॥"
इन बातोंसे उड़गये; चित्रवीर्य्यके होश ।
उलटे सीधे पैरधर; लौट पड़ा ख़ामोश ॥

पट पलट गया अन्तर-पट का;पर काया-पलट दिखाने लगी ।
खटके वाली वह कपट-कृत्ति; तन्त्रीके पट खटकाने लगी ॥
" इतना सम्भ्रम, इतना विकार;इन निर्विकार आत्माओंपर ।
ऐसा लाञ्छन, बेटे द्वारा; गुरु जनों तथा माताओंपर ॥
जप, तप, व्रत,संयम एक नहीं;जो मुझसा खल उद्धार सके ।
गंगामें इतनी शक्ति नहीं; जो ऐसा पापी तार सके ॥
हिम-गिरिकी हिममें शक्ति कहाँ!;जो खींचे आत्मिक-ताप मेरा।
कौनसे यत्न द्वारा भगवन् !; छूटेगा मनसा--पाप मेरा ॥

बदल बदल कर करवटें; काटी सारी रात ।
इसी कल्पनामें हुआ; ज्यों त्यों प्रकृति--प्रभात ॥
चित्रवीर्य्य सबसे प्रथम; गया भीष्मके पास ।
हाथ जोड़ कहने लगा; होकर निपट उदास ॥

अये धर्म-मूर्ति ! थामलो तनिक;इस पापी-पतित-अधर्मीको ।
अये कर्म-वीर!करदो कृतार्थ;इस कलुषित-कुटिल-कुकर्मीको ॥
पूछा भीष्मने-"बात क्या है?"-नृप बोला-"मनसा-पाप"मेरा ।
हे सत्य-सिन्धु ! स्पष्ट कहो;क्यों कर जाये?-यह ताप मेरा ॥

खींचे जाता है मुझे; पाप पतनकी ओर ।
अरे पकड़लो, थामलो; भैया ! मेरी डोर ॥"

भीष्मने कहा-"कुछ बात कहो; तो उसके बदले बात कहूँ ।
तुमसे ही प्रश्न पूछता हूँ; इस रोनेका क्या उत्तर दूँ ? ॥

ऊँचेसे ऊँचा पाप–दोष; नर–जीवनमें बन आता है।
यदि युक्ति-सहित कर लिया जाय; तो प्रायश्चित होजाता है॥"
राजा बोला "पूछो न पाप; बस इतनी मुझपर करो दया।
"मनसा-पाप"से छूटनेका;बतला दो बस,उपाय है क्या ?॥"

कहा भीष्मने–"जो करे; काशीमें हरि–जाप।
जीवित जलजाये वहीं; छूटे मनसा–पाप॥"
सुनते ही इस युक्तिको; निकल पड़ा नर–राज।
सेली–कफ़नी बन गया; ताजदार का ताज॥

उस राज–ताज पर लात मार; मरनेको भागा जाता है।
इन्द्रसे भोग करनेवाला; काशीमें योग रमाता है॥
वह सुरभित–सुमन सेजवाला; काष्ठिक–शैया पर जाता है।
सन्दल–फुलेलका अधिकारी; खुद हाथों आग लगाता है॥

केवल "मनसा--पाप" का; इतना प्रायश्चित घोर।
थोड़ा देखा चाहिये; हमको अपनी ओर॥

कुछ कहा नहीं, कुछ किया नहीं; केवल विचार ही आया है।
इस पर खुद ही दोषी बन कर; यह दारुण-दण्ड उठाया है॥
हम कह बैठें, फिर कर बैठें; फिर मुकर जांय-गंगा धरलें।
यदि इतने पर भी विजय न हो; तो दो वकील हाज़िर करदें॥
वे अपने गुप्त--पाप कह कर; दण्ड को स्वयं ठहराते हैं।
हम खुले पाप करने परभी; क़ाबू भर उन्हें छिपाते हैं॥
हर व्यक्ति यहां का दीन, दुखी; रोगी, मलीन-मन वेकल है।
मैं दावे से कह सकता हूँ; यह उन पापों का ही फल है॥

जहां पाप का नाम है; चतुराई का काम।
भगवन् ! ऐसे देशका, क्या होगा परिणाम ?॥

चित्रवीर्य्य ने इस तरह; कर दी देह–निपात।
सत्यवती के शीश पर; हुआ वज्र–आघात॥
ज्यों ही कानों में पड़ी; यह करुणा-मय गाथ।
वहीं अचानक गिर गईं; एक आह के साथ॥

दिलकी हलकी हिलकी झलकी; छलकी जलकी बुँदिया बनके।
ढलकी, नलकी पलकी भलकी; गलकी गिलकी गुँदिया बनके॥
कुछ उठी,–गिरी, उठते उठते; चाहको लिये-यक दाह उठी।
सब उठे-उठाया, पर न उठी;-"हा तात!" भरे यक आह उठी॥
रानी विसरानी, देह–गेह; बौरानी जहां देवरानी।
पथरानी आखें ठहरानी; करुणा बन गई राज–रानी॥
सब दासी–दास उदास महा; करुणा छाई सरदारों से।
भीष्म ने जहाँ संवाद सुना; सिर मार दिया दीवारों से॥
विलपाये सब, कलपाये सब; प्रत्यक्ष शोक दरशाने लगा।
झण्डा झुक गया, क़िले पर का; वेदना व्योम बरसाने लगा॥

एक एकसे लपटकर; रोये–"हा नर–राज!।"
मानो वहां स्वरूप धर; उतरा शोक–समाज॥
धीर–वीर ने धीर धर; दिया सभीको धीर।
कुछ दिनमें शीतल हुई; सबकी विरह–समीर॥

दासियां, दास सब मौन हुए; जनतामें शांति दिखाई दी।
पर ज्वाला अबतक बुझ न सकी; भाईके विरही भाईकी॥
माई वह विरहिन माई है; जिसके दो हीरे छूट गये।
भाई वह दुखिया भाई है; जिसके दो बाजू टूट गये॥
बेचारे भीष्म बावलेसे; "भ्राता! भ्राता!" चिल्लाते हैं।
एकान्त बैठ कर रोते हैं; जङ्गलमें कभी सिधाते हैं॥

सूना सिंहासन होनेसे; जनता सूनी दिखलाती है।
राजाके विना राज-गति भी; ढीली सी पड़ती जाती है॥

इसी तरह वेदनामें; बीत गया कुछ काल।
किन्तु चलानी ही पड़ी; फिर शासनकी चाल॥
सत्यवती कहने लगी;-"बेटा भीष्म कुमार !।
ले जायेगा ? कौन अब; इस शासनका भार॥"

"तुम रोते हो, मैं रोती हूँ; आख़िर कब तक रोना होगा।
"इस तरह लाल ! रोते रोते; राज्य से हाथ धोना होगा॥
आधार तुम्हीं तक बाक़ी है; सो यह दुर्दशा तुम्हारी है।
सब बन्द पड़े हैं कारबार; रैय्यत हो रही दुखारी है॥
वह नाव कहीं ले डूबेगी; जिसका कोई पतवार नहीं।
वह सेना क्या कर सकती है ?; जिसका कोई सरदार नहीं॥
मेरे पेट के कुमारों में; अब रहा नहीं अधिकारी है।
शान्तनु-कुल में सिंहासन की; अब तात तुम्हारी वारी है॥
इस लिये हमारी आज्ञा है; यह शासन-भार धरो बेटा !।
एक के खेद को विसरा दो; सब का उपकार करो बेटा ! "॥

हाथ जोड़कर भीष्म ने; कहा-"देवि-अवतार !।
शासन करने का मुझे; रहा नहीं अधिकार॥

कर चुका प्रतिज्ञा नानासे; माता की टहल बजाने का।
शासन के कामों में केवल; समुचित सहयोग निभाने का॥
जिस प्रण पर एक कुमारी को; निष्कारण प्राण गँवाना पड़ा।
जिस प्रण पर अपने ही गुरुसे; समता कर समर रचाना पड़ा॥
दुहरी शापें सिर पर धर लीं; उस शिर पर ताज धराओ ना।
सत्यात्मे ! ना कुछ लालच में; सेवक का सत्य छुटाओ ना॥

सत्यवती कहने लगी—"धन्य ! धन्य ! प्रणवीर ! ।
शान्तनु—कुलमें सत्य ही; आया मनुज—शरीर ॥

मैं भी प्रभुसे यह प्रार्थी हूँ; तेरा प्रण सदा निभाये रहे ।
इस कुल की आन बनाये रहे; वचनों का ध्यान दिलाये रहे ॥
मत कर बेटा ! शासन-फिर भी; शासन के लिये सहाय लगा ।
इस कुल की बेल बढ़ाने का; मेरे पतवार ? उपाय लगा ॥
हो चुकी निपूती मैं बेटा !; बहुएँ तीनों हैं विधवायें ।
आगे आशा भी शेष नहीं; अधिकारी किस को ठहरायें ?॥"

इस चिन्ता में कुछ समय; बँधा न कुछ सन्धान ।
"सत्यवती" को आ गया; वहीं "व्यास" का ध्यान ॥
आत्म-योग से जब हुआ; ऋषिवर का आह्वान ।
हुए स्मरण-मात्र से; प्रकट व्यास—भगवान ॥

बलिहार हुई, मानो सहसा; वह खेवन हारा साथ लगा ।
सर्वस्व हरण होने पर भी; वह खोया हीरा हाथ लगा ॥
मां लिपट गई, हिलकी आई; "हाहा" करके विलपाने लगी ।
थम थम कर, त्रिकालज्ञ-सुतको; वह करुणा-कथा सुनाने लगी ॥
"बेटा बेटा ! लुट गई माय; हो गईं अधूरी आशाएँ ।
शान्तनु—नृपकी वंशावलिमें; बाक़ी हैं तीनों विधवाएँ ॥
मर चुके पुत्र, पति दुखियाके; कोई पानी—दाता भी नहीं ।
इस बृहद्—वंशमें अये कुमार; अब सिंहासनवाला भी नहीं ॥
भीष्म है वचनमें बँधा हुआ; वह अपनी आन निभाता है ।
बतलाओ तात ! आगाड़ी हो; यह गाड़ी कौन चलाता है ? ॥
इस कारण तुझे बुलाया है; इसका कोई उपाय बतला ।
या स्वयं राज्य-अधिकारी बन; या शान्तनु कुलकी बेल चला ॥"

त्याग-मूर्त्ति कहने लगे-"माता करुणा त्याग ।
किसी लागसे लगेगी; राज-वंशकी लाग ॥

जिस पर माताकी ममता भी; अपनी ममता दिखला न सकी।
जिसको जन्मसे आज दिनतक; दूधकी याद भी आ न सकी॥
तूही बतला क्या वह योगी; अब राज-भोग कर सकता है ?।
हां, तेरी आज्ञाके कारण; कुछ वंश-योग कर सकता है ॥

निकलें बहुए वस्त्र तज; मुझपर श्रद्धा मान ।
तो अवश्य प्रकटायेगी; तीनों से सन्तान ॥"

"व्यास" सिद्ध हो चुके थे; तभी सिद्ध-अवतार ।
उसी समय होने लगा; वह यौगिक-उपचार ॥

दुर्धर्ष-वेष-धर-व्यास देव; एकान्त-भवनमें ब्राज रहे ।
ज्यों रति-पति-गतशिव, रति-वर-हित; ऋतुराज-सदनमें राज रहे॥
अम्बा ने उधर विचार किया; ऋषि, समदर्शी कहलाते हैं ।
वे नग्न, अनग्न, बड़ा, छोटा; सबको समान ठहराते हैं ॥
लौकिक-मत-गतिसे बाहर हैं; निर्लेप-विचार-मुनीश्वर हैं ।
निष्काम-विरक्त-जितेन्द्रिय हैं; सर्वज्ञ-शान्त योगीश्वर हैं ॥
लज्जा संकोच कहां ठहरे ?; योग-मय नशैली आखोंमें ।
पर निश्चय शर्म समायेगी; इन विषय-विषैली आखों में ॥"

पट्टी कसकर आंखपर; निकल पड़ी वह बाल ।
व्यास देव यह देखकर; बोल उठे तत्काल ॥

" अम्बे ! तू पुत्र-वती होगी; पर आखें पूत न पायेगा ।
जो अंग छिपाया है मुझसे; वह अंग वहां छिप जायेगा ॥"
"अम्बिका" दूसरी युक्ति सोच; मिट्टी देहमें लगाती है ।
वह पाण्डु रोग ऐसी काया; "काया-कल्प" को दिखाती है ॥

इसलिये पाण्डु-रोगी--सन्तति; वरदानी के वर से पाई ।
"दासी" केवल श्रद्धा--समेत;सीधे भावसे निकल आई ॥

भक्ति--भावसे द्रवित हो; बोले ज्ञान--निधान ।
"इतनी लज्जा तोड़ दी; अरी मूर्ख--नादान ! ॥

लजवन्ते कुलमें रहकर भी; तेरा निर्लज्ज--स्वभाव हुआ ।
आश्चर्य!-सुशीलाओंकी भी;सङ्गतिका कुछ न प्रभाव हुआ॥"
दासी बोली-"हे नीति-धाम !; दासी होकर लज्जा कैसी ? ।
लज्जावाली, कुलवन्तीको; फिर घर घर की सेवा कैसी ॥
भगवान् ! भले ही भला वंश; पर नीच काम ही है मेरा ।
लज्जाको कहां कहां रक्खूँ ?; निर्लज्ज नाम ही है मेरा ॥
पर्दा है-पर्देवालों को; घट घट वासीसे पर्दा क्या ? ।
लज्जा है--लोक-विकारोंसे; प्रभु निर्विकारसे लज्जा क्या ? ॥

श्रद्धा-भक्ति विलोक प्रभु; बोले सिद्धि-निधान ।
"भक्ता ! तू ही पायेगी; परम-भक्त-सन्तान ॥

इस शुद्ध--भावके बदले में; सद्भाव पुत्र प्रकटायेगा ।
दासीका लाल कहा कर भी; संसार--पूज्य बन जायेगा ॥
अन्तर्हित हुए वहीं ऋषिवर यौगिक-सन्तति-सम्बन्ध हुआ ।
अम्बाजीसे "धृतराष्ट्र" हुआ;पर होते ही,"जन्मान्ध"हुआ ॥
पाण्डु--तन, पाण्डु--रोगी बेटा; अम्बिका देविने पाया है ।
वह परम-भक्त-वर "विदुर" लाल;भक्ता-दासीने जाया है ॥"

जो पाश्चात्त्य--प्रवाहमें; भूल गये हैं ज्ञान ।
वे देखें कुछ ध्यानसे; भारतका विज्ञान ॥

आजकल अमरिका आदि देश; सैकड़ों प्रयत्न लगाते हैं ।
कितने ही नुसखे बन बनकर; भारत में बिकने आते हैं ॥

पर-जो तत्क्षण फल-दाता हो;वह, ऐसी हमें दवा न मिली।
बिजली न मिली,जादू न मिला;पानी-या कहीं हवा न मिली॥
इसपर भी इश्तहारवाले; कानों को खाये जाते हैं।
भारतकी जूठन जोड़ जोड़; भारत ही पर इठलाते हैं॥
मैं कहता हूँ-यदि करतब है; तो ऐसा करतब दिखलाओ।
औषधि-बूटीसे काम नहीं; कुछ योग-शक्ति को बतलाओ॥
यदि योग-शक्ति पर भी भ्रम हो; तो कहीं मैस्मरेजिम देखो।
उस बृहत्-सिन्धुकी बूँदोंपर; इन लोगोंकी डिमडिम देखो॥
जिस जगह दवाका असर न हो;उस जगह दुआ फल-दाताहै।
ऐसी कितनी ही घटनायें; इतिहास हमें बतलाता है॥

गायन

था कभी किस औजपर; विज्ञान भारतवर्षका।
क्यों न हो ? हमको सदा; अभिमान भारतवर्षका॥

लोक या परलोक का;क्या काम था ? हमको कठिन-
मानता संसार है-"निर्वाण" भारत वर्ष का॥

जिस क़दर सिद्धान्त-आविष्कार, अबतक हो चुके-
दे बता उनमें ग़लत; अनुमान भारत वर्षका।

लोक का शिर-मौर है; परलोक का पथ-मित्र है॥
है प्रकृतिमें पूर्व ही; स्थान भारतवर्ष का।

योग-बल-विद्या-नियम-विज्ञान-तर्क-विधानमें-
हार कर लौटा कहाँ ?; विद्वान भारत-वर्ष-का।

"शैलेन्द्र"अब क्यों ? शर्मसे;नीची नज़र करने लगे ?-
दृढ़ रहो, होगा कभी; उत्थान भारत-वर्ष-का।

शोक–सदन फिरसे हुआ; सुख–सम्पति आगार।
हुए सयाने शीघ्र ही, वे दैवी–अवतार॥

भारतसे उत्तर-पश्चिम में; "✻ गान्धार-देश" कहलाता था।
नीतिज्ञ-नृपति "गन्धाजी" का; सुख-मय-साम्राज्य सुहाता था॥
उनकी बेटी "गान्धारी" थी; शिव-भक्ता, साधु-प्रकृति वाली।
सुन्दरी-सुशीला-शांति-मयी; शुचि-भाव-सौम्य-सत्-व्रतवाली॥
दिन रात भजन, आराधन कर; नाना साधन कर दिखलाये।
प्रेमिन की प्रेम–पुकारों पर; श्री अवढर दानी प्रकटाये॥

गान्धारी ने शम्भु से; पाया यह वरदान।
"सौ बालक, यक बालिका, पायेगी सन्तान॥

"गन्धा" ने कुछ दिन के पीछे; पुत्रिका स्वयंवर रचवाया।
बल वीर भीष्म रंग-स्थल से; "गान्धारी" जीको हरलाया॥
बाणों से सुभट केहरी ने; धिज्जियाँ उड़ा दीं सेना की।
घर लाकर फिर गान्धारी को; धृतराष्ट्रसे शादी करवा दी॥

देखा उस पतिव्रताने; पति को नयन–विहीन।
मृग–नयनी कहने लगी; होकर निपट मलीन॥

"यह किसी जन्म का जोड़ा है; जो जोड़ तोड़ कर जोड़ा है।
यह सारा खेल भाग्य का है; जो भाग्य करे सो थोड़ा है॥
लेकिन जो हुआ-हुआ, अब क्या ?; आजीवन यही निभाऊँगी।
आँखों की यहाँ ज़रूरत क्या ?, चरणों में चित्त लगाऊँगी॥
हे नेत्रो ! तुम भी इसी तरह; आजीवन पति सा कष्ट सहो।
जब स्वामी के हैं नेत्र बन्द; तो तुम भी निशदिन बन्द रहो॥

✻ गान्धार को आजकल "कन्दहार" कहते हैं।

अच्छा है, आखें बन्द रहें; तो सूना जगत दिखायेगा ।
केवल चरणों का ध्यान छोड़; चञ्चल-चित कहीं न जायेगा ॥
यही सोचकर देवि ने; मूँदे अपने नयन ।"
वही नयन आगे बने; सिद्ध-योग-सुख-अयन ॥
बहिनो, यह पातिव्रत-गति है;जिस पर सारी गति निर्भर है ।
यह युक्ति-सहित वह मुक्ती है; जिस पर वह मुक्ति निछावर है ॥
यदि पति को प्राणरूप समझो; तो रहो सदा काया बनकर ।
यदि मानो उसे शरीर-रूप; तो चलो साथ साया बनकर ॥
जीवन की डोरी उसी देव; प्रियतम के हाथों पकड़ा दो ।
यदि तुम्हें सतीत्व सीखना है,तो सत्-व्रत अपना दिखला दो ॥
स्वामीको काँटा लग जाये; अपनी चमड़ी खिंचवा डालो ।
स्वामी के फ़क़त् पसीने पर; तुम अपना रक्त बहा डालो ॥
यह भारत का धर्म है; है सतीत्व--विज्ञान ।
भारत—रमणी के लिये; यही आत्म—अभिमान ॥
वे कुलटा, कुटिला, दूसरी हैं: जो पति को दास मानती हैं ।
अपना श्रृङ्गार, बनाव रहे; इस को ही सार जानती हैं ॥
रोगी पति पड़ा कराह रहा; वह बैठी सारँग गाती है ।
स्वामी तो भाड़ भूनता है; और नारी पान चबाती है ॥
स्वामी को कुली निखट्टू कह; अपने को लक्ष्मी कहती हैं ।
ऐसी मन चली चञ्चलायें; चलती फिरती ही रहती हैं ॥
कौन कहे, उनका यहाँ; अन्य जन्म का हाल ।
इसी जन्म में देख लो; उसका फल तत्काल ॥
पट्टी बाँधी आँख पर; उस देवि ने सहर्ष ।
बहिनो; तुम भी दिखा दो; कुछ ऐसा आदर्श ॥

"कुन्ती" देवी का हाल सुनो; वह "शूरसेन" की दुहिता थी ।
और "शूरसेन" की "कुन्तिभोज," राजा से परम-मित्रता थी ॥
नृप "कुन्तिभोज" पुत्री समान; उसका प्रतिपालन करते थे ।
उन "कुन्तिभोज" के कारण ही; बेटी को कुन्ती कहते थे ॥

"दुर्वासा" ऋषि एक दिन; आये नृप के धाम ।
"कुन्ति भोज" ने तुरन्त से; उठ कर किया प्रणाम ॥

सादर, सप्रेम, पूजन करके; सिंहासन पर बिठलाते हैं ।
फिर ऋषिवर अपने आने का; कारण भूप को सुनाते हैं ॥
" राजन ! बरसात आगई है; चौमासा भर काटना चहूँ ।
कह दे—जो तेरी श्रद्धा हो; तो इसी नगर में बास करूँ ॥

"कुन्तिभोज" कहने लगे;—जन्म सफल हो दास ।
जो प्रभु से साधू करें; इस नगरी में वास ॥

जिस जगह महात्मा, सन्तों का; यक बार क़दम पड़ जाता है ।
वह धाम स्वर्ग बन जाता है; वह नगर तीर्थ कहलाता है ॥
हे कल्प—वृक्ष—आश्रय—धारी; सानन्द यहाँ डेरा लीजे ।
हे मलय गन्ध-धर, भक्ति-रूप; हम काठों को चन्दन कीजे ॥
हे महाराज, यह राज काज; सारा नाथ पर निछावर है ।
सानन्द यहाँ पर रहियेगा; यह श्रीमान् ही का घर है ॥
मैं, वंश—सहित, नौकर-चाकर; सारे सेवा में हाजिर हैं ।
आज्ञा हो, हे दयालु ऋषिवर!; क्या क्या चीजें हाजिर कर दें ॥

"दुर्वासा" कहने लगे—" राजन् ! वचन न हार ।
ठहराने से पेश्तर; कर ले तनिक विचार ॥

साधू, संन्यासी, सर्प, शस्त्र; क्षण भरमें पलटा खाते हैं ।
क्षण में प्रसन्न हो जाते है, क्षण में नाखुश हो जाते हैं ॥

पहिले मेरी शर्त को-भूप !; ध्यान से श्रवण कर-मन भर दे।
मेरे वास्ते रात दिन को; ऐसा सेवक नियुक्त कर दे॥
जो मेरी इच्छा के ऊपर; मेरे कामों को किया करे।
जिस समय कहूँ, जिसके निमित्त; वह वस्तु समय पर दिया करे॥
मेरी जब इच्छा आयेगी: तब ताजा भोजन पाऊँगा।
यदि उसी समय वह दे न सका; तो चला यहां से जाऊँगा॥

समझ गये नृप, शर्त यह; है न तनिक आसान।
आठ पहर की हाजिरी; बेशक कार्य्य महान॥

दिन, रात सामने हाजिर रह; फ़ौरन ही हुक्म बजाना है।
फिर चार महीने लगातार; एक ही व्यक्ति पर आना है॥
शायद न बनी, कुछ बिगड़ गई; ऊँचे साधू की आज्ञा है।
फिर इसे कौन कह सकता है?; किस समय? कौन सी इच्छा है?॥
जो आठों पहर जागरण कर; आलस-निद्रा को जीत सके।
उसके द्वारा "दुर्वासा" की; बरसात यहां पर बीत सके॥"

"कुन्ति भोज" ने महल में; जाकर किया बयान।
किन्तु महा–व्रत के लिये; दबे सभी के कान॥

"दुर्वासा"–ऐसे क्रोध–मूर्ति; फिर आठ पहर की सेवकाई।
उसकी फिर नहीं खैरियत है; जिससे कुछ बात बिगड़ आई॥
रनवास, दास, दासी सारे; जब सुनकर कान चपानें लगे।
तब "कुन्तिभोज" लज्जा-वश हो; मन ही मनमें शरमाने लगे॥
ना कुछ इतनी सी सेवा को; कोई भी नजर न आता है।
हा ! आज राज-दरवाज़े से; यक अतिथि निराशा जाता है॥

राजा का राज्य-भार सारा; सन्त के सामने ना कुछ है।
यह देह-दान, और राज्य-दान; साधु के वास्ते ना कुछ है॥

इतने में कुन्ती लली; बोली धैर्य्य बँधाय।
"पिता, तुम्हारी लाड़ली; करे टहल हर्षाय॥

मैं आठों पहर सजग हो कर; ऋषि वर का हुक्म बजाऊँगी।
जिस क्षण पर जो इच्छा होगी; वह भोजन उन्हें कराऊँगी॥
निद्रा, आलस्य, स्वार्थ, मद सब; सेवा-अग्नि में जलाऊँगी।
उनकी आखोंमें पुतली बन; पुतली की तरह दिखाऊँगी॥"

अस्तु, महात्मा का लिया; जब कुन्ती ने भार।
चार मास तक सन्त का; किया पूर्ण सत्कार॥
कुशल-पूर्वक जब हुआ; चतुर्मास का अन्त।
तब प्रसन्न हो देवि से; बोले अवढर सन्त॥

"बेटी, जा तेरा भला करे; परमेश्वर सदा सहायक हो।
तू ने प्रसन्न कर दिया मुझे; तू भी दुनिया में लायक़ हो॥
यह व्यापक-मन्त्र याद कर ले; इस से इच्छित-फल पायेगी।
जिस सुर का ध्यान लगायेगी; वह मूर्ति प्रकट हो जायेगी॥"

दुर्वासा यह मन्त्र दे; बिदा हुए तत्काल।
कुन्ती को पैदा हुआ; इम्तिहान का ख्याल॥

सोचा-"देखूँ यह महा-मन्त्र; वास्तव में कितना सच्चा है?।
दुर्वासा का आदर्श-वचन; पक्का है, अथवा कच्चा है॥
श्रीसूर्य्य देव हैं, प्रकट देव; तेजस्वी हैं, फल दाता हैं।
इसलिये उन्हीं का ध्यान करूँ; वे चन्द्र-वंश के भ्राता हैं॥

अस्तु, मन्त्र का जाप कर; जहाँ लगाया ध्यान ।
उसी समय सन्मुख हुए; प्रकट सूर्य्य भगवान् ॥



जग की तेजस्वी चीज़ों को; सूर्य्य की मिसालें दिखलायें ।
फिर सूर्य्य देवके लिये भला; हम किसकी समता बतलायें?॥
आभास-मान, तेजो निधान; ज़ाहिर जहान को उपमा क्या? ।
उपमा-आगर, सुखमा-सागर; भगवान सूर्य्य की सुखमा क्या?॥
कुन्ती की आखें चौंध गईं; आत्मा में विमल-विकास हुआ ।
चरणों से देवी लपट गई; जब भास-मान का भास हुआ ॥

हाथ जोड़ करने लगी; विनती बारम्बार ।
"ग्रह-पति, जग-पति, दिवस-पति; तप-पति जगदाधार ! ॥

गायन

ब्रह्माण्ड-प्रकाशक, जग-तम-नाशक, आत्म उपासक-देवा।
जय जय दिन-नायक, सब फल-दायक; भू-ग्रह-शासक-देवा॥
जय जय द्युति-धारी, अंशु-अपारी, गगन-विहारी-देवा।
जय जयति तमारी, कष्ट-प्रहारी, जन-सुखकारी देवा॥
वाञ्छित-फल दाता, विश्व-विधाता, ताप हरो, रवि-देवा।
दासी, अभिलाषी, जय यश-राशी; सफल करो रवि-देवा"॥

सूर्य्य देव कहने लगे;-"ले बेटी! वरदान।
बली, यशी, दानी, सुभट; हो तेरे सन्तान॥"

कुन्ती बोली-"आराध्य देव!; यह क्या आशीश तुम्हारी है?।
इस वर का क्या फल होना है?;दासी तो अभी कुवाँरी है॥
बे पतिके जब बालक होगा; तो रसमें भी अनरस होगा।
वरदान नहीं, यह शाप हुई; यशके बदले अपयश होगा॥
आख़िर आप ही विचार करें; दुनिया क्या मुझे बतायेगी?।
यह स्वर्ण-देह,यह शुद्ध-आत्म;निश्चय कुलटा कहलायेगी॥"

सूर्य्य-देव कहने लगे-"अब क्या पश्चाताप?।
बाल्य-कालमें क्यों किया; तूने ऐसा जाप?॥

जो कहा गया, सो कहा गया; उसमें अब कमी न आयेगी।
हाँ, इस वरसे-यह भी वर है; अपयश न कभी तू पायेगी॥
चिन्ता तज, यह सन्तान तेरी; पृथ्वी पर कीर्त्ति बढ़ायेगी।
मेरी मायासे, कर्ण-द्वार; उसकी उत्पत्ति कहायेगी॥
अये भारत, तेरे पूतोंने; क्या २ करके दिखलाया है?।
वह योग-शक्ति की महिमा थी;यह मन्त्र-शक्ति की माया है॥

यक यही नहीं, प्रत्येक काम; मन्त्रसे यहाँ पर किया गया ।
रण-क्षेत्रोंमें मन्त्रों ही से; शस्त्रों का उत्तर दिया गया ॥
मारण, मोहन, उच्चाटन सब; मन्त्रोंके द्वारा दिखलाया ।
लोक ही नहीं; परलोकों पर; मन्त्रोंसे कब्ज़ा दिखलाया ॥
यक मन्त्र पढ़ा-फोड़ा फूटा; ज़हरीला कीड़ा उतर गया ।
चढ़ता बादल भी बैठ गया; और बहता पानी ठहर गया ॥

रेल, तार, रेडियोंका; था मन्त्रोंसे काम ।
आज रत्न वह देशके; कहाँ छिपे ? घनश्याम ! ॥
सूर्य्य देव वरदान दे; हो गये अन्तर्ध्यान ।"
कुन्तीसे पैदा हुई; यथा-समय सन्तान ॥

"सुकुमार-सलौना-शिशु-सुद्योत;स्वर्ण सा शुभाङ्ग सुशोभित है।
श्रीसूर्य्य देवका वर-स्वरूप; सूर्य्यके समान प्रकाशित है ॥
क्वाँरी माता वह निधि लेकर; इस तरह दुखी हो जाती है ।
जिस तरह विना व्याही लड़की; बेटा जन कर घबराती है ॥
क्षण भर को उसकी मूर्ति देख; सारा कलंक विसराती है ।
क्षण भरमें लोक-लाज-की भय; छाती को भूने खाती है ॥
हा, इसे गोद का रत्न समझ; जो माता पालन करती है ।
तो लोक पांसुला कहता है; उलटी माथे पर पड़ती है ॥
यह इन आंखों का तारा है; या आँख फोड़ने वाला है ।
यह जोड़ जोड़ने वाला है; या जोड़ तोड़ने वाला है ॥
रवि देव ! प्रभात करोगे क्या ?; मुझको कलंकनी करने को ।
भास्कर!प्रकाश दिखाओ मत; इस मुँह पर स्याही भरनेको ॥
हैं ! प्रात काल होते होते; मैं किस हालतमें होऊँगी ।
दरवाज़े पर जमघट होगा; मैं किसी बग़लमें रोऊँगी ॥

किस किस को मैं अपनी गाथा; सौगन्धोंसे समझाऊँगी ।
वह बाँध टूटने वाला है–जो; फिरसे बाँध न पाऊँगी ॥
हा, वह प्रभात, है काल-रात; लाजोंसे मर मर जाना है ।
बातोंमें गढ़ गढ़ जाना है; जगको क़हक़हा उड़ाना है ॥

किन्तु, प्रथम ही क्यों न मैं; कर डालूं तदबीर ? ।
फेकूँ गंगा–नीरमें; यह रक्त का शरीर ॥

क्या करूँ ? फेक दूँ बेटेको; किस जगह ? मुक्ति-आवासामें ।
किसको?इस हृदय-अंश-शिशुको;क्यों?केवल यशकीआशामें॥
मैं मां हूँ ? हाँ मां ही तो हूँ; यह मेरा हृदय-दुलारा है ।
उफ़, नही, नहीं,मैं ब्याधिन हूँ;यह बाल-शिकार-बिचारा है ॥
यह निरपराध हत्या, हाहा !; छिप सकती नहीं; छिपानेसे ।
मैं भी न कभी कल पाऊँगी; यह शुद्ध-आत्म कल्पानेसे ॥
दुनियादारी कुछ कहा करे; मुझको इससे मतलब क्या है ? ।
मैं इस की सच्ची माता हूँ; यह मेरा सच्चा लाला है ॥
यह दैवी–निधि मैंने भी तो; अत्यन्त कष्टसे पाई है ।
क्या चिन्ता ? यदि दुनिया रूठे;ईश्वर तो मेरा गवाही है ॥
लौकिक–यश,धन, वैभव, प्रताप; बेटे पर सभी निसार करूँ ।
लज्जा रख दूँ यक खूँटी पर; अपने हीरेको प्यार करूँ ॥
क्या चिन्ता ? कुलटा दुश्चरिता;पापिन, वेश्या,कहलाऊँगी ।
दुनियासे अलग कहाऊँगी; दुनिया ही अलग बसाऊँगी ॥

जग व्यापक, को विदित है; मेरा सारा काम ।
दैव, जानते हैं, नहीं; मैंने किया हराम ॥"

---

१ गंगाजी ।

इस प्रकार उद्धारमें; शिशु को लिया लिटाय ।
किन्तु, यकायक लाजने; फिरसे दिया दबाय ॥

फिर सोचा–"हा!होते ही सुबह;यक नयी दशा हो जायेगी ।
मंगलाचार की एवजमें; दुनिया भर थूक उड़ायेगी ॥
परलोकके सुखकी इच्छा हो, तो लोक से ड़रना अच्छा है ।
शुभनामका करना अच्छा है; बदनामका मरना अच्छा है ॥
क्या बाकी रहा कलंकीका; बदनामी सिरपर जब कुछ है ।
तन, धन जाये,तो ना कुछ है; यश बना रहे, तो सब कुछ है॥
खुद आत्माका बलिदान करूँ; कुलकी मर्यादा देवीपर ।
बालकका खून चढ़ा दूँगी; लौकिक–यशकी बलि–वेदीपर ॥"
वात्सल्य--भावके दीपकको; शर्मकी हवाने बुझा दिया ।
प्रेमिन को ब्याधिन बना दिया; मायको क़सायन बना दिया ॥

लगी उठाने बाल को; दोनों हाथ पसार ।
नव-शिशुने स्पर्शसे; दी कुछ आँख उघार ॥
वदन देख सुकुमार का; गई देवि सकुचाय ।
करुणा करते हुए फिर; बरबस लिया उठाय ॥

मानो बालक करुणा–पूर्वक; मैया से "दाद" कर रहा है ।
अथवा दैवीय–दान उसपर; उलटा अहसान धर रहा है ॥
कहता है बेवश बेचारा–"क्यों मां ! क्या मुझे फेंक दोगी ?।
मुझ निस्सहायकी हत्या कर; क्यों देवी क्या यश पा लोगी ॥
बच्चा यदि कहीं खौफ़ खाये; तो मां की गोदी में आये ।
यदि मां हीसे उसको भय हो; तो फिर वह दुखी कहां जाये?॥"

इसका उत्तर माय ने; दिया आह के साथ ।
मुँह ढककर शिशु-रत्नका; पीट लिया फिर माथ ॥

गायन

न देखो लला ! पापनी जा रही हूँ ।
तुम्हारी कुँवर ! साँपनी जा रही हूँ ॥
न तुम लाल मेरे; न मैं मा तुम्हारी–
किसी जन्मकी, डांकनी जा रही हूँ ।
दिशाओ, न गूँजो; सितारो, न चमको–
विना गूँजकी; रागनी जा रही हूँ ॥
"शैलेन्द्र-गोविन्द"; कलंकोंको बोने–
कलंकोंकी पुतली; बनी जा रही हूँ ।

यों कह कर शिशुको उठा; गई गङ्गके तीर ।
गङ्गाजीको देखकर; हुई पुनः गम्भीर ॥

दोनों हाथों पर बालक रख; गङ्गा की ओर बढ़ाती है ।
मानो शिशु–रत्न–धरोहरको; उनकी गोदमें धराती है ॥
गङ्गे ! मैं इसकी माता हूँ; तुम जगत मात कहलाती हो ।
पापी, धर्मी कोई भी हो; सबके परिताप छुटाती हो ॥
यह गोद एक बालकको है; वह गोद सभी को हाज़िर है ।
हे देवि ! अभागे बच्चे का; अब सारा भार तुम्हीं पर है ॥
हे पाप–परिष्कारण माता ! ; मेरे पापों को धो डालो ।
हे शान्ति-दायनी-गङ्ग-देवि ! ; इस हत्यारिनको शान्ती दो॥"
यों कहते कहते रो रोकर; बालक को वहीं फेंक आई ।
मां का तो यह कर्त्तव्य हुआ; अब कुशल करे गङ्गा माई ॥
वह सूर्य्य–रत्न, वह देव–मूर्ति; ज्यों ही गङ्गाजीने पाई ।
माईसे बढ़ कर महा–दया; गङ्गा माईने दिखलाई ॥

गोदी पसार कर पुत्र लिया; प्रेम की झपकियां देने लगीं ।
उस ओर लहरियाँ देने लगीं; उस ओर थपकियां देने लगीं ॥

एक सारथी की नज़र; पड़ी अचानक जाय ।
शिशुको शीघ्र निकालकर; छाती लिया लगाय ॥

सानन्द, सप्रेम, किलोंलोंसे; सारथी उसे घर लाता है ।
अपने को उसका "कर्ण" समझ; "कर्ण" ही नाम धरवाता है ॥
क्या था विलम्ब ? आखिर ऐसी; दैवी-शक्तिके सँभलनेमें ।
वह मसल है–ज़ाहिर होते हैं; ललनेके लक्षण पलनेमें ॥
वह हृष्ट, पुष्ट, मोटा, ताज़ा; सुन्दर, बच्चों में खेलता है ।
उस बाल–मण्डलीका नायक; सूरज की तरह चमकता है ॥
सुन्दरता थी, बल था, सब था; लेकिन इतना असमञ्जस था ।
माताका नाम न जानता था; था ध्यान न उसे पिताहीका ॥

एक रोज़ बालकोंमें; खेल रहा था बाल ।
बाल-केलिकी केलमें; कुछ बढ़ गया बवाल ॥

बालक बोले-"इस बालकने; कर्णका दुपट्टा पकड़ लिया ।
इस कारण हम सबने इसको; "धाई" देनेपर नियत किया ॥"
कर्णने कहा–"भाई ! इसकी; यह बात निरर्थक झूठी है ।
जो इसने मुझको पकड़ा हो, तो क़सम पिता–माताकी है ॥"

कर्ण लालकी बात सुन; हँसे साथके बाल ।
एक क़हक़हा मारकर, बोले–"बोल सँभाल ॥

माँ, बाप अगर तेरे होते; तो क़सम न यों खाजाता तू ।
जो घर–दर वाला होता तू; तो यहाँ न पाला जाता तू ॥
बेचारा केवट जान खपा; सन्ध्या तक रोटी लाता है ।
बच्चों का पेट पालता है; और तेरी गुज़र चलाता है ॥

जो माता-पीता जानता हो; तो आज मण्डली में कह दे ।
वह ही यक बूढा धींवर है; माता कहले—या पिता कहले ॥
क्या जाने कैसा जाया है ?; क्या पता ? कहाँ से आया है?।
किस दुश्चरिता ने किस कारण ? गंगा में तुझे बहाया है ॥

अब तो मारे शर्म के; उठा न ऊपर माथ ।
जंगल को चलता हुआ; छोड़ सखों का साथ ॥

जिसने जीते जी किसी तरह; बदनामी ऐसी पाई है।
याजो व्यक्ति है "वर्ण संकर" वह जीवित नहीं-मरा ही है ॥
ऐसा बालक जब दिन पाकर; होशो हवास में आता है।
मारे लज्जा के बेचारा; धरती में धँस धँस जाता है ॥
सारा वैभव, सारा प्रताप; इस एक ज्वाल से जलता है।
क़ाबू न किसी पर चलता है; रह रह कर गद्दी मलता है ॥
जिस की पैदायश ही बद हो; उस की सब ख़ाक बहतरी है ।
उसको जीवन है भार-रूप; और जाति-समाज—यम-पुरी है ॥
धिक्कार है ऐसी नारी को; जो ऐसी पौद बढ़ाती है।
अपना सतीत्व खा जाती है; लड़के की हँसी कराती है ॥
आगे चल कर ऐसा लड़का; किस जाति-पाँति का कहलाये ।
पापनी पाप कर मर जाये; पाप की निशानी धर जाये ॥
ऐसी हालत में कुछ मनुष्य; माता का वध कर देते हैं ।
या फाँसी स्वयं लगा कर के; यमपुर में शान्ती लेते हैं" ॥

—यही सोच कर—कर्ण की; चिता हुई तैयार ।
एवं जलने के लिये; बैठा सूर्य्य—कुमार ॥
मध्य चितामें बैठ कर; किया अनल—आह्वान ।
प्रकट हुए तत्काल ही; श्री भास्कर—भगवान ॥

बोले-"बेटा! क्या करता है?; लोक के अयश को डरता है।
लाखों वीरों को मौत है तू; खुद बिना मौत के मरता है॥"
कर्ण ने कहा-"धिक्कार उसे; जिसका न पिता या! माता हो।
लौकिक–लज्जा से मरता हो; सारा जग हँसी उड़ाता हो॥
धिक्कार है; ऐसे चोले को; जिस के रखने में लज्जा है।
मेरा इसलिये इरादह है; यह जल जाये तो अच्छा है॥

गायन

दुनियाँ में बुरा नाम धराना नहीं अच्छा।
मर जाना–मगर शर्म उठाना नहीं अच्छा॥
जिस देह, गेह, वंश से; लगता कलंक हो–
उस मूल के पौदे को बढ़ाना नहीं अच्छा।
जल जाये, डूब जाय, या खा जाय ज़हरको–
बदनामियों की ठोकरें खाना नहीं अच्छा॥
"शैलेन्द्र" जाति–मात्र में रहिये तो मानसे–
अपमान से भूपति भी कहाना नहीं अच्छा।"

सूर्य्य देव कहने लगे--"बेटा ! निश्चय मान।
मैं ही हूं तेरा पिता; मुझे लाल ! पहिचान॥
सूर्य्य देवको पिता सुन; उठा कर्ण तत्काल।
पिता–पुत्र अतिप्रेम से; मिले भुजायें डाल॥

फिर बोला कर्ण-"पिता प्रभु हैं; तो माता भी बतला दीजे।
अपना सा बल प्रताप देकर; अपने सुतकी रक्षा कीजे॥
अपना एवं माताजी का; प्रत्यक्ष नाम प्रकटाओ, पिता!।
जगती से अपने बेटे का; यह व्यर्थ कलङ्क मिटाओ, पिता!॥

दिनकर बोले—"बेटा ! मैं खुद; माँका न नाम बतलाऊँगा ।
हाँ—उस से परिचय होनेका; थोड़ा उपाय समझाऊँगा ॥
यह अग्नि-चीर ले जा, कुमार !; पस यही परीक्षा सारी है ।
जो इसे पहिन कर भस्म न हो; बस माता वही तुम्हारी है ॥"

सूर्य्य देव गमनित हुए; लौटा "सूर्य्य कुमार" ।
विद्या पढ़ने का किया; अब कर्ण ने विचार ॥
परशुराम के मुक़ाबिल; था न अन्य विद्वान ।
लेना चाहा कर्ण ने; उनसे विद्या—दान ॥

*पर, परशुराम जी का प्रण था; क्षत्रिय को हुनर नहीं दूँगा ।
इस ओर कर्ण को लगन लगी; उनसे ही विद्या सीखूँगा ॥
इसलिये विप्र का वेष बना; ऋषि—वर से विद्या पाने लगा ।
तन, मन से सेवा करने लगा; पढ़ने में चित्त लगाने लगा ॥
भृगुपति भी सारे भेदों को; क्रम-गत शिष्य को पढ़ाने लगे ।
निगमागम,ज्योतिष,गणित,काव्य;फिर-धनुर्वेद सिखलाने लगे ॥
इस ओर कर्ण ने दिल दे कर; पढ़ने पर पूरा ध्यान दिया ।
उस ओर गुरु ने भी उसको; विद्या-बल-बुद्धि-निधान किया ॥

एक रोज़ भृगुपति कहीं; लौटे श्रम के बाद ।
उस थकान से आगया; गुरु को नींद प्रमाद ॥

कुछ इधर उधर की चर्चा कर;कर्ण की जाँघ पर सिर रखके ।
सो गये कुटी में परशु देव; अभिज्ञान—वाद करते करते ॥
जंघा के नीचे एक भ्रमर; उस समय अचानक आ पहुँचा ।
एवं जंघे को काठ समझ; धीरे धीरे काटने लगा ॥

---

* देखो भीष्म—प्रतिज्ञा " महाभारत संख्या १ ।

वाह, वीर गुरु-भक्त भट; तुझे कहूँ क्या और।
क्यों न बने तुझसे ललन; शिष्यों में शिर मौर॥

बर्मी बन कर वात्रलाभ्रमर; जंघे में छेद बनाता है।
कर्ण सा शिष्य बन कर सुमेर;उस का न ध्यान भी लाता है॥
यदि होते हम ऐसे चेले; चुहिया पास से निकल जाती।
तो चीख़ मारकर गिरजाते; कुटिया भर हम से हिल जाती॥
गुरुका माथा तो बात है क्या !; गुरुको भी कहीं पटक देते।
तत्काल बुख़ार चढ़ा लेतें; स्कूल से छुट्टी ले लेते॥
इतना ही नहीं, शिकायत कर; गुरु जी को मजा चखा देते।
अपनी ख़िदमत करवाने पर; कुल लड़कों को भड़का देते॥

किन्तु, नतीजा उसी का; पाते हैं हम आज।
हुए न तुझ से शिष्य हम;मिले न वह गुरु-राज॥

उस "बावनाक्षरी" जाल ही से; जीवन भर निकल न पाये हैं।
"चौदह विद्या" क्या होती हैं; बस इतना रटते आये हैं॥
ज्योतिष-व्याकरण-वेद तो क्या !; भाषा भी पूरी पढ़ न सके।
विज्ञान-ज्ञान का सपना है; "क्यों!क्या!"ही से जब बढ़ न सके॥
सुनते हैं–धनुर्वेद कुछ था; रति–शास्त्र पढ़ाया जाता था।
जन्म से मरण तक का सारा; कर्तव्य सिखाया जाता था॥
हम ने तो "क्यों क्या!" पढ़ली है;काफी है अपने जीवनको।
सर मारे कौन शास्त्रों में !; काफी है वेतन पालन को॥
हमने गुरु को व्याधा समझा; गुरु ने हमको शिकार समझा।
चेलों ने उसे भार समझा; गुरुओं ने रोज़गार समझा॥
माँ बापों ने भेजकर वहां; झगड़ों से जान छुटाई है।
लड़कों ने घरके कामों से; मुद्दत को छुट्टी पाई है॥

अपने अपने भार से; सभी हुए हैं मुक्ति ।
हम लोगों ने सीखली; अपनी अपनी युक्ति ॥

"रति-शास्त्र" हमारा अमल हुआ; रोगों से अपनी यारी है ।
कंगाली अपनी चेरी है; दासता हमारी नारी है ॥
हम काम-कला-अवतारी हैं; क्या हुआ ? उम्र के छोटे हैं ।
ढाई फीट के जवान हैं हम; यक बे पैंदे के लोटे हैं ॥
सोचा कर्ण ने-"अगर मैं यह; नीचे से भ्रमर भगाता हूँ ।
अथवा उसके जाने के लिये; जंघे को तनिक हटाता हूँ ॥
तो निद्रा गुरु की टूटेगी; सेवा में अन्तर आयेगा ।
यह घाव तो कल भर जायेगा; पर घाव न वह भर पायेगा ॥"

यही सोच कर वहाँ से; डिगा न सूर्य्य-कुमार ।
जंघा से बहने लगी; एक रुधिर की धार ॥

बहते बहते वह रक्त-धार; ज्यों ही उनके नीचे पहुँची ।
तो उसकी ठंडक लगने से; गुरु वर की निद्रा टूट गई ॥
कर्ण की अटल शक्ती लखकर; भृगुपतिका संभ्रम निकल गया ।
भृकुटी में भँवरें पड़ने लगीं; और सहसा तेवर बदल गया ॥
बोले-" ओ दुष्ट, छली, पापी; तू शिष्य नहीं है, कपटी है ।
धोखे से पढ़ने आया है; द्विज-पुत्र नहीं है, क्षत्री है ॥
ब्राह्मण की इतनी शक्ति कहां; जो रक्त देख कर शान्त रहे ।
ब्राह्मण में इतना धैर्य्य कहां; जो डटा रहे आघात सहे ॥
यह शक्ति फकत क्षत्रिय की है; तलवार गले पर चल जाये ।
लेकिन मजाल क्या जो उसकी; भृकुटी पर भी कुछ बल आये ॥
यमराज सखा है क्षत्रिय का; तलवार सखी है क्षत्रिय की ।
रण-क्षेत्र स्वर्ग है क्षत्रिय का; रिपु-रक्त नदी है क्षत्रिय की ॥

यह धैर्य उन्हीं का हिस्सा है; क्षणभर में प्राण गँवा डालें।
धर्म के लिये-हँसते हँसते; बोटी बोटी खिंचवा डालें॥
इतनी रक्त की धार पर क्या!; ब्राह्मण यों शान्त डटा होता।
फटकार लात, चीत्कार मार; दम भरमें अलग खड़ा होता॥"

गायन

रण--बंका, निःशंका, क्षत्रिय; भागे नहीं देख हथयार।
समर-सुभट, बल-विकट, प्रकट-नट; कट कट करे केलि खिलवार॥
खाँडा, शूल, सेल, असि, परिघा; परत मनौं प्रेमिनके हार।
हर्ष-सहित दुर्धर्ष-वेष-धर, रति-आमर्ष, कर्ष किलकार॥
पग,-भुज, रुण्ड, मुण्ड, रिपु-झुण्डन; झूमत झुकझुक दे झनकार।
बुंदियाँ कह ते घन-रन-थलकी; रक्त-छींट जनु परत फुहार॥
जम जनवास-धनी जिन जानौ; वे जानौ क्षत्रिय-सुकुमार।
विप्र विचारे, पूजा, माला, छांड़; छुवैं कबहूँ तलवार॥

परशुरामसे कर्णने; कहा जोड़कर हाथ।
बेशक क्षत्रिय-तनय हूँ; क्षमा कीजिये नाथ!॥

विद्या-प्रेममें मग्न होकर; यह कपट कमाना पड़ा मुझे।
आपके गुणों पर मोहित हो; क्षत्रीत्व छिपाना पड़ा मुझे॥
सच्चे गुरुकी सेवा-निमित्त; यह जाल बनाना पड़ा मुझे।
इन चरणोंके आकर्षणमें; ब्राह्मण, बन आना पड़ा मुझे॥
भृगुपति बोले-"जो हुआ, हुआ; विद्या अब लौट नहीं सकती।
सम्बन्ध शिष्यका होनेसे; अभिशाप को बाँह नहीं उठती॥
लेकिन इस छलका फल यह, है; उसकी विधि अपने आप समझ।
दो बातें तुझसे कहनी हैं; वरदान समझ, या शाप समझ॥
यह पंच बाण ले-जब तक यह; तेरे पाससे न जायेंगे।
तब तक कितने ही वीर धीर; तुझको न मारने पायेंगे॥

लेकिन जिस दिन यह पंच-बाण; हाथसे निकलने पायेंगे ।
बस याद रहे-तो यही बाण; फिर काल-रूप बन जायेंगे ॥
जा यह तुझको गुरु-बल भी है; उत्ताप भी है, सन्ताप भी है ।
परसाद भी है, दुर्वाद भी है; आशीश भी है, अभिशाप भी है॥

कर्ण बाण ले-सिर झुका; घर आया साह्लाद ।
जन्मेजय, सुन ध्यानसे; आगेका सम्वाद ॥
किया स्वयंवर वहाँ पर; कुन्तीका भूपाल ।
पाण्डु-कुँवरको देविने; पहिनाई जयमाल ॥

"मद्रपति" मद्रके राजा की; जो "माद्री" नाम कुमारी थी ।
भीषमने उसे विजय करके; पाण्डु के साथ शादी कर दी ॥
फिर "पाराशरी" नामवाली; थी "देवराज" की दुहिता जो ।
उसको जीतकर स्वयंवरसे; व्याहा कुल-भक्त विदुरजीको ॥

"गान्धारी" गर्भित हुई; हुआ न लेकिन लाल ।
इसी तरहके कष्टमें; बीत गये दो साल ॥

बढ़ता जाता है गर्भ-उदर; बढती जाती है पीड़ा भी ।
उम्मेद न पैदा होने की; आशा न प्राण बच सकने की ॥
दिन रात कष्ट से तड़प तड़प; "हाहा-हाहा" चिल्लाती है ।
सुन सान कभी पड़ जाती है; बेचैन कभी हो जाती है ॥
इन दिनों नौ महीने में ही; कितना "हूहा" मच जाता है ।
सन्तति के बाद प्रसूता का; दूसरा जन्म कहलाता है ॥
सच भी है, सभी जानते हैं; क्षण भर मुश्किल पड़ जाता है ।
फिर जिसे हुए चौबीस मास; उसका रखवार विधाता है ॥

पेट चीड़नेके लिये; सोचा गया उपाय ।
किन्तु, उसी दिन व्यासजी; महलों पहुँचे आय ॥

मचा हुआ था महलमें; बेदम हाहा कार ।
हर दरसे, दीवारसे; था रोने का तार ॥

धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर-भक्त; बैठे यक तरफ़ सिसकते थे ।
नौकर चाकर चीख़ते हुए; उसकी सेवायें करते थे ॥
रनिवासमें अजब कुतूहल था; दासियाँ बिलखती फिरती थीं ।
दाइयाँ शोकमें भरी हुईं; रग रग का माप कर रही थीं ॥

मुँह तकनेके सिवा था; अब क्या किसके पास ।
उनका अन्तिम हाथ था; उसकी अन्तिम श्वाँस ॥
किन्तु जहां आये नज़र; धन्वन्तरि–अवतार ।
ज्ञान-धाम, तप-तेज-निधि; ब्यास वंश-पतवार ॥
तहाँ आपही महलमें; गई शान्ति सी छाय ।
दास, दासियाँ, देवियाँ; गईं चरण लपटाय ॥

चरणोंमें विदुर, पाण्डु गिरकर; देवीकी व्यथा सुनाने लगे ।
अपने उपाय सब कह डाले; भावी की कथा सुनाने लगे ॥
फिर बोले–"अब तो तुम जानो; हम तो अपनी कर हारे हैं ।
हे योगनिष्ठ ! तप-तेज-पुञ्ज; हम याचक सभी तुम्हारे हैं ॥"

ब्यास देवने उसी क्षण; किया मन्त्र उच्चार ।
निकल पड़ा झट उदरसे; मज्जा पिंडाकार ॥

वह फ़क़त माँस का टुकड़ा था; वास्तवमें कोई अंग न था ।
कोई विशेष शक्ल भी न थी; कुछ रूप न था, कुछ रंग न था ॥
यह दशा देख कर "गान्धारी"; मनमें बेहद शरमाई है ।
इस दो साल की कमाईमें; चुहिया भी हाथ न आई है ॥
लोगोंमें कौतूहल फैला; आश्चर्य्य समझ कर घेर रहे ।
कुछ खेद भरे, कुछ मौन रहे; कुछ भय खाकर मुँह फेर रहे ॥

कुछ लोगोंने दुर्दैव समझ; मनहीमें की विवेचना है ।
कुछ लोगोंने स्पष्ट कहा—"यह महा-अनिष्ट-सूचना है ॥

"गान्धारी" रोने लगी; ठोंक ठोंक कर माथ ! ।
इस अबलाके साथमें; भला किया दिननाथ ! ॥

सौ बेटोंका वरदान दिया; उनमें एक भी दिया होता ।
बेटा न सही, बेटी होती; या झगड़ा ही न किया होता ॥
अब भाग्य, दैव, या भावी पर; अहसान तुम्हारा धरती हूँ ।
पीड़ाके मारे मरी नहीं; लज्जाके मारे मरती हूँ ॥
हे व्यास देव, हे महामुने, यह लोथड़ कहाँ किया जाये ? ।
पृथ्वीमें गाड़ दिया जावे; या बाहर फेंक दियाजावे ॥"

गान्धारीके शोक पर; यों बोले मुनि व्यास ।
सौ ही बेटे पायेगी; हो मत व्यर्थ उदास ॥

यह माँस--पिंड सौ टुकड़े कर; सौ ही गड्ढोंमें धरवा दो ।
कुण्डोंको घी से भरवा दो; फिर बन्द सभीको करवा दो ॥
बस इसी युक्ति के करने से; टुकड़े बालक बन जायेंगे ।
इस कुल का नाम बढ़ायेंगे; लोक में गण्य कहलायेंगे ॥

अस्तु, इसी तदबीर से; हुए सकल सुकुमार ।
उन्हीं व्यास जी ने धरा; "कौरव" नाम विचार ॥

उनमेंसे मुख्य-चित्र, विक्रम; विवसुत, दुर्मुख, दुःशासन था ।
पर भृत्य तथा वत्सासुर था; सबसे जेठा दुर्योधन था ॥
पहिले दिन वे सारे बालक; केवल अंगुष्ठ बराबर थे ।
गान्धारी माँ की गोदीमें; चूहेसे लोटा करते थे ॥
लेकिन चन्द ही रोज़में, वे-बेलों की नाईं बढ़ने लगे ।
धूलमें लोटने वाले शिशु; सीधी चट्टानें चढ़ने लगे ॥

गान्धारी माँ आनन्द-सहित; पुत्रों का पालन करती है।
लालाओं की लालयत गोद; लालोंसे भरी उभरती है॥

गायन

तुम्हारी तुमने ही जानी।
बिना पवन जीवन तुम देदो; बिना अगिन प्रानी॥
बिना भूमिके बीज उगादो; तरु वर बिन पानी।
रवि बिन भास, देह बिन जीवन, बिना द्रव्य-दानी॥
चतुर चितेरे बिना भीतिके; चित्र-कला ठानी।
किसका-,कहां ? योग बिठलाया; माधव विज्ञानी॥
अंग-बिहीन किये क्या करतब ? कौन सके जानी।
जन "विनीत" "शैलेन्द्र" शरण हैं जय प्रभु गुन-खानी॥

पाण्डु-राज आखेट को; हुए वहां तैयार।
पहुँचे वनमें, घूमते; सजे तीर, तलवार॥
उसी विपिनमें तेज-निधि; रहते थे मुनि एक।
काम-प्रेरणासे गयी; उनकी बुद्धि-विवेक॥

बोले दिनमें ही पत्नीसे; "हे प्रिये ! काम की इच्छा है।
सब काम छोड़ कर-कर प्रसंग; बस मेरी यही आज्ञा है॥
पत्नी बोली-हे आर्य्य-पुत्र !; दासी आज्ञा पर हाजिर है।
हे इन्द्रिय-जित!लेकिन इस दम;वह बुद्धि-विवेक कहां पर है?॥"
मुनि बोले, बुद्धि-शुद्धि सारी; कामके कामसे दूर हुई।
वह मर्य्यादा काफूर हुई; वह दृढ़ता चकनाचूर हुई॥
बस काम-कलोल दीखती है;बाकी कुछ नज़र न आता है।
सच है कामान्ध मनुष्योंको; जगभर अन्धा दिखलाता है॥

इस समय न कोई प्राणी है; ना हवा है, ना कोई बू है।
अन्धेरा है, सुन सान है सब; मैं ही मैं हूँ, तू ही तू है॥"

पत्नीने उत्तर दिया; है ऐसी ही बात।
पर मर्य्यादाके लिये; है यह मानव-जात॥

सारे जीवोंमें नर-शरीर; इसलिये श्रेष्ठ कहलाता है।
वह बुद्धि तथा तर्कों द्वारा; वास्तविक-मार्ग पर जाता है॥
भोजन, बिलास, निद्रा, प्रसंग; पशु, नर दोनों ही करते हैं।
लेकिन इतना ही अन्तर है; हम मर्य्यादा पर मरते हैं॥
यह काम निरा पशुओंका है; जिनको दिन-रात बराबर है।
यदि नर भी ऐसा किया करे;तो नर, पशुमें क्या अन्तर है?॥
यद्यपि पशुओंमें बुद्धि नहीं; फिर भी वे आन निभाते हैं।
कुत्ते तक अपना समय छोड़; फिर रति का ध्यान न लाते हैं॥
फिर नर-शरीर पाकर जो हम; सारी मर्य्याद तोड़ डालें।
दिनमें सोवें, निशमें जागें; शुभ अशुभ न कुछ देखें भालें॥
तो फिर क्या है, नर होने का; दावा ही करना मिथ्या है।
हे नाथ! टहलनी हाजिर है; कहिये सोच कर हुक्म क्या है?"

मुनिवर ने उत्तर दिया—"विद्या, बुद्धि, विवेक।
काम-वीर के सामने; साबित रहे न एक॥

क्या योगी, मुनि क्या इन्द्रिय-जित; जो देखे सुने पुराणोंसे।
उनमें बिरले ही ऐसे हैं, जो बचे काम के बाणों से॥
मुझमें बिचारकी शक्ति नहीं; रुकने की बिलकुल ताब नहीं।
इस समय आन का ध्यान नहीं; तेरी बात का जवाब नहीं॥
हाँ, इतना है, रति करना जो; है दिन में काम न मानुष का।
तो ले, मैं हरिन बन रहा हूँ; तू भी फौरन हरिनी बन जा॥"

योग–शक्ति से, वे हुए; दोनों हरिन–स्वरूप ।
अपनी धुनि में मग्न हो; वहाँ जा रहा भूप ॥

जो गति है, किसी खुद ग़रज़ की; जो हालत है व्यभिचारीकी ।
जो दशा चोर, लम्पट की है; है हालत वही शिकारी की ॥
हाथ में शस्त्र, आँख में लक्ष्य; तन में फुर्ती, मन में आशा ।
बुद्धिमें चपलता मय संभ्रम; कर्म में कपट; धोखा झाँसा ॥
इस जगह गिरे, उस जगह उठे; फिर छिपे, प्रकट हो गये कहीं ।
दब गये कहीं, झुक गये कहीं; रुक गये कहीं, चल पड़े कहीं ॥
आहट न मिले, आवाज़ न हो; दूसरे जीव का दग़ा न हो ।
बाक़े में ऐसे मौकों पर; खुद ख्वास सगा भी सगा न हो ॥

जैसे पीछे विषय के; होता है सन्ताप ।
त्योंही तड़पन जीवकी; बतलाती है शाप ॥
पाण्डु मुनीश्वर का मगर; समझ न पाये भेद ॥
एक बाणही में दिया; उन दानों को छेद ।
लगते ही उस तीर के; "हाय–हाय" चिल्लाय ।
आये असली रूप में; मुनि–पत्नी, मुनिराय ॥

घायल, अधमरे गिरे दोनों; जीवन का सारा सार उठा ।
कुछ उठे भूमि से वे प्राणी; श्वासों का अन्तिम तार उठा ॥
पति की आखें नारि पर उठीं; नारि का पती पर प्यार उठा ।
दोनों ओर से निराश भरा; यक आशा मय उद्गार उठा ॥
चकभकी नज़र से नृप भागा; तब तक कुछ नृपति शिकार उठा ।
असमय में आशा भरे हुए; मरने का बाज सितार उठा ॥
अपने रस में अनरसकारी; कारण पर क्रोध–अपार उठा ।
निष्कारण में मरने वाला, मरने से प्रथम पुकार उठा ॥

ओ हत्यारे, किस समय ? किसका किया हलाल ? ।
किसके रहस–बिलास में; दुष्ट ! बिछाया जाल ॥

किस महा-ज्वाल के जले हुए; हम अपनी ताप बुझाते थे ।
किस कठिन-तृषाके तृषित आज; हमअपनी प्यास मिटाते थे ॥
किन आशाओं से, किस प्रकार; कैसा संयोग जुटाया था ? ।
ओ पापी दो अभिलाषों का; बिरवा फलने पर आया था ॥
जा, जिस प्रकार तूने मेरा; आनन्द–विलास बिगाड़ा है ।
पति, पत्नी के संयोग–समय; उनका रति–बाग़ उजाड़ा है ॥
इस के बदले में शाप है यह; हत्या तेरे सिर आयेगी ।
जिस दिन तू स्त्री–भोग करे; उस रोज़ मौत हो जायेगी ॥ "

इस प्रकार की शाप दे; झट तज दिये शरीर ।
पाण्डु वहाँ वापिस फिरे; होकर निपट अधीर ॥

गायन

अच्छा अगर्चे होता, हिंसा का चहीता ।
तो क्यों शिकारियों का, यों होता फ़ज़ीता ? ॥
खा डाले भेड़, बकरी, जङ्गल के जानवर–
लेकिन न हुआ जन्म में, भोजन का सुभीता ॥
बुझती है भला प्यास कहीं, ओस चाटकर–
पत्तों से कहीं भरता है, आखिर कुआँ रीता ॥
जाते न जो शिकार को, भगवान रामचन्द्र–
तो किस तरह पिशाच से दुख पाती श्रीसीता ? ॥

अये ज़ालमो; पनाह दो, तौबा करो, रहम-
ईश्वर के सभी जीव हैं, क्या शेर, क्या चीता ? ॥
"शैलेन्द्र" सर्व-भूत, ब्रह्म-मय समझ "विनीत"
आज्ञा है यही कृष्ण की, कहती यही गीता ॥

जीवन में केवल दो सुख हैं; या योग करे, या भोग करे ।
योग भी न हो, भोग भी न हो, तो ऐसा नर क्यों देह धरे ॥
नर का शरीर, फिर राज्य-विभव; आनन्द विषय के सूचक हैं ।
यदि उन दोनों से वञ्चित हों, तो सारे सार भजन तक हैं ॥
ऐसा सोच कर पाण्डु नर-पति, त्याग कर राज्य वन में पहुँचा ।
सब भोग रोग का झंझट तज, मन मार तपस्या करने लगा ॥

समाचार पाकर वहीं; पहुँची दोनों साथ ।
कुन्ती, माद्री स्वामिका; लगीं बटाने हाथ ॥
यद्यपि जग के मोह से; छूट गया सम्बन्ध ।
तो भी आत्मा में बसा; वह आत्मीय प्रबन्ध ॥

जैसे सेना बेकार है सब, हथयार और रण-साज विना ।
वैसे ही राज्य-प्रभुत्व-विभव, है व्यर्थ एक युवराज विना ॥
वह कितनी लाचारी होगी ?; सामर्थ्य सफलता पा न सके ।
आगे थाली है सजी हुई; पर भूखा भोजन खा न सके ॥
वह जोश जवानी की शोजिस; वह रहस विलासों का जीवन ।
शौके विसाल की मखमूरी; है एक ठौर वन और जोबन ॥
एक ही जगह दो दो नारीं; जिसके कि गले से बँधी हुई ।
उस एक नुक्स के आने पर; सड़ गईं हण्डियाँ रँधी हुईं ॥

देखा कुन्ती ने जहां; स्वामी का सन्ताप ।
बोली–" प्रियतम ! खेद से, पायेंगे क्या आप ॥

ऐसी अघटित घटनाओं में; उस शक्तिमान की इच्छा है ।
फिर उसके आश्रित जीवों को; सब्र के सिवा चारा क्या है ॥
जिस की इच्छा से शाप हुआ; उस पर संभ्रम करना कैसा ?।
जो भावी-पति के आश्रय हो; तो भावी से डरना कैसा ? ॥
जिस तरह नाथ सन्तोष करें; त्यों ही हम अग्नि बुझायेंगी ।
वह विषय–बिलासों की इच्छा; तप की ज्वाल में जलायेंगी ॥
अब रहा पुत्र, सो महाराज; यक मन्त्र याद है दासी को ।
कहिये तो उसे सिद्ध कर लूँ; एवं सिखला दूँ माद्री को ॥

उसी मन्त्र की शक्ति से; रहे वंश का नाम ।
शीघ्र आज्ञा दीजिये; शुरू करैं यह काम ॥
पाण्डु–राज की राय से; शुरू हो गया जाप ।
पाठक–गण सुन चुके हैं; इस मन्त्र का प्रताप ॥

कुन्ती ने पहिले माला ले; श्री धर्मराज का ध्यान किया ।
जिससे खुद बखुद युधिष्ठिर बन; धर्मावतार ने जन्म लिया ॥
फिर पवन–राज का ध्यान किया; तो भीम-राज उत्पन्न हुए ।
आराधन किया इन्द्र का जब; तब पार्थ शक्ति-सम्पन्न हुए ॥
अश्वनी-नन्द से माद्री ने; दो सुन्दर नन्दन पाये हैं ।
वे नकुल तथा सहदेव कुँवर; माद्री के रत्न कहाये हैं ॥
धर्मावतार पैदायश से; शुच शान्त स्वभाव दिखाते हैं ।
भीम की दीर्घ–काया ही से; बचपन में नर दहलाते हैं ॥
अर्जुन की अनुपम छटा हुई; सर्वांग सुघड़, चटकीला है ।
रतनारे नयन, बयन प्यारे; प्रत्यक्ष इन्द्र की लीला है ॥

इस प्रकार पैदा हुए; पांचों पाण्डु–कुमार ।
धर्म, शक्ति, छवि, बुद्धि, गति; धर आई अवतार ॥

गायन

किस किसने न उपकार किया, हिन्द के लिये ।
ईश्वर ने भी अवतार लिया, हिन्द के लिये ॥
अमरों ने जन्म–मृत्यु के सन्ताप सहन कर–
क्या क्या नहीं बलिहार किया; हिन्द के लिये–
कमला सी प्रिया छोड़ दी; श्री विष्णु देव ने–
बैकुण्ठ भी बिसार दिया; हिन्द के लिये ।
चारों पदार्थ दान किये; सर्व सुख दिये–
" शैलेन्द्र " सब अधिकार दिया;हिन्द के लिये ॥

प्रेम–सहित पलने लगे; पाचों राज-कुमार ।
दुर्योधनके शीश पर; पड़ा राज्य का भार ॥

धृतराष्ट्र राज्य के योग्य न थे; अपनी बीनाई खोने से ।
पाण्डु भी न उसे सँभाल सके; उस महा–शाप के होने से ॥
भीष्म के हाथ था सब प्रबन्ध; दुर्योधन भूप कहाता था ।
पाण्डव थे सारे नाबालिग़; दिन खेल कूद में जाता था ॥
उनको न राज्य का ज्ञान है कुछ;राजसा-भाव का विचार नहीं।
खाने पीने से मतलब है; शासन का कुछ अधिकार नहीं ॥
कुन्ती, माद्री शान्ति-पूर्वक; बन ही में समय बिताती हैं ।
कौरव पाण्डव सब बेटों पर; मातायें लाड़ लड़ाती हैं ॥

एक दिन पाण्डु जंगलमें से, माद्री से मिलने आये हैं।
और रजस्वला माद्री ने भी; उस दिन स्नान बनाये हैं॥
सुथरा शरीर, उघरा मुखड़ा; निखरा जोबन, बिखरे काकुल।
मखमूर नयन, चकचूर मयन; मतवाला गुल, ब्याकुल बुलबुल॥

ला जवाब उस हुस्न पर; बढ़ा काम--उत्ताप।
आप न न आपेमें रहे; भूल गया सब शाप॥



कर पकड़ लिया, झट माद्रीका; बोले-"उफ़! मुझपर दग़ा रहा।
दुखिया चकोर घूमता फिरा; और चांद बग़लमें छिपा रहा॥
अफ़सोस! जौहरी खड़ा रहा; और हुस्न जवाहर पड़ा रहा।
धिक्कार! अतड़ियां रोयाकी; और आगे भोजन धरा रहा॥
माहे मुनीर! जिस दिनसे तू; इस घरमें ब्याही आई है।
उस दिनसे आज क़सम तेरी; ऊपरको नज़र उठाई है॥

उठते ही नज़र फ़जर देखा; वह शबे हिजर काफ़ूर हुई ।
मख़मूर चश्म पुर--नूर हुई; जुलमते अलम शब दूर हुई ॥
चल, चित्र--भवनमें बाम, चलें; कामके नाम पैग़ाम चलें ।
आराम भरे अय्याम चलें; शौक़े विसाल के जाम चलें ॥"
श्रोता गण ! ऐसी सूरत में; माद्री का भी कुछ ख्याल करें ।
उस जन्म-तृषित चातकनीका; हम दो शब्दोंमें हाल कहें ॥
यक लोहा गर्म किया जाये, फिर कुछ छीटा मारा जाये ।
तो जल भी जलकर भाप बने; लोहा भी सर्द न हो पाये ॥
रस-रंग-मयी, शृङ्गार भरी, जब कुछ चर्चा आ जाती है ।
उस समय बिरहणी या कामिन; सहसा मरोड़ खा जातीहै ॥

संभव है, दब जाय कुछ; कामनियोंका भाव ।
किन्तु, बिरहणी नारि का; दबता नहीं प्रभाव ॥

चांद की रात, सुखमय-प्रभात; बिरहिण को काटे खाता है ।
बाग़ो बहार, शृंगार हार; रग रग में आग लगाता है ॥
गुञ्जार भ्रमर की जार जार; पीला शरीर कर जाती है ।
"पी-पी"पपिहाकी "पीपी" पर; कामिन बावरि बलिखाती है॥
आनन्द-राग, विषके समान; तन मन पर छाता जाता है ।
सावन की घटा देखकर दिल; क़ाबू से भागा जाता है ॥
ऐसे कारण और कार्य्य मिलें; फिर साधन भी आगे आये ।
ईश्वर ही वहां सहायक है; जो आग लगे बिन रह जाये ॥

आजीवन की बिरहणी; मिले कन्त पुनि आन ।
ईश्वरके आधीन है; फिर तो सारा ज्ञान ॥
तदपि माद्रीने कहा, भावी सोच बिचार ।
"आर्य्य पुत्र ! हृदयेश, प्रभु; प्रियतम, प्राणाधार ॥

जो फूल, फूलकर धूल करे; एवं जड़-मूल विनाश करे।
जो बढ़ती, बढ़ती में आकर; बढ़ती का सत्यानाश करे॥
जो मीठा, मीठा बन बनकर; कड़ुवाहट फिर पैदा कर दे।
जो सुधा, सुधा का दावा कर; जिन्दा को भी मुर्दा कर दे॥
जो सोना, सोना सिखलाये; जो भोजन पेट फाड़ डाले।
जो मित्र, मित्रता दिखलाकर; मौके पर ही उखाड़ डाले॥
ऐसी भलाई भी है फिज़ूल; जो दम में पलट बुराई हो।
वह योग त्यागने क़ाबिल है; जिसका परिणाम जुदाई हो॥
दासी हाजिर,तन-मन हाजिर; जीवन हाजिर,जोबन हाजिर।
लेकिन प्राणेश ! ध्यान रखिये; अपने जीवनकी भावीपर॥"

पाण्डु-राज कहने लगे-"सुन माद्री गुणवान।
नर की सारी शक्ति पर; भावी है बलवान॥

मैं खुद ही इसे जानता हूँ; उस हत्या का फल पाना है।
मुनिवर की तरह अवश्य मुझे; वैसा ही प्राण गँवाना है॥
मुमकिन है, उसी दुखी मुनिकी, हत्याका नशा छा गया हो।
उस दण्ड रूपमें, इसी रोज़; मरने का समय आ गया हो॥
शायद अब उसी वजह से कुछ; नेको बद नज़र न आता है।
मरनेवाला पतिंग खुद ही; उड़ कर चिराग़ पर जाता है॥
यह तो, तय ही है, अये विदुषे !;एक दिन कभी मरना होगा।
ठहरे भी मानो लाख बरस; फिर भी तो सफ़र करना होगा॥

गायन

जिन्दगी क़ायम रहे, या सौ बरस, या एक दिन।
फिर भी उस दरबारमें होगा बुलावा एक दिन॥

जिक्र क्या है आदमी का !; रह न जायेंगे अमर;
खुदही मिट जानेको है,यह ज़ीस्त दुनिया एक दिन।
हम नहीं, ब्रह्मा तथा शंकर, यथा ब्रह्माण्ड भी-
लाखहा सालों रहें,फिर भी सफाया एक दिन ॥
अपनी बारीपर कमर बाँधे रहो "शैलेन्द्र" तुम,
वह तो बजने ही को है, सफ़री नक़ारा एक दिन।

मरनेसे पहिले ही हम, क्यों; हौसले न दिलके भर जायें ?।
क्यों आशा ही में मरे रहें; आशा पूरी कर-मर जायें ॥
माना, मरनेके बाद वहां; हम परिस्तान को पायेंगे।
अखिर उनसे भी भोग किये; उस शापसे मारे जायेंगे ॥
घर की लक्ष्मी को त्याग चलूं;और आश करूँ वेश्याओंकी।
अपने जीते जी किये रहूँ; तेरी सूरत विधवाओं सी ॥
इस समय न भावी समझ पड़े;ज्ञानों पर ध्यान न जाता है।
सहसा मनसिज मन-मानसमें; मनमानी मोड़ मचाता है ॥
सारे अंगोंमें हरकत है, रग रगके टांके टूट रहे।
जो प्राण, शापसे छुटते थे; वे काम-तापसे छूट रहे ॥

प्राण-प्रिया, पंकज--मुखी; पातिव्रत-पतवार !।
काम-तृप्तिके वास्ते; कर पहिले प्रतिकार ॥

जो मैं मारा ही जाऊँगा; तो शान्ति वहां भी पाऊँगा।
इस विषय-भोग की अभिलाषा; साथमें न लेता जाऊँगा ॥
माद्री बोली-" हे हृदयदेव !; ज़हरीली यहीं खांड़ होगी।
स्वामीका जीवनान्त होगा; और कुन्ती बहिन रांड होगी ॥
वह धर्म-द्वार रुक जायेगा; जिसकी मैं धर्म-भिखारिन हूँ।
चल देंगे वह आराध्य-देव; जिनकी मैं प्रेम-पुजारिन हूँ ॥

इस एक घड़ी की चाहतमें; जीवन की चाहत जायेगी ।
कामी महाराज कहायेंगे; दासी "पति–हरण" कहायेगी ॥

पाण्डु–राजने फिर कहा;–प्रिये ! छोड़ यह ज्ञान ।
मुझसे ना कुछ जीव का; जीवन–मरण समान ॥

मैं हूँ ऐसा आराध्य देव; जो फल देनेके योग्य नहीं ।
मैं ही ऐसा नाकारा हूँ; जो यश लेनेके योग्य नहीं ॥
मैं जीता हुआ, मरा ही हूँ; तुम सौभागनी रांड ही हो ।
क्यों ? प्राण–प्रिये! दुहराती हो;इस हतभागी की करणीको ॥

अनहोनकि समयमें; हुए न शुद्ध–विचार ।
होनी है,जो हो चुकी; "होनी"को स्वीकार ॥

राजा रानी की ओर बढ़े; होनी राजा की ओर बढ़ी ।
इस ओर काम की ताप चढ़ी;उस ओर शाप की ताप चढ़ी ॥
कान्तासे कन्त मिला ज्यों ही;परि–पूर्ण वहीं पर कान्ति हुई ।
इस ओर काम की शान्ति हुई;उस ओर श्वांस की शान्ति हुई ॥

काम चढ़े, रति–रण–मढ़े; उठ न सके फिर भूप ।
बढ़ी मृत्यु की घन–घटा; छिपी प्राण की धूप ॥

गायन

वह जिन्दगी की बूँद; कहां को उछल गई ।
आई थी किस तरफ़से; किधरको निकल गई ॥
डाली हमारे लुत्फ़ जवानी की; अज़ीजो !–
दो रोज़ फूल फूलके; यक साथ जल गई ।
रहनेके लिये, ठौर बनानेका खयाल था–
रहनेकी, इसी वक़्में; मुद्दत निकल गई ॥

तबियत है, किसी ग़ैर की; तबियतसे-तबीयत-
कहते हैं, इसी बात पै-तबियत मचल गई ।
उफ़री, सबात ज़िन्दगीये ख्वाब वे बिना-
तेरे ही लिये; मुल्कमें तलवार चल गई ॥
यह भी है कोई यार; चढ़ाई की निशानी-
चढ़ते न हुई देर, कि फ़ौरन ही ढल गई ।
नादान ? चेत; तीसरी मंजिलमें क़दम है-
पछतायेगा, जो हाथसे; यह भी निकल गई ॥
कोई कहो कि क्या हुआ इतनी हुई ख़तम-
होनेका ज़िक्र ही हुआ; होनी निकल गई ।
कहते हैं-पाण्डु मर गये; परिणाम बुरा था-
"शैलेन्द्र" का दावा है कि-वह शाप फ़ल गई ॥

अभिशाप और फिर मुनिवरकी; अपना प्रभाव दिखलाये ना ।
साधारण जीवोंकी भी आह; बेकार निरर्थक जाये ना ॥
वह एक घड़ी की सुहागनी; जीवनको दुर्भागनी बनी ।
बे काम, अकामिन गणनामें; वह क्षण भर की कामनी बनी ॥
फुर्तीले जोशीले तनमें; निर्जीवन जड़ता जड़ी रही ।
चल बसा बोलता हुआ जीव; केवल वह मिट्टी पड़ी रही ॥
माद्री माथा ठोक कर, रोई दे चिक्कार ।
जुड़ आया रनवास सब, फैला हाहा-कार ॥
कुन्ती, माद्री, पाण्डव, कौरव; धृतराष्ट्र, विदुर, माँ गांधारी ।
दासियाँ दास, रनवास सभी; बिलखाई जनता भी सारी ॥

अन्त्येष्टि-क्रिया बिधि-पूर्वककी; कुछ दिन तक मातम बना रहा ।
फिर काम यथा-रुचि चला किया; बंश में समागम बना रहा ॥
कुछ दिन पीछे "माद्री" ने भी; अपने शरीर को त्याग दिया ।
कुन्ती ने ऐसे संकट में; उन पाँचों को प्रति पाल किया ॥
फिर भीष्म स्वयं लेने पहुँचे; और कुन्ती महलों में आई ।
एक ही साथ में रहने लगे; सौ कौरव, और पाँचों भाई ॥

कौरव-पाण्डव इस तरह; हुए यहाँ उत्पन्न ।
महाबली एवं चतुर; शक्ति-शौर्य्य-सम्पन्न ॥
लगे खेलने साथ में; कौरव, पाण्डु-कुमार ।
किन्तु, भीम के सामने; थे बेहद लाचार ॥
खेल रही थी साथ में; यद्यपि एक जमात ।
मगर भीम के जमे थे; दुर्योधन पर दाँत ॥

जब कौरव-गण "हूँ-हाँ" करके; पेड़ों पर चढ़ने जाते हैं ।
तो भीम पेड़ का तना पकड़; चोटी तक उसे हिलाते हैं ॥
बेचारे बहुत चिपटते हैं; लेकिन आखिर झड़ जाते हैं ।
कोई ऊपर कोई नीचे; बन्दर से पड़े दिखाते हैं ॥
दुर्योधन उसकी शक्ति देख; अन्दर ही अन्दर जलने लगा ।
मेल का पेड़ खोखला पड़ा, द्वेषों का पौदा फलने लगा ॥
सौ मिल कर एक साथ चिपटे; तो मच्छर सा मल डाला है ।
जो एक लड़ा-तो बस-समझो; हलुवा उसका कर डाला है ॥
रग रग टूटी, नस नस ढीली; अध कुचली देह, सर-पका है ।
जो गया अखाड़े में-वह फिर; खुद उठ कर नहीं आ सका है ॥
कूदता उछलता आता है; वापिस खटिया पर जाता है ।
जब वर्षों हलुवा खाता है; तब बाहर आने पाता है ॥

डरते थे कौरव सभी; सुन केवल हुंकार ।
दुर्योधन ही था फ़क़त; उसका दावादार ॥
भीम सेन को प्रेम से; अपने साथ बिठाय ।
धोखे से भोजनों में; दिया ज़हर खिलवाय ॥
कुछ अर्से के बाद ही; हुआ भीम बेहोश ।
दरिया में फिंकवा दिया; ता, न रहे कुछ दोष ॥

भीम की लाश बहते बहते; पाताल–लोक में जा पहुँची ।
पाताल–गंग में उसी रोज़, भावी–वश, नाग–सुता पहुँची ॥
वह सुभग, सजीली, मृतक देह; उस कन्या के मनमें भाई ।
उलझे सुलझे अरमानों में; तत्क्षण ही घर वापिस आई ॥

कहा नाग से–"पिताजी !; कहूँ एक संवाद ।
होगी शायद आप को; मेरे वर की याद ॥

जब मैं शङ्कर का रोज़ाना; पूजन करने को जाती थी ।
नित नये पुष्प, और बिल्व-पत्र; अपने इष्ट को चढ़ाती थी ॥
एक दिन न ताज़े फूल मिले; तो वही पुराने चढ़ा दिये ।
यह देख शम्भु ने क्रोधित हो; यह शब्द मुझे उच्चार किये ॥"
" तूने–मूर्खा जो ग़लती की; वह ग़लती आगे आयेगी ।
इन मुर्दा फूलों के बदले; तू भी मुर्दा वर पायेगी ॥
जो त्रिया शम्भु के पूजन में; बासी फूलों को लायेगी ।
उसकी हालत, उस की दुर्गति; मुझसे बदतर हो जायेगी ॥"

इष्ट–देव का शाप सुन, गिरी चरण लपटाय ।
एवं जीवित–स्वामिका; मांगा वर घिघियाय ॥

शंकर बोले–"मेरा कहना; अन्यथा नहीं हो सकता है ।
जो कहा गया, वह कहा गया; दूसरा नहीं हो सकता है ॥

हाँ, एक यत्न बतलाता हूँ; जो मुर्दा पति पाजाये तू ।
वह जीवित भी हो जायेगा; जो अमृत उसे पिलाये तू ॥

इस प्रकार सध जायेंगे, दोनों ही सन्धान ।
वह मेरा अभिशाप है; यह मेरा वरदान ॥

हे पूज्य-पिता ! वह वर पाकर; मैं वरकी राह देखती थी ।
ऐसा संयोग मिलाने को; शङ्कर की राह देखती थी ॥
गङ्गाजी में सुन्दर, सुडौल; यक मुर्दा बहता जाता है ।
कानों में कोई उस वरकी; रह रह कर याद दिलाता है ॥
नव युवक, सङ्गठित, छबि-धारी; सर्वांग सुचारु सजीला है ।
मुझको तो निश्चय होता है; यह इष्ट-देव की लीला है ॥
आज्ञा पाऊँ, तो ले आऊँ; स्वामी के पद पर बिठलाऊँ ।
श्री शेष नागसे अमृत ला; उस मृतक-मूर्ति को पिलवाऊँ ॥"

नाग राज ने उसी क्षण; दी आज्ञा हर्षाय ।
मृतक-भीम को सुता ने, स्वामी लिया बनाय ॥
शेष-नागके पाससे; अमृत लाई माँग ।
सुधा-योग के साथ ही; उदय हुआ सौभाग ॥

पाताल लोकमें सात कुण्ड; सर्वदा अमृत के रहते हैं ।
उनके रक्षक हैं, तक्षक-गण; ऐसा ग्रन्थों में कहते हैं ॥
एक दिन भीम उन कुण्डों को; देख कर पान करने लागे ।
वह मार मार हुंकार देख; बेचारे तक्षक-गण भागे ॥

समाचार सुन शम्भु को; छाया क्रोध अपार ।
भीम-बीरके साथ में; हुई पूर्ण धरमार ॥

वह शङ्कर जी कहलाते हैं; वह पवन–पूत बजरंगी था।
भोले बाबा की बाजी पर; मद मस्त दिलावर जंगी था॥
कितने ही दिन तक आपसमें; सच्चे जौहर के हाथ हुए।
आखिर भीम की लड़ाई से; हैरान त्रिलोकी–नाथ हुए॥

क्रोधित होकर शम्भु ने; उदर चीड़ तत्काल।
मृतक कर दिया भीमको; अमृत लिया निकाल॥
दशा देख यह भीमकी; गिरजाजी कर जोड़।
बोली–"भगवन्! वीरका; दिया भाग्य क्यों फोड़?॥

यह ठीक है, इसने अमृत पी; बेहद खलबली मचाई।
लेकिन यह भी तो कहियेगा; कितनी वीरता दिखाई है?॥
श्रीमान्, किसी के जौहर पर; जो कुछ प्रसन्न हो जाते हैं।
तो सारे दोष क्षमा करके; उलटा इनाम दिलवाते हैं॥
यह भी यक वीर दिलावर है; इसको भी बख्शिश दीजेगा।
ज्यादा न सही, चामको जोड़; भटवर को जीवित कीजेगा॥"

शिवने गिरजा–विनय पर; जोड़ दिया वह चाम।
उसी रोज़से भीमका; हुआ "वृकोदर" नाम॥
जीवित होकर भीमने; त्याग दिया पाताल।
कह "विनीत-शैलेन्द्र" नित; जयति कृष्ण गोपाल॥

शुभमस्तु.।

इति कौरव–पाण्डव उत्पत्ति।



श्रीः ।

महाभारत-आदिपर्व ।

लाक्षागृह-निर्माण ।

सरल छन्दोबद्ध.

" शान्ति रक्खो, काम ही कुछ और है ।
शान्ति का परिणाम ही कुछ और है ॥ "

"शैलेन्द्र"–"विनीति" कृत–

प्रार्थना ।

विश्व-विमोहन ! टुक मुसका दो; तनिक सुनादो, मधुरी-तान ।
प्रतिभित कर दो, प्राणाङ्गन को; गुञ्जित करदो, करुणित-कान ॥
कुटिल-कटाक्ष-किलोल-लोल-दृग; मृदुल-बोल, अलि-अलक-अलान
चन्द्रहास-चन्द्रिका-चञ्चला; कमल-कलिन-क्रीड़ित चौगान ॥
प्रकृति-वश्य, पार्थिव-वपु-गृहमें; पड़े प्रपीड़ित-पाण्डव-प्राण ।
जला न दें, ज्योतिः-स्वरूप !–; विद्रोह-मोह–कौरवी–निदान ॥
कृपा–पात्र–सूचक, करुणा कर !; करदो कोई चिन्ह प्रदान ।
जो वैतरणी–बोहित बनकर; धर्म–द्वार का बने प्रमाण ॥
द्रुपद–दुलारी के दुकूल में; प्रकटी थी जो शक्ति–महान ।
उसी शक्ति से गाथा-पट में; प्रकटो माधव ! प्रेम-निधान ! ॥
विशद-बुद्धि-बल, दो विवेचना; पद-अनुरक्ति, भक्ति-युत ज्ञान ।
जन "विनीति शैलेन्द्र" रचित यह; अमर रहें, तव गौरव-गान ॥

श्रीः।

प्रसङ्ग-प्रारम्भ

यहां भीमके शोकमें; माता, चारों भ्रात।
दिन दिन देखें गिरि-गुहा-रात रात बिलपात॥

मानो प्रकटे थे पञ्च-देव; फिर एक देवता छूट गया।
या पाण्डु-वंश-पञ्चानन का; कोई आनन सा टूट गया॥
पाला सा पड़ा युधिष्ठिर पर; पारथ पर पड़ी दुनाली सी।
कुन्ती मां की उजियालीमें; छा गई अचानक जाली सी॥
धृतराष्ट्र आदि भी शोकित थे; रनिवासमें पड़ी अकाली सी।
केवल द्रोही दुर्योधन की; आत्मामें हुई दिवाली सी॥

रोरो कर मां थक गई; सब हो चुके निराश।
एक स्मरणके सिवा; रही न कोई आश॥
बैठी थी एकान्तमें; दुखिया कुन्ती माय।
भीम वीरने उसी क्षण; गहे चरण शिर-नाय॥

"हैं!कौन!लाड़ला-भीम-कुँवर"-इतना कह माता लिपट गई।
स्वप्न की बात, स्पष्ट हुई; सहसा निद्रा सी उचट गई॥
" भीम है,भीम ही है निश्चय";-इसको कितनी ही बार कहा।
छातीसे बार बार लपटा; फिर "कुँवर-कुँवर"कई बार कहा॥
भीमने सान्त्वनादी मां को; मां का भी स्थिर-ध्यान हुआ।
बेटेके कहने सुनने पर; असली रहस्य का ज्ञान हुआ॥

चारों भाई भी वहीं; सुन कर यह संवाद।
आपहुँचे तत्काल ही; मिले सहित आल्हाद॥

कुन्ती का खोया रत्न मिला; भ्रातों का वीर-बाहु आया ।
दुर्योधन दुष्ट कलंकी का; फिरसे लौट कर राहु आया ॥
आश्चर्य्य हुआ कौरव-पतिको;रनिवासमें मंगल-गान हुआ ।
धृतराष्ट्र तथा गान्धारी को; दुख का दैवीय-विधान हुआ ॥
भ्राताओंसे भीमने; कहा मृत्यु का भेद ।
खुला उसी दिनसे वहां; शत्रु-भाव का छेद ॥
कौरव लोगोंसे बचे बचे; पाण्डव-गण मिलते जुलते थे ।
चलतेथे अपनी चाल सभी; दोनोंके भेद न खुलते थे ॥
छलसे; बलसे, रण-कौशलसे; या मारूँ, किसी परीक्षामें ।
पाण्डव वीरोंको-दुर्योधन; रहता था इसी प्रतीक्षा में ॥
ज्यों ज्यों दोनों प्रतिपक्षोंके; बल-वय का बिरवा बढ़ने लगा ।
त्यों त्यों क्रम गत दोनों दलमें; द्वेष का रंग भी चढ़ने लगा ॥
किन्तु अभी तक प्रकटमें; खुली न कोई चाल ।
दैव-योगसे आगया; सहसा पाठन-काल ॥
सहसा कहने का अर्थ है यह;अब तक कोई गुरुवर न मिला ।
पढ़ने का रहा विचार मात्र; पर पढ़ने का अवसर न मिला ॥
क्यों कर वह सब संयोग मिला; उस गाथाको समझाता हूँ ।
द्रोणाचार्य्यके आगमन का; पूरा वृतान्त बतलाता हूँ ॥
भारतमें थे उन दिनों; द्रोणाचार्य्य सुजान ।
धनुर्वेद-और नीतिके; अद्वितीय विद्वान ॥
उनके प्रदेशमें, एक समय; दो वर्ष कठिन दुर्भिक्ष रहा ।
जलकी न भूमि पर बूँद पड़ी; भूमि पर न कोई वृक्ष रहा ॥
जो रहा-न उसमें जीव रहा; जीवोंने पत्ते खा डाले ।
छालों को कूट छान डाला; डंठल भूखमें चबा डाले ॥

लाखों प्राणी इस अनजानी; दैवी-घटना पर दान हुए।
सैकडों बाग़ वीरान हुए; सैकड़ों भवन शमशान हुए॥
घर घर धन था, पर धान्य न था; धनसे कुछ क्षुधा नहीं जाती।
सोने चांदी की डलियोंसे; रोटी की व्यथा नहीं जाती॥
जल चर, थल चर सारे प्राणी; जीवन से हुए दुखारी हैं।
दाता रह सके न जल-दाता; भण्डारी बने भिखारी हैं॥
धनिकोंका धन; बलियोंका बल; गुनियों का गुण सब विचल गया
जिसकी जिस ओर को नाक उठी; वह उसी ओर को निकल गया॥

द्रोण विप्र भी चल दिये; लिये सकल परिवार।
पहुँच द्रुपद-दरबारमें; की दुख-भरी पुकार॥

"राजन्! मैं दीन-ब्राह्मण हूँ; बलवान भाग्य का मारा हूँ।
विजयी हूँ वीर भटवरों का; पर हीन हारसे हारा हूँ॥
यह निर्भय-हृदय डर रहा है; हे भाग्यशील! भावी-भयसे।
जो हो समर्थ, तो याचकको; अपनी छायामें आश्रय दे॥"

द्रुपद-राजने द्रोण का; किया पूर्ण-सन्मान।
कहा-"नाथ! पग धारिये; अपना ही गृह जान॥

यह राज-वंश, पद, सिंहासन; जितना धन-धाम हमारा है।
यह राज्य-कोष, अधिकार, विभव; स्वामी! सर्वस्व तुम्हाराहै"॥
राजाने चतुर सेवकों से; सारा प्रबन्ध करवाया है।
एवं अपने ही गुरु-समान; गुरु-वर का मान बढ़ाया है॥

खेल रहा था एक दिन; ÷ गुरु का छोटा लाल।
उसी समय उस ओर से; आपहुँचे कुछ बाल॥

÷ अश्वत्थामा।

धीरे धीरे परिचय बढ़ कर; आपस में उनका मेल हुआ।
फिर बात चीत हो चुकने पर; "क्षीरोदन" वाला खेल हुआ॥
सब बालक तत्क्षण दौड़ दौड़; दूध के कटोरे भर लाये।
पर "अश्वत्थामा" बेचारा; पाये, तो दूध कहां पाये?॥

बाल-मण्डली त्याग कर; चला द्रोण का बाल।
बाल-भाव ही में किया; माँ से वही सवाल॥

जिनको रोजाना मिलता है; गिनती से बँधा हुआ रासन।
जिनकी आकाश दुलाई है; एवं पृथ्वी-माता आसन॥
जिनके जीवन के दिन-दिन दिन; बांटों से तोले जाते हैं।
जिनकी दरिद्रता के ताले; गिन गिन कर खोले जाते हैं॥
दस बजे मिले सामान जिन्हें; फिर उसी समय तक छुट्टी है।
जो बिल्ली हाथ मार जाये; तो दिन भर लंघन पक्की है॥

ऐसे दीनों के निकट; घी दूध का सवाल।
उनही हृदयों से सुने; कोई उनका हाल॥

सोचा मां ने—"लाड़ला लाल; क्यों कर समझाया जायेगा?।
जो इसी समय राज़ी न हुआ; तो दिन भर द्वन्द्व मचायेगा॥
दूसरे बाल-मण्डल में-जो; लज्जा अपमान उठायेगा।
तो छुटपन ही से बेटे का; उत्साह भंग हो जायेगा॥
जिस बालक को छुटपन ही से; झिड़का या पीटा जाता है।
उत्साह गिराया जाता है; या भय विशेष दिखलाता है॥
बालक की उचित मांग पर भी; गाली थप्पड़ बतलाता है।
ऐसे का बेटा आजीवन; दब्बू ही बना दिखाता है॥
यह सोच समझकर—विदुषी ने; चावलका धोवन दिया उसे।"
दूध ही समझ कर—बालक ने; आनन्द सहित पी लिया उसे॥

आपत्ति-काल में जो जनमें; फिर विपदा ही में रहा करे।
विपदा न उसे फिर खलती है; कैसा ही सुख दुख पड़ा करे॥

अश्वत्थामा को हुआ; उसका तनिक न ज्ञान।
चावल का धोवन बना; गौ दूध के समान॥
पड़ा एक दिन भूप-गृह; भोजन का अनुरोध।
अश्वत्थामा को हुआ; वहाँ दूध का बोध॥

जब समझ गया वह भेद लाल;यह दूध है;वह कुछ धोवन है।
तब गऊ दूध पर अटक गई; उस अटकीले की अटकन है॥
झंझट में पड़ी दुखारी माँ; दो चार बार वह द्वन्द्व सहा।
अन्त में अधिक जब तंग हुई; तो यों द्रोणाचार्य्य से कहा॥
"देखो तो हाड़ निकल आये; मेरे सुकुमार दुलारे के।
यक गाय नहीं ला सकते हो; याचक बन राज-दुवारे के॥"
द्रोण ने कहा-"भामिन!बस यह;तृष्णा ही तो दुख-दाता है।
सन्तुष्ट-भूप, या असन्तुष्ट-ब्राह्मण; विनष्ट हो जाता है॥
मैं कल्प-वृक्ष के तले रहूँ; या कल्प कल्प कलपाऊंगा।
फिर भी जो अंश लिख दिया है;रत्ती भर अधिक न पाऊँगा॥
जो ब्रह्मचर्य्य-व्रत-धारी है; वह स्वयं बली हो जाता है।
सिंह का सुपूत-भला बतला; घी दूध कहां से पाता है?॥

डर है-ऐसी माँग से; हो न कहीं अपमान।
इसी लिये सन्तोष से; करले विपद-विहान॥"

भामिन बोली-"मैं मौन रहूँ; पुत्र को कौन समझाता है?।
जो दिनभर द्वन्द्व मचाता है; कानों को फाड़े खाता है॥
जितना सन्तोष कहो मुझ से; उस से भी अधिक मानती हूँ।
भाग्य का फेर, काल का चक्र;मैं भी स्वामी! पहिचानती हूँ॥

आधी रोटी, फल, साग मिले;जो मिले उसी में जिया करूँ।
पाऊँ न कहीं पानी दो दिन; तो हृदय-रक्त पी लिया करूँ॥
अपने सिर पर जो आती है; वह सभी भुगत ली जाती है।
पर बेटे की विपदा भगवन्‌ !; आँख से न देखी जाती है॥
क्या हाँनि?-याचना के द्वारा; जाँच ही सही-इनकार सही।
भीख ही मांगने निकले हैं; यह नहीं-दूसरा द्वार सही॥"

द्रोण-विप्र ने द्रुपद से; अपना कहा विचार।
-किन्तु, भूप ने उसी क्षण; किया साफ़ इनकार॥

बोले-" जो नियम बँध चुका है; उतना ही दिया जा रहा है।
तुमको क्या पता? किसी के घर;कैसे-क्या-किया जा रहा है?॥
जितना जिस "मद"से आता है; वह उसमें लगा जा रहा है।
महाराज ! ख़जानेमें कोई; लूट का न माल आ रहा है॥
जो चाहो, तो उतना ही बस; आजीवन यहाँ लीजियेगा।
अन्यथा आपकी इच्छा है; अन्यत्र याचना कीजेगा॥"

विप्र, वीर फिर वेद-निधि; नीति,प्रीतिका ज्ञान-
वह आतमा कैसे सहे ?; इस प्रकार अपमान॥
स्त्री, बेटेके सहित; चले द्रोण-द्विज-राज।
पल्लेमें पाई नहीं; झोली नहीं अनाज॥
यहाँ गेंद हो रही थी; दुर्योधन के साथ।
पड़ी कुएं में अचानक; किसी बाल के हाथ॥

सब तरह यत्न कर थक बैठे; पर गेंद न निकल सकी बाहर।
सोचने लगे कोई उपाय; जब हार गये, सब "हूँ-हाँ"कर॥
कोई रस्सी को दौड़ पड़ा; कोई बाँस को चलाने लगा।
कोई बाँधकर दुपट्टोंमें; पत्थर गेंदको हिलाने लगा॥

भूखे प्यासे द्रोण–द्विज; आ पहुँचे उस ओर।
मचा हुआ था जहांपर; उन बच्चोंका शोर॥

देखा–तर हुए पसीनेसे; बच्चों की हाँप चल रही है।
मचली है रुचि गेंद के लिये; पर कोई विधि न चल रही है॥
बोले–"ठहरो इस तरह गेंद; तुमसे न निकाली जायेगी।
देखो मेरे उपाय से वह; आपही निकलती आयेगी॥"



इस प्रकार कह द्रोणने; सींक–बाण–सन्धान।
अभिमन्त्रित कर गेंदपर; मारा वहीं निशान॥

वह सींक मिस्ल रस्सी बनकर; गेंद को खींच कर ले आई।
भारत की अस्त्र–कुशलताका; आदर्श–मात्र देखो भाई!॥
बममें, गोलीमें, बर्छीमें; यह शक्ति किसीने पाई है?।
जो शक्ति, शक्ति–शाली करसे; इस तिनकेने दिखलाई है॥

पाकर गेंद प्रसन्न हो; चले गये सब बाल।
दुर्योधन ने भीष्मको; बतलाया वह हाल॥

भीष्म ने कहा–"ऐसा भटवर; द्रोणके सिवा दूसरा नहीं।
खुल जाय, भाग्य तुम लोगोंका; जो यहां विप्र आ जायँ कहीं॥"
ऐसा विचार कर भीष्म–शीघ्र; जाकर, गुरुवरको ले आये।
षोडश प्रकार पूजन करके; अपने विचार यों प्रकटाये॥
"भगवान्! रहे सुन्दर शरीर; जो प्राण नहीं-तो कुछ भी नहीं।
प्राण भी रहें, देह भी रहे; सन्तान नहीं तो कुछ भी नहीं॥
संतान हुई, लेकिन यदि वह; गुणवान नहीं तो कुछ भी नहीं।
गुण सभी रहें-लेकिन जबतक; हरि-ध्यान नहीं तो कुछ भी नहीं॥
कालान्तर से विचार मेरा; इस सागर में तैराता था।
पर बिना विचार–शील–गुरुके; वह पार न जाने पाता था॥
सूर्य्य से निकल कर अंगारे; छिपते हैं नाथ! अँधेरे में।
साम्राज्य अविद्या जमा रही; प्रभु विद्या–पतिके डेरेमें॥
हीरे के हार बिक रहे हैं; कांच की लड़ी में लगे हुए।
मणियों के ढेर लुट रहे हैं; कँकरीले–थलमें पड़े हुए॥
शान्तनु–कुलके युवराज आज; मिलते जुलते हैं भीलों में।
व्यासर्षि–वंशके यह बिरवे; छिपते हैं छुद्र करीलों में॥
हे शस्त्र–शास्त्र–विद्या–वारिध!; चेलोंपर दया-दृष्टि कीजे।
सेवकके यहां वास कीजे; और उन्हें मनुष्य बना दीजे॥"

विनय–वचन यह भीष्मके; हुए उन्हें स्वीकार।
उनको सिखलाने लगे; शास्त्र-नियम–अनुसार॥

वह गदका, फड़ी, पटेबाजी; कुश्ती, या मल्लयुद्ध सारा।
बाणोंसे अग्नि प्रकट करना; या बरसा देना जल–धारा॥
बाणों बाणोंसे वायु चले; बाणसे सर्प फुङ्कार चलें।
बाणों बाणों से मोर बनें; सारे सर्पों को मार चलें॥

बाणों से सूर्य्य डूब जाये; छिपकर फिर वहीं नज़र आये।
प्रत्यक्ष काल-ज्वर आ जाये; और क्षण–मात्रमें उतर जाये॥
यह विद्यायें वह गौरव थीं; जिनको संसार तरसता है।
जिनके अभावसे भारत पर; घर घर दारिद्र बरसता है॥
प्रत्येक वीर कोशिश करके; विधि–पूर्वक शस्त्र सीखता था।
लेकिन अर्जुनकी समता पर; कोई भी नहीं पहुँचता था॥
कर्ण भी उन्हीं के साथ साथ; अभ्यास बढ़ाने जाते हैं।
गुरु–भाईके नाते उनको; गुरुवर जीसे समझाते हैं॥

कौरव-पाण्डव इस तरह; पढ़ते थे यक साथ।
कहना है हमको यहां; एक दूसरी गाथ॥

एक ही जगह शिव–पूजन को; कुन्ती, गान्धारी जाती थीं।
पर–एक दूसरी से कोई; मिलने न कभी भी पाती थीं॥
एक दिन किसी कारण–वशात्; मिलने की वह बारी आई।
जिस समय वहाँ कुन्ती पहुँची; वैसे ही गान्धारी आई॥

गान्धारी कहने लगी–“कुन्ती से ललकार।
राज–शिवाले में कहाँ ?; है तुझको अधिकार॥

क्या मेरी समता करने को; हुज्जत में कुन्ती मरती है?।
अथवा इस एक बहाने से; मन्दिर की चोरी करती है॥”
कुन्ती बोली–“अधिकार मुझे; आज से नहीं–छुटपन से है।
बतलाओ तो, महारानी जी !; यह राज्य तुम्हारा कबसे है ?॥
यह राज्य नहीं है, भीख समझ; जो मैंने तुझे डाल दी है।
भाई बन्दी के नाते से; तेरी सन्तान पालदी है॥

गायन

कल तक तो मैं ही मैं थी, अब कोई नहीं हूँ।
रानी थी जहाँ, आज क्या ? चेरी भी नहीं हूँ॥
जिस के कि रक्त–यत्न से; यह रत्न फले हैं–
उस रत्न–बाटिका की, क्या ? मूली भी नहीं हूँ।
देवी न सही "शैलेन्द्र"–"गोविन्द" कुछ तो हूँ–
क्या भक्ति–भाव की भी; अधिकारी नहीं हूँ ?।"

गान्धारी बोली–"छोड़ स्वप्न; अब तो हो चुका सवेरा है।
मेरा मेरा कहचुकी खूब; अब बतला दे क्या तेरा है ?॥
तेरा था, तो तेरा रहता; तेरा मेरा क्यों किया गया ?।
वह एक धरोहर का धन था; जिसका था उसको दिया गया॥
तेरे भाग्य में वही अब है; टुकड़ों पर गुजर चलाया कर।
जाया कर कहीं, न जाया कर, आज से यहाँ मत आया कर॥
जो टुकड़खोरनी के ललुवे; उस रोज न भीष्म उठा लाते।
तो कहीं भटक कर तड़प तड़प; अब तक वे पाचों मर जाते॥"
बात पर बात की बात बढ़ी; बातों से बढ़कर लात बढ़ी।
गान्धारी कुन्ती तरफ बढ़ी; और लात मार शीश पर चढ़ी॥

हाथा पाई हो पड़ी; पड़ा हाथ पर हाथ।
त्यों ही बीच–बचाव को; प्रकटे गौरी–नाथ॥

बोले–"देवियो ! मूर्खता में; निष्कारण गले पड़ रही हो।
मेरे तेरे के चक्कर में; क्यों मेरे लिये लड़ रही हो ?॥

यह सारी भ्रम की बातें हैं; मैं तेरा हूँ, या इसका हूँ।
कुछ पूर्व-कथापर ध्यान करो; फिर कहो, असलमें किसका हूँ ?॥
प्रेम के साथ है साथ यहाँ; है हाथ न केवल बकझकका।
प्रेम में तनिक अन्तर आया; साथी न हुआ गिरजोंतकका॥
छत्ती सों व्यञ्जन धरे रहें; विश्वास बिना सुर छुए नहीं।
यह याद रहे–प्रेम के बिना; देवता किसी के हुए नहीं॥
जो विप्र छली कपटी होगा; वह निश्चय मुझसे न्यारा है।
यदि शूद्र शुद्ध–विश्वासी हो; तो मुझे प्राण से प्यारा है॥

जितना नृप से प्यार है; उतना जन पर प्यार।
देवों के दरबार में; है समान अधिकार॥

गायन

देवों की महिमा, समझ उसी ने पाई।
बैठा है, जो जन तन, मन से लौ लाई॥
बैठा³ सके न राना जिन को; स्वर्ण–धाम बनवाई–
लगी नचाने उन गिरधरको; घर में मीराबाई॥...देवों–
अति⁴ पवित्रा–उन पण्डों की; जिन्हें न सेवा भाई।
महा मलेच्छिन शिवरीके; बेरोंपर नियत डिगाई।...देवों–

१–देखो गान्धारी–वरदान। महाभारत (उत्पत्ति)
२–यहि तनु सातिहिं भेंट मोहिं नाहीं। शिव संकल्प कीन्ह मनमाहीं।श्रीमद्गोस्वामीजी।
३–पीर–पीर सी गुरु रहे; मीरन मुख न समीर।
मन मोहन मनि पायके; मीरा है गई मीर॥
४–जे कुबेरकी बेर हू;अलख अलख अलखात। ते शवरीके बेरलख;बेरबेर बलखात।।लेखक।

पँच हारे द्विज ध्यान ज्ञान कर; घंटा–शङ्ख बजाई ।
उन्हें मासकी घड़ी बनाकर; तोले सदन कसाई ।...देवों–
ज्ञान, ध्यान, व्रत, पूजन, संयम; धर दे गाँठ बँधाई ।
कहँ "विनीत–शैलेन्द्र" जपो प्रभु; द्रवित रहें यदुराई ।।

मत ढूँढ़ो मुझे मन्दिरोंमें; मत देखो जटा–धारियोंमें ।
अपने मन–मन्दिरको खोलो; पाओगी प्रेमी हृदयोंमें ।।
जो मुझे प्रात स्वर्णके पुष्प; सुन्दर सुगन्ध मय लायेगी ।
उस प्रेमिन की सन्तान यहाँ; निश्चय सम्राट कहायेगी ।।

सुन कर शंकरके वचन; गमनी दोनों साथ ।
गान्धारीने पुत्रको; समझाई वह गाथ ।।
दुर्योधनने उसी क्षण; स्वर्णकार–बुलवाय ।
सोनेके सौ से अधिक; फूल दिये गढ़वाय ।।
फूल–फूल पर कवित थे; बीज–बन्ध, गुल–बंध ।
लेकिन सब लाचार थे; मिले कहांसे गंध ! ।।

दुर्योधन बोला–"धन–दोलत; दे दे ना अपने साथ की है ।
लेकिन सुगन्ध कैसे पायें?; कुछ प्रकृति न अपने हाथकी है ।।
रहने दो, भोले बाबा तो; इनसे ही खुश हो जायेंगे ।
वह भिख मंगे तो इनको भी; जीवन भर जोड़ न पायेंगे ।।"

१–तूलनमें, फूलनमें, झूलनमें, मूलनमें; कूलनमें, कोलनमें, औजमें न औलमें ।
वासमें प्रवासमें न, वासमें निवास है न; भासमें न भास है न भास चारु चौलमें ।।
नारनमें, तारनमें, तारनमें न तारे ते; विधिमें न विधमें न विधु विधु मौलमें ।
तुले ना तिलोक तौल, तौल तौल ताकी तक; तुलेते तिलोक तोल सदनाकी तौल में ।।

२–ये दारागारपुत्राप्तान्प्राणान्वित्तमिदं परम् ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तास्त्यक्तुमुत्सहे ।।

वहां गई कुन्ती महल; होकर निपट उदास ।
गुरुसे पढ़ कर भीम भी; पहुँचे मांके पास ॥
चिल्लाया किये भीम घण्टों; मुँह आईं आतें लपक उठीं ।
भोजन-भगती की भगतीमें; भूखोंसे भुकनी भभक उठीं ॥
भड़के किवाड़, कुण्डी खटकी; पर भीतरसे खटका न हुआ ।
पट का अन्तर-पट-पटक गया; पर प्रेमिन-पट-पटका न हुआ ॥
झल्लाया किये भीम-लेकिन; कुछ खबर न ली महतारीने ।
तब तक आकर कारण पूछा; श्री धर्मराज व्रत-धारीने ॥
भीमने कहा-" जैसे तैसे; गुरुजीसे छुट्टी पाई है ।
भूखोंसे सिर चकराता है; आंतोंमें मची लड़ाई है ॥
रोकर, घिघिया कर, कुट पिट कर; ज्यों त्यों कर जान छुटाई है ।
तो भाई इधर रिसाई है; घर आये, कुघड़ी आई है ॥
कहा युधिष्ठिरने-" नहीं; है, विशेष कुछ शोक ।
इसी वजहसे किवाड़ें; दिये मातुने रोक ॥
यों कह कर स्वयं बुलाने लगे; आई कुन्ती मां मन मारे ।
यह दशा देख कर ठिठक रहे; चुप हुए युधिष्ठिर बेचारे ॥"
लेकिन पार्थने कहा-"मां! यह; क्या नया दृश्य दिखलाताहै? ।
वात्सल्य-भरी इन आखों में; कुछ शोक-भाव प्रकटाता है ॥
बेट के सिर पर हाथ फेर; यों कहा, दुखारी माता ने ।"
"बेटा! सुख कैसे मिलता है?; जब दुख लिख दिया विधाताने ॥
जो सुख दैव ने लिखा होता; तो राज्य हाथ से क्यों जाता ? ।
औरों के टुकड़े क्यों खाते ?; यह दिन ईश्वर क्यों दिखलाता? ॥
इस समय सब्र के सिवा और; बेटा ! अपना क्या चारा है ?।
तुम पाँचों भाई छोटे हो; और नारी-जन्म हमारा है ॥ "

उबल उठा यह शब्द सुन; वह जोशीला खून ।
बोला—"माता ! हुक्म दे; डालूँ सृष्टी भून ॥

सौ गीदड़ पूत रहें, फिर भी; माता ठुकराई जाती है ।
एक ही सिंह सा बेटा हो; तो सुख से समय बिताती है ॥
तेरे पवित्र लोहू का बल; बलवानों को निर्बल करदे ।
यह पाँच सुपूतों की सेना; कह तो, जग में हलचल करदे ॥

गायन

पंच मुखी वन-राज बन्यौ; अरु पञ्च-मुखी महदेव कहावैं ।
पञ्च उधार करैं नर की नर; पञ्च मिलें तौ पहार उठावैं ॥
दै लकरी जग-जीवन कौ; जग जीवन तैं सुर-धाम पठावैं ।
पंचन को परपंच न जान; सुपंचन में परमेश्वर आवैं ॥"

कुन्ती "बोली है मुझे; इतना ही विश्वास ।
किन्तु, उदासी की वजह; है अर्जुन ! कुछ खास ॥

स्वर्ण के सुगन्धित फूलों की; श्रीशङ्कर ने आज्ञा दी है ।
मैंने वे पुष्प चढ़ाने की; नाथ से प्रतिज्ञा भी की है ॥
गान्धारी का भी यह प्रण है; उस को अवश्य निभ जाना है ।
सौ बेटे, और हुकूमत, है; समरथ है, माल खज़ाना है ॥
अपनी गाँठ में छदाम नहीं; दासों की तरह गुज़ारा है ।
यह काम शक्ति या धन का है; इस में क्या जोर हमारा है?" ॥

अर्जुन बोले—"ओह ! बस; एक तीर का नाप ।
इतना ना कुछ काम यह; जिस पर यों सन्ताप ॥

१—माता जने तो दो जने, कै दाता के शूर ।
नातरु माता बाँझ भलि, मती गँवावे नूर । "अन्य कवि"

माता ! सानन्द करो भोजन; आपही फूल आ जायेंगे।
तेरे जाने से पहिले ही; शिव-मन्दिर पर छा जायेंगे ॥"
इतना कह पाँचों भाई मिल; सानन्द लगे करने भोजन।
जब एक पहर रह गई रात; तब धन्वा लिये, उठे अर्जुन॥
अति प्रखर बाण खींच कर वहीं; छोड़े कुबेर के उपवन पर।
लग गई झड़ी सी फूलों की; छा गया उमा-पतिका मन्दिर॥

प्रातः दिया उस देवि को; शिव जी ने वरदान।
"शासक सारे राज्य की; हो तेरी सन्तान॥"

गान्धारी यह आश्चर्य्य देख; लज्जित सी होकर लौट पड़ी।
इस तरफ़ बात इस भांति बढ़ी;उस ओर बात इस भांति चढ़ी॥
जब कौरव और पाण्डवों की; शिक्षा द्रोण ने पूर्ण कर दी।
तो भीष्म तथा कुछ लोगों ने; वीरों की वीर-परीक्षा ली॥
यद्यपि सब शिष्य-मण्डली ने;चढ़ बढ़ कर जौहर दिखलाये।
पर कौरव तथा पाण्डवों में; अर्जुन ही सर्व प्रथम आये॥
जो दुर्योधन इत्यादि वहाँ; सौ गज़ तक तीर चलाते हैं।
तो पार्थ-वीर के प्रखर तीर; सौ गुने निकल कर जाते हैं॥
कौरव लोगों के बाण अगर; दस पाँच निशान लगाते हैं।
तो अर्जुन सुभट एक शर से; अनगणित छेद दिखलाते हैं॥
हो गया चकित दर्शक-मण्डल; आवाज़ वाह की गूँज उठी।
श्री धर्म राज को शान्ति हुई; भीषम की छाती फूल उठी॥
कितने ही दर्शक-वृन्दों ने; जयकार किया, जय हार दिया।
आकर उमङ्ग में गुरु-वर ने; पार्थ के हाथ को चूम लिया॥

सूर्य्य-सुवन कहने लगे;–" करते हो अन्धेर।
ज़रा बात पर लग गया; वाह वाह का ढेर॥

कौन सा बड़ा करतब है यह; जो इतना शोर मचाते हो।
क्यों जान बूझ कर महाराज !; सब का उत्साह गिराते हो॥
यदि इतनी ही कुल बात है तो; दोनों की समता कर देखो।
पार्थ के हुनर को देख चुके; अब मेरा भी जौहर देखो॥"
इतना कह कर कर्ण ने बाण; कान तक तानकर छोड़ दिया।
जिससे अर्जुनकी तरह, छूट; तत्क्षण नभ-मण्डल फोड़ दिया॥

तीरन्दाज़ी कर्ण की; की सब ने स्वीकार।
कहा—"कर्ण और पार्थको; है समान अधिकार॥"
कहा कर्ण ने—" यों नहीं; हुआ ठीक निर्धार।
मल्ल—युद्ध के वास्ते; हो अर्जुन तैयार॥

जो मल्ल—युद्ध में बाजी ले; वह अव्वल है दम बाजी का।
दो हाथ यही बाजी देखो; गुरु सही वह तीरन्दाजी का॥"
द्रोण ने कहा-"अर्जुन बेटा!; क्या रण-ललकार सुन चुके हो?।
आगे आओ, स्वीकार करो, कायरकी तरह क्यों रुके हो?॥"
पार्थ ने कहा-"गुरु-कृपा-पात्र; कायर न कभी हो सकता है।
खो सकता है, आन पर प्राण; पर आन नहीं खो सकता है॥
हाजिर हूँ, फ़क़त् इशारे से; तत्पर हूँ बिला विचारे ही।
इस में भी विजय दिलायेंगे; वे आशीर्वाद तुम्हारे ही॥"

फुर्री आई बदन में; गये अंग सब फूल।
हाँक मार अर्जुन उठा; दी आपस में धूल॥
÷कृपाचार्य्य कहने लगे; "उचित नहीं यह नीति।
समता ही में कीजिये; व्याह-वैर और प्रीति॥

÷ द्रोणाचार्य्यके साले।

यदि एक बाहरी व्यक्ति आज; पार्थ से विजय पा जायेगा।
तो राज-वंश का गौरव भी; कुछ दिन में गिरता जायेगा॥
पहिले अये कर्ण वंश अपना; हम सब लोगों को बतलाओ।
पीछे से शुद्ध-सोम-वंशी; पार्थ के मुकाबिल, पर आओ॥"

कर्ण वीर पर फिर पड़ी; टूट लाज की गाज।
आँखें नीची पड़ गई; बिगड़ गया सब साज॥

लेकिन लज्जा का प्रतीकार; होता है क्रोध दिखाने पर।
हलका होता है शोक कभी; जी भर आँसू बह जाने पर॥
बोले—"ईश्वर ने चाहा तो, जाति भी कभी बतला दूँगा।
जिस जाति-वंश का बेटा हूँ; कुछ दिन में तुम्हें दिखा दूँगा॥
फिर भी इससे मतलब क्या है? यह तो रण-कौशल-शिक्षा है।
जातिका नहीं है इम्तिहान; यह तो बल-वीर-परीक्षा है॥
जातिसे और विद्यासे क्या?; सम्बन्ध आपने छांटा है?।
आखिर सोचकर बताओ तो;क्या इल्म किसीका बांटा है?॥
अर्जुनको आगे खड़ा करो; क्षण भरमें चकनाचूर करूँ।
वंशका गर्व, बाणका मान; दो ही हाथोंमें दूर करूँ॥"

क्रोधातुर होकर—खड़ा; हुआ कर्ण बलवान।
प्रकट हुए तत्काल ही; वहां सूर्य्य भगवान॥

तेजो निधान, आभास—मान; किरणें चारों दिश लपक गईं।
छाती पर बैठी भवकी सी; लोगोंकी आखें झपक गईं॥
वह अमित प्रकाश न देख सके;उस अतुल तेजको सह न सके।
कुछ रह न सके, कुछ रहे सहे; रह गये देखते, कह न सके॥

मण्डलमें क्षण—मात्रको; छाया तेज महान।
सम्बोधन कर सभीको; बोले तेज—निधान॥

"भीषम ! बच्चों की बातों में; क्या व्यर्थ प्रश्न उठवाते हो ।
गुण की नाक़दरी करते हो; बच्चे का जोश गिराते हो ॥
यह ख़ास हमारा बेटा है; माता का पता लगाओ तुम ।
इतना करतब हम दिखा चले; अपना कुछ गुण दिखलाओ तुम ॥"

इतना ही संकेत कर; हो गये अन्तर्धान ।
कर्ण—वीरके वंश का; हुआ लोक को ज्ञान ॥

चौकन्ने चके भके होकर; देखा भटवर दर्शक—गणने ।
भीम की ओर ताकते हुए; यह कहा वीर दुर्योधनने ॥
" कुम्भज[1], शृङ्गीऋषिके[2] समान; सन्तानोंको हम जानते हैं ।
कर्ण ही नहीं, सबका अन्तर; गुरुराज खूब पहिचानते हैं ॥
जातीय—मान के पीछे कुछ; गुण नहीं किसी के हेटे हैं ।
अब जान गया सारा समाज; यह सूर्य्य देव के बेटे हैं ॥"

छिपा हुआ है, इस जगह; एक मुख्य—संवाद ।
पाते हैं ? किस भाँति नर; गुरुका पूर्ण—प्रसाद ॥

था "एक लव्य" उन दिनों भील; गुरुके समीप वह भी आया ।
गुरु—वरकी दीक्षा लेनेको; गुरु—भक्त बहुत ही ललचाया ॥
*लेकिन शूद्रों या भीलोंको; उन दिनों वेद-अधिकार न था ।
या यों समझो, उन लोगों में; विद्याका अभी प्रचार न था ॥

---

१ घड़ेसे उत्पन्न हुए थे ।

२ लोमशके शिष्य थे । जिनके एक शृङ्ग भी था ॥

* आजकल समाज—सुधारक इस पर बहुत ही आक्षेप करते हैं, एक पक्ष "शूद्रों"-को विद्या देनेका अधिकार ही नहीं है "—कह कर ऐसे प्रमाण देता है, दूसरापक्ष इसका तमाम दोष ब्राह्मणोंके ऊपर रख कर उनकी स्वार्थ परता सिद्ध करता हुआ खण्डन करता है, मैं अपने विचारसे कह सकता हूँ कि वे दोनों भूल पर हैं, कारण कि उन्होंने इसका वास्तविक भाव ही नाशकर दिया है। यथामति मैं इसको यों समझा हूँ—

इस लिये विप्र ने उसको भी; वह गुण देने से टाल दिया।
उस विद्या-प्रेमी को गुरु ने;शिष्यों में सम्मिलित नहीं किया॥
पर जिन्हें लगन सच्ची होगी, वे लक्ष्य ढूँढ़ कर रहते हैं।
इस जगह "भील" की वही गाथ; हम सूक्ष्म रूपमें कहते हैं॥

—"यदि हम आधुनिक—इतिहासके अनुसार ही (यद्यपि कोई प्रमाण नहीं) आर्य्यों का आगमन और भील आदि जातियोंका शुद्ध मानें तो यह माननाही पड़ेगा कि "शूद्र" (यदि जन्मानुसार ही माना जावे तो) आर्य्य तथा प्राचीन निवासियोंके संयोग (संघर्ष) से उत्पन्न हैं, और भील आदि आर्य्योंके शत्रु । ऐसी दशामें वर्णसंकर या शत्रु को विज्ञान—रहस्य देना अपने ही लिये घातक समझकर अनुचित समझा गया हो तो कोई विवाद—ग्रस्त विषय नहीं, हम देखते हैं कि इन दिनों भी इतना वैज्ञानिक—आविष्कर होते हुए भी कितनी ही जातियाँ उनके अधिकारोंसे या सीखनेसे वञ्चित रखी जाती हैं, यह राज—नीति का एक अंग है।

दूसरे—यदि शूद्र—वर्ण की व्युत्पत्ति (आधुनिक इतिहासके अनुसार) आर्य्यों का ही एक समूह मानें, तो चूंकि वह सर्व—सम्मति द्वारा (कि जिनमें शूद्र कहलाने वाले भी सम्मलित थे) निर्णीत हुई थी, जिसमें कि प्रत्येक वर्णके कर्म—विभक्त किये गये थे, उन कर्मोंका अनुसरण न करना देशके शासन और प्रबन्ध दोनों का घातक था, या यों कहो कि जिस उद्देशसे वह वर्ण—व्यवस्था बनाई गई थी उसमें बाधा आने की आशंका थी। वास्तविकता यह है कि कोई देश पतन की ओर तभी जायेगा, जब कि उसके निश्चित नियमोंमें त्रुटि आयेगी, कहना न होगा कि भारत वर्ष को इसीका प्रायश्चित्त भोगना पड़ रहा है। बात गूढ़ है, परन्तु न्याय और इतिहास --दर्शन इसे सहज ही में सिद्ध कर देगा। अस्तु वे इस सिद्धान्त पर दृढ़ थे कि—

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

यदि उन्होंने इस सामाजिक—नियमके विरुद्ध चलने वालों पर कोई सख्ती या दण्ड दिखलाया भी हो, तो क्या बुरा किया ?, जब कि वह सर्व—सम्मति थी। तीसरे ऐसी जातियाँ सर्वोच्च विद्याओंका दुरुपयोग ही करतीं।

"शूद्र" यदि अनादि वर्ण है, तब भी तत्कालीन समाजके मतानुसार उन्हें ऐसे विषयोंका अधिकार देना उचित न था, इसलिये कि जिस भांति श्रीकृष्ण भगवान्ने—

द्रोण—विप्र की टाल पर; लौटा वह लाचार ।
टला न लेकिन हृदयसे; उसका अटल—विचार ॥

उत्साह सहित जङ्गल ही में; मिट्टी की मूर्त्ति बनाता है ।
वह आत्म-शिष्य गुरु मान उसे; रोजाना शीश झुकाता है ॥
उस की ही श्रद्धा—भक्ति धार; लक्ष्य का बोध कर लेता है ।
अभ्यास तथा श्रम के पीछे; नित्य प्रति परिक्रमा देता है ॥

उसी परीक्षा के समय; पहुँचा वह भी जाय ।
बोला—"गुरुवर ! परीक्षा; जन की भी ली जाय ।"

यों कह कर-उन्हें प्रणाम किया; दो हाथ जोश में उछल गया ।
जब बाण खींच कर छोड़दिया, देवेन्द्र—लोक से निकल गया ॥

—गीता का उपदेश अधिकारी मात्रके लिये देना बतलाया है, उसी प्रकार इन विशिष्ट विद्याओंके आचार्य्योंने भी उनके लिये अधिकारी पात्र ठहराये हों—क्योंकि अनाधिकारी ऐसी बातों का पात्र न होनेके कारण प्रायः भ्रष्ट होजाता है, यथाः—

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥ श्रीमद्भगवद्गीता—अ० १८।६७.
तथा:—प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् । अ० ३ । २९.

यह बातें दोनों ही के हितसे उत्तम हैं, अस्तु उस समयके समाज या नेताओंको दोषी ठहराना भूल है, कोई नियम देश, काल तथा स्थिति और आवश्यकतानुसार ही बनाया जाता है, और कारणके साथ परिवर्तित हो सकता है । इसलिये हमें अपनी स्थिति का अध्ययन करके उसमें संशोधन करना चाहिये, न कि ब्राह्मणों पर वाक्—प्रहार । उनकी उदारता और निस्वार्थता का सबसे बड़ा यही प्रमाण है कि समस्त वर्णोंके लिये तो अधिकार तथा व्यापार आदि करनेके नियम तथा अधिकार निश्चित किये और अपने प्रति तपश्चर्य्या, सादगी, तथा आकाश—वृत्ति । दुःसह दारिद्रय—पीड़ित भक्त सुदामाके ही शब्द सुनिये, वह अपनी स्त्रीसे स्पष्ट कह रहे हैं कि—" औरन को धन चाहिये बावरि, ब्राह्मनके धन केवल भिक्षा ।" लेखकः—

पड़े पूर्ण आश्चर्य्य में; सारे दर्शक—वृन्द ।
गुरुवर द्रोणाचार्य्य की; हुई बोलती बन्द ॥
बोले—"भैया! किसने तुझको; यह विद्या दी यश-कारी है ।"
भील ने कहा—"विद्या कैसी!; गुरुवर! सब कृपा तुम्हारी है ॥
आप की मूर्ति ही के द्वारा; सेवक ने शिक्षा पाई है ।
इस मन ने इस को सीखा है; इस आत्मा ने सिखलाई है ॥"
दिखलाना था विप्र को, गुरु—व्रत का आदर्श ।
था अथवा संकेत में; राज—वंश—उत्कर्ष ॥
"एक लव्य" के वचन सुन; बोले द्रोण सुजान ।
जो मुझसे विद्या पढ़ी; तो दे दीक्षा—दान ॥
भील ने कहा—"तन, मन, धन, जन सर्वस्व समर्पण मेरा है ।
प्रभु ईश्वर हैं; मैं पतित—जीव; प्रभु स्वामी हैं, जन चेरा है ॥
जिनकी कि चरण-नख-प्रतिभा से;आत्मिक-प्रकाश हो जाताहै।
जिन के ध्यानसे मान-मदका; मौलिक-विनाश हो जाता है ॥
जो ईश्वर-पथ दर्शक बन कर; शिष्यों को पार लगाते हैं ।
सौभाग्य आज ऐसे गुरुवर; जन से सेवा करवाते हैं ॥"
❀द्रोण ने कहा-"मुझ को केवल; काट दे अँगूठे हाथों के"।
बोला-"क्या लिये अँगूठे गुरु!;क्यों लिये न हीरे आखोंके ।"
सोचा होगा शायद सबने; विद्या—विहीन हो जाऊँगा ।
अंगूठे कटने पर भी मैं; ऐसा ही लक्ष्य दिखाऊँगा ॥"
काट कर अँगूठे, अर्पण कर; उँगली से करतब दिखलाया ।
सारे मण्डल में "बाह" हुई; कौरव-दल चक्कर में आया ॥

---

* यहां केवल आदर्श गुरु-भक्ति निरूपण ही उनका ध्येय था, कि जिसके प्रतापसे अँगूठे न होते हुए भी कौशल न गया ।

यह गुरु—महिमा थी यहाँ; एवं थे यह चाव ।
हाय ! आज दोनों तरफ़; बदल चुके वे भाव ॥

गुरुजी ग्रामोफ़ोन की तरह; चूडियाँ बदलते जाते हैं ।
चेले भी दिल बहलाव समझ; कानों तक भरते जाते हैं ॥
गुरु पेट पालना समझ उसे; ज्यों त्यों कर समय बिताते हैं ।
शिष्य भी पाँच घण्टे का वह; काला पानी बतलाते हैं ॥
गुरु को हैं व्याध—रूप चेले; चेलों को यम—स्वरूप गुरु हैं ।
या शिष्य बर्फ़ के ढेले हैं; जेठ की प्रचण्ड—धूप गुरु हैं ॥
जिसके मारे बेचारों की; हड्डियां पिघलती जाती हैं ।
सोते तो भरते जाते हैं; चोटियां निकलती आती हैं ॥
इस बिना भूख के भोजनकी; इतनी अजीर्ण हो जाती है ।
कितने ही चूर्ण खिलाने पर; फिर पाचन-शक्ति न आती है॥
भरते जाते हैं ठूँस ठूँस; लेकिन न अमलमें आता है ।
इसलिये इल्मके कुप्पोंका; वह इल्म वहीं सड़ जाता है ॥
जैसे ही गुरु जी चेले को; यक भार—रूप बतलाते हैं ।
वैसे ही चेले गुरुओं के; दो दिन में गुरु बन जाते हैं ॥
गुरु जल्दी जल्दी फेंकते हैं; चेले उसको न उठाते हैं ।
गुरु जी इस तरफ़ पढ़ाते हैं; वे आपस में मुसकाते हैं ॥
खास कर शहरके लड़के तो; और भी कमाल ढा रहे हैं ।
गुरु जी ट्यूशनें खा रहे हैं; चेले जी हवा खा रहे हैं ॥
गुरु जी बोर्डके सिपाही हैं; चेले हैं साहुकार उसके ।
लेते जाते हैं किश्तों से; जितने भी हैं उधार जिसके ॥
गुरु ब्लैक—बोर्ड पर खड़ा खड़ा; भांड़ की तरह चिल्लाता है ।
चेला थोड़ी सी नज़र बचा, उसपर उँगलियां चलाता है ॥

साथी को कभी नोचकर झट; इस तरफ मोड़ मुँह लेता है।
कोई चुपके से घूँसा दे; गालियां भेंटमें लेता है॥
जब तक पढ़नेका जीवन है; तब तक बनिये सी यारी है।
फिर वे मजदूर बोर्ड के हैं; और उनकी साहूकारी है॥
चेले गट्ठे बाँध कर गये; गुरु ने बाँधी भेंट की रकम।
गुरु के चेले फिर हुए ख़तम; चेले के गुरु भी हुए ख़तम॥
फिर चेले बड़े लाट बनकर; आराम गाह में रहने लगे।
गुरु जी खुद ही द्वारे जाकर; अब दद्दा भैया कहने लगे॥
गुरु की सूरत देख कर कभी; शिष्यको ध्यान हो आया है।
कहता है—हां शायद तुमने; छुटपन में हमें पढ़ाया है॥
गुरुने समझा, कुछ हाथ लगा; "हां"की हुङ्कारियां भरने लगे।
चेले जी गुरुके गुरु बन कर; गांठ कर तक़ाज़ा करने लगे॥
"लेकिन तुम से मेरी किताब; आज तक न वापिस आई है।
मास्टर साहब ! उसकी क़ीमत; बारह आने छै पाई है॥"
बेचारे इधर उधर की ले; अब बात टालते जाते हैं।
चेले जी डांट दिखा करके; रुपया पहिले धरवाते हैं॥

अस्तु; बढ़ाऊ कहांतक ? गुरु चेले की चाल।
जाल कहो युग का इसे; या समझो जञ्जाल॥

जो कुछ हो, लेकिन जब ऐसे; हो चुके आज गुरु-चेले हैं।
तब मेल जोल का चरचा क्या ?; जब सारे मनके मेले हैं॥
आधा जीवन दे डालते हैं; पर विद्या सफल नहीं होती।
जीवन भर ख़ाक छानते हैं; पर निष्ठा अचल नहीं होती॥
चेलों पर गुरु, गुरुपर चेले; जब तक विश्वास न लायेंगे।
तब तक गुरु चेले कौडी के; बस तीन तीन हो जायेंगे॥

जीवन--पथ--दर्शक से नफ़रत; लानत है ऐसे धन-मद पर।
जो गुरुता नहीं, दासता है; धिक्कार है ऐसे गुरु-पद पर॥

क्रमशः द्रोणाचार्यको; दिया सभीने दान।
दुर्योधन इत्यादिने; किया भवन-प्रस्थान॥

जब पाण्डव दान लगे देने; झट अर्जुन की बारी आई।
तो उनकी तरफ़ देख करके; गुरुवर यों बोले मुसकाई॥
बेटा! अर्जुन! गुरु चेलों को; समता से शिक्षा देता है।
लेकिन हैसियत देख करके; शिष्य से दक्षिणा लेता है॥
"तुमसे दक्षिणा--द्रव्य माँगूँ; तो तुम अवश्य दे डालोगे।
द्रव्य ही नहीं, जो कुछ चाहूँ; तुम मेरी आज्ञा पालोगे॥
पर तुमसे महा-दान लूँगा; जो द्रव्य-दानसे ऊँचा हो।
मेरी आत्माकी शान्ति हो, जो; वीरोंकी वीर-दक्षिणा हो॥"

अर्जुन बोले-"भाग्य है; जो सेवा बन जाय।
आज्ञा दीजे दास को; हृदय रहा पुलकाय॥

तीनों लोकों की सम्पति-धन; क्षण भरमें ले आऊँ जाकर।
कालको बाँध कर खड़ा करूँ; केवल इन चरणोंके बल पर॥
इन्द्रसे दासता करवा दूँ; शशि-सूर्य्य पकड़ कर ले आऊँ।
कर दूँ कुबेर का कोष भेंट; पाताल भेद कर दिखलाऊँ॥"

गुरुवर बोले-"धन्य सुत!; धन्य-पाण्डु-कुल-मौर।
वीर-मूर्ति तेरे सिवा; आज कौन है और?॥

विश्वास है तेरी बाहों पर; गर्व है गौरवी शक्ती पर।
मान है मुझे तेरे गुण पर; सन्तोष है तेरी भक्ती पर॥
वह आज्ञा केवल इतनी है; तुम तत्क्षण द्रुपद-देश जाओ।
अपने बल-विक्रम के द्वारा; राजा को यहाँ पकड़ लाओ॥

तुम ही केवल इस लायक़ हो; केवल यह भाग तुम्हारा है।
बस यही दान है महादान; इतना ही ध्येय हमारा है॥"

गुरु की आज्ञा शीश धर; चले पार्थ हर्षाय।
द्रुपद-देश में वीर ने; धौंसा दिया बजाय॥

रण-कुशल-केशरी--कुन्ती-सुत; रण का धौंसा धमकाने लगा।
क्षण भर में सारी नगरी पर; आतंक प्रलयका छाने लगा॥
राजा सहसा सिटपिटा गया; जनता का रंग कु-रंग हुआ।
सेनापति सोच न पाया कुछ; बात में रंग ही भंग हुआ॥
सेनायें अब तक सज न सकीं; राजा ने साज न कर पाया।
चारों कोने झाड़ता हुआ; केहरी सभा में गरजाया॥

जो थे जैसी दशा में; उठ दौड़े तत्काल।
क्षण भर में रण मढ़ गया; महा घोर बिकाल॥

चिड़ियों पर बाज झपट्टा है; या पहुँचा राहु सितारों पर।
वीरों में पहुँचा पार्थ वीर; या पहुँचा सिंह सियारों पर॥
पहुँचा पहुँची में जो पहुँचा; सुर-पुर पहुँचा, पहुँचा न रहा।
या वह पहुँची वाला पहुँचा; पहुँचा, पहुँचा, पहुँचा न रहा॥
जो वीर सामने आ पहुँचा; उस का सिर महिपुर जा पहुँचा।
इतनेही में कुछ सज धज कर; पाञ्चाल राज भी आ पहुँचा॥

द्रुपद—राज के साथ में; हुआ घोर—संग्राम।
नाग—फाँस में पार्थ ने; किया कौतुकी काम॥

कोटों भट निपट निकट पाकर; मर्कट की भाँति मसल डाले।
वह अकट-कटक-अधकट करके; अटकीले विकट पिचल डाले॥
नृप को कस कर; रथ दौड़ाया; सैनिक चिल्लाते खड़े रहे।
उठ कर, गिर कर, फिर उठ न सके; भटवर सिसकाते पड़े रहे॥

बाँध नृपति को, वायु-गति; रथ हाँका तत्काल ।
गुरु वर द्रोणाचार्य्य के; दिया चरण पर डाल ॥

राह भर बँधा आया नृपाल; कारण न समझ में कुछ आया ।
जब गुरुवर के आगे आया; तब सारा हाल समझ पाया ॥
सङ्कोच, लाज, भय, बेचारा; पैरों पर गिर घिघियाने लगा ।
कर जोड़ क्षमा मांगने लगा; अपना अपराध मनाने लगा ॥
"गुरु राज द्रोण! द्विज राज द्रोण!; क्या कह कर तुम्हें मनाऊँ मैं? ।
सिर भी न उठाया जाता है; अब कैसे आँख मिलाऊँ मैं ? ॥
अपनी चलती में, चलती भर; गुरुवर से चाल चलाई है ।
जिसने न किया जन्म भर भला; फिर उसकी किधर भलाई ॥
करणी की कठिन ज्वाल में-खुद; यह आत्मा इधर जल रहा है ।
उस ओर लाज-भय का पिशाच; छातीपर दाल दल रहा है ॥
गुरु[१],ब्राह्मण[२],गुणी[३], वैद्य[४],पण्डित[५]; कवि[६], मित्र[७], पुत्र[८],मन्त्री[९], नारी[१०] ।
दरवान[११], पुरोहित[१२], पाककार[१३], यह तेरह; जीवन-अधिकारी ॥

मेरी करणी ने मुझे; दिया काल के हाथ ।
निर्भर है जीवन मरण; गुरु—दयाल के हाथ ॥"

द्रोणने कहा—"रे अभिमानी !; इतना अभिमान नहीं अच्छा ।
छोटे से छोटे प्राणी का; नाहक अपमान नहीं अच्छा ॥
भूतल पर ऊँच, नीच कोई; रहता न एक ही पद पर है ।
सुख कभी, कभी दुख, सुख दुखका; चक्कर लोकमें बराबर है ॥
सुख में आहा, दुख में हाहा; जीव से निकल ही जाती है ।
या सगे, मित्र, सम्बन्धी की; इस भांति जाँच की जाती है ॥

गायन

विपदा देती है सन्देश ।
सब दिन एक समान न जायें; रहें न वही-हमेंश ॥
राजा-रंक-समाज-जाति-कुल; सारे देश-प्रदेश ।
कभी उच्च-उन्नति के पद पर; कभी विशेष कलेश ॥
शत्रु-मित्र, धृति, साहस, संयम; वंश-वीरता-वेश ।
इसी समय परखे जाते हैं; सुर, नर, पितर, सुरेश ॥
कष्ट-काल में किसी व्यक्ति की; कर न उपेक्षा लेश ।
यह परिचय-दिन, आयें, जायें; जपो सदा कमलेश ॥"

द्रुपद राज कहने लगे;—"क्षमा कीजिये नाथ ! ।
हाज़िर है अब चरण में; द्विज-द्रोही का माथ ॥
विपदा थोड़े दिन को आकर; सब का परिचय दे जाती है ।
अब समझा मैं, विपदा ही में; पद की भव्यता दिखाती है ॥
जो जन पर-दुख में दुखी न हो; फिर उसे चहीत नहीं मिलता ।
ऐसे संकट में उसको भी; रोने को मीत नहीं मिलता ॥"
द्रोण वीर ने फिर कहा—रख यह शिक्षा याद ।
विप्र—वंशकी शक्ति-गुण; सदा रहे आबाद ॥
समझा था तूने रे अजान !; ब्राह्मण है, दीन बिचारा है ।
दूरन्देशी से कर विचार; भारत भर अंग हमारा है ॥
विप्लव कर दें, घर बाहर में; हलचल कर दे रजधानी में ।
जो ब्राह्मण कहीं बिगड़ जायें; तो आग लगादें पानी में* ॥

---

* लोक दैव आधीन है; दैव मन्त्र--आधीन ।
मन्त्र विप्र आधीन करि; विश्व-विजय करलीन ॥ लेखक ।

सुर पुर वाले, पाताली जन; महिसुर को माथ झुकाते हैं।
तू तो नर है, नारायण भी; ब्राह्मण का हुक्म बजाते हैं॥
याद रख, आजसे, दीन दुखी; ब्राह्मणका यों अपमान न हो।
योगी, तपसी, सन्यासी,गुरु; इस भांति दुखी विद्वान् न हो॥

द्रुपदराजने भूल को; किया पूर्ण स्वीकार।
क्षमा-याचनाके लिये; रोये बारम्बार॥
छोड़ दिया उस विनय पर; गुरुवरने कर प्यार।
नाम मात्रके ब्राह्मणो !; हैं यह द्विज-अधिकार॥

तप-बल-द्वारा इन्द्रासन पर; अपना अधिकार जमाते थे।
तुम ही देवोंसे, भूदेवो !; सम्पूर्ण देव थर्राते थे॥
अपनी हालत पर ध्यान करो; पुरुषों का वह अनुमान करो।
फिर उनके तेज-पराक्रम के; कारण का अनुसंधान करो॥

गायन

स्वार्थ-भयसे धर्म अपना; त्यागनेवाले न थे।
उन दिनोंके विप्र केवल; माँगनेवाले न थे॥
जागते थे योग, अथवा-देश-चिन्ताके लिये।
भोग या विषयान्ध होकर; जागनेवाले न थे॥
भागते थे पापसे; पर-द्रोहसे, अपस्वार्थसे-
शत्रुसे, संकटसे, भयसे; भागनेवाले न थे।
दाग दे बोलीकी गोली; क्यों न हो "शैलेन्द्र" दाग-
आज कल सी गोलियां; वे दागनेवाले न थे।

सुधर जाय यह देश भी; अगर सुधारो ढंग।
वरना अब आकाशमें; औंधी हुई पतंग॥

जब दीक्षा-मन्त्र-बुद्धि-दाता; शिक्षा-दाता, वर-दाता हो।
तब याद रहे, इस अवनतिके; केवल तुम उत्तर-दाता हो॥
जिस गति पर तुम ले जाओगे; चेले उस पथपर जायेंगे।
विश्वास रहे, सारे लाञ्छन; विप्रों के शिर ही आयेंगे॥

शिक्षा--दीक्षासे हुए; भूषित राजकुमार।
किन्तु द्वेष की दाह ने; किया नया उद्गार॥

विद्या पढ़कर निश्चिन्त हुए; सुखसे घर पहुँचे पाण्डव-गण।
अब यहां डाह में जल जलकर; यों लगा सोचने दुर्योधन॥
"क्या कहूँ ! पाण्डवोंके आगे; एक भी न पार बसाती है।
जो चाल चलाई जाती है; वह खुद खाली पड़ जाती है॥
वे पांच सिंहसे फिरते हैं; हम सौ हैं-मगर सियारों से।
वे पांच चन्द्रमा निकले हैं; हम चमक रहे हैं तारोंसे॥
जब तक इन दावा दारोंका; अब सत्यानाश नहीं होगा।
तब तक कौरव-कुलका हर्गिज़; लोकमें विकास नहीं होगा॥"

इस चिन्तामें कुछ समय, बैठा रहा उदास।
फिर रोनी सूरत बना, गया पिता के पास॥

बोला-"महाराज ! पाण्डवोंने; राज्यमें अशान्ति बढ़ा दी है।
कौरव--वंशके विरुद्ध, पिता !; घर घर में आग लगा दी है॥
अपने ही टुकड़े खाते हैं, अपनी ही जड़ काटते हैं।
जो हम को कुछ कह आता है; तो उलटा हमें डाटते हैं॥
सब राज-काज, सब लेन, देन; जितने भी ज़र हुकूमत हैं।
एक दिन निकल जायेंगे सब; जो पाण्डव सही सलामत हैं॥"

दुर्योधनकी बातपर; कहने लगा वज़ीर।
"-महाराज ! अच्छी नहीं; दुश्मन की तस्वीर॥

जब कभी सामने आती है, तो नाहक-क्रोध बढ़ाती है।
घण्टों तक चिन्ता पैदा कर; निष्कारण खून सुखाती है॥
फिर पाण्डव तो जीते रिपु हैं; समरथ हैं, और सजग भी हैं।
अपने पहिले अधिकारों पर; उनकी छातियां सुलगती हैं॥
निर्बलसे भी निर्बल वैरी; जो समय कभी पा जाता है।
तो दबी हुई अग्नि की तरह; अपना प्रभाव दिखलाता है॥
बस इसीलिये नीतिज्ञ-पुरुष; पहिले शत्रु को मिटाते हैं।
पावक, ऋण, रोग, शत्रु, चारों; कुछ ही दिनमें बढ़ जाते हैं॥"

तब बोले धृतराष्ट्र भी-"दो मन्त्री वर ! राय।
बेटेके सिरसे अभी; यह कंटक टल जाय॥"
मन्त्री बोला-"सोच लूँ; पहिले, कौरव-नाथ !।
फिर निर्णय हो जायगा; मेरा प्रभुके साथ॥"
इतना कहकर चल दिये; *कुरु-पति और वज़ीर।
सम्मति लेनेके लिये; गये कर्ण के तीर॥

दुर्योधन बोला-"कर्ण भ्रात !; कुछ होनी नज़र न आती है।
इन पांच पाण्डवोंके मारे; नींद भी न आने पाती है॥
यह उखड़े हुए पांच पौदे; दिन पर दिन बढ़ते जाते हैं।
पापी पैरों पर पड़े पड़े; माथे पर चढ़ते आते हैं॥
दम दम पर जाल साजियाँ हैं; क्षण क्षण पर धोखे बाज़ी है।
बातों पर गीदड़ भबकी है; हर जगह दख़ल अन्दाज़ी है॥
जनता में, राज्य-प्रबन्धों में; पाँचों ने पाँव पसारा है।
जो कहो, तो उत्तर मिलता है-"जाओजी, राज्य हमारा है॥"

---

* दुर्योधन।

इस भावी-विपद-वेदना में; मेरी तो नींद हिरानी है।
कुछ यत्न बताओ, तुम्हीं कर्ण; मेरी तो मति बौरानी है ॥"

कहा कर्णने-"आपको; आया आज ख़याल।
मैं कितने ही दिनों से; हूँ बेहद बेहाल ॥

दिन प्रति दिन उन भिखारियों की; तूती बढ़ती ही जाती है।
जनता भी तो धीरे धीरे; उन से ही मिलती जाती है ॥
फिर वहाँ परीक्षा होने में; देखा था ढंग ज़ईफ़ों का।
ना कुछ वह बाण चलाने पर; कर दिया ढेर तारीफ़ों का ॥
जब हमही उन्हें बढ़ाते हैं; तो वे भी बढ़ते आते हैं।
जब तुम खुद झुकते जाते हो; तो वे खुद चढ़ते आते हैं ॥

उन्नति करने के लिये; दें न उन्हें अवकाश।
दबा हुआ दीपक करे; किस भाँति से प्रकाश ? ॥

तुम सौ हो, वहाँ पाँच ही हैं; बीस पर एक की गिनती है।
जो किया चहो, तो पाँचों की; चटकीली चटनी बनती है ॥
पहिले यह काम तुम्हारा है; पीछे हम लोग सहायक हैं।
तुम लोगों के सम्बन्ध-सूत्र; जनता तक हैं, राजा तक हैं ॥"

दुर्योधन कहने लगा-"तो सोचो कुछ राह।
पहिले होना चाहिये; घर में एक सलाह ॥"
कहा कर्ण ने-"राय क्या ?; दूँगा इनके तीर।
लिये हुए हो साथमें; जब नीतिज्ञ वज़ीर ॥"

मन्त्री बोला-"हाँ; कर्ण-वीर !; नीति में यही पथ रक्खा है।
फिर आगे राय तुम्हारी है; और महाराज की इच्छा है ॥
कर्ण ने कहा-" तो बतलाओ; कौन सा उपाय किया जाये।
इन पाँचों विष के बिरवों का; किस्सा ही मेट दिया जाये ॥"

मन्त्री बोला—" तो करो; "लाक्षागृह"—निर्माण।
आग लगा दो रात में; सुबह साफ मैदान॥
" वाह वाह " कह उन्हों ने; की सम्मति स्वीकार।
आज्ञा से होने लगा, कपट—भवन—तैयार॥

बस वरुण-नगरके पास शीघ्र; उस छद्म-सदनकी नींव पड़ी।
लाखों रुपया की लाख पड़ी; लाखकी एक दीवार खड़ी॥
लाख की छतें, छज्जे, द्वारीं; चौखट, फर्शीं, खम्भे सारे।
एक ही वस्तु, एक ही काम; हाँ—रंग—नाम न्यारे न्यारे॥
दिन के दिन क्षणसे बीत गये; पाख का काम पाख में गया।
लाखों पर बत्ती पड़ बैठी; लाख का नाम लाख में गया॥

नियत किया था विदुर को; देख—रेख के हेत।
तथा "विश्वकर्मा" स्वयं; शिल्पी कपट-निकेत॥

सोचा नीतिज्ञ विदुरजी ने;—"खल उन्हें यहाँ ठहरायेगा।
इस धोखे से पाण्डव—कुलका; निश्चय विनाश हो जायेगा॥
मैं इस में अनुचित उचित कहूँ; तो यह अनुचित दिखलाता है।
जो नमक जहाँ का खाता है; उसकी सर्वदा बजाता है॥
लेकिन जितना बन सकता है, उतना कर्त्तव्य निभा दूँ मैं।
भाग्य है, भाग बचने का तो; बचने की राह बना दूँ मैं॥"

लाक्ष—भवन में विदुर ने; रख दी एक सुरंग।
उस के ऊपर खम्भ रख; बदल दिया वह ढंग॥
शिल्पकार को रत्न कुछ; दिये विश्व-विख्यात।
ताकि नृपति के साम ने; खुल न सके वह बात॥

इस जगह बुला कर कुन्ती को; धृतराष्ट्र नीति समझाते हैं।
जन्मान्ध, हृदय की आँखों का; अन्धापन भी दरशाते हैं॥

"कुन्ती ! भीम और सुयोधन का; कुछ केर-बेरका जोड़ा है ।
ईश्वर ने शायद पहिले ही; यह जोड़ फेर का जोड़ा है ॥
हर समय जलन, क्षण क्षण उलझन; हर समय लड़ाई ठनती है ।
मैं देख रहा हूँ छुट पन से; दोनों की कभी न बनती है ॥
छोटे बच्चों की आग कभी; बुड्ढों तक में बढ़ जाती है ।
जो निकल हाथ से जाती है; वह नहीं लौट कर आती है ॥
इस लिये हमारी सम्मति है; हम तुम ही नीच बचाव करें ।
टालदें लड़ाई का मौका; फिर उन में उत्तम भाव भरें ॥ "

कुन्ती ने दुख से कहा–" सुनो गरीब नवाज़ ।
फैली है आकाश तक; दुखियों की आवाज़ ॥

दुर्योधन आज महीपति है; और भीम टुकड़ खोरों में है ।
शहज़ोरी कौरव–दल में है; मुँह ज़ोरी किन ज़ोरों में है ? ॥
उन दोनों की समता कैसी ?; वे स्वामी हैं; वे नौकर हैं ।
महाराज ! तुम्हारे बेटों के; यह पाँचों बेटे ज़ेवर हैं ॥
जैसा समझो, उपाय कर दो; आप की शरण में रहते हैं ।
दासी के यह पांचों हीरे; आप की गोद में रक्खे हैं ॥

गायन

तुम्हारे चरणों की धूलमें जो; हमारे बारे जिया करेंगे ।
दिया करेंगे दुआयें जी भर; तुम्हारी सेवा किया करेंगे ॥
न व्यञ्जनोंका ख़याल होगा; न दूध–घी का सवाल होगा ।
मिलेंगी जो सूखी रूखी जूठन; ग़ुज़र उसी पर किया करेंगे ॥
न वस्त्र भूषण को खीझ होगी; न हिस्से पट्टे की रीझ होगी ।
फटी पुरानी तुम्हारी उतरन; लिबास कह कर लिया करेंगे ॥

रहेंगे जो हम तुम्हारे बन कर; रहोगे जो तुम हमारे बनकर।
बनेगी दोनोंकी बात बनकर; तुम्हें बधाई दिया करेंगे ॥"

उत्तरमें धृतराष्ट्रने; महा–प्रेम दरशाय।
कुन्तीके वैधव्य पर; खींची लम्बी हाय ॥

फिर बोले–"जो आज को कहीं; मेरे भाई जीते होते।
तो क्यों यह पाचों सुकुमारे; रक्तके घूँट पीते होते ॥
कुन्ती ! सौगन्ध–मुझे–दोनों; समतामें एक बराबर हैं।
ईश्वर जाने–तेरे बेटे; अपने बेटोंसे बढ़ कर हैं ॥
भारतके भावी नौ जवान; ताकत वर हैं, लासानी हैं।
तेरे सुपूत वरदानी हैं; भैया की एक निशानी हैं ॥
मेरी ओरसे कभी इनमें; भूल कर न बुरा भाव होगा।
जितना भी संभव है, उतना; हर हालतमें बचाव होगा ॥"

इसी लिये कर दिया है; मैंने एक उपाय।
वरुण–नगरमें तुम्हें भी; दिया महल बनवाय ॥

मेरे विचारसे वहीं रहो; छुट्टी हो झगड़ों झांसोंसे।
हो जाय न ताकि अग्नि पैदा; अपने ही कुलके वासोंसे ॥
कुन्तीने वह आज्ञा सिर धर; पांचों बेटों को साथ लिया।
उस कपट-भवन या यमपुरमें; जाकर सुख-सहित निवासकिया॥
किस्मतसे एक भिखारिन भी; कुन्ती माताने ठहरा ली।
कुन्ती की करुणा–गाथासे; बढ़ कर उसकी दुख–गाथा थी ॥
उस करुण–कथाके वर्णन की; इस कारण यहां जरूरत है।
आदिसे अन्त तक वह चरित्र; प्रभु की मायासे अंकित है ॥
कुन्ती माताके आगे जब; वह महा दुखारिन हुई खड़ी।
दुखियाके दुखिया बेटों पर; जब दुखिया की ही नज़र पड़ी ॥

अपनी सी व्यथा तथा संकट; उस देवी परभी जान पड़ा ।
रोगी २ को समझ गया; दीन को दीन पहिचान पड़ा ॥

कुन्तीने पूछा पता; बोली-"सुनो न गाथ ।
आज प्रिया को कर गये; प्रियतम पाण्डु अनाथ ॥"

कुन्तीने पूछा अजरजसे;-"क्या कहा !-नाम यह किसका है?।"
उत्तर पाया-"जिसकी प्रिय हूँ;यह पाण्डु-नाम भी उसका है॥"
कुन्तीने कहा-"नाम तेरा ?"-उत्तर" कुन्ती कहालाती हूँ ।"
पूँछा-"तेरे पति देव कहां?"-"विधवा हूँ जन्म बिताती हूँ ॥"
"-कितने बेटे हैं ? साथ तेरे,,-यह पांचों,प्रथम युधिष्ठिर है ।
यह अर्जुन, भीम, नकुल सुत हैं;सहदेव-सहित पूरा घर है ॥"

एक नाम, कुल एक ही; एक दशा लख माय ।
लगी पूछने वह कथा; और और उमगाय ॥

कुन्ती बोली-"बहिना ! तू तो; मेरी हम नाम सहेलिन है ।
यह कारण भी समझा थोड़ा;क्यों कर हो गई भिखारिन है?॥"

दुखिया बोली-"देवि ! सुन; वह दारुण इतिहास ।
रहते थे हम शान्तिसे; एक ग्रामके पास ॥

हे जाति भीलनी मां ! मेरी; था भील-कर्म स्वामी का भी ।
एक दिन भाग्य -वश स्वामी ने; यक गर्भवती हिरणी घेरी ।
यक तरफ लगादी घोर आग; दूसरी तरफ़ फन्दा डाला ॥
तीसरी ओर कुत्ते रखकर; हो गया खड़ा वह मतवाला ।
शोकित, शंकित, सिसकी, सभीत; तन शरण हुई सर्वेश्वरके ॥
पापीके पापी पञ्जेमें; पड़ गई पैर परमेश्वरके ।

गायन

याद आती है, तुम्हें; याद दिलानेसे प्रभो !।
राह पर आते हो; क्या ? राह बतानेसे प्रभो !
सोच रक्खा था क्या ? खम्भेसे निकलना पहिले–
निकल पड़े थे, जो–यक बार बुलानेसे प्रभो ! ॥
पहुँच गया था, क्या ?; वास्तवमें वह कमल तुम तक–
कैसे पाया था पता ? सूँड उठानेसे प्रभो !।
सच है " गोविन्द ये शैलेन्द्र " शरण–रक्षक हो–
यहां भी आओ, मेरे; अश्रु बहानेसे प्रभो ! ॥

भगवन् ! एककी जगह दो की; अब हत्या होने वाली है।
बनवारी ! हारी, बलिहारी; ऐसे क्षण की रखवाली है॥
करुणा मय को उसी क्षण; हुई विनय स्वीकार।
जलती ज्वाला पर पड़ी; प्रबल मेघ की धार॥
फन्दों पर चूहे टूट पड़े; क्षण भर में सभी काट डाले।
कुत्तों पर चीते लपक पड़े; गिन गिन कर वहीं चाट डाले॥
तब उछल कूद कर निकल गई; यों जान बची बेचारी की।
बिजली टूटी मेरे पति पर; हो गयी शिकार शिकारी की॥
मैया, उस दिन से मैं दुखिया; दर दर पर मारी फिरती हूँ।
कुछ दया–दान भिक्षा पाऊँ; भूखी बेचारी फिरती हूँ॥"
शबरी की इस दशा पर; कुन्ती ने पिघलाय।
दुखिया को पुत्रों सहित; वहीं लिया ठहराय॥
देखा भीम ने घूम फिर कर; ऐसे सामान नजर आये।
जो जरा अग्नि जग जाये तो; ज्वाला ही ज्वाला दिखलाये॥

बोले–"देखो भाई ! घर में; जितने पदार्थ दिखलाते हैं ।
वे सभी कपट, छल, धोखा, या; प्रत्यक्ष स्वार्थ दिखलाते हैं ॥
वह अन्धा बड़ा फ़रेबी है; उसने ही चक्कर डाला है ।
बाहर अन्धा, भीतर अन्धा; पेट में छुरी, कर माला है ॥
इस जगह हमें ठहरानेसे; वह स्वार्थ–सिद्ध हो जायेगा ।
यह प्रेम-प्रतिष्ठा का धोखा, धोखे से हमें मिटायेगा ॥
जिस जगह ज़रा भी खटका हो; वह जगह त्यागना अच्छा है ॥"
हे देव ! मेरी सम्मति में तो, शीघ्र ही भागना अच्छा है ।

कहा युधिष्ठिर ने, "–अहो; प्यारे पवन–कुमार ! ।
इतना बल, इतना बदन; ऐसे तुच्छ विचार ॥

दुर्योधन अगर स्वार्थ–वश हो; कुछ छलही कर दिखलायेगा ।
तो यहाँ एक पार्थ ही, भीम; पृथ्वी पर प्रलय मचायेगा ॥
पाण्डुके पूत, कुन्ती–कुमार; फिर सत्य-शान्तिके आराधक ।
क्या दम है? जो यम भी आकर; बनना चाहे अपना बाधक ॥
भैया ! धृतराष्ट्र चचा जी ने; प्रेम से हमें जब रक्खा है ।
तो तनिक देख भी लो, इसमें; आखिर उनका मतलब क्या है? ॥

गायन

आओ; हर्षाओ; यदुनन्द मनाओ ।
सत्य न छोड़ो; सम्बन्ध न तोड़ो ॥
तुष्ट रहो, कष्ट सहो, पुष्टि गहो, कृष्ण कहो,
बात बढ़ाकर—
विप्लव न उठाओ ।
आओ, हवन रचाओ, द्विज–भोज्य कराओ ॥"

श्री धर्मराज की आज्ञा से; शुभ-यज्ञ-विधान रचाया गया ।
सज्जन-सम्मेलन के पीछे; यक ब्रह्म-भोज करवाया गया ॥
संगीत-शास्त्र;साहित्य-शास्त्र; और धर्म-शास्त्रका पाठ हुआ ।
दो चार रोज़ तक कुशल-सहित;द्विज[1]-कर्म-शास्त्रका पाठ हुआ ॥

यहाँ रात-दिन हो रहा; धर्मोत्सव-आनन्द ।
कहा "पुरोचन" से वहाँ; दुर्योधन मति-मन्द ॥

" भैया ! वह समय आ गया है; जिसको तड़पाये जाते थे ।
आँखों से जिसे देखने को; लाखों तदबीर लड़ाते थे ॥
वह समय आज किस्मत ही से; आपही सामने आ पहुँचा ।
कौरव लोगों का कण्टक-दल; उस लाक्ष-भवनमें जा पहुँचा ॥
कर लिया विजय रण को मैंने;अब झण्डा फ़क़त उड़ालो तुम ।
मुर्दे मरघट में जा पहुँचे; थोड़ी सी आग लगा दो तुम ॥"

कहा पुरोचन ने—"सदा; रहे सलामत ताज ।
भू-मण्डल-सम्राट हो; दुर्योधन महाराज ॥

इच्छा तो थी, उन दुष्टों की; बोटियाँ मसाले से खाऊँ ।
सरकश अर्जुन का सर लेकर; चौगान बना कर ठुकराऊँ ॥
लेकिन जब ऐसी आज्ञा है; तो प्रातकाल ही जाऊँगा ।
एवं रात में अमावस को; उस गृहमें आग लगाऊँगा ॥ "

"धन्यवाद" पाकर चला; वह पापी मति-मन्द ।
वहाँ युधिष्ठिर के यहाँ; छाया था आनन्द ॥

आनन्दोत्सव जब पूर्ण हुआ; दर्शक लोगों की बिदा हुई ।
लेकिन वह विपदा की मारी; भीलनी वहीं पर बनी रही ॥

---

१ जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते । अत्रिस्मृतिः ।

उस समय "पुरोचन" धूर्त पहुँच; लम्बी दण्डवत बजाता है।
"जी हाँ हुजूर" की बत्ती से; छल की रञ्जक सुलगाता है॥
धर्मराज कहने लगे–"कहो पुरोचन तात!।
ना जानें, क्यों रुष्ट हैं !; वीर सुयोधन भ्रात॥
है राज–नीति या धर्म यही; जो राजेश्वर कहलाता है।
उसका बेटा मौक़ा पा कर; युवराज बनाया जाता है॥
यदि किसी वजह से मैं अपना; अधिकार दूसरे को दे दूँ।
तो मुझको यह भी तो हक़ है; जब चाहूँ तब वापिस ले लूँ॥
फ़िर अभी तो लेने देने का; दोनों जानिब से ज़िक्र नहीं।
दुर्योधन को इसके सिवाय; शायद कुछ दीगर फ़िक्र नहीं॥
अब तुम्हीं कहो, इसका उपाय; कैसे वह द्वेष मिट सकता है।
है दवा पज़ीर हरेक मर्ज़; पर मर्ज़े वहम ला दवा है॥"
शीश हिला कर "पुरोचन", बोला"-आलीजाह !।
उस को ही खा जायेगी; उस की अनुचित डाह॥
जो पापी देख नहीं सकते; फूलती–फलवती शाखों को।
वे फोड़ क्यों नहीं लेते हैं ? उन जलने वाली आंखों को॥
जलने से धोखा देनेसे; किस किसके मतलब सधते हैं ?।
महाराज ! सोचिये तो थोड़ा; क्या धुवें के गट्ठे बँधते हैं ?॥
इस समय गो-कि अधिकारी है; युवराज कहो, या शासक है।
वास्तव में–मगर दूसरे के, हक पर डाही का क्या हक़ है॥
रोड़े खुद अलग हो रहेंगे; अपनी तो गाड़ी चलने दो।
शुभ सत्य–धर्म पर अटल रहो; जलने वालों को जलने दो॥"
इस प्रकार कई भांति से; देकर खल विश्वास।
रहने लगा मकान में; धर्म–राज के पास॥

सुन भान अमावस की रजनी; सारा संसार सो रहा है ।
घनघोर अँधेरा छाया है; आधी का समय हो रहा है ॥
चर, अचर नींद की गोदी में; सानन्द सो रहे बेखट के ।
ऐसे में भी नीच के प्राण; पातक–जाल से न निकल सके ॥
वह नर-पिशाच, वह धूर्त्त-छली; अब भी करवटें बदलता है ।
उठता है, और बैठता है; थम थम कर थोड़ा चलता है ॥
वह देखो, वह देखो, निश्चर; तकता, झुकता झूमता हुआ ।
जा पहुँचा खास निशाने पर; कुछ इधर उधर घूमता हुआ ॥
कुछ कान लगा कर सुनता है; आवाज न कोई आती है ।
हाहा ! देखो कुछ छिपी हुई; हाथों में आग दिखाती है ॥
खूनी, कातिल, हत्यारे ने; यह क्या अनर्थ कर डाला है ? ।
भागा फेंक कर आग गृहपर; धक्से हो गया उजाला है ॥

गायन

चिनगारी डारी, सारी उजारी, क्या विचारी ? ।
लपट लपेट, लू चपेट;
...... हा हा कारी ......
हाँ–हाँ

श्रोता गण ! यह तो हुई; उस पापी की चाल ।
हृदय थाम सुनिये, जरा; अब अन्दर का हाल ॥

गर्मी पाकर लाक्षा पिघली; सारे मकान में गिरने लगी ।
प्रत्येक वस्तु गर्मी पाकर; दीपक की नाईं जलने लगी ॥
जब गर्म लाक्षा की फ़वार; कुन्ती के तन पर तनिक पड़ी ।
निद्रा से चौंक, छटपटा कर; देवी बिस्तर से उचट पड़ी ॥

अवकाश न इतना मिला उसे; सोते से पुत्र जगा देती ।
अपने अङ्ग ही बचा लेती; या अङ्गज–लाल उठा देती ॥
नींद की आँख, फिर चका चौंध, यह अकस्मात घटना होना ।
यह भी न बिचारी सोच सकी; हँसना होगा, अथवा रोना ॥
जितनी जल्दी वह सजग हुई; उतनी जल्दी सब जाग पड़े ।
हर तरफ़ धुवाँ, हर तरफ आग; बिलकुल स्तंभित हुए खड़े ॥
जब गर्म गर्म लाक्षा गिरकर; तन की वह खाल जलाने लगी ।
पाँचों बेटे सिसकाने लगे; कुन्ती माता चिल्लाने लगी ॥
हाथ पर गिरी, सहलाय गया; तब तक चमड़ी पीठ की उड़ी ।
जब तक कि पीठ तक हाथ गया;तब तक आधी जंघा उधड़ी ॥

पाठक गण ! उस समय का; कैसे करूँ बयान ? ।
उस दुर्घटना–दशा का; स्वयं करें अनुमान ॥

चिल्लाई कुन्ती अर्जुन को; अर्जुन भीम को बुलाने लगे ।
भीम ने नकुल का नाम लिया; "सहदेव" नकुल विलपाने लगे ॥
चिल्लाकर कहा युधिष्ठिर ने;--"सहदेव ! शीघ्र युक्ती बतला ।
हा, मरे, अकारण मौत मरे; भैया ! यह पाँचों जीव बचा ॥"
जल्दी सहदेव उगलियों पर; कुछ गणित लगाते जाते हैं ।
दूसरे हाथ से गिरी हुई; वह लाख गिराते जाते हैं ॥
छटपटा रहे, तड़पड़ा रहे; बिल बिला रहे, चिक्कार रहे ।
गिड़गिड़ा रहे, किचपिचा रहे; आपही तमाचे मार रहे ॥
"सी-सी, रे–रे, हा--हा" के सिवा; दूसरी न अब आवाज़ उठी ।
आत्मा आत्मा में स्थिर हो; आत्मिक–तन्त्रीयों बाज उठी ॥

समझ युधिष्ठिर ने लिया; है अब कठिन बचाव ।
उसी समय एकाग्र हो; बदल दिया वह भाव ॥

बोले-"भैया ! क्यों मरते हो; केवल कलेश सहते सहते ।
मरना ही है, तो मरो बन्धु !; "श्री कृष्ण कृष्ण" कहते कहते ॥
क्या चिन्ता है? मरना ही था; तो कल कैसा? आज ही सही !
बस छोड़ो, सारी चिन्तायें; हृदयों में बाँधो ध्यान वही ॥

गायन

यमुना किनारे बारे, नन्द के दुलारे प्यारे;
बंशी-वट-शाखा धारे, भरत मल्हारे हैं ।
ग्वाल-बाल न्यारे न्यारे, बादरवा; कारे कारे;
धेनु-वत्स प्यारे प्यारे; मूरति निहारे हैं ।
मोर मुकुट के धारे, उज्वल सितारे के;
बन माला घुँघरारे केश भँवरारे हैं ॥
पीत-सुपट वारे हैं, लोचन अरुणारे हैं;
लोकन रखवारे, सो मोहन हमारे हैं ।
सौम्य-सुखमाके घर, दीन दुखियोंके वर;
सन्त, साधुओंके जर, भक्तन के प्यारे हैं ॥
शबरीके आश्रममें, गीध-गति अन्तिममें;
बाल-ध्रुव-संयममें, वेग ही सिधारे हैं ।
गजके कमलपर, प्रह्लादकी मचलपें;
अजामील खल पै हूँ, बाहन बिसारे हैं ॥
वे विविध अवतारे, प्रान, प्रानहूके प्यारे;
मोर मुकुट वारे सो, साहब हमारे हैं ।

माता कुन्ती के सहित, बांधा सबने ध्यान ।
एकायक सहदेव को; हुआ हृदय में ज्ञान ॥

बोले–"भ्राता भीम ! जो कहीं; आगे का खम्भ तोड़ पायें ।
तो निश्चय मार्ग निकल आये; हम लोग ज़िन्दगी पा जायें॥"
कहने मात्रका विलम्ब हुआ; पर हुई न देर तोड़ने में ।
एक ही गदा तो काफ़ी थी; ना कुछ पाषाण फोड़ने में ॥
खम्भ के टूटते ही, सीधी; लम्बी सुरंग दिखलाने लगी ।
या ऊर्द्ध–श्वांसकी गति बदली;जीवनकी ज्योति जगाने लगी ॥
फिर क्या था ? उन सबसे पहिले; अर्जुन क्षण भरमें उछल गये ।
कुन्ती माताका हाथ पकड़; सब भाई क्रमशः निकल गये ॥

किन्तु, हाय ! इस बीचमें; भूल गये सब ध्यान ।
शबरीने पुत्रों सहित; तजे वहीं पर प्राण ॥
बाहर आकर जब हुए; जरा ठिकाने होश ।
फिर रुकनेके लिये था; भला भीमका जोश ?॥

दे मारी गदा मही–तल पर; दांतोंसे दांत चबा डाले ।
आमने सामने जो पत्थर; पाये–धिज्जियां उड़ा डाले ॥
बोले–"लो भाई ! आज्ञा दो; मैं अपनी शक्ती दिखला लूँ ।
आजही हस्तिनापुर जाकर; दुष्टोंकी चटनी कर डालूँ ॥
कह दो, तो सारी नगरीमें; चौतरफ़ा आग लगा आऊँ ।
बोलो तो जल्दी–किस प्रकार; इस करणीका फल दिखलाऊँ॥
उस अन्धे के टुकड़े कर दूँ; या दुर्योधनका सर फोड़ूँ ।
जल्दी बतलाओ, शीघ्र कहो; किसको जोड़ूँ, किसको तोड़ूँ?॥
वह जलता है, अपने ऊपर; तो बिलकुल आज जलादूँ मैं ।
बस, दादा ! रहा न जाता है; बोलो, कैसा बदला दूँ मैं ? ॥

गायन

दुष्टका संहार क्षत्रिय-धर्म है।
शत्रुका प्रतिकार क्षत्रिय-धर्म है॥
आन पर, मर्याद पर, कुल-नीति पर-
देह दे बलिहार, क्षत्रिय-धर्म है।
न्याय भी अन्याय है, खल पर दया-
लोक का आधार क्षत्रिय-धर्म है॥
हो दुखी निर्बल, बली के हाथ से-
जान लो, निस्सार क्षत्रिय-धर्म है।

धर्मराज कहने लगे-"शान्त, भीम-भट ! शान्त !।
अभी चन्द दिनके लिये; निकल चलो एकान्त॥
जो कहते हो, वह ही होगा; पर अभी विपद कुछ कालकी है।
जो कुछ है, भैया ! अच्छा है; यह भी लीला गोपालकी है॥
इस समय हमें कुछ रोज़ों को; घरसे बाहर रहना होगा।
वनवास-वृत्ति करनी होगी; सब भांति कष्ट सहना होगा॥
हम जहर पिलाकर प्राण हरें; या छिपकर आग लगायें कहीं।
यह युद्ध-नीति का मर्म नहीं; यह वीर-पुरुषका कर्म नहीं॥
चल दो चुपचाप यहांसे बस; इसमें ही विजय दिखाती है।
सन्मुख लड़नेकी युक्ति करो; यह "राज-नीति" बतलाती है॥"

गायन

शान्ति रक्खो-काम ही कुछ और है।
शान्तिका परिणाम ही कुछ और है॥

वीरता है लोक की संरक्षणी–
शान्ति–प्रियता नाम ही कुछ और है।
लौह ठंडा, काट दे; सन्तत लौह–
शान्ति–शर की थाम ही कुछ और है॥
शान्ति-मथके शान्ति-सागर हैं सहाय–
शान्ति में विश्राम ही कुछ और है।

कहा भीमने आपकी; ली यह आज्ञा मान।
लेकिन जीवित रह गया; छली पिशाच प्रधान॥

इस कपटी धूर्त्त "पुरोचन" की; यह सारी करणी भाई ! है।
इसने ही हमें भुलाया है; इसने ही आग लगाई है॥
इस लिये इसे मैं इसका फल; बे दिये न हर्गिज़ छोडूँगा।
इस आगके बदले में–मैं भी; इस घरमें आग लगा दूँगा॥

इतना कह कर भीमने; किया काम बे बाक।
घड़ियोंमें जल कर हुआ; वह हत्यारा ख़ाक॥
उसी जगह शत्रुता का; चुका दिया व्यवहार।
गमने वन की ओर को; पांचों पाण्डु–कुमार॥

गायन

हमींने, हमीं को जो, खाया न होता।
तो ग़ैरोंने क़ब्ज़ा जमाया न होता॥
जो भाई ने भाई मिटाया न होता–
तो वीरों का ऐसा सफ़ाया न होता।

फँसे हम न होते; किसी फांसमें भी—
जो हमने किसी को फँसाया न होता ॥
तुम्हें भी ऐ "शैलेन्द्र" अद्र चाट जाते—
जो यादवने अब तक बचाया न होता ।

धक धक जलती ज्वालसे; लाये नाथ निकाल ।
कह "विनीति" "शैलेन्द्र" अब; जयति कृष्णगोपाल ॥

गाथायें यदुनाथकी; जानें श्री यदुनाथ ।
भक्तो ! जय यदुनाथकी; कहो प्रेमके साथ ॥

शुभमस्तु. ।

इति लाक्षागृह—निर्माण ।





श्रीः ।

महाभारत-आदिपर्व ।

द्रौपदी-स्वयम्वर ।

सरल छन्दोबद्ध.

" जिन्हें वेद या शास्त्र का भास होगा ।
उन्हें इन रहस्यों का विश्वास होगा ॥"

"शैलेन्द्र"-"विनीति" कृत.

* प्रार्थना । *

जपो मन ! मन-हर-कुञ्ज-विहारी ।
तरणि-तनूजा-तीर; नवलि नहायें नीर ।
चपल चुराये चीर; कुञ्जविहारी ॥
घुमड़ घनों की घोर; उमड़ उन्हीं की ओर ।
मगन मनायें मोर; कुञ्जविहारी ॥
द्रवित दुलारें दीन; ललित-लताके लीन ।
बदन विराजे बीन; कुञ्जविहारी ॥
त्रिविध-त्रिलोकी-त्रास; मदन-मुरारी-आस ।
विकल विलोके " व्यास " कुञ्जविहारी ।

श्रीः।

❀ प्रसङ्ग—प्रारम्भ। ❀

लाक्षागृह का शात जब; फैला वह संवाद।
जनता में चारों तरफ़; बढ़ा विशेष—विषाद॥

दुर्योधन भी कौरवों सहित; ऊपरी भाव से रोने लगा।
फिर यथा—समय कुल नाते से; कुछ क्रिया-कर्म भी होने लगा॥
नियमानुसार सैकड़ों पुरुष; सान्त्वना वहाँ देने आये।
प्रत्यक्ष—भाव में कपट मूर्त्ति; सीमा से बाहर बिलखाये॥
मानो उस भ्रातृ—विरोधी की; बाहें पहिले ही टूट गईं।
या उसी रोज़ बगुला—भगती; अन्धे की आखें फूट गईं॥

कपट भरे इस शोक पर; था जनता में शोक।
किन्तु, वास्तविक बात को; सका न कोई रोक॥

क्रमशः सब पर खुल गई; उन दुष्टों की चाल।
अपना अपना भाव था; अपना अपना ख्याल॥

उस ओर कुमार तथा कुन्ती; थक गये खूब चलते चलते।
जा पहुँचे एक महा-वन में; शाम को सूर्य्य ढलते ढलते॥
प्यासों से कुन्ती माता के; दोनों रद काले पड़ आये।
घुटनों पर सूझन चढ़ आई; पैरों में छाले पड़ आये॥
यह दशा देख कर माता की; भीम ने चढ़ाया कन्धों पर।
सहदेव, नकुल को गोदी धर; बढ़ चले पाण्डु—वंशी नाहर॥

वट के नीचे पहुँच कर; माँ को दिया उतार।
श्रम—वश सबके सिरों पर; निद्रा हुई सवार॥

केवल उनमें से भीम सेन; पानी के लिये निकल आये।
अत्यन्त यत्न कर दोनों में; थोड़ा थोड़ा सा जल लाये॥
कुन्ती माँ थकित अचेत पड़ी; और चारों बन्धु सो रहे हैं।
वह दृश्य देख कर भीम आज; अबला की भांति रो रहे हैं॥
"जगदीश ! यह वही केहरि हैं; जिनसे गीदड़ दहलाते थे।
भगवन् ! हम भी वह ललना हैं;जो पलनों में सुख पाते थे॥
हम भी वह धनी वैभवी थे; जिनसे सुर-पति सकुचाते थे।
हम ऐसे कुल के बालक हैं; जिसको सब शीश झुकाते थे॥
वह आज शेरपन, कोमलता; अभिमान है होनी के पाले।
दो मुट्ठी चने न पाते हैं; हे विधि ! वे घी शक्कर वाले॥
हाँडी, फ़ानूस सितारे हैं; और चन्द्र का दीपक जलता है।
यह दशों दिशायें द्वारे हैं; भावीका चक्कर चलता है॥
मणि-जटित काञ्चनी पात्रों में; मिट्टी के बासन शेष नहीं।
मख़मली गद्दियों वालों के; टट्टों के आसन शेष नहीं॥
उद्योग भाव की मूरति है; वह भाव भाग्य पर निर्भर है।
आकाश हमारा चादर है; यह पृथ्वी माता बिस्तर है॥
जो बाहें नाग--लोक जीतें; जो बाहें कौरव दहलायें।
ना कुछ रोटी के लिये आज; वे बाहें कातर कहलायें॥
भगवन् ! रोने के सिवा हमें;दूसरा काम क्या लिखा नहीं ?।
सुख-सूची में इन दुखियोंका;सुख सिन्धु!नाम क्या लिखा नहीं?।

गायन

दुखियों को जगह हो, तो; हम को भी बिठालो।
दीनों की गुज़र हो, तो; यह दीन बुला लो॥

भावी भी तुम्हारी है; हम जन भी तुम्हारे—
क्या बात है?—दीनेश!; जो दोनों को निभालो।
मिट्टी में मिले जाते हैं; यह पाँच खिलौने—
त्रैलोक—धार हो, तो; टुक हाथ लगा लो॥
"शैलेन्द्र" तुम्हें छोड़ के; माने न किसी को-
यह काम तुम्हारा है, मारो या बचा लो॥"

असुर "हिडम्बक" का वहीं; था निवास-स्थान।
गन्ध-मात्र से कर लिया; उस ने नर-अनुमान॥
पहुँचा निश्चर दौड़कर; निज भगिनी के तीर।
बोला—"उठो हिडम्बनी!; खुली आज तक़दीर॥
इस वन में दक्षिण की दिश से; मानुष-गन्धसी आ रही है।
भाग्य से कदाचित वर्षों में; फिर उत्तम घड़ी आ रही है॥
अये बहिन! दौड़कर जल्दीसे;वह नया शिकार पकड़ लाओ।
मुँह में पानी भर आया है,यह व्यञ्जन आज चखा जाओ॥"
दौड़ी शीघ्र हिडम्बनी; देखे पाण्डु—कुमार।
हुई पिशाचिन भीमपर; तन, मन से बलिहार॥
सोचा—"ओ हृदय! यकायक मैं; पृथ्वी में धँसती जाती हूँ।
मैं इन्हें फाँसने आई हूँ; या उलटी फँसती जाती हूँ॥
सुन्दर सुकुमार सलौना सुठ; क्या माँस बनाया जायेगा?।
यह तो कल—कण्ठ सु कण्ठा के; कण्ठ से लगाया जायेगा॥
एकही रंग की चीजोंके; सृष्टीमें भिन्न खज़ाने हैं।
एवं उनकी तौलके लिये; सब अलग अलग पैमाने हैं॥

पीतल और सोना रंगतमें; बहुधा कुछ मिलता जुलता है ।
पर एक मनोंसे आता है; और एक रत्तियों तुलता है ॥
यह कुँवर मनोहर भूषण है; फूल है मशानी बीहड़ पर ।
स्वार्थ की घड़ीके योग्य नहीं; चढ़ चुका प्रेमके पल्लड़ पर ॥
इसको खानेके बदलेमें; अपना पिशाचपन खाऊँगी ।
यह गला काटनेके एवज़; अब अपने गले लगाऊँगी ॥"

यही सोच कर हिडम्बिन; प्रकट हुई तत्काल ।
भीमसेन को हृदय का; समझाया सब हाल ॥

"हे नर–भूषण ! इस निर्जनमें; किस कारण कष्ट उठाया है? ।
किस निर्दयीने, या निठुराने; यह हीरा इधर छिपाया है ॥
हो वीर–रूपमें काम देव; तेजोमय स्वयं भास्कर हो ।
प्रकटे हो पवन–देव, अथवा; वैराग्य–वेषमें किन्नर हो ?"
भीमने कहा–"मैं काम नहीं; नाकाम एक ना चारा हूँ ॥
हूँ काल–चक्रके चक्करमें; देवी ! भावी का मारा हूँ ।
मैं देव, सूर्य्य, गन्धर्व नहीं; साधारण जीव कहाता हूँ ॥
श्री पाण्डु–राज थे पितृ देव; कुन्ती मैया का बेटा हूँ ।

बदल दिया दुर्दैवने; सभी हमारा वेश ।
भिक्षा ही है जीविका; गृह है देश–विदेश ॥
ज्यों ही परिचय पागई; हर्षायी वह बाल ।
हाथ जोड़ कहने लगी–"स्वामी कुन्ती–लाल ॥

यह भाग्य तुम्हारा फिरा नहीं; विधिने यह भाग्य फिराया है ।
घर बैठे हुए विरागिनको; सुन्दर सुहाग पहुँचाया है ॥
करुणा मय ! कृपा कोर कीजे; दासी की बांह ग्रहण कीजे ।
हे आर्य्य–पुत्र ! इस चेरी को; चरणोंमें आज शरण दीजे ॥"

भीम ने कहा—"भामिन तेरी; आज्ञा तो पालन करता हूँ ।
पर मात-भ्रात की मर्य्यादा; खण्डन करनेसे डरता हूँ ॥
यह पांचों यहीं सो रहे हैं; इनकी आज्ञा ले लेने दे ।
बैठ जा, अभी उत्तर दूँगा; माता को सोकर उठने दे ॥"

बैठी, वहीं हिडम्बनी; मुँह पर घूँघट डाल ।
वहां असुरकी जीभसे; टपक रही थी राल ॥

कुछ समय प्रतीक्षा कर, वह भी; शीघ्र ही वहां दौड़ा आया ।
तो चिड़ी मार की कन्या को; चिड़ियाके हाथ फँसा पाया ॥
तरबूज़ छुरी को काट गया; या सूर्य्य मिल गया रजनीमें ।
ईंधनने आग बुझा डाली; या छाया भोग योगनीमें ॥

पहुँच न पाया था अभी; वह दोनोंके पास ।
कहने लगी हिडम्बनी; होकर निपट उदास ॥

"प्राणेश ! हमारा अनुष्ठान; उलटा सा हुआ जा रहा है ।"
भाई हिडम्ब पामर पिशाच; वह देखो, इधर आ रहा है ॥
हम दोनों " निश्चर-योनिमें हैं; वह भाई है, मैं भगिनी हूँ ।
हूँ हिंसक, किन्तु देख तुमको; बन गई दयार्द्र-भावनी हूँ ॥
तुम को भक्षण करनेके हित; हे स्वामी ! दासी आई थी ।
इस दारुण-विषय-वेदना की; इसने ही युक्ति बताई थी ॥
वह आया, देखो वह आया; बस आया, सिर पर आयेगा ।
विश्वास रहे, हे आर्य्य-पुत्र !; वह दोनोंको खा जायेगा ॥"

कहा भमिने—"सुन्दरी; यों मत चिन्ता मान ।
इस पृथ्वी की पीठ पर; हैं लाखों बलवान ॥

आने दे, ज़ोर दिखाने दे; मैं भी थोड़ा बल रखता हूँ ।
है मुख मलीन, तन क्षीण तनिक; पर आत्मा निर्मल रखता हूँ ॥

कह दे, तो यहीं बांध रक्खूँ; या इस वनसे बाहर कर दूँ ।
परलोक-धाममें पहुँचा दूँ; अथवा अपना नौकर कर दूँ ॥
उस समय भीमके कानोंमें; ध्वनि गूँज उठी, ललकार भरी ।
सुनतेही, कुन्ती-नन्दनने; यक ताल मार, हुँकार भरी ॥
खल भगिनीकी ओरको बढ़ा; भट खलकी ओर झपट धाया ।
झपटा झपटीमें लपट चपट; जोड़ा कुछ दूर निकल आया ॥
बोला हिडम्ब-" रे अभिमानी !; यह मनमानी मेरे वनमें ।
रे अज्ञानी ! रे भट मानी !; वे उनवानी मेरे वनमें ॥
इतना साहस--भट की भगिनी; अपनी भामनी बनाता है ।
आश्चर्य्य, शोक, लज्जा, सँकोच; चूहा बिल्ली का नाता है ॥
हो सावधान, अनजान, मूर्ख; बलवान सामने आता है ।
ओ सुख-शैय्याके तलबगार; यम-द्वार देखने जाता है ॥"

कहा भीमने-" शर्म कर; बढ़ा न व्यर्थ विवाद ।
बहनोईके साथमें; यह तेरी इमदाद ॥

बहतर था, चाल चलन की कुछ; तू साफ़ सफ़ाई दे जाता ।
इस नाहक़ बक झकके बदले; कुछ मुझे बधाई दे जाता ॥
ताज्जुब है, क्यों इतनी "चख़ चख़; प्रेमी की चारा जोईसे ।
इतनी गुस्ताख़ी, बे अदबी; इतना पर्दा बहनोईसे ॥
वह यौवन की सारी मस्ती; रगरग से टपकी जाती है ।
रे पापी, वह कुसुमाङ्ग-कली; बे माली सड़ती जाती है ॥
अब तक जो किसी योग्य-वर से; उसकी शादी कर दी होती !
तो आज कामनी द्वार द्वार; भोगकी भीखको क्यों रोती ? ॥

जो अपनी *युवा बेटियों की; शादी में देर लगाते हैं।
वे बहुधा धोखा खाते हैं; लज्जा से मर मर जाते हैं॥
वह मेरे आश्रय आई है; मैं उसे कदापि न छोड़ूँगा।
जो हाथ उठाया उस पर तो; हाथ को हाथ में तोड़ूँगा॥"

बढ़ी बात की बात में; इस दर्जे तक बात।
बढ़ बढ़ कर होने लगे; दोनों में आघात॥

गायन

धर कुधर मान; डोलत प्रधान।
गरजत गुमान; बल धर महान॥
इक तरु उपार; इक धरि पहार।
करि करि प्रहार; किलकत अपार॥
पद, नख प्रचार; भरि मुष्टि मार।
सुधिबुधि विसार, रण-रस-अधार॥

इसी कुलाहल में उठे; कुन्ती एवं वीर।
देखी आगे कामनी; सुन्दर सुघड़ शरीर॥

कुन्ती बोली-"हे देवि! यहाँ; किस कारण वन में आई हो?।
दुखिया हो,या कि तपस्विन हो; अथवा शत्रुसे सताई हो॥"
बोली हिडम्बनी-"हे माता! मैं इसी जगह से आई हूँ।
पागई यहाँ यक पुरुष-रत्न; उसके हाथ से ठगाई हूँ॥
वह देखो, वह मेरा भाई; एवं वह वीर लड़ रहा है।
गिर रहा नीच भाई, माता; छाती पर पुरुष चढ़ रहा है॥"

---

* कृतयुग, त्रेता सुताको; अष्टादशी विधान।
कलिमें पाणि-ग्रहण हित; षोडश वर्ष प्रमान॥

इतने में वह दुष्ट भी; चला गया यम–धाम ।
भीम कुँवर ने लौट कर, माँको किया प्रणाम ॥

माता एवं चारों भाई; वीर को बधाई देने लगे ।
फिर आई हुई समस्या पर; आपस की सम्मति लेने लगे ॥
कुन्ती माता ने हर्ष-सहित; उनका विवाह स्वीकार किया ।
बलवीर भीम ने विधि-पूर्वक; सुमुखी को अङ्गीकार किया ॥



भीमसेन के संग में; तिय का हुआ प्रसंग ।
वन में भी बन ठन गया; वन–जीवन का रंग ॥

दिन रात हिडम्बिन जङ्गल के; परिचित स्थान दिखाती है ।
मीठे मीठे ताज़े ताज़े; फल, फूल कन्द खिलवाती है ॥
कुछ दिन पश्चात् हिडम्बिनसे; यक वीर-रत्न उत्पन्न हुआ ।
पैदायश ही से वह सुपूत; बल शील–शक्ति–सम्पन्न हुआ ॥

भीम पिता की भाँति ही; गठित–देह, बल–धाम ।
रखा गया उस लालका; वीर–"घटोत्कच" नाम ॥

एक दिन हिडम्बिन कहने लगी;-"हे नाथ! अगर आज्ञा पाऊँ।
तो कुछ दिन को बेटे समेत; अपने देश को चली जाऊँ॥
माता जी, आज्ञा दें सहर्ष; तो जन्म-भूमि को जाऊँगी।
स्मरण-मात्र के करते ही; तत्क्षण सेवा में आऊँगी॥"

आज्ञा पाकर सुत-सहित; गवनी अपने देश।
लगे विचरने फिर वहीं; बीर-वेष दुरवेश॥
एक दिवस आये वहाँ; मुनिवर वेद-व्यास।
देखा पाण्डव-वर्ग को; अतिशय दुखी उदास॥

कुन्ती ने चरण पकड़ मुनिके; भरभर दुख भरी पुकारों को।
ऋषिवर के आगे डाल दिया; अपने पाँचों आधारों को॥
फिर बोली-"हे आराध्य देव!; यह श्रीमान् के टहलुआ हैं।
शान्तनु-कुल के हैं राज-पुत्र; इस दुखियारी के ललुआ हैं॥
छुटपन से इन बेचारों ने; आराम न अब तक जाना है।
तौहीन उठाना, पिट जाना; जीवन भर ख़ाक उड़ाना है॥
सर्वज्ञ! कौरवों ने मेरी; सारी सम्पति छुड़ाई है।
धोखा देकर लाक्षा गृह में, जलने की युक्ति लड़ाई है॥
ईश्वर की कृपा, पुण्य प्रभु का, जो सकुशल बचने पाये हैं।
उन के ही अत्याचारों से; हम निकल यहाँ को आये हैं॥
इसलिये छिपे फिरते हैं, हम; फिर से उत्पात न सिरआयें।
हे दयाधाम! आपही कहें; अब यह असहाय कहाँ जायें?।"

व्यास देव कहने लगे-"कुन्ती बुरा न मान!
सब लोगों की परीक्षा; लेते हैं भगवान॥

सृष्टि में किसी के चारोंपन; एक से कदापि न जाते हैं।
जो छुटपन में सुख पाते हैं; वे आगे दुःख उठाते हैं॥

छुटपन के दुःख तथा विपदा; बच्चों के लिये कसौटी है।
जो इस में खरे निकलते हैं; उन की भावी फिर लौटी है॥
कुन्ती झेल ले, धैर्य्य से दुख; तू स्वयं सुःख दाता होगी।
यह राजकुमार राज्य लेंगे; तू कभी राज–माता होगी॥
इस समय हमारी सम्मति से;तुम "एक चक्र नगरी" जाओ।
है काल-चक्र का चक्कर तो; उन चक्रधारको अपनाओ॥"

व्यासदेव की राय से; पाँचों पाण्डु–कुमार।
कुन्ती माँ के साथ में; वन से गये सिधार॥

उस "एक चक्र नगरी" में-वे; ब्राह्मण के यहां रहे जाकर।
उन राज-दुलारों का निवाह; होता है ज्यों त्यों भिक्षा पर॥
होते ही प्रात कुमार सभी; मिल कर भिक्षा को जाते हैं।
वे दानवीर, दाता, दर दर; "दाता–दाता" चिल्लाते हैं॥
वे महावीर जो आजतलक; वीरों के आगे झुके न थे।
जो वेग वान रण-धीरों के, उस महा-वेग में रुके न थे॥
वे वीर धीर इस विपदा में; भूखों से झुक झुक जाते हैं।
यम पर तन कर चलने वाले; तिनकों से रुक रुक जाते हैं॥
जिनकी एक ही आज्ञा पर; सुर–राज हाथ जोड़े आयें।
वे आज गैर की नज़रों पर; कठपुतरी से चक्कर खायें॥
नर्त्तकी, भाट, कवि हाजिर थे; जिनका आनन्द बढ़ाने को।
थे देश देश के भूप जिन्हें; दुख में देख कर मनाने को॥
उन परम-पराक्रम शीलों को; अब पूछने वाला कोई नहीं।
सच है–सम्पति के सगे सभी;विपदा में किसीका कोई नहीं॥
दिन भर में जिनके पाँच बार; सारे लिबास बदले जायें।
वे भाग्यवान भावी के वश; चिथड़ों को भी अब तरसायें॥

जो कुछ हो ऐसे अवसर पर; स्पष्ट यही कह आती है।
कुछ पेश नहीं जा सकती है; जब क़िस्मत चक्कर खाती है॥

गायन

विदुर से ज्ञानी और दानी हरिचन्द ऐसे;
रावन से मानी भट पेश नहिं पाये हैं।
राघव से समरथ प्रतिज्ञी दशरथ से;
कंस से निरंकुश हू पलट दिखाये हैं॥
सीता सी सती तियहिं नल हू की प्रियहिं दै;
झांसे तमासे से वन वन भटकाये हैं।
बीसन, विरागिन अनुरागिन में देखिये;
भागसे बचे हौं भाग, कौन अस जाये हैं?॥

एक रोज़ चारों सुवन; गये भीख के हेत।
कुछ कारण वश भीम को; रहना पड़ा निकेत॥
एकायक द्विज के यहाँ; हुआ भयानक शोर।
करुणा-क्रन्दन वंश का; फैला चारों ओर॥

जा कर देखा कुन्ती माँ ने; ब्राह्मणी पड़ी बिलखाती है।
रोता है बेटा एक तरफ़; और बहू अलग बिलपाती है॥
बेटी बाप के गले लग कर; छाती और माथा पीटती है।
बहुअर सास के पैर पड़ कर; हाहा पुकार कर चीख़ती है॥
प्रत्येक को रोने के सिवाय; कुछ कहने का अवकाश न था।
था अन्धकार का साम्राज्य; आशा का कहीं प्रकाश न था॥
कुन्ती ने बार बार पूछा; पर कोई उत्तर मिला नहीं।
देवी ने लाख प्रयत्न किये; पर कोई चारा चला नहीं॥

बाँह पकड़ प्रत्येक की; बैठाया तब माय ।
तब बेचारी ब्राह्मणी; बोली यों बिलपाय ॥
"बहिन ! हमारे नगर में; आया है एक व्याध ।
मारे जाते हैं यहाँ; लोग बिना अपराध ॥

है दैत्य "बकासुर" इस वन में; जो यहाँ नित्य प्रति आता था ।
दिन भर में दस या बीस जीव; वह हत्यारा खा जाता था ॥
लोगों ने मिलकर ज़ोर दिया; लेकिन न ज़रा भी असर हुआ ।
उस खलसे लोहा लेने को; तैयार न कोई बशर हुआ ॥
तब सभी नगर–वासी मिलकर; उस महा-दैत्य के पास गये ।
और अपनी प्राण-याचना को; सब लोग प्रार्थना करने लगे ॥"
दैत्य ने कहा-"अच्छा, यदि मैं; एक ही व्यक्ति नित पाऊँगा ।
तो इस नगरी के और जीव; निष्कारण नहीं सताऊँगा ॥
तुम सब आपस में तय करके; एक ही जीव देते जाओ ।
तो नाहक़ खून खराबे से; और विप्लव से छुट्टी पाओ ॥"

अस्तु, सभी ने सभा कर; बाँध दिया बन्धान ।
जाते हैं उसके लिये; नित्य किसीके प्राण ॥

रोजाना उसी कायदे से; रोजी पहुँचा दी जाती है ।
प्रति पाँच वर्ष में एक बार; घर पीछे बारी आती है ॥
हे बहिन ! आज उस बारी में; आई तक़दीर हमारी है ।
अब मैं हूँ, वे हैं, बेटी है; बेटा है, बहू दुलारी है ॥
मैं जाऊँ, लेकिन वृद्ध–स्वामि; मेरा सम्बन्ध न तोड़ते हैं ।
बेटा जाये, तो सब प्राणी; बेटे पर प्राण छोड़ते हैं ॥
है भोला भोला सुकुमारा; जीवन का भाव यथार्थ नहीं ।
बेटे से बढ़ कर दुखियों को; पृथ्वी पर और पदार्थ नहीं ॥

बेटी—कपिला, दुधमुँही, उसे; हक़ क्या ! हत्या करवानेका ।
बहुअर सीधी साधी गौ है; है समय खेलने खानेका ॥
स्वामी जायें—तो मेरा सब; पातिव्रत—धर्म बिगड़ता है ।
सारांश एक के जाते ही; सारा परिवार उजड़ता है ॥
इसलिये यही तय किया गया; हम सभी आज मिलकर जायें ।
एक ही साथ हिलते मिलते; अपनी बारी पर मर जायें ॥
रोलें जीभर के अन्त समय; सारे जग—बन्धन तोड़ चलें ।
सब नाते रिश्ते छोड़ चलें; प्रेम के फफोले फोड़ चलें ॥

गायन

"आ गया, आख़िर को; वह दिन आ गया ।
आह ! अपना ही; नसीब खा गया ॥
चल दिये सब, मौतके आग़ोश में;
हुक्म मालिकका; यकायक आ गया ।
मिट चला, यक वंश, आः ! फूला फला—
वज्र टूटा, या सितम सर छा गया ॥
हक़ में जो "शैलेन्द्र" जिसके है लिखा ।
वह बिला तक़रार, उसको पा गया ॥"

कुन्ती सी त्यागनी को; रहा न सुनकर धीर ।
सुन सकती थी, वह कहां ?; किसी दीनकी पीर ॥

कानोंने क्षत्रिय—कान पकड़; कानों पर हाथ न रक्खा है ।
बँध गई आन के बन्धन में; कर्त्तव्यने मारा धक्का है ॥
वह हारी हुई काल—गति की; देख कर काल बलिहार हुई ।
दुखियों के दुख में दुखियारी; दुख हरने को तैयार हुई ॥

करुणा की जगह हँसी आई; दुख के बदले–ममता खाकर।
ब्राह्मण का सारा हाल समझ; यों बोली कुन्ती समझा कर ॥

ओह ! ज़रा सी बात पर; इतना ज्यादा शोर।
ना कुछ दुखपर, यह रुदन; देखो मेरी ओर ॥

घर बार छुटा कर विधिना ने; इस जगह हमें पहुँचाया है।
दानी मानी राजाओं को; भिक्षा माँगना सिखाया है ॥
तुम एक बार मर जाओगे; हम दिन भर मरते जीते हैं।
खाते हैं टुकड़े ग़ैरत के; और शर्म्म का पानी पीते हैं ॥
चिन्ता न करो, आजके लिये; तुममें न किसीकी बारी है।
हम भी तो घर में रहते हैं; इससे ओसरी हमारी है ॥
इससे मेरे बेटों में से; कोई जायेगा एक वहाँ।
फिर पांच वर्षको फ़ुरसत है;क्या पता ? कौन ? फिर जाय कहां ?॥

कुन्तीके यह वचन सुन; बोला विप्र सुजान।
"इन रोज़ों हैं आप सब; मेरे घर महमान ॥

कौनसी नीतिमें लिक्खा है ?; अपना दुख अतिथोंपर धरना।
अपने जीवन की रक्षा को; दीनों की बलिदानी करना ॥
जब मृत्यु शीश पर नाच उठी; तो अब उससे क्या डरना है?।
बच रहे आज, तो पांच वर्ष; पीछे तो फिर भी मरना है ॥
हत्या कर दूँ, उस दुखियाकी; जो अपने ही आश्रय आये।
धिक्कार लाख उस जीवनको,जिसपर कि अतिथि–जीवन जाये॥
क्या अपने प्राण बचानेको; लूँ प्राण किसी सुख–दाताके।
देवी ! वह भी तो पुरुष–रत्न; हीरे हैं अपनी माताके ॥
अपने दिन पर सब मरते हैं; बदले में और न जाता है।
पाप का बोझ, भाग्यका भार; बेगारी नहीं उठाता है ॥"

कुन्तीने उत्तर दिया;—" है यह बात प्रमाण ।
किन्तु हमारे सामने; जायें द्विज के प्राण ॥

जो पालन-पोषण करती है; प्रणसे प्रत्येक सुप्राणी का ।
यह देह है उसी जाति-वर की; है वही रुधिर क्षत्राणी का ॥
हम लोग आज कल दुख में हैं; फिर भी स्वधर्म पर मरते हैं ।
घनसे घिरकर भी सूर्य्य-देव; संसार प्रकाशित करते हैं ॥
पृथ्वी हो जाये उथल पुथल; पर तुम्हें नहीं जाने दूँगी ।
हो जाय मौत सब बेटों की; तुम पर न हवा आने दूँगी ॥"

कुन्तीने फिर बातका; दिया न कुछ अवकाश
सीधी उठकर वहांसे; गई भीम के पास ॥
देकर यों उत्तेजना; बोली—"भीम कुमार !—
पाण्डव-कुलमें सब तरह; है तुमसे आधार ॥

बेटा ! मैं तुझे भेजती हूँ; धर्म पर प्राण विसराने को ।
क्षत्रीत्व-धर्म दिखलाने को; ब्राह्मण के प्राण बचाने को ॥
माता की आत्मा ऐसी है; जो सुतको कण्ठ लगाती है ।
लेकिन तेरी मां ऐसी है; जो मरने को पहुँचाती है ॥
बेटा ! यह नगर बकासुर से; क्षण क्षण पर शङ्कित रहता है ।
इस नगरी का सारा जीवन; निश्चर के आश्रित रहता है ॥
बारी बारी हत्यारे ने; कितनी ही जनता मारी है ।
बलवीर ! आज उस बारी में; अपने ब्राह्मण की बारी है ॥
मेरी आज्ञासे, अये बेटा !; उसके बदलेमें तुम जाओ ।
या आज धर्मपर मर जाओ; या उस दैत्यको मार आओ ॥"

शीश झुका कर मातुको; उठा भीम सरदार।
वनमें जाकर सिंहने; भरी एक हुंकार॥



हुंकार भीम की सुनते ही; वह दैत्य मार फुंकार चला।
उस ओर शिकारी झपट चला;इस ओर चपेट शिकार चला॥
इस चला चलीमें चलकर कुछ;दोनों निश्चल हो मचल गये।
रंगतें बदलनेके पहिले; पैर के पैंतरे बदल गये॥
भीम ने कहा—"कुछ आगे आ; ओ बे, आये आने वाले।
खाले, खा—जा, खा, हाज़िरहूँ; ओ दीनोंके खाने वाले॥
राक्षस बोला—"वाहरे भाग्य!;क्या मोटा आज शिकार मिला।
ताज़ा भी है, सुन्दर भी है; हर खूबी में तैयार मिला॥
बस आज खूब जी भर—इसको; खाऊँगा, और खिलाऊँगा।
अपने मित्रों की सभा जोड़; इसकी बोटियां बटाऊँगा॥"

भीमने कहा—"आजका मांस; साधारण जीव न खायेंगे।
यह वे लोहेके चने समझ; जिनसे कि दांत गिर जायेंगे॥"

सुने भीमके शब्द यह; बढ़ा "बकासुर" वीर।
वृक्ष उखाड़ा हाथसे; गया भीमके तीर॥

भीमने उखाड़ा एक पेड़; फिर पेड़ पेड़ पर टूट पड़ा।
प्रति भटके प्रबल प्रहारोंसे; नीचका पेड़ भी छूट पड़ा॥
छूटा पिशाच का वृक्ष जहां; वह भीम वीरके सर टूटा।
छूटा भीम का एक मुक्का; उस दानव का मस्तक फूटा॥
ताल पर ताल दे कर दानव; वीरसे बराबर लड़ता है।
ख़म पड़ जाता है घुटनोंमें; जब भीमका घूँसा पड़ता है॥
सैकड़ों तरह; सारे दिन तक; उन दोनों का संग्राम हुआ।
अन्तमें भीम की मारोंसे; दानव का काम तमाम हुआ॥



समाचार सुन कर हुआ; घर घर जय जय कार।
धर्म—विजय पर कहेंगे; हमभी तनिक विचार॥

गायन

त्रैकालमें भी क्षय नहीं है, धर्मवान को।
त्रैलोकमें भी भय नहीं है, धर्मवान को॥
सुख, कीर्त्ति, राज्य, देह, वंश, का तो मोह क्या ?–
वैकुण्ठ की भी लय नहीं है, धर्मवान को।
यम, देव, दैत्य, दानव; नर, नाग, प्रेत, क्या ?–
है कौन ? जिस पै, जय नहीं है, धर्म वान को॥
मर जावो तो मर जावो "शैलेन्द्र" धर्म पर–
प्रलयोंमें भी प्रलय नहीं है; धर्म वान को॥

भीमसेन ने विप्रसे; पाया आशीर्वाद।
नगरी फिर होने लगी, यथा–पूर्व आबाद॥

"क़न्नौज" नगर को उन रोज़ों; पाञ्चाल-राजगृह कहते थे।
श्री द्रुपद राज, पाञ्चाल--भूप; उस भव्य–भूमिमें रहते थे॥
उनके गृहमें सुन्दर, सुशील; शुभ–लक्षण सुता सुहाती थी।
जो पाञ्चाली, या द्रुपद--सुता; द्रौपदी कहाई जाती थी॥

छुट पनसे करने लगी; वह शंकर का ध्यान।
तुष्ट हुए उस देविपर; वे अवढर भगवान॥
प्रकट मूर्त्ति–धर विश्व–मय; प्रकट हुए भगवान।
आशुतोष, वर-विरद-धर-; गौरी-पति, गुण–वान॥
चरणोंमें गिर द्रौपदी, बोली–" जय अखिलेश।
जग-धर, वर-धर-योग-धर; धरा-धरण-धवलेश॥

गायन

त्रिकालज्ञ, त्रैमूर्ति, त्रै-नेत्र-धारी ।
महाकाल विकाल, व्यालादि-कारी ॥
महारण्य-भक्त्यांशु-माली-प्रकाशम् ।
मनो व्योम-दैदीप्त-कृष्णेन्दु-भासम् ॥
निराकार, अव्यक्त, संसार--कर्त्ता ।
भवोत्ताप, सन्ताप, त्रैताप-हर्त्ता ॥
व्यथा-वेदना-लोक-निःशोक-क्वाथं ।
नमो विश्वनाथं ! नमो विश्वनाथं ॥"

द्रुपद सुता की विनय पर; बोले श्री भगवान ।
हूं प्रसन्न, मत खिन्न रह; मांग देवि वरदान ॥

द्रौपदी स्वभाविक ही बोली-"दीजे पति-धर!पति-धर चाहूँ ।
पति वर चाहूँ,पति वर चाहूँ;पति वर,पति-वर,पति वर चाहूँ॥"
जब पांच बार पति वर मांगा; तो कहा "तथास्तु"महेश्वरने ।
एवं संबोधन कर उसको; यह शब्द कहे अखिलेश्वरने ॥

"देवी, पुण्ये, द्रौपदी; दिये पञ्च भरतार । "
इतना सुन कर वह सती; बोली हाय पुकार ॥

विपदा हारी ! यह वर कैसा ?; यह तो अभि शाप कहायेगा ।
मेरी नाक पर, पिनाक-धार !; सारा जग थूक उड़ायेगा ॥
जब पाँच वरों से शादी कर; मैं बहु-पत्नी बन जाऊँगी ।
तब पातिव्रत को पानी दे; वेश्या ही क्यों न कहाऊँगी ? ॥
शिव बोले-" जो कुछ कहा गया;वह कभी नहीं टल सकता है ।
हाँ, पञ्च-स्वामि होने पर भी; पतिव्रत न तेरा चल सकता है ॥

❀जिस तरह अहिल्या, तारा या; वह मन्दोदरी पतिव्रता है।
इन रोजों कुन्ती देवी है; उनमें ही तेरी गणना है॥
सात्त्विक-रहस्य-रति-रंग रहे; दैवी-विवेक अविवेक रहे।
बहु-भेष-धार सुर-भेष रहे; पञ्च-पति रूप पति एक रहे॥
जिस भाँति दिवाकर अंशुमालि; प्रति-घट-व्यापक सह अंश रहे।
उस तरह एक ही दिव्य-ज्योति; धरि पाँच अंश पति-वंश रहे॥

❀ वास्तव में फल मनुष्य की नियत पर है, विवशता का कर्म गन्य नहीं।

१—साध्वि ! त्वं पञ्चधा ब्रूषे पतिं देहीति व्याकुला।
पञ्चेन्द्राश्च हरेरंशा भविष्यन्ति प्रियास्तव॥ १॥
ते च सर्वे च पञ्चेन्द्राश्चाधुना पञ्च पाण्डवाः।
सापि छाया द्रौपदी च यज्ञकुण्डसमुद्भवा॥ २॥
कृते युगे वेदवती त्रेतायां जनकात्मजा।
द्वापरे द्रौपदी छाया तेन कृष्णा त्रिहायणी॥ ३॥
वैष्णवी कृष्णभक्ता च तेन कृष्णा प्रकीर्तिता।
स्वर्गे लक्ष्मीर्महेन्द्राणां—सा च पश्चाद्भविष्यति॥ ४॥

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण श्रीकृष्णखंड अ० ११५)

यदिन्द्रदेहजं तेजस्तन्मुमोच स्वयं वृषः।
कुन्त्यां जातो महातेजास्ततो राजा युधिष्ठिरः॥
बलं मुमोच पवनस्ततो भीमो व्यजायत।
शक्रवीर्योद्भितश्चैव जज्ञे पार्थो धनञ्जयः॥
उत्पन्नौ यमजौ माद्र्यां शक्ररूपौ महाद्युती।
पञ्चधा भगवान्नित्यमवतीर्णः शतक्रतुः॥
तस्योत्पन्ना महाभागा पत्नी कृष्णा हुताशनात्॥

——मार्कण्डेय अ० ५।

प्रति पति की प्यारी बनी रहे; पातिव्रत भी अविराम रहे।
"पंच कन्याओं" में नाम रहे; तुझ पर प्रसन्न घनश्याम रहे॥

द्रुपद–सुता ने शम्भु से; पाया यह वरदान।
द्रुपद–राज ने सुता का; किया ब्याह–सामान॥
"चक्र नगर" में एक दिन; ऋषिवर पहुँचे आय।
कुन्ती देवी से कहा; इस प्रकार समझाय॥

"कुन्ती विदेश में निकली हो; तो देश–भ्रमण करना चहिये।
यात्री को एक जगह रुक कर; यों कभी नहीं रहना चहिये॥
योगी, यात्री एक जा रहे; तो अपमानित हो जाता है।
गड्ढे में रुका हुआ पानी; कुछ ही दिन में सड़ जाता है॥
छोड़ो यह नगर, चलो आगे; पाञ्चाल–देश का भ्रमण करो।
भावी–सम्बन्ध–सूत्र बाँधो; कुछ राज्यों का संगठन करो॥"

व्यास देव के हुक्म को; सादर सिर पर धार।
नगर छोड़कर चल दिये; पाचों पाण्डु–कुमार॥
नगर-ग्राम-गिरि-विपिन-सर; सरिता शुचि-अभिराम।
बाग़–तड़ाग निहारते; पहुँचे "मणिपुर"–धाम॥

उस जगह "चित्रवाहन" नृपाल; सुख-पूर्वक शासन करता था।
नीति-नय-धर्म से यथा-रूप; जनता का पालन करता था॥
उस नगरी में चारों भाई; जब पहुँचे भिक्षा लाने को।
इस ओर पार्थ भावी–वशात्; जाते हैं कहीं नहाने को॥

जैसे ही तालाब में; दिया पार्थ ने पाँव।
वैसे ही यक मकर ने; आन लगाया दाँव॥

किन्तु चरण-स्पर्श से; "मकर" हो गया नारि ।
हाथ जोड़ कहने लगी; "कर पार्थ को जुहारि ॥



हृदयेश ! चरण की दासी हूँ; दासी के यहाँ निवास करो ।
यदि पाप-ताप का नाश किया; तो काम-ताप का नाश करो ॥
हे नाथ ! सुधारा जीवन हो; तो जीवन–स्व--रस दीजियेगा ।
यह अबला–असहाय चेरी; अर्द्धांगिन नाथ ! कीजियेगा ॥"

पार्थ पड़े आश्चर्य्य में; समझ न पाया भेद ।
चहरे पर जाहिर हुआ; हर्ष तथा कुछ खेद ॥

सुन्दरी समझ कर मनो भाव;बोली—"प्रभु ! कैसे बे धुन हो ।
हूँ सुता "चित्र वाहन" की मैं; तुम शान्तनु-वंशी-अर्जुन हो ॥
है "चित्राङ्गदा" नाम मेरा; पापों ने मुझे डुबाया है ।
इन चरणों के प्रताप द्वारा; प्रभुवर ने पार लगाया है ॥

किया पार्थ ने देवि का; प्रेम—प्रणय—स्वीकार ।
किन्तु, कुछ समयके लिये; बोले पाण्डु-कुमार ॥
"प्रिये ! तुम्हारी कामना; पूर्ण करूँगा आय ।
अभी कुछ दिनोंके लिये; बिदा करो हर्षाय ॥"
सम्मति पाकर पार्थ भट; लौटे मांके पास ।
पाण्डु—तनय करने लगे; पाञ्चालमें निवास ॥
तथा वहीं करने लगे; भिक्षा पर गुज़रान ।
वहाँ द्वारिका—धाममें; सोच रहे भगवान ॥

"हा ! आज हमारे आश्रित—जन; टुकड़ों को मारे फिरते हैं ।
त्रैलोक—धनी के अनुगामी; क्या हाथ पसारे फिरते हैं ? ॥
सारा संसार जानता है; वे सम्बन्धी माधव के हैं ।
आपस में भाई चारा है; मेरी फूफी के लड़के हैं ॥
मेरे आगे वे दुख भोगें; तो जग यह लाञ्छन देता है ।
धनवान—पुरुष मदके कारण; दुखियों की खबर न लेता है ॥
शोक है ! वही दुख पाते हों; जो प्रणपनसे अनुचारी हों ।
करता हो राज्य एक भाई; पर उसके बन्धु भिखारी हों ॥

अन्य जातियों में यहाँ; है ऐसा प्रति—साँट ।
आधी रोटी प्रेमसे; खाते हैं मिल—बाँट ॥

फिर उनमें कहीं एक भाई; कुछ राज—मान पा जाता है ।
तो अपने जाति—बान्धवों को; अपने ही साथ लगाता है ॥

हिन्दू-जाति में किसीका कुछ; यदि पद ऊँचा हो जाता है ।
तो साथ लगाना दूर रहा; अपने मुँह भी न लगाता है ॥
यह भक्त-विदुष ही जानते हैं; यह प्रभुकी क्यों ख़ामोशी है ।
यह मेरी आत्मा से पूछो; क्यों जगदात्मा निर्दोषी है ? ॥
यह भारतवर्ष सर्वदा से; कर्म को प्रधान मानता है ।
जिसका कि कर्म है श्रेष्ठ-शुद्ध; उसको ही श्रेष्ठ जानता है ॥

कर्म-भूमिमें जीवका; है कर्म ही प्रधान ।
भोग रही है भोग वह; अभी पाण्डु-सन्तान ॥

इसलिये यहां पर कृष्णचन्द्र; प्रत्यक्ष "ब्रह्म" दिखलाते हैं ।
पाण्डव लोगों के साथ फ़क़त्; भक्तका भाव दरसाते हैं ॥
लौकिक-बन्धनमें बन्धु कहा; आत्मिक-स्वरूपमें अनुचारी ।
सच्चिदानन्दका कौन हुआ ? ; भ्राता-मां-पिता तथा नारी ॥
बन्धु की दशा पर भाई को; निश्चय करुणा आ जाती है ।
एवं सहायता देता है; जितनी उस से बन आती है ॥
लेकिन केशव भाई बनकर; क्यों उदासीन दिखलाते हैं ? ।
पछताते हैं-पर, दुखियों का; क्यों नाथ न हाथ बटाते हैं ?॥
इसका उत्तर केवल यह है; कर्म-फल जलाये जाते हैं ।
सद्-भक्त सरल-संयम द्वारा; सद्-गति पर लाये जाते हैं ॥

कहा कृष्णने गरुड़से;-" देखो सारे देश ।
पाण्डव वीरोंसे कहो; यह मेरा सन्देश ॥

माता समेत पांचों भाई; पाञ्चाल-देशमें वास करें ।
विपदाओंको सानन्द सहें; हरि-इच्छा पर विश्वास करें ॥
कह देना कुन्ती फूफी से; मोहन चरणों का चेरा है ।
धैर्य्यसे काट लें थोड़े दिन; कुछ समय भाग्यका फेरा है ॥

कालका चक्र, भाग्यका भाव; उत्थान-पतन-गति बहती है ।
इन बातोंकी चिन्ता न करें; विपदा थोड़े दिन रहती है ॥
जल्दी वह समय आ रहा है; भावी फिर पलटा खायेगी ।
हाथों से गई राजधानी; फिर से हाथोंमें आयेगी ॥"

कुन्ती देवी प्रथम ही; जा पहुँची उस देश ।
खगपतिने श्रीकृष्णका; कहा शेष सन्देश ॥
"द्रुपदराज" ने व्याहका; किया समस्त प्रबन्ध ।
किन्तु, सोचने लगे--वे; "करूँ कहाँ ? सम्बन्ध ॥

देवों ने यह बतलाया है-द्रौपदी पार्थ-पत्नी होगी ।
लेकिन यह कहा न जाता है; यह किस प्रकार सच्ची होगी?॥
"लाक्षागृह" में लग चुकी आग;सब पाण्डव वहां जले होंगे ।
यदि जले नहीं, तो किस प्रकार; उस ज्वालासे निकले होंगे?॥
यदि पाण्डव अब भी जीवित हैं; तो लाज हमारी रहती है ।
अन्यथा हमारी सुकुमारी; आजन्म कुँवारी रहती है ॥
इसलिये आज शादी में भी; अपना भी ऐसा प्रण होगा ।
जो भूतल-भरमें, एक मात्र; अर्जुन द्वारा पूरा होगा ॥"

यही सोच कर द्रुपदने; दिया स्वयंवर ठान ।
यथा-समय आने लगे; धीर-वीर-बलवान ॥

विस्तृत-विशाल चौराहे पर; सुन्दर-मण्डप था तना हुआ ।
प्यारी प्यारी गुलकारी से; कुल रंग-क्षेत्र था बना हुआ ॥
मणि-जटित-खम्भ, संगठित-रत्न; चौकोर चारु चौवारोंपर ।
झुकते हैं निर्झर; फबन देख; फुलवारीके फ़व्वारों पर ॥
सफ़वार कतार तार वाले; राजों के मञ्च सुहाते हैं ।
सम्मान सहित महमानों को; अगवान सूत्र बिठलाते हैं ॥

थी इन्द्र धनुष की एक झलक; ऊपर नीचे मञ्चानों पर।
पड़ रही एक प्रतिभा विशेष; उन छज्जेदार मकानों पर॥
प्रत्येक वीर का चोबदार; बिरदावलि को उच्चार रहा।
मङ्गल-मुखियों के कलित-कण्ठ; द्वारा मङ्गल-सञ्चार रहा॥
उसके ही निकट विशाल-मञ्च; विप्रोंके लिये बनाया है।
विप्रों के ही वेष में छिपा; वह पाण्डव-वंश समाया है॥
यक चहल पहल थी मण्डप में;हल चल थी थल पर राजों की।
मीठे मीठे स्वर-गीतों में; मिल गई मिलावट बाजों की॥

उसी समय आकाश में; छाया जय जय कार।
लगे बरसने व्योम से; गुँधे पुष्प के हार॥

जयकार हुआ, सब खड़े हुए; सब में जब सर्वेश्वर आये।
विप्रों के विप्र-पाल आये; राजों के राजेश्वर आये॥
दुष्टों के महा-काल आये; भक्तों के प्रणत-पाल आये।
विदुषों के पूर्ण-ब्रह्म आये; रसिकों के नन्दलाल आये॥
अपने अपने पद से ऊपर; देखा सारे राजाओं ने।
भ्राता और सखा-रूप देखा; अर्जुन की प्यासी आंखों ने॥
पाण्डव-गण इष्ट-देव समझे; कौरव लोगों ने शत्रु कहा।
"रमणी-समाज" में रसिक राज; यदुराज-रूप में राज रहा॥

सब मञ्चों से उच्चतर; था जिसका स्थान।
उसी मञ्च पर दल-सहित; बाजे श्री भगवान्॥

आभाधारी के आते ही; दूनी आभा झलकाने लगी।
प्रतिभा-पति पूर्ण-चन्द्र पाकर; वह रंग-स्थली सुहाने लगी॥
कमलाक्ष-कलेवर-कान्ति-पूर्ण; वदनेन्दु विमल मुसकान भरी।
श्रवणाकृति सुघर सुचारु ग्रीव; भृकुटी कमान मदमान भरी॥

सुन्दर-कपोल, कुण्डल सुडोल; काकुल-किलोल, उलझाने से ।
मृदु बोल, अमोल, सुलोल नयन; विन मोल "विनीत" बिकानेसे ॥
नासा सुचारु, द्युति दन्त अधर; दाड़िम के बीज चुबाये हैं ।
पट पीत; मनोहर-मूर्त्तिधार; मन्मथ-मद-हारी आये हैं ॥
द्रुपदेश्वर स्वयं बढ़े आगे; स्वागत-मय-विनय सुनाते हुए ।
सादर बैठा कर लौट पड़े; वर ब्रह्मानन्द समाते हुए ॥

रंग-महल की ओर से; उठी एक जयकार ।
रंग-भूमि की ओर को; गवनी राजकुमारि ॥
संग सखी सुन्दरि सुघर; सजे आरती-थाल ।
काञ्चन-कान्ता चल रही; कर कञ्चन की माल ॥

सन्ध्या की स्वच्छ तारिकायें; तन्मध्य इन्दु-उजयाली सी ।
बढ़ रही वसन्ती फूलों में; मानों गुलाब की लाली सी ॥
या इन्द्र-धनुष-घन-पटल-पूर्ण; वर-व्योम-तड़ित स्थायी सी ।
या--चन्द्र तथा नक्षत्रों में; रोहिणी स्वरूप सुहाई सी ॥
गज-अनु-गामिन के संग संग; मानो गयन्द-गमनी आई ।
या चन्द्र-कलाओं से मिलकर; प्रत्यक्ष चन्द्रवदनी आई ॥
पाञ्चालों की कन्या आई; विदुषों की जिज्ञासा आई ।
केशव की इच्छा-मूर्त्ति चली; राजाओंकी आशा आई ॥

"द्रुपद-सुता" पहुँची जहाँ; रूप-शील-छवि-खान ।
त्यों ही बन्दी जनोंका; शुरू हुआ व्याख्यान ॥
"सजग-शूरमा, शक्तिधर; शौर्य्य-शील, बलवान ! ।
आज तुम्हारे बाण पर; है निर्भर सब बान ॥

अये आर्य्य गणो! यह आर्य्य-नियम; आर्य्योंकी आर्य्य-प्रतीक्षा है ।
यह वीर गणों का सम्मेलन; वीरों की वीर परीक्षा है ॥

वह देखो निचले हिस्से में; स्तम्भ-शिखा दिखलाती है।
उसके दर्म्यानी चक्कर में; वह मछली चक्कर खाती है॥
नीचे तेलका कड़ाहा है; पास में धनुष भी रक्खा है।
इन तीनों के द्वारा ही बस; भूपति की पूर्ण प्रतिज्ञा है॥
धन्वा की प्रबल-प्रत्यञ्चा को; जो वीर चढ़ाने पायेगा।
फिर तैल-बिम्ब का लक्ष्य बांध; मीन को वेध दिखलायेगा॥
उस आर्य्य-भूमि के आर्य्य-रत्न;-द्वारा निष्ठा पूरण होगी।
जय-माल-कीर्ति-यश-लाभ-सहित; द्रौपदी उसे अर्पण होगी॥

वीर-कर्म, वीराङ्गना; वीर-विभव गंभीर।
वीर-घोषणा पर उठें; वीर-भूमिके वीर॥

जिस में जाँ बाज़ी की दम हो; वह इस बाज़ी को पायेगा।
मैदान जङ्ग जिसका घर है; वह इस मैदाँ में आयेगा॥
जिसने आज तक नियम-पूर्वक; निर्वाह वीर चर्य्याकी हो।
हो वीर-दूध जिसकी मां का; जिसने गुरु की सेवा की हो॥
जो धनुर्वेद में व्यापक हो; इस आर्य्य-देश का नामी हो।
वह वीर-परीक्षा-परिचय से; द्रौपदी-देविका स्वामी हो॥

गायन

काम दे सकते नहीं-याँ; नाज़ के पाले हुए।
टिक सकेंगे इस जगह; जाँ बाज़ के पाले हुए॥
जो बजायें ख़िदमतें, उस्ताद की जी जान से;
आयँगे आगे, वह; तीरन्दाज़ के पाले हुए।
जिनकी जाँ है आन पर; और आन है ईमान पर-
पायेंगे बाज़ी वही; फ़ैयाज़ के पाले हुए।

दम लड़ानेकी जगह है, अब भागना "शैलेन्द्र"—क्या ॥
दम पै दम दे देते हैं, दम साज़ के पाले हुए ।

आकर्षण सौंदर्य्य का; उस पर यह व्याख्यान ।
उठी वीर—वाणी जहाँ; उठी वीर—सन्तान ॥

हल चली छा गयी मण्डल में; बल आया, बली भुजाओंमें ।
खल बल का एक विचित्र—दृश्य; दरशने लगा राजाओं में ॥
कित ने वीरों ने वस्त्र बदल; पोशाक पहलवानी करली ।
कितने वीरों ने ताल मार; लाली मय पेशानी करली ॥
जाँघिया खींच, फर्रा चढ़ाय; आस्तीन सिकोड़ बढ़े आगे ।
श्री इष्ट देव को शीश झुका; कोई कर जोड़ बढ़े आगे ॥
चहरे मुहरे पर हाथ फेर; कितने भटवर हुंकार उठे ।
"धाओ, आओ—खींचो; मारो" कितने ही वीर पुकार उठे ॥

उठते उठते उठ गई; मानो आशा—पैंठ ।
उठी शान, बैठी स्वयं; निकल गई वह ऐंठ ॥

उठने वाले जिस तरह उठे; धन्वा इस तरह उठा न सके ।
मीन का लक्ष्य था एक तरफ; डोरी कमान पर ला न सके ॥
पिच पिच कर, झुक झुक कर झाँके; आखिर झक मार हार आये ।
बेगारी भार टाल आये; या जोशे दिल उतार आये ॥
उठने वालों के सर न उठे; कुछ उठे—उठाये झुके वहीं ।
अध उठे, वहीं पर बैठ चले; कुछ चले, चलाये रुके वहीं ॥

राजागण लज्जित हुए; उस धन्वा के साथ ।
राजन् ! इसमें छिपा है, मायापति का हाथ ॥

माधव का चक्र सुदर्शन भी; चक्कर मीन पर लगाता था।
जिसकी प्रतिभा से ठीक ठीक; लक्ष्य ही नहीं दिखलाता था।
आंखों को उधर उठाते ही; चौंधीसी छाती जाती है।
जिसके कारण बल-वीरों की; बुद्धि भी वहाँ चकराती थी॥

नृप-मण्डल के रंग पर; गई मुर्दनी छाय।
भीष्म सुभट इस दशा पर; यों बोले पछताय॥

अफ़सोस! जरा सी धनवी को; वीरों ने खींच न पाया है।
धिक्कार! सड़ी सी लकड़ी को; वज्र की कमान बताया है॥
उफ़! आज जरा सी बाज़ी पर; पानी फिर गया सुपूती पर।
डोरी भी तुम से खिंच न सकी; तो लानत है रजपूती पर॥

गायन

किसी भी वीर ने वीरत्व दिखाया होता।
निशान दूर था, धन्वा ही चढ़ाया होता॥
मीन भी बिंध न सकी, चढ़ सका धनुष भी नहीं;
न चढ़ाया था तो हाथों में उठाया होता॥
शोक! वीरों की सभा और यह वीरोंकी दशा;
कुछ तो जाति का सन्मान समाया होता॥
आज वास्तव में कोई लाज का मारा होता।
डूब मरता वह कहीं; मुँह न दिखाया होता॥

कहा किसी ने-"वीर वर! हम सब को धिक्कार।
हम सब के तो साथ में; है आपका शुमार॥
हम निर्बल हैं, या कायर हैं; यह बाज़ी जीत न पाये हैं।
पर इस द्रौपदी-स्वयंवर में; आप भी वीर बन आये हैं॥

आप भी वीर-बाने में हैं; तो यहाँ वीरता दिखलायें।
हम बात डुबाने वाले हैं; तो आप बनाकर बतलायें॥"

कहा भीष्म ने "क्या करूँ?; प्रणसे हूँ लाचार।
वरना कर देता अभी; मछली भी उस पार॥

हाँ, एक शर्त्त पर हाज़िर हूँ; मैं अभी कमान उठाऊँगा।
एवं एक ही निशाने से; मछली को वेध गिराऊँगा॥
यदि राजा की इच्छानुसार; मछली मुझ से भेदी जाये।
तो मेरे बदले विना कहे; कुरुपति से शादी की जाये॥"

द्रुपदेश्वर कहने लगे;-" इस में क्या इनकार ?।
प्रण-पूर्ती पर आपको; है पूरा अधिकार॥"

स्वीकृति पाते ही उठे भीष्म; क्षण भरमें धनुष उठाया है।
हाथों का बल तो दूर रहा; उँगली पर उसे नचाया है॥
लेकिन धन्वा चढ़ते चढ़ते; सामने "शिखण्डी" गुजर गया।
आत्मा पर बैठा धक्का सा; वह धनुष यकायक उतर गया॥

पूर्व-शाप को सोच कर; बढ़ा-विशेष मलाल।
भीष्म वीर ने हाथ से; दिया धनुष को डाल॥
भीष्म वीर की हारपर; चढ़ा द्रोण पर आब।
खींच धनुष-सन्धानशर; देने लगे जवाब॥

पर बाण चलाया गया जहाँ; तो चक्कर से टकराया है।
मछली पर निशाँ न बैठ सका; लौट कर भूमि पर आया है॥
जब द्रोणाचार्य्य हुए लज्जित; तो कर्ण न जोश सँभाल सका।
उठ खड़ा हुआ, पर लज्जावश; अपने जौहर न निकाल सका॥

छाई चारों ओर से; मिलती हुई पुकार।
क्षत्रिय-मण्डलमें नहीं; शूद्रों को अधिकार॥

यदि कर्ण वीरताके बल पर; इस विमल–वंश को ललचाये।
तो धनुष उठानेसे पहिले; अपनी वंशावलि बतलाये॥
अन्यथा–यहां मर्य्यादा पर; जातीय–प्रश्न उठ जायेगा।
क्षणके अन्दर यह रंग–स्थल; रण भूमि बना दिखलायेगा॥

अपनी वंशावली का; था न कर्ण को ध्यान।
लौट पड़ा संकोच से; लगा न सका निशान॥
हारे, कुछ लज्जित हुए; क्रम–गत सारे वीर।
मुरझाये दिखने लगे; वह कान्ति–मय-शरीर॥

गोरे गुलाब ऐसे चहरे; पीले–सूखे दरशाने लगे।
गर्वीले उठे हुए माथे; अपने आप ही झुकाने लगे॥
बढ़ २ कर बात बनाते थे; लज्जा की लगी लगाम उन्हें।
चढ़ चढ़ कर शान दिखाते थे; तुहमत का मिला इनाम उन्हें॥

इधर उधर आखें हुईं, हृदय हुआ हत–आश।
मानो आगेसे उठी; घर आई धन–राश॥

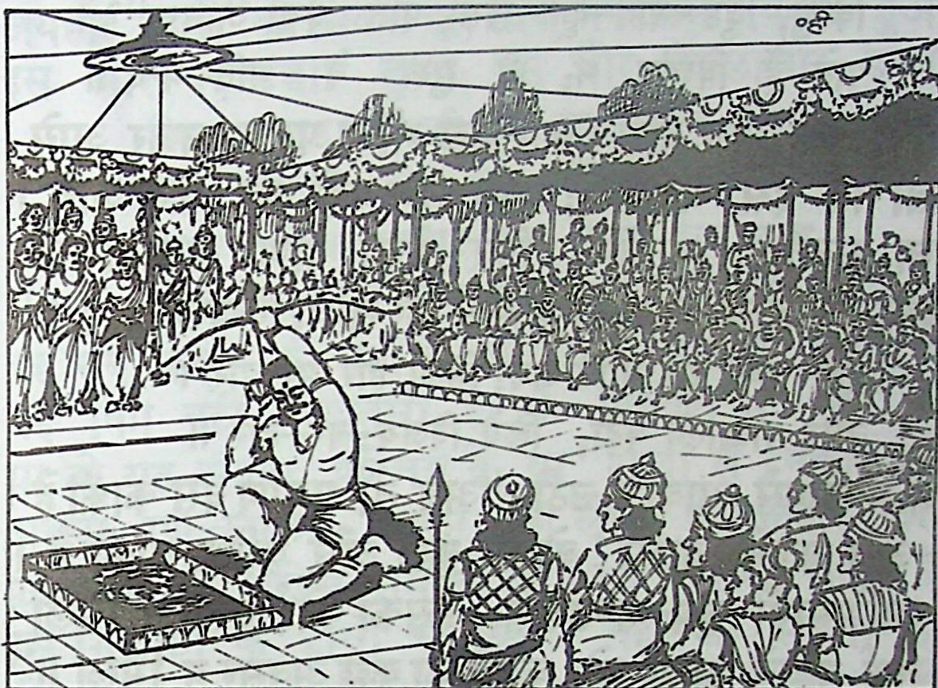
उड़ गई यकायक अकड़ धकड़; अकड़ीले बैठे लाजे से।
कुछ शोक भरी आवाज़ उठी; उस रंग–भूमिके बाजेसे॥
द्रौपदी लौटने वाली थी; राजा कुछ कहने वाले थे।
लेकिन पार्थसे धनुधारी; कैसे चुप रहने वाले थे?॥
फुर फुरी उठी, सारे तनमें; बल वीरों पर अफ़सोस उठा।
वह ब्राह्मण–वेशी पार्थ उठा; या क्षत्रियता का जोश उठा॥
"क्या करते हो! क्यों जाते हो?"–कहकर ब्राह्मण समझाने लगे।
पार्थके हाथको पकड़ पकड़; चुपके चुपके बिठलाने लगे॥

"है कर्म-योग-बल ब्राह्मण का; तन-शक्ति दिखाना क्या जानें? ।
हम तो फल-फूल चढ़ाते हैं; यह धनुष चढ़ाना क्या जानें ?॥
जिस जगह धनुर्धर–वीरोंने; सारी शक्तियां लगाई हैं ।
जिस जगह भूप–मण्डलभरने; आशायें आज डुबाई हैं ॥
उस जगह हमारी हिम्मत क्या?; अपने बल की वक़अत कैसी?।
सिंहोंके आगे गौओं की; भैया ! बोलो–ताक़त कैसी ? ॥
द्रोणाचार्य्य की रीस मत कर; उनकी तो जग–प्रभुताई है ।
उन महाराजने तो इसमें; सारी ज़िन्दगी बिताई है ॥
इसलिये हमारी सम्मति है; इस पचड़ेमें न पड़ो भैया ! ।
जलसा देखो, लड्डू खाओ; दानलो, स्वदेश चलो भैया ! ॥"

धर्म राज कहने लगे–" सुनिये विप्र सुजान ! ।
अपने बल की आपही; होती है पहिचान ॥

जो जिस राग को जानता है; उसकी ही ओर झुकाता है ।
है मसल–नाचने वालेका; ताल पर पैर फड़काता है ॥
जाने दो, भाई ! उसको भी; अपनी उमंग भर आने दो ।
इस गुण का यदि अभ्यासी है; तो मौके पर दिखलाने दो ॥
क्या लाभ हुआ ? उस जौहरसे; जो काम न आये दंगलमें ।
किस किसने जाकर देखा है ?; मोर का नाचना जंगलमें ॥
बन गई अगर तो वाह वाह; बिगड़ी तो क्या ले जायेगी ? ।
जैसी औरों की निबट गई; त्यों निबट इसी की आयेगी ॥"

पार्थ भ्रात का रुख समझ; चले केहरी-चाल ।
धनुर्वीरने धनुष को; उठा लिया तत्काल ॥



इस तरफ़ हाथसे धनुष उठा; उस तरफ़ मीन पर नज़र उठी ।
हाथ की झुकन, आंख की नमन; मिल कर प्यारे कृष्ण पर उठी ॥
मानो वे हाथ विनय-पूर्वक; जगधरसे शक्ति माँगते हैं ।
या चक्र- चौंधसे विकल नेत्र; चक्करसे मुक्ति माँगते हैं ॥
यादव-पतिने वह भाव समझ; तत्काल सुदर्शन खींच लिया ।
कुन्ती नन्दनने बारबार; मनमें ही उन्हें प्रणाम किया ॥
ध्यानमें पार्थ का माथ झुका; या झोंका ही झनकार हुआ ।
धन्वे पर एक झोंक आई; बस बाण मीनके पार हुआ ॥
संभ्रमित-शोक-सर-मग्न-यान; वायु-गति-बाण पतवार हुआ ।
मँझधार पड़े मनहारों का; क्षण भरमें बेड़ा पार हुआ ॥

मिल गई थाह द्रुपदेश्वर को, पाञ्चाली को भरतार मिला ।
विप्रोंमें एक प्रभा आई; मानों सब को जय-हार मिला ॥
किन्तु; दुष्ट-मति-क्रूर-खल; पाते क्यों आनन्द ? ।
पाते हैं विध्वंस में; ही सुख वे मति-मन्द ॥
बोले-" यह मीन बींधने का; कुछ भी न प्रमाण नजर आये ।
हमतो तब इसे मानते हैं; जब बाण वहीं पर फँस जाये ॥
इतना सुनतेही, धनुर्वीर; फिर ऐसा बाण चलाता है ।
मछली की खास आंख ही में;फँस कर सीधा दिखलाता है ॥"
दुष्टों को इस भाँति जब; मिली हार पर हार ।
उधर पाञ्चाली बढ़ी; लिये विजय-वर-हार ॥
द्विज-मण्डलसे आवाज़ उठी;-"अब तो प्रमाण बस काफी है ।
या-अये जलने वालो ! बोलो; कुछ और परीक्षा बाकी है ॥
पर अभिमानी-नृप-मण्डलसे; इसका कोई उत्तर न मिला ।
या तर्क बढ़ाने वालों को; कहने का कुछ अवसर न मिला ॥"
गज-गामिन गज-गति बढ़ी; क्रम-गत पतिकी ओर ।
यथा वीर-रस हाथ से; खींच रहा छबि-डोर ॥
बालीं बालीं, आलीं हिल मिल; पाली पालीसे जाती हैं ।
मानो शशि-अंशु-मालिकायें; रोहिण के संग सिधाती हैं ॥
आनन्द-प्रेम-सङ्कोच-विवश; ठिठकी, बिथकी, उलझानी सी ।
आह्लाद-प्रमाद-प्रमोद भरी; उझकी सी खड़ी बिकानी सी ॥
चतुर सखी संकेतमें; बोली-"बहिन ! सुजान ।
कर लीजो कुछ देरमें; वर-दानी का ध्यान ॥
इस समय उन्हीं वर-दानी के; सुन्दर वरका आह्वान करो ।
इन कमल-नाल कर कमलोंसे;रविको जयमाल प्रदान करो ॥"

गम्भीर-वचन सुनकर सुशील; धीरेसे हाथ बढ़ाती है।
मानो विद्युत स्थिर होकर; दिनकर पर अर्घ्य चढ़ाती है॥
जयहार "जयी"को मिलते ही; द्विज-मण्डलमें जयकार हुआ।
इस ओर वेद उच्चार हुआ; उस ओर मंगलाचार हुआ॥

किन्तु,न जम भी सकी थी; वह आनन्द-बहार।
खल-मण्डलमें फिर हुई; वहीं पूर्व तकरार॥
"उफ़ ! धोखा,पाखण्ड,छल; बेशक दग़ा फ़रेब।
गिरह कटों की गिरहसे; काट चला द्विज जेब॥"

यह सब कहने की बातें हैं; जो इसे भिखारी कहता है।
यह विप्र नहीं, अवतारी है; हां, विप्रवेश में रहता है॥
या तो यह अपना परिचय दे; या शादी से इनकार करे।
अथवा रण--स्थलमें आकर; हम लोगों से तलवार करे॥
पृथ्वी--भरकी क्षत्रिय-समाज; यों लाज नहीं खा सकती है।
इस भिखमंगे के हाथों से; लक्ष्मी नहीं जा सकती है॥
वीरो ! धाओ,यह साज-बाज; साम्राज्य-सहित चौपट कर दो।
बांध लो भिखारी ब्राह्मणको; यह रंग--भूमि मरघट कर दो॥
क्षण भर में काट छांट डालो; इस मदमाते मद--धारीको।
फेंक दो आग में, या पकड़ो; जीते जी द्रुपद-दुलारी को॥

गायन

वह कमां तो न उठी, यह कमान बाक़ी है।
वह निशाना न सही, यह निशान बाक़ी है॥
क्या हुआ ?--मीन जो; हमसे न बिंधी, जाने दो-
मीन का बेधने वाला, जवान बाकी है।
ओ रंग-भूमि के दूल्हे ! सँभल-कमान उठा;
कि युद्ध--भूमि के दूल्हों की शान बाकी है॥

दिलावरो ! जो बढ़ो, तो यह प्रतिज्ञा करके—
"द्रौपदी" जा न सकेगी, जो जान बाक़ी है ।

द्विज—वेषी भट पार्थने; कहा सहित अभिमान ।
होता है कर्त्तव्यसे; वीर--जातिका ज्ञान ॥

"अच्छा हो, इसी बहाने से; कुछ और परीक्षा बन आये ।
कुछ रहा सहा अरमान हो तो; वह भी क्यों साथ चला जाये ?॥
आओ, गुमानियो ! स्वागत है; जातिका तुम्हें परिचय होगा।
पहिले वीर--दल--विजय होगा; पीछे यह प्रेम--प्रणय होगा ॥
जातीय--मान, जातीय--आन; जातिके ज्ञान पर अर्पण हो ।
खुल जाय जातिका कुल रहस्य;या जाति-जाति संघर्षण हो ॥"

राज—सभामें द्वेष—वश; गया न्याय-पथ-छूट ।
वीर पार्थके माथ पर; पड़े स्वार्थ—प्रिय टूट ॥

दुःशासन--कर्ण-जयद्रथ भट; नृप जरासिन्ध-शिशुपाल उठा ।
भगदत्त उठा, भट शल्य उठा; काशीपति वीर नृपाल उठा ॥
भट भूरिश्रवा--सुशर्मा भी; साथ ही अलिंग--नरेश उठा ।
एवं विराट--पुरका राजा; दुर्दान्त कलिंग--नरेश उठा ॥
पार्थ के माथ पर असंख्यात; अस्त्रों की वर्षा होने लगी ।
द्रुपदेश विचारे सिकुड़ गये; द्रौपदी वहीं पर रोने लगी ॥

चतुर सहेली ले चलीं; रंग—महलकी ओर ।
रंग—भूमिमें मच गया; "मार मार" का शोर ॥
अत्याचार—प्रचार पर; उकसे पाण्डु—कुमार ।
किन्तु—धर्म—संकेत से; रहे वहीं रिस—मार ॥

बलवीर—धीर—भट--पार्थ शीघ्र; सामने बराबर आते हैं ।
बेटे पर विपद देख करके; उस ओर इन्द्र घबराते हैं ॥

दो गुप्त-वीर पार्थकी ओर; इन्द्र की ओर से आते हैं।
तीनों भट वर सारे दल पर; बाणों की झड़ी लगाते हैं॥
वह असंख्यात वर-विशिख-जाल;तत्काल पार्थने काट दिया।
फिर अपनी झड़ी लगा करके; सारा नभ-मण्डल पाट दिया॥
घन घोर शोर चहुँ ओर तोड़; मुँह जोरों का साहस न रहा।
बेवश बेकस से भाग पड़े; रण-रस न रहा, ढाढस न रहा॥
लाखों गज-मस्तक फोड़ दिये; लाखों रथ-वाहन तोड़ दिये।
कितने ही उलटे मोड़ दिये; कितने ही घायल छोड़ दिये॥

किन्तु, न फिर भी कम हुई; खल-दल-सैन्य असीम।
रह न सके चुप उस समय; भ्रातृ-भक्त-भट-भीम॥

सहदेव, नकुल, भीमार्जुन जब; टूटे उस खल-नृप-मण्डल पर।
मानो झपटे हैं चार बाज़; चारों दिश से टिड्डी-दल पर॥
इस ओर द्रुपद सेना-समेत; सेना के आगे आ पहुँचे।
उस ओर भीम प्रति-घात बचा;"शल्य"के सामने जा पहुँचे॥
घोड़े छोड़े, रथ तोड़ दिया; भटवर का बाजू झटक दिया।
सारथी मार कर गिरा दिया;"शल्य"को भूमि पर पटक दिया॥
चाहते "भीम"तो उसी समय; दुष्टों का चूरा कर देते।
एवं उस भावी-कण्टक का; क़िस्सा ही पूरा कर देते॥

किन्तु, छोड़ कर शल्य को; झुका दूसरी ओर।
"हाय-हाय" के सिवा अब; रहा न कोई ज़ोर॥

गायन

घमशान-घमशान।
घमशान समर में, वीर; दिलावर डटा न कोई नर-

कटी कमानें; उड़ी भुजायें; रुण्ड हुए बे सर—
बे जान—बे जान।
कटे करोड़ों, मिटे करोड़ों; फैल गई खरभर—
कितने भटवर, कितने बलधर; हुए वहीं बे घर—
बलिदान—बलिदान।

क्षण भर में पाण्डवों ने; विजय किया रण घोर।
तोड़ मोड़ कर शत्रु—दल; शान्त हुए शह ज़ोर॥
दुर्योधन के हृदय में; लगी भभकने आग।
कपट—नीति की यहाँ भी; लगा लगाने लाग॥

पार्थ के पास शकुनी भेजा; अपना सन्देश सुनाने को।
तैयार न हों—ता पाण्डु—नन्द; पाञ्चाली के अपनाने को॥
शकुनी बोला—"हे विप्र वीर! कुरु-पति ने मुझे पठाया है।
आप से मित्र के नाते पर; यह सन्देशा कहलाया है॥
तुम ब्राह्मण हो, इस लिये तुम्हें; ब्राह्मण से रिश्ता अच्छा है।
कुछ दौलत ले लो, घर जाओ; इस शादी में रक्खा क्या है?॥
लाखों की जानें जायेंगी; बे कारण हत्या होनी है।
क्या पता? द्रौपदी के ऊपर; किस किस की इच्छा होती है॥
फिर माना—तुम ज़ोरावर हो; शायद कन्या ले जाओगे।
तो इस सुकुमार दुलारी को; आख़िर क्या वहां खिलाओगे॥
निष्कारण इस स्वतन्त्र सिर पर; माया का पत्थर धरते हो।
सुकुमारी राज—दुलारी को; बे वजह भिखारिन करते हो॥
अच्छा हो—इच्छित धन लेकर; अपनी इच्छायें बदला दो।
तुम घर जाओ, आनन्द करो; कुरु-पति को कन्या दिलवा दो॥"

कहा पार्थ ने क्रोध से; समझाये क्या ख़ाक ? ।
धनुष चढ़ाते वक्त यह; कहाँ गई थी नाक ? ॥

कह देना मेरी ज़ानिब से; जो धन चाहें–मुझ से ले लें ।
वह राज्य करें, आनन्द करें; पर "बिन्दुमती" मुझको दे दें ॥
जो शेष रही हो, कुछ शंका; तो फिर से क़िस्सा निबटा लें ।
जो कुछ रजपूती बाक़ी हो; तो आयें–फिर से अज़मा लें ॥

इन कटु–शब्दों पर वहाँ; फिर फैली धर-मार ।
कुछ क्षण को फिर से हुआ; सहसा हाहा कार ॥

गायन

दौरे देत हल्ला शूर, भल्लन निफल्ला भूरि;
पल्लन उछल्ला मार, दार दर डारे हैं ।
जल्लन सों जोरि जोरि, मल्लन कूँ मोर मोर;
बल्लन सों फोर फोर, धूरि धर डारे हैं ।
उचट उचट्टा लेत, झपट झपट्टा देत;
सट्टा बदि छट्टा कर, भूँज भर डारे हैं ।
गट्टा गलि खेल खेल, पारथ सुभट्टा केलि–
पट्टा प्रति पच्छिन के, कट्टा कर डारे हैं ॥

गिन गिनकर भटवरों ने; किया कटक-संहार ।
क्रूर-कुटिल-कौरव सभी; भागे "हाय"!-पुकार ॥

निःशस्त्र-दुष्ट-दल भाग पड़ा; लूले, लँगड़े सिसकाने लगे ।
चुप चाप चुग़ल चञ्चल कुचाल; लोमड़ी चाल से जाने लगे ॥
कुछ क्षण में आई शान्ति वहां; मित्रों का मण्डल राज उठा ।
उस समर–भूमि के बाजे में; अब राग शान्ति का बाज उठा ॥

नेह–शील–सन्देह–वश; बोले द्रुपद–नरेश ।
"बल–धर ! अब तो बताओ; अपना बिरद विशेष ॥

किस वीर-वंश के भूषण हो ?; किस वीर-प्रदेश-निवासी हो ।
प्रत्यक्ष वीर–रस आये हो; या वीर–वेष–सन्यासी हो ॥"
पार्थ ने कहा–" हम पाण्डव हैं; यह चार भ्रात हमराही हैं ।
यह शक्ति हमारी साक्षी है; "श्री यादव नाथ" गवाही हैं ॥
कुरु–पति के अत्याचारों से; हम भेष छिपाये रहते हैं ।
परदेश है, दिन हैं चक्कर के; जो बीत रही, सो सहते हैं ॥

इतना कह कर पार्थ ने; देखा प्रभु की ओर ।
यादव–पति ने बात पर; दिया और भी जोर ॥



बोले-"राजन् ! बिलकुल सच है; यह पाँचों पाण्डु-दुलारे हैं ।
उज्वल--वंश के उजाले हैं; सच्चे शुचि सखा हमारे हैं ॥
सौभाग्य समझ कर इन्हें भूप !; सानन्द द्रौपदी दीजियेगा ।
बन आये, तो अवसर पाकर; सम्बन्ध--सहाय कीजियेगा ॥"

परिचय पाकर द्रुपद को; छाया हर्ष अपार ।
बोले--"किसे न ज्ञात था; पञ्च--रत्न मय हार ॥

आश्चर्य्य--प्रभाकर छिपा लिया; ना कुछ बदली के पर्दों ने ।
अफ़सोस ! महेन्द्र न पहिचाना; मेरी अज्ञानी आखों ने ॥
उफ़री गर्दिश ! बलिहार तुझे; भूपति छिप गया भिक्षुकों में ।
वाहरे भाग्य ! वाहरे समय !; यादव का सखा याचकों में ॥
राजेन्द्र! यहाँ घर आकर भी;सुविधा के लिये समय न दिया ।
आप भी मौन हो छिपे रहे; केशव ने भी परिचय न दिया ॥
आज क्या ? अगर पहिले आते; वह नहीं,यहाँ का शासन था ।
श्री धर्म--राज के लिये अहो; हर जगह धर्म--सिंहासन था ॥
तुम केवल नहीं भूमि-पति हो; हृदयों पर है अधिकार तुम्हें ।
संसार इन्हीं शुच-चरितों से; कह रहा "धर्म-अवतार" तुम्हें ॥"

धर्म राज कहने लगे;--"सुनिये धर्म--नरेश ! ।
विपद काटने के लिये; है ब्राह्मण का वेश ॥

क्या कहें ? कहें भी तो किससे?; कहते भी लज्जा आती है ।
यह वीर-वंश की वीर--शक्ति; किसकिस की ठोकर खाती है ॥
घर के न रहे, दर के न रहे; स्वजनों ने किया किनारा है ।
भिक्षा तक है निर्वाह यहाँ; केशव तक एक सहारा है ॥
जिन की माया के चक्कर से; ब्रह्मा महेश चकराते हैं ।
क्या हुआ ? पाँच पुतले यह भी; उस में जो चक्कर खाते हैं ॥

निर्द्वन्द्व भाव, निश्चिन्त हृदय; यदि श्रद्धा इन चरणों पर है ।
तो-मैं दावे से कहता हूँ; यह विपति सुःखसे बढ़कर है ॥

गायन

विपदे ! कछु दिन और रहो ।
तोरि दया करुना तें माता ! हौं हरि-नाम गहो ॥
काँकरि-पाथर फेंक सिन्धु में; पारस प्रभुहिं लहो ।
जग कह-"परम-कष्ट अह तो कहँ"-हौं कहुँ-"सुःख अहो!।"
राम-चरन-चिन्ता-मनि पावत; चिन्ता कवन ? कहो ।
माया में प्रभु विसरि जातु हैं; मोह-बिसोत बहो ॥
तुम्हरे संग जातु हरि-चिन्तन; का तुम जान चहो ?।
तुम मिलि सह "शैलेन्द्र" जगत-दुख, तुम दुख मोर सहो ॥

उत्तर में घनश्याम ने; कहा-"धर्म-अवतार ! ।
भक्तों को ही विदित है; भक्तों का व्यवहार ॥

तुम चाहो-तो आज ही अभी; इन्द्रासन जय कर सकते हो ।
आप ही नहीं, अपने बल पर; त्रैलोक-अभय कर सकते हो ॥
पर सत्य-न्याय-शुभ-धर्मों को; जय का किस जगह वसीला है ।
तुम कहते हो-मेरी लीला; मैं कहूँ-तुम्हारी लीला है ॥
अर्थात् अधर्मों के ऊपर; धर्म को विजय दिलवाना है ।
शान्ति-मय उपायों के द्वारा; क्रान्ति पर सफलता पाना है ॥"

गूढ़-वचन सुन नाथके; पाण्डव-गण-द्रुपदेश ।
चरण पकड़ कहने लगे-"माया-पति-महिमेश ! ॥

गायन

कहां तक यह लीला छिपाये रहोगे।
गरीबों को कब तक भुलाये रहोगे ? ॥
ठिकाने रहेंगे, यह भँवरे तुम्हारे-
कमल-नेत्र ! जब तक लुभाये रहोगे।
तुम्हारे कदम की बढ़ायेंगे शोभा-
अगर साथमें ही लगाये रहोगे ॥
विजय और आनन्द इच्छा तुम्हारी-
विरद योंही अपना उठाये रहोगे।
मगर पूछता है यह "शैलेन्द्र"-"गोविन्द"
कहां तक भिखारी बनाये रहोगे ? ॥"

केशवने हँस कर कहा-"दूर नहीं वह काल।
देखेंगे हम नयन भर; तुम्हें देश-प्रति पाल ॥"
यों कह कर गमनित हुए; माधव-मायागार।
द्रुपद-राज करने लगे; यथा-वंश-व्यवहार ॥

मणि-जटित-सौम्य-शुचिमण्डपमें; शुभ-आसन सबको दियेगये।
जातीय-लोक-विधि-सहित सभी; आरम्भिक पूजन किये गये ॥
शृङ्गार नवीन, सुचारु किये; देवी को ले आई आली।
वीरासन बैठे पाण्डु-तनय; वामाङ्ग विराजी पाञ्चाली ॥
चारण-गण बिरद बखान रहे; विप्रोंमें वेदोच्चार हुआ।
वैदिक-विधान-उपचार हुए; मोद-मय-मङ्गलाचार हुआ ॥

जितने भी नियम बताये गये; भूपने हर्षके साथ किये ।
दम्पतिने फिर श्रद्धा-समेत; कन्याके पीले हाथ किये ॥

नृत्य-गान-वादन सभी; विविधि भांति जेवनार ।
हुए कई दिन तक वहां; सविधि अनेक प्रकार ॥
इसी भांति आनन्दमें; बीत गया कुछ काल ।
पुत्रि-बिदाईके लिये; साज सजा नर-पाल ॥
यथा-समय सामान कर; कन्या को बुलवाय ।
सजल-नयन-पुलकित नृपति; बोले-"विनय सुनाय ॥

पाञ्चाल-वंश की मर्य्यादा; सम्पति है नीच भिखारी की ।
हे देव ! स-हर्ष ग्रहण कीजे; श्रद्धा-मय भेंट पुजारी की ॥
कुछ दिन राजसी-भोग करके; फिर मिला प्रवास जानकीको ।
जयमाल डालते ही वनमें; जाना पड़रहा द्रौपदी को ॥
यह बात हमें गौरव की है; पुत्रीने यह अवसर पाया ।
सच्चे सतीत्व-व्रत-संयम का; बे मांगे ही मौका आया ॥
फिर भी अज्ञान पुजारिन है; सेवा की प्रथम परीक्षा है ।
हे देव ! निभा लीजो इसको; इतनी ही फ़क़त प्रार्थना है ॥"

इस प्रकार कह पार्थसे; चरण गहे अकुलाय ।
दम्पति गद्‌गद् कंठसे; रहे देवि लपटाय ॥
पुत्रि-बिदाई का समय; समझें सभी सुजान ।
नहीं बढ़ायेंगे यहां; हम उसका आख्यान ॥

करुणा का एक कटक आया; या विरह-प्रवाह उमड़ आया ।
सन्ताप-शोक का वज्र कहो; या दुख का मेघ घुमड़ आया ॥

मां, बाप सहेली बार बार; बेटी को कण्ठ लगाती हैं।
दो डग आगे बढ़ जाती हैं; फिर लौट वहीं पर आती हैं॥
नयनोंके अंजन छूट छूट; सुरमा बन गये साडियोंके।
होठों पर खुश्की आने लगी; पल्ले तर हुए साड़ियोंके॥
"मैया, दादा, बहिनो, भैया; मेरी सुधि तात भुलैयो ना।
बेटी, सुकुमारी, लाड़ोरी; इस कुल की आन डुबैयो ना॥"

लपट लपट, रोते हुए; विदा हुई सुकुमारि।
विदा हुए पाञ्चाल–पति; उन्हें जुहार जुहारि॥
हर्ष–सहित पांचों सुवन; तथा द्रौपदी बाल।
उसी दशामें चलदिये; अपने गृह तत्काल॥
पर्ण–कुटीके निकट जब; पहुँचे पाण्डु–कुमार।
बाहर ही से उन्होंने; मां को कहा पुकार॥

"मैया ! द्रुपदेश्वरके घरसे; सानन्द लौटकर आये हैं।
एवं तेरी अनुकम्पासे; यक अनुपम–भिक्षा लाये हैं॥"
कुन्ती मांने–अन्दर ही से; सहसा यह उत्तर दे डाला।
"पांचों भाई आनन्द–सहित;उस भिक्षाको भोगो लाला !॥"

असमंजसमें पड़ गये; मातृ––भक्त सरदार।
इस आज्ञा का स्वयं कुछ;कर न सके निर्धार॥

पार्थने कहा–"मां ! बाहर आ; भिक्षा की ओर देख आकर।
तू ही आकर निबटारा दे; हो अमल किस तरह आज्ञापर ?॥
मां के भक्तों को किस प्रकार; हो सके ? मान्य यह वाणी है।
क्यों कर विभक्त होगी माता!;जड़–वस्तु नहीं है,प्राणी है॥"

कुन्ती मां भी देख कर; सकी न बात निकाल ।
किन्तु–विवश थी, वचन को; फिर न सकी वह टाल ॥
कुन्ती, पाण्डव, द्रौपदी; कर न सके निर्धार ।
उसी समय मां ने किया; अपना और विचार ॥
ध्यान लगा कर व्यासका; खड़ी रही कुछ काल ।
प्रकट हुए तत्काल ही; सत्यवतीके लाल ॥

चरणाम्बुज पकड़ पाण्डु–त्रियने; सारी घटना वर्णन करदी ।
मानो अपनी भूलको बांध; उनके आगे गठरी धरदी ॥
"भगवान ! पांच बेटे यह हैं; यह एक देवि सुकुमारी है ।
पांचोंके लिये भोगने को; आज्ञा हो चुकी हमारी है ॥
इस लिये तुम्हें बुलवाया है; मिथ्या कोई भी अंग न हो ।
हो जाये पूर्ण वचन मेरा; इसका सतीत्व भी भंग न हो ॥"

कहा व्यास भगवानने;–"होन हार बलवान ।
हर्गिज टल सकता नहीं; देवों का वरदान ॥

पूछो पाञ्चाली देवी से; जिसने शम्भु को रिझाया है ।
उनकी सेवा करते करते; इसने कैसा वर पाया है ? ॥
मांगे थे पांच–स्वामि इसने; बस पञ्च–स्वामि मिल आये हैं ।
जैसा वर था, वैसे ही सब; कारण दैवने जुटाये हैं ॥"

कुन्ती बोली–दया मय ! ; है सच्चा संवाद ।
किन्तु, यहाँ पर वेदकी; मिटती है मर्य्याद ॥

ऋषि बोले–"मर्य्यादा कैसी ?; होनी ही खुद जोरावर है ।
फिर सभी वेद या शास्त्रों में; मांकी आज्ञा सर्वोपर है ॥

जो अनुचित, उचित विचार त्याग; माताका हुक्म बजाते हैं।
वे मातृ–भक्त सच्चे सुशील; अपकीर्त्ति न हर्गिज़ पाते हैं॥
इसलिये उचित है, हर बेटा; केवल आज्ञा का योग करे।
पांचों पतियों से यथा समय; सानन्द द्रौपदी भोग करे॥"

कुन्तीने फिरसे कहा–; "दयाधाम! प्रण–पाल!
पातिव्रत–निर्वाहका; फिर मिट गया सवाल॥

इच्छा चाही शैली कर ली; फिर श्रुतिकी मर्य्यादा कैसी?।
बहु–पतिके साथ विहार करे; वह नारी पतिव्रता कैसी?॥"
व्यास ने कहा–"फिर भूलती हो; मर्य्यादा कहां टूटती है?।
अर्जुन तेरी आज्ञा पर है; उसके हुक्म में द्रौपदी है॥
बेटे को मां बापका हुक्म; सारे हुक्मों से ऊपर है।
पत्नीको पतिकी आज्ञा ही; सब मर्य्यादा से बढ़कर है॥
जिसने द्रौपदी विवाही है; यह देवि उसी की नारी है।
पस–पति; पत्नी के नाते से; यह, उसकी आज्ञाकारी है॥
अर्जुन अपने मुँह से कह दे;–"पांचों के साथ विहार करे।"
द्रौपदी पतिव्रत समझ उसे; वह आज्ञा अङ्गीकार करे॥
बेटोंका करतब बना रहा; मां की आज्ञा भी बनी रही।
पांचों पति भी कहलाने लगे; और पतिव्रता भी बनी रही॥"

कुन्ती बोली–"नीति–निधि!; हुआ ठीक निर्धार।
किन्तु वहां परलोक का; कीजे तनिक विचार॥

कहते हैं–पतिव्रता–नारी; वैकुण्ठ–धामको जाती है।
पति–वञ्चक या बहु–पति वाली; यमपुरमें धक्के खाती है॥

जो विषया-कुलटा विषयोंसे; पड़ जाती हैं मनमानी में ।
तो पुनर्जन्ममें होती हैं; वे विधवा भरी जवानी में ॥
द्रौपदी पञ्च-पति वाली हो; आख़िर फिर प्रतिफलमें क्या है ?।
हे देव ! साफ़ बतलाइयेगा; यह नियम दर असलमें क्या है ?॥"

कहा व्यासने—"है असल; एक नियतका काम ।
होते हैं सब नियतसे; धर्म—अधर्म—हराम ॥

सृष्टिका एक पत्ता भी तो; निष्कारण कभी न हिलता है ।
बस उसी न्यायकारी के घर; दण्ड भी नियतपर मिलता है॥
क्या हुआ ! अगर कोई पामर; योगी बनकर उपवास करे ।
पर चित्त इधर उड़ उड़ करके; माया में भोग—विलास करे ॥
स्त्री छोड़, कुटुम्ब छोड़; जङ्गल में समय बिताया करे ।
भीतरसे रमणी—रंगोंकी; लहरों में दिल लहराया करे ॥
बेवश होकर कुछ कर न सके; पर करने को ललचाता है।
ऐसा मनुष्य शास्त्रानुसार; "कर्त्ता" ही माना जाता है ॥

ऐसे कुटिल पिशाच नर; भरे महा—पाषण्ड ।
पाते हैं यमके यहां; उसी भाँति का दण्ड ॥

द्रौपदी हृदयसे यह निकृष्ट; इच्छा न धार कर आई है ।
उसकी आत्मा में तो केवल; स्वामी की प्रीति समाई है ॥
फिर एक रहस्य और भी है; जिसको तुम नहीं जानती हो ।
बाहरी दृष्टि से इन सबको; पांचों प्राणी पहिचानती हो ॥
पर वास्तव में यह बात नहीं; कुछ और भेद प्रकटाऊँगा ।
सब चलो द्रुपद के यहां—वहीं; यह सूक्ष्म-तत्त्व दरशाऊँगा ॥"

अस्तु–पाण्डवों सहित मुनि; गये द्रुपद के धाम।
समझाया संवाद सब; त्रिकालज्ञ–निष्काम॥

राजा बोले–हे देव! हमें आज्ञा; यों ही सिर ऊपर है।
केवल परलोक बिगड़नेका; हे दयानिधान! महा डर है॥
मुनिवर बोले–"राजन्! सच है; लेकिन यह भेद दिखाता हूँ।
लोक ही नहीं, परलोक तलक; क्षण भरमें विजय कराता हूँ॥
पृथ्वीका भार हटाने को; यह पञ्च–रूप प्रकटाये हैं।
यह पांचों पाण्डव वास्तवमें; इन्द्र हैं, शाप–वश आये हैं॥
यह "स्वर्ग–लक्ष्मी" अयोनिजा; द्रौपदी रूप बन आई है।
शिव-शाप-मोचनी-युक्ति समझ;यह लीला रुचिर रचाई है॥"

राजन्! यह आंखें नहीं; करती हैं पहिचान।
दिव्य–दृष्टि–द्वारा तुझे; होगा इसका ज्ञान॥

ऐसा कह कर योगेश्वर ने; दी दिव्य–दृष्टि द्रुपदेश्वर को।
जिसको पाकर नृप ने देखा; एक ही रूप देवेश्वर को॥
है एक मूर्त्ति ही पञ्च–मूर्त्ति; फिर पञ्च–मूर्त्ति ही एक हुई।
सब लोगों का अज्ञान हटा; ऋषिवर की पूरी टेक हुई॥

एक अंश ही पाँच थे; पाँच अंश थे एक।
समझेंगे यह भेद वे–जिनके विमल–विवेक॥
इस प्रकार द्रौपदी के; हुए पञ्च–भरतार।
कौन कहे? किस भाँति है;हरि-लीला-विस्तार॥

गायन

जिन्हें वेद या शास्त्र का भास होगा।
उन्हें इन रहस्यों का विश्वास होगा ॥
न देखा जिन्होंने कभी धर्म अपना-
उन्हें क्या किसी का भी विश्वास होगा ॥
प्रथम कोशिशें कर वह आंखें बनाओ-
कि जिन में पुरातत्त्व-आभास होगा।
प्रभो ! मूढ़ हैं,दास "शैलेन्द्र" "गोविंद"-
कहो किस तरह पार; यह दास होगा ॥

केवल श्रद्धा-भक्ति से; लो माधवका नाम।
पार लगायेंगे वही; राधा-पति घनश्याम ॥

शुभमस्तु-

इति आदिपर्व द्रौपदी-स्वयम्वर।



श्रीः ।

महाभारत-सभापर्व ।

धर्माश्वमेध.

सरल छन्दोबद्ध.

" भगतन कौं भीर पै; पीर यदुवीर को । "

लेखक–

कविरत्न श्री पं० शैलेन्द्रकुमारजी वाजपेयी.

धर्मालङ्कार, कीर्तनकलानिधि.

आनन्द भवन, गणेशगंज, खण्डवा C.P.

और

काव्य-कला-भूषण अभिनयाचार्य्य कुशल-कवि,

श्री पं० गोविन्ददासजी विनीति, तालवेहट–झाँसी.

मुद्रक एवं प्रकाशक:

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई – ४०० ००४.

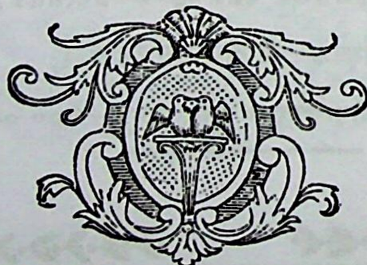
श्रीः ।

* प्रार्थना । *



हमारी बिगड़ी हुई बात बना दो माधव ! ।
नाव डिगती है, भँवर बीच बचा दो माधव ! ॥
गिरती जाती है दिनों दिन यह दशा भारत की-
व्रजेश बनके तनिक हाथ लगा दो माधव !
भीष्म, अभिमन्यु का आदर्श बना दो माधव-
हमें भी स्वत्व का सन्देश सुना दो माधव ! ॥
द्वेष को त्यागके हम विश्व को भाई समझें-
लोक-प्रियता का वही पाठ पढ़ा दो माधव ! ।
तुम्हारे आसरे "गोविन्द" सदा है "शैलेन्द्र"
इसी प्रकारसे कुछ और निभा दो माधव ! ॥





श्रीः।

❀ कथा-प्रारम्भ। ❀

मिला पाण्डवों का जहाँ; कुरु-पति को संवाद ।
बिजली बन कर गिर पड़ा; मानो वज्र-विषाद॥

मरने पर आंसू गिरा न था; जीने पर आहें भरने लगे।
धृतराष्ट्र भवन में जा कर वे; सब भाई सम्मति करने लगे॥
दुर्योधन बोला-"अये भाई !; सारा उपाय बेकार गया।
तीर भी हाथ से निकल गया; आगे से भाग शिकार गया॥
भैया ! अब शीघ्र उपाय करो; वरना वह भावी आयेगी।
एक दिन इसी रंग-स्थल पर; रण-चण्डी नाच दिखायेगी॥
अब पाण्डव, पाण्डव रहे नहीं; वह गिरता बाजू सँभल गया।
वह भी राजा के साथी हैं; वह भिखमंगापन निकल गया॥
हम एक भीम के मारे ही; आधी रात में चौंकते हैं।
सपने में अब तक कभी कभी;विकराल मूर्त्ति वह देखते हैं॥

उन वीरों को मिल गये; अब वीर ही सहाय ।
भैया ! बतलाओ सभी; अब क्या करें उपाय ॥

मेरी सम्मति केवल यह है; यह जोड़ तोड़ कर मिटवा दो।
पाञ्चाल-राज को बहका दो, उन को सीमा से हटवा दो॥
या "दूती" कोई पहुँचा कर; द्रौपदी फोड़ लो उनमें से।
सारांश सधी-शतरंज न हो; यक नर्द तोड़ लो उनमें से॥

अथवा भीम को बुला भेजो; धोखा देकर मरवा डालो ।
जैसे भी बने, जहां तक हो; यह काँटा शीघ्र हटा डालो ॥"

कर्ण वीर कहने लगा; "सुनिये कौरव-राज ! ।
इन बातों से एक भी; सिद्ध न होगा काज ॥

तुम क्या ? यम तथा काल से भी; निर्भय वे पांचों भाई हैं ।
पहले वे स्वयं धर्म-प्रिय हैं; फिर यादव-नाथ सहाई हैं ॥
यह बच्चों की सी बातें हैं; यह सम्मति सब कायरपन है ।
यह सुख सपने के लड्डू हैं; यह बकझक फ़क़त् लड़कपन है ॥
दो एक बुजुर्ग बुला लीजे; उनसे मिलकर सम्मति कीजे ।
जैसी उन सब की सम्मति हो; वैसी हमको आज्ञा दीजे ॥"

भीष्म-द्रोण एवं विदुर; बुलवाये नर-पाल ।
"गंगा-सुत" कहने लगे; सुनकर सारा हाल ॥

"कुरु-राज अगर मेरी मानो; तो कह दूँ-एक तराजू हो ।
हर तरह, और हर नाते से; तुम दोनों मेरे बाजू हो ॥
माना-वे अपने कर्मों में; सहमत, अथवा न सहाई हैं ।
फिर भी विचार-पूर्वक देखो; आखिर तो अपने भाई हैं ॥
दूसरी जाति वाले पहिले; दीनों को ही अपनाते हैं ।
इस लिये प्रबल से प्रबल शत्रु; उनके वश में हो जाते हैं ॥
हम यदि ऊँचा पद पाते हैं; तो पहले जाति मिटाते हैं ।
इस लिये एक दिन सब भाई; अपने दुश्मन बन जाते हैं ॥
परिणाम वही दिखलाता है; हम स्वयं ठोकरें खाते हैं ।
प्रति पक्षी बढ़ते जाते हैं; निज-पक्षी मिटते जाते हैं ॥
जो अपने भाई पालोगे; तो गौरव-मान बढ़ायेंगे ।
प्रेम से अगर अपनाओगे; तो काम समय पर आयेंगे ॥

अये मखमल के गद्दों वाले!; ले गले लगा उन नंगों को॥
अये लक्ष्मी-पति अये राजेश्वर!;अपना ले उन भिखमंगों को।
कितने दिन नर का जीवन है; कुछ नाम कमा कर-चल बेटा!।
इज्ज़त चाहे-तो भ्रातों को; कण्ठ से लगा कर-चल बेटा॥"

"वाह वाह" करने लगे; सुन कर यह प्रस्ताव।
यों बोले धृतराष्ट्र तब; छिपा भीतरी भाव॥

"अच्छा तो-भाई विदुर तुम्हीं;उन राज-दुलारों पर जाओ।
कुन्ती देवी के कानों तक; मेरा सन्देशा पहुँचाओ॥
यदि वैर-भाव का ध्यान छोड़; वे अपने घर वापिस आयें।
तो आधा राज्य दिलाने का; हम लोग यत्न कुछ ठहरायें॥"

बैठे थे दरबार में; पाण्डव-द्रुपद-नरेश।
विदुर-भक्तने पहुँच कर; दिया उन्हें सन्देश॥

राजा ने तथा पाण्डवों ने; हर तरह विदुर को अपनाया।
सन्मान-पान करके नृप ने; अपनी समता पर बिठलाया॥
फिर कहा विदुर ने-"अये नर-पति!;यह भी सब राज-दुलारे हैं।
बेटे ही सगे हमारे हैं;-हाँ-काल चक्र के मारे हैं॥
दुर्योधन के अप-स्वार्थों ने; इनका अधिकार छुटाया है।
या भारत-पूज्य फूट ही ने; अपना प्रभाव दिखलाया है॥
जो हो-इस का यह फल होगा; दोनों लड़कर मिट जायेंगे।
इन में मिल कर-तीसरे लोग; अपना अधिकार जमायेंगे॥"
इस लिये भीष्म की सम्मति है;-हम पञ्च-फ़ैसला करवा दें।
दो भाग बराबर के करके; दोनों पक्षों को दिलवा दें॥"

द्रुपद राज ने हर्ष से; की सम्मति स्वीकार।
किन्तु, भीम को आगया; वही पूर्व उद्गार॥

भीमने कहा।

"पहिली बारके प्रेमसे तो; ज्यों त्यों कर जान बचाली है।
चाचाजी ! इस प्रेमके लिये; अबसे क्या चाल निकाली है ?॥
हम लोगों का वन-जीवन भी;कुरु-पति को नहीं सुहाया है।
लाक्षागृह को बेकार देख;क्या "मृत्यु-महल" बनवाया है ? ॥
विश्वास रहे, जब तक जगमें; उन केशव का साया होगा।
तब तक इन भक्त पाण्डवों का;बाल भी नहीं बांका होगा ॥"

कहा विदुरने शपथसे—सुनो वृकोदर लाल !।
चाल, जाल का चचाको;नहीं विदित है हाल ॥

"केवल कौरव लोगों का ही; सन्देश न तुम तक लाया हूँ।
यह राज-सभा का निर्णय है; जो तुम्हें सुनाने आया हूँ ॥
यदि हो रहस्य इसमें भी तो;मुझको न ख़बर उस चाल की है।
मेरी बातोंमें चाल नहीं; सौगन्ध कृष्ण-गोपाल की है ॥"
बल देकर कहा द्रुपदने भी "ज़ाहिर होती कुछ ग्लानि नहीं।
जब हित-पूर्वक बुलवाया है; तब जानेमें कुछ हानि नहीं ॥
छल-कपट हुआ, तो क्या भय है?;सब भेद सामने आयेंगे।
पाण्डव योधा हैं—दूध नहीं; जो पाते ही पी जायेंगे ॥
जाओ निर्भय—मैं कहता हूँ; कुछ लोग वहां भी लायक़ हैं।
सत-धर्म तुम्हारा साथी है; श्री यादव-नाथ सहायक हैं ॥"

माता, पत्नीके सहित; कर इस तरह विचार।
द्रुपद-नगरसे चल दिये; पांचों पाण्डु-कुमार ॥
राज-सभामें जिस समय; पहुँचे पाण्डु-कुमार।
हुआ ऊपरी भावसे; खूब प्रेम-व्यवहार ॥

धृतराष्ट्रके आँसू निकल पड़े; दुर्योधन गले लगाने लगा।
धूर्त्तता भरे प्रिय-शब्दोंमें; भाई चारा दरसाने लगा॥
"भैया! लाखों रुपये देकर; वह लाक्षागृह बनवाया था।
शक्ति भर तुम्हें सुख देने का; हमने विचार ठहराया था॥
पर होनी इसको कहते हैं, वह क्षणमें भस्म हो गया है।
विद्वान ठीक ही कहते हैं;भाग्य पर किसी का वश क्या है?॥
घर जलने की क्या चिन्ता थी?;तुम तो आकर मुँह दिखलाते।
हम लोग विरहमें जल२कर; क्यों चिन्तामें यों तड़पाते?॥"

धर्म राज कहने लगे—"काल—चक्र बलवान।
उसी चक्रमें हमें भी; रह न सका यह ज्ञान॥"
बात काट धृतराष्ट्रने; कहा—"तजो दुख लाल!
सुन कर वह करुणा—कथा;फिर भभकेगी ज्वाल॥

जो हुआ, पुरानी बातों को; अपने हृदयोंसे टालो तुम।
यह अपना कारबार देखें; अपना अधिकार सँभालो तुम॥
यह राज—सभा का निर्णय है; दो भाग समान किये जावें।
दुर्योधन और युधिष्ठिर को; उनके अधिकार दिये जावें॥"

धर्मराज कहने लगे—"हमको सब स्वीकार।
किसी भाँति भी परस्पर; रहे प्रेम—व्यवहार॥"
इस विचार पर हो गये; दोनों ही दल शान्त।
पाण्डव—वीरों को मिला; इन्द्रप्रस्थ का प्रान्त॥

जो बिलकुल ऊजड़ बीहड़ था, वन थे झाड़ी झनकारोंके।
आबादी थी वन—पशुओंकी; कुछ घर थे भील गँवारोंके॥
धर्मने वही सर्वस्व समझ; वह झाड़ी झनकड़ कटवाये।
फिर दीन-हीन-असहाय-लोग; अपना व्यय देकर बुलवाये॥

रहने को घर, भोजन-कपड़ा; राज्यकी ओरसे दिया गया ।
एवं समुचित-प्रबन्ध द्वारा; उद्यम का जरिया किया गया ॥
निःशुल्क शिल्प-विज्ञान-कला; सैकड़ों हुनर सिखलाये गये ।
वैदिक-शिक्षाके अलग अलग; विद्यालय भी खुलवाये गये ॥
राजसी-भवन, मन्त्रणा-भवन; देवालय, न्यायालय भी थे ।
गौशाला तथा धर्मशाला; सैकड़ों औषधालय भी थे ॥

अहो ! जहां हो न्याय-मय; धर्मराज का राज ।
"इन्द्र प्रस्थ" फिर क्यों न हो; इन्द्र-लोक-सिरताज ॥

प्रति-दिन वह धर्म-राजधानी; अतुलित-प्रतिभा दरशाती है ।
कितनी ही प्रजा कौरवों की; आप ही भागती आती है ॥
कितने ही कर हो गये बन्द; स्वच्छन्द सभी नर-नारी थे ।
था एक स्वराज्य-प्रान्त मानो; धर्म-पति जहां अधिकारी थे ॥
श्री धर्मराज गौ-ब्राह्मण या; दुखियों का मान बढ़ाते थे ।
नित्य प्रति नवीन कथा वाचक; हरि-कीर्त्तन उन्हें सुनाते थे ॥

कहें ? कहां तक वहां का; प्रेम तथा आनन्द ।
कृपा करें जिनके यहां; यदु-कुल-कैरव-चंद ॥

गायन

कृपा-कोर उनकी जहां जा रहेगी ।
स्वयं सिद्धि सारी वहां जा रहेगी ॥
लगायेंगे जिनको चरणसे वे माधव-
अमर-कीर्त्ति उनकी यहाँ छा रहेगी ॥
करो व्यर्थ चिन्ता न भावी की "शैलेन्द्र"
यह मिट्टी न जाने कहाँ जा रहेगी ॥

एक समय नारद वहाँ; आये प्रातः काल ।
धर्मराज के सामने; कहा हृदय का हाल ॥
"राजन्! कुछ ही दिन बीते हैं; दो बन्धु यहाँ पर रहते थे ।
उन धीर, वीर, बलवानों को; "उपसुन्द-सुन्द" सब कहते थे ॥
दोनों में थी शक्ती समान; दोनों की ममता न्यारी थी ।
पर-उन दोनों की काल--रूप; बीच में एक ही नारी थी ॥
उस नारी के कारण ही, नृप !; दोनों में द्रोह-प्रचार हुआ ।
एवं आपस ही में लड़कर; दोनों ही का संहार हुआ ॥
यह ज़र, ज़मीन, ज़न ऐसे हैं; घर घर में आग लगाते हैं ।
मित्रों को शत्रु बनाते हैं; भाई का गला कटाते हैं ।
नारि एक हों दो पुरुष; निश्चय द्रोह निशान ।
पांच पती में द्रौपदी; कुशल करे भगवान ॥
इस लिये नियम बाँधो, राजन्; ! विषयों में कहीं विनाश न हो॥
बारी के सिवा किसी का भी; द्रौपदी-भवन में वास न हो ।
जिन दिनों रहे जिसकी बारी; वह पाञ्चाली-गृह-वासी हो ॥
जो नियम तोड़ दे किसी तरह; वह बारह वर्ष उदासी हो ।"
मुनिवर की आज्ञा मान्य हुई; वैसा ही नियम निभाया गया ॥
पाञ्चाली जी का ख़ास महल;महलों से अलग बनाया गया ।
एक दिन युधिष्ठिर द्रुपद-सुता; महलों में वास कर रहे थे ।
चारों भाई प्रेम के साथ; शासन का काम कर रहे थे ॥
उन्हीं दिनों आया वहाँ; एक विप्र विलपाय-
"पार्थ पार्थ" चिल्ला उठा; राज-भवन में जाय ।
"हो पाण्डव-रत्न पार्थ यदि-तो; दुष्टों को चकनाचूर करे ।
यदि गौ-ब्राह्मण-हित कारी हो;तो ब्राह्मण का दुख दूर करे॥"

पार्थ ने निकल कर महलोंसे; ब्राह्मण को धीरज बँधवाया ।
विह्वलता-सूचक-शब्दों में; द्विज ने कुल क़िस्सा समझाया ॥
"अर्जुन ! देखो, पारथ देखो; वह तस्कर निकला जाता है ।
मुझ दीन-दुखी का धन लेकर; वह देखो-भागा जाता है॥"

पार्थ न ज्यादा सुन सके; वह दुख भरी पुकार ।
बोले-"पाण्डव-राज्य में; इतना अत्याचार ॥

ठहरो ! द्विज देव ! ज़रा ठहरो; सेवक सेवा को जाता है ।
धन ही क्या,उस धन-हर्त्ता का; सिर भी सेवा में लाता है ॥"
इतना कह कर भट पार्थ बढ़े; लेकिन न पास में धन्वा था ।
कुछ रोज़ों से धन्वा-तरकश; द्रौपदी-भवन में रक्खा था ॥

किन्तु-पार्थ को उस समय; रहा न कोई ध्यान ।
सहसा महलों ले गई; राज-धर्म की आन ॥

धन्वा लेकर, बाहर आये; चोर को मार, धन लौटा कर ।
विप्र को बिदा कर, पार्थ वीर; धर्म के पास पहुँचे जाकर ॥
बोले-"भैया ! आज्ञा दीजे; यह अनुगामी वन जाता है ।
ब्राह्मण का वचन हुआ पूरा, अब नारद-वचन निभाता है ॥"

इन शब्दों को श्रवण कर; धर्म हो गये मौन ।
भला धर्म-मर्य्याद पर; उन्हें रोकता कौन ? ॥

केवल दो अश्रु-बिन्दु देकर; धर्म ने पार्थ को बिदा किया ।
भीम ने दहकती ज्वाल रोक; मस्तक को नीचे झुका लिया ॥
रो दिया देवि पाञ्चाली ने; सहदेव, नकुल बिलखाने लगे ।
कुन्ती माँ के लाडले लाल; माँ के महलों में जाने लगे ॥

हर्ष तथा आनन्द में; माँ को शीश झुकाय ।
बोले अर्जुन मोद भर; सारा हाल सुनाय ॥

"मैया, मैया तेरा लाला; जाता है धर्म निभाने को।
नारद की आज्ञा पालन को; पाण्डव की आन बचाने को॥
ब्राह्मण के लिये चोर मारा; चोर के लिये धन्वा लाया।
धन्वा के लिये वचन तोड़ा; वन वास इस लिये ठहराया॥
मैया! आज्ञा दे, हर्ष सहित; बारह वर्ष की बिदाई है।
आधार अशीश-मात्रका है; माधव की फ़क़त् सहाई है॥"

सुन कर लाला के वचन; हुई देवि ख़ामोश।
इधर धर्म की आन है; उधर प्रेम का जोश॥

कुछ कह न सकी, कुछ सुन न सकी; क्या जाने! क्या न विचारा की।
कितनी ही देर एक टक हो, बेटे का वदन निहारा की॥
कह सके कौन? उस समय वहाँ; देवि की दशाही कौन हुई?।
वह शीश झुका कर बिदा हुए; वह "धन्य वीर!" कह मौन हुई॥

गायन

क्या सभी देव थे? अये हिन्द! दुलारे तेरे।
धर्मके प्राण थे, क्या सिर्फ़ सहारे तेरे?॥
आनपर प्राण चढ़ा देना तमाशा था, जिन्हें-
आह, क्यों आज वही हैं नहीं बारे तेरे?।
ओ मेरे वृद्ध-पिता! दे इसे आशीश वही-
कि जिसकी शक्तिसे, यह भार उतारे तेरे॥
"शैलेन्द्र" आता है; "गोविन्द" तुम्हारे द्वारे।
भूल जायें न वे-इक़रार, हमारे तेरे॥

क्रमगत उस प्रण-वीरने, सबको किया प्रणाम ।
मातृ-भूमिसे हो बिदा; बदला वेष तमाम ॥

मर्य्यादा पर हँसते हँसते; दिखलाया वेष उदासी का ।
कुन्ती के राज-दुलारे ने; कर लिया रूप वनवासी का ॥
जंगल, पहाड़, बीहड़, उजाड़; झरना, बिहार, सरिता, सागर ।
प्रति भू-धर-दर-सरवर, फिरकर; मणि-पुरमें जा पहुँचा भटकर ॥

वहां देवि चित्राङ्गदा; देख रही थी राह ।
दर्शन पाकर पार्थके; बुझी विरह की दाह ॥
कुछ दिन भोग विलास कर; रहे पार्थ सुखमान ।
हुआ "बभ्रुवाहन" तनय; सुन्दर-शक्ति-निधान ॥
बिदा वहांसे पार्थ हो; जा पहुँचे पाताल ।
नाग-सुतासे व्याह कर; लौट-पड़े प्रण-पाल ॥
कुछ दिनमें परिभ्रमण कर; गये द्वारिका-धाम ।
जहां राज-वर-राज-मणि; राज रहे घनश्याम ॥

अर्जुनको आता सुनते ही; द्वारिकानाथ सानन्द उठे ।
पीछे से एक समाज उठा; आगे श्री यादव-चन्द उठे ॥
मानो नील-घन लपेट उषा; तारों के साथ आ रहा है ।
या प्रेम-वायु-ताड़ित-अम्बुज; सर-सखा समेत जा रहा है ॥
अटपटे चरण दृगचञ्चलसे; फुर्ती सी भरी भुजाओं में ।
आधी देहरी द्विबीच रही; सम्मेलन हुआ सखाओं में ॥
धाये, हरषाये, लपटाये; उस परम-भक्त वनवासी से ।
चरणों में गिर कर चरणाश्रित; यों बोले करुणा-राशीसे ॥

गायन

हमें भी अब सुख दो, सुख-धाम ! ।
जबसे आया हूँ नर-तनमें; मिला न सुखका नाम ।
प्रबल-द्वन्द्व-मय-मायासे प्रभु ! भूल गया विश्राम ॥
कलह,क्रोध अति-कुटिल-कर्म-वश; स्वप्न हुए आराम ।
दुसह-दुराशा-द्वेष-वह्निसे; जीवन हुआ हराम ॥
जन"विनीत" "शैलेन्द्र"उधारो; तुम तक आशा श्याम !॥

कृष्णचन्द्र कहने लगे-"सुनो पार्थ-प्रण-वीर ! ।
सुख, दुखके ही लिये है, यह मानवी-शरीर ॥

जीतना, हारना, मार-काट; यह धन्धा है रण-धीरोंका ।
विघ्नों, बाधाओं से लड़ना; यह कर तब है प्रण-वीरोंका ॥
यह समय समयके कठिन कष्ट; सब उसी दैवकी इच्छा है ।
यह नित्य नये सङ्कट आना; बस प्रण-वीरकी परीक्षा है ॥
निःस्वार्थ-भावसे पार्थ-वीर ! ; यदि विजय इन्हें कर पाओगे ।
विश्वास रहे, तो एक रोज़; वास्तविक मार्ग पा जाओगे ॥

शान्ति, धैर्य, सन्तोषसे; सहो पार्थ ! सन्ताप ।
बदल जायेंगे आप ही; करुणा-मूल-कलाप ॥"
इस प्रकार उपदेश कर; ठहराया गोपाल ।
उनकी इच्छा का यहां: सुनिये सच्चा हाल ॥

चम्पक-बरणी,गज-गमनी-शुठि;मृग-नयनी,कोकिल-बयनी थी।
था नाम "सुभद्रा" भद्रा का; जो कृष्णचन्द्र की भगिनी थी ॥

एक दिन पार्थ से "भद्रा" की; ज्यों ही आँखें दो चार हुईं।
दोनों ओरसे आत्मायें; त्यों ही उनकी बलिहार हुईं॥
आसक्त हुईं तन, मन, प्रणसे;शत-काम-लजावनकी भगिनी।
सम्बन्ध हुआ, आंखों हीमें; प्रत्यक्ष न कोई बात बनी॥
श्रोतागण! यह संसारी है; डर डर क़दम कर बढ़ाना है।
किस दिन,क्या नई बात होगी?;इसका कुछ नहीं ठिकाना है॥
फिर एक बात स्मरण रहे; ब्रह्म-स्वरूप मोहनी ही हैं।
बाक़ी वंशज हैं देव-योनि; या जीव विशेष तपस्वी हैं॥
जिस तरह कमलके पास; और पत्ते भी शोभा पाते हैं।
पर कमल, कमल कहलाता है; पत्ते पत्ते कहलाते हैं॥
हां, एक कमल के कारण वे; शोभा, महानता पाते हैं।
लेकिन अवसर पर सब पदार्थ; अपने स्वभाव पर जाते हैं॥
निर्गुण,निरीह,अज, अलख कृष्ण; यद्यपि सबके हितकारी हैं।
तद्यपि केवल आधार-मात्र; निष्पक्ष-भाव-अविकारी हैं॥

यद्यपि पार्थ अनन्य-गति; हैं केशव के दास।
पर छबि-माया-न्यास पर;विसर गया संन्यास॥

जब किसी व्यक्तिकी आत्मा में; कुछ पाप समाने लगता है।
तो वह निश्चय ही गुरु-जन से; कुछ आँख चुराने लगता है॥
स्पष्ट यही गति अर्जुन की; उस आकस्मिक-प्रेम में हुई।
परलोक-भव्य-भावुकता की; भावी-लौकिक-प्रेम में हुई॥
एकान्त-वास, निःश्वास दीर्घ; क्षीणता, कान्ति में परिवर्तन।
आने जाने में अड़चन सी; कुछ मिलने जुलने की उलझन॥
दरबार का जाना छूट चला; बातों में नीरसता आई।
भक्ति का भाव, प्रेम की लगन;.आत्मा पर बदली सी छाई॥

पड़े पड़े एकान्त में; बढ़ी यहाँ तक भ्रान्ति ।
दो विपक्षियों ने यथा; कर दी सहसा क्रान्ति ॥
भक्ति ने पकड़ दामन खींचा;प्रीति ने चरण को खींच लिया।
एक ने अमृत की वर्षा की; एक ने प्रणय-जल सींच दिया॥
वात्सल्य-भाव-मय–मधुर–मूर्त्ति; गोदी में खींचे जाती है ।
आशा से भरी कटाक्ष वहाँ; प्रेमाङ्कन ओर बुलाती है ॥
भक्ति की भावना स्वार्थ तथा; उस छल को पाप बनाती है ।
प्रीति की प्रेरणा विषय–पूर्ण; पुरुषत्व-प्रवाह बहाती है ॥
अन्तर्यामी के सिवा; था न किसी को ज्ञात ।
ले जाकर एकान्त में; बोले मोहन बात ॥
"अर्जुन ! किस संभ्रम शंका में; रहते हो ? यहां भुलाने से ।
मिलते हो कुछ सकुचाने से; करते हो बात बिराने से ॥
अर्जुन ! शुभ–अशुभ–प्रसंगों में;अपने को मत कर्त्ता समझो।
जो कुछ भी होनी हो जाये; वह मेरी ही इच्छा समझो ॥
शत्रुता, मित्रता क्या है ? भट!; विपरीत भावका हो जाना ।
सम्बन्ध-प्रेम-नाता क्या है ?;आत्मिक-झुकावका हो जाना ॥"
बिलख बिलख रोने लगे; "पार्थ-भक्त बे रोक ।
मोहन ! रोको, हाथ दे; बिना रोक यह शोक ॥
केशव ! पकड़ो; माधव ! थामो; यह पापी कहाँ जा रहा है?।
आधार, हरे ! आधार, हरे; वह देखो, वज्र आ रहा है ॥
देवेश! दया-मय! दीन-बन्धु !;यह क्या आपत्ति आ रही है ? ।
करुणेश ! न जाने कौन शक्ति; गड्ढे में लिये जा रही है? ॥
गिर गया, अरे डूबा, डूबा; ओ केशव ! हाथ लगालो तुम ।
हा पतन!पतन!हा घोर पतन!;ओ माधव आज निभालो तुम ॥

मत मुँह देखो मुझ पापी का; इस पुण्य-भूमि से हटवा दो ।
यह विषयी आँखें खिंचवा लो; यह दुष्ट नर्कमें फिकँवा दो॥"

लिपट गया श्री कृष्ण के; इस प्रकार बिलपाय ।
बार बार सन्तोष दे; बोले यादव-राय ॥

" अर्जुन ! जिस इच्छा के वश हो; मैंने यह सृष्टि बनाई है ।
जान लो, उसी के लिये तुझे; ऐसी इच्छा प्रकटाई है ॥
उस खल-मण्डल से तुम अच्छे; संकोच छोड़ कर काम करो।
आने दो अवसर, भ्रम न करो; सानन्द अभी विश्राम करो॥"

समझ लिया सब पार्थ ने; यादव-पति का भाव ।
प्रबल-प्रेम का उभय-दिश; जमता गया जमाव ॥

था प्रात काल, आकाश लाल; तारों का जाल कट चुका था।
रवि बाल निकाल चुके सर थे; ऊषा का वस्त्र फट चुका था॥
छरहरा, छबीला, पार्थ-वीर; कोट के द्वार पर आता है ।
उस ओर सुभद्रा जी का रथ; सर-वर को दौड़ा जाता है॥
स्नानों से पहिले उसने; प्रेमोदधि में गोता खाया ।
सर वर का जाना विसर गया; जब सरवरि का सुर-वर आया॥
रथ उसी जगह पर ठहर गया; दोनों का आत्मिक असर पड़ा।
कुछ बातें हुईं इशारों में; सारथी वहीं पर उतर पड़ा।

भद्रा का कर पकड़ भट; रथ पर हुआ सवार ।
तथा प्रणय-दम्पति हुए; चलने को तैयार ॥

पस, इस घटना के होते ही; हल चल-फैली यादव दल में ।
पल के पल में घिर गये पार्थ; सब उतर पड़े युद्ध-स्थल में॥
पार्थ ने कहा-"प्रियतमे! सजग; इस जगह विजय पानी होगी।
चोरी का मौक़ा निकल गया; शहज़ोरी दिखलानी होगी ॥

जिनके बल-इच्छा के द्वारा; हम से निरुपाय उपाय करें।
इस महा-समर में अनुचर की; वे ही घनश्याम सहाय करें॥"
निर्भय हो कहा सुभद्रा ने; "संग्राम करो, परवाह नहीं।
प्रेम के मार्ग में जीवन है; जीने मरने की चाह नहीं॥
आप भी सुवीर-शिरोमणि हो; मैं भी क्षत्रिय की बेटी हूँ।
स्वामी अपनी रक्षा रक्खें; मैं रथ की रक्षा करती हूँ॥

इतना सुन कर पार्थ ने; खींची वहीं कमान।
सेना पर पड़ने लगे; सहसा लाखों बाण॥

दूसरे पक्ष से बाण-वृन्द; बादल बन नभ पर छाये हैं।
अर्जुन ने एक निशाने से; वे सारे काट गिराये हैं॥
फिर दुहरा बाण चढ़ा कर जब; अर्जुन ने युद्ध मचाया है।
तो जगज्जयी यादव-दल का; आगे न क़दम बढ़ पाया है॥
देखा हलधर ने कुछ बल-धर; धनु-धर द्वारा संहार हुए।
जो यादव कहीं न हारे थे; वे अर्जुन पर बलिहार हुए॥
अपने दल का संहार देख; अत्यन्त क्रोध में छाये हैं।
हलधरजी हल–मूसल लेकर; अर्जुन की ओर सिधाये हैं॥

इस घटना की ख़बर जब; पड़ी कृष्ण के कान।
उभय–पक्ष के बीच में; आ पहुँचे भगवान॥

हल पकड़ लिया हलधर जीका; बोले-"दादा! क्या करते हो?।
हे शान्ति-धाम! शान्तिको त्याग; देखो तो किससे लड़ते हो ?॥
हलधर बोले-मोहन! इज्ज़त; प्राणों से प्रिय कहलाती है।
फिर प्राणों की चिन्ता कैसी ?; जब अपनी इज्ज़त जाती है॥
केशव! तुम को इस मौक़े पर; शान्ती का सबक़ सुहाना है।
क्या अपने ही हाथों अपने; यदु-कुल की नाक कटाना है ?॥

तुम तो मशहूर लड़ाके हो; क्यों हमें शान्ति सिखलाते हो ?।
अपनी ही बहिन जा रही है; अपनों को ही धमकाते हो ॥
जिस यदु-कुल ने अपने बलपर; ग़ैरों की कन्या व्याही हैं।
जिस वर-वंश में इशारे पर; दूसरी बेटियाँ आई हैं ॥
उस कुल की बेटी आज कृष्ण; अर्जुन के हाथों जाती है।
इस जगह उबाल आ रहा है; पर तुमको शन्ति सुहाती है ॥

कहा कृष्ण ने—" भ्रातवर !; है अपनी ही भूल।
क्या वश ? जब हैं परस्पर; पति-पत्नी-अनुकूल ॥

तुम देख रहे हो दोनों का; स्नेह अथाह हो चुका है।
जिनका हृद—प्रेम हो चुका है; बस उनका व्याह हो चुका है ॥
देवी इस पर आसक्त नहीं; इस के गुण पर बलिहारी है।
इस शादी में सब से पहिले; दाऊ जी ! राय हमारी है ॥
फिर जब यदु--कुल की सेनाने; उस को राह में खिजाया है।
तो उस ने भी क्या बुरा किया ? अपना प्रभाव दिखलाया है ॥

दाऊ बोले—"धन्य है; लीलाधर ! घनश्याम !।
समझे भी जाते नहीं; कुछ लीलाके काम ॥

या तो है उतनी आन, बान; ग़ैर के लिये दौड़े जाओ।
या इस दर्जे की शान्ती है; घर की बात पर न शरमाओ ॥"
माधव बोले—"दाऊ इसका; कारण त्रैलोक में ज़ाहिर है।
मेरा तन, मन, धन, जन, जीवन; केवल भक्त पर निछावर है ॥
मैं वह हूँ—जो भक्ती में फँस; शूकर बन कर लज्जित न हुआ।
मैं वह हूँ—जो बलि के द्वारे; पहिरा देकर विचलित न हुआ ॥
मैं वह हूँ—ब्रह्म—रूप होकर; खेला दशरथ के आँगन में।
मैं वह हूँ—मुक्ति—रूप होकर; फँस गया यशोदा—बन्धन में ॥

मैं वह हूँ—शुद्ध—रूप होकर; उलझा कुब्जा के चन्दन में।
मैं वह हूँ—निर्विकार हो कर; भटका हूँ ना कुछ माखन में॥
इस ओर हमारी सेना भी; अर्जुन का जौहर जान चुकी।
उस ओर सुभद्रा देवी भी; आत्मासे स्वामी मान चुकी॥
फिर एक भेद भी याद रहे; जो कुछ भी हो-वह अच्छा है।
सन्तोष है, इतने शब्दों पर; यह किसी बातका बदला है॥
लौटा दो, रथ को इसी समय; सेना—समेत प्रस्थान करो।
शादी कर दो वैदिक-विधि से; पार्थका उचित-सन्मान करो॥
भावी का भाव अलख समझो; सम्बन्ध दैव की इच्छा है।
दाऊ जी पार्थ सखा ही है; उस दुर्योधन से अच्छा है॥

गायन

कृष्ण अपने भक्त पर; यह प्राण भी बलिहार दे।
दास की अभिलाष पर; सर्वस्व अपना हार दे॥
है प्रकट किसपर नहीं ?;यह "भक्त—भावन" की प्रथा।
आप तो अवतार ले; पर भक्त अपना तार दे।
क्षीर—सागर की शयन क्या ?; लक्ष्मी का वास क्या ?—
भक्त की रुचि हो अगर; तो आज ठोकर मार दे॥
ओ मनोहर श्याम ! हम; हैं—तार दे विषयी "महा"—
हो कृपा की कोर कुछ तो; भक्ति का आधार दे॥

गूढ़—भाव संकेत से; समझ गये बलराम।
सादर अर्जुन को लिये; आये अपने धाम॥

जिस की स्वर्गिक—सुन्दरता पर; सौन्दर्य्य-सदन की श्रद्धा है।
उस सहज-सुहावन-नगरी का; सौन्दर्य्य हमें कहना क्या है?॥

ऐसी नगरी, फिर राज-महल; किसका ? प्रसिद्ध--राजेश्वरका ।
देवेश्वर का, लोकेश्वर का; सर्वेश्वर का, योगेश्वर का ॥
अनुपम वितान, अद्भुत-महान; अविगत-परिणय-उत्साह हुआ।
वैदिक-विधान से यथा समय; "अर्जुन-भद्रा" का व्याह हुआ ॥
जिस भक्ति-पक्ष की महिमा का; निगमागम पार न पाते हैं ।
उस भक्ति-पक्ष पर, जगत्पूज्य; भिक्षुक को पूज्य बनाते हैं ॥

वहां हुए वन--वासके; पूरे बारह वर्ष ।
कृष्ण--सुभद्रा--पार्थ तब; गमने देश सहर्ष ॥

सादर--सप्रेम--श्रद्धा--समेत; पाण्डव-गण वदन निहार रहे ।
श्रीनन्द नँदन की बार बार; सुन्दर आरती उतार रहे ॥
मानों दरिद्र लक्ष्मी पाकर; उल्लास--विनोद मनाते हैं ।
या निर्बल बल--धर--बल पाकर; प्रभु--वर पर बारी जाते हैं॥
जयकारों से, शुभ हारों से; भक्ति--मय--कीर्त्तन गाते हुए ।
मोहन को लाये धर्म भवन; पाटम्बर रुचिर बिछाते हुए ॥
केशव की चरण--वन्दना कर; सिंहासन पर बिठलाते हैं ।
षोडस प्रकार पूजन करके; भक्त--जन प्रार्थना गाते हैं ॥

गायन

अगर भक्तके भाव, भाये न होते ।
तो तुम "भक्त-भावन" कहाये न होते ॥
कहीं भक्तकी, जो निभाई न होती-
तो हम तुमसे, आशा लगाये न होते ।
कहां तक कोई, ज्ञानसे पार पाता-
जो यह भक्तिके द्वार पाये न होते ॥

न छुटते अय "गोविन्द" "शैलेन्द्र" यमसे,
जो यह गीत उनको सुनाये न होते।

विप्र रूपधर एक दिन; पावक पहुँची आय।
भरी सभामें इस तरह; बोली हाहा खाय॥
हे शरण-पाल, हे सत्य-पाल; हे धर्म-राज, शरणागत हूँ।
हे जगती पति-हे राधा पति; जगपति-रखिये पत, बेपत हूँ॥
दीनेश! 'मरुत' नामी नृपने; इस कदर आहुती कर डाली।
मेरी ताकत, बल, तेज, शक्ति; है रग रगसे बिलकुल खाली॥
इस दुख की दवा ढूँढ़ने को; द्वारे द्वारे चिल्लाई हूँ।
होकर निराश सब तरफ़ोंसे; अब धर्म-सभामें आई हूँ॥
जो आन बान हो उहदेकी; तो इस दुखनी पर आन करो।
बलिदान करो मोह और स्वार्थ; इस अबलाको बल-दान करो॥
कहा पार्थने, ख़ौफ़ तज; वर्णन कर सब हाल।
जीवित हैं संसार में; मां कुन्ती के लाल॥
प्रण है केवल हम लोगों का; दुखियों का ठेका लेनेका।
दुखियों के लिये पाण्डवों को; ग़म नहीं जान दे देने का॥
पांचों भाई वंश के सहित; बलि-वेदी पर चढ़ जायेंगे।
तन मन देकर, धन जन देकर; पर तेरा कष्ट मिटायेंगे॥
पावकने उत्तर दिया;—"सुनिये अर्जुन वीर।
कदली वनके भक्ष्य से; होगा स्वस्थ शरीर॥
जो आप हमारे साथ चलें; और कदली-वनमें जाने दें।
उस वनके माली लोगों से; रक्षा कर भोजन पाने दें॥
तो दीन-बन्धु, मैं निरी दीन; वे शुभा स्वस्थ हो जाऊँगी।
ईश्वर आपकी करे रक्षा; मैं आज़ीवन यश गाऊँगी॥

पार्थ कृष्ण दोनों हुये; चलने को तैयार।
कदली-वनमें एकाएक; हुआ अग्नि-सञ्चार॥



वे हरे भरे पल्लवित वृक्ष; सूखे काठ से जलाने लगी।
फूलों की सुन्दर कलियों की; घड़ियोंमें खाक उड़ाने लगी॥
यह दशा देखकर माली गण; भागे सुरेश के पास गये।
इन्द्र की आज्ञा पाते ही; घन घोर मेघ बरसने लगे॥
लेकिन उलटा उस पानीने; तैलका पलट कर काम किया।
कुछ घड़ियोंमें, उस पावकने; उस वनका काम तमाम किया॥
जितने पक्षी या जानदार; थे वे सब जलकर ख़ाक हुये।
दानव, पिशाच जलमरे सभी; तरफ़न जीव ग़म नाक हुये॥

उनमेंसे एक निशाचर; "मय दानव" चिल्लाय।
पार्थ कृष्णके चरण पर;, गिरा शरणमें आय॥

भगवन्, भीरका मारा हूँ; यह महा भीर हरिये हरिये।
हे दया—धाम हे दया—मूर्ति; दीन पर दया करिये करिये॥
जो आज अग्नि के पञ्जे से; भगवन्—जीवन पा जाऊँगा।
तो किसी रोज़ मैं भी केशव; नाथ के काम आ जाऊँगा॥

मयदानवकी विनय पर; मुदित हुये भगवान।
शरणागत रखकर किया; जीवन-दान-प्रदान॥

इतने में एक नागनी भी; उड़ गई शीघ्र नभ—मण्डल में।
पार्थने बाँणका निशाँ लगा; बस काट दिया उसको पलमें॥
कर दिये ख़ाक फल फूल वृक्ष; और पानी सारा भाप किया।
बरसों की भूखी पावकने; वह सारा जंगल साफ़ किया॥
जब अघा चुकी आनन्दित हो; लाख ही वार आशीश दिया।
पार्थके वास्ते आकाशी; यक वाहन श्वेत प्रदान किया॥

कुछ दिन वहां निवास कर; द्वारिकेश सुख-धाम।
धर्मराज से बिदा हो; गये द्वारिका—धाम॥

नारद ने एक रोज़ जाकर; केशव को स्वर्गिक—फूल दिया।
माधव ने उसे सहज ही में; रुक्मिणी प्रिया के भेंट किया॥
"सतभामा" इसपर जलभुन कर; अपनी इतनी समझी हेटी।
खाना, पीना, शृङ्गार त्याग; झट कोप-भवन में जा लेटी॥
यह मान माननी का सुनकर; मन मोहन उसे मनाने लगे।
रस—रंग—तरंगित बातों से; रस—राज सु—रस बरसाने लगे॥
"ओ हो! क्या चारु—चन्द्रिकाने; यह काली चादर ओढ़ी है?।
हैं, हैं, किस विषम—वेदना में; लालिमा उषः ने छोड़ी है?॥
क्या चन्द्र-मुखी पर ओस पड़ी?; या चपला पर जञ्जीर पड़ी।
मृग-लोचन हुए उनींदे क्यों? कमला क्यों आज अधीर पड़ी॥

सुख-सदना आज दुखी कैसी ? हँस मुख क्यों आज बेरुख़ा है?।
प्यारी भद्रे ! भामे ! बोलो; इस उलझनका कारण क्या है?॥"

" सतभामा " कहने लगी–" रहने दो, गोपाल ! ।
खूब समझमें आचुकी; यह नाटक की चाल ॥

" मोहन, नटवर, रस-राज, कृष्ण; जन्मसे मिले हैं नाम तुम्हें ।
फुसलाना और रिझा लेना; है बाँय हाथ का काम तुम्हें ॥
रट रहीं गोपियां आज तलक; कह कर मोहन ! बेदाद तुम्हें ।
यह हाव-भाव वाले नख़रे; हैं छुटपन ही से याद तुम्हें ॥
भूल कर कहीं आनिकले हो; इस जगह कहां मृग-नयनी है ? ।
भद्रा, भामा है और कहीं; यह तो भगवान ! टहलुनी है ॥
शायद कुछ उलझनमें मन है; इस ओर भूलसे आये हो ॥
प्रियतमा वहीं पर पौंढी है; जिस जगह फूल दे आये हो ।"

" मदन–मान–हर " ने कहा–" अरी माननी ! मान ।
नाकुछ सहज गुमान पर; समझ गई अपमान ॥

मालूम न था, अनुकूल-भाव; द्वेष का मूल कह लायेगा ।
प्रतिकूल–भाव प्रकटायेगा; वह फूल–भूल कहलायेगा ॥
मानिन ! यह मान-भाव छोड़ो; जो चाहो–नेछावर करदूँ ।
कह दो तो फूल–बाग़ ही को; फूलके साथ हाज़िर करदूँ॥"

इस प्रकार दे सान्त्वना; गये पार्थके धाम ।
प्रेम मिलन पश्चात् प्रभु; यों बोले घनश्याम ॥

बोले-"भैया भावजके हित; थोड़ा सा कष्ट उठाना है ।
लाना है"गन्धराज"कल तक; उस वन तक तुमको जाना है॥"
आज्ञा-मात्रके इशारे पर; वे कृष्ण–दास रण–रंगी थे ।
उस गन्ध-राज-वनके रक्षक; श्रीराम-दास बजरंगी थे ॥

पार्थने कहा-"अये बागवान !; माधवने मुझे पठाया है ।
एवं तेरे इस उपवनसे; वह गन्धराज मँगवाया है ॥
आज्ञा दे–जल्दी जाना है; मैं उपवनके अन्दर जाऊँ ।
ले जाऊँ, फूल तोड़करके; स्वामी का हुक्म बजा लाऊँ ॥"
क्रोधित हो, पवन-पूत बोले-"कर होशमें बातें मतवाले ! ।
अंजनी-लाल-बजरंगी हैं; इस राम–बागके रखवाले ॥
क्या कहता है!आया है कहां!;आख़िर तेरा ख़याल क्या है ? ।
उन धनुर्वीरके मालीसे; मूरख ! तेरा सवाल क्या है ? ॥"

कहा पार्थने–क्या कहा–"धनुर्वीर रघुवीर ।
इसी शान पर जल उठा; भट पार्थ का शरीर ॥

ज़ाहिर है, जैसे धनुर्वीर; बलवीर राम कहलाये हैं ।
नाकुछ समुद्र बँधवाने को; बन्दर–भालू बुलवाये हैं ॥
यदि यही काम मेरा होता; तो उदधि पसीना कर देता ।
भू-मण्डलसे आकाश तलक, बाणों का ज़ीना कर देता ॥
एक ही बाणमें लंका क्या !; चौदह ही लोक डाट देता ।
उस पुलकी कितनी हस्ती थी; सातों ही सिन्धु पाट देता ॥"

पारथके यह शब्द सुन; बोले पवन कुमार ।
" बस चुप रह,ख़ामोश हो;अये अज्ञान गँवार ! ॥

जो राघवेन्द्र की इज्ज़तमें; कोई दुर्वाक्य निकालेगा ।
तो एक तमाचेके मारे; मुँहमेंसे लोहू डालेगा ॥
फूल की जगह, इस हड्डीके; यह फूल पड़े रह जायेंगे ।
वे फूल मँगाने वाले फिर; मृत–फूल उठाने आयेंगे ॥
हां, यदि साहस या हिम्मतहो; सो आज बानगी दिखलादे ।
तू अपनी शक्ति प्रकट करले;मेरा प्रताप–बल अज़माले ॥"

कहा पार्थने—"सिन्धु तक; चलो साथ हनुमान ! ।
किस जौहरसे भरे हैं; पार्थ—वीरके बाण ॥

जो मेरे बाण—सेतुको तू; अपने भारसे तोड़ देगा ।
तो केशव की सौगन्ध करूँ; पारथ भी प्राण छोड़ देगा ॥
लोकके लिये यह सम्मति है; प्राणों की शर्त्त हमारी है ।
श्री राम—कृष्ण दोनोंमेंसे; कौन सा श्रेष्ठ अवतारी है ? ॥
एक की आज बलि होनी है; भावीके लिये सुगमता है ।
बजरंग-पार्थ की शर्त्त नहीं; श्रीराम-कृष्णकी समता है ॥
आपसमें यों बाज़ी लेकर; दोनों भट गये समन्दर पर ।
उस महावीरने छोड़ दिया; बाणों को एक बराबर कर ॥
बाणों बाणोंसे बाण—पाट; उस बाण—वीरने काट दिया ।
पुल की चौड़ाईसे तिगुना; वह पाट घड़ीमें पाट दिया ॥
यह करामात पार्थ की देख; अचरजमें आये बजरंगी ।
अपनी महिमा दिखलाने को; उत्तर—दिश धाये बजरंगी ॥
योजन हज़ार की देह धार; विकाल वि—भेष बनाया है ।
पृथ्वीसे नभ तक वही रूप; पर्वताकार दरशाया है ॥
प्रति रोम पहाड़ बांध रक्खे; माथे लाखों पर्वत धारे ।
हाथों पर, एवं कन्धों पर; थे बगलोंमें गिरि—वर सारे ॥
फिर राघवेन्द्र, शेषावतार; श्री लषनलाल का ध्यान किया ।
एक ही घड़ीमें भटवरने; उत्तराखण्ड मैदान किया ॥

कूद वहांसे सिन्धु पर; गरजे पवन—कुमार ।
सहमे पारथ वीरभी; यह दुर्वेश निहार ॥

हो गईं बन्द आँखें उनकी; श्री यादवेन्द्र को चिल्लाये ।
श्री राघवेन्द्रकी जय कह कर; अञ्जनी लाल भी किलकाये ॥

श्री राम-श्याम के भक्तों में; भावना-मात्र की खटपट है ।
लेकिन भक्तों की खटपट का; संकट-मोचन को संकट है ॥

ज्यों ही पवन कुमार ने; डाला पुल पर भार ।
चर्राया वह सेतु सब; फटने लगी दरार ॥

वे भक्त-वत्स्य उस समय भला; किस तरह मौन रहसकते हैं ।
दोनों समान के सेवक भी; अपमान नहीं सह सकते हैं ॥

गायन

लरे गजेन्द्र ग्राह दोउ, अपने उछाह भरे;
बिसरे जग नाह पै वाहन समीर को ।
बाजीं बदें बेटा बापु; हरी नरहरी होत;
कोऊ का करितौ जो न धरते सरीर को ॥
हाँक देत बाँकरौ पै साँकरौ सलोने घर;
आकरौ कड़ौ जू अब आवनौ अखीर को ।
लाख विपरीत परे, नीति रीति एई सदा;
भगतन कौं भीर, पै पीर यदुवीर को ॥

शीघ्रातिशीघ्र यह सोच वहीं; पुल-रक्षक लीलाधार बना ।
अञ्जनी लाल का भार पड़ा; उस ओर "कमठ-अवतार" बना ॥
दोनों भक्तों का कठिन–भार; भक्तेश की छाती सहने लगी ।
जगदाधार की पीठ में से; लोहू-की धारा बहने लगी ॥

चकित चतुर्दिश देखने; लगे वीर बजरंग ।
अंग अंग ढीले हुए; पानी हुई उमंग ॥

इस अमित-भार पर धरणी-धर; शेष भी न थिर रह सकते हैं ।
त्रैलोक्य–भार त्रैलोकी में; त्रैलोक–धार सह सकते हैं ॥

ऐसे ग़मपर ग़म-ख्वार बनें; कृष्णके सिवा किसकी ग़म है ?।
इस दम-हम-दम बनकर, दम दें; नाथ के सिवा किसकी दम है ?॥

कूद पड़े झट सेतु से; अञ्जनि--पूत--सशंक ।
भीर-भ्रान्ति-भव-भय-हरण; प्रकटे भक्त-मयंक॥

प्रण-वीरों के प्रण--रखवारे; या प्रण--धारन हारे आये ।
प्रभु क्रीट--मुकुट वारे आये; या मोर--मुकुट वारे आये ॥
रसिकोंके रसिक-राज आये; दुखियों के सुख-आश्रम आये ।
भक्तों के भक्त--वत्स आये; पुरुषों के पुरुषोत्तम आये ॥
कमलोंमें कमला-पति आये; रघु-कुल-यदु-कुल-दिन कर आये।
सीता या रुक्मिण-पति आये; धनु-धर या मुर्लीधर आये ॥
प्रेम की पाश में फँसे हुए; निर्गुण--सच्चिदानन्द आये ।
हनुमत के रामचन्द्र आये; अर्जुन के कृष्ण चन्द्र आये ॥

एक रूप, दुहरी प्रभा; एक देह, दो नाम ।
कह "विनीत""शैलेन्द्र" तू; जयति राम-घनश्याम ॥

गायन

एकै अङ्ग राज--भाव, एकै नट--राज भाव;
सोहै बैजयन्ती--वन--माल उरझन है ।
रोस--रस--राते--मौन--मन्द मुसकाते नेकु;
क्रीट--कलगीन--मोर--पंख--बिरचन है ॥
धनुष सँभारे धारे, चक्रपानि कांछे काछ;
तून पिछवारे आगे मुरली लसन है ।
एकै रूप कौशल औ बृज कौ सिंगार साजे;
एकै तन राजे राम-श्याम की फबन है ॥

"त्राह त्राह कर भक्त-वर; गिरे चरण लपटाय।
रूप-सुधा-रस-पान कर; मन-मानस न अघाय॥

गायन

बन्दिय राम-श्याम इक बरन।
कौसल-पति, बृज-पति दशरथ-सुत; नन्द-नन्दन जग-भरन॥
मैथिल-तिय-रुचि पन-राखन हित; व्रज-जुवतिन-मन-हरन।
मोदक-प्रिय, माखन-रत; भावन, धनुर्धीर, गिरि-धरन॥
धनु-भंजन सिय-नाथ, दुष्ट-दल-दलन-रुक्मनी-रमन।
खल-सुबाहु-हन, अका-बका-सुर--कंस--केशी--दमन॥
रावन-रिपु शिशुपाल-शत्रु हरि कृत-द्वापर-अवतरन।
जन "विनीत" नवनीत कमल-पद देहु दोऊ सरन॥

सेवक होकर हा हा! भगवन्!; स्वामी का रुधिर बहायें हम।
यदुराज फोड़ दो यह आँखें; अब किससे नज़र मिलायें हम॥
दावा है चरण-चाकरी का; प्रभु को यह कष्ट दिलायें हम।
पद-रज के नीच टहलुवे हैं; पर नंगे पैर बुलायें हम॥
ज्ञान का मान बल का गुमान; आपसी वैर, प्रभुपर संकट।
ओ नाथ! जहाँ जलमरें दुष्ट; बतला दो वह हमको मरघट॥
हा हा! त्रैलोक-धर के सेवक, अब तक न उन्हें पहिचाने हैं।
ओ दैव! एक ही सूरज के; अब तक न रूप भी जाने हैं॥"

भक्तों की इस विनय पर, द्रवित हुए भगवान।
बोले-"भैया! हो हमें; दोनों एक समान॥

तुम दोनों को अभिमान न था; मेरी अनन्यता का बल था।
विश्वास हमारे ऊपर था; पर हृदय तुम्हारा निश्चल था॥

मेरे बल और भरोसे पर; तुम दोनों ने प्रण ठाना था।
पर "राम-श्याम" का असल तत्त्व; आज तक नहीं पहिचाना था
है यद्यपि यही अनन्य-भाव; लेकिन कुछ ग़लत् राह होकर।
ज्ञान की ओर को जाते हो; वास्तव में ज्ञान-मार्ग खोकर॥
सच्ची अनन्य-गति यह समझो; जो भक्त स्वरूप मानता हो।
सम्पूर्ण सृष्टि, अवतार सभी; उस की ही मूर्त्ति मानता हो॥
वाराह, कमठ, नरसिंह, कच्छ; बनने में जिन को खेद नहीं।
स्मरण रहे, हैं वही एक; श्री राम-श्याम में भेद नहीं॥

ऐसे अवसर पर न जो, देता मैं आधार।
तो दोनों में किसी का; हो जाता संहार॥

संहार भक्ति के बल पर था; वह भक्ति हमारे बल पर थी।
सब हार जीत यश, अपयश की; पोटली हमींपर निर्भर थी॥
हनुमत जाओ, पारथ जाओ; अविचल-अनन्य-गति भागी हो।
"सर्व-मय" समझते हुए हमें; भाव-मय-अटल अनुरागी हो॥"

इतना कह केशव हुए; तत्क्षण अन्तर्द्धान।
गले परस्पर मिल रहे; पार्थ तथा हनुमान॥

वात्सल्य-भाव को सोच सोच; दोनों जन अश्रु बहाते रहे।
पुलकित हो कर लीलाधरकी; लीला-गाथाएँ गाते रहे॥
प्रेम से परस्पर हिल मिलकर; फिर अपने धाम सिधाये हैं।
अर्जुन वह गन्धराज लेकर, प्रभुकी सेवा में आये हैं॥

भक्त-वत्सने भक्तका; किया पूर्ण सन्मान।
दया-दृष्टि कर दासपर; बोले--दया निधान॥

"अर्जुन! मेरे प्यारे अर्जुन! तुम भक्त--रूप अवतारे हो।
भक्तिके मूल-आधार हो तुम; प्रिय! सच्चे सखा हमारे हो॥"

पार्थ ने कहा-" हे जगन्नाथ !; क्यों नाहक हमें बढ़ाते हो? ।
प्रेम के प्रमोदों में पड़कर; तिल को पहाड़ ठहराते हो ॥
मैं उस समुद्र का घोंघा हूँ; जो असंख्यात रत्नाकर है ।
मैं उस सृष्टी का एक कण हूँ; जिसमें अनगणित चराचर हैं ॥
अपनी माया बल लीला से; दासों से काम कराते हो ।
कर्त्ता-धर्त्ता हो स्वयं, किन्तु; भक्तों का मान बढ़ाते हो ॥
करुणानिधि!मुक्ति न स्वर्ग मिले;केवल श्रद्धाकी शक्ति मिले ।
हो जन्म किसी भी जीवन में;प्रभुकी अनुपायन-भक्ति मिले।"

इन शब्दों से और भी; द्रवित हुए भगवान ।
बोले-"अर्जुन ! तुम हुए; मेरे अंग समान ।

अपनी लीला का आगे जो; अद्भुत रहस्य प्रकटाना है ।
उस में सहायता लेने को; अब सखा-भाव दिखलाना है ॥
अये पार्थ ! हमारी लीला का; भावी में तेरा द्वारा है ।
तुझ को मेरा, अथवा मुझ को; तेरी शक्ति का सहारा है ॥ "

रसिक-शब्द रस-राजके; सुनकर रसिक-समाज ।
कहे प्रेम के साथ में; जय जय यादवराज ! ॥
गुप्त-भेद-बलभक्ति दे; बिदा किया घनश्याम ।
लेती है यह लेखनी; क्षणिक यहाँ विश्राम ॥

शुभमस्तु ।

इति धर्माश्वमेध ।



सभापर्व–अश्वमेध.

एक समय आनन्द से; बैठे थे घनश्याम।
द्वारपाल ने वहीं पर; जा कर किया प्रणाम॥

"महाराज ! आज द्विजराज एक; श्री पति के द्वारे आया है।
एवं कैदी राजाओं का; नाथ पर सँदेशा लाया है॥"
यदु पति बोले-"भेज दे उन्हें; आज्ञा पा, दूत लौट आया।
आदर-समेत उस ब्राह्मण को; द्वारिका-नाथ तक पहुँचाया॥
यदुपति ने अर्द्धासन दे कर; आदर से उस को बिठलाया।"
फिर हाथ जोड़ कर ब्राह्मण ने; आने का कारण समझाया॥
"यदुनाथ ! द्वारिका नाथ ! देव !; हे जगन्नाथ ! सर्वेश ! प्रभो !।
जिन चरणोंके आश्रयमें हैं; ब्रह्मा–विष्णु और महेश प्रभो!॥
उन निर्भयकारी चरणोंमें; कुछ हाल सुनाने आया हूँ।
हे देव ! विवश बेचारोंका; नाथ तक सँदेशा लाया हूँ॥

मगध राजने यज्ञमें; जीते थे महिपाल।
उसने उनको आज तक; रखा जेलमें डाल॥

यद्यपि यह राज-नीति-मत है; नैतिक–बन्दीसे काम न ले।
लेकिन उसकी यह इच्छा है; ऐसा कैदी आराम न ले॥
यक पहर रातसे दीन–बन्धु !; छः पहर काम करवाता है।
दो पहर तथा सन्ध्या को वह; सूखा दाना दिलवाता है॥
कुछ नियम नहीं,कुछ म्याद नहीं;आज्ञा ही"रूल"कहाता है।
कौड़ीके कर्मचारियोंसे; उनको कोड़े लगवाता है॥

भूपोंका आधा वज़न रहा; हे दीन बन्धु ! घटते घटते ।
पड़ गये फफोले हाथोंमें; रस्सियां–मूँज बटते बटते ॥
प्रायश्चित करना चाहते हैं; "हा हा" करके चिक्कार गये ।
माफ़ी माँगी–पर मिल न सकी; अनशन-व्रत करके हार गये ॥
राज्यसे गये, शक्तिसे गये; नाथसे अख़ीरी आशा है ।
करुणा कर हम आश्रय आये; उन दासोंकों क्या आज्ञा है?॥"

करुणा कर-करुणा-कथा; सुन बोले-"द्विजराज !–
आती है ऐसी जगह; लज्जा को भी लाज ॥

अपराधी को क़ैदी करना; केवल यह आशय रखता है ।
उसकी वह प्रकृति छूट जाये; सब ताड़न इस पर रहता है ॥
पर वह कैसा न्यायालय है !; मुद्दई मुद्दायले रोते हैं ।
इज्ज़त भी दोनों खोते हैं; बात भी हाथसे खोते हैं ॥
केवल शब्दों की तुलना पर; इन्साफ़ चुकाया जाता है ।
उस जगह न्यायके पर्देमें; व्यापार चलाया जाता है ॥
जुर्मानेमें यह अच्छा है; आधा आधा हिस्सा करदे ।
आधा पीड़ित को दे डाले; आधेसे राज–कोष भरदे ॥

गायन

जिस जगह पर खुद गरज़ सरकार है ।
घूँस ख़ोरी का गरम बाज़ार है ।
इस क़दर पैसे की लालच है जहां;
हाथ फैलाये दरो दीवार है ।
हाकिमों को चाहिये पहिले नज़र;
ग़ैर को इन आम की दरकार है ॥

न्याय बिकता है जहां रुपयों की तोल;
उस जगह उम्मीद ही बेकार है ॥

विप्रराज ! उन सबों को; दे देना विश्वास ।
आकर उन्हें छुटाऊँगा; होजायें न निराश ॥"
इस प्रकार समझा उसे; बिदा किया भगवान ।
अश्वमेध का अब यहां; लिखता हूँ आख्यान ॥
पाण्डव–वीरोंका यहां; बीत रहा सुख–काल ।
प्रजा शान्ति-गुण-धर्म-प्रिय;न्याय–धाम नर–पाल ॥
एक रोज़ देवर्षि भी; आपहुँचे दरबार ।
धर्म राजने सब तरह; किया मान–सत्कार ॥

नारद बोले–"हे धर्मराज !; मैं इन्द्र–लोकसे आया हूँ ।
पाण्डुकी ओरसे सुर–पतिका; सन्देशा देने आया हूँ ॥
यद्यपि वे स्वर्ग–लोकमें हैं; लेकिन स्वर्गिक–अधिकार नहीं ।
देवोंमें कोई मान नहीं; दरबारोंमें सत्कार नहीं ॥
इन्द्र का हुक्म है–धर्म राज; जब राज–सूय करवायेंगे ।
तब पाण्डु–राज भी निर्विवाद; अधिकार सभामें पायेंगे ॥
इस लिये हमारी सम्मति है; इसका अवश्य प्रतिकार करो ।
हे पाण्डु–पूत ! हैं पतित–पितृ;उनका अवश्य उद्धार करो ॥"

सम्मति श्री देवर्षि की; की सबने स्वीकार ।
मीठे मीठे वचन में; कहा " धर्म–अवतार ॥

वह धनी नहीं है; निर्धन है; जिसने सुपात्र को दिया नहीं ।
वह करना क्या!;ना करना है;जो पुरुषोंके हित किया नहीं ॥
पहिले तो काम पिता का है; फिर आज्ञा नाथ तुम्हारी है ।

पर बनवारीके हाथोंमें; सारी अभिलाष हमारी है ॥
यदि केशव की इच्छा होगी; तो वे अवश्य आजायेंगे ।
हम सब स्वतन्त्र होजायेंगे; वे ही सब भार उठायेंगे ॥
इसलिये प्रार्थना है, भगवन् !; तैयारी अभी न कीजेगा ।
सेवकके लिये कष्ट सह कर; कृष्ण को निमन्त्रण दीजेगा ॥"

नारदने प्रस्ताव को; लिया हर्षसे मान ।
तथा द्वारिका-धाम को; शीघ्र किया प्रस्थान ॥
यादव-वंश-समाजमें; ब्राजे थे यदुराज ।
झुका रहे थे सैकड़ों; ताजदार-सर ताज ॥
नारदजीने वहीं पर; दिया निमन्त्रण जाय ।
धर्मराज का नाम पढ़; छाती लिया लगाय ॥

निमन्त्रण-पत्र.

जय सिद्धि श्री द्वारिका-धीश; अवनीश, अधीश, शान्ति-कारी ।
असुरारी, गर्व--प्रहारी जय; मङ्गल--कारी, प्रभु बनवारी ॥
श्री मुकुट महीपति उग्रसेन; शुभ दया-दृष्टि जन पर कीजे ।
श्री राज-सभा सरदार वीर; सादर जुहार स्वीकृत कीजे ॥
रावरे चरण की दाया से; सेवक-गण कुशल-पूर्वक हैं ।
एवं प्रभु-कुशल-क्षेम-कांक्षी; श्री कुशल-मूर्त्तिके इच्छुक हैं ॥
पश्चात् निवेदन दीन-बन्धु !; यह चरणोंमें पहुँचाते हैं ।
आपके सहारे सेवक-गण; शुभ-अश्वमेध रचवाते हैं ॥
दे दिये निमन्त्रण-पत्र नाथ !; लेकिन इतनी तैयारी है ।
सारी यज्ञ की वस्तुओं में; हलदी की गांठ हमारी है ॥

केवल है,उन चरणोंका बल; जिस बल पर सृष्टि सँभाले हो।
हे दया-धाम ! यह याद रहे; इस व्रतके तुम रखवाले हो॥
निश्चय है, सच्ची आशा है; जो विरदावलि गाथों में है।
पाण्डु की, पाण्डु के बेटों की; यह लाज उन्हीं हाथों में है॥
यदि राज्य दिलाया है भगवन् !; तो राज्योत्सव करवाइयेगा।
सारी शोभा श्रीमान् की है; हे नाथ ! शीघ्र ही आइयेगा॥

कृष्णचन्द्र कहने लगे;–"कौन करूँ तदबीर ?।
एक समयमें काम दो; आये मेरे तीर॥

आज ही मगध से एक विप्र; मेरे लेने को आया है।
आज ही हस्तिनापुर में भी; राजेश्वर ने बुलवाया है॥"
उद्धव बोले–"हे महाराज !; इच्छा सब तरह तुम्हारी है।
मेरे विचार में तो पहिले; यज्ञ की उचित तैयारी है॥
प्रारम्भ हो चुका उत्सवका; पर अभी दिग्विजय हुआ नहीं।
अपने परोक्ष में धर्मराज; शायद हो जायँ परास्त कहीं॥
दूसरे दिग्विजय से पहिले; यज्ञ का रचाना मुश्किल है।
यदि एक बात भी निभ न सकी, तो सारा उत्सव निष्फल है॥"

केशव भी कहने लगे–" सजो वहींका साज।
यज्ञ सँभाले सधेंगे; एक पन्थ दो काज॥
चले सकल परिवार–युत; समारोहके साथ।
धर्मराज के यहां पर; पहुँचे यादव--राज॥"
"श्रीपतिसे कर जोड़कर; बोले धर्म–नृपाल।
महाराज को ज्ञात है; इन्द्रप्रस्थका हाल॥

प्रण कर बैठा हूँ, प्रण–पालक; केवल आपके सहारे पर।
यह पांचों पुतले हाज़िर हैं; ले चलिये, इन्हें इशारे पर॥

संकल्प और तुम तक पुकार; कर देना काम हमारा है।
सो हम दोनों से निवट चुके; अब आगे काम तुम्हारा है॥"

यादवेन्द्र कहने लगे-"प्रथम विजयको जाव।
राजाओं को जीतकर; धर्म-ध्वजा फहराव॥

पीछे जो काम उचित होगा; उसका उपाय बतलाऊँगा।
जिस तरफ़ ज़रूरत समझूँगा; मैं स्वयं विजय को जाऊँगा॥"
द्वारिका नाथकी आज्ञा से; वीरों का विजय-निशान उठा।
बलधर प्रत्येक प्रधान उठा; प्रत्यक्ष-वीर-अभिमान उठा॥
सेना के चार विभाग किये; चारों सेना-पति किये गये।
चारों बलवीरों को समान; प्रान्त भी चार दे दिये गये॥
केशव को शीश झुका सबने; गौरी-सुतका आह्वान किया।
रण-धौंसों पर चोटें देकर; रण-धीरों ने प्रस्थान किया॥
पूर्व को भीम ने गमन किया; उत्तर को अर्जुन धाये हैं।
पश्चिम-दक्षिण की विजय हेतु; सहदेव-नकुल पहुँचाये हैं॥

लिखा जाय हर विजयका; यदि थोड़ा ही सार।
एक "महाभारत" अलग; हो जाये तैयार॥
अस्तु; बढ़ायेंगे न हम; उन सबका विस्तार।
महा-विजय के बादमें; लौटे पाण्डु-कुमार॥

झण्डे चढ़ गये दिशाओं में; अधिकार हुआ दिक्पालों पर।
सिक्का चल गया विदेशों में; कर बांध दिया नर-पालों पर॥
बल वीर, धीर योधा सारे; हाज़िर हैं नृप की आज्ञा में।
भू-तल भर के नरेश आये; श्री धर्मराज की सेवा में॥
यह महा सफलता देख देख; तांता बँध गया बधाई का।
पर अनुष्ठान कुछ बाक़ी था; उन लीलाधर यदुराई का॥

राजाओं को देखकर; राजेश्वर सुख--मूल ।
बोले--"भैया ! है अभी; महा--विजयमें भूल ॥

इस महा--यज्ञकी महा-विजय; उस रोज़ कहाई जायेगी ।
जिस रोज़ बधाई भूतल पर; सर्वत्र बजाई जायेगी ॥
यद्यपि सुलझाव हो चुका है; पर फन्दा एक झटकता है ।
है "जरासन्ध" बलवीर शेष; वह कांटा अभी खटकता है ॥
धर्म ने कहा--"श्री यादवेन्द्र; पर्वत को धूल बना डालें ।
काटों को फूल बना डालें; फूल को बबूल बना डालें ॥
ऐसी ही विकट समस्याएँ; चौतरफ़ अनेकों घेरे हैं ।
जैसी समझो, कह दो भगवन !; हम तो आज्ञा के चेरे हैं॥"

धर्मराज की विनय पर; बोले यादव राय ।
"राजन ! उसकी विजय का; है दूसरा उपाय ॥

सेना से अगर चढ़ाई की; तो बरसों झगड़ा बिचलेगा ।
उस जगह शान्ति के द्वारा ही; काँटे से काँटा निकलेगा ॥
उस जगह भीम-अर्जुन केवल; दोनों की हमें ज़रूरत है ।
यज्ञ की पूर्त्ति उस जय पर है; उस जय की इतनी सूरत है॥"

यों कह कर प्रभु चल दिये; भीमार्जुन के साथ ।
जन-हित याचक-भेष धर; स्वयं लक्ष्मी नाथ ॥

साँवरे बदन पर भस्म--भास; नीलाम्बुज नभ पर साया सी ।
त्रैरेखाङ्कित-पट-तिलक-भाल; मानो त्रिगुणात्मक माया सी ॥
कफ़नी में पीताम्बर वाले; कुण्डल, दुरवेशी बाले हैं ।
घुँघराले काले बालों में; खाकी रंग के मसाले हैं ॥
लकुटी की जगह पलाश-दंड; मुरली वाले कर में माला ।
यह हरे हमारे विषय-भाव; मृग--छाला वाला बृज वाला ॥

दोनों संन्यासी लिये हुए; वह योगी–राज जा रहा है ।
मानो पावस–हेमन्त–सहित; त्यागी ऋतु–राज जा रहा है ॥

राज-द्वार पर जिस समय; जा पहुँचे राजेश ।
त्यों ही ड्योढ़ी वान ने; पहुँचाया सन्देश ॥
सुनते ही संवाद को; जरासन्ध सरदार ।
ले पहुँचा दरबार में; सादर चरण पखार ॥

पूजन कर हाथ जोड़ बोला;–"भगवन् ! सौभाग्य हमारे हैं ।
जो इस दुर्जन की कुटिया में; साधू-जन आज पधारे हैं ॥
परिवार-सहित जन हाज़िर है; हे तेज-मूर्त्ति आज्ञा क्या है? ।
हे तपोनिधे ! मुँह से बोलो; दास के योग्य सेवा क्या है ? ॥

योगिराज कहने लगे–" करले नृपति विचार ।
पीछे देने का वचन; करना अंगीकार ॥

"कह देना"-एक फूल समझो; फिर"करना"वज्र बराबर है ।
राजन् ! तुम स्वयं जानते हो; कहने–करने में अन्तर है ॥
कह कर,यदि पीछे कर न सके;तो फिर कलंक के योग जुड़ें।
इस लिये नीति उत्तम यह है; गूलर फूटे-ना पंख उड़ें ॥
शिव, हरिश्चन्द्र, बलि या दधीच; जो दान वीर कहलाये हैं।
आन में ज़रा से होठ हिले; दान में पसीने आये हैं ॥
इस लिये स्वयं निश्चय करले; घर में सब को सम्मति ले ले।
जो सहमत हो जायें परिजन; तो सन्तों को भिक्षा दे दे ॥"

जरासन्ध कहने लगा–भरे मान उत्साह ।
"दानी एवं शूरमा; लेते नहीं सलाह ॥

"दानी" करोड़-पति क्षण भरमें; रह जाये कफनी सेली पर।
शूरमा ज़रा सी बात पड़े; रख बैठे शीश हथेली पर ॥

अपने तन-मन-धन-जन-प्रणपर; है सभी भाँति अधिकार मुझे।
जो इच्छा प्रकट कीजियेगा; आत्मा से है स्वीकार मुझे ॥"

जो कहना--कर दिखाना; जरासन्ध का काम ।
बड़बोलों में ही नहीं; दानवीर का नाम ॥

गायन

कथनी कछु सी करनी कछु सी; अस ज्ञानिन सों अनज्ञानी भले।
प्रण जाय तऊ रह प्राण-रती; उन प्रानिन से बिनु प्रानी भले ॥
खन में कछु सी खन में कछु सी; अस बानिन सौं बिनु बानीभले।
मुख स्वर्ण लड़ी कर में दमड़ी; उन दानिन सों अन दानी भले।

कृष्ण चन्द्र कहने लगे--"तो सुनले राजेश ! ।
हम कोई भिक्षुक नहीं; देख हमारा वेश ॥

मैं कृष्ण चन्द्र हूँ, जिस पर तू; सत्रह हमले कर हारा है ।
यह पाण्डु-पुत्र "भीमार्जुन" हैं; जिनको आधार हमारा है ॥
यह वेष बना कर हम तीनों; दिग्विजय-निशान उठाये हैं ।
हे दान-वीर ! तेरे द्वारे; रण--भिक्षा लेने आये हैं ॥"

समझ गया कुल भेद को; जरासन्ध, नर-पाल ।
सन्यासी के भेष में; आ पहुँचा है काल ॥
किन्तु--न फड़की भौंह भी; विचलित हुई न चाल ।
हर्ष सहित उत्साह में; यों बोला नर-पाल ॥

सौभाग्य ! आज मेरे द्वारे; लक्ष्मी-पति बना भिखारी है ।
चलिये स्वामी! चलिये माधव!; सानन्द यहां तैयारी है ॥
सत्रह बार की जलन सारी; एक ही बार खो जायेगी ।
या इस मूर्त्ति के सामने ही; दास की मुक्ति हो जायेगी ॥

लेकिन तुम साधु-वेष में हो; यह पार्थ तुम्हारा चेरा है।
हाँ, भीम ज़रा समता का है; उस पर ही दावा मेरा है॥
साधू या चेरों से लड़ना; है लज्जा-प्रद बेकार हमें।
यदि भीम लड़ाई लेता हो; तो सादर है स्वीकार हमें॥

कृष्ण चन्द्र ने भी किया; इस मतको स्वीकार।
नई गदायें हाथ ले; उतर पड़े सरदार॥
लगा तार छब्बीस दिन; हुए वार पर वार।
किन्तु, न रत्ती भरझुके; समता के सरदार॥

गायन

परम हठीले गुण गौरव गर्वीले भट;
कठिन कसीले कृत कौन कहे कौन की।
हाँक देत हाँक देत टाँक देत अङ्ग अङ्ग;
भरे उमंगन भट बंग गति दौन की।
चोट पर चोट देत चोट ही ओट लेत;
जोट दार जोट भल भूले सुधि गौन की।
गिनी नहिं जात घात, गुनी नहीं जात बात;
चाल नहिं जानी जात चपल चितौन की।

अन्तिम-दिन भट-भीम पर; पड़ा एक आघात।
लौट पड़े कुछ लचकते; कर न सके कुछ बात॥
हाथ जोड़ करुणेश से; कहा भीम ने-"नाथ!।
क्या बलि देने के लिये; ले आये हो साथ?॥

लाये हो विजय दिलाने को; या यह दुर्गती कराते हो?।
शत्रु से हमें पिटवाते हो; और तुम खड़े मुसकाते हो॥

यह दशा एक घूँसे से है; कल को क्या धूल चटाओगे ? ।
हे लीलाधर ! बतलाओ तो;कब तक यह खेल खिलाओगे ?॥
मैं पिटते पिटते कुचल गया; तुम पर आनन्द बहारी है ।
मैं रोता हूँ, प्रभु हँसते हैं; इस हँसने पर बलिहारी है ॥ ”

मोहन ने हँस कर कहा—“ हो मत भीम ! अधीर ।
जीवित सुबह न जायेगा; जरासन्ध बल—वीर ॥

मैं तो केवल बल देखता था; कौन सा वीर बलधारी है ? ।
वास्तविक-शक्ति, असली हिम्मत; अब ज़ाहिर हुई तुम्हारी है॥
हो गया ज्ञात,अब कल के दिन;यह समय न फिरसे आयेगा ।
संकेत—मात्र पर चलने से; वह दो टुकड़े हो जायेगा ॥ ”

भीम सेन ने कर लिया; अपना नीचा माथ ।
पीड़ा खोई नाथ ने; रख करुणा—मय—हाथ ॥

दूसरे रोज़ दोनों योधा; फिर बढ़ कर हाथ मिलाते हैं ।
श्री यादवेन्द्र संकेतों में; तिनके को चीड़ दिखाते हैं ॥
भीम ने इशारा पाते ही; यह टाँग पकड़ कर टाँग लिया ।
दूसरी टाँग पर घुटना रख; दोनों हाथों से चीड़ दिया ॥
दोनों धड़ पड़े तड़पते हैं; लोहू की छूट फुहार उठी ।
अर्जुन—भीम के सु—कण्ठों से; यक भाव-भरी जयकार उठी ॥

करुणा—ध्वनि रनिवास में; छाई प्रलय समान ।
रानी की आवाज़ सुन; पहुँचे दया—निधान ॥

बोले—“रानी ! अज्ञान हुई; बतला तो किसे रो रही है ? ।
वास्तव में तेरी या मेरी; आख़िर क्या चीज़ खोगई है ? ॥
तन की मिट्टी, यह आगे है; जीव को कहे, तो व्यापक है ।
वह वायु—पिण्ड है वायु—मध्य; ईश्वर उसका स्थापक है ॥

तत्त्वों का खण्डन-मण्डन है; सब "सौपाधिक" की माया है ।
"भावी" का सारा नाटक है; कारण कोई कहलाया है ॥
इसलिये ज्ञान-इच्छुक-जन को; यह लौकिक-भेद नहीं अच्छा ।
रानी ! ईश्वर का ध्यान करो; निष्कारण खेद नहीं अच्छा ॥"

रानी ने उत्तर दिया;–"सुनिये जगदाधार ! ।
सम्बन्धित हैं देह से; यह लौकिक–व्यवहार ॥

मैं भली भाँति से जानती हूँ; कुल सृष्टी के कर्त्तार हो तुम ।
यह जीव खिलौने हैं, स्वामी!;सब खेलों के खिलवार हो तुम॥
जो कुछ भी हुआ, तथा होगा; वह निरुद्देश या व्यर्थ नहीं ।
प्रत्येक चरित को समझ सकें; यह जीवों की सामर्थ नहीं ॥
इसलिये नाथ ! इस दासी को, इस मद-मोह से मुक्त कीजे ।
लौकिक-सुखकी अभिलाष नहीं;केवल पद-कमल-भक्ति दीजे"

इस प्रकार कर प्रार्थना; विदुषी ने तत्काल ।
प्रिय सहदेव कुमार को; दिया चरणमें डाल ॥
यादवेन्द्र ने तिलक कर; सिंहासन बिठलाय ।
आज्ञा दे कर, क़ैदसे; राजा दिये छुटाय ॥
भीमार्जुन,नृप-गण, कुँवर; रानी दर्शकवृन्द ।
पुलकित हो कहने लगे-"जय श्री यादवचन्द्र ॥"
महा विजय कर चतुर्दिक; लौटे यादव-राज ।
समारोहके साथ में; साजा राज–समाज ॥
जल भुनकर इस विभव पर; दुर्योधन-शिशुपाल ।
लगे सोचने परस्पर; कपटी–क्रूर–कुचाल ॥

कुरुपति बोला–"यह टुकड़ख़ोर; वन गये धनी तलवारोंके ।
अफ़सोस ! कंगले भिखमंगे; सरदार हुए सरदारों के ॥

चन्देरी तथा हस्तिनापुर; भारत-नृप-मौर्य्य कहाते हैं।
पर, आज वही इनके मारे; सिर भी न उठाने पाते हैं॥
राजाओं के कर बन्द हुए; अधिकार न रहा विदेशों पर।
दाने दाने को शाह हुए; शाही आई दुरवेशों पर॥"

दुर्योधन के यह वचन; सुन बोला शिशुपाल।
"-बात बातमें है उसी; नीच कृष्णकी चाल॥

क्या करें? अगर कोई उनसे; साहस कर, लोहा लेता है।
तो वह निकाल कर नई चाल; सब गुड़ मिट्टी कर देता है॥
यदि,यह उस ओर नहीं होता; तो पाण्डव क्या!जंगलिये हैं।
कुछ भूल आपकी भी तो है; ख़ुद ही अधिकार दे दिये हैं॥
जो हुआ, हो चुका, मौक़ा है; दो दिनमें देखा जायेगा।
दिन आने दो, दिनका मारा; फिर दिनके चक्कर खायेगा॥"

प्रातकाल दरबारमें; पहुँचा कौरव-नाथ।
पर, माया से नज़र ही; बदल गई इक साथ॥

देखा-सुन्दर चौपाटी है; फिर देखा-नहर नज़र आई।
देखा-चढ़ाव, चढ़ना चाहा; पर शुरू हो गई उतराई॥
सामने सीढ़ियां नज़र पड़ीं; समझा बेहद उतार आया।
ज्यों ही पैर को बढ़ाया है; ऊपर दो हाथ उठा पाया॥
उत्तम चौपाल बढ़ा आगे; दुर्भाग्य! मगर तालाब हुई।
गिर गया उसीमें डूब गया; सारी पोशाक ख़राब हुई॥
ज्यों त्यों निकला,कपड़े निचोड़; भुतना सा वह सरदार बना।
खोल कर किवाड़ चला चाहा; पर दर्वाज़ा दीवार बना॥
कुछ आगे खुला द्वार पाया; बढ़ते ही माथा टकराया।
गिर गया उसी की ठोकर से;उड़ गये होश, चक्कर आया॥

खिड़कीमें से द्रौपदी; देख रही थी हाल ।
बोली-"अन्धे बापका; है अन्धा ही लाल ॥
अपने कुल की जो आन तजें; तो इसमें बट्टा आता है ।
वे बिना आंख के अन्धे हैं; यह आंखें ही न उठाता है ॥"
उपहास, जलन, द्वेष पर हानि;खलको और भी जलाने लगे।
दर्शक खिल्लियां उड़ाने लगे; साथी गद्दियां चबाने लगे ॥
कुरुपति बोला-"री पाञ्चाली!; इसका यदि तुझे न बदला दूँ।
दरबार आममें नंगी कर; अपनी जांघ पर न बिठला लूँ ॥
जिन पतियों पर है मान तुझे; जो उनको करूँ गुलाम नहीं।
तो आज सुना कर कहता हूँ; दुर्योधन मेरा नाम नहीं ॥"
खींच न पाये थे अभी; पाञ्चाली के तीर ।
यहां भीम के व्यंगसे; छिदने लगा शरीर ॥
भीम ने कहा-"कौरव-पति में; सच्ची पितु-भक्ति समाई है ।
वंश की आन-बापकी बान; भाईने खूब निभाई है ॥"
इतने में आये धर्मराज; बोले-"यह कौन बड़कपन है ?।
भाई के साथ हँसी करना; भलमनसी नहीं, लड़कपन है ॥
जिस घरमें हो ऐसा सलूक; वह वंश कभी ऊजड़ समझो ।
खांसी विद्रोह-मूल समझो, और हँसी वैरकी जड़ समझो ॥
"चलो बन्धु !" कह धर्म-पति; ले आये दरबार ।
उठ उठ कर मिलने लगे; बड़े बड़े सरदार ॥
धर्मने पकड़ कर बन्धु-बांह; अपने समीप ही बिठलाया ।
ज्यों शान्ति-मूर्त्तिसे मिलकर के; क्रोधावतारने पद पाया ॥
बोले धर्म-पति-"कुशल तो है; भैया ! यह काज बनाओ तुम।"
कुरु-पति बोला-"है सभी कुशल; हां घरकी कुशल सुनाओ तुम ॥"

श्रीधर्म-राज हँस कर बोले-"हम कुशल-मूर्त्तिसे लागे हैं।
आनन्द हमारा साथी है; आनन्द-धाम जब आगे हैं॥
इससे बढ़कर आनन्द-कुशल; कुरु-नाथ! और क्या बतलायें।
जिसकी "कुटिया" में दया-धाम; आनन्द-रूप केशव आयें॥"

इन शब्दोंका और भी; पड़ा उसे आघात।
मारे लज्जा-क्रोधके; कह न सका कुछ बात॥

नटवरको भला चैन कब था?; क्रोधी वानर खिजलाये बिना।
रस-राज मौन क्यों कर रहते?; रसिकोंपर रस बरसाये बिना॥
बोले-"भैया! कोई उठकर; कौरव-पति को पंखा झल दो।
गर्मी सी चढ़ी दीखती है; मुँह धोने को ठंडा जल दो॥"
यह शब्द, और वह सहज हँसी; बस एक क़हक़हा छूट पड़ा।
कुरु-पति पर मानो एक साथ; वज्रोंका जमघट टूट पड़ा॥

किन्तु, समयको देखकर; दबा गया वह जोश।
आते रहे उबाल सौ; रहा मगर ख़ामोश॥

फिर कहा धर्म-पतिने नृपसे-"राजन्! यह भार सँभालियेगा।
यह काज आपके घरका है; अपने ही हाथ बनाइयेगा॥"
कुरु-पति बोला-"आज्ञा दीजे; सारी सेवा को तत्पर हूँ।
सेनायें सब देखूँ भालूं; या अतिथों का स्वागत कर दूँ॥"

धर्म-राज कहने लगे-"सुनिये कुरु-अवनीश!।
अपने घरके काममें; बनिये कोषाधीश॥

इतना कह कर तत्काल सभी; कुञ्जियाँ सौंप दी राजा को।
कञ्चन-मणि-माणिक-रत्नों की; जोड़ियां सौंप दीं राजा को॥"
कुरुपतिने स्वर्ण ख़ज़ाने का; "शकुनी" के ऊपर भार दिया।
एवं अपने गुरुके सुत को; कुल रत्न-कोष-अधिकार दिया॥

"सौबल" चांदी-तांबे वाला; कोष का पूर्ण आभारी था।
लौहादिक जितने शेष रहे; उनका "उलका" अधिकारी था॥
दुःशासन को यह काम मिला; रासन का चिट्ठा किया करे।
जिसको जितना आवश्यक हो; उतना भोजन दे दिया करे॥
सौंपा "विकर्ण" को वस्त्र-कोष; एवं "दुमन्त" को गौशाला।
"दुर्दशन" हुआ घोड़ों वाला, और "द्विरद" गजों का रखवाला॥
सहदेव आदि भ्राताओंको; लकड़ी का जिम्मा दिया गया।
फिर दान-वीर कर्णके लिये; दान का काम ही दिया गया॥
जो जिन कामोंमें नामी था; उसको वह नाम प्रदान हुआ।
"भीम" को अन्न पर प्रेम देख; भोजन का काम प्रदान हुआ॥
दरबार सभी सज्जित करना; विद्वान "विदुर" के हाथ दिया।
पत्तलें उठाना, पग धोना; केशव ने अंगीकार किया॥

गायन

मुनिन मनाये न आये ते मनाये जमन;
जगत नचाये तिन्हें गोपिन नचाये हैं।
जाकी पद-धोवनमें भूल हू नहाये नर;
अधन नसाये सोय सदन नहाये हैं॥
सुरन लगाये भोग, योगिन लगाये योग;
तौऊ बिलगाये सोय, भीलनी भुलाये हैं।
बार बार बारी है "विनीत" "शैलेन्द्र" सोय;
भक्तनके काज आज, बारी बन आये हैं॥

विभव देख कर बढ़ चली; दुर्योधन की दाह।
लगा सोचने-"किस तरह; करदूँ ? आज तबाह॥"

बोला विनम्र हो कर पापी—"अये कर्ण ! निरादर याद रहे ।
वह लुत्फ़ इन्हें दिखलाये चलो; जिसकी जीवन भर याद रहे॥
कल ही से सारा काम काज; अपने हाथों है होने को ।
बस एक जरा सी हिकमतमें; मिट्टी कर डालो सोने को ॥"

चाण्डालोंमें मच गया; "वाह वाह" का शोर ।
पर "विकर्ण"ने बात पर; दिया काट कर जोर ॥

बोला—"महाराज ! बुरा न करो; धर्मज्ञ भूप बल-शाली का ।
क्या किया बिचारे राजाने; यह दोष तो है पाञ्चाली का ॥"
कुरु पति बोला—" राजा ही ने; यह सारा सामाँ साजा है ।
पाञ्चाली उसकी दासी है; असली काँटा तो राजा है ॥
इसलिये अगर वह नीचा हो; तो सब नीचे पड़ जायेंगे ।
काट दो; मूल को—तो सारे; फल फूल आप झड़ जायेंगे॥"

रहा अन्तमें पास वह; कुरुपति का प्रस्ताव ।
सारे कौरव गणों का; बदल गया सब भाव ॥

ज्यों ही प्रभात की किरण फटी; त्यों ही धौंसे पर चोटपड़ी ।
धर्म की सुकीर्त्ति मिटाने को; "चाण्डाल-चौकड़ी"हुई खड़ी॥
दुर्योधन हरी हरी डाली; चुपके चुपके छाँटने लगा ।
दुःशासन रासन का चिट्ठा; दुगना तिगुना बाँटने लगा ॥
दिन भर बांटा, कुछ फेंक दिया; रातको कोष सूना देखा ।
प्रात को जहां ताला खोला; पहिले दिनसे दूना देखा ॥

कहा सात्यकी—भीमने; कृष्णचन्द्रसे जाय ।
" महाराज ! विश्वासमें; खलने लिया फँसाय ॥

ऐसी फ़िजूल ख़र्चीसे तो; कल निकल दिवाला जायेगा ।
धन—पतिके ख़ास कोष का भी; पल्ला पलटा खा जायेगा ॥

कीर्ति की जगह,कालिमा-रेख;डर है-लग जाय न नाथ!कहीं।
भगवान ! सँभालो नाव आज; अब कोई भी आधार नहीं॥"

कहा नाथने-"जाव, तुम; धर्मराजके पास।
उनको धोखा दे रहा; उनका ही विश्वास॥
अस्तु, पहुँच कर भूपसे;कहा गया सब हाल।"
सुनते ही उस चाल को; सहम गये नर-पाल॥

बोले-"हा हा ! दूसरी बार; भाईसे धोखा खाया है।"
हे माधव ! हे हे माया-पति !; आपकी यहां क्या माया है?॥
भीमने कहा-" श्री महाराज; निष्कारण कष्ट उठाते हैं।
पापी तो पाप कमाते हैं; पर सन्त सजायें पाते हैं॥
ऐसी इज्ज़त, ऐसा सँकोच; प्रभु ! डाल भाड़में दीजियेगा।
इन बटमारोंसे काम छीन; दासोंसे काम लीजियेगा॥"

धर्मराज-"कहने लगे-तुम्हें पिता की आन।
करो न अपने यहां पर;कुरु-पतिका अपमान॥

क्या बुरी बात ? यदि वह धन को;बेजा तौर से उड़ाता है।
ऐसा करना तो अच्छा है; अपना ही नाम बढ़ाता है॥
करने दो, यों ही सुखी रहें; वे जले भुने बेचारे हैं।
बाल भी नहीं बाँका होगा; यदि यादव नाथ हमारे हैं॥
यदि आज वही कंजूसी कर; दीनों को दान नहीं देता।
तो बिला बहस और बिला कहे;कुञ्जियाँ अवश्य छीन लेता॥
इसलिये तुम्हें सौगन्ध भीम!;कुरु-पति का मत अपमान करो।
जो दिया गया,वह काम करो; श्री यादवेंद्र का ध्यान धरो॥"

करुणा-वत्सल समझ कर; सत्य भक्त की टेक।
अब खुद ही करने लगे; इस प्रश्न पर विवेक॥

अष्ट-सिद्धि, नव-ऋद्धि-गण; बुलवाईं भगवान ।
प्रविश हुईं वे कोष में; प्रभु की आज्ञा मान ॥

श्री धर्म राज का धर्म जाय; यह बात ही है मर जाने की ।
श्री सिद्ध-रूपके होते हुए;घट जाय क्या!सिद्धि ख़ज़ाने की॥
थक गया खर्च करते करते; कोष में न पाई का अन्तर ।
झेंपने लगा, फेंकने लगा; अब तो दूना धन खिजला कर ॥
पहिले था यत्न पाण्डवों का; अब लीला है यदुराई की ।
दिन-रात दुचन्द लुटाई की; पर कमी न आई पाई की ॥

क्रम-गत यों ही आगया; राज-तिलक का बार ।
धर्म-सभा सज्जित हुई; जमा हुआ दरबार ॥

पाण्डव-दरबार आज वह है; जिसको महेन्द्र ललचाते हैं ।
इन्द्रों के इन्द्र जहाँ खुद ही; श्री यादवेन्द्र दरशाते हैं ॥
विप्रोंने वेद-मंत्र गाकर; श्री परम्-ब्रह्म का ध्यान किया ।
धर्मावतार-पाञ्चाली ने; श्री गणपति का आह्वान किया ॥
फिर-नव-ग्रहों का पूजन कर; होमादि--यज्ञ का काम हुआ ।
पूजन, अर्चन, हवनादिक में;उस दिन का काम तमाम हुआ ॥

तब कुरु-पति कहने लगे--"हे मुनिवर!ऋषि-राय !
राज-तिलक के वास्ते; लीजे चरण धुलाय ॥

ऋषियोंने अपना सभी भार; श्री वाल्मीकि पर डाल दिया ।
श्री वाल्मीक ने कश्यप को; बतला कर बोझा टाल दिया ॥
कश्यप ने कुम्भज बतलाये; उनका औरों पर भार हुआ ।
सारांश चरण धुलवाने को; एक भी न ऋषि तैयार हुआ ॥
कुरु--पति बोला-"जब ऋषि-गण ही;इस समय न आगे आयेंगे।
तो फिर क्या पैर पूजन को, शूद्र-गण बुलाये जायेंगे ? ॥

पल पल की देर हो रही है; अन्धेर न ऐसा देखा है।
कुछ नहीं समझमें आता है,आखिर इसमें मतलब क्या है?॥"

व्यास देव कहने लगे–"सुनिये कौरव राज !।
आज राज–दरबारमें; शोभित हैं यदुराज ॥

उनके आगे पद पुजवाये; इतनी किस ऋषि की छाती है?।
पूज्य के सामने पूज्य बने; इस में ही लज्जा आती है॥
जिन आदि–देवके चरणों को; सब देव ढूंढ कर हारे हैं।
राजन् ! सौभाग्य हमारे से; वे ही पद यहाँ पधारे हैं॥
वे ऋषि–पति हैं, वे नृप-पति हैं; वे सर्व-सृष्टि अधिनायक हैं।
जो चरण त्रिलोक सहारे हैं; वे चरण पूजने लायक़ हैं॥"

राजत राज–समाज मे; यदुपति-त्रिभुवन-राज।
धर्मराज बोले–"प्रभो !; रही दास की लाज॥

इस करुणा-मय-कटाक्ष ही का;करुणेश ! आज आह्लाद है यह।
हे नाथ!अधिक क्या विनय करें?प्रभु का ही प्रेम-प्रसाद है यह॥
जो इन चरणों के आश्रित है; वह जग-आश्रय कहलाया है।
सच तो यह है, यह राज-पाट; इन चरणों की ही दाया है॥
इस लिये विनय है मेरी भी; जो सब सरदारों का मन हो।
तो लोक्य-वन्द्य,आनंद–कन्द; देवकी-नन्द पद वन्दन हो॥"
सहदेव मगध का राजा तब; बोला–"हम इसमें सहमत हैं।
सब लोगों के पूजने योग्य; केवल केशव त्रिभुवन-पति हैं॥
पालक, पोषक, संहारक हैं; सृष्टि के आदि प्रभु कारण हैं।
सुर-रक्षक, खल-संहारण हैं; पृथ्वी का भार उतारन हैं॥
हैं यही अग्नि; हैं यही यज्ञ; ऋत्विक्, अध्वर्य्यु इन्हें समझो।
जो चार पदार्थ चाहते हो; तो सबका पूज्य इन्हें समझो॥

सुना जहाँ सहदेव का; कृष्णार्पण शुभ-काज ।
"वाह वाह" करने लगा; सारा राज-समाज ॥

शीघ्र ही युधिष्ठिर ने प्रभु को; सिंहासन पर बिठलाया है ।
फिर चरणाम्बुज-परिमार्जन को; गङ्गा का नीर मँगाया है ॥
नव वस्त्राभूषण अर्पण कर; मणि-माल हृदय पर धारी है ।
चरणों का चरणामृत लेकर; प्रभु की आरती उतारी है ॥
छबि-खानी, आठों पट-रानी; सुख-दानी–सहित विराज रहीं ।
सुर–नाग–काम-गन्धर्व-त्रियाँ; तन–धार आरती साज रहीं ॥
कुन्ती इत्यादि देवियोंने; वधुओं की नज़र उतारी की ।
देवता मही पति बोल उठे;-"जय हो श्रीकुञ्ज–विहारी की ॥"

चतुर्दिशा में जय--सहित; उमड़ उठा अनुराग ।
किन्तु,दुष्ट शिशुपाल की;दब न सकी वह आग ॥

बोला पुकार कर-"मूर्खगणो !; तुमने अन्धोंका कहा किया ।
इस महा-यज्ञका महा-भाग;किस श्याम-वर्णको खिला दिया ?॥
जानते नहीं हो; इस शठ को; जिसने गौ–वत्स चराये हैं ।
टुकड़ों के लिये चेटकी ने; घर घर चेटक दिखलाये हैं ॥
इतना हो चुका समय, लेकिन;निश्चय न किसीने कर पाया ।
किस जाति का है,बाप है कौन?;किसने पाला?किसने जाया?॥
धिक्कार ! तुम्हारी अक्लों पर; जो इसे"अगोचर"कहते हो ।
मूर्खो ! क्या फूट गई आखें?; पत्थर–"परमेश्वर"कहते हो ॥

इस कपटी ने हर जगह; खूब किया अधिकार ।
वृन्दावन में इन्द्र का; दिया भाग तक मार ॥

वेदों से उलटा चलता है; वेद–स्वरूप कहलाता है ।
यह नीच जहाँ भी जाता है; कुछ झगड़ा करके जाता है ॥

वैरी के भय से व्रज छोड़ा; छिप रहा द्वारिका जाकर है ।
अन्धो ! यह अपना ईश्वर है, या उग्रसेन का चाकर है ? ॥"

हो सकता था ? सहन कब; यह अनुचित–व्यवहार ।
एक साथ दरबार में; खड़ी हुई तलवार ।

भीमार्जुन बोले–"ओ पापी !; जो आगे बात बढ़ायेगा ।
तो रंग–भंग हो जायेगा; सिर अलग पड़ा दिखलायेगा ॥
इस धर्म–सभामें अरे नीच !; देजा सुहाग मत रानी का ।
हम मौन अभी तक बैठे हैं; यह है लिहाज़ महमानी का ॥"

भीमार्जुन यों कह उठे; सजे वहाँ सब वीर ।
आज्ञा पानेके लिये; होने लगे अधीर ॥

सब केशव का मुँह ताक रहे; पर मनमोहन मुसकाते हैं ।
केवल उसके दुर्वचनोंपर; कुछ चिन्ह बनाते जाते हैं ॥
उठ गये महीपति निन्दा सुन; लेकिन वह पापी हटा नहीं ।
चल दिये वीर अकुला कर के; पर गाली देना रुका नहीं ॥
जब हद से ज्यादा बात बढ़ी; आया न राह पर अन्यायी ।
तो कुछ मुसका कर पापी से; इतने ही बोले यदुराई ॥
"शिशुपाल ! न कर अन्धेर बहुत; सब सृष्टि नहीं अँधेरी है ।
फँस रही भँवर में नाव तेरी; एकाध घड़ी की देरी है ॥
अपराधों की चाँदनी मूर्ख!; बढ़ बढ़ कर अस्ताचल पर है ।
स्मरण रहे, तेरा जीवन; अब चुप रहने पर निर्भर है ॥
यह धर्म–सभा का अवसर है; गोपाल यहाँ का रक्षक है ।
शिशुपाल!सँभाल हाल अपना;अब काल तेरा कानोंतक है॥"
मानी बोला–"चल अज्ञानी!; यों ज्यादा पानी चढ़ा नहीं ।
नाचा है अभी जनानों में; वीरों से पाला पड़ा नहीं ॥

बस ख़बरदार, दूसरी बार; जो मुझसे कुछ हुज्जत होगी ।
तो यज्ञ–कुण्ड में, सर्व प्रथम; ओ धूर्त्त ! तेरी आहुति होगी ॥"

इसी भाँति अपराध सौ; जब होगये तमाम ।
मुसकाये माधव तनिक; लिपिपर लगा विराम ॥

एक सौ एक अप-वाच्य उठा; भवितव्य कुवाचक बाँच उठा ।
काञ्चनी थाल जा मिला गले; खल-माथ मही पर नाच उठा ॥
यज्ञ-स्थल में कुहराम उठा; धड़ गिर कर पाँव पसार उठा ।
खल–दल में हाहाकार उठा; सुर-मण्डल में जयकार उठा ॥
* खल की माँका वरदान हुआ; निश्चरका मुक्ति-विधान हुआ ।
यज्ञाहुति की बलि-वेदी पर; उस पामरका बलिदान हुआ ॥

दुर्योधन से मीतको, फिर थी कहाँ समात ? ।
खड़ा हुआ तलवार ले; लगा पीसने दाँत ॥

ओहो, जंगली गँवारों ने; ऐसा अन्धेर मचाया है ।
इस धर्मराज के पुतले ने; नेवता दे वैर बिसाया है ॥
यह धर्म–सभा का दावा कर; षड्–यंत्र यहाँ फैलाते हैं ।
पहिले मान से बुलाते हैं; पीछे गर्दने उड़ाते हैं ॥
कहता है ? कौन धर्म इसको; यह कपटी–क्रूर क़साई है ।
काट लो, अरे इसकी गरदन; यह दुष्ट कहाँ का भाई है ? ॥
इस महा–धूर्त्त की बातों में; यह मूरख आता जाता है ।
दुष्ट को बढ़ाता जाता है; वंश को मिटाता जाता है ॥

---

* शिशुपाल चन्देरी का राजा था, जन्म–समय इसके चार भुजायें और तीन नेत्र थे ज्योतिषियों ने बताया कि जिसकी दृष्टि पड़ने पर इसकी एक आँख व दो भुजायें गिर जायेंगी वही इसे मार डालेगा, श्रीकृष्ण की दृष्टि से ऐसा ही हुआ, तब शिशुपाल-की माँने चरणों में गिरकर उस के सौ अपराध क्षमा कराने का वरदान पाया था ।

ऐसे अधर्म के अवसर पर; है धर्म न चुप रह जाने का ।
"दुःशासन ! उठो; कर्ण ! सँभलो; है वक्त तेग़ खटकाने का ॥
यातो इस महा-धूर्त्त-खल का; सब क़िस्सा खत्म यहीं होगा ।
या अधरम पर लड़ने वाला; कौरव-वंश ही नहीं होगा ॥
सुनता है ? बहिरे धर्मराज !; जो खैर चहे तो साथी हो ।
आ मिल जा मेरे साथ अभी; काट दें, द्वारिका वालोंको ॥
अन्यथा देख ले क्षण भरमें; सब रंग भंग दिखलायेगा ।
इस पापी का पल्ला पकड़ा; तो तू भी यमपुर जायेगा ॥"

धर्मराज कहने लगे-"सुनिये कौरव-राज ! ।
जन्म-काल से हमारे; हैं केशव सिर ताज ॥

शिशुपाल मरा, अपराधों से; आपको क्रोध नाहक़ आया ।
इसमें क्या है ? है नीति-मार्ग;-"जैसी करणी, वैसा पाया ॥
फिर यादव-पति को छोड़ूँ, मैं; यह सम्मति नहीं-लड़ाई है ।
आप क्यों ताव में आये हैं ?; उनकी आपसी सफ़ाई है ॥
मुझसे पूछो-तो तन, मन, धन; सारे जग-नाते तोड़ूँगा ।
छोड़ दूँ, धर्म भी एक बार; पर प्रभु को कभी न छोड़ूँगा ॥
हां-और दूसरी आज्ञा हो; बेशक करने को कहियेगा ।
बेकार जोश का मौक़ा है; ख़ामोश आप भी रहियेगा ॥"

दुर्योधन कहने लगा-"आ पहुँचा है काल ।
जायेगा यमलोक को; तू-तेरा गोपाल ॥

बस सावधान हो, तेग़ खींच; अब युद्ध मचाया जायेगा ।
जब सुधा-सिन्धु बेकाम हुआ; तो खून बहाया जायेगा ॥

इसको भी अपनी ताक़त पर; बे तरह गुमान बढ़ रहा है।
आजाओ, अच्छा मौका है; दो तरफ़ा जोश चढ़ रहा ॥"

यज्ञ—भवनमें यकायक; खिंची आम तलवार।

किन्तु, बीच ही में उठे; यज्ञ—हवन-रखवार ॥

बोले—"हमने शिशुपाल वधा; तुमसे भी अभी लड़ाई हो।
चिन्ता क्या है ? यह तो रण है; अच्छा है, यहीं सफ़ाई हो॥
चिन्ता है यदि तो एक यही; रंग में भंग हो जायेगी।
अतिथों की आफ़त आयेगी; धर्म की कलंक कहायेगी ॥
इस भक्त—पक्ष-वश काल—जीत; यह टाला दिये जा रहा है।
घबराओ मत कुरु-नाथ ! अभी; यह दिन भी चला आरहा है॥
अये सभा सदो ! शान्ती पकड़ो; चन्देरी लाश पठाता हूँ।
शिशुपाल शत्रु के लड़के को; इस कुल का मित्र बनाता हूँ॥
आजीवन इस कुटुम्ब वाले; उसको न सताने आयेंगे।
यदि कभी कष्ट आजायेगा; तो उसे मदद पहुँचायेंगे ॥"

नियम—बद्ध फिर जम गया; धर्म—राज-दरबार।

लगी अप्सरा नाचने; छिड़ने लगी बहार ॥

गायन

आओ, मिलकरके गायें मल्हार। मेरी वीर !।
देखें दरबार की बहार--मेरी—
ठमुकि, ठमुकि, झमुकि, झमुकि, नाचें, गायें नारि;
जायें बलिहार, साजें श्रृङ्गार।
जय जय कर्त्तार--आओ ॥

अपने हाथ से तिलक सजा; श्री धर्मराज को माधव ने।
त्रैलोक्य-सिद्ध कर दिखलाया; अपने भक्तोंको केशव ने॥
शुभ-तिलक हुआ, सत्संग हुआ; अतिथोंका अति-सम्मान हुआ।
धर्मज्ञोंके व्याख्यान हुए; पामर-खलका बलिदान हुआ॥
कुछ दिनों अनेकों भोज्य हुए; मांगलिक-गान-शुभ-दान हुए।
सानन्द-यशोदा-नन्दनका; द्वारिका-धाम प्रस्थान हुआ॥

गायन

तुम्हारा हमें जो सहारा न होता।
तो कोई सहारा हमारा न होता॥
रही थी ? कमी कौन सी मौतमें-प्रभु !;
जो हाथी को जाके उबारा न होता।
न दीनों को दुनियामें तुम हाथ देते;
तो दीनोंका हर्गिज़ गुज़ारा न होता॥
कृपा-दृष्टि "गोविन्द" हम पर भी होती;
तो "शैलेन्द्र" जगमें दुबारा न होता।

कुशल-सहित राजेशका; उत्सव हुआ तमाम।
कह "विनीत"-"शैलेन्द्र" अब जय श्रीराधेश्याम॥

शुभमस्तुः-

इति अश्वमेध।



महाभारत-सभापर्व।

द्यूत-सभा.

सरल छन्दोबद्ध.

" वक्त गये विरद बड़ाई कौन कामकी ? ।"

"शैलेन्द्र"-"विनीति" कृत.

प्रार्थना।

हमारी राय में आना अभी बहतर समझो ।
फिर तो आना भी न आने के बराबर समझो ॥
नग्न-ताण्डव मचा, दारिद्र-दुःशासन-द्वारा; ।
द्रुपद-दुलारियों का दृश्य देश भर समझो ॥
जुऐं बाज़ी की जगह है, मुक़द्दमा बाज़ी- ।
"हार" जिसकी न हो, शायद ही कहीं घर समझो ।
हमारा स्वार्थ ही शकुनी की जगह बैठा है- ॥
आज चौसर की जगह चाल का चक्कर समझो ।
द्वारिकानाथ ! तुम्हें फिर सुनाये देते हैं- ॥
" किम कर्त्तव्य " ही घर, घर में युधिष्ठिर समझो ।
काम"शैलेन्द्र"के" गोविन्द " अभी ही आओ;
वरना आना भी न आने के बराबर समझो ।

श्रीः।

❀ कथा-प्रारम्भ। ❀

पांडव लोगोंको मिला; जबसे राज्य-विभाग।
दहक रही थी तभीसे; 'दुर्योधनकी' आग॥
धर्मराज का यज्ञ में; देखा शाही ठाट।
तबसे तो हो ही गया; बिल्कुल बारहवाट॥

भाई का एक एक वैभव; फोड़ा बन बन कर पकता है।
वह द्रुपद-सुता का व्यंग-वाक्य;फोड़े पर नमक छिड़कता है॥
भाई का हास्य-विलाप अगर; भाई को सहन हुआ होता।
तो क्यों यह सिंहोंका जंगल; स्यारों का सदन बना होता?॥
भाई की कीरति-गाथाने; भाई की नींद उड़ा दी है।
भाई की चढ़ती बेलों ने; भाई की नाक कटा दी है॥
क्या करें? और किस तरह करें?;जिसमें न वास हो भाई का।
कैसे वह स्वर्ण-घड़ी देखें; जब सर्व-नाश हो भाई का॥

दुःशासन, शकुनी, करण; दुर्योधनके साथ।
एक राय करने लगे; पकड़ पकड़ कर माथ॥
ठहरी-आखिर सभी की; एक युद्ध की राह।
पूज्यपिता के पासमें; लेने चले सलाह॥
सब क्रमशः धृतराष्ट्र को; सादर शीश झुकाय।
यथायोग्य स्थान पर; बैठे आशिश पाय॥

शकुनी बोला-"श्री महाराज !; कुछ सम्मति लेने आये हैं ।
हम सब मिलकरके दीनबन्धु !; कुछ बातें तै कर लाये हैं ॥
पाण्डव लोगों का गर्व-विभव; सीनेको फाड़ खाता है ।
सब इन्द्रप्रस्थ भरके अन्दर;अब वह ही वह दिखलाता है ॥
"भीम" को निडरता वह आई;सब कानकान पर उड़ारहा ।
केवल बसहमें जलानेको; छातीपर होले भुनारहा ॥
धौंसा बजता है आठ पहर; कानों को फाड़ खाता है ।
सच तो यह है–" यक जंगलमें; नाहर एक ही खटाता है ॥
जो कुछ अपमान हुआ नृपका;वह भी सब किस्सा ज़ाहिर है ।
अब तो आज्ञा दीजे भगवन !; सारा फैसला युद्ध पर है ॥"

सुन सम्मति "धृतराष्ट्र" तब बोले माथा ठोक ।
" इस कुमन्त्रणा पर मुझे; है आत्मासे शोक ॥

ईश्वर को बिल्कुल छोड़ दिया; दिनरात विघ्न दिखलाती है ।
अफ़सोस ! तुम्हें भाई तक की; जब बढ़ती नहीं सुहाती है ॥
एक वे सत्-पुरुष होते हैं; जो दुश्मन का हित करते हैं ।
एक यह छुद्र आत्मायें हैं; भाई पर आहें भरते हैं ॥
सत्पुरुषों को है ध्यान सदा; दीनों को हाथ लगाने का ।
धिक्कार, तुम्हें जब सूझता है; तब सत्यानाश मिटानेका ॥
लेकिन कुछ होश हवास भी है; है धर्म पुत्र निर्भय, अक्षय ।
जिसतरफ़ सत्य,उसतरफ़ कृष्ण; जिसतरफ़ कृष्ण उस तरफ़ विजय॥
तुममें तो जितनी ताक़त थी, वह छुटपनमें दिखलाती थी ।
बन्दरों की तरह बिधकते थे; जब भीम की बारी आती थी ॥"
मैं रोक चुका फिर इच्छा है; जाओ जो वंश मिटाना हो ।
लोहे के चने चबाना हो; अपने ही दांत तुड़ाना हो ॥

गायन

फूल रहीं आशा की बेलें, उन दुखियारे दीनों की ।
काट न दे अये लाल ! उन्हें; ले ले कर राय कमीनों की ॥
बिछुड़े हैं, कण्ठसे लगा; गाढ़े वक्तके सहाई हैं ।
मेरे बन्धु की निशानी हैं; दुर्योधन ! तेरे भाई हैं ॥
मानी ! मनमानी न कर, अरे; कुछ सम्मति मान प्रवीनों की ।
काट न दे अये लाल ! उन्हें; ले ले कर राय कमीनों की ॥
डर है, यह गृह की कलह-अग्नि; दोनों ही कुल संहार न दे ।
दोनोंको सत्यानाश करे; ग़ैरके हाथ अधिकार न दे ॥
जन "विनीति-शैलेन्द्र" कहीं; नौबत न आय कौपीनों की ।
काट न दे अये लाल ! उन्हें; ले ले कर राय कमीनों की ॥

शकुनीने सिर हिला कर; बदल दिया झट भाव ।
दोनों जानिव देख कर; फिर रक्खा प्रस्ताव ॥

"महाराज, सत्य है, समर, भूमि; समता का क्षेत्र कहाता है ।
उनमेंसे एक जीतता है; दूसरा हार पाजाता है ॥
दर असल युद्धकी हार जीत; राजन ! द्विविधाकी खिचड़ी है ।
हां, राह जो मैंने सोची है; वह तो बिल्कुल ही घर की है ॥
रहने दो शस्त्र-युद्ध, केवल; अब कपट—युद्ध पर चुकने दो ।
छल से लो बुला युधिष्ठिर को; और छल के पासे फिकने दो ॥
चौसर में हम से बाज़ी ले; यह शक्ति युधिष्ठिर में क्या हो ? ।
चौसर की गोटें छल की हों; और बना कपट का पांसा हो ॥
राज्य का ख़ज़ाने का सौदा; बस चौसर के बाज़ार में है ।
जो काट ज़रा सी बात में है; वह काट कहां तलवार में है ? ॥"

'शकुनी' की इस युक्ति पर; उछल पड़ा कुरु-नाथ ।
'धन्य धन्य' कहने लगा; पकड़'शकुनि' का हाथ ॥
किन्तु,कहा धृतराष्ट्र ने; "उठो-"विदुर-गृह" जाव ।
उनके आगे भी यही; प्रकट करो प्रस्ताव ॥
यादव कुल में जिस तरह आज; उद्धव जी सच्चे ज्ञानी हैं ।
उस तरह हमारे कुनवेमें; प्रिय ' विदुर ' भ्रात लासानी हैं ॥
" दासी-सुत " हुए उदासी हैं; संन्यासी चरणों गिरते हैं ।
मानो कलंक का भूषण कर;कुरु-चन्द मही पर फिरते हैं ॥"
दुर्योधन मित्रों सहित; गया विदुर के धाम ।
भक्त विदुर को नृपति ने;झुककर किया प्रणाम ॥
शकुनी ने वही विचार कहा; तब विदुर भक्त समझाते हैं ।
"भैया ! अपना क्या जाता है?;जो पाण्डु-सुवन सुख पाते हैं॥
अपनी सेवा, भक्ती द्वारा; केशव को वश में रखते हैं ।
जैसा ही वृक्ष लगाते हैं; वैसा ही वे फल चखते हैं ॥"
भला विदुर के ज्ञान को; कहाँ वहाँ स्थान ?
जिनके हृदयोंमें भरा; स्वार्थ डाह, अभिमान ॥
भीष्म-पिता के पास सब; पहुँचे लोलुप लोग ।
शकुनी ने झट वहाँ भी; प्रकट किया वह रोग ॥
यह स्वार्थ और धोखे बाज़ी;श्रीभीष्म पिताजी सुन न सके ।
बोले-"भैया बस रहने दे; सुनते सुनते तो श्रवण थके ॥
जो मुझ से सम्मति लेते हो; तो सीधा अपना कहना है ।
सन्तोष सर्वदा करना है; और राम-भरोसे रहना है ॥
राजा की नीति ज़रूरी है;जिसका कि न्याय खो जाता है ।
बस उसी न्याय के साथ साथ; सर्वस्व नाश हो जाता है ॥

जैसा मख किया "धर्म-सुत-ने"; वैसा इस कुल में हुआ नहीं।
जो न्याय धर्म उस नृप में है; वह तुम लोगों में छुआ नहीं॥
जो उसने शक्ति दिखाई है; वह शक्ति भला तुममें भी है।
या सिर्फ किसी की शक्ति देख; आदत केवल जलने की है॥
जो उसे पराजित करना है; तो तुम भी ऐसा काम करो।
हो जाय नाम उसका दीपक; और अपना सूरज नाम करो॥"

भीष्म पिता के पास से; उठ बैठे चुपचाप।
जा कर द्रोणाचार्य से; गाया गया अलाप॥
कुलगुरु द्रोणाचार्य से; पाया वही जवाब।
अपने महलों के लिये; वापिस हुए शिताब॥

माता से इसकी सम्मति ली; तो उसने भी स्पष्ट कहा।
"बेटा! भाई से वैर किये; जायगा राज्य भी रहा सहा॥
ईश्वर ने उनको बड़ा किया; जो पाई कीर्ति बड़ाई है।
सौभाग्य समझ अपना लाला; आखिर तेरा ही भाई है॥"

कह न सका, लेकिन हुआ; मन में अधिक उदास।
वही विषय ज़ाहिर किया; भानुमती के पास॥
किन्तु नीति की बात को; क्यों कर कहें अनीति?।
दुर्योधन को छोड़ कर; थी सब के विपरीति॥
होनहार के सामने; झूँठा सभी विचार।
हार गया हर तरफ से; तो आया दरबार॥

दरबार में सूरत आते ही; कलियुग के पुतले आने लगे।
"जी हां हुजूर" की बत्ती से; वह ख्याली क़िले उड़ाने लगे॥
"बेशक चौसर होना चाहिये; कौरव गण सभी खिलाड़ी हैं।
चौसर की गोटें बन्दर हैं; हम सीखे हुए मदारी हैं॥

उल्लू की लकड़ी फेरेंगे; दो दांव में काम तमाम करें।
वे सब जङ्गल में वास करें; हम दिल्ली में आराम करें ॥"

बोले वहाँ विकर्ण, फिर; सम्मति के विपरीति।
महाराज ! कुछ सोच कर; ग्रहण कीजिये नीति ॥

पांडव क्या हैं ? ना कुछ वह तो; सच मुच आटेके पुतले हैं।
लेकिन उस आटे के अन्दर; मोहन वंशीके कांटे हैं ॥
जिसको मछली आसानीसे; लालच वश मुँह फैलाती है।
जब कांटे में फँस जाती है; तब हलुवा कर दी जाती है ॥
दुर्योधन बोला—"क्या जाने !; कितनी तारीफ उड़ाते हैं।
बेसर पैर की सुनाते हैं; राई पहाड़ दिखलाते हैं ॥
जिसने शेष पर विजय पाई; उसको पांडव क्या ? बतलाओ।
पीछे यह देखा जायेगा; मैदान में पहले आ जाओ ॥"॥

फिर विकर्ण कहने लगे;—"सम्भव है सब बात।
किन्तु कठिन हो जायेगा; पाण्डव का आघात ॥"
दुःशासन ने फड़क कर; कहा जोश के साथ—
अजी, काम जारी करो; दिखलायें दो हाथ ॥

कार्त्तिक कृष्णा की चतुर्दशी; दीपावलि जिस दिन आयेगी।
उस शक्तिमान की शक्ति भक्ति; बस उस दिन देखी जायेगी ॥
दुर्योधन को दुशासन की; बातों में ही आनन्द हुआ।
अभिमानी जन चौचन्द हुए; विज्ञानी का मुँह बन्द हुआ ॥
तत्काल बुलाये शिल्पकार; और काम सभा का लगवाया।
बेहद मिहनत और कोशिश से; भूपने द्यूतगृह सजवाया ॥
फिर देश देश के भूपों को; वह द्यूत-निमन्त्रण पहुँचाये।
जिनको पढ़ कर के राजा गण; सानन्द शीघ्र दिल्ली आये ॥

दुर्योधन ने विदुर को; बुलवाया तत्काल ।
बड़ी नम्रता से कहा; अपने दिलका हाल ॥

चाचा जी जन की दशा देख; आज ही हस्तिनापुर जाओ ।
और चतुर्दशी से पहले ही; हमराह पाण्डवों को लाओ ।
क्या करूँ ! चचा ! मजबूरी है; गुस्ताखी करनी पड़ती है ।
ना जाने द्यूत सभा के हित; क्यों तबियत इतनी बढ़ती है ।
बूढ़ोंकी बात मानता हूं; फिर युवकों की भी सुनता हूँ ।
जो उनका कहा न करता हूँ; तो वहां विरोधी बनता हूँ ।

विदुर भक्त कहने लगे; "हो जैसी कुरुराय ।
करो, हमें क्या वास्ता; दी रस्ता समझाय ॥"

बूढ़े क्या सठियाने समझो; अन्तर अक्लों में आया है ।
अब नया ज़माना आया है; और नवयुवकोंकी माया है ॥
पर ध्यान रहे, यह माया ही; आगे ग़मका सामान न हो ।
दिल्ली रणका मैंदान न हो; यह फला बाग़ वीरान न हो ॥
तुम अपनी करणी किये चलो; मैं यही रागनी गाता हूँ ।
लो इच्छा है तो जाता हूँ; और धर्मराज को लाता हूँ ॥

इतना कह कर विदुर ने; सज सारा सामान ।
धर्मराजके वास्ते; गजपुर किया पयान ॥
धर्मराज ने जब सुना; विदुर-आगमन कान ।
आगे से लेने चले; किया पूर्ण सन्मान ॥

सम्मान तथा शुश्रूषा से; सिंहासन पर बिठलाते हैं ।
बेचारे विदुर प्रेम वश हो; पृथ्वी में धँसते जाते हैं ॥
हा ! ऐसे योग्य धर्म पति को; किस जगह लिये मैं जाता हूँ ।
हा ! पापी के राज्य का नमक; ऐसे पाप से बजाता हूँ ॥

मैं, हा ! हा ! मैं किनको, इनको; इन पांचों पाण्डु--कुमारों को ।
वीरता धीरता वालों को; शुचिता और धर्म अधारों को ॥
क्या करता हूँ ? लेजाता हूँ; किस जगह ? वहां उन स्यारोंमें ।
क्या होगा ? सिंह फँसेगा ही; छल मय चौसरके तारोंमें ॥"

इतने में महाराज के; निकले मीठे बैन ।
"भाग्य—ऐन जन-गृह हुआ; आये करुणा ऐन ॥"

इन शब्दों के उठते उठते; झपकी सी खुली विचारों की ।
भूमिका हृदय में ख़त्म हुई; और बात उठी खूँख्वारों की ॥
"राजन् ! किस मुँह से बात करूँ ?; जो बातें करने आया हूँ ।
या करुणा करने आया हूँ; या सर्वस हरने आया हूँ ॥
किन आंखों को ऊँची कर दूँ; यह तो झुकती ही जाती हैं ।
ज्यों ज्यों कुछ साहस करता हूँ; इन्द्री रुकती ही जाती हैं ॥
मैं चाचा हूँ या हितुआ हूँ; निष्पक्षी हूँ या कपटी हूँ ।
किस मुँह से दूँ प्रमाण इसका; जब अपना आप गवाही हूँ॥
लो सुनो, वहां दुर्योधन ने; धोखे का जाल बिछाया है ।
और द्यूत खेलने की खातिर; राजन् ! तुमको बुलवाया है ॥
यह सबकी सम्मति ठहरी है; छलसे सब राज्य-कोष हर लो ।
इज़्ज़त हर लो वक़अत हर लो;और घर से निर्वासन कर दो ॥
जो गुप्त बात थी बतला दी; अब इच्छा भूप तुम्हारी है ।
इस पाप, कपटकी गाड़ीमें; यह पापी हुआ अगाड़ी है ॥"

धर्मराज कहने लगे; नहीं आपका दोष ।
भाई पर आता मुझे; मगर सख्त अफ़सोस ॥

भीमने कहा—"भाई कैसा ?; जिसको धूर्तता समाई है ।
भाई से शत्रुता भाई है; वह भाई नहीं सौदाई है ॥

परवाह नहीं दुर्योधन क्या ?; योधों का खासा जमघट हो ।
केशवकी केवल कृपा रहे; फिर घर हो चाहे मरघट हो ॥
चलिए, बे फ़िक्र, बे हिचक के; वरना कायर कहलायेंगे ।
जो आज यहां रह जायेंगे; तो कल को शर्म उठायेंगे ॥"

पास हो गया, अन्तमें; यह भीमका विचार ।
"चले साज कर धर्म पति; लश्कर, फौज सवार॥

धौंसा धमका,गज चिक्कारे; झन झन ध्वनि हुई निशानों की ।
वे चारों डील सजे, मानों; तैयारी है मैदानों की ॥
उस वीर वेष की शोभा पर; वीरता स्वयं बलिहार हुई ।
फिर स्वर्ण–झूलके हाथी पर; वह धर्म–मूर्त्ति असवार हुई ॥

चले सवारी साजकर; सभी मगन आनन्द ।
गूँजी ध्वनि आकाश तक;"जय केशव ब्रजचन्द" ॥
इन्द्रप्रस्थमें जब किया; सेना–सहित–प्रवेश ।
तत्क्षण–लक्ष्मण कुँवरको; भेजा कुरुपनरेश ॥

उलका–दुःशासन, द्विरद आदि; अगवानी करने को आये ।
सादर सब माथ झुका करके; नृपको वितान में ले आये ॥
सानन्द धर्म–पति लक्ष्मण को, प्रेम से गोद बैठाते हैं ।
पकवान मिठाई देते हैं; फिर मणि–माला पहनाते हैं ॥
फिर विदुर तथा;लक्ष्मण कुमार;महलों को वापिस आते हैं ।
एवं दुर्योधन के आगे; सारा बृतान्त बतलाते हैं ॥
पीछे से सब रनिवास वहां; रनिवास से मिलने आता है ।
वह–प्रेम–मिलन वह संभाषण; कवियोंसे कहा न जाता है ॥
आत्माएं वहां विचार रहीं; " हा ! यह वैरीका स्थल है ।"
मुंह पर यह शब्द निकलते हैं; यह राज्य सदाको निश्चल है ॥

दिल कहता है, "नाश की घड़ी"; द्यूतमें किसी की ही कल है।
ऊपरसे बातें बनती हैं; "हे बहिन कुशल और मंगल है॥
आनंद मिलन सङ्कोच-पूर्ण; उस रोज़ परस्पर हुआ किया।
उस रातमें भानुमतीजी को; द्रौपदिने जाने नहीं दिया॥"
दुर्योधन ने भी भांति-भांति; पहुँनाई का सामान किया।
भोजन कीर्त्तन के बाद वहां; विप्रोंने शिक्षागान किया॥

सञ्जय ने आकर दिया; कुरुपति का सन्देश।
"सुबह द्यूत दरबार का; होगा श्री गणेश॥
धर्मराज ने कर लिया; सन्देशा स्वीकार।"
प्रातकाल ही से हुआ; शुरू द्यूत दरबार॥
किन्तु न सम्मिलित हो सके; गये बीत दिन चार।
प्रथम बन्धु बान्धवोंसे; मिले धर्म अवतार॥

धर्मावतार गुरु गृह पर जा; चरणों में माथ झुकाते हैं।
वे विप्र वीर कण्ठ से कगा; हार्दिक आशीश सुनाते हैं॥
पछताते हैं, आत्मामें कुछ; कुछ आखों में शरमाते हैं।
लेकिन वे सरल भाव भूपति; सबको देवता बनाते हैं॥
द्रोणाचार्य से बिदा होकर; भीषम गृह सभी साथ पहुँचे।
आखों में वहां अश्रु पहुँचे; चरणों में वहां माथ पहुँचे॥
धृतराष्ट्र-धाम में धर्मराज; चाचा के दर्शन करते हैं।
क्या करें? बिचारे मिलते हैं; आंखों में आँसू भरते हैं॥

दुर्योधन के पासमें; फिर पहुँचे नर-नाथ।
मिलने आये भूप भी; कुछ वीरों के साथ॥

सन्मान सभ्यता शुश्रूषा; सभ्यों के भांति वहां पर थी।
पर हाय! भाइयोंकी सच्ची; वह आत्मिक प्रीत कहांपर थी॥

भाई से मिल कर अग्रज से; मिलने को भूपति आये हैं ।
कर्ण की ओर से "विसासेन"; सादर मन्दिर में लाये हैं ॥
भाई भाई का सम्मेलन;—और यह आत्माओं की चालें ।
यक ग्रन्थ इसीपर लिखा जाय; जो ज्योंका त्यों ही लिख डालें ॥
बस इसी तरह "अंगारमती";और "भक्त विदुर"से मिलते हैं ।
दूसरे रोज गान्धारी की; भेंट को धर्मपति चलते हैं ॥

मातासे मिलकर हुआ; नृप को अति आनन्द ।
आज्ञा पा डेरे चले; भूपति पाण्डव—चन्द ॥
श्रोताओ, अब आगई; चतुर्दशी की रात ।
द्यूत—सभा को चल दिये; दीप—श्राद्ध—पश्चात ॥

उस इन्द्र-प्रस्थ की गलियोंमें; मणियों की आभा फैल रही ।
मानों सैकड़ों "दिनकरों" की; भवनोंमें प्रतिभा फैल रही ॥
उस समय दुःशासन,दुर्योधन; सौबल, शकुनी एवं विकरण ।
जा पहुँचे द्यूत खेलने को; एवं आये सब राजा गण ॥
श्री भीष्म-पिता,वृषसेन, शल्य; शशबिन्दु,अलम्बु उलूका थे ।
सैंधव-पति-युधामन्यु, मगहय; और बाहुलीक, शुभरूपा थे ॥
थे तीस सहस केवल राजा; फिर सभासदों की गिनती क्या ? ।
गुरु, कृपाचार्य्य भी आपहुँचे; पर बेचारोंकी चलती क्या ? ॥

उसी समय बाहर हुआ; बेहद "जय जय कार ।"
पग धारें दरबारमें; "श्री धर्म अवतार ॥"
आगे से सम्मान कर; सिंहासन बैठाय ।
उसी समय चौसर लिये; गया दुशासन आय ॥
ज्यों ही कर में युधिष्ठिर; फाँसा लिया सँभाल ।
वैसे ही होने लगे; अशुभ चिन्ह तत्काल ॥

बाईं भुज बायां नेत्र तथा; सब बायें अंग फड़कने लगे।
बाईं जानिबसे छींक हुई; आत्मा और हृदय धड़कने लगे॥
दुर्योधनने पांसा छूकर; शकुनी को आगे बैठाया।
तब धर्मराजने पांसा रख; कुरु-पति से ऐसा फ़रमाया॥
"कुरुनाथ ! बराबर पर आओ; शकुनी का मेरा जोड़ नहीं।
राजासे राजा दांव करे; बे जोड़, जोड़ का तोड़ नहीं॥"
कुरुपति बोले-"महराज ! इन्हें; मेरी ही जगह समझियेगा।
इसमें क्या हर्ज आपका है; इनके ही साथ खेलियेगा॥
जो शकुनी मामा हार जांय; तो हारा मुझे जानियेगा।
जो वचन कहें शकुनी मामा; मेरे ही कहे मानियेगा॥
जो इसमें हो अपमान भूप; तो तुम भी सेवक बैठा दो।
खेलें वे दोनों चौसर को; और हार जीत अपने सर हो॥
हमसे कहिये तो इसी समय; नीचके साथ को तत्पर हैं।
फिर यह तो अपने घरके हैं; ख़ास हैं, हमारे सर पर हैं॥"

सुनते सुनते भीमने; कहा जोड़ कर हाथ।
महाराज, कुछ कपट है; आज आपके साथ॥

रखिये चौसर; वापिस चलिये; कुछ बात न मारी जाती है।
अन्यथा, हमें तो जँचता है; कुछ भावी सर पर आती है॥
पाण्डव-पति बोले-"भीम भ्रात !; इसमें कुछ छलकी बात नहीं।
भ्रातके साथमें भ्रात भला; कर सकते हैं आघात कहीं ?॥"
भीष्मने कहा-"हे धर्मराज !; तुम सबको सरस जानते हो।
जैसे खुद सीधे सादे हो; वैसा दुनियां को मानते हो॥"
ज्योतिषी एक मुखसे बोले-"हे नाथ ! कुचिह्न दिखाते हैं।
संकटा दशा आ पहुँची है; और सूर्य्य कुदृष्टि जनाते हैं॥

वर्ष-पति आपके मन्द हुए; तेरह वर्षों तक जाते हैं।
हे नाथ! न पांसा फेंकियेगा; हम बार बार समझाते हैं॥"
अर्जुनने कहा—"उठो भ्राता";द्रोणने कहा "नर-राज" उठो।
सब सभा-भवन गुञ्जार उठा—"मत खेलो,हे महाराज!उठो॥"

किन्तु समय गति और थी; होंनी थी बलवान।
क्षत्रिय की आत्माने; की न एक भी कान॥

बोले"अच्छा ऐसा ही सही; तो क्या अब पीछे हट जाऊँ।
जिस मगमें आगे क़दम दिया;किस तरह पीठ अब दिखलाऊँ॥
ललकार वीर की सुनता हूँ; और वीर-कर्मपर मरता हूँ।
फिर वीरोंसे मुँह लौटे क्यों; जब वीरों का दम भरता हूँ॥
यह शस्त्र—युद्ध है नहीं मगर; आख़िर तो कोई रण ही है।
बाजी की हार जीत लेना; यह भी तो कोई प्रण ही है॥
सर्वस्व जाय परवाह नहीं; पर अब प्रण नहीं टूटता है।
छूटे धन, जन, परिवार, राज्य; पर पांसा नहीं छूटता है॥"

एक बार फिर से उठी; मण्डप में आवाज।
महाराज! इस काज में;होगा आज अकाज॥

गायन

दाना को जुआ खेलना हर्गिज़ नहीं;
अच्छा, नहीं अच्छा, नहीं अच्छा।
आक़िल को यहां, बैठना हर्गिज़ नहीं;
अच्छा, नहीं अच्छा, नहीं अच्छा॥
शामिल है जुआ पाप भी उन आठ पापों में—
इसको भी धर्म लेखना हर्गिज़ नहीं अच्छा;—२

करते हैं विजय क्षत्रिय बाजू के ज़ोर से;
पांसे की शक्ति देखना हर्गिज़ नहीं अच्छा—२
धोखा है, दग़ा जाल है, और छल है सरासर;
बेकार कष्ट झेलना हर्गिज़ नहीं अच्छा;—२
फेंको "विनीत" "शैलेन्द्र"—अपनी बुराइयाँ;
पांसे को कभी फेंकना हर्गिज़ नहीं अच्छा;—२

वचन बद्ध के पास में; थे न मगर अब कान।
डाला पांसा भूमि पर; धर माधव का ध्यान॥

शकुनी बोला-"कुछ शर्त्तों से;जब तक हो बाज़ी बन्द नहीं।
यों ख़ाली हाथ चलाने से; आयेगा कुछ आनन्द नहीं॥
जो इसका मज़ा उठाना हो; तो कोई वस्तु लगाइयेगा।
हो हार तो दाख़िल कीजियेगा;हो जीत तो बस ले जाइयेगा॥"

धर्मराज ने शर्त्त पर; रक्खी मुक्ता माल।
दुर्योधन ने इस तरफ़; हार दिया निज डाल॥
अब शकुनी ने शुरू की;वही कपट की चाल।
बस पहले ही दांव में;निकल गई मणि-माल॥

तब धर्मराज ने शर्त रखी; अपने सम्पूर्ण ख़ज़ाने की।
कुछ ऐसी ध्वनि सरपर बोली; थी फ़ुरसत नहीं उठाने की॥
मोती, मूँगा, हीरे, कञ्चन; चांदी, भूषण सब निकल गये।
पीतल, तांबा, लोहा, रांगा; जस्ती बर्तन सब निकल गये॥
तीसरे दाँव पर अस्त्र, शस्त्र; चौथे पर सारे पशु हारे।
पांचवीं बार पक्षी सारे; छठवीं पर नौकर बेचारे॥

फिर रथ; पालकी, यान, लिख कर; बाज़ी पर लगा हराये हैं।
हाथी, घोड़े, साज के सहित; फिर से दांव पर लगाये हैं॥
फिर वस्त्रों का भण्डार गया; फिर पत्रों की बहियाँ निकलीं।
जितने राजा नृप के वश थे; उन सब की चौधरियाँ निकलीं॥

दुर्योधन के मान का; अब क्या वारापार।
उसी समय कहने लगा; वीरों से ललकार॥

वीरो ! आओ अब चिन्ता क्या?; सारे राजों पर दख़ल हुआ।
जो काम यज्ञसे सफल न हो; वह काम द्यूत से सफल हुआ॥
जाओ, चढ़ जाओ देशों पर; और मेरी दुहाई फिरवा दो।
कौरवी-पताका फहरा दो; पाण्डवों का झण्डा गिरवा दो॥
अपने नियमों को घोषित कर; सब इन्तज़ाम माकूल करो।
सरकश को बेड़ी पहिना दो; राजों से चौथ वसूल करो॥

आज्ञा सुन कर धर्म-पति; दुखी हुये अत्यन्त।
अश्रु धार बहने लगी; लगे कांपने दन्त॥

आत्मा पर एक वज्र बैठा; आंखों में एक शर्म आई।
करुणा में बहने लगा हृदय; कोई मग पड़ा न दिखलाई॥
"हा ! मेरे ही इस करतब से; बेचारे कष्ट उठायेंगे।
मेरे इस खेल खेल में अब; लाखों ही मारे जायेंगे॥"
करुणित शब्दों में प्रजापाल; अब उलटी भीख मांगते हैं।
जनता-हित क्षत्रिय-मद वाले; क्षत्रीत्व-ध्यान भी त्यागते हैं॥
कुरुनाथ-बन्धु ! असहाय भूप; इस तरह सताने योग्य नहीं।
वे स्वयं तुम्हारे वश में हैं; बेड़ी पहनाने योग्य नहीं॥

---

१ शासक—पद मुखिया होना।

भैया ! इस वर्ष चौथ छोड़ो; वे प्रथम सताये बैठे हैं ।
दुखियों को दुख देना है पाप; वे हृदय दुखाये बैठे हैं ॥
इतनी विनती मेरी भी है; मर्ज़ी फिर भ्रात तुम्हारी है ।
मैं ज्यादा बढकर बोलूँ क्या? खुद पांव कुल्हाड़ी मारी है ॥

दुर्योधन यह वचन सुन; बोला भारि अभिमान ।
सीखूँगा कुछ रोज़ में; अब आप का सयान ॥

कर दूँगा चौथ बन्द सारी; मैं एक कमण्डल ले लूंगा ।
शाही ताज को पहिन करके; घर घर भिक्षा को जाऊँगा ॥
अब आप करें अपना करतब; इन बातोंसे कुछ सार नहीं ।
अब इन क़िस्सों में दख़ल करें; आपको कोई अधिकार नहीं ॥

आँसू पीकर रह गये; धर्मराज के नैन ।
किन्तु भीम की भुजायें; तड़प उठी बेचैन ॥

दे मारी गदा ज़मी पर ही; हिलगया द्यूत मण्डल सारा ।
अर्जुन ने धन्वा उठा लिया; और एक जुबाँ से ललकारा ॥
" बस खबरदार, ओ अभिमानी; है एक गदाका काम फ़क़त् ।
दम भरमें काम तमाम करूँ; दम भर है यहाँ मुक़ाम फ़क़त् ॥
है धर्म, धर्म-पति के अन्दर; करुणा है करुणा-धामों में ।
पहिला मुक़ाबिला मौत से है; भीमार्जुन के संग्रामों में ॥
जिन को हम अभय कर चुके हैं; जिनका 'कर' किया गया कम है।
उन को दुख दे 'कर' जाकर ले; हम देखेंगे किस में दम है ? ॥
दम भरमें दम निकाल डालें; और हवा अदम की खिलवा दें ।
यह चौसर योंही पड़ी रहे; और रणकी चौसर दिखला दें ॥"

दम बे दम दम भर रहे; सहम गया दरबार ।
धर्मराज "कहने लगे; देकर शपथ हज़ार ॥

"भैया" तुम को सौगन्ध मेरी; मेरी आज्ञा बिन मत बोलो।
खुलने दो क़िस्मत के जौहर; तुम अपने जौहर मत खोलो॥
हम अनधिकार चेष्टा न करें; यह भी यक आन धर्मकी है।
कर्म में कहाँ तक घटती है; यह भी यक आन मर्मकी है॥"

सुने वचन सहदेव ने; कहा ज़ोरके साथ।
"—क्या प्रत्यक्ष ही कर्म—फल; देखोगे नर-नाथ॥

क़िस्मत है जो अबतक केवल; अपनी संपति ही जाती है।
जो पांसा उठा दुबारह तो; इज्ज़त की बारी आती है॥
बस सीधे घर की रस्ता लो; वरना अब शान बिगाड़ न दे।
अधमरा सर्प मौक़ा पाकर; नीचे नीचे फन मार न दे॥"

सुनते थे बातें श्रवण; किन्तु करे क्या ज्ञान।
दिल कहता था बारहा; "भला न टूटे आन॥"

ज्यों ही पांसा पकड़ा फिर से; भीम ने हाथ जोड़े फिर से।
और "नित्य-क्रियाकी सुधि देकर, नृपके विचार तोड़े फिरसे॥"
लेकिन मानी की बोली की; वह गोली पड़ी निशाने पर।
तड़पा शिकार, हिम्मत न पड़ी; पीछेको क़दम उठाने पर॥
"क्यों महाराज जिस शकुनी की; समता तक नहीं मानते हैं।
कितनी शर्म की बात है यह; अब उससे हार भागते हैं॥"

क्षत्रिय को कब सहन था ?; इतना वचन-प्रहार।
हार हार सुनते हुए; पांसे लिये सँभार॥

सम्पूर्ण राज्य बाज़ी पर रख; शकुनी को अर्पण कर डाला।
दूसरा दाँव भ्रम के वश हो; सब विप्र—मण्डली पर डाला॥
अब नीति वान सहदेव वहां; तड़पाये, और लगे कहने।
"क्या भूमि-देव ब्राह्मण गण भी; क़ब्जे में नाथ, लगे रहने ?॥

जो जगत-पूज्य महिदेवोंपर; बेजा अधिकार दिखाओगे ।
इस समय राज्य को हार चुके; फिर धर्म हारकर जाओगे ॥
अब पांचों डील कुटुम्ब छोड़; पाई भी बाक़ी रही नहीं ।
अये शैताँ खेल ! मगर तुझसे, अब भी बे बाकी रही नहीं ॥
जब घटाटोप बादल लेकर; भावीकी अँधियारी आई ।
तो सारा पल्ला झाड़ फूँक; भ्राताओं पर बारी आई ॥
रुँध गया कण्ठ आखें झपकीं; लज्जासे झुकते जाते हैं ।"
ऊपर से दुश्मन मौका पा; यों व्यङ्ग-बाण बरसाते हैं ॥
" महाराज, चक्रवर्ती नरेश; जग मान्य समर्थ कहाते हैं ।
रखिये, क्या बात? ज़रा ही में; अफ़सोस ! हाथ सिकुड़ाते हैं ॥"
राजा इस तरह तड़पता है; जैसे कुचला जावे कोई ।
डसं रहे हों चारों तरफ़ सर्प; और बांध दिया जावे कोई ॥
वैसी करुणा की हालत में; मुँह से जो निकला कह डाला ।
श्रोताओ ! सुनो हारने पर; क्या कहे ? जुयें का मत वाला ॥
" सहदेव ! ज़रा आगे आओ; क्या मेरे आज्ञाकारी हो ? ।
तो जाओ, इस पिशाच द्वारा; तुम भी इस पर बलिहारी हो ॥"

आह, राज-भ्राता हुआ; एक दाँव में दास ।
अरे द्यूत तेरा करे; ईश्वर सत्यानास ॥

उस जोशमें फिर आवाज़ उठी; सहदेव गये तो "नकुल उठो ।
या भाई को वापिस कर लो; या तुम भी सेवा-कार्य्य करो ॥"
क्या बात वहां तो छलही था; इनको भी उलट पछाड़ दिया ।
उस शकुन-मूर्तिका अशकुन कर; शकुनीने शकुन बिगाड़ दिया ॥

पागलके मानिन्द अब; हुये भूपके होश ।
आंखोंमें थी सजलता; वाणीमें था जोश ॥

"लो अबसे अर्जुन रखता हूँ; वह गया, भीम, तुम भी आओ ।
ओ महासमरके विजय-कार; इस द्यूत समरमें चढ़ जाओ ॥
हा हा ! पांसे, यह भी न रहे; बस भ्रात ! गदा नीचे धर लो ।
पापीके भ्राता पार्थ वीर !; अब धनुष बाण नीचे कर लो ॥
भैया शकुनी ! जब राज्य गया; तो झूठी शान रजाई कहां ? ।
लो मैं भी अबसे हाज़िर हूँ; जब भाई गये, तो भाई कहां ?"

आह ! सभामें छा गया; एकाएक कुहराम ।
एक छत्र-पति बन गया; क्षण भरमें नाकाम ॥
अर्जुन, भीम, समेत सब; बैठे शीश झुकाय ।
एक तरफ़ वे धर्म—पति; आंसू रहे बहाय ॥

देख लो, जुआ-बाजो ! यह गति; क्षणमें चेरे नर-नाथ हुए ।
क्या हाथ उठे ? अब पांसे पर; जब हाथ गैरके हाथ हुए ॥
मुँह पर डाल कर दुपट्टे को; खम्भे से झुक कर रोते हैं ।
उस बेशर्मी की रात जगे; शर्म की गोदमें सोते हैं ॥
"द्रौपदी गई" यह सुनते ही; मुर्दे भी क्षण को जाग गये ।
कुछ नीचा सिर कर बैठ गये; कुछ सभा छोड़ कर भाग गये ॥
भीष्मके वदन पर लज्जा की; लहरोंने पर्दा डाल दिया ।
द्रोणाचार्यने माथ टेका; और रोकर भरम निकाल दिया ॥
हो गये विदीर्ण विदुर ज्ञानी; जनता सारी बिलखाती है ।
मानों अब सभा हुई नकटी; और अपनी नाक छिपाती है ॥
कोई सिसक २ कर रोता है; कोई मुंह मूँदे हाथोंसे ।
हो गये अनाथ आज सारे; साथी भी छूटे साथोंसे ॥
यह हालत तो है हिरणों की; कौरवी कसाई-खाने की ।
पाठकगण ! कैसे दशा कहूँ ?; उस हिरणी के दीवाने की ॥

पलटा पांसा देखकर; वापिस हुई निगाह ।
दीवानेके हृदय से; आई ठंडी आह ॥
शकुनीने फिरसे दिया; बे जान को उभार ।
मानों घायल पर चले; रह रह कर तलवार ॥

"हे धर्मवान,सत्यकी-मूर्ति;क्या कुछ भी शेष न दिखलाये ? ।
यह याद रहे, हथयार रहे; पीछे को कदम न हट जाये ॥
पीछे यह रहे न कहने को; हम उससे बाजी पा जाते ।
जो बाक़ी हो तो याद करो; क्यों व्यर्थ अभीसे विलपाते ॥"

विस्मिलके कानों पड़ी; जोशीली तक़रीर ।
आखों में फिरने लगी; द्रौपदि की तस्वीर ॥

"ओ भैया शकुनि, ज़रा ठहरो; मुर्दे की महियत बाकी है ।
ले लो, लो, हाज़िर करता हूँ; नंगे की इज्जत बाकी है ॥
ओ पुष्प-सेज की रनवासिन; आ तूभी सहवासी हो जा ।
हम दास हुए कौरवपतिके; आ, आ तू भी दासी हो जा ॥
पाञ्चाली, द्रुपद-सुते, विदुषे; हम बेशक दुष्ट बेपते हैं ।
जैसे भिक्षा में लाये थे; वैसे ही तुझे बेंचते हैं ॥
शकुनी भैया ! फेंको पांसा; द्रौपदी दांव पर रक्खी है ॥
लो, लज्जा-पति की लज्जा भी; आपके पांव पर रक्खी है ।

शकुनी ने पांसा उठा; सब से कहा पुकार ।
"सुनते हैं सब सभासद्; भूप वीर सरदार ॥"

यह धर्मराज का वचन हुआ; और साक्षी हुई तुम्हारी है ।
यह देखो पांसा जीत का है; बस द्रौपदि हुई हमारी है ॥
वह आह कौनसी राह गई; और कौन चाहमें समागई ।
वह बज्म गई वह रात गई; परवाने खाकर "शमा" गई ॥

वह आह निकलते ही यद्यपि; भीष्मादिक को झुलसाने लगी ।
तो भी क्या ग्रीष्म बदरिया थी ?; जो कुरुपतिको हरियाने लगी ॥
फेंटेका छोड़ वदन पर था; और वदन लगा था घुटनोंसे ।
घुटने सिकुड़े थे छातीसे; और छाती मिली हड्डियों से ॥
हड्डियां जिगर को पकड़ गईं; उसमेंसे एक धुँवा निकला ।
मानों दीवानेके अन्दर; यक ज्वालामुखी कुआं निकला ॥
जल गये वृक्ष, प्राणी सारे; जिस की नाकुछ चिनगारी से ।
वे कुहृदय पत्थर बचे रहे; जो मरे न शर्म कटारी से ॥
ऊपर से एक धार छूटी; बह गये जीव, थल उबल पड़े ।
उस कुसमय की फुलवारी के; पत्थर से पौधे निकल पड़े ॥
हो गई प्रलय की छटा एक; या केवल एक तुषार पड़ा ।
जो जहां खड़ा वह वहीं खड़ा; जो जहाँ पड़ा वह वहीं पड़ा॥
या बिजली टूटी मण्डप पर; तड़ तड़ तड़ तड़ मैदान हुआ ।
यक चीत्कार फैला पहिले; फिर एक साथ सुन सान हुआ ॥
या सारे दर्शक मण्डल पर; फिर गया हाथ जादूगर का ।
जो जैसा था वैसा ही रहा; ना घर का रहा न बाहर का ॥
संतप्त हृदय से पार्थ, भीम; भाई की ओर देखते हैं ।
ज्यों शान–दार मूँछोंवाले; नाई की ओर देखते हैं ॥
मण्डप पर ऐसी गाज गिरी; खुद लज्जा भी खा लाज उठी ।
कुछ भुक भुक बुल बुल भरी हुई; उस सोते से आवाज़ उठी ॥

गायन

हो गया, जो कुछ था होना हो गया ।
खो गया; सर्वस्व अपना खो गया ॥

शान्त हो, कुरुनाथ ! अब भी शान्त हो ।
ज़िन्दगी का ज़ख्म कारी धो गया ॥
जिस के मारे रात भर निद्रा न थी ।
सो गया, वह शूल-कारी सो गया ॥
जो न जा सकता था लड़कर कालसे ।
बस रहो बे खौफ़; वह अब तो गया ॥
"शैलेन्द्र" जिसने भी किया पांसेका शौक-
वह हमारी ही तरह से हो गया ।

इतनी बातों तक रहे; ठीक ठीक औसान ।
फिर एकायक हो गई; उन की बन्द जबान ॥
चौसर, जय और पराजय; अब न रहा कुछ ध्यान ।
लोग सशंकित हो उठे; निकल न जावें प्राण ॥
मद होशी के हाल में; सुने किसी के बैन ।
नहीं काम है मर्द का; यूँ होना बेचैन ॥

जो किया, किया अब क्या गम है?; करतूतों का झांसा देखो ।
चौसर का पांसा देख चुके; अब क़िस्मत का पांसा देखो ॥
इन शब्दों से दीवाने में; हरकत, आई, और, जबाँ चली ।
फिर सर्द हृदय की कमाँ चली; और दर्द भरी फिर फ़ुग़ा चली ॥
आ "पाप ! पाप ! प्रायश्चित ! तू !; किसका मुझ अधम निशाचरका ।
ओ ! पतन, पतन ! और महापतन !; किसका ? महराज युधिष्ठिरका ॥
हा, अयश, लाज, किसकी प्यारी; बिलखाती हुई स्व-पृथ्वी की ।
हत्या; हत्या, हा ! हा ! किसकी?; उस कपिला गाय द्रौपदी की ॥

देखो, देखो, वह धर्मराज; वह देखो, दूत लिये आये ।
देखो, देखो, ओ भीम भ्रात; यह पापों का चिह्न लाये ॥
ओ पार्थ सहोदर, जीते हो !; यह मुझे बाँधते जाते हैं ।
ओ भीष्म चचा ! दौड़ो, दौड़ो;यह तो डण्डे दिखलाते हैं ॥
सहदेव ! ज़रा बतलाओ तो; क्यों कर छुटकारा पाऊँगा ।
इस महा–पाप के बदले में; कौन से नर्क में जाऊँगा ॥
ओ भीम ! उठा तो गदा ज़रा; नाकों में दम कर डाला है ।
ओ वीर धनञ्जय ! धनुष उठा;यह आसमान क्यों काला है ॥
क्या इस अन्धेरे मारग से; यम गणो ! मुझे ले जाओगे ॥
देखो, देखो, वह अर्जुन है; फिर पीछे से पछताओगे ॥
हे विप्रो ! पूज्यो, महिदेवो !; कुछ शांति–मन्त्र उच्चार करो ।
इस पापीका, कुल-द्रोही का; जैसे हो, बेड़ा पार करो ॥"

फिर सँभले, गर्दन उठी; आया तन में जोश ।
इधर उधर को देख कर; रहे ज़रा ख़ामोश ॥

फिर बोले-"हैं,मैं व्याकुल हूँ; यह दुष्ट मुझे विलपाते हैं ।
ओ दुर्योधन ! ठहर तो ज़रा; मोहन को अभी बुलाते हैं ॥"
नटवर, मुर्लीधर, मायाधर; जन फँसा लिया है माया में ।
केशव, माधव, आओ जल्दी; देखो वह बोले,–"आया मैं ॥
उह, ज़रा काम को तुम्हें कष्ट;–ठहरो,ओ पार्थ धनुष लाओ ।
ओ भीम उठाओ गदा शीघ्र; दुष्टों का मर्दन कर खाओ ॥
ओ भूल, भयंकर भूल अरे; ठहरो, ठहरो, यह सार कहाँ ।
तुम दास हुए दुर्योधन के; तुम को वधका अधिकार कहाँ ॥
हे न्यायपते, हे कृष्ण हरे !; मैं ही अघ–कर्त्ता सारा हूँ ।
दे सको तो मुझे शान्ति दे दो; द्वारे आया, हत्यारा हूँ ॥

दुर्योधन का कुछ दोष नहीं; भगवन् ! कौरव न कष्ट पावें।
ओ पार्थ छोड़ दे एक बाण; यह पापी प्राण निकल जावें ॥
ओ भ्रात सुयोधन, मेरे बाद; जनता को कष्ट नहीं देना।
हो कृपा दृष्टि इन दासों पर; और ज्यादा चौथ नहीं लेना ॥
माता गान्धारी और कुन्ती; दोनों समान अधिकारी हैं।
पालना भले अच्छे प्रकार; यह गौवें हुई तुम्हारी हैं ॥
लो कण्ठ लगो,और हिलमिल लो;और बिदा करो मुझको सुखसे।
दो प्रेमके आंसू टपका दो; "जय राधे कृष्ण" कहो मुखसे ॥

फिर सचेत नर-पति हुये; बोले "सोच विचार।
है अब मरने का मुझे; रहा कहाँ अधिकार ॥

मैं दास हूँ भूप सुयोधन का; आज्ञा पालन है कर्म मेरा।
हा राजन् ! आज्ञा दो जन को; बस वही एक है धर्म मेरा॥"
यह करुणा-गीत,यह व्यथा देख; संपूर्ण सभासद बिलखाने।
जो दशा हुई हो लोगों की; वह उसी सभावाले जाने ॥

युवक, वृद्ध, बालक सभी; हाय रहे बिलखाय।
किन्तु अधर्मी का हृदय; ज़रा न धक्का खाय ॥
मुसकाता कहने लगा; "क्या कर रहे प्रलाप।
अब सेवक बनकर रहो; सिर न चढ़ाओ पाप ॥

बा अदब क़ायदे से बैठो; शाही शौकत ताक़ में धरो।
जो कहूँ, सुनो, जो आज्ञा हो; उसको पूरा तत्काल करो ॥"

धर्मराज ने मुकुट को; झट रख दिया उतार।
बोले—" आज्ञा कीजिये; हाज़िर हूँ सरकार ! ॥

मद मस्त, निकाम बेशरम हो; बोला-द्रौपदी करो हाज़िर"॥
उसकी हम इज्ज़त देखेंगे; इस वक़्त सभा में बुलवा कर ॥

यह शब्द न थे वह बिजली थी;जो सब बिजलीको पकड़ गई।
गिर पड़े युधिष्ठिर ग़श खा कर;और देह खम्भसे जकड़ गई ॥
सम्पूर्ण सभा फिर चिल्लाई; बिलखाई,किन्तु न असर हुआ ।
दूसरे दास को हुक्म हुआ; अन्धा अन्धे का पिसर हुआ ॥
"अये नमक ख्वार!आगे को बढ़;तू फ़ौरन पाण्डव शिविरमें जा।
द्रौपदी जिस तरह बैठी हो; बस उसी दशा में लेता आ ॥
शायद है; तेरे कहने पर; कुछ शाही बू भी दिखलाये ।
पर ध्यान रहे, तू जाता है; पीछे को कदम न हटजाये ॥"

भानुमती और द्रौपदी; चित्त रहीं बहलाय ।
काल--दूत भी उसी क्षण; आगे पहुँचा जाय ॥

बे अदब खड़ा सीधा लठ सा;निर्भय हो उसने वचन कहे-।
"सम्राट सुयोधन,कौरव--पति; द्रौपदी साथ चल,बुला रहे ॥
पहले से बतला देता हूँ; सीधे २ चलना होगा ।
सेज का काम करना होगा; भूप के तेल मलना होगा ॥"
नौकर के मुँह में इतनी दम; द्रौपदी बिचारी सहम गई ॥
नादिम सी हुई खड़ी यकदम; और दम बेदम दो क़दम गई॥
बोली-"भैया क्या कहते हो ?; कुरुपति ने मुझे बुलाया है ।
क्या धर्मराज ने मुझको भी; बाज़ी पर आज हराया है ?॥"
नौकर बोला-" हां, तुझे आज; तेरे स्वामि ने हराया है ।
शैय्या की दासी करने को; कुरु-पति ने तुझे बुलाया है ॥"
अब तो द्रौपदी सिसक रुक कर;झुक कर,झांक कर सोचती है।
कँपगई, गई मुख की लाली; दिल चलता है, पर रोकती है ॥
" क्या नीतिमान् कुरु नाथ आज;लाज पर गाज गिरवायेंगे।
शान्तनु महराज, ताज एवं; दोनों की नाक कटायेंगे ? ॥

कह देना भैया देवर से; नारी न सभा में जाती है।
यह याद रहे, इस करतब में; सब की हेटी दिखलाती है॥"

" नौकर बोला—क्या मुझे; देती है उपदेश।
ज्यादा बक बक करेगी; पकड़ घसीटूं केश ॥"
भानुमती यह वाक्य सुन; दहक उठी ज्यों ज्वाल।
"क्या कहता है निशाचर; ओ पापी चाण्डाल ॥

हट दूर मुँह फटे ओ कुत्ते !; तू इतना बढ़ने क़ाबिल है।
ओ बे शऊर पैर की धूलि; तू सर पर चढ़ने क़ाबिल है?॥
यह सम्राज्ञी तू चपरासी; इतनी गुस्ताखी मुँह ज़ोरी।
ओ शह के लगुवे, हट पीछे; मेरे आगे यह शहज़ोरी ?॥
यह जबाँ खींच डालूँ तेरी; जो अबसे ज़बाँ दराज़ी की।
जो "बाल-खाल" का नाम लिया; तो खाल उड़ा दूँ पाज़ी की॥
कह देना जाकर राजा से; यह काला सांप खिलाते हो।
क्यों दोनों वंश लजाते हो; जल्दी से यमपुर जाते हो ॥
क्या दो ही दिन में गर्वीले; वह बिसर गये बल अर्जुन का।
बाल भी न पकड़ सकेगा यह; सारा कौरव-दल अर्जुन का ॥
कह देना बढ़ न जायें ज्यादा; दो दिन की बढ़ी हांक देखें।
कुछ मर्य्यादा भी गये रहें; पुरुषों की चढ़ी नाक देखें ॥
बहिना, बैठो बे फ़िक्र यहां; देखूँगी, यह विचार क्या है ?।
दस पांच मिनट का हुल्लड़ है; वाक़े में वहां सार क्या है?॥"

नौकर ने जाकर कहा; सभी शिविरका हाल।
दुर्योधन के हुक्म से; उठा दुशासन काल ॥

" उठ जल्दी उठ, हो साथ जल्द; दुर्योधन तुझे बुलाते हैं।
जो ज़रा टाल की बात हुई; तो अभी पकड़ ले जाते हैं ॥

गुञ्जायश नहीं बात की भी; अब से दुःशासन आया है।
सीधे चाहे तो आगे हो; वरना यह काल सवाया है॥"

दुशासन की हाँक से; काँपी कपिला गाय।
जैसे मृग को शर लगे; कोई पथ न सुझाय॥

थर्रानी, रानी, बौरानी; घबरानी, वह रानी बानी।
आना कानी, या हित जानी; यों कहा द्रौपदी महरानी॥
क्यों कर खींचूँ वह दृश्य अहो; जो हालत रजस्वला की है।
लेखनी सँभल कर कदम बढ़ा, यह करुणा पतिव्रता की है॥
वह भोली २ सी सूरत; कुम २ कपोल, पर रूखा पन।
राजसी–भाव में सीधापन; सुलझे वस्त्रों में कुछ उलझन॥
इकहरा बदन, रूखे सुकेश; सुर्खी बेरुखी दबकती है।
वह पतली कमर लचकती थी; अलसाई आंख झपकती है॥
गर्वीली, शरमीली, चितवन; कुछ तरसीली दिखलाती है।
कुछ झुकी हुई कर कमल जोड़; ज़ालिम से यों घिघियाती है॥
" देवर, देवर तुम बाजू हो; इज्ज़त हो अपने भाई की।
क्या शक्ल देखना तुम्हें योग्य; मण्डल में इस भौजाई की॥
मैं दासी हुई भूप वर की; सो हाज़िर हूँ, सेवकाई को।
लेकिन ले जाकर महफ़िलमें; मत लज्जित करो भौजाई को॥
फिर एक और लाज की बात; तुमसे देवर ज़ाहिर की है।
आपके वंश की बहू एक; यह अबला रजस्वला भी है॥
मैं हाज़िर हूँ दरबार को भी; पर याद यह पीछे आयेगी।
पुरुषों की इज्ज़त जायेगी; और नाक तुम्हारी जायेगी॥
देवर, देवर, छोड़ दे मुझे; इन दिनों एक पट–धारी हूँ।
क्या बल-धरके बल दिखलाओ; मैं तो यक अबला नारी हूँ॥"

दुःशासन को महन थी; कब इतनी सी बात।
डांट द्रौपदी को दिखा; यों बोला बदज़ात॥

"बस खूब हो चुका व्याख्यान; प्याला मुँहसे भर आया है।
यह बहस उसीसे जाकर कर; जिस शठने तुझे हराया है॥
जो चलना हो सीधे सादे; तो क़दम बढ़ा, आगे हो जा।
वरना इस वीर दुशासन की;बन जा शिकार, मुट्ठीमें आ॥'
रोकर द्रौपदी बिचारीने; यों कहा–"तात! क्या गाते हो?।
क्या अन्य पुरुषका मुख दिखला; भावज का मान घटाते हो॥
फिर यह बतलाओ–महाराज; दासी को पहिले हारे हैं?।
या वे पहले मुझसे देवर ?; सेवक हो चुके तुम्हारे हैं॥
जो मुझे प्रथम वे हारे हैं; तो कुछ मुझको इन्कार नहीं।
जो पहले दास बन चुके हैं;तो फिर मुझ पर अधिकार नहीं॥"

दुःशासन कहने लगा;–"बस न बढ़ा अब बात।
भरी सभामें आज सब; खुल जायेगी ज़ात॥

तू कुलवन्ती, सतवन्ती है; पतिव्रता, पुनीत सुशीला है।
हे लीलावती, देख लेना; जैसी कुछ होनी लीला है॥
जिस जबाँमें आज सिधाई का;करुणा का रस दिखलाता है।
उस जबां का वह अपमान-वाक्य;छाती को फाड़े खाता है॥"

गायन

सावधान, सावधान बेजबान, बद गुमान।
आन,बान,शान,हो सभी कुरबान;कर न मान ओ नादान॥
मान...रिस कृशान भबक उठी, दे न अधिक ज्ञान।
मान...मान...मान

इस प्रकार कह दुःशासन; दौड़ा गुस्सा खाय ।
बेचारी भागी ज़रा; अपनी आब बचाय ॥
किन्तु मर्दके हाथसे; निकले अबलानार ।
पकड़ गई, रोने लगी; करके हाहा कार ॥

लटका जूड़ा झटका पटका; पटका खटका खटका न उसे ।
हठ का मटका जानकर उसे; रानीने भी हटका न उसे ॥
औंधे मुँह गिरा दिया खलने; हाथमें दिया गुर्रा लटका ।
सारी सर–परसे सरक गई; कुछ अंग हो गया बे पटका ॥
दोनों हाथोंसे-साड़ी गह; वह लाज–स्थान बचाने लगी ।
उस अधम कसाईके आगे; वह कपिला गाय रँभाने लगी ॥

गायन

ए मार न डालो,
देवर अनीति करके–गगन फार न डालो ।
तूं अबला नारी; शरण तुम्हारी; मर्द हज़ारी वेणि हमारी
झटको न हाहा खाऊँ–तलवार निकालो ।
गर्दन उतार लो न ले जाओ सभामें–
भावज की न रुसवाई करवाओ सभामें–
श्वानोंसे बोटी बोटी खिलवाओ सभामें
लेकिन रजस्वलाकी, अबला पतिव्रताकी ।
पत जार न डालो...ए मार....

ज्यों २ घोर चिकार दे; विलपी अबला नार ।
त्यों २ लगा घसीटने; वह घातक बदकार ॥

दांतोंसे दांत बजाता हुआ; दिल भर दुर्वाक्य सुनाता हुआ।
ले चला द्रौपदी देवी को; पामर महिपर घिसटाता हुआ॥
मानों सीता सतवन्ती को; यह रावण पापी उठा चला।
और पुरुषोत्तम लक्ष्मण कुमारको; पांसे का मृग भुला चला॥
या चौसर की वीणा सुन कर; हिरनी भीलोंमें आई है।
नर धर्म फन्दमें फँसा लिया; मांदा इस तरह फँसाई है॥
वह कौन हृदय है, जो इस जा; सुनते सुनते न उबल जाये॥
वह कौन गायनाचारी है; जो अबला का रोना गाये॥

जिस जिस कूचे से चली; डकराती वह गाय।
निकल पड़े नर-नारि सब; हाय हाय चिल्लाय॥

आगे आगे दुःशासन खल; हिरणी को खींचे जाता है।
पीछे पीछे जनता-समाज; चिल्लाता रोता आता है॥
प्रत्येक बड़े कों देख सती; कहती है पिता बचा लीजे।
हे माता मुझे बचा लीजे; हे भैया गला छुटा लीजे॥

गायन

क़साई के हाथों पड़ी जा रही हूँ।
फटा वस्त्र लाजों मरी जा रही हूँ॥
छिला पत्थरों में बदन, सर फटा है;
पिताओ, लहू से भरी जा रही हूँ॥
देवर, ओ देवर सँभलने दे थोड़ा।
रहम कर बे परदा हुई जा रही हूँ॥
करो बन्द आंखें, न देखो अज़ीजो।
तुम्हारी हूँ बेटी; सती जा रही हूँ॥

बुज़ुर्गों भरो आह; दिल थाम बैठो–
मैं शान्तनु की लज्जा बही जा रही हूँ ॥
कटा दो यहीं न बुलावो सभा में;
कसम मैं अदम को अभी जा रही हूँ ।
जुआरी पती की त्रिया की यह गति हो ।
सखी मैं जुएं में हरी जा रही हूँ ॥

रोते थे सब निर्वासन से; वश था न राज अनुशासन से ।
डरते थे सब दुःशासन से; कुछ कह न सके दुःशासन से ॥
मींजते हाथ, पोंछते आंख; थामते जिगर आत्मा धारी ।
साड़ी पकड़े चीख़ती हुई; घिसटी जाती अबला नारी ॥

राजमहल के द्वार पर; पहुँच गया जल्लाद ।
गान्धारी के कानमें; पहुँची वह फ़रयाद ॥

माता, माता तेरा सुपूत; पकड़े है अबला नारी को ।
शान्तनु की साख हज़ारी को; और मैया बहू तुम्हारी को ॥
"हैं द्रुपद सुता; बहुअर मेरी; ओ दुष्ट ! छोड़ चिल्लाती है ।"
" आई आई " कहते कहते; गान्धारी बाहर आती है ॥

आते आते मातु के; वह ज़ालिम बदकार ।
पकड़े बाल, घसीटता; जा पहुँचा दरबार ॥

पत्नी–व्रत रखने वालों के; आगे वह पतिव्रता आई ।
परहेज़गार भूपालों के; आगे वह रजस्वला आई ॥
दुर्योधन की दासी आई; और पाण्डव की भार्य्या आई ।
उन बूढ़ों की बहुअर आई; और पुरुषों की लज्जा आई ॥

धर्मज्ञों में विदुषी आई; या सती आई सतवन्तों में।
द्यूत का द्वेषका फल बनकर; या आई दूर-दर्शियों में॥
मर्दों के आगे ज़ालिम से; मजलूमा पज़मर्दा आई।
पुर-दर्द आह या गर्द भरी; शरमीलों की पर्दा आई॥
या पाण्डव की रानी आई; या करुणा की छानी आई।
या दुःशासन की रक्त तृषित; और भारत की बानी आई॥

जहां सभामें ले गया; सती दुःशासन साथ।
भीष्मादिकका अन्त तक; उठा न ऊँचा माथ॥

कोई नीचा सिर कर बैठा; कोई मुँह फेर लगा रोने।
कोई पृथ्वी खोदने लगा; कोई बेखबर लगा होने॥
कामी लुच्चों के आगे यह; करुणा का कोई निशाँ नहीं।
वह रमणी नज़र पड़ी जिसके; तलुवों सी उनकी जबाँ नहीं॥
वह करुणा-पूर्ण कपोल लाल; मोती से आसू ढलक रहे।
मानो वे अरुण-कमलपर कुछ; जलबिन्दु निकलकर झलक रहे॥
मुखड़े ने वह शोभा पाई; दुखड़े का नीर बहा करके।
मानों सौन्दर्य सरोवर से; निकला है चन्द्र नहा करके॥
वे तरसीली करुणित आंखें; उन आंखों में ऐसे पहुँची।
दो बिजली साथ साथ फूले; उन पौधों में जैसे पहुँची॥
उनको न सभा दिखलाती थी; ना आगे कोई भावी थी।
उनकी नजरों में वहां फ़क़त, थे वे या एक द्रौपदी थी॥
जिनकी जानिब थी, पीठ-दुष्ट; वे झुक झुक विकल हो रहे थे।
जिनकी जानिब को देवी थी; वे मानो सफल हो रहे थे॥
टकटकी लगी और आत्मामें, अरमानके मेंढक उछल पड़े।
बे जान "जांन खाँ" बन बैठे; बेदिल दिल देकर उबल पड़े॥

"सौभाग्य दुशासन भाई का; जिस को यह बाँह नसीब हुई।
जिन्नत का लुत्फ़ मिला उसको; जिसको वह छाँह नसीब हुई॥
वाह रे, सुयोधन, खुश किस्मत; जो ऐसी दासी पाओगे।
डर है दासी के आगे तुम; गृह की रानी बिसराओगे॥"

कामी खल कर रहे थे; यों गढ़न्त मन मार।
दुःशासन ने तब कहा; देवी को ललकार॥

द्रौपदी, छोड़ दे शाही बू; दासी है—घूँघट दूर हटा।
श्रीमहाराज का तख्त चूम; जो कहा जाय वह हुक्म बजा॥
दुर्योधन बोला—दुःशासन; इस की साड़ी बाहर कर लो।
नङ्गी कर दो, और सरे आम; मेरे ज़ानूँ पर बैठा दो॥

श्रोता गण! कितनी दफ़ा, लिखूँ वही फ़रियाद।
कौन बात बाक़ी रही; जिसे कहूँ मर्य्याद॥
आज्ञा पाकर दुःशासन; उठा जोश-के साथ।
बेवश बेचारे सभी; ठोकें केवल माथ॥

लेकिन विकरण की आत्मा को; यह कर्म गँवारा हुआ नहीं।
बोला—बस, महाराज इतना; अन्याय न अबतक हुआ कहीं॥
यह गुरु यह भीष्म पिता बैठे; और यह इस सर पर बे शरमी।
झोक दी आग में लाज शर्म; लानत मद की इतनी गरमी॥
यह मुँह सब से मुँहज़ोरी कर; धिक्कार न लज्जा खाता है।
तुम जिसे जाँघ पर रखते हो; वह सती तुम्हारी माता है॥
जेठे भाई की नारी को; शास्त्रों ने माता बतलाया।
अफ़सोस! तुम्हारे गुस्से पर; कुल भर को बट्टा लगवाया॥

सूर्य्यसुवन कहने लगा; चुप लड़के नादान।
मुझे सिखाने आगया; यह बुड्ढों का ज्ञान॥

" तू बच्चा है जा काम देख, जितना मुँह उतनी बातें कर ।
इस राज काज में क्या जाने; इन लोगों में तेरी क्या दर ॥"
" भावी चिल्लाकर आई है; अब कौरव-लोगों के सिर पर ।
पाजाओगे कुछ दिनमें फल;लौटा "विकर्ण" इतना कह कर॥"

दुर्योधन ने फिर कहा; व्यंग वचन उच्चार ।
इस अन्धे दरबार में; आई रमणी नार ॥

द्रौपदी ! अन्धसुत अन्धा हूँ; अन्धे का मण्डल अन्धा है ।
अन्धों में साड़ी फेंक अलग; अब नग्न हुए लज्जा क्या है ॥
केवल तू आँखोंवाली है; या भीम भी नेत्र-सुखारी है ।
फिर इस के आगे लज्जा क्या; वह स्वामी है तू नारी है ॥
बाक़ी तेरे पति अन्धों से; मिलकर अन्धे हो चुके सभी ।
केवल भीम को सूझता है; वह वचन बद्ध हो चुके अभी ॥
बस, निस्संकोच बैठ आकर; या मैं जानूं या तू जाने ।
वरना देख ले दुशासन को; उस की निर्दयता पहचाने ॥

यह निर्लज्जी बात सुन; ज्वाला बढ़ी असीम ।
किन्तु दबाकर रह गये, भटवर अर्जुन भीम ॥
विदुर ज्ञाननिधि ने कहा; बड़ी विनय के साथ ।
होनी है हद से अधिक;अब अनीति नरनाथ ॥

स्मरण रहे यह नारी ही; कण्ठ की फाँस हो जायगी ।
केवल इस की ही आहों से, वंश की नाश हो जायेगी ॥
लेकिन शिक्षक की जिह्वा भी; कुसमय से चुपकी लेने लगी ।
द्रौपदी चतुर्दिश देख देख, इस तरह सान्त्वना देने लगी ॥
ईश्वर है कुपित आज हम पर; जो ऐसा समय दिखाया है ।
लेकिन क्या डर ? द्रौपदी तुझे;जब पांच पुरुष की छाया है ॥

वे शूर वीर जब गदा धनुष; लेकर रक्षा पर आयेंगे ।
यह स्यार उस समय दुम दबाय; दरबार छोड़कर जायेंगे ॥
फिर कृपाचार्य्य गुरु, द्रोणविदुर; भीष्मके सामने क्या होगा ? ।
राजा हैं, ज्ञानी सज्जन हैं; अन्याय नहीं इतना होगा ॥

मन गढ़न्त कर रही थी; द्रुपद सुता जिस काल ।
आज्ञा पाकर भूप की; बढ़ा सती का शाल ॥
पकड़ केश यक हाथसे; पकड़ी साड़ी खींच ।
लगा झटकने वारहा; दुष्ट दुःशासन नीच ॥

जब अत्याचारी के हाथों; वह धारी पहुँची सारी की ।
वारी दो धारी निकल पड़े; दम टूटी द्रुपद दुलारी की ॥
आशा की तरल तरंगोंने; फिर तिनके को पकड़ाया है ।
उस निस्सहाय ने हाय मार; फिर से चीत्कार मचाया है ॥
है एक आँख राजाओं पर; और एक आँख दुःशासन पर ।
है एक हाथ "हा हा करने;" और एक हाथ कुच आसनपर ॥
उम्मेद थी, शायद दरबारी; ऐसे में कुछ इमदाद करें ।
लेकिन कोई न मिला ऐसा; जिसके आगे फ़रियाद करें ॥

शीश झुके, सब के लखे; रही न कोई आस ।
अबला का अब हो गया; ख़तम यहाँ विश्वास ॥

जब समझ लिया अन्धेरा है; आशा टूटी उजयाले की ।
उस विपदा की मझधारा में; सुधि आई वंशीवाले की ॥
"सर्वेश, समर्थ, सर्व—स्वामी; सर्व-गति, सर्व अन्तर्यामी ।
राधावर ख़बर करो जल्दी; लेते हैं लज्जा खल कामी ॥"

गायन

"हे कुञ्जविहारी, गिरधारी; जो तन से सारी जायेगी ।
हे हे हितकारी याद रहे; तो लाज तुम्हारी जायेगी ॥

इस नीच-सभा में जो दासी; इस तरह उघारी जायेगी।
या बात सुधारी जायेगी; या लज्जा धारी जायेगी॥
पांचों पति मौन साध बैठे; बन्धन में बाँधे बेचारे।
हे मुक्ति-सदन, इन फन्दों में; द्रौपदी बिचारी जायेगी॥

हे करुणा-धाम पुकार सुनो; हे राधेश्याम पुकार सुनो।
हे हे निष्काम पुकार सुनो; हे हे घनश्याम पुकार सुनो॥
जैसे बालि के हाथ से प्रभु; सुग्रीव की तुमने रक्षा की।
उस तरह आज हे नाथ, बात; रह जाय बिचारी अबला की॥
ध्रुव के रक्षक अघ के तक्षक; हे दयामूर्त्ति प्रकटो आकर।
जो देर करोगे एक घड़ी; तो लौट पड़ोगे शरमा कर॥
दरबारी सारे त्याग चुके; पाँडव ने शक्ती हारी है।
शरणागत अबला नारी है; गिरधारी वार तुम्हारी है॥

कमल पुष्प से प्रथम ही; प्रकट हुये जो आय।
वे सर्वज्ञ कहाँ रहे; हा हा देर लगाय॥

जो मुझे उघारी कर डाला; फिर आकर, क्या करजाओगे।
पछताओगे, रिसयाओगे; पर लाज न मेरी पाओगे॥

गायन

घेर खड़े खल शेर बने; अजचेरिकी लाज अहेर करेंगे।
हेर रहे चख औचक ही; करुणा-निधि-कानन टेर भरेंगे॥
द्वारिका दूर सकारहिं कारज; बाहनतें नहिं मेर सरेंगे।
बेग चले शमशेर अहेरपै, देर करें बड़े फेर परेंगे॥ १॥
जो गजके हित चाल करी; सोई चाल इते तत्काल न ऐहौ।
राज समाजमें लाज गये; फिर होय अकाज कहा कर लैहौ॥

देख हमें दरबार में नग्न; मुरारि कहूँ छिपकें पछितैहौ ।
ऐहौ भली औ रिसैहौ भली; पर आब गये फिर आब न पैहौ २
बकहारी, बिहारी न आये अहो; बिलपात बिसूरत घूरतनारी ।
थकगे खगकै, रहिगे पगकै; बिसरे मगकै, कछु कान मँझारी॥
जिहि बातपै मूड़ मुड़ाय मुनी, जिहि बातकि आन रटैं श्रुतिचारी।
जिहिंकानसे कान प्रसिद्ध भये; अब जानपरी वहज्ञान बिसारी३
तरुवरके सूखे बरसात बे काम जैसे;
प्राणके गये फिर रक्षा जिम चाम की ।
रो रो मरै रोटी को, दै दीजे षटरस फिर;
धनहिं सँहार प्रीति का रखिहै धाम की ॥
नाहक़ ग़ुलाम, जो निबहै ना ग़ुलामी कह;
नाहक सो स्वामि, भीर लखै न ग़ुलाम की ।
नामकी पुकार पै न विरद सम्हारो आज;
वक्त गये विरद बड़ाई कौन कामकी ॥ ४ ॥"

कोटि भांति भगवान सों; त्रिया रही बिलपाय ।
लेकिन महिमा नाथकी; छिपी वस्त्रमें आय ॥
श्रोतागण ! कुछ समयको; करूँ दृश्य यह बन्द ।
रोते रोते थक गये; करो तनिक आनन्द ॥
नटवर के यक नाट्यका; हुआ यकायक ध्यान ।
लीला, लीला—धामकी; सुनो लगाकर कान ॥

एक दिन बाग़में द्रुपद—सुता; सखियोंके साथ टहलती थी ।
मौसम बहार में नूरदार; रमणी थम थम कर चलती थी ॥
हास्य की तरंगों में रँगकर; आलीं इठलाती जाती थीं ।
गुलकर गुल चुनती जाती थीं; गुल बदना गाती जाती थीं ॥

खुशी खुशी बढ़ रही थीं; जब मतवाली चाल ।
उसी समय उनके निकट; जा पहुँचे गोपाल ॥

नटवर को आता देख वहीं; पाञ्चाली भी हो गई खड़ी ।
उस सौम्य-मूर्तिकी उँगली पर; एकायक उसकी नज़र पड़ी ॥
कट गई कहीं पर माधव की; उँगली से खून बह रहा है ।
और भक्ति-परीक्षक व्याकुल हो; द्रौपदिसे वचन कह रहा है॥
"द्रौपदी ! बड़ी व्याकुलता है; उँगली का दर्द बढ़ रहा है ।
कर कुछ उपाय, यह ज़ख्म मुझे; बिच्छूकी तरह चढ़ रहा है॥"
माधव का कष्ट देखते ही; बेहद अकुलाई पाञ्चाली ।
उँगली पर पट्टी कसने को; सारीकी कोर फाड़ डाली ॥
माधव ने देखा भक्ति भाव; रोने लागी मृग-नैनी है ।
है दर्द मुझे-लेकिन मुझसे; ज्यादा इसको बेचैनी है ॥"

"नटवर यों कहने लगे; मन्द मन्द मुसकाय ।
उफ़ ! थोड़ी सी बातको; इस प्रकार अकुलाय ॥

यह दर्द ज़रा सा उँगली का; इसको यह बदन उदास किया ।
ज़रकशी वेश क़ीमत धारी; सारी का सत्यानाश किया ॥
सारीका नूर बिगाड़ दिया; कोइ कपड़ा फाड़ लिया जाता ।
इतनी क्या अभी ज़रूरत थी; घर जाकर बाँध लिया जाता ॥"

द्रौपदी बोली.

इस लोहूकी धार पर; जिसको रही सँभार ।
ऐसे पामर हृदय पर; बार बार धिक्कार ॥

सुखकारी विपिन-विहारी हित; दुखयारी अबला नारी क्या ?।
सारी सृष्टी निस्सारी है; सारी की एक किनारी क्या ? ॥

कम थी, गर पट्टी के एवज़; यह चमड़ी तहे क़दम बनती ।
इस दमपर दम बेदम बनती; इस लोहूसे मरहम बनती ॥
इससे मैं जल्दी करती हूँ; जो यह ज़ायल हो जायेगी ।
उँगली के घायल होने से; सृष्टी घायल हो जायेगी ॥
यह ज़ख्म नहीं है गिरधारी; क़िस्मत है अबला नारी की ।
जो इसी बहाने से थोड़ी; सेवा करसकी बिहारी की ॥
ज़ख्म पर न ज़ख्मी हुये हाय ! यह पापी प्राण अभागे हैं ।
सच पूछो तो मुझसे बढ़कर; यह पांच सूतके धागे हैं ॥

गायन

सारीकी प्यारी किनारी पै बारी; धारी बिहारी पै बारी,राम ।
सिधारी,अकेली,सुधारी सहेली;गती होके यारीसे न्यारी राम ॥
बांट न लेती तेरा सुख; साथ ले चलती अगर ।
तू बँधी उँगलीमें रहती; मैं चरण की धूलि पर ॥
गिरधारी,बनवारी,सारीकी धारीसी;रखियो सुरतिया हमारीराम।

प्रेम भाव पहिचानकर; बोले करुणा ऐन ।
"मरहमसे बढ़कर हुये; तेरे मीठे बैन ॥

पाञ्चाली द्रुपद–सुते, विदुषे; यह धागे नहीं, वह बन्धन है ।
जिसमें आजीवनके निमित्त; बँध चुका आज मन मोहन है ॥
उँगली कटने पर निकट हुई; तो कट न सकूँगा संकटमें ।
जब निपट कपटमें पट होगा; प्रकटूँगा तब अन्तर-पटमें ॥
यह पांच सूतके धागे ही; धागे धागे दिखलायेंगे ।
जो खल धागे पर धायेंगे; धागे धागे हो जायेंगे ॥
करुणा धारी धारी देकर; धारी धारी हो जाय कभी ।
सारी पर सारी अटके तो; सारी सारी हो जाय तभी ॥

भक्ति--भावमें मगन हो; देकर यों बरदान ।"
उपवनसे गमनित हुये; कृष्णचन्द्र भगवान ॥
भक्ति-प्रेमसे हो गया; नवजीवन संचार ।
पाठकगण ! फिरसे सुनो; वह दुखभरी पुकार ॥

गायन

करुणेश न आये-दीनेश न आये ।
या मुझ को भुलाये;-या अन्त सिधाये ॥
पांचों पति, पण्डित बली; सभी हो गये मौन ।
लज्जापति ऐसे समय; लज्जा राखे कौन ? ॥
जो आप छिपाये-फिर किसको बुलाये ? ।
जो अबलाके रुदन पर; कान न दोगे कान ॥
तुम्हें भक्त की शपथ है; तथा धर्म की आन ।
किस देशमें छाये; दीनेश न आये ॥

इतनी करुणा पर भी जो; प्रगट न हों भगवान ।
तो फिर उनका नाम भी; ले न कोइ गुणवान ॥
वहीं वस्त्रके रूपमें; प्रकटे करुणागार ।
लगा भूमिपर उसी क्षण; अम्बरका अंबार ॥

दो हाथ, पांच, दस सौ दोसौ; लाखों कोटों अबों खरबों ।
उस पांच हाथ की सारीमें; हारी हाथों की ताक़त क्यों ? ॥
जो सारी फाड़ी कृष्ण-हेतु; उस सारी की यह सारी है ।
निस्सारी सारी शक्ति हुई; सारी इस क़दर पसारी है ॥
तूदे तूदे ढेरके ढेर; सारी की बनी पहारी है ।
हट गई समाज पिछारी सब; सारीमें द्रुपद-दुलारी है ॥

क्या जाने नारी सारी है; या सारी ही में नारी है।
या सारी ही की नारी है; या नारी ही की सारी है॥
पिच गया नीच खल खींच खींच; सारीकी अगारी खिंच न सकी।
सत धारी और दिखाने लगी; पहिली ही धारी खिंच न सकी॥
सारी समाजमें नारी और; सारी सारी दिखलाती है।
सारीके बलपर नारी भी; निर्भीक कृष्ण गुण गाती है॥

गायन (भीमपलासी)

लज्जा—पति आये मेरे।
अन्तर पटमें, व्यापक घटमें; लट लटमें छाये—मेरे॥
भीर—भक्त की भनक श्रवण सुन; गरुड़ त्यागधाये—मेरे।
पाण्डव मगन, दुशासन लज्जित; कुरुपति मुरझाये—मेरे॥
जय बनवारी जयति मुरारी; कौन भेद पाये—मेरे।
जन "शैलेन्द्र की" लज्जा रखियो; सदा कीर्ति गाये—मेरे॥

खींच खींचकर अन्तमें; गया दुशासन हार।
फूल झड़े आकाशसे; छायी जय जय कार॥
गान्धारीसे विदुरने; कहा दौड़कर हाल।
"धाओ छुड़ाओ हाथसे; द्रुपद—सुता तत्काल॥

अन्यथा अभी यह महिमा है; कि कपड़ा बढ़ता जाता है।
जो ज़रा और हठ होती है; तो चक्रसुदर्शन आता है॥
क्या बैठी बैठी सिर्फ़ यहां; उनके कर्मों पर रोती हो?।
जो जाकर नहीं छुड़ाती हो; तो आज निपूती होती हो॥

गान्धारी धाई तुरत; विदुर भक्तके साथ।
वहाँ चले धृतराष्ट्र भी; गह सञ्जयका हाथ॥
दांत कँपत फड़कत भुजा; बदन पड़गया लाल।
जाकर बोले क्या करे; ओ पापी चाण्डाल॥

वह सतवंती कुल बहू दुष्ट; यह कर्म हाय धिक्कार तुम्हें।
यह सत्य मूर्ति भाई तेरे; यह धर्म हाय धिक्कार तुम्हें॥

गायन

जो हाथ उठे नारिपर; वह हाथ टूट जाय।
जो आँख उठे नारिपर; वह आंख फूट जाय॥
भाई को दग़ा करके; जो द्रव्य कमाये-
परमेश ऐसे धन को; कोई शत्रु लूट जाय॥
जिस संगमें पर-निन्दा; परघात छिड़ी हो-
ऐसे अधर्मियों का प्रभो !; संग छूट जाय॥

प्यारी पुत्री, द्रौपदी, सती; हे भक्ता, तुझपर बलिहारी।
मैं लज्जित हूँ, जो पाये हैं; ऐसे बेटे अत्याचारी॥
अब शान्ति ग्रहण कर,क्षमा करो;आत्मा का सब संशय त्यागो।
मैं भी धर्म का पिता ही हूँ; बेटी ! जो चाहो वर माँगो॥

द्रुपद-सुता कहने लगी; सुनिये पिता सुजान !।
मैं एवं कुल स्वामि-युत; दास-भाव-निर्बान॥

वाहन एवं, हथयार पिता !; इन वीरों के दिलवाइयेगा।
केवल इतनी ही विनती है; शीघ्र ही भवन पठवाइयेगा॥
वर पाकर देवी सतवन्ती, आनन्द सहित वापिस आई।
पति ने पत्नी को हरा दिया; पत्नी पति को लौटा लाई॥
यह सारी करामात, महिमा; बस, है सतीत्व ही की भाई।
फिर उसे पहाड़ हुआ राई; जिसपर दयालु हैं यदुराई॥

असहायों को इस तरह; देते हैं प्रभु साथ।
श्रोतागण ! मिलके कहो; जयति द्वारकानाथ॥
प्रथम द्यूत का इस तरह; पूर्ण हुआ आख्यान।
कह "विनीत" "शैलेन्द्र" अब, जयति कृष्ण भगवान॥

इति सभापर्व-द्यूतसभा।

श्रीः ।

महाभारत-वनपर्व ।

पाण्डवोंका वनजीवन.

सरल छन्दोबद्ध.

"भाई से लड़ो नीति पै; हठसे न मिटादो ।
स्वारथके लिये वंश; मिटाना नहीं अच्छा ॥"

लेखक-

कविरत्न श्री पं० शैलेन्द्रकुमारजी वाजपेयी.

धर्मालङ्कार, कीर्तनकलानिधि.

आनन्द भवन, गणेशगंज, खण्डवा C. P.

और

काव्य-कला-भूषण अभिनयाचार्य्य कुशल-कवि,

श्री पं० गोविन्ददासजी विनीति, तालबेहट-झाँसी.

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

बम्बई.

श्रीः।

* प्रार्थना। *

चरणोंमें शरण दे कर, जो हम को निभा लेते।
तो हम भी कुछ तुम्हारी, महिमा ही बढ़ा देते॥
छिलते न पैर माधव!; इस दीन की कुटी तक-
हृदयोंमें बिठा लाते; आंखोंको बिछा देते।
क्यों देखती? यह आंखें; औरों की ओर मोहन!-
जो एक बार इनको; वह मूर्त्ति दिखा देते॥
क्या काम और का था!; यह प्रेम-चोचले थे-
हम तुम को मना लेते, तुम हम को मना लेते।
मैला न फ़र्श होता, इज्ज़त न बिगड़ जाती-
जो एक ओर हमसे; प्रेमी भी बिठा लेते॥
समझा ही कहीं होता, केशव! तुम्हें, असलमें-
तो क्यों "विनीत-शैलेन्द्र" यों जन्म गँवा देते?॥



श्रीः ।

कथा–प्रारम्भ ।

विदुर-भवन में पाण्डु-सुत; करते थे निर्वाह ।
किन्तु-न इस पर भी मिटी; दुर्योधन की दाह ॥

लेटा सोने की शैया पर; लेकिन सोने से काम न था ।
विश्राम–भवन के अन्दर भी; उस डाही को विश्राम न था ॥
अपनी फूल का फला फूला; बाप की भूल पर जलता था ।
भीतर आरा सा चलता था; कोई दलिया सा दलता था ॥

उसी समय आया वहां; वह चाण्डाली–गिरोह ।
फिर से नीचों में हुई; बटमारी की टोह ॥

दुर्योधन बोला–" कर्ण भ्रात!; हण्डा उमंग का उबल गया ।
खुल गया भेद मक्कारी का; तोता पिंजड़ेसे निकल गया ॥
आश्चर्य!बेड़ियां कस कर भी;कुछ वश न चला आज़ादों पर ।
राज्य भी गया राजा भी गया; पानी फिर गया मुरादों पर ॥
बैंठे ठाले ठन गया वैर; सारी कोशिश बेकार गई ।
हाथ से सिंहनी निकल गई; बकरों पर पञ्जे मार गई ॥
भैया ! जोड़ो, कुछ नया जोड़; जोड़ियां तोड़ दो जोड़ों की ।
फोड़ दो फफोले छाती के; लस्सी कर दो घर फोड़ों की ॥"

कहा एक ने "नीति–निधि !; व्यर्थ गई यह चाल ।
लेकिन बाक़ी, हैं अभी; यहां सैकड़ों जाल ॥

समझा होगा उन मूर्खों ने; टल गई बात ऐसा हि सही ।
उस भिक्षा से तो अच्छा है; घर बैठे का आटा हि सही ॥

राज्याधिकार के जाने से; वास्तव में उन को चिन्ता क्या ?।
जैसा आया, वैसा खोया; पाने, जाने की ममता क्या ?॥
बात की आन है रोटी तक; पैदायश से भिख-मंगे हैं।
दो दिन को चैन उड़ाली है; अब फिर नंगे के नंगे हैं॥"

आततायियों ने वहीं; किया कपट का मेल।
फिर से होना चाहिये; द्यूत-सभा का खेल॥

दुर्योधन बोला-"प्रिय सौबल!; यह काम तुम्हीं कर पाओगे।
यदि जाओगे, तो बातों में; फांस कर उसे ले आओगे॥
बलवीर! भला, बात है तभी; बेकार न बार चला जाये।
फन्दे से निकला हुआ शेर; चङ्गुल में फँसा चला आये॥"

इस प्रकार उन खलों ने; उसे सिखाय पढ़ाय।
धर्म-राज के पास में; दिया प्रात पहुँचाय॥
खून ख्वार, ग़म ख्वार बन; लगा चढ़ाने रंग।
यथा कामना-शक्ति ने; किया धर्म का संग॥

"महराज! आज लाज का ताज; भिक्षुक बन धारे जाते हो।
अये धर्म-वीर! ना कुछ दुख में; कायर से हारे जाते हो॥
लेकिन इस हार-जीत का कुछ; मर्म भी आपको ज्ञात नहीं।
अये नेक ज़ात! बद ज़ातों की; मालूम आपको जात नहीं॥
शकुनी ने छल के पासों से; सज्जन-वर तुम्हें भुलाया है।
कुरु-पति ने बहू बुला करके; वह पहिला दाग़ धुलाया है॥
जाइये कुशल-पूर्वक घर को; पर कहने को हो जाना है।
दुर्योधन दानी बन बैठा; प्रभु को भिक्षुक कहलाना है॥
इस लिये आइये यह कलंक; धो ही जायें तब चैन करें।
धर्म की विजय, उन नीचों पर; हो ही जाये, तब चैन करें॥

धर्मराज कहने लगे—" प्रिय सौबल बल वीर ! ।
हरगिज़ जा सकती नहीं; इन ज़ख्मों की पीर ॥
मैं हार चुका—वह जीत गये; हो चुकी खबर भू—मण्डल पर ।
अब समता को जायें भी तो; बतलाओ जायें किस बल पर ?॥
हो चुका बन्धु ! जो होना था; होनी ही ऐसी आई है ।
सन्तोष इसी पर होता है; विजयी अपना ही भाई है ॥
हम समझ चुके—सारा प्रयत्न; भावी ने वश में रक्खा है ।
जीवन भर हमें विपति ही है; आराम बन्धु को लिक्खा है॥"
"सौबल" बोला—"भाग्य पर; यदि जाते हैं नाथ ! ।
तो शायद आ गया हो; वही बटाने हाथ ॥
इस लिये आप यह "कर्म-वाद";भूल कर न मुँह पर लाइयेगा।
हो चुका भाग्य का महा-चक्र;अब कुछ कर्त्तव्य दिखाइयेगा॥
यदि "भाग्य-वाद" ही सब कुछ है;तो कर्मों की शिक्षा कैसी?।
यश-अपयश का आशय क्या है? यह पाप-पुण्य-गाथा कैसी?॥
क्या कहते हो?-कुछ रहा नहीं;"कुछ"न हो,बड़ों पर-जब कुछ है।
तो मैं दावे से कहता हूँ—कुछ रहा नहीं, पर सब कुछ है ॥
हरिश्चन्द्र के पास था ?; क्या सु-दान--पश्चात् ।
लाखों रत्नों से नृपति !; बड़ी—बड़ों की बात ॥"
धर्म ने कहा—"यदि आज वहाँ, केवल बात पर फ़ैसला हो ।
तो चलो, दूसरी बार सही; इस का भी खत्म हौसला हो ॥
बात भी बात सी बात बने; सौ बातों की यह बात कहें ।
बात की बात में निर्णय हो; या वे न रहें—या हम न रहें ॥"
लौटी ही थी उन दिनों; कुछ उन की तक़दीर ।
वापिस आये धर्म फिर; दुर्योधन के तीर ॥

हँस कर दुर्योधन खड़ा हुआ; एवं आसन पर बिठलाया।
धर्मावतार ने जाते ही; चौसर का पाँसा मँगवाया॥
कुरुपति बोला-"अये धर्मराज!; हार कर जीत ने आये हो।
तुम पर जो कुछ है, मेरा है; अपने घरका क्या लाये हो?॥
रहने दो, मेरी ही आतें; मेरेही गले न डलवा दो।
घर जाओ, यह बातें न करो; या पहिले पूँजी दिखला दो"॥
उत्तर में कहा युधिष्ठिर ने; जो लाया हूँ, वह हाज़िर है।
यह राज्य-कोष का खेलआज; इतनी शर्त्त पर मुनहसिर है॥
जो शख्श आज बाज़ी हारे; वह बारह वर्ष रहे वन में।
एवं उस को अधिकार न हो; उतनेही दिन तक शासन में॥

गायन

भाग्य को इस बार देखा चाहिये।
यत्न का प्रतिकार देखा चाहिये॥
आज भी टूटे हुए शहतार में-
तार की झनकार देखा चाहिये।
जाय लग धक्के में धक्का एक फिर॥
या-यह किश्ती पार देखा चाहिये।
हो चुका अधिकार अपना अये सुबन्धु
दैव का अधिकार देखा चाहिये।

दुर्योधन कहने लगा-" तो यों रही सलाह।
जो हारे-वह यहीं से; पकड़े वन की राह॥

फल, फूल, मूल पर दिन काटे; राजसी त्याग-संन्यासी हो।
जो जिस हालत में बैठा है; बस वैसा ही वन-वासी हो॥

बारह वर्ष तक रहे वनमें; तेरहवीं वर्ष छिपा जायें।
ग्राम में रहे, काम भी करे; लेकिन कोई न पता पाये॥
यदि पता पा गये और लोग; तो वही दण्ड दोबारा है।
स्वीकृत हो, तो खेलिये आज; इतना प्रस्ताव हमारा है॥"

भीमादिक ने जब सुना; पुनः द्यूत-संवाद।
दौड़े आये सभामें; बोले सहित विषाद॥

"भाई! भाई! पहिले ही अभी; वह दाग़ न धोने पाये हैं।
इस काजल की कोठी में फिर; हे नाथ! किस लिये आये हैं?"॥
धर्म! यह धर्म-दरबार नहीं; छलियों का एक अखाड़ा है।
चलती है बस शैतानों की; धूर्त्तों का यहाँ गुज़ारा है॥
घर की न लँगोटी भी घर है; क्या रख कर दाँव लगाओगे?।
पहिले इज्ज़त दे छूटे थे; अब से क्या देकर जाओगे?॥
यों बढ़ती की आशा न करो; कर्मों से फूलो और फलो।
डालो न हाथ अब कुकरम में; हाहा! भैया! घर लौट चलो॥"

कहा धर्म ने-"क्या करूँ?; हूँ भैया! लाचार।
सहन न होती है, लला! क्षत्रिय की ललकार॥

मैं भली प्रकार जानता हूँ; सौबल ने मुझे भुलाया है।
कौरव-पति ने धोखा देकर; इस के द्वारा बुलवाया है॥
है वही सभा, छल-नीति वही; फिर से वैसा ही फाँसा है।
यह खेल वही, खिलवाड़ वही; यह उसी रोज़ का पाँसा है॥
फिर भी क्या करूँ? मौन ही हूँ; हाथों में इन्हें ले चुका हूँ।
कुरु-पति से शर्त्त हो चुकी है; सौबल को वचन दे चुका हूँ॥
अध कुचले हुए नेवले ने; नागों पर फिर तैयारी की।
यह बाज़ी होने वाली है; राजा से एक भिखारी की॥

या इस काजल की कोठी में; काजल ही नहीं ठहरायेगा।
या इस काले मुँह वाले पर; कालापन कुछ बढ़ जायेगा॥
सब देते हुए-न बोले जब; तो अब भी बात उठाओ ना।
जाने दो, अब जाना क्या है?; निष्कारण वचन तुड़ाओना॥"

हार गये सज्जन सभी; समझा कर सौ बार।
दैवेच्छा-वश भूपको; हुआ न कुछ स्वीकार॥

बोले-"हां महाराज ! आओ; या शकुनि सहायक बैठाओ।
एक ही हाथ की "ले-दे" है; या ले जाओ-या दे जाओ॥"
कुरु-पति बोला -"मेरा हक तो; मामा ही निबटा सकते हैं।
इच्छा हो, यदि तो बदलेमें; आप भी तो बिठला सकते हैं॥"
सौबल बोला-" नर-राज! आज; यह सारा खेल हमीं तक है।
जो शकुनि तुम्हारा बाजू है; तो सौबल इनका सेवक है॥
जो कौरव-राज्य न जीत सकूँ; तो अपना नाम बदलवादूँ।
चौसरके ख़ास खिलाड़ीसे; जो दरबानी ना करवा दूँ॥"

गायन

पलट नर्द सौं नर्द नर्द की गर्द उड़ाऊँ।
गर्द बर्द हर फ़र्द फ़र्द उफ़सर्द दिखाऊँ॥
पड़े तीन का आंक कहो तेरह दरसाऊँ।
पांसा पलटा खाय आपही जो मन लाऊँ॥
पड़े गोट की चोट जब उड़े होश खिलवारके।
एक बारके हाथमें जीतूं दांव हज़ारके॥

निश्चय दोनों ओर से; हुए वही सरदार।
जलती ज्वाला को मिला; ईंधन का आधार॥

शकुनीन जो पांसा फेंका; तो फिर भी पौ बारह आये।
श्री धर्मराज की जानिबसे; वे ही कच्चे बारह आये॥
बस खेल खतम हो गया वहीं;कुरुपति का धौंसा बाज उठा।
वन जाने को नर–राज उठा; पीछे वह धूर्त्त–समाज उठा॥
हास्य–मय तर्कना लिये हुए; शैतान खिल्लियां उड़ा उठे।
चौसर की एक नक़ल लेकर; नक्क़ाल तालियां बजा उठे॥

खेल उठा, चौसर उठी; उठ बैठे खिलवार।
उठा न सिर,सरताज का; उठा प्रकोप–विचार॥

उठते उठते क्रोधाग्नि उठी; वीरत्व लिये संवाद उठा।
पांचों केहरी–कुमारोंके; कण्ठोंसे केहरि–नाद उठा॥
क्रोधमें युधिष्ठिर बोल उठे;–"ओ शल्य दुष्ट!क्या हँसता है?।
कायर लोहेके पिंजड़ेमें; केहरि–कुमार ही फँसता है॥
तू मेरी मां का भाई है; मुझ पर ही यों मुसकाता है।
पापी ! इस बेशर्मीसे क्या ?; यह हृदय नहीं फट जाता है॥
दुर्योधनने जय पायी है; कुरुओंका उनसे नाता है।
इसलिये मुझे इनका हँसना; नीतिसे उचित दिखलाता है॥
तू मेरा मामा बनता है; मेरी ही हँसी कराता है।
मेरे ही पांव पूजता है; मुझ पर ही थूक उड़ाता है॥
कर सब्र, समय आने पर जो; मैं तेरा मान नहीं तोड़ूँ।
तो धनुष–बाण फिर कभी न लूँ;क्षत्रिय भी कहलाना छोड़ूँ॥"

धर्मराज–सत्–शील को; अब खटका यह वैर।
इतना प्रण कर सभामें; रक्खा आगे पैर॥

जब भाई की मचलन देखी; तो पवन–कुमार मचलता है।
गिरगिट का रंग देखते ही; गिरगिट का रंग बदलता है॥

बादल की भांति गरजना कर;आखों को बदल दुशासन पर ।
बाजू ठोंक कर कहा भटने;–"ओ महा नीच ! पापी ! पामर ! ॥
जिन हाथोंसे साड़ी खींची; तूने उस अबला नारी की ।
जिस जंघा पर बिठलाने की; कुरु–पति ! तूने तैयारी की ॥
स्मरण रहे–वह भुजा कभी; दूँगा उखाड़ दुःशासन की ।
फिर गदा–युद्धमें जंघा वह; तोड़ूँगा खल दुर्योधन की ॥
जिस मुँहसे आज्ञा निकली थी;उस मुँह पर गर्द उड़ा दूँगा ।
कौरव–कुलकी नारियाँ छोड़; मर्दोंका नाम मिटा दूँगा ॥

गायन

अभी पिशाच को वीरोंसे पड़ा काम नहीं ।
लगा न आग दूँ, तो भीम मेरा नाम नहीं ॥
बुझा न दूँ, जो मैं; अन्धेके वंश का दीपक–
तो परलोकमें पाऊं- कभी विश्राम नहीं ।
किसी भी वीर का; जब तक कि शत्रु जीवित है–
स्वर्गमें भी उसे मिलता कभी आराम नहीं ॥
मिटाके कौरवी–कुल; जय का न झण्डा फहरे–
तो "शैलेन्द्र" के सच्चे प्रभू घनश्याम नहीं ॥

जो गिन गिन कर पूर्ती न करूँ; इन दुष्टोंके आचरणों की ।
तो धर्मराज की साक्षी है, सौगन्ध कृष्णके चरणों की ॥"

भीम-सेनके इस तरह; प्रण करने के बाद ।
पार्थ–वीरके कण्ठसे; उठा प्रतिज्ञा नाद ॥

"अये पाप मूल ! अये हृदय-शूल !;प्रतिकूल पार्थसे जायेगा ।
जा-कर्ण ! पर्णकी तरह कभी; हो धूल पार्थसे जायेगा ॥

अये पामर कर्ण ! आज लिखले; तूही पापका सहायी है ।
उस भावी--महा--समरमें बस; तुझसे पार्थ की लड़ाई है ॥
यह वंश–वृद्ध दादाजी भी; जो "भीष्म पिता" कहलाते हैं ।
जो अपनी आंखों के आगे; हम पर अन्याय कराते हैं ॥
तुम दोनोंको, जिस दिन अपने; बाणोंका लक्ष्य बनाऊँगा ।
बस उसी रोज़ सच्चा सुपूत; "कुन्ती-नन्दन" कहलाऊँगा ॥"
तब भुजा उठाकर नकुल कहा-"कर्ण का न कुल रहने दूँगा।"
सहदेव भभक कर बोल उठे-"शकुनी का शीश काट लूँगा ॥
देखना हमारे हाथों से; वह चौसर खेली जायेगी ।
हड्डी के पाँसे छूटेंगे; गोट से गोट टकरायेगी ॥
लोथ पर लोथ रक्खी होगी; मरघट में दुर्योधन होगा ।
यह राज--वंश अये पापिष्ठो ! तब भूतोंका भोजन होगा ॥

गायन

सर पै मुसका रही है मौत गुमानी ! तेरी !
आ चुकी अये मेरे सैयाद ! गिरानी तेरी ॥
जाल कमज़ोर पड़ा आ चुकी ज़ञ्जीर पै ज़ंग;
सुबूत दे रही रुख़ से परेशानी तेरी ।
उरूज हो चुका आये ज़वाल के अय्याम;
हमारा क़ौल ही है काल–निशानी तेरी ॥
"विनीति" बाज़ आ "शैलेन्द्र" गुनाहों से अब;
देख पछतायेगा जो बात न मानी मेरी ।"

द्रुपद--सुताने भी वहीं; खोल दिये निज बाल ।
बोली–"दुःशासन हठी ! ; मैं हूँ तेरी शाल ॥

तेरे जीते जी, बालों में; तैलादि सुगन्धि न डालूँगी।
तेरे रक्त से इन्हें धोकर; कंघी से केश सँभालूँगी॥
जिनके बल से इस दासी की; साड़ी ने लज्जा रक्खी है।
बस उन्हीं नाथकी आशा पर; फिर आज प्रतिज्ञा रक्खी है॥
वह खुले केश, बिकाल-वेश; अविशेष महा-भय व्याप उठा।
कौरव-कुलकी कालिका देख; कुरु-पति दुर्योधन काँप उठा॥"

किन्तु, दबाकर भाव वह; मुसका कर मद होश।
खिजलाये नाहरों को; लगा दिलाने जोश॥

"जाओ, पहिले अपने प्रणको; तेरह वर्ष तक निभाने को।
ले आना ढूँढ़ वैद्य कोई; दिल के फोड़ फुड़वाने को॥
क्या धर्म-बन्धुओं को ऐसी; बातों में ही वह शोभा है?।
करना है करके दिखलाना? इस बकने में रक्खा क्या है?॥
या बक झक का पर्दा करके; वह असली झेंप मिटाते हो।
हाथों से हार हाथ आई; बातों से मन समझाते हो॥
अये दासो! खड़े देखते हो; वल्कल-वन-भूषण ले आओ।
पाञ्चाली और पाण्डवों को; मेरे ही आगे पहिनाओ॥
यह शाही ताज उतरवा लो; यह भूषण, कपड़े फिकवा दो।
अपने आगे इन लोगों को; नगरीसे बाहर निकला दो॥"

आज्ञा पाकर-दास झट; लाया वल्कल-चीर।
बोला रखकर वस्त्र वह; धर्मराज के तीर॥

"अये जंगल के जानेवाले!; यह मंगल-साज उतार धरो।
अब शाही नहीं, फ़क़ीरी है; यह शाही-ताज उतार धरो॥
लज्जा के मारे हुए भूप!; साथ में न इन्हें लजा डालो।
जो राज-वंश की लज्जा है; तो कफ़नी का पर्दा डालो॥"

दुर्योधन के हुक्म पर; "उठे भीम किलकार ।
आज्ञा देने का इसे; हम पर क्या अधिकार ? ॥

हम जले हुओं को नालायक़; बे वजह जलाये जाता है ।
आफ़त के मारे दुखियों पर; शाही शौकत दिखलाता है ॥
वन–वासी हैं–लेकिन स्वतन्त्र; अब बन्धन नहीं दासता का ।
आज्ञा दीजे, तो दिखला दें; पापी को मज़ा नीचता का ॥
दंगल में जंग लिये जायें; कुरु-कुल के जंगल हो जायें ।
जंगली जाँय सीधे यम–पुर; हम सीधे जंगलको जायें ॥"

धर्मराज ने बन्धु को; किया वहाँ ख़ामोश ।
बोले–"भैया ! यहाँ पर; है बेजा यह जोश ॥

राजा की समता करते हो; हम सब तो दीन भिखारी हैं ।
वास्तव में अगर पूछते हो; तो उसके आज्ञा कारी हैं ॥
उसकी आज्ञा के कारण ही; जंगल को आज जा रहे हैं ।
उसके शासन के कारण ही; धक्के दर बदर खा रहे हैं ॥
इस लिये निभाया है जैसे; वैसे ही अभी निभाये चलो ।
जो बनी रहे, तो बनी रहे; अपनी ओर से बनाये चलो ॥
वन–वास मिला, खुल गया भाग्य; कैलासी का दर्शन होगा।
काशी–कश्मीर तीरथों का; सुख–पूर्वक देशाटन होगा ॥ "

इस प्रकार कह धर्म नृप; योगी वेष बनाय ।
जङ्गल से प्रति–वास को; चले शीघ्र हर्षाय ॥
नगर–निवासी विवश से; रहे नीर ढलकाय ।
मानो जबरन हाथ से; सरवस निकला जाय ॥

गुप चुप आंसू ढरकाय रहे; कुछ कह कर भी न पुकार सके।
भय के मारे–भेंट तो दूर; सन्मुख कर भी न जुहार सके ॥

धर्म-पति, धर्म-गति-भाव समझ;गति रोक प्रजा से कहने लगे।
गम्भीर हृदय लहराने लगा; नयनों से आंसू बहने लगे॥
"अये इन्द्र-लोक-के देव-गणो!; यह शासन है इन्द्रासन का।
यह खल"त्रिशंकु"इस योग्य न था;इस में हक़ है दुर्योधन का॥
इसलिये हार कर आप इसे; यह भ्रष्ट बुद्धि बन जायेगा।
मत रो ओ भैया ! भावी है; वह समय कभी फिर आयेगा॥"

पाण्डु-तनय यों धैर्य्य दे; ले कर प्रभु का नाम।
चले; बन्धु; गुरु जनों को; करते हुए प्रणाम॥

वह इन्द्र–प्रस्थ का इन्द्र चला; वीरों का वीर–निशान चला।
धर्मज्ञों का सत्–धर्म चला; बल वानों का बलवान चला॥
धर्म के साथ बल–तेज़ चला;चातुर्य्य-ज्ञान-गति विचल चली।
श्री न्याय-राज के चलते ही; वह राज-लक्ष्मी निकल चली॥

चलती में चालाक ने; चली चाल पर चाल।
चलने वालों की रुकी; कुछ ही चलकर चाल॥

इस ओर दुष्ट दुर्योधन ने; दरवाज़े बन्द कराये हैं।
उस ओर पाण्डु–सुत बिलपाते; कोटके किनारे आये हैं॥
लेकिन फाटक पर आते ही; देखा–वे बन्द हो रहे हैं।
हर द्वारे पर युद्ध के लिये; सज्जित भट वृन्द हो रहे हैं॥
सारे द्वारे देखते हुए; कर्ण के द्वार पर आ पहुँचे।
पापी–गण इन्हें देखते ही; ताना देने को जा पहुँचे॥
कर्ण ने कहा–"अये धर्मराज!; क्या अच्छी नारी पाई है।
साड़ी के पर्दे से जिसने; तुम सब की लाज बचाई है"॥
भीम ने कहा–"अये कर्ण सुनो; नर-नारी में क्या अन्तर है?।
शास्त्रीय–नीति पर ध्यान करो, दोनों का हक्क़ बराबर है॥

बेटा आत्मांश कहाता है; नारी अर्धाङ्ग कहाती है।
पति-पुत्र-त्रियाका साम्य-भाव;शुभ"विदुर-नीति"बतलाती है॥
तीनों में से प्रत्येक व्यक्ति; आपस में रक्षा करता है।
यदि नारी ने रक्षा ही की; तो बतलाओ लज्जा क्या है ? ॥
कुलटाओं का यह करतब है; जो कुछ हो, वन वन कर लेलें।
यदि स्वामी कहीं गिर रहा हो; तो धक्का ऊपर से दे दें ॥"

धर्मराज कहने लगे— बारबार बिलखाय ।
"कर्ण भ्रात!इस विपति में; दो मत और जलाय॥"
कर्ण दुष्ट कहने लगा—"सुनो धर्म—अवतार ! ।
राजा का यह हुक्म है; मुझे नहीं अधिकार ॥

हम सब तो उनके सेवक हैं; उनके ही आगे शीश धरो।
जाने के दो ही द्वारा हैं; या विजय करो—या विनय करो॥"
भीम ने कहा—" क्या जाने!कब; लड़ने की नौबत आयेगी?।
मालूम हुआ—आपकी शान्ति; बे वजह जान खा जायेगी ॥

डाट रहे हैं दुष्ट—जन; बने लोह की लाठ ।
पढ़े जा रहे हैं वही; आप शान्ति का पाठ ॥

वैरी का वीर—नाद सुन कर; वीरत्त्व उछालें लेता है।
दुष्टों के आगे महाराज !; अब मौन न शोभा देता है ॥
भाई ! भाई ! आज्ञा दीजे; यह अस्त्र—शस्त्र अकुलाते हैं।
रण—बाँके वीर—कुमारों के; भगवन् ! बाजू खुजलाते हैं ॥
आप मत लड़ो,मत मदद करो;कुछ भी न सिपाही लश्कर दो।
हम दोनों ही निबटा लेंगे; केवल इस मुँह से"हाँ"कर दो ॥
इन खल—वीरों को काट काट; सारा फ़ैसला चुकायेंगे।
या वीरों की तलवारों से; हम वीर—मुक्ति पाजायेंगे ॥

गायन

पाउँ रजायसु तो बद कैं; हतिनापुर की हद सिन्धु में बोरौं ।
बाँह उखार दुशासन की; द्रुपदेश–दुलारि के केश निचोरौं ॥
और मरोर सबै कुरुवे; खल–नीच–दुयोधन कौ मुख तोरौं ।
सौंट सँदै भलि सौंट हि औंट कैं;झौटँन सौ भरि चौंटसे फोरौं॥"

धर्म–राज कहने लगे–"उन का करो यक़ीन ।
जिन के बल से हैं बली; दीन-क्षीण–बलहीन ॥

सर्वस देना, फिर हर लेना; यह माया–पति की इच्छा है ।
हे भाई ! अब से धैर्य्य करो, यह अन्तिम–बार परीक्षा है ॥
केवल बल–वीर कहाने से; हम वीर नहीं कहलायेंगे ।
सच्चे वीर तो तभी होंगे, जब; "आत्म–वीर" बन जायेंगे ॥
बस कर्म–वीर के आगे ही; यह सुख–दुख आया करते हैं ।
मानापमान लाभ या हानि; वे सज्जन पाया करते हैं ॥
ऐसे अवसर पर धैर्य्य–सहित; कष्टों से जय पा जाते हैं ।
उनकी करुणा पर करुणा-निधि;निश्चय करुणा दिखलाते हैं ॥
अर्थात् आत्म–जय पाने से; माधव प्रसन्न हो जाते हैं ।
उन के आगे वीर ही नहीं; त्रैलोक्य–वीर दहलाते हैं ॥
इस लिये हमारी मानो तो; केशव का ही स्मरण करो ।
जो उन की कृपा चाहते हो; तो केवल उन से रुदन करो ॥
मेरा जी न तो शक्ति पर है; और न युक्ति पर जाता है ।
मुझसे मिलकर रोना सीखो; मुझ को तो रोना आता है ॥"

भाई के उपदेश पर; बिलपे पाण्डु–कुमार ।
गूँज उठी आकाश में; वह दुख भरी पुकार ॥

गायन

ज़माना ! हमें तू; मिटाये चला जा ।
भुलाये चला जा; गिराये चला जा ॥
उठा सरको–अये नाज़ से चलने वाले !–
यहाँ एक ठोकर लगाये चला जा ।
ठहर मत ग़मे हिज्र में रोने वाले !–
लगातार आँसू बहाये चला जा ॥
गिरे जा रहे हैं, तेरे भक्त माधव !–
इन्हें टुक सहारा लगाये चला जा ।
नहीं है किसी भी हुनर में यह "शैलेन्द्र"
प्रभो ! इस की योंही निभाये चला जा ॥

विदुर, पाण्डु–सुत, द्रौपदी; पीट रहे सब माथ ।
हुआ "घटोत्कच" प्रकट झट; बोला-"पृथ्वीनाथ ।–

आप पर आप के भ्रातों पर; रक्षक श्री कुञ्जविहारी हैं ।
उन की आज्ञा से सेवक को; सेवायें मिली तुम्हारी हैं ॥
आज्ञा दीजे तो इसी समय; कन्धों पर सब को बिठला लूँ ।
जिस जगह नाथ की इच्छा हो; उस जगह आन में पहुँचा दूँ ॥"

धर्मराज ने उसी क्षण; ली वह सम्मति मान ।
पाँचों भाई उसी विधि; करने लगे प्रयान ।
चलने को तत्पर हुए; जब सत-बल–गुण–धाम ।
जन्म–भूमि की रज उठा; करने लगे प्रणाम ॥

गायन

प्यारी, प्यारी जनम-भूमि माई !; हम तो जाते हैं तेरह बरसको ।
राज से, ताज से नाता तोड़ा;
प्यारी रियाया को रोते छोड़ा;
बिलबिलाते तजे जाति-भाई—....हमतो.... ।
ऐश आराम से कर किनारा;
खूने ग़म पर करेंगे गुज़ारा;
शाह आलम धरेंगे गदाई—.......हमतो....... ।
मरते मरते धरम पै मरेंगे,
शूलियों पै भी उफ़ न करेंगे;
"सत्य"की फेर देंगे दुहाई.......हमतो........ ।
जङ्गलों में फिरें तेरे बारे;
या भरें जेल-ख़ानों में नारे;
न करेंगे गुलामी पराई.........हमतो........... ।
"विनीति" "शैलेन्द्र" इसपर सबर है;
द्वारिका-नाथको भी ख़बर है;
तेरे द्वारे बजेगी बधाई......हम तो...... ।"

पांचोंने फिर विदुर को; झुककर किया प्रणाम ।
आँसू भर कहने लगे—"चाचा, करुणा—धाम ! ॥

वास्तवमें आज ज्ञानियोंके; अये ज्ञान—मूर्त्ति तुम मुखिया हो ।
हम अभागियोंके कारणही; हे महा-भाग्य ! तुम दुखिया हो॥
यदि हम इसको अहसान कहें; तो महा--पाप कहलाता है ।
श्रीमान् तथा हम दासों में; जब पिता—पुत्रका नाता है ॥

वात्सल्य--प्रेम के बन्धन में; जो पिता करे सो थोड़ा है ।
पस उसी सूत्र-वश प्रभुने भी; बेटों का साथ न छोड़ा है ॥
इसलिये आपकी ममता पर; निर्भय यह पाँच दुलारे हैं ।
अब ध्यान रहे हे चाचा जी !; माँ जी आपके सहारे हैं ॥
जबसे दरबार में आये हैं; उस पापी ने हिलने न दिया ।
औरों की बात दूर समझो; मैयासे भी मिलने न दिया ॥
उस बुढ़ियाको; उस दुखिया को; आप ही धैर्य्य देते रहियो ।
कह दीजो सबकी "पाँयलगन"; पीछे यह सन्देशा कहियो ॥

गायन

तेरी सेवा तज गये तिहारे बारे ।
कपटी कौरव-पति संग कपट से हारे ॥
हे अम्ब ! वर्ष तेरह न दिखायेंगे ।
दे माता,आशीश फिर कभी दर्शन पायेंगे ॥
प्रभु ने पहिले जननीसे नेह छुटायौ ।
फिर जन्म-भूमिसे दूर प्रवास दिलायौ ॥
हे अम्ब ! नाथ फिर करुणा लायेंगे ।
दे माता ! आशीश फिर कभी दर्शन पायेंगे ॥

गले लगाकर विदुरने; प्रकट किया निज-भाव ।
"जन्म-भूमिकी लाजको; बेटा ! निर्भय जाव ॥

तुम "चाचा चाचा" कहते हो; मैं खड़ा खड़ा शरमाता हूँ ।
अपना चाचापन देख देख; लाजों से गल गल जाता हूँ ॥

मैं चाचा था, तो अवसर था; चाचापन आज निभानेका ।
इन भोले भाले भक्तों पर; करतब था प्रेम दिखानेका ॥
बल होता तो पशु-बल वाले; बलियों पर बल दिखलानेका ।
आत्माभिमान था तो हमको; मौक़ा था प्राण चढ़ाने का ॥
जो हूँ, जैसा हूँ, जानते हो; अब ज्यादा मुझे लजाओ ना ।
सम्बन्ध एक प्रभु से पालो; लाला ! अब अश्रु बहाओ ना ॥
जाओ, कुमार ! सारी विपत्ति; अब तेरह ही वर्षों तक है ।
है सत्य तुम्हें आधार-रूप; जगदीश तुम्हारा रक्षक है ॥
मां की, जनता की, नगरीकी; सारी चिन्ता केशव को है ।
भक्तों की लज्जा, रक्षा की; सारी परवा केशव को है ॥

एक तुम्हारी आश पर; हैं गौवैं द्विज-वृन्द ।
जाओ सुखसे लाडले !; कुशल करें "गोविन्द"॥
" विदुर " चचाको प्रेमसे ; बारम्बार जुहार ।
तत्क्षण वनकी ओर को; गवने पाण्डु-कुमार ॥
"काम्यक-वन"में जिस समय;सबने किया प्रवेश ।
प्रकट हुआ तत्काल ही; "कर्मिक"-खल दुर्वेश ॥

बोला--"ओहो ! भगवान् आज; सहसा भोजन पहुँचाया है ।
अच्छे, ख़ासे, मोटे, ताज़े; जीवों का जमघट पाया है ॥

वह पाण्डवोंसे बोला

तुम कौन ? कहाँसे आये हो ?; किस महा-विपतिके मारे हो?।
है वीर-वेष, पर किस कारण; यह तपसी-बाना धारे हो ॥"

धर्मराज कहने लगे—" धर्म—पुत्र है नाम ।
पाण्डु-तनय सब भ्रात हैं;-"इन्द्रप्रस्थ" है धाम ॥
यह द्रुपद—सुता बामाङ्गी है; मेहमान तुम्हारे यहां के हैं ।
इससे ज्यादा क्या बतलायें ?; यह दुखिया दीन कहांके हैं ? ॥"
हे वन-वासी ! हम भटक रहे; कुछ दया—भाव स्वीकार करो ।
असहाय तुम्हारे घर आये; कुछ अतिथोंका सत्कार करो ॥
धर्मराज की बात सुन; "हँसा मार किलकार ।
भाग्य उदय है, वाह वा !; विधिने दिया अहार ॥
तुम ही लोगोंमें एक वीर; वह भीम शत्रु कहलाता है ।
जिसका कि स्मरण आते ही; सहसा आत्मा जल जाता है ॥
इसने ही भ्रात "बकासुर" को; प्यारे "हिडम्ब"को मारा है ।
आजसे नहीं, यह पापी तो; जीवन का शत्रु हमारा है ॥
सौभाग्य ! खूब आये, आओ; अपने घर का महमान करूँ ।
छःप्राणी हो, छःदिन तक तो; आज़ादी से गुज़रान करूँ ॥"
कहा भीमने—"वाह वा !; मिले आप भी खूब ।
मुद्दतसे हम लोग भी, रहे फ़िक्रमें डूब ॥
तेरे दोनों भ्राताओंके; पीछे कोई न शिकार मिला ।
सच कहता है-उस दिनसे फिर;तुझको अच्छा न अहार मिला ॥
वे मरा किये, तू खाया किया; अब तेरी बारी आई है ।
खाने वाला करले तलाश; यदि चौथा कोई भाई है ॥
अन्यथा निशाचर लाश तेरी; बेकार पड़ी रह जायेगी ।
कौवे चीलें मँड़रायेंगी; कुछ लोथ सड़ी रह जायेगी ॥

इतना कह कर भीमने एक; मोटा सा वृक्ष उखाड़ लिया।
किर्मिकने एक पहाड़ उठा; अपने शत्रु पर प्रहार किया॥



वृक्ष, तथा पाषाण की; हुई देर तक मार।
लपट पड़े दोनों सुभट; भर भर कर किलकार॥

जंघा ठोक कर ताल देकर; दोनों ही योधा लपटाये।
पटके, झटके, लपटे, चिपटे; नीचे आये, ऊपर आये॥
बल-पूर बली; भर-पूर छली; समतासे मार मारते हैं।
प्रत्येक उपाय लड़ाते हैं; जीतते, न कोई हारते हैं॥

केश पकड़ कर भीमने; खल को दिया पछाड़।
जंगलमें चारों तरफ; छाई एक दहाड़॥

छाई दहाड़, बाजू उखाड़; तत्क्षण पछाड़ कर मार दिया।"
वन जीवों का उद्धार किया; वन-पथिकों का उपकार किया॥

उसी समय महाराज पर; पहुँचे कुछ द्विज-वृन्द।
धर्मराज की उस समय; हुई बोलती बन्द॥

लड़खड़े अधूरे शब्दोंमें; विप्रों का स्वागत किया गया ।
समयानुसार पृथ्वी पर ही; प्रेमसे कुशासन दिया गया ॥
खुद बेचारे उपवास करें; या कन्द–मूल आहार करें ।
लाचार थे, किन सामानोंसे; उन अतिथों का सत्कार करें ॥
पाञ्चालीने वह भाव समझ; श्री सूर्य्य देव का ध्यान किया ।
दिन करने उन पर करुणा कर;शुभ "भोजन-पात्र" प्रदानकिया॥
उसमेंसे दिन भर अतिथों को; भोजन करवाया जाता था ।
लाखों प्राणी भोजन पायें; पर अन्त न आने पाता था ॥
हां–सब को खिला-पिला कर जब;पाञ्चाली भोजन पाती थी ।
तो उसी समयसे कल तक को; उसकी सीमा आजाती थी ॥

दुर्योधनने अगर्चे; दिया उन्हें बन–वास ।
किन्तु, न इससे भी हुआ;उन वीरोंका नाश ॥
दुर्वासा-ऋषि एक दिन; जा पहुँचे दरबार ।
कपटीने हर तरहसे; किया पूर्ण सत्कार ॥
करुणा-कपट,विशेष–छल;क्षुद्र-हृदय कर जोड़–
बोला-"प्रभु!पाण्डवोंने;दिया जोड़ सब तोड़ ॥

वैसे ही तंग हो रहे हैं; दिन–रात उपद्रव आते हैं ।
ऋषि–राज ! पाण्डवोंके मारे; सुख–नींदँ न सोने पाते हैं ॥
उनकी दुर्दशा देख कर प्रभु!;आधा राज्य तक दे दिया था ।
पाण्डुकी मुरव्वतसे–उनके; लड़कों का भार ले लिया था ॥
लेकिन वह "धर्म" नाम धारी; भारत–विख्यात जुवारी है ।
कुछ ही दिन हुए–कमीने ने;फिर सारी सम्पति हारी है ॥
दादा जीने दाया करके; फिर भी सब राज्य दिलाया था ।
इतने पर भी वह अभिमानी; खेलने दुबारा आया था ॥

किस्मत ही उसकी ऐसी है; फिरसे खुल गया दिवाला है।
इस लिये ताड़ना देने को; मैंने देशसे निकाला है॥
लेकिन मैं खूब जानता हूँ; वह सीधे लौट न आयेंगे।
देखना चन्द ही रोज़ोंमें; कुछ नया उपद्रव लायेंगे॥
जो धन दे दो, तो जुआ उड़े; जो-दो न-जगतमें "हाय!" करें।
भगवान! आपही बतलायें; अब कौरव कौन उपाय करें? ॥"

दुर्वासासे तेज-निधि; वहां कपटके ढंग।
क्षण भर ही में चढ़ गया; वहां दूसरा रंग॥

सच है-जो तेरा करतब था; "राजन्! वह तूने निभा दिया।
भिखमंगे भूके भ्राता को; राजों का राजा बना दिया॥
यह भाग्य है उन्हीं अभागों का; जो भाग न अपना बचा सके।
सच है-मेंढकमें शक्ति कहां!; जो भार मेरु का उठा सके॥
अच्छा निश्चिन्त बैठ राजन्!; मैं स्वयं वहां पर जाऊँगा।
या तो सुमार्ग पर लाऊँगा; या नाम मिटा कर आऊँगा॥"

इतना कह कर-चल दिये; ऋषि वन को तत्काल।
वहां साफ़ कर चुकी थी; पाञ्चाली वह थाल॥
दुर्वासा के साथ थे; साठ सहस महमान।
जिन्हें देख धर्मेश के; बिदा हुए औसान॥

स्वागत को पूरे उठ न सके; आसन तकका न ख़याल हुआ।
चर्चा न कुशल क्षेम की चली; खाने का सिर्फ़ सवाल हुआ॥
"राजन्! दिन भर के भूखे हैं; सब से पहिले भोजन को दे।
या साठ हज़ार याचकों का; प्रायश्चित अपने सिर पर ले।"
धीरज धर धर्मराज बोले;-"आसन ऋषिराज! लीजियेगा।
घड़ियों में भोजन बनता है; थोड़ा विश्राम कीजियेगा॥"

धर्मराज दौड़े गये; पाञ्चाली के पास ।
सुनते ही उस पश्न को; बिगड़े होश हवास ॥

पाञ्चाली बोली—"प्राणनाथ !; भोजन तो पूर्ण खो चुकी हूँ ।
वह रवि का वरदानी बर्तन; सन्ध्या के समय धो चुकी हूँ ॥
इसके सिवाय बे चारों पर; दूसरा और क्या चारा था ।
सच तो यह है—वन जीवन में;जीवन का वही सहारा था ॥"

चक्कर आया धर्म को; सुनते ही यह बैन ।
तड़प उठे, रोने लगे; बिलपाये गुण—ऐन ॥

"हा ! राज्य गया,धन-धाम गया;इज्ज़त खोई, वनवास हुआ ।
लेकिन मैं अब तक कहता था; मेरा कुछ नहीं विनाश हुआ॥
मैं सारे काम कर रहा था; केवल धर्म के सहारे पर ।
भूतल पर नाम कर रहा था; केवल धर्म के सहारे पर ॥
सब कुछ खो कर जो रक्खा था; अब वह भी जानेवाला है ।
दुर्दैव ! यह दशा दिखला कर;अब क्या दिखलाने वाला है?॥
हे विश्व-भरण ! किस बिरते पर;भूखे ऋषियों का पेट भरूँ? ।
अथवा, किस जिह्वा के द्वारा; वापिस जाने की विनय करूँ?॥
क्या साठ—सहस्र याचकों की; भूखी आत्मायें जायेंगी ? ।
क्या धर्म—राज के द्वारे भी; ख़ाली आशायें जायेंगी ? ॥
ओ अर्जुन!भीम इस समय पर;कुछ कर दिखलाना अच्छा है ।
या भोजन देना अच्छा है; अथवा मर जाना अच्छा है ॥"

विह्वल होकर वे सभी; लगे पीटने माथ ।
पाञ्चाली कहने लगी—"आओ, यादवनाथ ! ॥

गायन

तड़प रहे हैं, तेरे भक्त; कन्हैया ! आजा ।
अये ग़रीबों के लिये; धीर बँधैया ! आजा ॥
वहाँ था चीर-हरण; धर्म-हरण आज है-हाँ-
भँवर में नाव है; अये हाथ लगैया ! आजा ।
आज नरसी की तरह; धर्म पड़े संकट में-
ओ उस दीन के घर; भात दिवैया ! आजा ॥
ध्यान होगा ? कि-उसी; रूप में दुर्वासा हैं-
कि अम्बरीष के हित; चक्र चलैया ! आजा ।
तुम्हारे आसरे "गोविन्द" सदा है "शैलेन्द्र;"
आन जाती है, मेरे मान रखैया ! आजा ॥"

द्रुपद-सुता की विनय पर; प्रकट हुए भगवान ।
वही सुरीली बाँसुरी; वही मन्द-मुसकान ॥
बस आनेके साथ ही; बोले करुणा ऐन ।
"द्रुपद-सुते ! हो रहा हूँ; भूखों से बे चैन ॥

पीछे से कुशल-प्रश्न करना; पहिले कुछ खाने को ला दे ।
दो चार निवाले खा पाऊँ; तब बात कण्ठ से निकल सके ॥"

द्रौपदी बोली

" माधव ! मुसकाने आये हो; अच्छा है, हँसी किये जाओ ।
यह समय न फिरसे पाओगे; दो धक्के तुम्हीं दिये जाओ ॥
ज़रकशी किनार मांगते हो; फक्कड़-वैरागी-नंगों से ।
भूखका सवाल उठाते हो;क्यों विश्व-भरण ! भिखमंगों से ?॥

दुर्वासा जी के भोजन को; हम सब बेचैन हो रहे हैं।
वे धनुर्धार, वे गदा–वीर; नीचा सिर किये रो रहे हैं ॥
जिसके निमित्त बुलवाया है; सो खूब साधने आये हो।
भगवन् ! भिखारियोंके आगे; क्या भीख मागने आये हो ?॥"

कृष्णचन्द्र कहने लगे;–"क्यों कर रही ठिठोल।
सौभागिन–द्रौपदी ! वह; "सूर्य्य–पात्र" तो खोल ॥

ऐसे अवसर पर भी देवी !; तुझको यह व्यंग सुहाते हैं।
तू हँसी हँसी में टाल रही; यों प्राण हमारे जाते हैं॥"
पाञ्चाली बोली–"मर जाये; आप से झूठ कहने वाली।
मैं शपथ तुम्हारी करती हूँ; सब पात्र हो चुका है ख़ाली ॥"
माधव बोले–"लातो, देखूँ; विश्वास न ऐसे आता है।
ऊँचे घर वालों का रगड़ा; कुछ ऐसा ही हो जाता है ॥"

द्रुपद–सुता ने सामने; पटक दिया वह थाल।
बड़े ध्यान से चौ तरफ़; देख रहे गोपाल ॥

महिमा–धर की महिमा फैली; सिद्धि ने अन्नका रूप किया।
पात्र के होंठ से लगा हुआ; दाने का अंश दिखाई दिया ॥
माधव बोले–"द्रौपदी ! देख; बेकार हमें बहकाती थी।
इसमें तो अन्न भर रहा है; "ख़ाली-ख़ाली" चिल्लाती थी ॥"

इतना कह कर नाथ झट; कर ने लगे अहार।
प्रकट हुआ क्षण–मात्र में; भोजन का भंडार ॥
फिर क्या था ? होंने लगा; भोजनका सब काम।
जन "शैलेन्द्र" की लाज यों; कब रक्खोगे श्याम ॥
कुछ दिन तक इस भाँति से; रहा पूर्ण आल्हाद।
"दुर्वासा" गमनित हुए; देकर आशीर्वाद ॥

एक रोज़ सह देव ने; जाय सरोवर–तीर।
ज्यों ही घट को डुबो कर; भरना चाहा नीर॥
त्यों ही भीतर से एक ग्राह; बोला–"तुम कौन? कहाँ के हो।
क्या जल भरने से पहिले तुम; मेरा उत्तर दे सकते हो?॥"
हे राजन्! जब ग्राह का प्रश्न; उत्तर से खाली निकल गया।
तब वह हिंसक तटपर आकर; सहदेव कुँवर को निगल गया॥
क्रमशः अर्जुन, भीम भट, नकुल; जो सरवर को तैयार हुए।
वे सभी भाग्य के चक्कर से; जाते ही वहीं शिकार हुए॥
धर्मराज भी ढूँढ़ते; जा पहुँचे सर–तीर।
उसी समय तालाब से; हुई गिरा गम्भीर॥
"अये पानी ले जाने वाले!; यह पानी वह ले सकता है।
जो कुछ प्रश्नों का सही सही; मुझ को उत्तर दे सकता है॥
जिसकी आत्मा सद्–गुणागार; विज्ञान--नीति से गर्वित है।
वह बतलाये–इस भूतल पर;कौन सा जीवधर जीवित है?॥"
धर्मराज कहने लगे–"जीवित है जग सोय।
जिसे दया, समता, तथा; सत्य-भक्ति-रुचि होय॥
निष्कपट पराई सेवा में; जिस का सब जीवन बीता है।
वह महा–पुरुष मरने पर भी;सृष्टि के अन्त तक जीता है॥"
उत्तर सुन कर हो गया मुग्ध; सहदेव कुँवर को छोड़ दिया।
श्री धर्मराज से उसी तरह; दूसरी बार भी प्रश्न किया॥
फिर से यों कहा युधिष्ठिर ने;–"जो गुरु-जन-सेवा करते हैं।
वे जीवित हैं–जो कपट–पाप;त्याग कर धर्म पर मरते हैं॥"
पहिचान"धर्म"को जल-चर ने;इस बार नकुल को छोड़दिया।
"किसको जीवित कहना चाहिये"-तीसरी बार भी प्रश्न किया॥

धर्मराज कहने लगे;–"अमर उन्हें ही जान ।
वेद–विधानों की जिन्हें; है विशेष पहिचान ॥
जो इन्द्रिय–जित हैं, योगी हैं; शुचि-भक्ति-सुधा-रस पीते हैं ।
हरि–चिन्तन में जिन की मति है;वे मरने पर भी जीते हैं॥"
ग्राह ने पार्थ को छोड़ दिया; फिर से पूछा–तो कहते हैं ।
'जो काम-क्रोध-मद-लोभ छोड़; योग में निरन्तर रहते हैं ॥
उन भक्त जनों का जीवन ही; जीवों में पूर्ण सार्थक है ।
तुझ से पामर–हिंसक का तो; जीवन निस्सार निरर्थक है ॥"
चौथी बार के समुत्तर से; ग्राह ने भीम को छोड़ दिया ।
फिर जलसे बाहर निकल शीघ्र; सादर धर्मको प्रणाम किया ॥
बोला–"हे हे धर्मावतार !; बस इतनी और दया कीजे ।
जैसे इतना उपदेश दिया; त्योंही पद–रज–प्रसाद दीजे ॥
उस चरण–रेणु के छूने से; मैं असल रूप पा जाऊँगा ।
श्री महाराज के आगे फिर; अपनी बीती बतलाऊँगा ॥
धर्मराज ने मकर को; दिया चरण–रज–दान ।
प्रकट हुआ नर-देह में; "यक्ष" रूप-बल-खान ॥
बोला–"हे राजन् ! किसी समय; मैं यक्ष-राज कहलाता था ।
सेना–समेत शौक़ के साथ; प्रतिदिन शिकार को जाता था ॥
एक दिन किसी बीमारी से; मर गया कहार वहीं राजन् ! ।
तब मेरे आगे पेश हुई; पालकी उठाने की उलझन ॥
मेरी आज्ञानुसार सेवक; नौकर तलाशने को धाये ।
एवं पालकी उठाने को; वे एक साधु को ले आये ॥
वह शान्त–मूर्त्ति बे तर्क किये; पालकी दासके घर लाया ।
द्वारे पर भूखा पड़ा रहा; मुझको भी ध्यान नहीं आया ॥

मैं तो मख़मलके गद्दोंपर; मस्ती में पड़ा सो रहा था।
वह दरवाज़े धूलि में पड़ा; बेहद बेचैन हो रहा था॥
प्रथम पहर पर जागकर; मैंने किया सवाल—
"जाग रहा है? जगतमें; कौन जीव इस काल॥"
साधू बोला—"जो दुख—सुख या; भूखोंसे तृषित हो रहे हैं।
वे ही बेचारे जाग रहे; बाक़ी सब लोग सो रहे हैं॥"
दूसरे प्रहर पर योगी ने; इसका उत्तर यों बतलाया।
"जिन लोगों ने अपना आत्मा; सारे विकारसे बिलगाया॥
जो काम—क्रोध से हो सचेत; योग में निमग्न हो रहे हैं।
वे योगी सिर्फ़ जागते हैं; बाक़ी सब लोग सो रहे हैं॥"
तीसरे पहर योगी बोला;—"जो ज्ञान—निधान—संयमी हैं।
बिरही हैं, अथवा पीड़ित हैं; या रात्रि—जागरण—नियमी हैं॥
जो दिव्य—दृष्टि से तन्मय हो; हरि में तल्लीन हो रहे हैं।
केवल वे भक्त जागते हैं; बाक़ी सब लोग सो रहे हैं॥"
जब चौथे प्रहर प्रश्न पूछा; तो ऋषिवर को गुस्सा आया।
बोले-"अबतक न मूर्ख समझा;सन्ध्यासे क्या क्या समझाया?॥
कानों के पर्दे खुले नहीं; तो आंखें खोली जायेंगी?।
जब ग्राह—रूप हो जायेगा; तब महिमायें दिखलायेंगी॥
जब मुनिवर का प्रताप देखा; तो "हाहा" करके लपटाया।
मुनि ही ठहरे—थोड़े ही में; करुणा का वेग उमड़ आया॥
बतलाया मुनिराज ने; प्रभु द्वारा उद्धार।
आये मेरे भाग्यसे; यहां धर्म—अवतार॥
इस प्रकार कर प्रार्थना; गया "यक्ष" निज धाम।
यहां "द्वैत-वन" में पहुँच; "धर्म" किया विश्राम॥

एक रोज़ द्रौपदी ने; छेड़ा वही प्रसंग ।
महाराज ! हम हो चुके ?; क्या अब निश्चय पंग ॥

आशा ही में मर जायेंगे; दुख–मय जीवन जाते जाते ।
किस फलकी आशा किये रहें ?, जंगलके फल खाते खाते ॥
हम में ऐसे बल–धारी हैं; जो सारी सृष्टी बदला दें ।
उन अन्यायी आत्माओं को; क्षण भरमें बदला दिलवा दें ॥
रोने वालों को सुखी करे; वह कभी नहीं रोसकता है ।
पापी–जीवों को बधने से; हर्गिज़ न पाप हो सकता है ॥
आपकी युद्ध–आज्ञा निश्चय; सब भारतको-सुख-मय होगी ।
खल-मण्डल क्षय हो जायेगा; एवं धर्मकी विजय होगी ॥"

धर्मराज कहने लगे:–"सुन भद्रे ! उपदेश ।
यह अपना उद्धार है; समझ न इसको क्लेश ॥

आत्मा का अविकारी रहना; सारे सुःखों से ऊपर है ।
वह अविकारता-मयी-शुचिता; शान्तिके मूलपर निर्भर है ॥
है शान्ति कहां ?–निर्द्वन्द्वोंमें; निर्द्वन्द्व कौन ?–संन्यासी है ॥
संन्यासी कौन ?–वही समझो; जो केशव का विश्वासी है ।
बेशक हम सब समर्थ भी हैं; दुष्टों से हार न सकते हैं ॥
लेकिन जो बाचा हार चुके; अब उसको टाल न सकते हैं ।
धनको,जनको, तनको, सुखको; सुख–सहित आज ही छोड़ेंगे ॥
लेकिन जीवन के जीवन–धन; धर्मसे न नाता तोड़ेंगे ।
सन्तोष करो, हरि-भजन करो; इन विषयों से नाता तोड़ो ॥
अपने सारे सुख-दुख सुमुखे !; श्रीगिरधरके ऊपर छोड़ो ।"

उसी रोज़ श्रीव्यास जी; वनमें पहुँचे आय ।
द्रुपद–सुता से इस तरह, प्रभु बोले समझाय ॥

"देवी यह महा-कष्ट होना; अन्तिम बार की परीक्षा है।
धैर्य्य से इसे कर सहन देवि !; यह सब माधवकी इच्छा है॥
यह मन्त्र नियमसे जाप करो; इससे सब दुख कट जायेगा।
जिस दिनकी आश लग रही है; वह दिन भी जल्दी आयेगा॥"

द्रुपद-सुता को मन्त्र दे; चले गये मुनिराय।
पार्थ आदि ने भी उसे; ग्रहण किया सुख पाय॥
उसी मन्त्र की सिद्धि को; पार्थ गये कैलास।
तीन मास फल-फूल खा; ठान लिया उपवास॥

हिम-राशी-सर्व-सुपासी-गिरि; जिस पर आसन कैलासी की।
शुभ-सुख-मय कुटिया के आगे; धूनी है उस संन्यासी की॥
तेजो निधान के आगे वह; भट तेज-वान यों भाया है।
मानो शम्भु का भक्त बन कर; साक्षात् वीर-रस आया है॥
सन्तुष्ट हुए शिव आशुतोष; वर देने प्रकटे वर-दानी।
कुछ और रूप से ढुरे मगर; प्रिय अर्जुन पर अवढर-दानी॥
"शुक" को शूकर का रूप बना; भगवती "उमा" के साथ चले।
भूतों-प्रेतों को लिये हुए; बन कर बहेलिया नाथ चले॥

"शूकर" भट के सामने, लगा मचाने शोर।
लेकर धन्वा हाथ में; उठे पार्थ शहज़ोर॥

भील के भेष में शंकर ने; वधने से उनको मना किया।
लेकिन पार्थ ने बिला सोचे; दैत्य पर निशाना छोड़ दिया॥
पर उस मायावी-शूकर पर; उसका कुछ भी न प्रभाव पड़ा।
उलटा वह दैत्य-रूप बनकर; शंकर के आगे हुआ खड़ा॥

क्रोधित होकर शम्भु ने; वहीं धनुष को तान।
कहा पार्थ से-"हठीले !; किया मेरा अपमान॥

मेरे शिकार पर निष्कारण; क्यों हाथ उठाया रे पापी ! ।
मेरे समझा देने पर भी; क्यों ध्यान न लाया रे पापी ! ॥
शठ ! सावधान; धन्वा सँभाल;वह तुझ पर ही निसार होगा।
शूकर का फिर शिकार होगा; पहिले तेरा शिकार होगा ॥"

सुन सकता था ? बात यह; भला पार्थ सा वीर ।
सहसा आकर क्रोध में; छोड़ा शिव पर तीर ॥

शंकर ने एक बाण–द्वारा; वह बाण वहीं पर डाट दिया ।
दूसरा बाण आमन्त्रित कर; अर्जुन का धन्वा काट दिया ॥
अर्जुन ने ज्यों ही खड्ग लिया; शंकर ने मूठ तोड़ डाली ।
मुष्टिक सँभालने से पहिले; शीशे की तरह फोड़ डाली ॥
अपने ऊपर से दाँव बचा; अर्जुन को नाथ लड़ाते रहे ।
वह भक्त-हितैषी शिक्षा-हित;दिन दिन भक्त को खिलाते रहे ॥
लेकिन अर्जुन न मर्म समझे; तो फिर से माया दिखलाई ।
एक ही घात ऐसा मारा; पार्थ को वहीं मूर्छा आई ॥

इस महिमा को देखकर; हुआ वीर हैरान ।
वहाँ भक्त की ओर को; मुसकाये भगवान ॥
उतनी ही मुसकान में; पार्थ गये पहिचान ।
चरणों पर झट गिर गये; दूर हुआ अज्ञान ॥

" ओ माया–पति!इस माया में;सेवक को क्यों भरमाया है ?।
ओ शक्ति-निधे ! क्या इस निर्बल; भुनगे पर ज़ोर जताया है ॥
ओ हृदय ! जिन्हें कह इष्ट देव; आराधन करने आया है ।
उन पर–रे रे पापिष्ट ! देख; तू ने ही बाण चलाया है ॥

हे महाशये ! हे महाभटे !; किस को अज़माने आये हो ? ।
अपने ही हाथों का बना हुआ; क्या खेल मिटाने आये हो?॥
हे दया-मूर्त्ति ! कीजिये दया; माया के मारे चेरे हैं ।
हे सरल-हृदय ! कीजिये क्षमा; अज्ञान-विषयके फेरे हैं ॥



गायन

मुनासिब नहीं है; हमें आज़माना ।
बबूले को क्या; आंधियों से उड़ाना ॥
हैं मारे ज़माने के; खुद मर रहे हैं-
वृथा है, मरों को; हलाहल पिलाना ।
जिसे "वत्स" कह कर; लिया गोद में है-
न ज़ेबा है उसको; कुएँ में गिराना ॥

बिना पंख के यह; पखेरू है "शैलेन्द्र"
तुम्हीं छोड़ दो तो; कहां है ? ठिकाना ॥

शंकर बोले—"यह आज़माना; कुछ मौक़ों पर आवश्यक हैं ।
मैं यही जानने आया था; अर्जुन की शक्ति कहां तक है ? ॥
मैं समझ चुका—रण—कौशल के; जौहर तो तेरे पूरे हैं ।
पूरी शारीरिक—शक्ति भी है; लेकिन शस्त्रास्त्र अधूरे हैं ॥
तुझको तेरे हथयार अगर; यों ही धोखा दे जायेंगे ।
तो दुश्मन दो ही चालोंमें; तुझको नीचा दिखलायेंगे ॥
इसलिये "पाशुपत" लेजा भट !; यह दुखमें हाथ बँटायेगा ।
जब चल सकेगा अस्त्र—शस्त्र;तब यही काममें आयेगा ॥"

इस प्रकार से पार्थ को; करके अस्त्र—प्रदान ।
अपनी सेना—युत हुए; शंकर अन्तर्द्धान ॥
उसी समय आये वहां; सुरपति सहित समाज ।
बोले—"तेरे हाथ है; पुत्र ! भूमिकी लाज ॥

पृथ्वी पर दुष्ट दानवों का; सीमासे बाहर भार हुआ ।
उनका भार ही घटानेको; लाला ! तेरा अवतार हुआ ॥
तू ही ईश्वर की इच्छासे; उन दुष्टों को सँहारेगा ।
इन दैवी—अस्त्रोंके द्वारा; भू—तल का भार उतारेगा ॥
इसलिये और भी अस्त्र तुझे; मौक़े के लिये दिलाता हूँ ।
एवं उनका प्रयोग सारा; आजही पार्थ ! समझाता हूँ ॥
यम—द्वारा पाया काल—दण्ड; वरुणेश्वरने जल—बाणदिया ।
फिर वज्र तथा गाण्डीव—धनुष;सुर-पतिने तुम्हें प्रदान किया॥"

"नन्दी"–नामक रथ प्राप्त हुआ; एवं लाखों हथयार मिले ।
फिर प्रेम–पूर्वक बेटेसे; वे देवोंके सरदार मिले ॥



सुर–पतिने दिव्यास्त्रदे; किया यहां प्रस्थान ।
धर्मराज का वहां पर; सुनिये फिर आख्यान ॥
दुखी देख कर धर्म को; मुनि बृहदश्व सुजान ।
"नल–दमयन्ती" आदिके; कहा किये आख्यान ॥
किन्तु, भीमके चित्त पर; बढ़ता गया विकार ।
वीर–हृदय कब तक रहे ?; इस प्रकार मन मार ॥

बोले–"भैया इस शान्ती का; उलटा प्रतिफल दिखलाताहै ।
वीरोंका उठा हुआ माथा; दिन प्रति दिन गिरता जाता है ॥
ईश्वर जाने, इस शान्तीमें; क्यासे क्या होने वाला है ।
शायद दुश्मनके धोखेसे; भाई भी खोने वाला है ॥
आज्ञा दीजे, ढूँढ़ें जाकर; बदला लें दुष्ट निशाचरसे ।
इस जीवनमें ही दे डालें; पत्थर का उत्तर पत्थरसे ॥"

धर्मराज कहने लगे;–"भीम भ्रात ! रह शान्त ।
तू अपने उद्देशसे; हो जाता है भ्रान्त ॥
यह नहीं क्रोधका अवसर है; अपनी यह आत्म–परीक्षा है ।
फिर भूल गये हो, भीम !–ध्यान; माधव की कैसी इच्छाहै?॥
भूखे भटको, अपमान सहो; दिन रात उठाओ विपदायें ।
सन्तोष करो, मुँहसे न कहो; देखो केशव की लीलायें ॥
जिस दिन अपना यह काल-चक्र; सुखके चक्कर पर आयेगा ।
उस दिन आप ही देख लेना; सारा सामान दिखायेगा ॥"
उसी समय आये वहां; श्री लोमश–ऋषि–राय ।
कहा पार्थ का उन्होंने; सन्देशा समझाय ॥
"राजन् ! इन दिनों पार्थ भटवर; इन्द्र की सभामें रहता है ।
शस्त्रास्त्र तथा रण–विद्या का; अभ्यास बराबर करता है ॥
अतएव आप आनन्द–सहित; तीर्थों की राह लीजियेगा ।
वह कुशल–पूर्वक लौटेगा; चिन्ता न पार्थ की कीजियेगा ॥"
आज्ञा पाकर भूपने; किया शीघ्र प्रस्थान ।
नियम–सहित करने लगे; तीर्थोंमें स्नान ॥
बद्री–आश्रमके निकट; था सरवर शुचि-कूल ।
दीख पड़ा बहता हुआ; उसमें सुन्दर फूल ॥
बढ़ कर उठाय पाञ्चाली यों; बोली भीमसे मलिन-मनहो ।
"सौभाग्य ! अगर इन फूलोंसे; श्रीमधुसूदनका पूजन हो ॥
दासी की इच्छा–पूर्त्ति-हेतु; जाने की नाथ ! कृपा कीजे ।
या एक हज़ार फूल केवल; घर बैठे ही मँगवा दीजे ॥"
सतभामाके लिये ज्यों; पड़ा पार्थ का काम ।
पाञ्चालीके लिये त्यों; चले भीम बल–धाम ॥

गिरि "गन्ध--मदन" कर गये पार; केवल एक ही उछंगीसे ।
पार्थ की तरह कदली--वनमें; मुठ भेड़ हुई बजरंगीसे ॥
भीमने कहा--"अये संरक्षक !; हमको इस वनमें जानेदे ।
भूखा हूँ--भूख बुझाने दे; फूलों की खोज लगाने दे ॥"
हनुमत बोले--"मैं बूढ़ा हूँ; अपने बल उठा न जाता है ।
ताकत अब नहीं टिसकने की; यह चौथापन कहलाता है ॥
जो तुम्हें फूल--फल चाहिये तो; दुम पकड़ हमारी सरकाओ ।
दो एक किनारे लगा हमें; फिर बिना कहे अन्दर जाओ ॥"

पूँछ पकड़ कर भीम ने; सब बल दिया लगाय ।
किन्तु; एक तिल भी उन्हें; सके न वह सरकाय ॥

खुल गये बाल,हो बाल,बाल; लेकिन न बालधी टरक सकी ।
सर--कसी हुई,सरकशी हुई;पर दुम न एक तिल सरक सकी॥
अनजाने दोनों पवन--पूत; आपस में जोर जनाते हैं ।
लेकिन"बजरंगी" के आगे; "वृक अङ्गी" पेश न पाते हैं ॥
दो चार घड़ी खींचा तानी; दो चार घड़ी शंका मानी ।
जब जान लिया बजरंगी को; तब इस प्रकार विनती ठानी ॥

गायन

नमामि वायु--पूत--राम--दूत--अंजनी--लला ।
प्रताप त्वं प्रमाणद सम त मेरु--मेखला ॥
सुकण्ठ--सैन्य--नायकं, प्रवीण--पूज्य--पायकम्;
जगज्जया--कृपा करं सुशान्ति--सौख्य--दायकम् ॥
विशाल--काय--बाल-धी, कराल--काल-गञ्जनम्;
पिशाच--पोच--भंजनं--स्व-भक्त-देव--रंजनम् ॥

"विनीत" भीत बाँकरे !; निबार शोक साँकरे;
प्रसीद पाद–प्रेम में, कुशङ्क बंक हाँकरे ॥

इस पर पवन–कुमार पर; पुलके पवन–कुमार ।
" भैया ! तेरी प्रार्थना; है मुझ को स्वीकार ॥

इच्छित सानन्द फूल लाओ; फल खावो, कुशल–सहित जाओ ।
जो इच्छा हो, वह और कहो; मुझसे संकोच नहीं लाओ ॥
आज ही नहीं, जिस समय, जहाँ; तुम मेरा ध्यान लगाओगे ।
विश्वास रहे अये भक्त भीम !; तत्काल वहीं पर पाओगे ॥

यहाँ "धर्म" कह ने लगे;– "अब क्या करूँ उपाय ! ।
भीम बन्धु ने भी वहाँ; यह दिन दिये बिताय ॥

उस ओर पार्थ का पता नहीं; इस ओर भीम भी चला गया ।
हम चार जीव सीधे साधे; क्या पता चक्र क्या पड़े नया ॥
अपशकुन बराबर होते हैं; बाँया अङ्ग भी फड़कता है ॥
स्वप्न में आज दो रातों से; बादल बीचसे तड़कता है ॥

" धौम्य " पुरोहित ने कहा; "राजन् ! चिन्ता त्याग ।
तुमको करना चाहिये; कृष्ण–चरण–अनुराग ॥

बुलवा "घटोत्कच्च" को लीजे; फिर "गन्धमदन" को चलियेगा ।
प्राकृतिक दृश्य देखते हुए; भट भीम-भ्रातसे मिलियेगा ॥
याद से–"घटोत्कच" आपहुँचा; ले चला शीघ्र आज्ञा पाकर ।
उस गन्धमदन-वनके अन्दर; रख दिया सभीको ले जाकर ॥

भीम बन्धु ने धर्म को; आकर किया प्रणाम ।
उसी जगह कुछ दिनों तक; नृप ने किया कयाम ॥

कुछ दिन उस जगह बास करके; सब बन्धु परस्पर सम्मतिकर ।
पाञ्चाली सहित कुशल-पूर्वक; जा पहुँचे शुचि धवलाचल पर॥
श्रोता गण! अब इस गाथा को; इस जगह स्थगित करता हूँ ।
देवेन्द्र-कुमार पार्थ-भट की; कुछ दैवी-घटना कहता हूँ ॥

लगा हुआ था इन्द्रका; शानदार दरबार ।
इन्द्र-देव के पास थे; बैठे इन्द्र-कुमार ॥

वह इन्द्र-कुमार इन्द्र दोनों; यों इन्द्र-सभा में राज रहे ।
एक ही तख्त पर, एक साथ; मानो दो इन्द्र बिराज रहे ॥
देव-गण पंक्ति--बँध बैठे हैं; आँखें प्रमोद-मद पगी हुईं ।
रस-मय रसिकों की रसनायें; रस--राग-रंग में रँगी हुईं ॥
अप्सरा और गन्धर्वों से; आधा दरबार घिर रहा है ।
आगे को परी उर्वशी का; मीठा सा राग छिड़ रहा है ॥
उर्वशी, उर-बसी अर्जुन के; अर्जुन उर बसे उर्वशी के ।
उस बसा बसी में बसे हुए; थे कुछ आसार बेवशी के ॥
दरबार उठा, भट पार्थ उठा; उर्वशी हृदय-बलिहार चली ।
ऊपर से देह सँभाल चली; भीतर से तन--मन बार चली ॥

जिस कमरे में रात को; लेटा था बल-वीर ।
देव-परी ने उसी की; खड़काई जंज़ीर ॥

पूछा पार्थ ने-"कौन है तू ?"-उत्तर में सुना-"उर्वशी हूँ।"
फिर प्रश्न किया-"क्या काम यहाँ?"-बोली कि-'काम-वश आयी हूँ'
अर्जुन बोले--" देवी ! जाओ; यह रस है जीवन खोने का ।
सुख सोने में छल होने का; दुख बोने का, नित रोने का ॥
तुम देवांगना कहाती हो; इस देव-लोक में रहती हो ।
आश्चर्य्य एक मृत-लोकी से; दुर्विषय-याचना करती हो ॥

इसलिये क्षमा कर देवि ! मुझे; कोई देवता तलाश करो।
इस देव–योनि की क़द्र करो; अपने भविष्य के लिये डरो॥
इस उत्तरसे उर्वशी; गई क्रोध में छाय।
लात मार कर द्वार पर; यों बोली झुलसाय॥
"ओ नामर्द ! तेरी दम पर; मैं बेदम बन कर आई थी।
उफ़ ! किस भालू की गर्दन में; मैंने माला पहिनाई थी॥
जिस शक्ति पै मैं आसक्त हुई; वह शक्ति इसी क्षण खो जाये।
नामर्दी दिखलाने वाला; नामर्द आज से हो जाये॥
शाप दिया यों पार्थको; लौट पड़ी तत्काल।
किन्तु, मौन साधे रहे; भटवर कुन्तीलाल॥
प्रातकाल ही इन्द्रसे; कहा पार्थ ने हाल।
इन्द्र देवने उर्वशी; बुलवायी तत्काल॥
बोले-"ओ रांड ! विषय-भोगिन !; क्या कुल औसान हर गये थे?।
पापिनी ! वीर पार्थ पर मरी ; क्या सारे अमर मर गये थे ?॥
ओ कुलिटा ! सुर-कुलकी डाँकिन; यह चोरी भी शहज़ोरी भी।
बटमारी भी, बदकारी भी; अर्ज़ भी, और मुँह ज़ोरी भी॥
सत्यानाशनी ! ख़ास मेरे; बेटे का नाश कर दिया है।
चाण्डाली ! साफ़ साफ़ बतला; इसका असली कारण क्याहै?॥"
देव–परी कहने लगी–"करो नाथ ! मत खेद।
इस दुख दायनि–शापमें; छिपा हुआ है भेद॥
जिस व्रत पर अर्जुन अटल रहे; वह व्रतही इनका व्रत होगा।
इस अनहित ही में हित होगा; यह विष ही तो अमृत होगा॥
छिपने के लिये पाण्डु--नन्दन; राजा "विराट" के जायेंगे।
तो अर्जुन वहां नपुंसक बन; सुख से साल वह बितायेंगे॥

वह वर्ष पूर्ण हो जाने पर; फिर यथा-रूप हो जायेंगे ।
राजा भी समझ न पायेंगे; कौरव भी ढूँढ़ न पायेंगे ॥

गूढ़-भेद सुन इन्द्र ने; फिर न कही कुछ बात ।
अर्जुन ने भी शान्तिसे; सहन किया आघात ॥
कुछ दिन पीछे इन्द्र से; पाकर कुछ हथयार ।
धर्मराज के पास में; पहुँचे पाण्डु-कुमार ॥
काम्यक-वनमें यहाँ पर; पाण्डव करें बिहार ।
कौरव पापी वहां पर; करने लगे विचार ॥

"दुर्योधन बोला-"कर्ण भ्रात !; मौक़ा है तपन बुझानेका ।
उन दुष्टों को शरमाने का; अर्जुन-भीम को खिजाने का ॥
दानी, मानी, विज्ञानी को; दाने बीनते दिखाना है ।
उस लासानी पटरानी को; महुवे भून ते बताना है ॥
उस हँसने का आज के रोज़; हम उत्तर देने पायेंगे ।
हम ख़ाका उनका खींचेंगे; वे रो कर ख़ाक उड़ायेंगे ॥"

दुर्योधनकी राय पर; सहमत हुए अनेक ।
खींच वहां तक ले गया; उन्हें घोर-अविवेक ॥

पर वैर-पीर से पहिले ही; सर हुई पीर बे पीरों की ।
ख़ाका न उड़ाने पाया है; उड़ गई ख़ाक बलवीरों की ॥
काम्यक-वन में "चित्ररथ" नाम; गन्धर्व बिचरने आया है ।
दुर्योधन को वह वाम-सहित; सरवर में जब दिखलाया है ॥
तब क्रोध-मत्त हो दुर्योधन; अपने शस्त्रास्त्र उठाता है ।
टङ्कार मार कर धन्वा की; बेतरह बाण बरसाता है ॥
अये कामी, लुच्चे, जनी-चेर !; व्यभिचार अनर्थ बढ़ाता है ।
शास्त्रों की आन मिटाता है; दिन में तारे दिखलाता है ॥

अन्धे ! अंधेरा समझ लिया; क़सदन अन्धेर मचाता है।
ले सँभल नीच ! अँधियारे से; यकदम उजयाला आता है ॥"

हुई जहां गन्धर्व पर; हथयारों की मार।
मार मार कर देवने; छीछड़ दिया निकार ॥

वह मार पड़ी दुर्योधन पर; निर्धन की तरह निकल भागा।
कर्णके कर्ण तक भेद दिये; कौरव-दल-मचल विकल भागा ॥
यक सर तबाहियां फैलाकर; हम-सर बाहियां छुड़ा डालीं।
बल-बीर-धीर मर्दानों की; धर धर धिज्जियां उड़ा डालीं ॥
लाली में आई ज़र्दी सी; जोशों में पाई सर्दी सी।
कौरव-दल की मर्दानी में; छा गई साफ़ नामर्दी सी ॥
घूसोंसे घुटने तोड़ दिये; मुष्टिकसे माथा फोड़ दिया।
मुश्कें कसदीं बेकस करके; हाथसे पैर को जोड़ किया ॥
फिर बोला " जा यमलोक, अरे; अन्तःपुरके बसने वाले !!
जी खोल खोलकर रोले अब; ओ दुखियोंपर हँसने वाले !॥
जो ताना देने आया है; वह अपनी मौत मर रहा है।
जिसको ताना देना चाहा; वह देखो-चैन कर रहा है ॥
मिट जाता है, जो दुखियों पर; निष्कारण थूक उड़ाता है।
मुर्दार खाल की आहोंसे; लोह तक भस्म हो जाता है ॥"

इतना कह करले चला; वह जंगल की ओर।
कौरव--दलमें चौतरफ़; फैला दारुण-शोर ॥
सुना भीमने शोर वह; समझलिया सब हाल।
धर्मराजके सामने; जा पहुँचे तत्काल ॥

हँस हँस कर बड़े बढ़ावेसे; राजा की कुगति सुनाने लगे।
फिर स्वार्थ नीति की बातोंसे; धर्म को प्रमोद बढ़ाने लगे ॥

"भाई ! मन भाई हुई आज; वह नाग पौनिया कुचल गया ।
जिस कांटे से कांटा तन था; वह कांटा खुद ही निकल गया ॥
बे मारे हुए, बिना मिहनत; दुश्मन आपही नसाया है ।
हर्रा फिटकरी न ख़र्च हुई; और रंग अनोखा आया है ॥
बस क्या है? चलिये जन्म-भूमि; भू-तलका ताज लीजियेगा ।
हे धर्मराज ! दिल्ली चलकर; दिल्ली का राज्य कीजियेगा ॥

कहा धर्मने-"फिर कहीं; वही स्वार्थ की बात ।
भीम ! सुयोधन शत्रु है; पर-फिर भी है भ्रात ॥

धिक्कार ! तुम्हारे जीते जी; उसने बन्धु पर ढिठाई की ।
हा ! होते हुए भाइयोंके; दुर्गति हो जाये भाई की ॥
घरके अन्दर लड़लो, कटलो; जो कुछ बीतें आफ़तें सहो ।
भीतर एक भी अनेक रहो; लेकिन बाहर को एक रहो ॥
जो दुश्मन होकर गैर शख्श; अपनी इज्ज़त ले जायेगा ।
तो बतलाओ भाई चारा; किस रोज़ काममें आयेगा ॥
जब कोई देश-समाज-जाति; लड़भिड़कर बल खोदेती है ।
तो अन्य जातिके लिये वही; अधिकार-बीज बो देती है ॥

गायन

मिटते हुए को और मिटाना नहीं अच्छा ।
दबते हुए को और दबाना नहीं अच्छा ॥
भाईसे लड़ो-नीति पै; हठसे न मिटादो-
स्वारथके लिये धर्म डिगाना नहीं अच्छा ।
गिरते हुए पै लात उठाना नहीं अच्छा;
रोते हुए को और रुलाना नहीं अच्छा ॥
अपने ज़रासे लोभमें यक गैर कौमको-
"शैलेन्द्र" मित्र "गोविन्द" लाना नहीं अच्छा ॥

जो नीति यथारथ है पकड़ो; लानत भेजो इस स्वारथपर ।
पारथ ! न अकारथ काज करो; श्रद्धा रक्खो परमारथ पर ॥
सीधे छोड़ें तो छुड़ा लाव; वरना–वध कर नाकारेका ।
वह करतब करके दिखलादो; जो फ़र्ज़ है भाईचारेका ॥

आज्ञा पाकर पार्थ भट; चले स्वर्गकी ओर ।
एक घड़ीमें छुड़ा कर; ले आये शहज़ोर ॥
गन्धर्वोंने पार्थसे; किया नहीं संग्राम ।
लज्जासे गलने लगा; कौरव-पति मद-धाम ॥
धर्मराज कहने लगे–"कुरुपति, नीति-निधान ।
सभी जगहपर एकसा; उचित नहीं अभिमान ॥

नीतज्ञ कामसे पहिले ही; प्रतिपक्ष परीक्षा लेते हैं ।
जैसा जब अवसर होता है; नीति को बदल तब देते हैं ॥
बे समझे लड़े चित्ररथसे; फल–रूप हार पाई, भाई ! ।
ख़ैरियत रही, ज़िन्दगी अगर; अब बर क़रार पाई, भाई !॥"

मारे लज्जाके गया; दुर्योधन झुलसाय ।
आत्म–घातके वास्ते; रचने लगा उपाय ॥

बोला–" मुझको यह शर्म नहीं; क्यों गन्धर्वने हराया है ।
लज्जा है, तो केवल इतनी, दुश्मनने मुझे बचाया है ॥
जिस अर्जुन को आज तक कभी; भाई कहकर न पुकारा है ।
जिसके हित एक घड़ीको भी; प्रेम का न भाव बिचारा है ॥
जिसके वध करने को मैंने; षटराग जमाया सारा है ।
उसने इस मर्म प्रत्यञ्चा से; हा बिना बाण के मारा है ॥
दुश्मन से डरना ठीक नहीं; चिउँटी से डरना अच्छा है ।
रिपु–प्राण दान दे, तो ऐसे; जीने से मरना अच्छा है ॥

धर्मराज कहने लगे;—"भूप व्यर्थ है ध्यान ।
बाहर वालों के लिये; हम सब एक समान ॥
यह चिन्ता, लज्जा, या द्विविधा; बिलकुल बेकार दिखाती है ।
भाई तो क्या ? धूल भी कभी; वक्त पर काम दे जाती है ॥
इस लिये न इसका शोक करो; फिर से एकत्र समाज करो ।
आनन्द-सहित वन में विचरो; घर जाओ, अपना राज करो।"
दुर्योधन भी धर्म पर; हुआ विशेष प्रसन्न ।
हर्षित हो कहने लगा;—नीति-ज्ञान सम्पन्न ॥
बेशक आपने हमारे प्रति; सच्चा अहसान जताया है ॥
इस लिये भलाई का बदला; देने को दिल उमड़ाया है ।
इस समय शत्रुता-भाव तथा; अपनत्व महत्व त्यागियेगा ।
संकोच और द्विविधा तज कर; हम से वरदान माँगियेगा ॥
धर्मराज कहने लगे-"भूप नीति-आगार ! ।
किसी रोज़ के वास्ते; यह वर रहा उधार ॥
अवसर पर देखा जायेगा; मेरा वर रहा अमानत में ।
सानन्द यहां कीजिये सैर; अर्जुन, भीम की ज़मानत में ॥
यह सुन कर कुरु-पति उठा और; अपने मण्डल में आया है ।
दो चार रोज़ के लिये वहीं; वन में डेरा लगवाया है ॥
पाण्डव एवं कौरव-गण भी; हिलमिल कर विचरण करते हैं ।
मानो दो भिन्न हृदयवाले; बेवश संभाषण करते हैं ॥
एक रोज़ जब द्रौपदी; गई सरोवर-तीर ।
दुष्ट जयद्रथ ने लखा; वह काञ्चनी-शरीर ॥
पाण्डव लोगों का भ्रातृ-भाव; स्नेह-भाव निर्मूल गया ।
दो ही दिनमें वह नीच अधम; अहसान पार्थका भूल गया ॥

रथ चढ़ा द्रौपदी को पापी; तत्काल वहां से भाग गया।
संवाद श्रवण में पड़ते ही; झट पार्थ सामने आ पहुँचा ॥
ली छुड़ा द्रौपदी घड़ियों में; जयद्रथ का माथा फोड़ दिया।
ले आया बांध--मगर उस को; श्री धर्म राज ने छोड़ दिया ॥

इस प्रकार वन वास के; बीते बारह साल ।
अब तेरहवीं वर्ष का; कहना है कुछ हाल ॥
धौम्य–पुरोहित धर्मपति; करने लगे विचार ।
गुप्त–वास में है फ़क़त; ईश्वर का आधार ॥
एक स्मरण–मात्र से; प्रकटे वेद व्यास ।
धर्मराज कर जोड़ कर; बोले निपट उदास ॥

"हे महाराज ! उपकार--मूर्त्ति!;आज्ञा दीजे, हम जायें कहां ?।
बारहवां वर्ष समाप्त हुआ; तेरहवां साल बितायें कहां ? ॥
जिसको न जान पाये कोई; वह अन्तर–वेष बनायें कहां ? ।
कौरव न जहां पर पहुँच सकें; अपने को नाथ!छिपायें कहां ॥
वे सौ भाई हैं, गिनती में; फिर बलवानोंका लश्कर है ।
मेरा बल उनके आगे प्रभु; तिनके के नहीं बराबर है ॥
वे चाहें तो आकाश और; पाताल में रस्सी डालेंगे ।
हम बहुत छिपें, लेकिन दुश्मन; पृथ्वी से खोज निकालेंगे ॥
चिन्ता न हमें अपनी भगवन् !; यह अबला विपदा सहती है।
हे नाथ ! अनाथ सेवकों की;अब लाज किस तरह रहती है?"
बोले महर्षि–"हे धर्मराज !; राजा विराट के घर जाओ ।
यह पाण्डव वेष बदल डालो; यह तेज जाति-बल बिसराओ॥
उस जगह शान्ति–पूर्वक रहकर;जो अपना समय बिताओगे।
तो अपने अनुष्ठान में तुम; निश्चय ही सफल कहाओगे ॥

राजन् ! यह भावी के दिन हैं; धीरज के साथ काट आना ।
राजसी भाव और अकड़ जकड़; गर्मी न वहाँपर दिखलाना॥"

व्यास देव की राय से; रक्खे कल्पित नाम ।
धौम्य पुरोहित बिदा कर; धर्मराज गुण–धाम ॥
बोले अर्जुन भीम से; बार बार बिलखाय ।
" व्यास देव के वचन भट!; दीजो नहीं भुलाय ॥

छोड़ दो मालकी की बू को; जाना है सात सलामी में ।
आज़ाद शाहज़ादे परवश; पड़ते हैं आज ग़ुलामी में ॥
धन्वा को वीर–बिदाई दो; हे अर्जुन ! वीर धनुर्धारी ! ।
रख दो यह गदा साल भर को; हे हे भट भीम ! गदाधारी ॥
"जी हाँ हुजूर" का सबक़ पढ़ो, "जो हुकम" फ़क़त् ग़ुफ्तार रहे ।
नम्रता मात्र हथयार रहे; हर बात में "हाँ सरकार" रहे ॥

गायन

जिन ते शिव, इन्द्रके काम बने; तिनते परिचारक काम बनेंगे ।
जिन के नर-पाल सु नाम रहे; तिनके लघु-याचक नाम बनेंगे ॥
जिनके बल-धाम ग़ुलाम रहे; अब ते बल-धाम ग़ुलाम बनेंगे ।
बिध वाम सदा गति वाम अहो; भट पारथसे अध वाम बनेंगे ॥

वहीं शमी के वृक्ष पर; टाँग दिये हथयार ।
भीम कहीं से ढूँढ कर; ले आये मुर्दार ॥
आमन्त्रित कर के उन्हें; किये देव रखवार ।
जन "विनीति-शैलेन्द्र" फिर; कल होगा विस्तार ॥

—: शुभमस्तु :—

इति वनपर्व—पाण्डवोंका वनजीवन ।

श्रीः ।

महाभारत-विराटपर्व ।

पाण्डवोंका अज्ञातवास.

❁ सरल छन्दोबद्ध. ❁

"किसकी कभी चली है !; भावीके सामने ।
भावी भी झुक गई है; भावीके सामने ॥"

लेखक-

कविरत्न श्री पं० शैलेन्द्रकुमारजी बाजपेयी.

धर्मालङ्कार, कीर्तनकलानिधि,

आनन्द भवन, गणेशगंज, खण्डवा C.P.

और

काव्य-कला-भूषण अभिनयाचार्य्य कुशल-कवि,

श्री पं० गोविन्ददासजी विनीत, तालबेहट-झाँसी.

मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास,

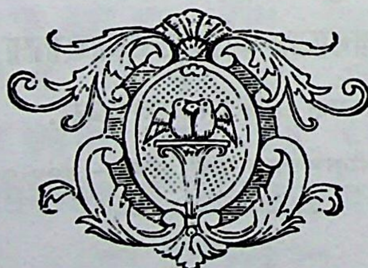
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

श्रीः ।

प्रार्थना.

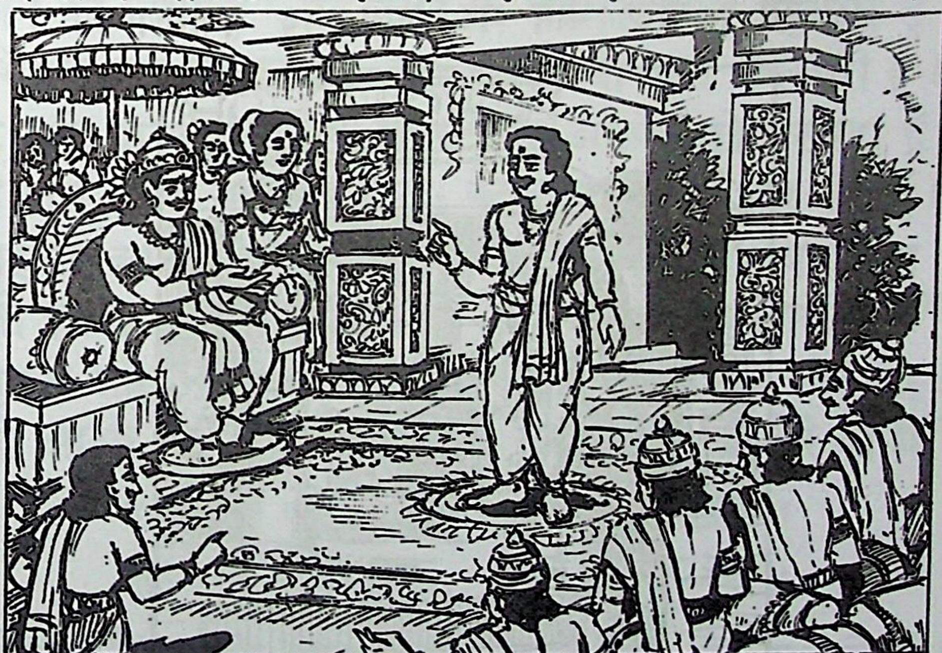
तुम्हारी श्याम ! जो महिमा न दिखाई देती ।
तो सृष्टि आज भी क्यों ? जीसे बधाई देती ॥
गूँज उठता न वह सन्देश तुम्हारा घर घर-
हरेक हाथ में गीता न दिखाई देती ।
ठीक है-कहते हो-"कण कण में दिखाते हो तुम्हीं-"
क्या भला होता ? जो मुर्ली भी सुनाई देती ।
तुम्हारी आन न हम देखते औरों को कभी-
तुम्हारी मूर्त्ति जो यक बार दिखाई देती ।
कृष्ण ! कुछ ध्यान से इस दीन आत्मा की सुनो-
पुकार के तुम्हें; बृजचन्द ! दुहाई देती ॥



कथा–प्रारम्भ।

नृप "विराट" थे उन दिनों;शुभ-गुण–शील-निधान।
पाते थे आश्रय वहाँ; अतिथि तथा विद्वान ॥

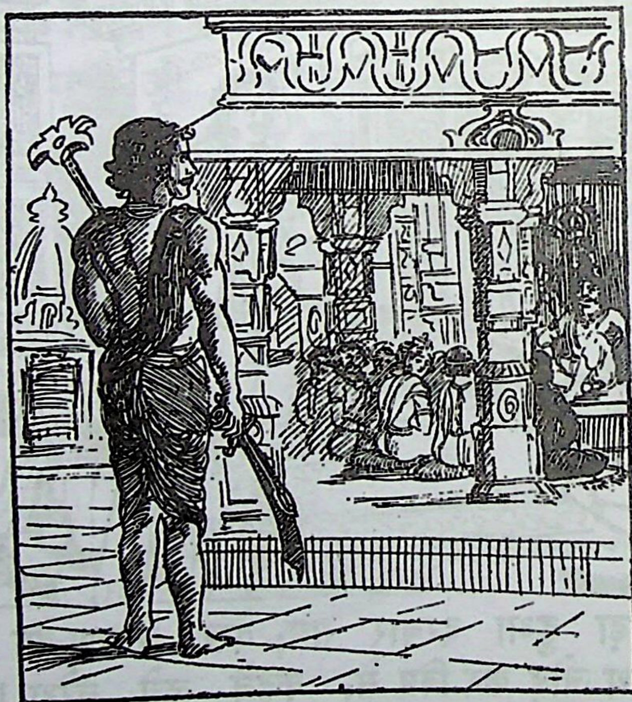
दूसरे "विराट" पाण्डवोंसे; मित्रता मानते आये हैं।
इस लिये उन्हीं से मिलने को; "व्यास" ने उपाय बताये हैं॥
श्री "धर्मराज" ने तो अपना; विप्रका वेष स्वीकार किया।
भीम ने भूख की उलझन से; पण्डा-पन अंगीकार किया॥
सहदेव ग्वाल, या नकुल कुँवर; बाहुक का वेष बनायेंगे।
अर्जुन जिस पथ पर जायेंगे; उस को आगे बतलायेंगे॥
दिल्लीश्वर एक भिखारी बन; उस राज–सभा में आये हैं।
लाखों के प्रतिपालक दानी;–"दाता–दाता" चिल्लाये हैं॥



खड़ा हुआ दरबार सब; देख ब्राह्मण-वेष।
हाथ जोड़ कर विप्र से; कहने लगे नरेश॥

"आइये पूज्य वर-विप्र देव !;कहिये जनको क्या आज्ञा है ?।
धन,धाम,भूमि,तन, जनमें से;हे देव ! कहो क्या इच्छा है ?॥
क्यों खड़े हुए हो ? दूर दूर; द्विजराज ! बराबर आइयेगा।
क्या करते हो?क्या इच्छा है?;कुछ नाम-ग्राम बतलाइयेगा॥"
द्विज वेषी धर्मराज बोले-;"भिक्षुक वन में से आया है।
दिल्ली-प्रदेश का वासी है; एवं काल का सताया है॥
काल के चक्र के चक्कर से; यह भिक्षुक-पेशा पाया है।
श्री व्यास देव ने सेवक का;" कंक " ही नाम बतलाया है॥
पस केवल शरण राखियेगा; इतना ही मुझे सहारा हो।
पेट की आग को आध सेर; आटे का कोई द्वारा हो॥

बड़े प्रेम से भूप ने; बिठलाया सन्मान।
उस के पीछे भीम-भट; आये मेघ समान॥



कच-भुज-प्रलम्ब, आकार-दीर्घ; विकाल नयन मतवाले से ।
ऊँचा मस्तक, मोटी गर्दन; अंगों के ढंग निराले से ॥
उस विकट-रूप को देख सभी; दरबार यकायक थर्राया ।
मानों मेंढों के मण्डल में; मद–मस्त–प्रौढ़–पाढ़ा आया ॥

चकित चितै चारों तरफ़; कहने लगे नरेश ।
"अये भाई ! तुम कौन हो ?; कहां तुम्हारा देश ? ॥"

भीम ने कहा–" श्री महाराज !; सेवक दिल्ली का वासी है ।
श्री धर्मराज के साथ साथ; बन गया आज बन–वासी है ॥
जिस दिन से पाण्डव लोगों का; घर से वन-वास हो गया है ।
उस दिनसे सभी जीविका का; प्रभु ! सत्यानाश हो गया है ॥
जन को "जयन्त" सब कहते हैं; धर्मका एक अनुचारी हूँ ।
भिक्षुक जब पालन हार हुए; तब मैं भी बना भिखारी हूँ ॥
हे प्रति पालक ! उन के पीछे; अब अधपेट को भर रहा हूँ ।
हे नाथ ! पेट भर अन्न मिले; केवल यह विनय कर रहा हूँ ॥
षट्-रस-व्यञ्जन इच्छानुसार; नित–नूतन नाथ ! बनाऊँगा ।
जो इतना खाया पाऊँगा; तो नया जन्म पा जाऊँगा ॥"
नृप ने सप्रेम निकट बैठा; यह कहा–"धर्म के चेरे हो ।
तो आओ, मेरे पास रहो; तुम सखा-सुहृद–वर मेरे हो ॥"

पण्डा बन कर भूप के; रहे भीम, राजेश ।
वहाँ पार्थ ने भी किया; बही नपुंसक–वेश ॥

द्रौपदी–प्रिया के वस्त्र तथा; गहने देह पर सजाये हैं ।
ढोलकके साथ सभामें जा; "जय-जय" कह गीत सुनाये हैं ॥

गायन

किसकी कभी चली है ?; भावी के सामने ।
भावी भी झुक गई है; भावी के सामने ॥
त्रैलोक के रक्षक थे; सीता के साथ में--
रक्षा न हो सकी है; भावी के सामने ॥
सन्मान, दान, मान कहाँ बिक गया ? दानी--
शैव्या जहाँ बिकी है, भावी के सामने ॥
त्रैलोक्य-मान्य--धर्मराज, द्यूत की बेला--
वह बुद्धि क्या हुई है ?; भावी के सामने ॥
" शैलेन्द्र " तेरी पीठ पै; "गोविन्द" सदा हैं ।
तुझ को ही क्या पड़ी है ? भावी के सामने ॥

"नाम-ग्राम" पूछा गया; किया पार्थने व्यान ।
"महाराज ! इस दास का; है दिल्ली स्थान ॥

संगीत-शास्त्र सिखलाता हूँ; नृप ! "बृहन्नडा" कहलाता हूँ ।
छः राग, रागनी छत्तीसों; प्रत्यंग-सहित बतलाता हूँ ॥
जिस समय धर्म दिल्लीश्वरने; जंगल को क़दम उठाया है ।
"अपना ही घर कहकर"-मुझको; नाथ के यहां पहुँचाया है ॥
हे नाथ ! वर्ष भर सेवक के; कपड़े-अन्न का भार लीजे ।
एवं संगीत-शास्त्र का कुछ; हे पृथ्वी-नाथ ! काम दीजे ॥"

नृपवर बोले—"अच्छा तुम भी; आनन्द-पूर्वक गाया करो।
इच्छित—भोजन कर लिया करो;बेटीको राग सिखाया करो॥"



"बृहन्नडा" के बाद में; जा पहुँचे सहदेव।
वही बात—इच्छा वही;—"नाथ ! शरणमें लेव॥
मैं धर्मराजका गवाला हूँ; और "सेनगोप" कहलाता हूँ।
गौओं का वंश बढ़ाता हूँ; घोड़ों को चाल सिखाता हूँ॥
बस यही प्रार्थना है राजन् !; गौओं का सेवक कीजेगा।
केवल कपड़ा रोटीका ही; प्रतिपालक ! ज़िम्मा लीजेगा॥"
"गौ–सेवा"—सहदेव को; जब सौंपी नर-पाल।
आ पहुँचे तब नकुल भी; "बाहुक" बन तत्काल॥
अपना गुण कहकर नकुल; हुए नृपतिके दास।
विदुषी "पाञ्चाली" वहां; जा पहुँची रनि-वास॥

"देवी है, रति है, रम्भा है; या नाग-राज की जाई है ।
या स्वयं छबीली पर छबि ही; वैरागिन बनकर आई है ॥
श्रोता गण ! यहां द्रौपदी का; बेकार स्वरूप दिखाना है ।
शृङ्गार-मार्ग को छोड़ यहां; दासी का भाव बनाना है ॥
वह कमलांगी, रति-मद-हरणी; जब रनिवासमें पहुँचती है ।
एवं आभा की एक ज्योति; जब ख़ास महलमें पड़ती है ॥
तब रानी चका चौंधयानी; झठ उठकर बाहर आती है ।
उस रूप-वती पर रूपवती; प्राण से निछावर जाती है ॥
"बहिना ! कौनहो ? कहांकी हो?; किस महा-पुरुषकी जाई हो ?।
मेरा सौभाग्य बढ़ाने को; हे देवि ! कहांसे आई हो ? ॥"
देवी बोली-"मैं देवि नहीं; साधारण कुल की जाई हूँ ।
धर्म के महल की चेरी हूँ, देवि के भवन में आई हूँ ॥
जिस काल-चक्रके चक्कर में; कालेश्वर चक्कर खाता है ।
उस महा-शक्तिकी समतामें; फिर चेरीकी गिनती क्या है?॥"

प्रतिभा, मृदुता, शिष्टता; तथा दीनता-चाल ।
संभ्रम में रानी हुई; सकी न भेद निकाल ॥

पूछा-क्या पेशा करती हो ?; आली ! क्या नाम तुम्हारा है ?।
उत्तर में बोली पाञ्चाली; "सैरन्ध्री" नाम हमारा है ॥
राजसी नियम से थाल साज; भोजन आपको कराऊँगी ।
इच्छानुसार नखसे शिख तक; सारे शृङ्गार सजाऊँगी ॥
पर रानीजी ! स्वामि के साथ; दूरकी सलामी ठीक नहीं ।
जो नमक किसी का खा जाये; तो नमक हरामी ठीक नहीं ॥
इसलिये, हृदयकी एक बात; स्पष्ट प्रथमही कहती हूँ ।
मैं एक नहीं हूँ-वरन् पांच; देवों के बीच विचरती हूँ ॥

वे गुप्त–रूपसे आठ प्रहर; दासी की रक्षा करते हैं।
जिनसे नर तो क्या ? देवासुर; गन्धर्व, नाग तक डरते हैं॥
यदि कोई बुरी नियत करके; मुझ पर आंख ही उठायेगा।
मैं आज बताये देती हूँ; वह तत्क्षण मारा जायेगा॥"

श्रोता गण ! द्रौपदी का; है थोड़ा संकेत।
रजवाड़ों के नाम पर; है कलंक यह सेत॥

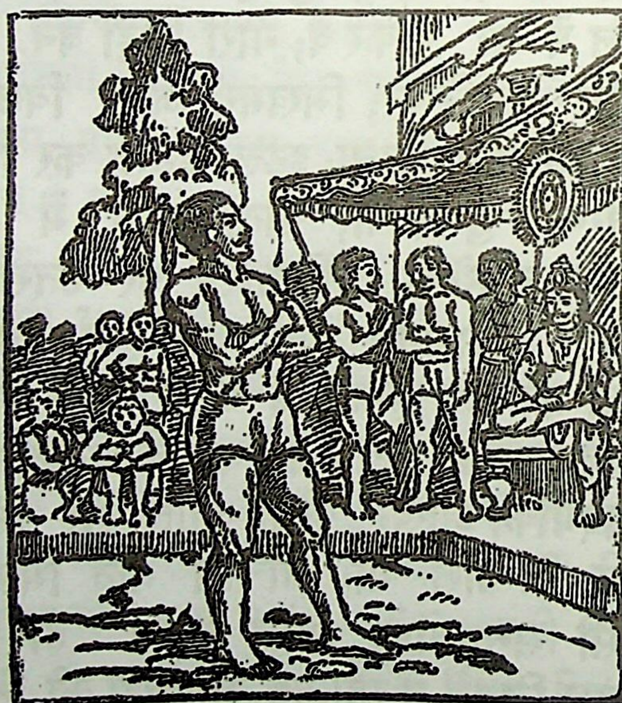
कितनी पर्देकी बात उठा; पर्दे से तीर छोड़ती है।
कामी रजवाड़ों, राजों का; अण्डे से भण्डा फोड़ती है॥
द्वापर की तो ईश्वर जाने; इस दम जो देश–पौनियां हैं ?।
उनमें से एक ख़ास पद पर; रजवाड़ी लोल लौंडियां हैं॥
पतिता, कुलटा, भूखी, प्यासी; टुकड़ों पर रक्खी जाती हैं।
वे टुकड़ खोरनी ही आगे; टुकड़े से कर दिखलाती हैं॥
जब कुछ दिन में खा पीकर वे; गोरी चिट्टी बन जाती हैं।
तब धीरे धीरे युवकों पर; भिखमंगी जाल बिछाती हैं॥
हँस हँस कर सभी काम करना; इठला इठला कर फिर जाना।
अंचल उघारना, मुसकाना; बातों बातों में इतराना॥
उन पानीदार रईसोंका; पनिहारिन पर उतरा पानी।
भिखमंगी बनी महारानी; रानी बन गई नौकरानी॥
जो फूल कली का रूप हुआ; वह मौक़ा पाकर खिलता है।
यह बात तो बिलकुल ही सच है; हर बात का बदला मिलता है॥
जब भले आदमीकी आँखें; नीची जाति पर सिराती हैं।
तो ऐसे कुल की नारी भी; नीचोंसे मेल मिलाती हैं॥
निश्चय ऐसी सन्तानोंसे; भारत ग़ारत हो जायेगा।
वास्तविक अंश जिसमें न रहा; वह क्या वंश की निभायेगा ?॥

रानी बोली–"लाडली ! न रो; वह सुदिन कभी फिर आयेंगे ।
बृज–पति–राधापति, गोपी–पति; बनवारी लाज बचायेंगे ॥
जैसी तेरी इच्छा होगी; वैसा ही तुझे चलाऊँगी ।
विश्वास रहे, अपने वश भर; कन्या की तरह निभाऊँगी ॥"

नृप "विराट" के यहां पर; रहे इस तरह वीर ।
वहां खोजमें लग रहे; खल–कौरव बे पीर ॥

कुछदिन पीछे विराट–नृप की; बेटी का व्याह रचाया गया ।
नृप–गण आमन्त्रित किये गये; सुन्दर वितान बनवाया गया ॥
सत्कार, मानके साथ साथ; स्वागत का काम होरहा था ।
गायन, वादन, सम्मेलनमें; वह जलसा आम हो रहा था ॥

उसी समय आया वहां; एक मल्ल बल–वीर ।
मानो मत्त–मतंगने; रक्खा मनुज–शरीर ॥



बोला–"राजन् ! पृथ्वी भरके; वीरोंको विजय कर लिया है।
वह बलख़, बुख़ारा, काम रूम; मल्लोंसे रहित कर दिया है ॥
आया हूँ इसी लिये नर-पति !; वीरों की बाज़ी लेता हूँ।
जिसमें दमहो, खम ठोक उठे; मैं खड़ा चुनौती देता हूँ ॥"

वह बादल सी गर्जना; वेष पर्वताकार ।
बिना हराये ही सुभट; गये हृदयसे हार ॥

ललकारा तीन बार उसने; पर कोई उत्तर मिला नहीं।
ऊँची नीची भी सुना किये; पर ऊँचा सिर भी उठा नहीं ॥
यह दशा देख कर भट बोला;–"यह राज्य बीज का कच्चा है।
ओहो ! इतने बलवीरोंमें; कोई न मर्द का बच्चा है ॥
वीरों का मस्तक घूम गया; नृपने बहु तेरा उकसाया।
साहस बँधवाया, जोश दिया;पर कुछ भी काम न फिर आया॥
लेकिन दम तो दमही तक है;हिम्मत की हद हिकमत तक है।
जब दम, हिकमत दोनों न रहें; तब सिर झुकनेमें क्या शक है॥

एक ओरसे देखकर; शून्य सभा का हाल ।
भट "जयन्त" को उसी क्षण; बुलवाया नर-पाल ॥

बोले–"बलवीर जयन्त ! आव;इस भटसे जोड़ मिलाना है।
इस डील डौल की रखना है; मेरी आबरू बचाना है ॥
अवसर है, ऐसे बीरोंमें; थोड़ी सी जांच तुम्हारी हो।
कुछ भगति शक्ति भी रखते हो; या केवल पेट–पुजारी हो ॥

भट जयन्त कहने लगे–"सुनिये वीर सुजान !।
हम भी नृपके यहां पर; आये हैं महमान ॥

इनकी ही सेवा करते हैं; इनके ही टुकड़े खाते हैं।
इसलिये इन्हीं की आज्ञासे; सामने तुम्हारे आते हैं ॥

भैया ! इसलिये निवेदन है; दोनों की आन बचा लेना ॥
नृप की भी बात निभादेना; मेरे भी प्राण बचा देना ॥
यदि राज-सभामें कहीं बन्धु !; सेवक की हार दिखायेगी ॥
तो निष्कारण इस दुखिया की; घर बैठे रोटी जायेगी ॥"

कहा मल्लने--"दीनता; मुझको नहीं पसन्द ।
आओगे यदि सामने; तो होगा जुग-बन्द ॥

साहस हो तो आगे आना; अन्यथा खिजावट ठीक नहीं ।
लड़ना भी और मेल करना; यह व्यर्थ मिलावट ठीक नहीं ॥
यदि आत्मा साथ न देती हो;तो इस धार पर न चढ़ बाबा ! ।
अपने बच्चों का पेट पाल; मेरे पीछे मत पड़ बाबा ! ॥"

इन शब्दोंसे आगया; महाबीरको जोश ।
फुर्ती आई बदनमें; रहा न पहिला होश ॥

बलधर जयन्त, दुर्दान्त वीर; हाथोंमें धूरि लिये धाये ।
मानो मानव-तन दो सपक्ष; काले पर्वत आगे आये ॥
कुछ देर हुई हाथा पाई; फिर घूँसों की नौबत आई ।
पहिली ही पकड़न जकड़नमें;भट-मण्डलमें हलचल छाई ॥
कुछ देर खेल सा हुआ किया; फिर बेलों का नम्बर आया ।
भीमने एक घूँसा मारा; नाकारे को चक्कर आया ॥
उसने भी ज़रा सँभल करके; कुछ ऐसी चोट चलाई है ।
जिससे कि भीम बल वीर को भी;क्षणभर तक मूर्छा आईहै ॥
अब तो जोश में सुबाहु हुआ; बाजू का बन्द उखाड़ दिया ।
टांग को पकड़ कर टांग लिया;पृथ्वी पर वहीं पछाड़ दिया॥
राजा ने छाती लगा लिया; बल-वीरों ने-सत्कार किया ।
विप्रों ने आशीर्वाद दिया; मण्डल ने जय जय कार किया॥

इसी भाँति कुछ दिनों में; मस्त हो गया फ़ील ।
उसे न हाथ लगा सका; कोई भी बल शील ॥
भीम वीर ने उसे भी; बकरी दिया बनाय ।
पकड़ कान क्षण मात्र में; दिया वहीं बँधवाय ॥

वह हाथी क्या ? कीचक केवल; सौ हाथी के बल वाला था ।
पट-रानी जी का भाई था; राजा विराट का साला था ॥
उस भट वर की भी उन्हीं दिनों; राजा के घर महमानी थी ।
वह भोजन वहां कर रहा था; सैरन्ध्री देती पानी थी ॥
दासी अबला का वह स्वरूप; बलवान भूप को लूट गया ।
आखों पर बिजली टूट पड़ी; हाथ से निवाला छूट गया ॥
पानी की इच्छा रही नहीं; वह पानी मुँह में भरा रहा ।
मुख-दर्शन से भर पेट गया; भोजन का भाजन-धरा रहा ॥
क्षण क्षण पर आँख फिर रही है;अँधियारी पर,उजियाली पर ।
टुक भगनी पर,टुक भरणी पर;टुक थाली पर,टुक लाली पर ॥
झख सी मार कर उठा आख़िर; इस झींकन में झकते झकते ।
भर पेट न भोजन कर पाया ; सैरन्ध्री को तकते तकते ॥
उलझा मन अब हाथ में न था;और न वह हाथमें ताक़त थी ।
उस समय काम-प्रिय कीचक की;क्या बतलायें!क्या हालत थी?

किसी तरह भी जब उसे; बँधा न मन में धीर ।
बे वश हो एकान्त में, गया बहिन के तीर ॥

बोला-"हे बहिन ! क्षमा करना;कुछ आज ढिठाई करता हूँ ।
कहते कहते कुछ डरता हूँ; पर बिला कहे भी मरता हूँ ॥
इस लिये अदब, संकोच, शील; सब मेरे बिदा हो चुके हैं ।
हे देवी ! शपथ तेरे सर की; दासी पर प्राण खो चुके हैं ॥

इस बे चैनी पर दया रहे; इस बे अदबी पर कान न कर ।
जो जीवन मेरा चाहे तो; यह नीम जान बे जान न कर ॥
यह दासी नहीं, लक्ष्मी है; सुखकारी है, सुकुमारी है ।
क़िस्मत की फूली क्यारी है; लेकिन क़िस्मत की मारी है ॥
तेरी दाया से यह देवी; यदि महलों तक जाने पाये ।
तो रानी दासी बन जाये; यह दासी रानी कहलाये ॥

राज--पाट--धन--धाम सब; इस पर डालूँ बार ।
मैं स्व-देश आधार हूँ; यह मेरी आधार ॥"

रानी बोली-"आश्चर्य्य शोक !; क्या ग़ज़बके गोले ढाते हो ? ।
पानी में आग लगाते हो; दिन में तारे चमकाते हो ॥
सिंहासन वाले कहला कर; कीचड़ में गिरने जाते हो ।
धिक्कार आर्य्य-वंशी होकर; दासी पर आंख उठाते हो ॥
इसकी यारी अय्यारी है; सीने पर जारी आरी है ।
नारी को "गुल--नारी" न कहो; नारी विषभरी कटारी है ॥
नारी में वह बट मारी है; बट मारी जिससे हारी है ।
मद होश ! होशमें बात करो; यह सुख कारी--पर नारी है ॥"

गायन

बचे रहियो, है नागिन पर नारि ।
सुभग-स्वरूप-हलाहल-धारिन; नयना फन फुंकार ॥
पर नारी ने जमा दी; विष्णु-देव पर धाक ।
सोने की लंका हुई; पर नारी से ख़ाक ॥
"व्यास" पराई कामनी; जूठी पातरि जान ।
बारी छाँट बिड़ाग्ई; पीछे चाटत श्वान ॥

मरम-घात हृदयी बन मारत; विष व्यापत सरसार ॥
इन्द्र की वह दशा देखी गई पर नारी से ।
कुबेरकी भी न इज्जत रही पर नारी से ॥
निशुंभ शुंभ हुए नाश इसी के कारण--
वालि की मौत घड़ी में हुई पर नारी से ।
नयन चोट लग उठिवौ दूभर; करिये जतन हज़ार ॥

कीचक बोला "अये बहिन ! मुझे;बेकार ज्ञान सिखलाती है ।
लगती है वहाँ न सीख एक; जब आँख कहीं लग जाती है ॥
उस ज़हर कटारी से पहिले; बे वश मुरदार हो चुका हूँ ।
अय्यारी बट मारी कैसी !; जब स्वयं शिकार हो चुका हूँ ॥
आँखों के मिलने से पहिले; आँखों में आँख समाई है ।
विषभरी कटारी के पहिले; प्रेमकी कटार चुभाई है ॥
बहिना ! तेरी कुछ हानि नहीं; यदि मैं दासी को अपना लूँ ।
इसके बदले में एक नहीं; सौ गुनी दासियाँ पहुँचा दूँ ॥

गायन

आज दासीके लिये दास बना ले कोई ।
किन्तु दासी की दया--भीख दिला दे कोई ।
प्रेम-प्रतिमाके पुजारीको निभा ले कोई;
प्रेम–मन्दिर की अरे राह लगा दे कोई ।
प्रेम-ज्वालासे हृदय मोम बना डाला है;
दिलसे दिल मिलता है किस भाँति बतादे कोई ॥
"शैलेन्द्र" भी तो यहीं दर्द लिये फिरते हैं–
"विर्नाति" दर्द की तासीर मिटा दे कोई ।"

रानी बोली-"दासी न कहो; दासी-रूपा-सत-धारी है।
इसपर दासी-मण्डल तो क्या ? लक्ष्मी-मण्डल बलिहारी है॥
सुन्दरियों में शुचि रम्भा है; कोमलता में कुल--कमला है।
सद्-भावोंमें सावित्री है; सतियों में साध्वी सीता है॥
दुर्गा है तेजवन्तियों में; तपसिन में उमा निहारी है।
पावन-हृदयों में गंगा है; दोनों कुल तारन हारी है॥
यदि इसकी रज ही पा जाओ; हो जाये मुक्ति तुम्हारी है।
इसको दासी ही मत समझो; कन्या के तुल्य हमारी है॥"

कीचकने फिरसे कहा-"कर कुछ बहिन, विचार।
मुझे नज़र आ रही है; जीवन की आधार॥"

रानी बोली-"ओ कुटिल-आत्म !; यह भाव भानजी पर ही हैं।
ओ कामी, लुच्चे, दग़ाबाज़; तेरे भी बहिन भानजी हैं॥
बस बात न कर, आगे से हट; भगनी से यह बातें, कहना।
या तो आज ही चले जाना; या महलों से बाहर रहना॥"

हाहा खाकर भी वहां; चला न कुछ पैग़ाम।
हृदय हार, मन मार नृप; लौटा अपने धाम॥

तड़पता रहा ताकता रहा; पापी दिन भर आहें भर भर।
जा पहुँचा पास द्रौपदी के; एकान्त तथा अवसर पाकर॥
पैरों पड़ कर, हा हा खाकर; कुत्ते सी पूँछ हिलाने लगा।
उस सुन्दरता की देवीपर; निश्चर माया फैलाने लगा॥
रो रो कर, नीचा हो हो कर; अपनी इच्छा प्रकटाने लगा।
आशा से, और दिलासा से; सतवन्ती को फुसलाने लगा॥

"भद्रे ! कुसुमे ! कान्ते !; ओ मेरी चितचोर।
दयागरी ! छबि-नागरी !; एक दृष्टि इस ओर॥

हे हे सुन्दरता की प्रतिमे !; सेवक सौन्दर्य्य–पुजारी है।
दास को प्रेम की भीख मिले;शरणागत खड़ा भिखारी है॥"

विदुषीने देखा जहां; कामातुर का जाल।
दिखलाई चालाक को; एक नीति की चाल॥

"राजन् ! दासी दासी ही है; इन कार नहीं हम ख्यालीमें।
पर महाराज ! मैं रहती हूँ; गन्धर्वों की रख वालीमें॥
जो मुझसे हाथ लगायेगा; वह उनसे मारा जायेगा।
यह प्रेम, जोश, आशा, लासा;फिर कुछ भी काम न आयेगा॥
यदि यह उलझन न पेश होती; तो मैं तुम पर बारी जाती।
तुम प्राण–नाथ मेरे होते; मैं प्रिया तुम्हारी कहलाती॥"

कीचकने फिरसे कहा—"इसकी क्या परवाह ?।
जो तेरी भी राय हो; तो ढूँढूँ कुछ राह॥

तेरे पीछे गन्धर्व तो क्या ? कालकी न मुझको चिन्ता है।
तू है तो जीना अच्छा है; तेरे बिन मरना अच्छा है॥"
सैरन्ध्री बोली–"बे वश हूँ; बेहद बन्धनमें जकड़ी हूँ।
जो भू–मण्डल पर व्यापक हैं; उन पञ्च देव की लकड़ी हूँ॥
अपना आगा पीछा सोचो; जल्दीमें नाश कराओ ना।
दासी पर नियत डिगाओ ना; कुलमें कलंक लगवाओ ना॥"

सैरन्ध्रीके सामने; पा न सका जब पेश।
तनले गया स्वदेश को; मन विराटके देश॥

निश नींद नहीं, दिन चैन नहीं; खाना पीना भी भूल गया।
आने जाने का ध्यान गया; मरना जीना भी भूल गया॥
भर नींद नहीं सो सकते हैं; इस त्रिदोषमें सोने वाले।
मुँह खोल न रो भी सकते हैं; इन पापोंमें रोने वाले॥

कामी ने चुपचाप ही; दूती को बुलवाय ।
अपने मन की भावना; कही उसे समझाय ॥

दूती आई, फुसलाने लगी; कीचक की कीर्त्ति सुनाने लगी ।
पर सैरंध्री का उत्तर सुन; कांपी और कान दबाने लगी ॥
दूतीने कहा--"कुमारी जी !; तुमने पहिचान न पाया है ।
ध्यान हो, तुम्हारे छुटपनमें; मैंने गोदमें खिलाया है ॥
तुमसे यह कभी न आशा थी; इस दासी--पद पर आओगी ।
सब को विश्वास मात्र यह था; तुम महारानी कहलाओगी ॥
शोक है ! तुम्हारी यह मूरति; जीवन इस भांति बिताती हो ।
भाग्यमें लक्ष्मी जँचती हो; पर दासी बनी दिखाती हो ॥"
सैरन्ध्री बोली-" मां मेरी !; किस्मतमें तो घी शक्कर है ।
पर खाने को दाने न मिलें; यह किस भावी का चक्कर है ?॥
जो हो, मैं भी इस चक्करसे; टक्कर सा खाये बैठी हूँ ।
चक्करमें लाने वाले पर; विश्वास जमाये बैठी हूँ ॥
जिस दिन उस विपिन-बिहारी की;हम पर सुदृष्टि हो जायेगी ।
रानी की दासी उसी घड़ी; रानी-पद पर दिखलायेगी ॥"

दूती बोली-" ठीक है; भावी का संयोग ।
फिर भी करना चाहिये; यथाशक्ति उद्योग ॥

इन ना क़द्रोंमें पड़ी पड़ी; मिट्टी ख़राब क्यों करती है ? ।
जो रानी-पद मिल सकता है;तो दासी बन क्यों मरती है?॥
बन्दरके आगे फूलों की; माला का मान नहीं होता ।
नादान गँवारोंको बेटी; हीरे का ज्ञान नहीं होता ॥
चल मेरे साथ मेरी पुतली; कीचकके घर पर पहुँचादूँ ।
इस दासी-पदसे मुक्त करूं; पटरानी कल ही बनवा दूँ ॥"

सैरन्ध्रीको यका यक; आया क्रोध अपार ।
लात मार गर्दन पकड़; बाहर दिया निकार ॥
बहिनो ! यह बूढ़ी ख़ालायें; बूढ़ी खालमें दिखाती हैं ।
सतियोंके सत, युवकोंके बल; यह हत्यारिन खाजाती हैं ॥
कितनी ही ऐसी कुलटायें; घर घरमें सेंध लगाती हैं ।
माला हाथसे फिराती हैं; चकलोंके माल उड़ाती हैं ॥
हम आज जताये देते हैं; इन पर विश्वास न लाना तुम ।
जो तुम्हें सतीत्व–प्राण–प्रिय हो;तो इनके पास न जाना तुम ॥
रोती, बिलखाती हुई; भाग गई निज देश ।
यह वृत्तान्त सुन स्वयं ही; चलता हुआ नरेश ॥
आते ही एकान्तमें; अंचल पकड़ा आय !
बोला–"मूर्खा ! अब बता;तेरा कौन सहाय ? ॥
बुलवा ले उन गन्धर्वों को; गन्धर्वोंके भी स्वामी को ।
जी भरके खूब दुहाई दे; चिल्ला ले अन्तर्यामी को ॥
थक गया, मनाकर अभिमानिन !; मानी ना बात मनानेसे ।
तो मान आज मन मानी तज; मर्दाना पेंच दिखानेसे ॥
ज्यों दुःशासनने गहे; पाञ्चालीके केश ।
त्यों ही कीचकसे हुई; वही समस्या पेश ॥
ब्राह्मण का बल है शाप–मात्र; क्षत्रिय का बल रण–बाना है ।
वैश्यों का बल चुप रहना है; अबला का बल चिल्लाना है ॥
चिल्लाई, हा हा खाई–पर; पलटा न हृदय अन्यायी का ।
घिघियाई, पैरों पड़ी, मगर; फड़का ना बाल क़साई का ॥
विदुषी ने भी सोच कर; कूट नीतिका काम ।
कहा–"प्राण-निधि, प्राणप्रिय; प्राणेश्वर, प्रण-धाम ॥

दिल तुम पर बारी करके भी; मैं रोती हूँ, चिल्लाती हूँ।
असली कारण इतना ही है; असली सौदा ठहराती हूँ॥
बाज़ारी सौदा प्रेम नहीं; जो पैसों से आ सकता हो।
यह उसी मर्द का हिस्सा है; जो गर्दन कटवा सकता हो॥
दो दिल मिलनेके लिये, काम; गोंद या सरेश न आता है।
बाहरी दबाव न पड़ता है; बातों से लिया न जाता है॥
यह-वह आकर्षण-शक्ती है; जो बिला मिलाये मिलती है।
यह-उस तरुकी है कञ्ज-कली; जो बिला खिलाये खिलती है॥

गायन

प्रेमियों से पूछिये, इस प्रेमका क्या मोल है ?।
एक जीवनकी घड़ी पर लोक जिसकी तोल है॥
देव-दर्शन चीज़ क्या है ? प्रेम-प्रतिमाके निकट;
वेदके मन्त्रोंसे बढ़कर प्रेम-मुख का बोल है॥
सृष्टि में आभास जिसका; फूल में मुसकान है-
बिम्ब-फल प्रत्येक जिसका लोल गोल कपोल है॥
ईश्वरीय-विधानमें जिसका कि सम्मिलित नेम है-
"शैलेन्द्र" क्या उस प्रेम-पदका इस विषयमें मोल है॥

जिस उलफ़तमें छल झाँसा है; वह बद नीयत बदमाशी है।
जिस इश्क़में ग़रज वस्ल ही है; वह इश्क़ नहीं, अय्याशी है॥
इससे जो प्रेम निभाना हो; तो कुछ दिन धैर्य्य कीजियेगा।
आखों का प्रेम लूटियेगा; कुछ यह भी मज़ा लीजियेगा॥"
जमे हृदय पर शब्द यह; दिये केश छुटकाय।
इस प्रकारसे द्रौपदी; सकी सतीत्व बचाय।

इस प्रकारसे आगया; दीपावलि शुभ-काल।
रानी जी कहने लगी;-"देकर भोजन-थाल॥
बेटी! जाओ, भाईके घर; यह भोजन, सुरा-पात्र लेकर।
बात की बातमें आजाना; यह सारी सामग्री देकर॥"
द्रौपदी जानसे हाज़िर थी; रानी का हुक्म बजाने को।
कीचक का घर तो बात है क्या?; मौतके यहां भी जाने को॥
लेकिन कीचककी वृत्ति उसे; पहिले से, सारी ज़ाहिर थी।
दूसरे शक्ति दिखलाना भी; उन दिनों शक्तिसे बाहर थी॥
इस लिये हिचकिचाई पहिले; पर कह न सकी कुछ आज्ञापर।
बे कहे सुने, थाली, प्याली; रख दी उसके आगे लाकर॥
कीचक मस्त शराबमें; था न उसे कुछ ध्यान।
दौड़ा देवी की तरफ़; छुवा न वह सामान॥
बोला-"बस प्यारी! रहम करो; चलने दो मदके जाम यहीं।
जो"नहीं"कहा-तो दम न रहा;अब"नहीं-नहीं"का कामनहीं॥"
देवी बोली-"गांठ की चीज़; हर समय काम आ सकती है।
फिर नहीं समझमें आता है;किस कारण यह उतावली है?॥
दिन है-सन्ध्या होने दीजे; आइये, हमारे महलोंमें।
सब सो जायें, सन्नाटा हो; तब लेना बुला इशारोंमें॥"
इस प्रकारसे भुला कर; अपना धर्म बचाय।
धर्मराजके पासमें; पहुँची मौक़ा पाय॥
स्वामीके आगे रो रो कर; सारा चरित्र समझाती है।
हे नाथ! दुष्टके हाथोंसे; लज्जा दासी की जाती है॥
जैसे तैसे उस पापीसे; दो बार निकलने पाई हूँ।
जब कोई चारा रहा नहीं; तब पास आपके आई हूँ॥

पड़ गया हाथ धोकर पीछे; कोई न युक्ति चलपाई है ।
शायद विराट-पुरमें भी मुझे; यह दुःशासन का भाई है ॥
जिस इज्ज़त हुरमतकी ख़ातिर; जंगल जंगल भटकाये हो ।
जिस आन, बानके रखने को; छिपने विराटके आये हो ॥
उस इज्ज़त पर, उस हुरमत पर; यदि पापी दाग़ लगायेगा ।
तो याद रहे; दूसरे रोज़; फिर मुँह न दिखाया जायेगा ॥
हे सिंह रूप ! वामाङ्गिन की; खरहेसे लाज बचाइयेगा ।
कीजिये वीरता-आराधन; फिरसे तलवार उठाइयेगा ॥

धर्मराज सिरपीट कर; बोले-"हा कर्त्तार ! ।
क्षत्रिय की तलवार है; आज यहां लाचार ॥

क्षत्रिय हूँ--किन्तु; पड़ गया हूँ; धर्मके प्रगूढ़ झमेलेमें ।
सिंह हूँ, वीर हूँ, फँसा हूँ, पर; इस दासत्वके कठहरेमें ॥
जो आज दुष्ट कीचक हमसे; ज़ाहिरमें मारा जायेगा ।
तो कल ही खल दुर्योधन का; कोई चर पता लगायेगा ॥
इसलिये अभी सन्तोप करो; कुछ समय और हो जाने दो ।
तुम धर्म-शान्ति पर अटल रहो; उसको माया फैलाने दो ॥
यह अवधि पूर्ण होते ही, बस; तेरा कर्त्तव्य निभायेंगे ।
कीचक को पहिले मारेंगे; पीछे दिल्ली को जायेंगे ॥"

धर्मराजके बचन सुन; हुई विशेष निराश ।
तत्क्षण बिलखाती हुई; गई पार्थके पास ॥

आदिसे अन्त तक वही हाल; उनके सामने सुनाया है ।
लेकिन पार्थ की ओरसे भी; उतना ही उत्तर पाया है ॥
"अये प्यारी ! क्या अच्छा होता?; जो ख़बर न यह सुनने पाता ।
सन्देशा सुननेसे पहिले; यदि अर्जुन बहरा हो जाता ॥

आन को कान उकसाते हैं; बल भय—बाहें तड़पाती हैं।
पर दास्य—भाव की ज़ंजीरें; पीछे को जकड़ जाती हैं॥
कितना ही कष्ट—विपद आये; फिर भी शान्तीसे सहना है।
तुमको दासी बन रहना है; हमको नौकर बन रहना है॥
अर्जुन स्वामीका सेवक है; उसमें कुटुम्बकी भक्ति नहीं।
इन बिके हुए बल—वीरों की; बीरता—भरी वह शक्ति नहीं॥
हैं हाथ वही, है शक्ति वही; लेकिन वे हाथ बिक चुके हैं।
विदुषे! हम अपना बल—विक्रम; ग़ैरोंके हाथ लिख चुके हैं॥
इस लिये प्रिये! उतने दिन तक; कुछ उम्मीदे इमदाद नहीं।
जब तलक कि क़ैद ग़ुलामी से; हम लोग हुए आज़ाद नहीं॥
हाँ, भाई आज्ञा दे दें तो; मैं इस प्रण से टल सकता हूँ।
उन की इच्छा के बिला प्रिये!; यक क़दम नहीं चल सकता हूँ॥

धर्मराज, भट-पार्थ ने; जब यों दिया चुकाय।
तब दुखियारी द्रौपदी; बोली-"कुछ खिसियाय॥

अब जाना मैंने—पाण्डु—वंश; निर्वीर्य्य हुआ, बेकार हुआ।
केहरी दबा कर दुम बैठे; गीदड़—का ख़ौफ़ सवार हुआ॥
ओ दैव! एक पति की पत्नी; निर्भय आनन्द उड़ाती है।
इस जगह पञ्च—पतियों वाली; लज्जा न बचाने पाती है॥
इस से तो यह अच्छा होता; कङ्गाली में रोती गाती।
दिन में दाना दुन का लाती; रात में घासपर सो जाती॥
वह हाथ साफ़ कर निकल जाय; तुम यह क़ानून बघारा करो।
आखों देखे हो जाय पाप, और मन में पुन्य बिचारा करो॥
सारा बल—विक्रम धूल हुआ; तुम भावी ही लेखा करना।
कुत्ता मुँह को चाटने लगे; पर तुम मुँह ही देखा करना॥

जो मेरी निभा न सकते थे; तो शादी में रक्खा क्या था ? ।
क्वाँरी रहना, या मर जाना; ऐसी शादी से अच्छा था ॥"
अर्जुन ने एक आह खींची; नीचे को माथा झुका लिया ।
केवल थोड़े से शब्दों में; क़ैदी बीर ने जवाब दिया ॥
"सुनता हूँ सब, अनसुन होकर; दिन ही मेरे सुनने के हैं ।
तू भी कहले, सब सुन लूँगा;यह गुण भी कुछ गुननेके हैं ॥"

इतना सुन कर द्रौपदी, गई नकुल के पास ।
लेकिन यही जवाब सुन; वापिस हुई निराश ॥
फिर पहुँची "सहदेव" पर; किन्तु न मिली पनाह ।
अब अबला की कहाँ तक;सबल न होती दाह ? ॥
दहक उठी, सिर पीट कर; रोई निपट-निराश ।
अरी ! दासता ! कब तेरा; होगा सत्यानाश ? ॥
यदि यों ही दबती गई; बीरों की सन्तान ।
एक रोज़ हो जायगा; ग़ारत–"हिन्दुस्तान ॥"

मत कहो मनुष्य ग़ुलामों को; वह तो गदहों से हैं कमतर ।
दिन भर ईंटें पत्थर ढोयें; चरने जायें तो घूरों पर ॥
हम पैदा करें, जमा रक्खें; पर खाने का अधिकार नहीं ।
अपने सब हैं, पर अपनों को, अपनाने का अधिकार नहीं ॥

जलने वाला चाम यह; आयेगा किस काम ? ।
जो मनुष्य होकर हुए; हम ग़ैर के ग़ुलाम ॥

गायन

धोखा है–आदमी को; अपना ग़ुलाम करना ।
ईश्वर सिवा, किसी को; झुक कर सलाम करना ॥

कर्त्तव्य है—किसी का; कुछ हाथ बँटा लेना—
लेकिन नहीं है ज़ेबा; दब कर के काम करना ॥
पशुओं को भी सहज है; जब पेट का भरलेना—
होकर मनुष्य फिर क्यों; टुकड़ों के लिये मरना ॥
"शैलेन्द्र" गुलामी में, हर्गिज़ न क़दम धरना ॥
करना है कुछ तो केवल; श्रीराम राम करना ।

द्रुपद—सुता के शब्द यह; पड़े भीम के कान ।
बोले-"महिले ! है कहाँ ?; आज तुम्हारा ध्यान ॥

पृथ्वी पर जितना हलचल है; रियायाके हाले तबाहीका ।
वह दोष नहीं है राजा का; चक्कर है नौकर—शाही का ॥
दीनों की कठिन कमाई वह; धूर्त्तों ने प्रिये, टूसली है ।
इन बेईमान कुजातों ने; सारी देहात चूसली है ॥
गुण्डा शाही हाकिम होकर; शाही का दावा करती है ।
रुपयों से जेबें भरती है; दीनों से जेलें भरती है ॥"

पाञ्चाली कहने लगी-"अये भारत के लाल !-
केवल तुम सुन सकोगे; इस अबला का हाल ॥

आप की सिंहनी पर नरहरि !; कीचक ने आँख उठाई है ।
वह त्रिभुवन—नाथ गवाही हैं; ज्यों त्यों कर लाज बचाई है ॥
इस का तज़किरा धर्म एवं; अर्जुन आदि से कर दिया है ।
लेकिन उन लोगों ने केवल; बातों से पेट भर दिया है ॥
बोलो भटवर ! बोलो बलधर !, आपकी यहां सम्मति क्या है?।
उस कामी—खल के हाथों से; पातिव्रत जाने वाला है ॥

जो साहस हो तो लाज रखो; उस व्यभिचारी का वध कर दो ।
तुम भी जो किसी क़ैद में हो; तो मुझको सीधा उत्तर दो ॥
फिर मेरी जैसी रुचि होगी; वैसी अपनी निबटाऊँगी ।
या तो दुष्ट को मिटाऊँगी; या जीते जी जल जाऊँगी ॥"

भीम-वीरने जब सुना; आदि—अन्त तक हाल ।
उसी समय भट क्रोधसे; हुआ काल विकराल ॥

बोला—"बस प्रजा फँसाने का; यह आला नया निकाला है ।
कोई राजा का साला है; कोई रानी का साला है ॥
नौकर जान कर नीच ने यह; देवी पर धौंस जमाई है ।
हम क्यों डरकर अपमान सहें ?; कुछ इज़्ज़त बेच न खाई है॥
दबने वाले को ही दुनिया; दिन बदिन दबाती जाती है ।
सच है, ग़रीब की औरत ही; सबकी भावज कहलाती है ॥
गर्मीके लिये मुनासिब है; गर्मी से दाब दिया जाये ।
धर्म है, कि इन मुँह ज़ोरोंको; मुँह तोड़ जवाब दिया जाये ॥
बे कर्म किये, सीधे साधे; मरने से नाम नहीं चलता ।
नीति है—खुद ग़रज़ दुनिया में; दबनेसे काम नहीं चलता॥"

इतना कह कर भीमने; नारी—वेश बनाय ।
नृत्य—भवनका नीचको; दिया इशारा जाय ॥

उस ओर रोशनी बन्द हुई; इस ओर छांह पर छाँह पड़ी ।
उस ओर कुचों पर हाथ पड़ा; इस ओर गले में बाँह पड़ी ॥
पटका—झटका दे, दबा दिया; वह झगड़ा दो ही याम हुआ ।
भटवर के दो ही हाथों में; कामी का काम तमाम हुआ ॥



ग़ौग़ा सुनकर राजा "विराट"; आधी रातको सिटपिटाये।
पर हाथ पकड़ कर रानी ने; तत्काल वहीं पर बिठलाये॥

रानी बोली.

"हे नाथ! रातके जाने में परिणाम अशुभ दिखलाता है।
इस हलचल के अन्दर कोई; भावी–रहस्य प्रकटाता है॥
"सैरन्ध्री" दासी की रक्षा; पञ्च–सुर सर्वदा करते हैं।
जो उससे पाप सोचते हैं; वे पापी यों ही मरते हैं॥
शायद इस दुर्गुण के कारण; कीचक पर आफ़त आई है।
उसकी ही मेरे पास अभी; दो बार शिकायत आई है॥

इसलिये न प्रभु ! बाहर जाओ; पापी को जी भर रोने दो ।
अपने सिर पर झगड़ा मत लो; जो होना है, सो होने दो ॥"

इतना सुन कर भूप भी, वहीं हो गये मौन ।
सच है–पापी नीच का; हाथ बँटाये कौन ? ॥
यहां भीम उस नीचको; गये खोह में डाल ।
प्रातकाल प्रत्येक को; विदित हुआ यह हाल ॥
नहीं कहेंगे हम यहां; सब का करुणालाप ।
पापी था, निज पापका; दण्ड पा गया आप ॥

"हां, एक हाल बतलाना है; निश्चर को अभी जलाना है ।
एवं उसके साथ ही साथ; उसका वंश भी मिटाना है ॥
जब सब लाशे के पास गये; तो एक समस्या पेश हुई ।
तदबीर कौन सी की जाये ?; मुर्दा नीच को जलाने की ॥
ऐसा कोई ब्राह्मण सोचो; जो इतनी लाश उठा पाये ।
अपना दस्तूर अभी ले ले; पर इसे जलाने ले जाये ॥"
कंकने कहा–"इसका छूना; धर्म को भ्रष्ट कर लेना है ।
रुपयों से घर भर लेना है; इज़्ज़त गिरवी धर देना है ॥"
राजा बोले–"भैया जयन्त !; तुम ही यह लाशा ले जाओ ।
कुछ चन्दन आदि इकट्ठा कर; बस्ती से दूर फूँक आओ ॥
बोले जयन्त–निश्चय राजन् !; यह सेवक नमक हराम नहीं ।
लेकिन् रोटी का नौकर है; मुर्दे ढोने का काम नहीं ॥
जितना भोजन बनवाना हो; दे दीजे हुक्म टहलुवे को ।
यदि मुर्दे ही उठवाना हों; तो रखिये किसी घाटिये को ॥"

पहिले साले का अलम; फिर जल्दीका काम ।
इसपर भी सिर चढ़ रहा; ना कुछ एक गुलाम ॥

बोले—"ओ नमक हराम नीच !; मुझपर आंखें दिखलाता है।
मेरे ही टुकड़े खाता है; मुझको ही मूर्ख बनाता है॥
शठ! अगर आज इस द्वारे पर; यह चिकने टुकड़े ना पाता।
तो किसी खोह में तड़प तड़प; भूखों के मारे मर जाता॥
यह शब्द और मेरे आगे; क्या करूँ ? लिहाज़ आरहा है।
श्री धर्मराज का प्रेम आज; प्रेमी का हृदय खा रहा है॥
उनके कारण आज तक नीच !; भाई ही तुझ को जाना था।
सोच तो तनिक,क्या इसीसमय;यह रौब तुझेदिखलाना था!॥"

भाई के उपदेश का; आया भट को ध्यान।
उसी समय कर जोड़ कर; बोले बुद्धि-निधान॥

"हे शरण–पाल ! हे-प्रजा–पाल !;भूला है दास-क्षमा कीजे।
मैं अभी इसे ले जाता हूँ; कुछ भोजन मुझे मँगादीजे॥"
कहने के साथ भीम भट के; भोजन का सब उपचार हुआ।
लाशे को टाँग हाथ ही पर; ले जाने को तैयार हुआ॥
मुर्दा न पहुँचा मरघट तक; मुर्दे के भाई आने लगे।
सारी नगरी में महावीर; यक सर तेगे चमकाने लगे॥
बोले—"रहने दो, लाश अभी; जोड़ी का लाशा आयेगा।
भाई और भाई का दुश्मन; साथ ही जलाया जायेगा॥"

नृप विराट कहने लगे—"व्यर्थ न बात बढ़ाव।
कुशल—सहित यह क्रिया कर; अप ने घर को जाव॥

यह किसी व्यक्ति का दोष नहीं;जिस पर कि क्रोध दिखलाते हो।
गन्धर्व ने इस को मारा है; बोलो-क्या युक्ति लड़ाते हो ?॥
वह सैरन्ध्री का रक्षक था; इसने अपकर्म विचारा है।
इस लिये उसी ने मारा है; क्या पता ? किस तरह मारा है ?।"

गन्धर्वों की खोज का; था क्या वहाँ उपाय ?।
पकड़ ली गई फिर वहीं; देवी--कपिला--गाय ॥
केश पकड़ कर खींचने; लगे उसे जल्लाद।
बेचारी के पास थी; वही एक फ़रियाद ॥

बोले पापी--"इस दासी की; भाई ने बाँह पकड़ ली है।
इसलिये शास्त्रके नियमों से; यह उसकी नारि हो चुकी है ॥
इस लिये स्वामि के साथ साथ;इस को भी जल जाना होगा।
हम भी देखेंगे किस प्रकार; गन्धर्वों का आना होगा ? ॥
सौ के पञ्जे से सैरन्ध्री; किस तरह निकलने पाती है ? ।"
भाई ! यह नया दृश्य देखो; पतिवाली, विपति कहाती है ॥
यह भी तो एक नमूना है; पर जातों की शह ज़ोरी का।
शास्त्रों की बद अफ़वाहों का; हर हिन्दू की कमज़ोरी का ॥
इनरोज़ों ऐसी बातों के; खूबही दृश्य दिखलाते हैं।
बद जात, मलेच्छ, विजाती जन; प्रतिदिन षड्यन्त्र रचाते हैं ॥
यदि किसी भले घर की बेटी; या बहू नज़र आजाती है।
ललचाती है तबियत उसपर; लेकिन न हाथमें आती है ॥
जब नहीं सफलता पाते हैं; तो युक्ति नई दौड़ाते हैं।
उस के भ्रष्टा हो जाने की; झूठी अफ़वाह उड़ाते हैं ॥
वह नीच साफ़ कह देते हैं; यह मेरे साथ सो चुकी है।
यह हिन्दू-रमणी रही नहीं; अब तो "बीजान" हो चुकी है ॥
गंगाजी से आने वाली; गंगा-जल लिये आ रही है।
अपनी सहेलियों से मिलकर; नीचा सिर किये आरही है ॥
उस सती-साध्वी पर ज्यों ही; भिश्तीकी नियत डिगानी है।
छोड़ दी हवा--"इस नारी ने; पी लिया मशक का पानी है ॥

बस अब उस की दुनिया भर में; कोई न सफ़ाई लेता है।
उतनी सब लोग मानते हैं; जितनी भिश्ती कह देता है॥
हमराही सब चिल्लाते हैं; वह खुद सौगन्ध कर रही है।
लेकिन यह अन्धी परिपाटी; केवल शास्त्र पर मर रही है॥
प्यासी थी-गंगा-जल न पिया; पीते न किसी ने देखा है।
इन्साफ़ न यह भी होता है; यह झूठा है, या सच्चा है॥

यक तरफ़ी इन्साफ़ की; होवे जहाँ पछाड़ ;
उस क़ानूनी वेद के; डालो पन्ने फाड़॥

ऐसी झूठी अफ़वाहों में; रमणियाँ निकलती जाती हैं।
सीधी साधी सच्ची सतियाँ; फन्दों में फँसती जाती हैं॥
फिर यों न सही,हाथ ही छुआ;तो छूनेसे क्या बिगड़ गया?।
इतना कौन सा ज़हर था ! यह; जो छूते ही कर असर गया॥
माना मलेच्छ के छूने से: धर्म ही भ्रष्ट हो जाता है।
तो कौन शख्स इन रोज़ोंमें; अब धर्मवान दिखलाता है॥
तुम उन को पास बिठाते हो; हँसते हो, हाथ मिलाते हो।
फिर अपने को तो शुद्ध कहो; नारी को पतित बताते हो॥
जो ऐसी ही अफ़वाहों में; रमणियाँ निकाले जाओगे।
तो एक रोज़ तुम देखोगे; घर घर रँडुवे दिखलाओगे॥
शास्त्रोंमें ऐसा लेख नहीं; यह धूर्त्तों की चतुराई है।
हिन्दू-जाति की मूर्खतामें; उन नीचों की बन आई है॥
राजा-रानी-नागरिक सभी; नाक सी कटाये खड़े रहे।
अन्याय-न्याय सब जानते हैं; पर हृदय दबाये खड़े रहे॥
यक पतिव्रता-हिन्दू-ललना !; जाती है हाथ म्लेच्छोंके।
तोड़ें जो दांत पिशाचोंके; क्या वह दम नहीं हिन्दुओंके?॥

गायन

क्या शक्ति नहीं इतनी; हिन्दूके लालमें ?।
आता हो खून जिसका; कुछ भी उबालमें ।
क्या बात है ?, वह आँख उठायें; न उठें हम;
क्या दब गये हैं ? केहरी, गीदड़ की चालमें ॥
हां, ज़ोर लगाओ, मेरे हमजिन्स ! ले उड़ो—
दो आग लगा; नीच—शिकारीके जालमें ।
जिस दिन जो होनहार है; वह हो के रहेगी;
फिर क्यों कमी लगायें ? अपनी उछालमें ।
पड़ने लगे हैं ? सर्द क्या आर्य्योंके रक्त भी—
फँसने लगे हैं सिंह भी डोरीके जालमें ।
"शैलेन्द्र" शास्त्र—नीति का "गोविन्द" मर्म और ।
भूले न रहो हिन्दुओ ! झूठे ख़यालमें ।

इतने परभी किसीको; पैदा हुआ न जोश ।
बनवारीके ध्यानमें; हुई देवि ख़ामोश ॥

धर्मने झुकाया सिर नीचे; बल—धरने बाजू दबा लिये ।
भावी विचारमें डूब गई; ज्ञानीने आंसू बहा दिये ॥
चारों भाई बेवश हो कर; मूर्त्ति की तरह थे खड़े वहां ।
पर पवन—पूत भट—नागरको; ऐसे अधर्म पर चैन कहां ?॥

तड़प गया बेचैन हो; तत्क्षण गया छिपाय ।
वेश बदल कर सामने; भटवर प्रकटा आय ॥

नंगा—शरीर, भूधराकार; तलवार धार चमकाता है ।
हुंकार मार खल चीड़ फाड़; भैरव का नाटच दिखाता है ॥

कीचड़से अंग छिपाया है; दुर्धर्ष--वेषमें आया है।
पहिली ही बार चिकार मार;वह दल--मण्डल बिचलायाहै ॥
फिर पकड़ २ कर गिन २ कर;सबके अरमान निकाल दिये।
कीचकके साथ कीच--तनने; सब उसी चितामें डाल दिये ॥

राजा भागे--प्राण ले; फैला हाहा--कार।
चला गया गन्धर्व भी; सब वीरोंको मार ॥
वेष बदल नृपके निकट; भट वर पहुँचा जाय।
शांति--पूर्वक वहीं पर; खड़े रहे शिर--नाय ॥

कांपते हुए राजा बोले--"क्यों जी जयन्त ! क्या बीती है!?"
बोले जयन्त--" हे दया धाम !;आपकी टहलुनी जीती है॥"
ज्यों ही कीचकके भ्रातोंने; दासी पर हाथ लगाया था।
त्यों ही कुछ दैवी--मायासे; गन्धर्व वहां प्रकटाया था ॥
गिन गिन कर सारे वीरोंको; उसने भूमि पर सुलाया है।
एवं कीचकके साथ साथ; उनको भी वहीं जलाया है ॥
सेवक उसके भयके मारे; पेड़ोंके बीच छिपाया है।
जबमौक़ा पाया महाराज !; तब भाग यहां तक आया है ॥

इस घटनासे और भी; गये भूप भय मान।
"कीचक-वध" का इस तरह;पूर्ण हुआ आख्यान ॥

गो-रक्षण

दुर्योधनके कानमें; पहुँचा यह सन्देश।
कर्ण--द्रोणके सामने; कहने लगा नरेश ॥

"सुन लिया ? पाण्डवोंने अपना;कुछ नया वेष स्वीकारा है।
उनमेंसे किसी एक भटने; नृप वर " कीचक " संहारा है ॥

अब यही समझमें आता है; हैं शायद पाँचों वीर वहीं ।
उस नगरीके अतिरिक्त हमें; आगे कुछ मिलता पता नहीं ॥
इस लिये हमारी सम्मति है; गुप्त-चर पता लेने जाये ।
मिल जुल कर सारी नगरीसे; सब कच्चा चिट्ठा पहुँचाये ॥"

सब की सम्मतिसे गया; गुप्त-दूत तत्काल ।
लाख उपायोंसे मगर; मिला न कोई हाल ॥

वापिस आने पर राजाने; फिर एक उपाय लगाया है ।
राजा-विराट की गौओंको; हरने का स्वांग रचाया है ॥
अनगणित सैन्यका साज साज; नगरी विराट की घेरे हैं ।
गड़ गये निशान, बजा धौंसा; पड़गये चतुर्दिश डेरे हैं ॥
राजा विराट की गौओं को; चारों जानिब से घेर लिया ।
गौओं के गांथे बांध दिये; एवं ग्वालों को क़ैद किया ॥

भाग सके जो ग्वाल-गण; वे आये दरबार ।
"छीन लिया कुरु-नाथने; सब गौ-धन सरकार !॥"
बिलपाये नर-राज सुन; यह दारुण-संवाद ।
आई ऐसे समयमें; झट कीचक की याद ॥

हा ! आज अगर कीचक होता; तो कौरव-कुल कीचड़ करता ।
एक ही हांक में, काट छांट; हस्तिनापुरी बीहड़ करता ॥
क्या कहूँ? वीर सेना पतियो !; अब तुम्हीं वीर-दल सजवाओ ।
जीते जी गौओं को रोको; बन सके तो उनको लौटाओ ॥
वीरों को, मुझे, बान्धवों को; हँस हँस कर प्राण चढ़ाने दो ।
जब तक कि हाथकी बात रहे; गौ-धन न हाथसे जाने दो ॥

आज्ञा पाकर भूप की, हुए वीर तैयार ।
गौऐं ले जाने लगे; इधर सुभट-सरदार ॥

लेकिन उस गुप्त चरैये ने; कुछ ऐसा मन्त्र चलाया है।
थक गया सभी दल हाँक हाँक; पर गौ-धन हाँक न पाया है॥
सारी गौओं के पैरों में; सहसा लँगड़ापन आया है।
बस उसी समय दल-बादल बन; राजाका दल भी धाया है॥

गायोंको छोड़ा वहीं; फैल गई धर मार।
चमकी दोनों ओरसे; रण-रंगी तलवार॥

कुछ पता नहीं,कुछ ज्ञान नहीं; किस गतिसे कौन मर रहा है?।
जिसको देखो, बस वही वीर; डट डट कर काट कर रहा है॥
"उत्तर कुमार" के बाणोंसे; आकाशमें बादल छाने लगे।
लट्टू से सिर नाचने लगे; भुज-दण्ड-खण्ड मँडराने लगे॥
जिस समय सुशर्मा के सिरपर; यक महा-वीरका वार उठा।
रथ छोड़ बिचारा भाग उठा; और हाहाकार पुकार उठा॥
शंख भी ज़रा आगे पहुँचा; लेकिन वह भी बेहोश हुआ।
राजा विराट के जोशों से; कुछ समय सैन्य को जोश हुआ॥
ख़ासे तेग़े चमकाये गये; लेकिन न वहां कुछ असर किया।
सैन्य को पाट कर वीरों ने; राजा विराट को बाँध लिया॥

राजाकी इस दशा पर; "सेन" नामका ग्वाल।
वहीं शत्रु के शीश पर; चढ़ा ठोंक कर ताल॥

घूँसों से और तमाचों से; सरदारका सर चकरा डाला।
हुङ्कार मार, ललकार मार; सेना का धुवां उड़ा डाला॥
उन पापी-छली-कुजातों को; हाथों हाथ ही उड़ा आया।
बाणों की बौछारों में से; स्वामी के प्राण छुड़ा लाया॥
साथ ही "जयन्त" वीर-वरने; सारे सैनिक संहार दिये।
हाथी पिच गये हाथियोंसे; घोड़ों से घोड़े मार दिये॥

गूँज उठी इस ओर से; ज्यों ही जय जय कार।
त्यों ही उत्तर की तरफ़; फैला हाहाकार॥

उत्तर में खुद दुर्योधन ने; गायों को घेर लिया आकर।
कर दिया अचल कर्ण ने उसे; खुरियों में कीड़े उपजा कर॥
"मिथुना" ग्वाला पच हार गया; लेकिन न गऊ-धन मोड़ सका।
दल-बादलको भी न तोड़ सका; गौ-धन न अकेला छोड़ सका॥
जब बाहोंका बल चला नहीं; तो वाक्योंका बल दिखलाया।
कर्णके सामने पहुँच ग्वाल; इस भांति जोरसे चिल्लाया॥
ओ कपिलाओं के दुखदायी !; इस दुख का बदला पायेगा।
घनघोर-युद्ध के अवसर पर; तेरा भी रथ रुक जायेगा॥

कुछ ग्वालोंने पहुँच कर; की फिर वही पुकार।
"दुर्योधन ने कर दिया; फिरसे हाहाकार॥"

"उत्तर कुमार सुनकर बोला;-" यदि योग्य सारथी पा जाऊँ।
तो एक बार में कौरव-दल; गन्ने की तरह गिरा आऊँ॥"
सैरन्ध्री बोली-"बलधारी !; साथ में बृहन्नल जायेंगे।
इच्छानुसार रथ हाँकेंगे; वक़्त पर काम भी आयेंगे॥"
उत्तर में कहा बृहन्नल ने;-"मैं रथ-विद्या क्या पहिचानूँ ?।
ढोलकी थाप, तालकी ताल; गाना-नाचना सिखा जानूँ॥
गाकर, नाचकर पेट पालूँ; तू दर मेरी खुलवाती है।
अये सैरन्ध्री! मन्शा क्या है ?; क्या रोज़ी भी छुटवाती है?॥"

सैरन्ध्री कहने लगी-;"सुनिये राज-कुमार !।
कहती मैं कुछ भी नहीं; हर्गिज़ बिला विचार॥

यह केवल नहीं गवैये हैं; अर्जुन के वीर सारथी हैं।
अपने जीवन में एक नहीं; कितनी लड़ाइयाँ जीती हैं॥

मैं दावे से कह सकती हूँ; जो इन्हें साथ ले जाओगे।
तो कौरव तो कितने से हैं ?; रुद्र को विजय कर लाओगे ॥"

पर, इस पर भी पार्थ ने; दिया बात को टाल।
गई उत्तरा के निकट; सैरन्ध्री तत्काल ॥

बोली—"सुकुमारी राज कुँवरि; केवल गायन की ममता है।
या जन्म-भूमि के नाते से; कुछ नगरी की भी ममता है ?॥
बेटी बोली—बतला आली !; वह तो थल है दुधारियों का।
हिस्सा है धनुर्धारियों का; क्या वश है ? यहाँ नारियों का ॥
मेरी बहिना ! तन, मन, धनसे; भारत माँपर बलिहार हूँ मैं।
मेरे लायक करतब बतला; वह करने को तैयार हूँ मैं ॥"
सैरन्ध्री बोली—"जो वश है; इतना ही कर के दिखलाओ।
अपने गुरु को, जैसे भी हो; सारथी कुँवर का बनवाओ ॥"

इतना सुन कर उत्तरा; पहुँची गुरु के पास।
अश्रु बहा कर श्वाँसली, मुख कर लिया उदास ॥

गुरु ने पूछा-"बेटी ! तुझपर; क्या शोक यकायक आया है ?।
हे फूल—कुमारी ! क्यों तेरा; फूल सा बदन कुम्हलाया है ?॥"
बेटी बोली-"गुरु राज ! मुझे; होनी कुछ और दिखाती है।
कुरु—पति के हाथों आज मेरे; पुरुषों की लज्जा जाती है ॥
यदि दासी पर है दया—दृष्टि; तो इतनी दया कीजियेगा।
कुरु—पति के भूषण-वसन छीन; पुत्री को दान दीजियेगा॥"

इतना कह कर कण्ठ से; देवि गई लपटाय।
सैरन्ध्री ने भी इधर; पानी दिया चढ़ाय ॥
विवश हो गये "बृहन्नल"; लिया सारथी काम।
अब अगले संग्राम में; कुशल करें घनश्याम ॥

साज,साज कर समर का; पहिना कवच—सनाह ।
"उत्तर" को रथ में बिठा; ली उत्तर की राह ॥

लेकिन जब उत्तर-दल देखा; तो "उत्तर" के दल टूट गये ।
उत्तर के देने से पहिले; "उत्तर" के छक्के छूट गये ॥
काँपने लगा, झुक गया वहीं; सारथि से कहा इशारे से ।
"भैया ! जो कुशल चाहता है; तो रथ को वापिस लौटा दे ॥
जो अपना दल, यह टिड्डी—दल; सामने कहीं पाजायेगा ।
तो बिला लड़ाई के ही वह; नोच कर इसे खाजायेगा ॥
इसलिये लौट भैया ! जल्दी; इसमें ही कुशल हमारी है ।
छाती दहलाती जाती है, फिर रही आँख बेचारी है ॥"

सारथि ने उत्तर दिया;—"आये हो भुज ठोक ।
यहाँ वीर—रण देखकर; बनते हो डरपोक ॥

वैरी आगे दहाड़ता है; तुम डुम दुबकाये जाते हो ।
क्षत्रियता को शरमाते हो; पुरुषों को नाम धराते हो ॥
इस जगह न आना ही शुभ था; घरही रोते तो अच्छा था ।
क्षत्रिय—कुल में जनमें फ़िज़ूल; बनिये होते तो अच्छा था ॥
आओ, पहिले मुझसे होगी; तुम को न यकायक खायेगा ।
आगे बढ़ कर, डट तो जाओ; होगा सो, देखा जायेगा ॥ "

हाथ जोड़ कहने लगा; वहीं विराट—कुमार ।
"भैया ! मेरे हाथ से; गिरती है तलवार ॥

झुक झुक जाता है धनुष बाण; सारा शरीर थर्राता है ।
मानों मेरा रथ खिंचा हुआ; काल की ओर को जाता है ॥
इसलिये यहीं से बस रक्खो; लौट कर न वापिस आऊँगा ।
जब जोश यहीं से टूट चुका; तो आगे क्या दिखलाऊँगा ?॥"

यह दशा देख कर उत्तर की; सारथी का क्रोध उमड़ आया ।
फटकार भरी कुछ बातें कह; और भी तेज रथ दौड़ाया ॥
"तुम वीर नहीं हो, कायर हो; निष्कारण धोखा दिया मुझे ।
यों ही बुज़दिली दिखानी थी; तो व्यर्थ सारथी किया मुझे ॥
बाप के प्राण संकट में हैं; तुम प्राणों को घबराते हो ।
माता का दूध लजाते हो; मुझ को बदनाम कराते हो ॥
मैं शपथ–पूर्वक कहता हूँ; अब आगे ही बढ़ना होगा ।
यदि अपने दिलसे लड़े नहीं; तो जबरन ही लड़ना होगा ॥"
यह शब्द सारथी के सुन कर; "उत्तर" से उत्तर बना नहीं ।
बस यही हृदय में समा गया; लूँ बचा भाग कर प्राण कहीं ॥

यही सोचकर उसी क्षण; भागा रथको त्याग ।
किन्तु; भागता ही गया; पीछे पीछे भाग ॥
पकड़, जकड़ रथ पर तुरत; चला पार्थ बलवान ।
कौरव–दल का इस तरफ़; झुका यकायक ध्यान ॥

बोले द्रोण गुरु–" देखते हो; रथ कैसा रुकता आता है ।
रथ–पति रथसे है बँधा हुआ; सारथि ही झुकता आता है ॥
यह गूढ और गम्भीर–भेद; सहसा न समझमें आता है ।
मेरे विचारमें तो रथ पर; अर्जुन सारथी दिखाता है ॥
कुरु–पति ! अब सावधान रहना; कुछ ऊँचा दृश्य छा रहा है ।
शायद बारह वर्ष का यही; भुखियाना सिंह आरहा है ॥"
भीष्मने कहा–"बिलकुल सच है;यह अर्जुनही दिखलाता है ।
कुरुपति की ओर देखते ही; दूना उकसाता आता है ॥
सेनाके तीन भाग करलो; तब वार बचाने पाओगे ।
जो शेखी हीमें खड़े रहे; तो मुँह तकते रह जाओगे ॥"

भीष्म तथा गुरु-द्रोण की; ठहरी एक सलाह ।
तीन भाग कर सैन्यके; चले तीन ही राह ॥

पहिला दल, गौ-दल घेर रहा; दूसरा सामने खड़ा हुआ ।
घिघियाता हुआ सारथीसे; फिर बोला उत्तर पड़ा हुआ ॥
"भाई ! अपने स्वामी का क्या; तुम यों ही नमक चुकाते हो ।
हम राही बनने आते हो; मौत की राह ले जाते हो ॥
देखो, अब भी वापिस करदो; मेरी बेहद लाचारी है ।
अहसान करो, दो प्राण-दान; बचने दो, विनय हमारी है॥"
सारथि बोला-"हे राज-कुँवर !; क्षत्रिय को मरना आता है ।
बलवीर युद्धमें आकर फिर; शत्रुसे न डर कर जाता है ॥
देखना, तुम्हारे ही आगे; यह सैन्य हवा हो जायेगी ।
विश्वास रखो, मेरे आगे; तुम पर न हवा भी आयेगी ॥"

इतना कह कर पार्थने; रथ को दिया बढ़ाय ।
"शमी-वृक्ष" के निकट जा; बोले यों समझाय ॥

वह देखो-इस तरुके ऊपर; हथयार टँगे दिखलाते हैं ।
ले लो इनमेंसे धनुष-बाण; यह अभी विजय दिलवाते हैं ॥
उत्तर हो कर प्रसन्न पहुँचा; एवं हथयार उठाने लगा ।
लेकिन अस्त्रों का दृश्य देख; घबराया और चिल्लाने लगा ॥
"भाई ! दौड़ो, भाई ! दौड़ो; धन्वा तो वज्र दिखाता है ।
हर बाण सर्प का रूप धार; उत्तर को खाये जाता है ॥"

हँस कर पहुँचे पार्थ भट; लिये खींच हथयार ।
हाथ पकड़ कहने लगा; वहीं विराट--कुमार ॥

"भाई ! यह गूढ़-भेद क्या है ?; क्या चित्र विचित्र यहां के हैं ? ।
आज तो साफ़ बतलाइयेगा; वास्तवमें आप कहां के हैं ? ॥

पार्थने कहा–" हे राज–कुँवर; हमभी कोई सुकुमारे हैं ।
दुखियारे, यह तन धारे हैं; वास्तवमें राज–दुलारे हैं ॥
सुनते ही हो,तो सुनो बन्धु !; हम सब भिक्षुक–तन धारे हैं ।
वैसे हम पाण्डु–दुलारे हैं; यह सब हथयार हमारे हैं ॥
यह देखो, श्वेत–कवच–धन्वा; है धर्मराज नर–राईका ।
यह धनुष–बाण मेरे समझो; यह वज्र वृकोदर भाईका ॥
बाक़ी यह अस्त्र–शस्त्र सारे; बल वीर-नकुल-सहदेवके हैं ।
दो " कंक–जयन्त " कहाते हैं; बाना रक्खे महि-देवके हैं ॥
"बाहुक" ही भ्रात नकुल जी हैं; सहदेव तुम्हारे "सेनी" हैं ।
मैं अर्जुन हूँ–वे भाई हैं; " सैरन्ध्री " देवि द्रौपदी हैं ॥
तेरहवीं वर्ष बिताने को; हम वेष छिपाये फिरते हैं ।
भैया ! हम भी इस हत्यारे; नीचसे सताये फिरते हैं ॥
लेकिन अब इन चाण्डालोंको; दुख देने की वह राह नहीं ।
तेरहवां वर्ष हो चुका है; खुल जाने की परवाह नहीं ॥
अच्छा है, इसी बहानेसे; हम कुछ फ़ैसला चुका लेंगे ।
तुम नाम–मात्र को चले चलो;हम सब क़िस्सा निबटालेंगे ॥"

उत्तर बोला–" पार्थ भट !; हुआ मुझे विश्वास ।
निश्चय ही हो जायगा; अब कौरव–दल-नाश ॥

लेकिन रण होनेसे पहिले; थोड़ा सन्देह मिटाइयेगा ।
अर्जुनके हैं दश नाम बन्धु !; वे दशों हमें बतलाइयेगा ॥"
पार्थने कहा–" सुनिये कुमार !; वे दशों नाम प्रकटाता हूँ ।
जन्मके समयसे प्रथम प्रथम; केवल "अर्जुन" कहलाता हूँ ॥

स्वर्गसे उतारा ऐरावत; उसदिनसे "पार्थ" कहाता हूँ।
फिर वायु–कवचके विजय बाद; "विजयी" भी बोला जाता हूँ॥
जब राज-मुकुट सिरपर रक्खा; तब नाम "किरीटी" लिया गया
फिर "द्रुपद-सैन्य-संहारण" में; "बीभत्स" नाम रख दिया गया॥
धन-पतिको विजय किया मैंने; इस लिये "धनञ्जय" नाम हुआ
है अगला नाम "श्वेत-वाजी"; यह नाम हमारा काम हुआ॥
"बजरंग" सहायक हैं मेरे; "कपि-ध्वज" इस लिये कहाता हूँ।
है "शब्द-भेद" भी नाम मेरा; आहट पर बाण चलाता हूँ॥
इस सेवा में, इन रोज़ों में; इतना अपराध हमारा है।
पत्नी पर नज़र उठाने से; भाई ने कीचक मारा है॥
जो हुआ, हो चुका, क्षमा करो; जो आगे है उसको देखो।
मैं रथसे बाण चलाता हूँ; तुम रथकी बाग डोर खींचो॥"

उत्तर ने इस राय से; पकड़ी रथ की डोर।
जा पहुँचे कुछ देरमें; कौरव–दलकी ओर॥

रथको आता देख कर द्रोण; बोले–"लो नैया भारी है।
जिसकी आशंका होती थी; यह वही पार्थ बलधारी है॥
बस साफ़ समझमें आता है; अब कौरव–दलकी शामत है।
अर्जुन के आगे खड़ा रहे; बतलाओ, किसकी ताक़त है ?॥"

गुरु वर दे ही रहे थे; यों अपना व्याख्यान।
उसी समय पर "सन्न" से; गिरा चरण पर बाण॥

जब तक उसपर उठ सकी आंख; तब तक दूसरा बाण आया।
द्रोण के पास में ठहर गया; कानों के पास भनभनाया॥

द्रोण के बाद, भीष्म के पास; दो बाण बराबर आये हैं।
फिर इसी भांति का कौतुक कर; पीछे पृथ्वी पर आये हैं॥
द्रोण ने कहा—"सुन लिया! भीष्म!; यह क्या सन्देशा आयाहै?
रण—धीर—धनुर्धर—अर्जुन ने; रण—नमस्कार पहुँचाया है॥
दूसरा बाण यह कहता है—;"तुम दोनों पूज्य हमारे हो।
जितने तुम उनको प्यारे हो; उतने ही हमको प्यारे हो॥
तुम दोनों के हितकारी हो; हम दोनों ही सेवा पर हैं।
इस लिये तुम्हारी नज़रों में; हम दोनों एक बराबर हैं॥
इस लिये आप "गुरुता" रखकर; साहस दोनों को दीजेगा।
पर किसी एक को बड़ा मान; यह पक्ष-पात मत कीजेगा॥"

दोनोंके वास्ते था; यही ख़ास फ़र्मान।
तब तक भूप कलिंग के; छूटे सहसा बान॥

पार्थ ने उन्हें बीच में काट; अपना भी हाथ दिखाया है।
एक ही बाण में रथ तोड़ा; झण्डा भूमि पर गिराया है॥
रथ टूट गया, तो हाथी पर; चढ़कर कलिंग—पति आया है।
एक ही घड़ी में अर्जुन ने; मूर्छित कर उसे गिराया है॥
उसके मूर्छित होते ही बस; "विकरण" ने धावा बोल दिया।
अर्जुन ने एक बाण ही में; खोपड़ा वीर का खोल दिया॥

विकरण पृथ्वी पर गिरा; चढ़ा कर्ण बलवीर।
काट छाँट के साथ में; चले कटीले तीर॥

ललकार मार, धन्वा सँभार; बाणोंकी झड़ी लगा दी है।
तीरोंकी घटा बना दी है; सूरज की प्रभा छिपा दी है॥

अर्जुन ने "अग्नि-बाण" छोड़ा; वे"बाण-मेघ"सब क्षार हुए।
एवं उस ही शर के द्वारा; सैकड़ों शूर संहार हुए॥
सेना भागी, दल विचल गया;दुश्मन की नज़र चौंधियानी।
कर्णने "वरुण-शर"छोड़ दिया; मूसलाधार बरसा पानी॥
अर्जुन के शर डूबने लगे; तो "वायु-बाण" झटने छोड़ा।
उड़ गया मेघ, पानी सूखा; एवं कर्णका छत्र तोड़ा॥
कर्ण ने "सर्प-शर" के द्वारा; वह पवन वेग सब खा डाला।
अर्जुन ने मार "मयूर-बाण"; सापोंका नाम मिटा डाला॥
कर्ण ने"तिमिर-शर"साधन कर; अन्धेरा किया भूमि पर है।
"रवि-शर"पार्थके छोड़ते ही;जगमगा उठा फिर दिनकर है॥
"गिरिशर"के ऊपर"वज्र-बाण";"यम-शर"पर"मृत्यु-बाण"छोड़ा
कितनी देर तक पार्थने यों; बाणों को बाणोंसे मोड़ा॥
विद्या का युद्ध समाप्त हुआ; प्राणों की बाज़ी आई है।
एक ही एक क्षण के अन्दर; सारी युक्ती दिखलाई है॥
जब कठिन-बाण साधन करके; कर्णने सारथी पर मारा।
उसको खण्डन कर अर्जुन ने; कर्णका सारथी संहारा॥
फिर"रवि-नन्दन"पर लक्ष्य बाँध;बाणों की झड़ी लगादी है।
कर्ण को युद्धसे भगा दिया; एवं "जय-ध्वजा" उड़ा दी है॥

घायल, विह्वल, अधमरा; लौटा निपट उदास।
नीची आँखों जब गया; दुर्योधन के पास॥

बेचारा इतना लज्जित है; ऊपर को सिर न उठाता है।
उन जले फफोलों के ऊपर; दुर्योधन नमक चढ़ाता है॥

"आओ, कुलवन्ती जी आओ; साड़ी और लहँगा पहिना दूँ।
जाओ परदे में लेट रहो; कह दो तो चूड़ी मँगवा दूँ॥
क्षत्रिय हो, लानत है तुम पर; और हैफ़ तुम्हारी कुव्वतपर।
पाण्डव—दल जीता चाहते हो; बस इसी ज़नानी ताकतपर॥
हे मगध राज ! वह शीशा था; अब चमकीला गौहर देखो।
कर्ण के खेल को देखा—अब; दुर्योधन का जौहर देखो॥"

कौरव—पति के गमन पर; बाजे ढोल निशान।
किन्तु साथ ही भूँकने; लगे स्यार और श्वान॥

गदहे चीख़े, उल्लू बोले; शीश पर गिद्ध मँडराने लगे।
जितने भी अशकुन होते हैं; वे एक साथ दिखलाने लगे॥
डरकर पूछा दुर्योधन ने; "गुरुवर इसका कारण क्या है ?॥"
द्रोणने कहा "शायद राजन् !; इस रणकी कठिन समस्या है।
जो इस सायत में जाओगे; तो बेशक हाँनि उठाओगे।
दल को भी नाश कराओगे; खुद भी पीछे पछताओगे॥"

कहा कर्णने—"ठीक है; तुम न जाव महराज !।
मैं खुद ही निबटाऊँगा; अपने सर की लाज॥"

दुर्योधन रुका, कर्ण धाया; और उथल पुथल कर दिखलाया।
लेकिन अर्जुनके बाणों से; अच्छा ख़ासा धक्का खाया॥
हाथी, घोड़े, पैदल, सवार; सब पड़े पड़े सिसकाते हैं।
गीदड़, मशान, चण्डी, भैरव; हँसते हैं मौज उड़ाते हैं॥
दल-खण्डनने दावानल बन; सब दलका दल ख़ामोश किया।
फिर तीखे बाणों के द्वारा; रवि-नन्दन को बेहोश किया॥

लौटा बेहोश कर्ण दल में; तो दुःशासन ने क़दम दिया ।
उसके दल को उसके बलको; पार्थ ने ज़रामें ख़तम किया ॥
भगदत्त भिड़ा वह भी भागा; सारे दल का संहार हुआ ।
भागड़ पड़ गई दिशाओं में; कुरु-दल में हाहाकार हुआ ॥

दशा देखकर सैन्यकी; चढ़े द्रोण द्विज वीर ।
गुरुवरको आता समझ; किया प्रणाम सुधीर ॥

गुरुवर ने भी आशीश दिया; फिर बाणों का व्यवहार हुआ ।
शिष्य के बाण के काटों से; गुरुका निशान बेकार हुआ ॥
रथ तोड़ दिया जब चेले ने; तो फ़ौरन रथ मँगवाया है ।
फिर गुरुवर ने भी चेले पर; अपना जौहर दिखलाया है ॥
अर्जुन पर अग्नि-बाण छोड़ा; सब वाण जलाकर भस्म किये ।
लेकिन रण-कुशल पार्थने भी; सारे अँगारे बुझा दिये ॥
द्रोण ने चलाया ब्रह्म अस्त्र; नारायण-अस्त्र यहाँ से था ।
अर्जुन ने वज्र-बाण मारा; वज्र-हर-सु-बाण वहां से था ॥

जब अर्जुन ने द्रोण के; दिये अस्त्र सब टाल ।
लिया हाथ में द्रोण ने; काल बाण विकराल ॥

उस काल बाणके आते ही; अर्जुन ने कृष्ण पुकारा है ।
ध्वज-संरक्षक-बजरंगी ने; मुख में उस शर को धारा है ॥
पार्थ ने सारथी-रथ एवं; घोड़ों को फिर संहारा है ।
मारे बाणों के गुरुवर का; विच्छिन्न किया तन सारा है ॥
यह दशा देखकर भूरिश्रवा; आगे आया, और लड़ने लगा ।
अर्जुन के कठिन नराचों से; वीरों पर पानी पड़ने लगा ॥

हो गया मूर्छित भूरिश्रवा; और साथी भी ख़ामोश हुए।
सीने पर शर लग जाने से; गुरुराज द्रोण बेहोश हुए॥

रथ ले भागा सारथी; बचा द्रोण की जान।
चढ़ आया फिर द्रोण-सुत; लगा चलाने बाण॥

अर्जुन ने उसका वार वहीं; एक ही बाण से काट दिया।
फिर एक बाण ऐसा मारा; सब खूना खून शरीर किया॥
द्रोणीने भी वह शर मारा; जो कवच फाड़कर निकल गया।
लेकिन अर्जुन का एक बाण; मैदान झाड़ कर निकल गया॥
सारथी तेग़ से काट दिया; घोड़ों को मार गिराया है।
द्रोण के पूत ने ज्यों त्यों कर; अर्जुन से प्राण बचाया है॥

भाग गया जब द्रोण—सुत; चढ़ा जयद्रथ वीर।
काफ़ी था उसके लिये; वहां एक ही तीर॥

सारांश जयद्रथ के पीछे; शकुनी आया, बेहोश हुआ।
"शल्य" पर एक ही वार पड़ा; उतने ही में ख़ामोश हुआ॥
फिर बाहुलीक, कम्बोज वीर; और सोमदत्त मय गङ्गाधर।
अर्जुन से बाज़ी लेने लगे; यह चारों वीर साथ मिलकर॥
घिर गया वीर चारों जानिब; बाणों का अन्धकार छाया।
लेकिन वह सब को काट छाँट; सूरजकी तरह निकल आया॥
फिर "द्विरद-दुमत्त" फौज लेकर; अर्जुन के आगे बाज़ी ली।
"अर्जुन" ने चन्द बाण मारे; उनकी भी हविस खतम करदी॥
"लक्ष्मण कुमार" यह दशा देख; आया, अर्जुनने लौटाया।
सारांश वीर जो भी आया; उसने पूरा धक्का खाया॥

"लक्ष्मण" जब वापिस हुआ; चढ़ा "अलम्बुष" धाय ।
सात कोट दानवों ने; हल्ला दिया मचाय ॥

कोई वृक्षों को ले दौड़ा; कोई हथियार चलाने लगा ।
कोई मुर्दों को खाने लगा; कोई पत्थर बरसाने लगा ॥
"अर्जुन" ने असुर-समाज काट; लोथोंके साथ सुलादी है ।
फिर एक सूर्य-शर के द्वारा; दलमें हल चल फैला दी है ॥
मूर्छित करके लौटाता है; तब तक "कृतवर्मा" आता है ।
बेचारा वह भी "अर्जुन" से बस मुँह की खाकर जाता है ॥
फिर "कृपाचार्य" आये, लौटे; आया किरीट, विलटायदिया ।
जितने भी योधा आये हैं; सब का पाँसा पलटाय दिया ॥
हे श्रोतागण ! घबराओ मत; इन युद्धों से बेबाक़ी है ।
अब अन्तिम दृश्य दिखाने को, एक ही लड़ाई बाक़ी है ॥
मैदान साफ़ कर वीरों का; अर्जुन ने शङ्ख बजाया है ।
उत्तर घोड़ों को दौड़ा कर; कौरव-दलपर चढ़ आया है ॥

आता देखा पार्थ को; चढ़े भीष्म बलवीर ।
उन्हें देख कहने लगे-उत्तर से रण-धीर ॥

"उत्तर कुमार ! आगे देखो; वह महा वीर-वर आया है ।
जिनके आगे खुद परशुराम; गुरु तक ने लोहा खाया है ॥
यह ही इस कुल के कुल-पति हैं; और आदि बुजुर्ग हमारे हैं ।
हे केशव ! अब रक्षा कीजो; शरणागत दीन तुम्हारे हैं ॥"

इतना कह कर पार्थ ने; उन को किया प्रणाम ।
कहा "भीष्म" ने-"सिद्ध हो; बेटा ! तेरा काम ॥"

आशिष पाकर-रथ दौड़ाया; "दुर्योधन" की जानिब ज्योंही।
"भीष्म"ने बाण आघातों से; "अर्जुन"को रोक लिया त्योंही॥
"अर्जुन"बोले-हे"वंश-वृद्ध !" मत दग़ा राह में कीजेगा।
जो हविस आपको भी कुछ है; तो सम्मुख लोहा लीजेगा॥

पस दोनोंमें वहाँ पर; हुआ घोर–संग्राम।
उतने हीमें चतुर्दिश; उठ दौड़े बल–धाम॥

सन्नाने लगे, शरोंपर शर; सरकश, बेसर दिखलाने लगे।
मँड़राने लगे; सरों पर सर; यकसर बेअसर दिखाने लगे॥
हम असर-वशर-हम सर-सरवर;अकसर महशर में डाल रहा।
यकसरउनकोकरकसर-कसर;गिन-गिनकर "कसर"निकालरहा
चारों जानिवसे शर, कृपाण; और शूल चलाये जाते हैं।
एक ही हाथ से, एक बार; काट कर गिराये जाते हैं॥

गायन

चौतरफ़ से हर तरह से; वीर–वर पर मार है।
कोटिशःवीरों के अन्दर; एक पाण्डु-कुमार है॥
शक्ति, शूल, कृपाण, बरछे; तीर, भाले चल रहे।
किन्तु हर हथियार उस;सामर्थ पर बेकार है॥
काट है हर अस्त्र की;और छाँट है हर वीरकी।
हाथ वालों के लिये; हथयार ही हथमार है॥
मूलियों के खेतमें हाथी मचलता हो यथा–
या कि कुत्तों में खिलाड़ी सिंह की हुँकार है।

उड़ रहे सिर, भुज, श्रवण, खूँके फवारे छुट रहे।
इस तरफ़ से उस तरफ़ तक; चीख़ हाहाकार है॥
बह रहा है एक दरिया; खून का इस वेग से;
जिस का हर रथ नाव है; और हर रथी पतवार है।
भाग निकले दुम दबा कर; कौरवी योधा सभी;।
बस वहाँ "शैलेन्द्र" केवल; पार्थ ही सरदार है॥

जब खूनी दरिया उमड़ चला; तो धड़ उस में बहने लागे।
यानी वीरों की गंगा में; बे जान जीव रहने लागे॥
हाथी चिक्कार मार भागे; रथ टूट गये, घोड़े रोये।
सोने वाले जाग कर भगे; भागे जागे, अथवा सोये॥
"हाहा"—पुकार पर चीत्कार; चिंघार सुनाई देता है।
या मुर्दा नजर आरहे हैं; या पार्थ दिखाई देता है॥
हाँ, समर—बिहारी—भूत—प्रेत; योगनी बिहार कर रही हैं।
आँतों, मुण्ड़ों, भुज—दण्ड़ों से; रुचिरुचि शृङ्गार कर रही हैं॥
खप्पर भर भर पी रहीं रक्त, कड़ कड़ हड्डियां चबाती हैं।
धम् धम् नाचें, दम् दम् कूदें; जय "बम् बम् बम् बम्" गाती हैं॥

भागड़ देखी सैन्यमें; जब अर्जुन बल—वान।
छोड़ा सारी सैन्य पर; प्रभु का मोहन—बाण॥

छुटते ही शर, जो जैसा था; वैसा ही वहीं सोगया है।
सारे हत्यारे—खल—दल का; बे मारे काम हो गया है॥
था भीष्म वीर को वर पहिले; गंगा जी का—वे बचे रहे।
बाक़ी योधा, बस उसी तरह;. बे मौत मरे से पड़े रहे॥

"उत्तर"से कहने लगे;तब "अर्जुन" रण–धीर ।
"भैया ! रथसे उतर कर; जाओ इनके तीर ॥

आवश्यक भूषण और वस्त्र; पोषाक उतार वीर–गण की ।
ले आओ,कुण्डल–मुकुट आदि; सारी चीज़ें दुर्योधनकी ॥"
आज्ञा पाकर "उत्तर" पहुँचा; सारा सामान उतार लिया ।
इसके पीछे"अर्जुन"–भटने; वह"मोहन-मन्त्र"उतार दिया ॥

ज्यों ही सेनाके सहित; जागा कौरव–राज ।
मिले न कुण्डल कानके;लखा न सिर का ताज ॥

घायल नाहरकी तरह भूप; सेना–समेत चिक्कारा है ।
टूटे फूटे हथयार जोड़; फिरसे पार्थको पुकारा है ॥
सर्वाङ्ग रुधिरमें लथपथ है; रग रगमें ज़ख्म दिखाते हैं ।
फिर भी यह "होलीके हीरे" उस विषम–ज्वालमें जाते हैं ॥

" भीष्म " वीर कहने लगे; सब सेना को रोक ।
" कुछ तो लज्जावानको; हुआ चाहिये शोक ॥

चारों खाने चित आये हो; फिरसे लड़ने को जाते हो ।
लज्जा खाओ, कुछ हया करो; क्यों जड़से नाक कटाते हो? ॥
जो खीझे हुए सिंह को तुम; फिरसे जाकर खिजलाओगे ।
तो अभी जताये देता हूँ; अब जीते हुए न आओगे ॥
कुरुपति ! वापिस चुपचाप चलो; राज्य की इसीमें इज्ज़त है।
इस "सर्व–हरण" वाले रणसे;जो कुछ भी बचे–ग़नीमत है॥"

दुर्योधन कहने लगा; भर कर ठण्डी आह ।
" पितृ-देव ! इस समय पर; दीजे और सलाह ॥

शत्रुसे पीठ दे कर भागूँ; इससे मर जाना आच्छा है ।
ऐसे लज्जा-अपयशसे तो; जौहर कर जाना अच्छा है ॥"
भीष्मने कहा-" ग़लती पर हो, ऐसे भी लज्जा गई कहीं ? ।
सेना भागी-तो भाग जाय; "सेना-नायक" तो हटा नहीं ॥
हां, जो अर्जुन तुमको भी यों; रणमें नीचा दिखलायेगा ।
तो निश्चय ही दुनिया भरमें; फिर मुँह न दिखाया जायेगा ॥
इसलिये चलो, सीधे सादे; इन बातोंमें रक्खा क्या है ? ।
और भी अभी मौके होंगे; कुरु-नाथ ! अभी बिगड़ा क्या है॥

नीची नज़रों दल-सहित; लौटा कौरव-नाथ ।
कह "शैलेन्द्र" "विनीति" अब; जय श्रीयादव नाथ ॥

-: शुभमस्तु :-

इति विराटपर्व-पाण्डवोंका अज्ञातवास ।



श्रीः ।

महाभारत-उद्योगपर्व ।

समर-सूचना.

सरल छन्दोबद्ध.

"सुख दुख सहे चल, पीताम्बर गहे चल;
कृष्ण कृष्ण कहे चल, पार लग जैहै रे ।"

लेखक-

कविरत्न श्री पं० शैलेन्द्रकुमारजी वाजपेयी.

धर्मालङ्कार, कीर्तनकलानिधि,

आनन्द भवन, गणेशगंज, खण्डवा C.P.

और

काव्य-कला-भूषण अभिनयाचार्य्य कुशल-कवि,

श्री पं० गोविन्ददासजी विनीति, तालबेहट-झाँसी.

मुद्रक एवं प्रकाशक:

खेमराज श्रीकृष्णदास,

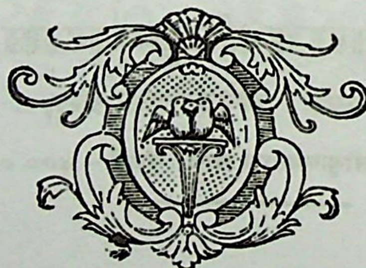
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

श्रीः ।

❋ प्रार्थना. ❋

प्रेम कैसा ? जब तलक मर्य्याद हो ।
चाहिये जी खोल के संवाद हो ॥
कब बजी ? ताली कहीं यक हाथसे;
कुछ तुम्हें भी तो हमारी याद हो ।
तारना हों तो "अजामिल" लाख हैं;
किस तरह हर एक जन प्रह्लाद हो ? ॥
रोग हो, तो एक ही हो, बस हमें—
प्रभु ! तुम्हारे प्रेम का उन्माद हो ।
बैठा है "शैलेन्द्र-गोविन्द" द्वारपर—
दानिवर ! इसको भी भक्ति-प्रसाद हो ॥



श्रीः ।

कथा-प्रारम्भ ।

लौटे उत्तर-पार्थ-भट; सुमिर द्वारिकानाथ ।
खेल रहे थे नृप वहां; "कंक" विप्र के साथ ॥

भूप के हाथ में पाँसा था; चौपड़ की चाल चाल पर थी ।
इतनेमें एक दूत बोला-"महाराज ! विजय है "उत्तर" की ॥
बाणों के मारे खल सारे; अधमारे भागे जाते हैं ।
अब "विजय-दुन्दुभी" दिये हुए; श्रीकुँवर भवनको आते हैं" ॥

राजाके जब कानमें; पहुँचा यह संवाद ।
अकथनीय आनन्द से; उमड़ उठा आह्लाद ॥

आज्ञा दी-"दूत ! शीघ्र जाओ; स्वागत की तैयारियाँ करो ।
आनन्द मनाओ घर घरमें; "उत्तर" की जयकारियां करो ॥"
कंकने कहा-"जिस जगह भला; साथी हो वीर "बृहन्नल" सा ।
उस जगह एक दुर्योधन क्या ?; मुँह लौट जाय यमराजोंका ॥"

इतना कहना क्या हुआ ?; बदल गया सब ठाट ।
आग बबूला हो गया; सुनकर भूप विराट ॥

बोला-"अये ना क़द्रे ! ब्राह्मण !; ले पक्ष न नौकर गदहे की ।
अफ़सोस ! केहरी के आगे; तारीफ़ करे नामर्द की ॥
क्या बाण चलाना जानेगा ? हाथों का मटकाने वाला ।
रण में क्या काम दिखायेगा ? नाचने और गाने वाला ॥"

कंक ने कहा—"यह सब सच है; लेकिन तारीफ़ उसी की है।
जा पूँछो, अपने बेटे से; उसने ही महा-विजय की है॥"

अब तो नृप के क्रोध का रहा न पारा वार।
चौसर का पाँसा दिया; धर्म-राज को मार॥



माथे से लोहू बह निकला; दो अङ्गुल पांसा फूट गया।
यह दशा देख कर सैरन्ध्री; देवी का धीरज छूट गया॥
बे सोच समझ बे रोक टोक; जा पहुँची सीधी महफ़िल में।
पृथ्वी पर बूँद न आने दी; ले लिया रक्त को अञ्जलि में॥

दासी गुस्ताख़ी करे; निडर स्वामिके तीर।
ऐसी दासी, दास को; डालो धड़ से चीर॥

गुस्से में दाँत चबाकर नृप; बोले—"दासी हरजाई है।
मैं जिसको सज़ा दे रहा हूँ; यह उसे बचाने आई है॥
ओ हो ! इतने अहसान मेरे; हृदयों से अभी खो गये हैं।
मुझको सींग पर रख दिया है; सब नौकर एक हो गये हैं॥
यह "कंक" दुष्ट स्वामिको छोड़; साथीके यशको गाता है।
आ चढ़ी शीश पर सैरन्ध्री; उस ओर "जयन्ता" आता है॥"

सैरन्ध्री कहने लगी-"हों न नाथ ! अति क्रुद्ध।
पृथ्वी पर गिरना रुधिर; है आपके विरुद्ध॥

यह वह साधारण रुधिर नहीं; जो बह कर ख़ुद रुक जायेगा।
यह "धर्मराज" का लोहू है; जो लोहू ही बरसायेगा॥
जो इस लोहू की एक बूँद; राजन् ! पृथ्वी पर आयेगी।
तो बारह साल अकाल पड़े; रैयत भूकों मर जायेगी॥"

पूर्ण न होने पाये थे; उस देवि के विचार।
"बृहन्नला" के साथ में; आया राज-कुमार॥
"उत्तर" ने जाकर किया; नृपको प्रथम प्रणाम।
कहा—"पिताजी ! पार्थने; विजय किया संग्राम॥

यह नौकर नहीं हमारे हैं; यह पाँचों पाण्डु—दुलारे हैं।
"कीचक" भीम ने सँहारा है; वैरी अर्जुन ने मारे हैं॥
हे पूज्य ! इन्हें आदर दीजे; अपना ही सखा मानियेगा।
यह "कङ्क" नरेश युधिष्ठिर हैं; यह "पाञ्चाली" पहिचानियेगा॥"

खुले नयन तब भूपके; छाती लिया लगाय।
क्षमा माँगने लगे नृप; बार बार पछिताय॥

"हे धर्मराज ! हे महाराज !; जन का न दोष मनमें धरना ।
यह भूल आपही के सिर है; सेवक की सेवकाई करना ॥
यह असल भेष में आते तो; क्या यहाँ न मैं रहने देता ।
सेवक बनकर सेवा करता; भाई की भाँति निभा लेता ॥"

धर्मवान् कहने लगे—"नीति-पाल ! नरपाल !।
जब आता है शीश पर; महा—कालका जाल ॥

उस समय शान या तड़प, झड़प; उलटा प्रभाव दिखलाती है ।
मक्खी ज्यों ज्यों फड़काती है; त्यों त्यों ही फँसती जाती है ॥
इसलिये चाहिये सज्जन को; विपदा में सिर नीचा करले ।
शान्तिसे, धैर्य्यसे जैसे हो; भावीके दिन पूरे करले ॥
सेवा भी की—तो घर की की;क्या बात यहां द्विविधा की है ।
इस तरह रहे, उस तरह रहे; रहने को अपना घर ही है ॥"

मित्र—मित्र रहने लगे; टूटा सेवा—तार ।
अब भविष्यके वास्ते; होने लगा विचार ॥

भूपने कहा—"उत्तर कुमार !; यह मित्र—भाव क्यों कर पालें ?।
मेरा विचार तो ऐसा है; उत्तरा "पार्थ" को दे डालें ॥"
उत्तरने भी स्वीकार किया; सन्देशा ले कर दूत गया ।
उत्तरमें पार्थ वीर बोले—"इस जगह सुना अन्धेर नया ॥
दूत वर ! तनिक बतलाओ तो;किसने नृप की मति मारी है?।
मुझको वे बेटी देते हैं; जो कन्या—तुल्य हमारी है ॥
कह देना जाकर राजासे; ऐसा न भाव मुझसे पालें ।
जो यह शादी करनी ही हो; तो "अभिमन्यू"से कर डालें ॥"

दोनों पक्षोंसे हुआ; यह विवाह स्वीकार ।
महलोंमें होने लगे; मुद—मय मंगलचार ॥

उसी समय पर "धौम्य-ऋषि"; आपहुँचे दरबार ।
धर्म-राजने यथा-विधि; किया पूर्ण-सत्कार ॥

फिर हाथ जोड़कर विनती की; "हे नाथ ! द्वारिका को जाओ।
अभिमन्यु कुँवर की शादीमें; द्वारिका नाथ को ले आओ ॥
दासों की क्षेम-कुशलता का; सारा संवाद सुना आना ।
आदिसे अन्त तक दीनों का; पूरा सन्देशा समझाना ॥
मेरी ओरसे जहां तक हो; केशवके आगे झुक जाना ।
जिस दिन आना विनती करके; अपने ही साथ लिये आना ॥"

चले "धौम्य" ऋषि शीघ्र ही; नृप की आज्ञा पाय ।
पहुँचे; व्राजे थे जहां; केशव, यादव-राय ॥
चरणोंपर शिर रख दिया; बिसर गया सब ज्ञान ।
लगे लगाने हृदय से; जगन्नाथ-भगवान ॥

गद गद शरीर, रुँध गया कण्ठ; आँखों ने आँसू बरसाये ।
ऋषि वर, जग-धर-प्रभुवर पाकर; फिर फिर चरणों में लपटाये ॥
फिर हाथ जोड़-ध्वनिसे बोले- " हे हे त्रैलोक-नाथ ! जयहो ।
हे जगदाधर ! हे जगत-रूप !; हे जगमय ! जगन्नाथ! जयहो ॥

गायन

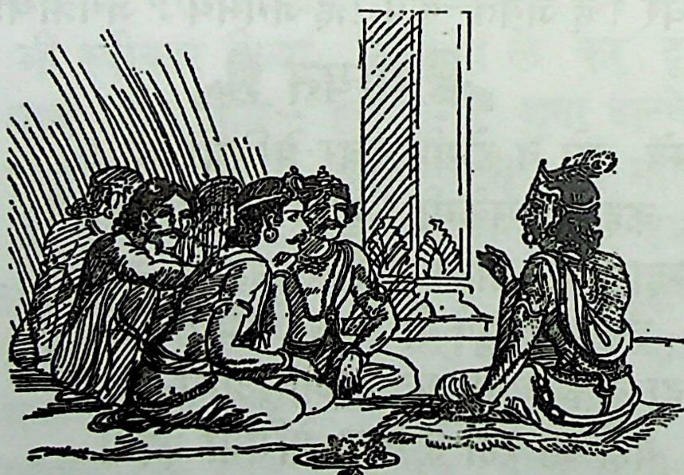
तुम्हें जो न होगी ख़बर प्रेमियों की ।
कहां हो सकेगी ? गुज़र प्रेमियों की ॥
तुम्हारा भी माथा न फिर उठ सकेगा;
जहां पर झुकेगी नज़र प्रेमियों की ।
नहा लीजियेगा, प्रबल आंसुओंसे-
बही जा रही है नहर प्रेमियों की ॥

निभेगी न जो हठ कभी प्रेमियों की-
प्रलय तक रहेगी उज़र प्रेमियों की ।
"शैलेन्द्र" भी कुछ नहीं मांगते हैं-
कटे प्रेम ही में उमर प्रेमियों की ॥

दीनबन्धु कहने लगे-" कहिये दीना नाथ ! ।
किस कारण यह दया की; हम दीनोंके साथ ? ॥

फूफी-द्रौपदी कुशल तो हैं; क्या करते हैं ? अब नर-राई ।"
ऋषिवर बोले-"हे ! दीनबन्धु; हैं कुशल-सहित पाचों भाई ॥
राजा विराट ने बेटी का; "पार्थज" से ब्याह रचाया है ।
इसलिये सुभद्रा सहित तुम्हें; सुत "अभिमन्यु" को बुलाया है ॥"

सुन कर सुख-संवाद यह; साज-बाज के साथ ।
बहिन-भानजे के सहित; पहुँचे यादव-नाथ ॥
यादव-पति को देख कर; उठा सकल दरबार ।
वन-वासी मिलने लगे; प्रभुसे बारम्बार ॥



गायन

आओ, हे हृद-देव ! पधारो; स्वागतार्थ हम खड़े हुए हैं ।
दीन जनोंका जनम सुधारो; स्वागतार्थ हम खड़े हुए हैं ॥
क्यों कर स्वागत करें तुम्हारा !; सूखी रोटी भोज्य हमारा;
भिखारियोंका है भण्डारा; स्वागतार्थ................................ ।
आओ, हृदय में तुम्हें बिठालें; पलकोंके पाटम्बर डालें;
अश्रु-धार से पद धुलवा दें, स्वागतार्थ........... ।
इन चरणोंके बल पर निर्भय; इन चरणों के बल पर अक्षय;
इन चरणोंकी बोलें जय-जय, स्वागतार्थ........ ।
कह "शैलेन्द्र"-"गोविन्द" विहारी; मुकुन्द-माधव-हरी मुरारी;
गोपी-पति-गोवर्धन-धारी; स्वागतार्थ हम खड़े हुए हैं....... ।

चरणों गिरकर पाण्डव-पतिने; सारी गाथा समझाई है ।
सम्बन्धी तथा सखाओंको; फिर शुभ-पत्री पहुँचाई है ॥
दोनों ओर के सजन-समधी; स्नेही, मित्र पधारे हैं ।
प्रति गली गली हर राह, बाट; शुभ द्वारे बन्दन वारे हैं ॥
तोरण, पताक, काञ्चनी-कलश; मणि-दीपक मुक्ता न्यारे हैं ।
विधु वदनाओं ने विधि मनाय; विधि-वत् रुचि-चौक सँभारे हैं ॥
विप्रोंने वेद-मन्त्र गाये; बन्दी-गण विरद पुकार रहे ।
मंगल-मुखियोंके प्रति मण्डल; मंगलाचार उच्चार रहे ॥

रुचिर, जटित-मणि, चित्र-मय; मण्डप चारु बनाय ।
वरना, वरनीकी विशद; जोड़ी जुगल सुहाय ॥

श्रीधर्म तथा स्नेही-गण; सब विधि सम्मानित किये गये ।
विप्रोंको और याचकों को; कञ्चन; गौ भूषण दिये गये ॥

फिर यथा समय आचार्य्योंने; भांवर–लग्नका विधान किया।
अभिमन्युने पाणि–ग्रहण किया; राजाने कन्या-दान लिया॥
रानी जी तथा द्रौपदी का; आनन्द न लिक्खा जाता है।
मानो विराट-पुरमें घर घर; आनन्द उमड़ता जाता है॥

जिन पर कृपा कटाक्ष कर; चितये रमा–निवास।
तिनके सुख–आनन्द हैं; अलिखित "गोविन्ददास"॥

वैदिक-विधान से यथा–रूप; उत्तरा देविका व्याह हुआ।
कुछ दिन पीछे शान्ति के साथ;स्थिर आनन्द-प्रवाह हुआ॥

प्रिय अभिमन्यु–कुमारके; शुभ–विवाहके बाद।
राज्य–प्राप्तिके वास्ते; शुरू हुआ संवाद॥
कृष्ण चन्द्र, आनन्द–निधि; शुचि-आसन-आसीन।
धर्मराज कर जोड़ कर; बोले कपट–विहीन॥

जिस सरल-भावसे नाम लिये;कर दिया मुक्त जग-वामाको[1]।
जिस भक्ति-भाव से प्रेरित हो; राजा कर दिया सुदामा को॥
जिन चरणों का आश्रय पाकर; इन्द्र का मान ठहराया है।
जिन चरणोंकी महिमा द्वारा; बलि को पाताल पठाया है॥
जिन चरणोंने कंसका राज्य; बुड्ढों के हाथ दिलाया है।
जिन चरणों ने-चरणाश्रितके; चरणों का मान बढ़ाया है॥
जिन चरणों ने प्रह्लाद तथा;–ध्रुवसे असहाय उबारे हैं।
हे दयाधाम ! उन चरणों के; यह चेरे आज सहारे हैं॥
इन प्रबल-प्रतापी–चरणों का;अब कुछ प्रताप दिखला दीजे।
जितने अधिकार योग्य जन हो;उतना अधिकार दिला दीजे॥

---

१ वेश्या।

जो शर्त्तें थीं कौरव-पति की; वे यथा—रूप पूरी भर दीं ।
वन वासी बन, सेवायें कर; तेरह बरसें पूरी कर दीं ॥
अब है सेवक की बारी प्रभु !; जो कृपा-कटाक्ष तुम्हारी हो ।
तो कुछ अधिकार मिले भगवन!;यदि जन उसका अधिकारी हो

धर्म-राजकी बात पर; बोले करुणा—कन्द ।
"धर्म ! तुम्हारे साथ है; सदा सचिदा—नन्द ॥



भावी के दुर्दिन निकल चुके; अब मैं दिल्ली को जाता हूँ ।
चारों प्रकार की नीतोंसे; कौरव-पति को समझाता हूँ ॥
जो मान जाय तो अच्छा है; ना माने तो भी अच्छा है ।
मान लो धर्म-पति!बहुत शीघ्र;राज्य-पद तुम्हें ही मिलता है॥"

इस प्रकार कह कर चले; माया-पति-भगवान ।
पहुँचे कुरु-पति-सभामें; जग-पति, नीति-निधान ॥

केशवकी मूर्ति देखते ही; कुरुपति का मन दहलाया है।
प्रत्यक्ष-रूप से आदर कर; सिंहासन पर बिठलाया है॥
माधव ने भी पहिले ही से; सीधा प्रस्ताव जमाया है।
क्यों कौरव-पति ! उन दुखियोंको; अब क्या देना ठहराया है?॥
हो चुकी आप की शर्त्त पूर्ण; अब आधा राज्य दीजियेगा।
उन बिछुड़े हुए बन्धुओं को; हे समरथ ! शरण लीजियेगा॥

कौरव-पति यह वचन सुन; बोल उठा तत्काल।
"राज-ताज के विषयमें; कहो न कुछ गोपाल ! ॥

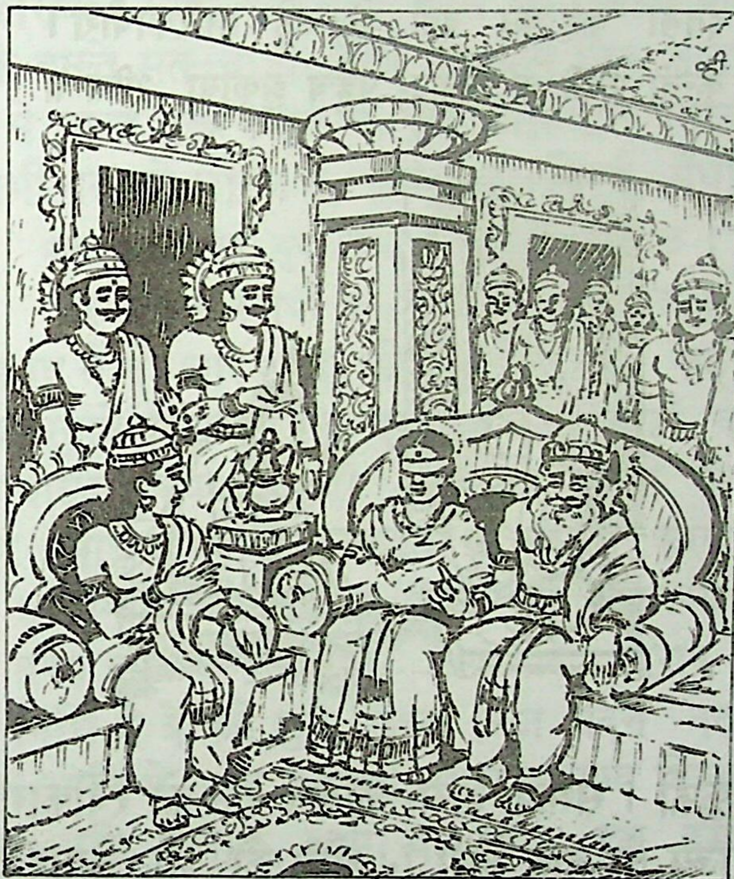
तुम रहो, अतिथि हो, मानता हूँ; पर यह चेष्टा दिखलाओ ना।
दूसरा प्रसंग कहो केशव !; यह चर्चा यहाँ उठाओना॥
अथवा स्पष्ट कहो-क्या तुम; कुछ नीति सिखाने आये हो ?।
उन जनम उठाई गीरों का; सन्देश सुनाने आये हो॥
अपनी आँखें हम फोड़ चलें; खाई खोद लें अगाड़ी को।
पुरुषों की कठिन कमाई क्या; दे डालें एक जुवाड़ी को॥
कह देना उन भिख मँगों से; शाही शान में न आ जायें।
नौकरी वहीं पर किया करें; या अन्त कहीं माँगें खायें॥"

दया धाम कहने लगे--"सुनिये कौरव-नाथ ! ।
दया दिखानी चाहिये, भ्राताओं के साथ॥

वे जितने रुसवा होते हैं; वह सब अपनी रुसवाई है।
भिक्षुक है, और जुवाड़ी है; लेकिन फिर भी तो भाई है॥
आधा मत दो, दस पाँच गाँव; देदो ज़िंदगी बिताने को।
हे राजन् ! लाखों राहें हैं; बिगड़े की बात बनाने को॥"
कुरु-पति बोला-"बस रहनेदो; मुझको यह नीति न सिखलाओ।
तुम को तर्क से काम क्या है?, जो कहता हूँ-सुनते जाओ॥

लड़ जाने से, कट जाने से; मर जाने से इनकार नहीं।
लेकिन सुईकी नोक भर जगह; देना भी अंगीकार नहीं॥"

कृष्णचन्द्र ने फिर कहा;–"बढ़ न जाय यह बात।
राजन् ! होता है बुरा; घर में का उत्पात॥



कर दिया नाश "हिरना कुश" का; ना कुछ प्रह्लाद हीके प्रणने।
सोने की लंका जलवा दी; घर का भेदिया विभीषण ने॥
जो मेरे इन शब्दों को नृप !; इस समय नहीं अपनाओगे।
तो ध्यान रहे–कुछ ही दिन में; बेहद चक्कर में आओगे॥

जो यह यश आज न लेते हो; तो अब अपयश लेना होगा ।
आधा देना स्वीकार नहीं; तो अब पूरा देना होगा ॥
मानो, तो मानो, मान तजो; अन्तिम बार की मनौती है ।
लड़ना हो तो तैयार रहो; मेरी ओर से चुनौती है ॥"

इतना कह कर वहाँ से; उठे द्वारिकाधीश ।
कुन्ती फूफी के निकट; पहुँच झुकाया शीश ॥



बोले—"फूफी ! समझा हारा; लेकिन शठ को स्वीकार नहीं ।
आधा राज्य तो बात कैसी ?; थोड़े को भी तैयार नहीं ॥
कुन्ती के आँसू बह निकले; बोली—"भगवत" की इच्छा है ।
भैया ! इस खोटी क़िस्मत में; देखो तो सुख भी लिक्खा है?॥
जिस दिन से व्याही आई हूँ; अब तक न शान्ति पहिचानती हूँ ।
इन दुःखों का सारा कारण; मैं अपने ही को जानती हूँ ॥"

मन मोहन कहने लगे;–"फूफी ! क्यों घबराय ? ।
कर्म वीर के वास्ते; है अवलम्ब उपाय ॥
हम लोगों पर दुख ही क्या है?;कुछ दुखियोंका भी ध्यान करो।
उन लोगों की गाथाएँ सुनो; उन दुःखों का अनुमान करो ॥
"नृप हरिश्चन्द्र !"हा नाम मात्र; जिस का रोमाञ्च कराता है ।
सत्य के वास्ते सत-वादी; डोम के यहाँ बिक जाता है ॥"
आदि से अन्त तक केशव ने; कुल आख्यान बतलाया है ।
फिर सभी तरह से धीरज दे; फूफी को धैर्य्य बँधाया है ॥
प्रात काल फिर भूप ढिग; जा पहुँचे गोपाल ।
फिर भी उस स्वार्थी का; बदला नहीं ख़याल ॥
तब माधव ने दो चार शब्द; क्रोध में नीचसे कह डाले ।
जिन को सुनते ही उबल पड़े; दुर्योधन के "जीहाँ वाले ॥"
शकुनी बोला--"क्या डरते हो ?; मूढ़ को पेड़ से बँधवा दो ।
दो चार तमाचे लगवा कर; खातिर से वापिस करवा दो ॥"
इस सम्मति पर भीष्म भट; विदुर गये सिसकाय ।
समझ गये उस दशा को; माया-पति यदुराय ॥
माया–निधि ने बे कहे सुने; केवल निज वदन बढ़ाया है ।
जिस में आदि से अन्त तक का; सारा ब्रह्माण्ड दिखाया है ॥
आकाश, भूमि, पाताल, स्वर्ग; घन घुमड़े हुए दमकते हैं ।
लाखों सरितायें बहती हैं; लाखों शशि–सूर्य्य चमकते हैं ॥
लाखों पहाड़, लाखों जंगल; लाखों ही नगर सुहाते हैं ।
लाखों ब्रह्मा, लाखों शंकर; लाखों महेन्द्र दिखलाते हैं ॥
यम–काल–पिशाच–प्रेत, भैरव; गन्धर्व, नाग,किन्नर,नर हैं ।
चौरासी लाख योनियों के; छबि–सागर धाम उजागर हैं ॥

परम-प्रचण्ड, उदण्ड छवि; महिमा अमित अखण्ड ।
राज रहे प्रति रोम में; कोट कोट ब्रह्माण्ड ॥

उस ही विशाल-मुखमें देखा;--वह कौरव--वंश खो रहा है ।
कौरव-गण तथा पाण्डवों में; भारत का समर हो रहा है ॥
प्रभु, पाण्डव तथा सात्यकी के; अतिरिक्त मरे सब भारतमें ।
उत्पन्न हुए त्रिभुवन-पति से; फिर समा गये त्रिभुवन-पतिमें ॥

इस चरित्र को देखकर; चकित हुए नाकाम ।
विदुर--भीष्म ने हृदयमें; प्रभुको किया प्रणाम ॥

भीष्म ने कहा-"हे विदुर भ्रात !; होनी का दृश्य दिखाता है।
वह देखो भावी--महा-समर; पल पल पर पलटा खाता है ॥
यह सभी नाट्य नटवर के हैं; हठ वैर सभी इच्छायें हैं ।
हम सब लीलाके पुतले हैं; यह सब प्रभुकी लीलायें हैं ॥
भाई ! केशव का ध्यान करो; छोड़ो जीवन के रोने को ।
अपने सिर कोई बात न लो; जो होना है, सो होने दो ॥"

माया--पति क्षण--मात्रमें; यों माया दरशाय ।
धर्मराजकी सभा में; पहुँचे यादवराय ॥

राजा विराट, पाञ्चाल-राज; सारे सरदार इकट्ठे थे ।
बलराम तथा पाण्डवों सहित; श्री यादवेन्द्र प्रभु भ्राजे थे ॥
केशव बोले-"थक गया, मगर; पापी को आई पीर नहीं ।
जो अब अधिकार चाहिये तो; युद्ध के सिवा तदबीर नहीं ॥
घबरा कर धर्मराज बोले-"हे त्रिभुवन पति ! तो क्या कीजे ? ।
मेरे तो एक आपही हैं; अब सीधी राह लगा दीजे ॥"
माधव बोले-यह सब सच है; लेकिन यह मददगार भी हैं ।
इनसे ही पहिले सम्मति लो; जो अपने रिश्तेदार भी हैं ॥

बोले पाञ्चाल-भूप-"भगवन !; अधिकार न सीधे पायेंगे।
जब न्याय की ताक़त चली नहीं; तो तलवारें चमकायेंगे॥
यह राज्य भूमि के झगड़े कब; निबटे हैं हा हा करनेसे।
जाती अधिकार, स्वराज्य, भूमि; मिलती है कटने मरनेसे॥
सँगठन करेंगे घर घर में; राष्ट्रीय-संघ तैयार करें।
बे ख़ौफ़ो ख़तर तलवार करें; भारत पर जान निसार करें॥"

किया सात्यकी आदि ने; इसको अंगीकार।
किन्तु एक बलरामको; जँचा न उचित विचार॥

बोले-"केशव ! क्यों निष्कारण; लोगोंका रुधिर बहाते हो।
दो बैठे हुए केहरों को; बे वजह लड़ाये जाते हो॥
क्या चारा है ? जो सम्मतिसे; रहना नृप को स्वीकार नहीं।
वे सोलह आने मालिक हैं; इनका कोई अधिकार नहीं॥
शास्त्र की नीति से पूँछो तो; हिस्सा है जेठे भाई का।
राज्यों में छोटे भाई को; अधिकार नहीं है पाई का॥
नीति तो यही बतलाती है; यह नृप आज्ञा में खड़े रहें।
उनकी ही सेवा किया करें; खायें पहिनें और पड़े रहें॥
शास्त्र की नीति पर लात मार; बे कारण जोश दिलाते हो।
इस आर्य्य-भूमि के आर्य्यों का; क्यों सत्यानाश कराते हो॥"

हलधर के प्रस्ताव पर; बोले करुणा-कन्द।
"तन, मन, धनसे नीति से; हैं हम सब पाबन्द॥

जब इनके पिता राज्य-पति थे; तो यह भी राजकुमार हुए।
युवराज हुए, राज्य-पति हुए; और शासन के हक़दार हुए॥
माना कौरव-गण दावा कर; अपना ही शासन दिखलायें।
तो बतलाओ, यह अधिकारी; किसके द्वारे टुकड़े खायें ?॥

हां, पाण्डु-वंशमें यदि कोई; बालिग़ और योग्य नहीं होता।
तो शासन का, कर लेनेका; निश्चय अधिकार वहीं होता ॥"

नीति, रीतिको समझ कर; फिर बोले बलराम।
बेशक केशव! तुम्हारा; न्याय-पूर्ण है काम ॥

मैं भूल गया, जो कह बैठा; "तुम दोनों वंश भिड़ाते हो।
मालूम हुआ, न्यायके लिये; हे न्याय-धाम घबराते हो ॥
लेकिन जिस तरफ़ कर्ण, भीष्म; द्रोण से वीर दिखलायेंगे।
उन रणधीरों, बलवीरों से; यह दीन कहां जय पायेंगे? ॥"
बोले समर्थ-"क्या कहते हो?; जब रण-की बीण बजाऊँगा।
स्वत्व का, जाति अधिकारोंका; घर घर संदेश सुनाऊँगा ॥
न्याय और सत्य की साक्षी दे; पृथ्वी के राष्ट्र जगाऊँगा।
द्वारे द्वारे झंडा लेकर; "संगठन मन्त्र" चेताऊँगा ॥
राष्ट्रीय-संघ की शक्ति जोड़; बाज़ू का बल दिखलाऊँगा।
मिट्टीमें उन्हें मिलाऊँगा; दीनों को राज्य दिलाऊँगा ॥"

तब हलधर कहने लगे-; "तुम्हें उचित सब श्याम।
किन्तु तुम्हारी रायसे; बेवश है बलराम ॥

तुमको जैसे हैं धर्मराज; मुझको वैसे कौरव-पति हैं।
इस लिये आजकी सम्मति में; हम नहीं ज़रा भी सहमत हैं ॥
हां, अभिमानी सात्यकी आज; जो बड़ा वीर वर नाम धरे।
इससे कह दो, यह भारतमें; मेरे आगे संग्राम करे ॥"

इतना कह कर चल दिये; उसी समय बलराम।
धर्मराज कहने लगे-; "सुनिये प्रभु घनश्याम! ॥

हलधर जो आज कह गये हैं; वह बेशक आगे आयेगा।
कितनी हत्यायें होनी हैं?; किसका क्या रंग दिखायेगा ॥

भारत की कितनी मातायें; बे लाल नाथ ! हो जायेंगी ।
भारत की कितनी विद्यायें; इस भारत में खो जायेंगी ॥
लाखों विधवायें कल्पेंगी; लाखों बुड्ढे सिसकायेंगे ।
भारत के नामी वीर-धीर; इस भारत में मिटजायेंगे ॥
ऋतु राज-साजकी आशा में; पतझड़का दृश्य दिखायेगा ।
यह जगत-मान्य और हरा भरा; भारत ग़रत हो जायेगा ॥

गायन

बुरी होती है नाथ, घर की लड़ाई ।
बिछुड़ जायेंगे भाइयों ही से भाई ॥
लड़ाई में दोनोंकी होगी सफ़ाई ।
रहेगी न फिर ऐसी फ़रमा खाई ॥
न मैं ही रहूँगा, न वे ही रहेंगे ।
फिरेगी किसी तीसरे की दुहाई ॥
तुम्हें काम क्या है ? लड़ाई से "शैलेन्द्र"
कन्हाई के तुम हो;तुम्हारा कन्हाई ॥"

कृष्णचन्द्र कहने लगे-"सुनिये धर्म नृपाल ।
किसको अच्छा लगा है; छाती पर का शाल ॥

आखें अन्धी जिससे होवें; बुझ जाये ऐसा उजियाला ।
जिसको घरकी पहिचान न हो; भाड़में जाय वह घरवाला ॥
तुम हाहा करते जाते हो; सीने पर बैठा दुश्मन है ।
यह न्याय नहीं, यक हीला है; यह दया नहीं कायरपन है ॥
हरगिज़ न पाप कहलाता है;जो बदला लिया जाय खलसे ।
महाराज ! स्वत्व मिल सकता है; लोक में भुजाओंके बलसे॥

फिर मुझको क्या!आपही लोग;मिलकरके सम्मति करलीजे।
सम्मतियां सब की सुन लीजे;फिर इच्छा हो, वैसा कीजे॥"

भीमसेन, अर्जुन, नकुल; बोले एक ज़बान।
"हर्गिज़ राज्य न पायेंगे; बिला लिये मैदान॥"
धर्मराजने विवश हो; माना आख़िरकार।
हुआ सभीकी रायसे; महायुद्ध स्वीकार॥

प्रस्ताव पास होनेके बाद; माधव बोले-"भट पहुँचाओ।
अपने स्नेही संबंधी; सारे राजा गण बुलवाओ॥
फिर दुर्योधन के पास दूत; संदेशा देने पहुँचाओ।
सानन्द सजाओ सेनायें, और रण का डंका बजवाओ॥"
आज्ञानुसार श्रीकेशव के; वह पत्र-कार्य सविशेष हुआ।
बस उसी जगहसे श्रोतागण!; भारतका आदि गणेश हुआ॥

रण-निमन्त्रण

भारत-भू के आश्रय-दाता!; भारत-माता के रखवारे!।
अतिशय-उदार-अवतार-रूप; श्री राज-वंशके उजियारे!॥
क्षत्रिय-कुल-कमल-सूर्य्य प्रतिभित;दैदीप्य-प्रताप-आन-धारे।
अन्याय-निकन्दन-वन्दीय; निर्द्वन्द्व सु-कीर्त्ति-मान-धारे!॥
अपधर्म-दमन-दुख-शोक-शमन;नव-नीति-न्याय-पथ सञ्चालक
पुरुषत्व-महत्व-स्वत्व-रक्षक; प्रण-वीर-प्रमाण-प्रजा-पालक!॥
जातीय-मान, देशीय-आन; गौरव-गुमान रखने वाले!।
अनुचित या उचित शैलियों पर;निष्पक्ष-ध्यान रखने वाले!॥
राजेन्द्र-राज्य-परिषद-समेत; दास की जुहार लीजियेगा।
पश्चात् विनीत-निवेदन पर; नर-राज! विचार कीजियेगा॥

अन्याय–पूर्वक दुर्योधन; दीनोंका राज्य दबाता है।
करता है राज–भोग वह तो; हमको वन वन भटकाता है॥
सब भांति उसे समझा हारे;पर मिला उचित–प्रतिकार नहीं।
बे समर रचाये–पांच ग्राम; देना भी अंगीकार नहीं॥
इसलिये विवश होकर अनुचर; आसरा आपका लेता है।
श्रीमानोंके बल–विक्रमपर; युद्ध की घोषणा देता है॥
अन्याय–न्याय की सूक्ष्म–वृत्ति;श्रीमान् स्वयं पहिचानते हैं।
दासों की गति; इच्छा–आशा; मर्मज्ञ–ज्ञान–निधि जानते हैं॥
है विदित सकल रजवाड़ोंको;हम किस प्रकार दुख सहते हैं?।
किस राज्य–वंशके बेटे हैं?; किस विपद–वेशमें रहते हैं?॥
सारांश हर तरहसे अब तो; रण–मण्डल की तैयारी है।
कीजिये सहाय अनाथों की; इतनी प्रार्थना हमारी है॥
अन्याय–दमन कर न्याय-मूर्त्ति!;न्याय की ध्वजा फहराइयेगा।
भारत मां के दुख हरने को; स्वागत है–शीघ्र आइयेगा॥

युधिष्ठिर।

"केशव" एवं "द्रुपद" नृप;गवने अपने धाम।
यहां निमन्त्रण पत्र पर; हुआ जमाव तमाम॥

चन्देरीके नृप "धृष्टकेतु";–यक अक्षौहिणी सैन्य लाये।
इतना ही दल–बल लिये हुए;वापिस देशसे"द्रुपद"आये॥
इतने ही के लग भग सेना; राजा "विराट"ने साथ दिया।
उतनी ही अनी बटोर जोड़;" सहदेव " वीरने हाथ दिया॥
काशीके राजा सैन्य–सहित; संग्राम–हेतु अगवान हुए।
ऐसे ही कितने राजा–गण; धर्मके यहां महमान हुए॥

केवल थे चालीस सौ; राजा गण ! महाराज ! ।
जुड़ा सप्त अक्षौहिणी; सारा सैन्य-समाज ॥
दुर्योधनके दूतने; दिया सँदेशा आय ।
"महाराज ! चैतन्य हो; कीजे शीघ्र उपाय ॥

सेना-मय भूप युधिष्ठिरके; सब इष्ट-मित्र जुड़ आये हैं ।
दल-बलसे वे "विराट-पुर" में; अपने डेरे लगवाये हैं ॥
एकसे एक बढ़ कर उनमें; जौहर दिखलाने वाले हैं ।
जैसा समझो शीघ्र ही करो; वे सिर पर आने वाले हैं ॥"

यह सुनते ही उड़ गये; दुर्योधनके होश ।
किन्तु कर्ण हो कर खड़ा; लगा दिलाने जोश ॥

"श्री महाराज ! इतनी सी बात; इतना मुर्दापन छाया है ।
इतनी घबराहट बिला वजह; कौन सा काल चढ़ आया है? ॥
सौभाग्य! अगर वे सब मिलकर; अपनी शक्तियां आज़मायें ।
तो हम भी कुछ तैयारीसे; अपने अपने बल दिखलायें ॥
आने दो, आयें, जल्दी ही; देखना-जिसी दिन आयेंगे ।
जो आयेंगे-आयेंगे ही; लौट कर न घरको जायेंगे ॥
आपकी निराशा देख देख; आशा सी घटती जाती है ।
महाराज ! आप चिन्ता न करें; यह चिन्ता व्यर्थ जलाती है ॥
आपके साथ हर एक वीर; उनसे जीवन-बाज़ी लेगा ।
इस एक प्राण पर प्रण-पूर्वक; वह प्राण निछावर कर देगा ॥
आप पर प्राण दे डालेंगे; यह सच्चा क़ौल हमारा है ।
इस रग रगमें, इस नस नसमें; हे राजन् ! नमक तुम्हारा है ॥
विश्वास रहे-प्रण करता हूँ; विपदामें साथ निभाऊँगा ।
करता हूँ शपथ सत्यव्रत की; चरणों पर प्राण चढ़ाऊँगा ॥"

दुर्योधन कहने लगा—"अये विद्या-बल-राशि ! ।
एक तुम्हारी शक्ति पर; है सारा विश्वास ॥
जिसने अपने सद्-गुण द्वारा; पृथ्वी पर कीर्त्ति बढ़ा दी है ।
वास्तवमें आज भूमि-तल पर; "कर्ण"के समान कर्ण ही है ॥
तुमही जानो, जो करना हो; इसमें न हमारा चारा है ।
भीष्मपर भार अब सारा है; बल और विश्वास तुम्हारा है॥"
सुन कर बोला "द्रोण-सुत";—"बस हो चुका तमाम ।
अजी ! पार्थ का जीतना; है कुछ टेढ़ा काम ॥
छुटपनसे कितनी बार उसे; बलमें, विद्यामें अज़माया ।
कहिये, इतनेमेंसे किसने; उसके सामने पेश पाया ? ॥
जो ऐसी ही बातोंमें हम; ऐंठे, बैठे रह जायेंगे ।
तो हार-जीत है और चीज़; बाल भी न छूने पायेंगे ॥"
शकुनी बोला—"ठीक है; जो कहते हैं भ्रात ।
नाथ ! बिला संगठनके; बिगड़ जायगी बात ॥
जब रिपु का दल हो गया जमा; आप भी सहाय बुलाइयेगा ।
लड़िये तो जान तोड़ लड़िये; या चर्चा ही न उठाइयेगा ॥
दल-बल समेत चढ़ रहा शत्रु; क्या जान बूझ जी खोना है?।
निश्चय रखिये, अब जल्दी ही; "भारत"में "भारत"होना है॥"
सम्मति ठहरी वहाँ भी; गये निमन्त्रण-पत्र ।
राजा गण छाने लगे; यत्र-तत्र-सर्वत्र ॥
सेनायें एकत्र थीं; जुड़ता था रण-साज ।
"शल्य"-वीर की ख़बर तब; पाई कौरव-राज ॥
कुरु-पति ने कहा मन्त्रियों से—"सुनता हूँ—शल्य आरहा है ।
साथ में एक अक्षौहिण-दल; दुश्मन की तरफ़ जा रहा है ॥

इसलिये यत्न सोचो कोई; नृप "शल्य" यहीं पर रुकजाये।
ऐसा न कहीं हो जाय, मित्र !; दल भी न बराबर हो पाये ॥"
मन्त्री बोले-"उन पांचों से; इतने महीप थर्राये हैं।
इतने पर भी उन के साथी; सेना बटोर ले आये हैं ॥
जो ब्राह्मण को जीता चाहो; तो हलुवा-पूड़ी खिलवा दो।
जो क्षत्रिय को वश करना हो; तो कुछ शुश्रूषा जतला दो ॥
इसलिये हमारी सम्मति है; पैदल चलकर आगे से लें।
आदर-पूर्वक-प्रार्थना-सहित; भटवर को युद्ध-निमन्त्रण दें ॥"

दुर्योधन तत्क्षण उठा; लिये साथ दरबार।
"शल्य" वीर के सामने; जा रक्खी तलवार ॥

"मामा जी ! शरण भानजा है; यह युद्ध-निमन्त्रण लीजेगा ?।
सेवक की लाज बचाने को; इस पक्ष में दाया कीजेगा ॥
सुनते हैं-उधर कृष्ण एवं; अगणित योधाओं का दल है।
इस ओर आप ही देखते हैं; जो कुछ है, तुम परही बल है ॥
जो आप उस तरफ़ जायेंगे; तो कौन है ? उन के आगे को।
मामा जी ! बट्टा आयेगा; इस कौरव-वंश अभागे को ॥"

कहा शल्य ने-"भानजे !; हूँ तुमपर बलिहार।
चलो-चलूँगा यहीं को; लो, अपनी तलवार ॥

उनका नेवता अब तक न मिला; तुमने नेवता दे दिया मुझे।
इस कारण क्षत्रिय नियमों से; अपनी जानिब कर लिया मुझे ॥
सेना को यहीं छोड़ता हूँ; पर मैं " विराटपुर " जाता हूँ।
तेरह वर्ष से न देखा है; इसलिये बहुत अकुलाता हूँ ॥

कुरुपति ! उन पाण्डवों से; है आत्मिक-स्नेह।
किन्तु; तुम्हारे मान पर; कर दी अर्पित देह ॥"

सेना छोड़ कर "शल्य" खाली; चलकर "विराटपुर" में आया।
श्री धर्मराज ने स्वागतार्थ; भीम को अगाड़ी पहुँचाया॥
रथ त्याग दिया शल्य ने वहीं; भीम भी लिपट कर रोने लगे।
तेरह वर्ष की जुदाई के; वे दाग़ प्रेम से धोने लगे॥
आपस में दोनों मिले हुए; फिर राज—सभा में आये हैं।
आगे से लिया युधिष्ठिर ने; सिंहासन पर बिठलाये हैं॥
शल्य ने कहा—"हे धर्मराज !; तुम पर जो अत्याचार हुए।
एवं जितने अन्याय—पूर्ण; दुर्योधन के व्यवहार हुए॥
उनको सोच कर हृदय यद्यपि; सहसा उबाल पर आता है।
उस दुष्ट हृदय का रक्त—पात; करने को जी ललचाता है॥
लेकिन क्या कहें ? हमारे सिर; कौन सी कठिन लाचारी है?।
क्षत्रिय—धर्म के बन्धनों ने; यह जकड़ी देह हमारी है॥
दुर्योधन ने देकर नेवता; बीच से हमें अपनाया है।
हे धर्मराज ! इस संकट में; बतलाओ राज-धर्म क्या है?॥"

धर्मराज कहने लगे; धर्म—नीति समझाय।
"तन, मन, धन, जन जाँय सब; किन्तु-स्वधर्म न जाय॥

जो कहा गया, सो कहा गया; अब इसमें 'क्यों-क्या ?' करो न तुम।
क्षत्रिय—धर्म पर मरो मामा !; मेरे संकोच को डरो न तुम॥"
शल्य ने कहा-" मैं जानता हूँ; लेकिन कुछ कहा न जाता है।
छोड़ कर धर्म, पाप की ओर, मुझसे तो चला न जाता है॥
इसलिये राय वह दीजेगा; मैं दोनों धर्म निभा पाऊँ।
लड़ने आऊँ उस जानिब से; पर काम तुम्हारे आजाऊँ॥"

कहा धर्म ने—"जिस समय; हो भारत—संग्राम।
हों मुक़ाबिले में खड़े; पार्थ-कर्ण--बल—धाम॥

उस समय "कर्ण" का नाम छोड़; "पार्थ" की प्रशंसा कर देना।
शत्रु की बड़ाई कर कर के; कर्ण को क्रोध से भर देना॥
उसका गुस्से में आना ही; अपना सब काम बनायेगा।
वह पूरी शक्ति दिखायेगा; तो निश्चय मारा जायेगा ॥"

यह सम्मति कर शल्य-भट; लौट पड़ा तत्काल।
अब अगले आख्यान में; आते हैं गोपाल॥

धर्मने कहा-"भैया अर्जुन !; तुम शीघ्र द्वारिका को जाओ।
जय-कारी, दुख-हारी, केशव; श्री यादवेन्द्र को ले आओ॥
उस अक्षय-अजित-शक्ति हीसे; अपनी शक्ती अक्षय होगी।
जब वे जय-धाम पधारेंगे; तब निश्चय अपनी जय होगी॥"

आज्ञा पाकर पार्थ ने; किया शीघ्र प्रस्थान।
दुर्योधन भी वहां से; चला सहित अभिमान॥
दोनों ही जब नाथ पर; चले एक ही साथ।
लगे सोचने हृदय में; केशव-माया-नाथ॥

"आये हैं दोनों एक साथ; दोनों की एक ही आशा है।
दोनों का रुख़ रक्खा जाये; यह सबसे कठिन समस्या है॥
मेरे नज़दीक इस समयमें; दोनों का पक्ष बराबर है।
हां-मुझको अपना कर लेना; उनकी अक्ल़ पर मुनहसर है॥"

लेट गये यह सोचकर; अन्तःपुर में श्याम।
पहुँचे दोनों साथ में; लीला-मयके धाम॥

निद्रा-वश देखा केशव को; कुरु-पति सिरहाने आ बैठा।
भट-भक्त-पार्थ चुपचाप वहीं; प्रभु के चरणों में जा बैठा॥
वह दुग्ध-फेन-सदृश-शैया; तकिया मख़मली तिबग़ली है।
तन पर पीताम्बर लपटा है; बाहर कुछ काकुल निकली है॥

जिस मूर्त्तिके दोनों ग्राहक हैं; वह मूर्त्ति तो अभी सो रही है।
अपनी अपनी इच्छानुसार; हीरे की परख हो रही है॥
दुर्योधन ने शैया देखी; कमरे का आडम्बर देखा।
भक्त की आँख ने भगवतका; केवल वह पीताम्बर देखा॥
कुरु–पति ने सोचा–"अगर मुझे; यह सारी सेना दे डालें।
तो केवल उसकी शक्ती से; हम सारी पृथ्वी ले डालें॥"
अर्जुन ने सोचा-"यदि मुझको; शशि-मुखके दर्शन हो जायें।
तो भारत क्या ? जीवन-रणमें;हम सहसा विजयी कहलायें॥
सब शक्ति स्वयं अक्षय होगी; जब साथ शक्ति अक्षय होगी।
करतल-गत विश्व-विजय होगी; जब साथी विश्व-विजय होगी॥
हे हृदय ! न जाने समदर्शी; अब किसका पक्ष निभाते हैं ?।
इस राज–मुकुट पर झुकते हैं; या भिक्षुक को अपनाते हैं॥
हे भाग्य ! आज ही तुलना है; राजा की और भिखारी की।
देखें किस ओर दया–पूर्वक;झुकती है ? नज़र बिहारी की॥"
दोनों के मनोभाव क्षण-क्षण; उठ रहे बराबर बड़े बड़े।
अन्तर का मर्म समझते ही; अन्तर्यामी हरि जाग पड़े॥

चन्द्र वदनको देखकर; उठे पार्थ तत्काल।
गिरते ही पद–कमल पर; प्रभुने लिया सँभाल॥

बोले केशव–"भैया पारथ !; सब रहस कुशल-पूर्वक तो है।
कैसे आये ? बतलाओ सखा !; क्या आज्ञा इस सेवकको है?॥"
तब बोले पार्थ-"नाथ ! चलिये; बस इतना ही कह सकता हूँ।
आपके बिना मैं किसी भांति, दो घड़ी नहीं रह सकता हूँ॥"
कृष्णने कहा–"हज़िर तो हूँ; तुम व्यर्थ भटकते आये हो।
ना कुछ मेरे न पहुँचने पर; इतने भैया ! अकुलाये हो॥"

अभी न देने पाये थे; उसका उत्तर पार्थ ।
देखा तब तक सामने; मूर्त्ति-मान ज्यों स्वार्थ ॥

माधवने प्रेम-सहित मिलकर; समता पर नृपको बिठलाया ।
फिर कुशल-प्रश्न हो चुकनेपर; कुरु-पतिने कारण समझाया ॥
"केशव ! आपके बुलाने को; हम बड़ी देर से आये हैं ।
हो चुका पहर बैठे बैठे; उठने की आश लगाये हैं ॥
इसलिये हमारा हक़ पहिले; आप पर मुनासिब आता है ।
चलना चाहिये साथ मेरे; इन्साफ़ यही बतलाता है ॥"

कृष्णचन्द्र कहने लगे-"सुनिये कौरव-नाथ ।
आये हैं यद्यपि यहां; आप साथ ही साथ ॥

पर मुझे मिले पहिले अर्जुन; मैं इनको वचन दे चुका हूँ ।
एवं अपने सिर पर पहिले; ज़िम्मा पार्थका ले चुका हूँ ॥
आप भी अवश्य प्रथम आये; और अर्जुन भी अधिकारी है ।
अब दोनोंका रुख़ रखने को; हम हैं-और सैन्य हमारी है ॥
या चार लक्ष यदुवंश-सैन्य; शस्त्रास्त्र-सहित ले लीजेगा ।
या ख़ाली हाथ एक मुझको; हे राजन् ! स्वीकृत कीजेगा ॥"
मुसकान भरे यह मधुर-वचन; ऊपरसे माया का साया ।
दोनों पक्षों को सोच-समझ; दुर्योधन मनमें मुसकाया ॥
फिर बोला-" क़द्र तुम्हारी तो; है गोप और वनिताओंमें ।
जो तुम्हें साथ ले ही जाऊँ; तो नाचोगे योधाओंमें ॥
रण-बाजा वहां बाजना है; कुछ तार नहीं करतारोंका ।
यह मुर्ली कहां विराजेगी ?; है काम जहां तलवारोंका ॥
इसलिये आप रहने दीजे; सेना ही साथ पठा दीजे ।
मिल गया आपका भी जोड़ा; हिजड़ोंके साथ नाच कीजे ॥"

कहा पार्थने चरण पड़;—"नहीं सैन्य का काम।
मुझ ग़रीबके वास्ते; तुम्हीं चलो घनश्याम॥

वंशी-धर की बंशी-बंशी; वन खल-गण-मीन तड़पवा दे।
नट वर का मोहन नृत्य-गान; वीरों को बेड़ी पहिना दे॥"
शस्त्रास्त्र-सुसज्जित सेना को; कुरु-नाथ साथ ले बिदाहुआ।
कृष्णके पाससे जाने पर; फिर "हल-धर"से मसविदाहुआ॥

किन्तु; कहा बल्देवने—" सेना ही ले जाव।
मेरे जानेसे यहां; बिगड़ जायगा भाव॥

वंशीधर उधर खड़े होंगे; हल धर इस ओर दिखायेगा।
भाई, भाई भिड़ जायेंगे; वंशमें वैर बढ़ जायेगा॥
इसलिये अगर मेरी मानो; तो घरमें फूट न फैलाओ।
मेरी जानिबसे एक लाख; मेरी भी सेना ले जाओ॥"

" कृतवर्मा " को साथ ले; लौटा कौरव-नाथ।
यहां पार्थके साथमें; आये यादव-नाथ॥
धर्म-सभा मय धर्म-पति; पड़े चरणमें आय।
हाथ जोड़ कहने लगे; सिंहासन बैठाय॥

गायन

तुम्हें जो छोड़के; ग़ैरोंके द्वार जाता है।
सुधा को छोड़के वह हड्डियां चबाता है॥
सभी को त्यागके जो नाथको मनाता है—
कौड़ियां फेंकके, वह रत्न कमा लाता है।
जहांमें जिसने तुम्हे, मूल मान सींचा है—
वही जहां तहां फूला फला दिखाता है॥

ख़ौफ़ " गोविन्द " दुश्मनों का न कर तू हर्गिज़ ।
अगर्चे " देवकी नन्दन " से तेरा नाता है ॥

"कृष्णचन्द्र" कहने लगे—" उठो वीर—बल-धाम ।
प्रेम—मोह को छोड़ कर; करो घोर- संग्राम ॥

पहुँचाओ दूत "हस्तिनापुर"; अन्तिम सन्देशा कहला दो ।
यदि सन्धि उन्हें स्वीकार न हो;तो रण का डंका बजवा दो ॥
जिस तरह "नहुष" ने तप—बलसे;सुर-पुर पर हाथ जमाया था।
लेकिन उसके अपकर्मोंने; उलटा भूमि पर गिराया था ॥
हे धर्मराज ! हे शान्ति-मूर्त्ति!;यदि तुम भी युक्ति लगाओगे ।
तो दुर्योधन का मद मथ कर;जय का झण्डा फहराओगे ॥"

द्रुपद—पुरोहित चल दिये; प्रभु—सम्मति-अनुसार ।
पहुँचे कुछ ही दिनोंमें, कुरु—पतिके दरबार ॥

आदर—समेत बिठलाये गये; फिर विप्रदेव बोले—"राजन् ! ।
श्रीधर्मराज की जानिबसे; है सकल सभाको अभिवादन ॥
इतने शब्दोंके कहने को; भूपने मुझे पहुँचाया है ।
अधिकार हमारा देने को;नृप का अन्तिम निर्णय क्या है?॥
हे राजन् ! वही उपाय करो; राष्ट्रीय—शक्ति का ह्रास न हो ।
दो हरे भरे नृप—वंशों का; निष्कारण सत्या नाश न हो॥"
अर्जुनने यह सन्देश कहा--" हे भ्रात ! भ्रात पन दिखलाओ ।
अपने ही बाजू मत तोड़ो; अपनी ही शक्ति न मिटवाओ॥"
भीमने कहा—" तुमने हमको; छल बलसे खूब घुमाया है ।
अब सावधान हो जाओ, नृप !;समता का अवसर आया है॥

जो आज न समझे कहनेसे; तो याद रहे पछताओगे।
जब गदा हमारी घूमेगी; तब घूम घूम मर जाओगे॥
सारे वीरों को काट काट; खूनी दरिया निकला दूँगा।
बाजू और शीश उड़ा दूँगा; मिट्टीमें मांस मिला दूँगा॥
इसलिये तुम्हें समझाता हूँ; यदि समझ सको तो अच्छा है।
भावी ही सिर पर आई हो;तो लड़ो-हमारा वश क्या है?॥''

"नकुल'' तथा "सहदेव'' का; है इतना सन्देश।
-"बेटे ही हैं; आप के; हम-धृतराष्ट्र नरेश!॥

छुटपन में पिता छोड़ हम को; सुर-पुरके लिये सिधाये हैं।
श्री महाराज ने पालन कर; यह विरवे सींच बढ़ाये हैं॥
वह प्रेम आप का हम पर था; अब ऐसे भाई चारे हैं।
आप ही हमारा न्याय करें, मुन्सिफ़ आप ही हमारे हैं॥''

"वासुदेव'' ने आप से; कहा विशेष जुहार।
फिर कहलाया-है यही; अवसर अन्तिम-बार॥

दुर्योधन पर वह मद छाया; माना ही नहीं मनाने से!
आप हैं नीति-विद्या-निधान; क्या लाभ? नाश करवाने से॥
इसलिये आप सब ऊँच-नीच; अब बेटे को समझा दीजे।
भू-मण्डल-सिद्ध-वंश अपना; मिट्टी में मत मिलवा दीजे॥

"द्रुपद'' आदि ने भी यही; भेजा है सन्देश।
नृप विराट का भी यही; है अन्तिम-उपदेश॥

इस जग-व्यापक-रण-रचना से; सम्बन्धित भूतल सारा है।
पृथ्वी का नाश न करवा दो; इतना उपदेश हमारा है॥''

"ज्ञान-चक्षु" कहने लगे-" कहो न ज्यादा नाथ ।
इस कुपूत की वजह से; हम तक हुए अनाथ ॥

जैसे पुलस्त्य-कुल में "रावण"; वंश का कुठार कहाया है ।
वैसे ही इस कुल में प्रभु ने; इस पापी को प्रकटाया है ॥
क्या करूँ? उसी के वश में हूँ; अन्धा हूँ-कुछ अधिकार नहीं ।
उस खल को क्या उपदेश करूँ?; जिसको भाई से प्यार नहीं ॥
भैया ! जब से पाण्डव-कुमार; जंगल के लिये सिधारे हैं ।
हम उसी समय से जान चुके; आये दिन बुरे हमारे हैं ॥
पाँचों बेटों की कुशल कहो; दो मिला एक दिन को द्विजवर! ।
यह किस्सा वे दोनों जाने; हैं मुझ को दोनों आंखों पर ॥"

कुशल-क्षेम का हाल सुन; आँसू दिये बहाय ।
"सञ्जय" ने उगँली पकड़; दिया भवन पहुँचाय ॥
"भीष्म पितामह" की तरफ़; फिर बोले द्विजराय ।
"महाराज ! श्रीधर्म की; विनय सुनें चितलाय ॥

दुर्योधन ने मन की कर के; हम को बन बन भटकाया है ।
लेकिन आप की दया ही ने; उस दुख से हमें बचाया है ॥
अब आज आप के बालक यह; टुकड़ों तक को तड़पाते हैं ।
हम अपनी चीज़ माँगते हैं; तो कुरु-पति आँख दिखाते हैं ॥
आप ही वंश के नायक हैं; दोनों का न्याय चुकाइयेगा ।
हम दीन आप की गोद में हैं; बच्चों को भूल न जाइयेगा ॥"

"भीष्म पिता" यह शब्द सुन; रोये "आह!" पुकार ।
—"विप्र देव ! हैं ! कुशल तो; बारे पाण्डु-कुमार ॥

जी कहताहै-फाड़ कर हृदय; उन सुकुमारोंसे मिल जाओ।
सारे शरीर की खाल खींच; बेटों को जूती पहनाओ ॥
लेकिन क्या कहूँ ! चतुर्दिशसे; बन्धन में फँसा दिखाता हूँ।
बेशक उनका हितकारी हूँ; पर नमक यहाँ का खाता हूँ ॥"

यों कह कर चुप हो गये; फिर बोले द्विजराय।
"द्रोण महाशय ! आपही; इस का करें उपाय ॥

आचार्य्य आप, कुल-पूज्य आप; बल-धारी हो,गुण-धारी हो।
समझा देखें आप भी ज़रा; शायद मति मान्य तुम्हारी हो॥
गुरु देव ! आर्य्य अपनाते हैं; मिट्टी-पत्थर के ढेलों को।
आप से परम-गुरु बने रहें; और ज्ञान न आये चेलों को ॥"

अश्रु बहाने के सिवा; था ! क्या और उपाय।
भीष्म पिता कहने लगे; कुरु-पति को समझाय ! ॥

"राजन् ! क्यों अपने हाथों से; अपना ही नाश कराते हो ?।
जो जिसका वास्तव में हक़ है;उस पर क्यों दाँत चुभाते हो?॥
बेचारे पाण्डु--कुमार अभी; वास्तव में सत्य--वृतीपर हैं।
जो न्याय-सहित सोचो राजन् !;तो आप ख़ास ग़लतीपर हैं॥
अफ़सोस ! तुम्हारे ही भाई; टुकड़ों के लिये रो रहे हैं।
वे मारे मारे फिरते हैं; कौरव बदनाम हो रहे हैं॥
इतनी विनयों पर भी यदि अब; तबियत है अत्याचारों पर।
तो याद रहे-घर का झगड़ा; अब आता है तलवारों पर ॥

गायन

याद रखियेगा—यह; जिस वक़्त लड़ाई होगी ।
दोनों हि ओर के, वीरों की, सफ़ाई होगी ॥
तड़पते आप फिरेंगे; बचाते प्राणों को—
धर्म के द्वार पै भी; फिर न सुनाई होगी ।
पार्थ के बाण का; होगा निशान ताज कभी—
गदा के सामने; शाहों की गदाई होगी ।
कौरवी-वीर, मशानों में पड़ सोयेंगे—
"विनीत" धर्म की; सब ओर दुहाई होगी ।"

कुरुपति बोला क्रोधमें—" बस दादा ! ख़ामोश ।
इन बातोंसे और भी; उबल पड़ेगा जोश ॥

सबको दिखलाई पड़ती है; किसकी ? किस तरह ? भलाई है ।
मैं खुद ही खूब सोचता हूँ; कुछ भंग न मैंने खाई है ॥
बस कुशल इसीमें है दादा !; ज्यादा न शिफ़ारिश फ़रमायें ।
जो इन बातोंसे नफ़रत हो; तो घर को आप चले जायें ॥"

भीष्म तथा गुरु द्रोण भी; उठ आये तत्काल ।
"ज्ञान-चक्षु" कहने लगे; "गान्धारी" से हाल ॥

" भद्रे ! देखो तो बेटे पर; कैसी ज़िद—की बीमारी है ।
एक भी न बात समझता है; हर आत्मा समझा हारी है ॥
अब एक तुम्हारी बारी है; तुम भी थोड़ा समझा देखो ।
या तो कुल हरा—भरा देखो; या फिर वंशका धुँवा देखो ॥"

"सञ्जय" के द्वारा लिया; बेटेको बुलवाय ।
"गान्धारी" कहने लगी; बार बार समझाय ॥



"बेटा! जिनके द्वारा "रावण"; सेना-समेत संहारा गया ।
जिनके हाथोंसे "कंस" बली; हाथों ही हाथों मारा गया ॥
"खर-दूषण" ऐसे मायावी; जिनकी माया में टिक न सके ।
"भस्मासुर"ऐसे अभिमानी;जिनकी महिमामें टिक न सके ॥
क्या-क्या बतलाऊँ? लाल! तुझे;उनकी लीलायें न्यारी हैं ।
मैं साफ़ तुझे बतलाती हूँ; वे मनुज नहीं अवतारी हैं ॥

इस लिये मान, अज्ञान ! ज़रा; उनके न सामने अकड़के चल।
जो ख़ाकको साबित चाहे-तो; ख़ाकका तरीक़ा पकड़के चल॥"

दुर्योधन कहने लगा;—"तुझपर भूत सवार।
भला कृष्ण क्या शेर है ?; ना कुछ एक गँवार॥

मूर्खों ने उसकी मान मान; उसको शीश पर चढ़ाया है।
वरना वह एक नचैया है; मुरली तक उसकी माया है॥
कपटी है, और चुग़ल भी है; नौकर है—ज्यादा कुछ भी नहीं।
वह बली, मगर व्यभिचारी है; ढीठ के अलावा कुछ भी नहीं॥
आने तो दे, मां ! वह मौक़ा; जब भीष्म पिता हुंकारेंगे।
पापी लोगोंको गिन गिन कर; गुरु "द्रोणाचार्य्य" पछाड़ेंगे॥
मेरी आजानु—भुजाओंका; उन रोज़ों इम्तिहान होगा।
वह "धर्म" मिलेगा मिट्टी में; कुरु-पतिका विजय-गान होगा॥"

माता बोली—"लाड़ले !; देख व्यर्थ मत भूल।
वही नचैया नाच कर; चटवा देगा धूल॥

वह वीर नहीं, वीरेश्वर है; नर—राज नहीं, राजेश्वर है।
वह कामी नहीं, ब्रह्मचारी; नौकर होकर भी सब पर है॥
अज्ञानी—अन्धों के आगे; वह कपटी—कामी या तुछ है।
ज्ञानी-आत्माओं से पूछो; वह कुछ भी नहीं, सभी कुछ है॥
देखो बेटा ! देखो लाला !; मानो, वरना पछताओगे।
अपने ही साथ साथ सारे; साथी भी लेते जाओगे॥"
कुरु-पति बोला—"हो चुका शुरू; अब सब बेकार नसीहत है।
अब विजय मिले, या मर जाऊँ; माता ! यह मेरी क़िस्मत है॥
जो आयेगी, सर आयेगी; आई को, मैं ही भुगतूँगा।
अब तो कह चुका, करूँगा वह; तिलभर भी भूमि नहीं दूँगा॥"

इतना कह कर उठ गया; "कौरव–पति" तत्काल ।
"ज्ञान–चक्षु" दरबारमें; आये प्रातः काल ॥

बोले–"हे विप्र देव ! जाओ; कल दिनको संजय आयेंगे ।
जो बात यहाँ निश्चय होगी; वे पक्की वहाँ सुनायेंगे ॥"
सोना–चांदी–पट–भूषणादि; फिर ज्ञान–चक्षु ने दान किया ।
सम्मान-सहित, आज्ञा पाकर; ब्राह्मण ने भी प्रस्थान किया ॥

विप्र देवने पहुँच कर; कहा सभी सन्देश ।
चन्द रोज़के वास्ते; चुप हो रहे नरेश ॥
वहां कहा "धृतराष्ट्र" ने; "सञ्जय" को बुलवाय ।
" भैया ! मेरी ओर से; तुम "विराटपुर" जाय ॥

"माधव" को और "धर्म-सुत" को; सारा अहवाल सुना आओ ।
जिसमें दोनों की बात रहे; ऐसा निर्णय करवा आओ ॥
आज्ञा पाकर संजय रथ चढ़; ज्यों ही विराटपुर आया है ।
तो "अर्जुन" तथा "कृष्ण" जीको; महलों में सोता पाया है ॥
घर घर रण की तैयारी थी; सब सेना उत्सुकता में थी ।
दोनों बलधाम सो रहे थे; द्रौपदी चरण–सेवा में थी ॥
आज्ञा लेकर अन्दर पहुँचा; वह बोली–"ज्यादा चलो नहीं ।
आहट पाकर, बनवारीकी; सुख-निद्रा टूट न जाय कहीं ॥"

द्रुपद–सुता के कण्ठ से; उठे न पूरे वैन ।
शयन–ग्रस्त–चैतन्य–प्रभु; जागे करुणा–ऐन ॥

सञ्जय को महाकाल दीखे; अनुभाव-अंग-प्रति-छबिधर के ।
प्रज्वलित क्रोधसे जँचने लगे; अरुणारे-नयना यदुवर के ॥
जो द्रुपद–सुता की आखों ने; देखी अलसानी सी आंखें ।
वे ही संजय की आंखों ने; देखी रिसयानी सी आँखें ॥

तन काँप गया, कुछ कह न सका; ठिठका सा आगेको आया।
केशवने ज़रा ज़ोर देकर; सञ्जय को इतना समझाया ॥
"संजय ! उस शठको समझा दो; क्यों हमपर शान दिखाता है ?।
वंशके, सखा साथी, लेकर; क्यों बिला मौतके जाता है ॥
जिस कर्णके बल पर भूला है; उसके न कर्ण भी पायेगा।
मैं आधा अभी माँगता हूँ; फिर सारा देकर जायेगा ॥
जिसमें संहार है दुष्टों का; टंकार अभी वह हुई नहीं।
जिसमें खल मारा जायेगा; धरमार अभी वह हुई नहीं ॥
अर्जुन के एक बाण द्वारा; वह शाने खुदी डाट दूँगा।
जो पार्थ डरा, तो चक्र उठा; पापी का शीश काट दूँगा ॥"

हाथ जोड़कर पार्थ ने; रखा चरण पर माथ।
"क्या संजय का दोष है ?; इसमें दीनानाथ ॥

यह दूत है, और पराश्रित है; इसको भगवान ! क्षमा कीजे।
सेवक की भांति शरण लीजे; संजय को अभयदान दीजे ॥"
प्रभुने इतने ही शब्दों से; संजय को सेवक कर माना।
मुश्किल पड़ गया दो घड़ीको; श्वांसोंमें श्वांस लौट आना ॥

कृष्णार्जुन संजय सहित; जा पहुँचे दरबार।
धर्मराज ने यथा-विधि; किया पूर्ण-सत्कार ॥

फिर कुशल-प्रश्न के बाद कहा; संजय ने शीश झुका करके।
हे नाथ ! "भूपके विनय-शब्द; सुनिये दीनको क्षमा करके ॥
वह क्रूर-कुपूत न सुनता है; दिन रात उसे समझाता हूँ।
बकता हूँ, खरी सुनाता हूँ, रोज़ाना अश्रु बहाता हूँ ॥
देखिये चन्द दिनमें खलके; उपदेश समझ में आयेगा।
विश्वास रहे, न्याय के साथ; तसफ़िया कराया जायेगा ॥"

प्रेम-वचन सुन भूप के; बहे विलोचन नीर।
कृष्णचन्द्र धुरधीर तक; होने लगे अधीर॥

इतनेमें "भीम" वीरने कुछ; अपमान-पूर्ण-अपशब्द कहे।
लेकिन धर्म के इशारे से; वे "पवन-कुमार" चुपाय रहे॥
"माधव" बोले–"सन्देश यही; मेरी ओर से कहो जाकर।
अपने वंशको बचा लें नृप; बस आधा हिस्सा दिलवाकर॥"

समाचार समझा, दिया; बिदा किया तत्काल।
"संजय" ने "धृतराष्ट्र" को; सब समझाया हाल॥

सरकार धर्म का बल-वैभव; सेवक की इन आंखों में है।
अब धर्म एक धर्म ही नहीं; इनकी गिनती लाखों में है॥
इस पर भी धर्म, धर्म पर हैं; एवं अधर्म से डरते हैं।
आपका, भीष्म का गुरुवरका; वे अदब पिता सम करते हैं॥
मैं केवल यही जानता हूँ; जो युद्ध कहीं छिड़ जायेगा।
तो कौरव-कुल का पृथ्वीपर; ढूँढ़े भी पता न पायेगा॥
आप ही सयाने बूढ़े हैं; कौरव-पति को समझा दीजे।
जो कुशल वंशकी चाहते हैं; तो बाहम सुलह करा दीजे॥
अथवा तख्त से उतार इन्हें; कोई सुयोग्य बैठा दीजे।
जैसे हो तन, मनसे लड़कर; यह वंश-विरोध मिटा दीजे॥

"ज्ञानचक्षु" कहने लगे–"भैया! हूँ लाचार।
रात हुई, सोयें चलो; होगा सुबह विचार॥

इस पथसे बन्धु विदुर को भी; मेरे पास में पठा देना।
मैं सब कुछ कह सुन डालूँगा; अपने शिर अपयश मत लेना॥

आधी रात को विदुर आये; अभिवादन कर बैठे दोनों ।
भावी-भारत के "भारत" पर; आमन्त्रण कर बैठे दोनों ॥
बोले धृतराष्ट्र-"विदुर भाई; कोई उत्तम साधन कीजे ।
कुल का संहार मिटा दीजे; दोनों में सन्धि करा दीजे ॥"

कहा विदुर ने-"भ्रात वर; कुरुपति का अभिमान ।-
फिर कुसंग का बैठना; तथा स्वार्थ का ध्यान ॥

यह पुत्र नहीं कुल-घातक है; क्या होना है ? ईश्वर जाने ।
समझा देखो फिर एक बार; जो अभिमानी अपनी माने ॥
पाण्डव लोगों से क्या कह दें ?; वे अब भी हम से डरते हैं ।
धर्म पर आज भी बैठे हैं; अपनी ही सम्मति करते हैं ॥

सोच रहे बैठे यहां; नरपति, विदुर उदास ।
"गर्व-राशि" पहुँचा वहां; "भानुमती" के पास ॥

देखकर उसे रानी बोली-"स्वामी कैसे रिस आये हो ? ।"
पितृ के पास से क्यों फ़ौरन; क्षण ही में वापिस आये हो ?॥
दुर्योधन बोला-" ऐसों का; साथी न कभी दुर्योधन है ।
जिसको तुम बाप कह रही हो; वह बाप नहीं है, दुश्मन है ॥
कायर है, बक झक करता है; गोया वह नीति-विशारद है ।
बाहर से बिल्कुल अंधा है; भीतर से अक्ल नदारद है ॥
बेटे को खाई खोदता है; वैरी को शठ अपनाता है ।
बेड़ियाँ डाल कर बन्द करूँ; गुस्सा तो ऐसा आता है ॥ "

भानुमती कहने लगी-"प्रियतम ! प्राणाधार ! ।
वृद्ध-पिता के वचन पर; कीजे तनिक विचार ॥

जो लोग बड़े-पुरुषाओं की; सिरधर के सीख न मानते हैं ।
वे लोग कभी निश्चय करके; दर दर पर भीख माँगते हैं ॥ "

दुर्योधन बोला–"चुप दुष्टा !; तू भी मुझ को बहकाती है ।
सिंह की सिंहनी होकर के; सियारों से मुझे डराती है ॥
तू शान्ति–पाठ सिखलाती है; उस जानिब शत्रु अगाड़ी है ।
जा, तुझ से भी सम्बन्ध नहीं; तू नारी नहीं, अनाड़ी है ॥"

इस प्रकार कटु–वचन कह; दिया उसे दुतकार ।
भाग गई जी बचाक़र; बेचारी झकमार ॥
प्रातकाल "श्रीधर्म" ने; किया एक दरबार ।
जमा हुए छोटे बड़े; सभी शूर–सरदार ॥
कहा नाथ से धर्म ने–"पाण्डव-पत-पतवार ।
आख़िर कब तक रहेगी!; यह नैया मझधार ॥

है अजब भँवर में यह किश्ती;अध बीच खड़ी ही हिलती है ।
ना एक किनारे जाती है; ना कहीं थाँह-ही मिलती है ॥
हे दीना नाथ ! आप अब ख़ुद; दो बारह कष्ट उठाइयेगा ।
इस दुर्भागी के महा-भाग्य !; फिर से कुरु–पतिपर जाइयेगा ॥
जैसा श्रीमान् उचित समझें; सब ऊँच नीच समझाइयेगा ।
दो में से अबसे एक कोई; तसफ़िया चुका कर आइयेगा ॥"

यादव–पति कहने लगे–"सुनते हैं सरदार ! ।
आज आप सब लोग भी; करदें प्रकट विचार ॥

जाता हूँ, संधि, असंधि हुई; वह सभी सामने आयेगी ।
पीछे से यह सम्मति भाई !; सब की सम्मति कहलायेगी ॥
जो हो आये, उससे पीछे; हर्गिज़ न क़दम धरना होगा ।
जो होगा,सब ही का होगा;फिर और न कुछ करना होगा ॥"
यह सुनकर भीम भक्त बोले–"जिसने अग्नि से बचाया है ।
चाण्डाल–सभा में चीर बढ़ा; भक्तों का मान बढ़ाया है ॥

वन के दुःखों से पार किया; विष का भी असर घटाया है ।
वह और कौन की आश करे?; जिसने ऐसा प्रभु पाया है ॥
मेरे उन के गुण और दोष; महाराज खूब ही जानते हैं ।
क्या दीन-बन्धु को सम्मति दें; सब नीति-रीति पहचानते हैं ॥

यही कहा सहदेव ने; एवं "द्रुपद" नरेश ।
"खटक रहे हैं आँख में; पाञ्चाली के केश ॥"

राजों ने एक ज़बान कहा; "हे दीनबन्धु ! तुम ही जानो ।
अन्तर की दाह बुझा दो बस; अन्तर की तुमही पहिचानो ॥
जैसा जानो, वैसा ही करो; दीनों को दीन-बन्धु ! साधो ।
दुखियों का न्याय स्वयं करदो; और केश द्रौपदीके बांधो ॥

गायन

मेरी बिगड़ी को नाथ ! बनाये चलो ।
दीन दुखियों का; हाथ बटाये चलो ॥
पूँछिये मत दीन से-"तेरे यहाँ क्या काम हैं ?"
दाम है गर्दन में गर्दिश आम शुबहो शाम है ॥
ऐसे बेकस को साथ लगाये चलो ।
है यही बल, और कारण दासके निष्तापका ।
सब तरहसे है उसे, केवल भरोसा आपका ॥
अपने साये में नाथ ! निभाये चलो ।
मैं रहूँ भँवरा तुम्हारा; तुम मुझे अरविन्द हो ।
अये मेरे "गोविन्द"; तेरी गोदमें "गोविन्द" हो ॥
मुझे सच्चा सपूत बनाये चलो ।

"द्रौपदी" रुदन कर यों बोली–"सुधि बनी रहे कंगालों की।
समदर्शी ख़बर न बिसर जाय; दुखिनी अबलाके बालों की॥



श्रीकृष्ण और द्रौपदी।

यह कोमल–शैया वाले पद; कांटों में चलने वाले हैं।
भगवन्! आपकी टहलुनी को; यह बल्कल पहिनाडाले हैं॥"
पार्थने कहा–" उस पापीने; सेवक का धनुष झुकाया है।
जिसने आपके टहलुओंको; द्वारे द्वारे भटकाया है॥
श्री महाराज का महा–ज्ञान; जिसकी न समझमें आया है।
हे दयाधाम! उस निर्दय पर; हो जाय न बिलकुल दाया है॥"

दीनबन्धु की राय पर; ठहरी एक सलाह ।
कौरव–पतिके यहां की; ली जग--पतिने राह ॥
"वर्णावृत" में बास कर; श्री पति--जगन्निवास ।
नगर "हस्तिनापुर" के निकट; पहुँचे शोभा-रास ॥

वैकुण्ठ--निवासीके आगे; क्या शोभा कहें ! दुष्ट--पुर की ।
अमृत–दानीके आगे क्या !; तारीफ़ करें--गीले गुड़ की ॥
हां--नगर बड़ा शोभा–मय है; मानो वह स्वर्ग–बाग ही है ।
अफ़सोस ! मगर उसका माली;क्या है ? यक काला काग ही है॥
तन है,लेकिन शुचि–वर्ण नहीं; ज्ञान है,मगर भक्तिके बिना ।
दीपक है, मगर सनेह नहीं; बीर है–मगर शक्तिके बिना ॥
जो समझो–है लेकिन जबसे; दुष्टों का हुआ बसेरा है ।
तबसे तो यह कह आता है; सूरज है–मगर अँधेरा है ॥

धीरे धीरे नाथने; पुरमें किया प्रवेश ।
यथा अँधेरी रातमें; प्रकट हुआ राकेश ॥

गलियों--कूचों--बाज़ारोंमें; नीचे ऊपर नर–नारी हैं ।
रथ पर सवार, शृङ्गार–मूर्त्ति; मारगमें हृदय–बिहारी हैं ॥
सात्यकी-सहित-शोभा-सागर;शशि-सूर्य्य-सरोज-प्रभाधर से ।
मानो बुध-सहित चलरहे हैं; नक्षत्रों–मध्य सुधा-कर से ॥
नीलाम्बुज-नूतन-चपल-नयन; चहुँ ओर निगाहें फिरती हैं ।
नीलम–निर्मित--नवेन्दु-मुख पर; काकुलें किलोलें करती हैं ॥
वह मोर-मुकुट,कर-बीन-लकुटि;पीताम्बर तनिक हिलोरों पर ।
काकुल-कुण्डल-भृकुटी का जोड़;कर रहा किलोल कपोलों पर॥
आजानु-बाहु-खल-चन्द्र-राहु; आये हैं मनो रिसानेसे ।
भक्तोंके हाथ बिकानेसे; दुष्टोंके साथ खिजानेसे ॥

थकित-चकित-सकुचित सभी; चितवत नटवर-ओर।
प्रकाशित पुरुषोत्तम–पुरुष; नागर–नन्द–किशोर॥
भीष्म–द्रोण–विदुरादिने; प्रभु को किया प्रणाम।
रथ तज सबके साथमें; गँवने करुणा–धाम॥

चरणोंमें गिर कर "विदुर" भक्त; बच्चेकी भांति सिसकते हैं।
भक्तेश–भक्त–भावन-हरिके; नयनोंसे अश्रु छलकते हैं॥
"हे विदुर! ज्ञान–विज्ञान-धाम; निष्काम तुम्हीं निर्दूषण हो।
निश्चर–कुलके प्रह्लाद हो तुम; लंकाके बीच विभीषण हो॥
धर्म का तुम्हें अवलम्ब कहूँ; या भक्ती का आधार कहूँ।
विद्याओंका भण्डार कहूँ; या नीति–धर्म–अवतार कहूँ॥
जो सुःख "भरत" के मिलने पर; उस राम-रूपमें पाया है।
वह सुःख तुम्हारे मिलने पर; इस कृष्ण–रूपमें आया है॥"

"विदुर"–भक्त कहने लगे–"क्यों न कहो? सुख-धाम।
इसी प्रकृति ने हो दिया–"दीनबन्धु" शुभ–नाम॥

तुम "भक्त–वत्स" हो-यह सुन कर; भीतरसे मन थर्राता है।
पर-"पतित-उधारण विरद" जान; सहसा उछाल खा जाता है॥
क्या जानूँ? उस जन्ममें नाथ!; क्या कपट किया? सुख-राशीसे।
जो क्षत्रिय-कुल-कलंक-कारी; पापी–तन पाया दासीसे॥"
माधव बोले–"हीरा देखो; मिट्टी में पाया जाता है।
कस्तूरी कहां निकलती है?; पर सारा जग अपनाता है॥
द्विज–शूद्र–बाल–स्त्री–जवान; बुड्ढे सारे जन प्यारे हैं।
अये भक्त-रत्न! तुम जानते हो; भक्तिके भाव ही न्यारे हैं॥

गायन

परतन्त्र न समझो इसे; भक्ती स्वतन्त्र है।
आत्मा का यक लगाव है, जप है, न मन्त्र है॥
हर एक इसका गण्य है; हर एक पात्र है–
साधन का यहां काम नहीं; प्रेम–मात्र है॥
सद्‌–भक्त तो ब्राह्मण ही नहीं; चाण्डाल हो–
वैकुण्ठ छोड़ उसको; हाज़िर गुपाल हो॥
"शैलेन्द्र" कोई इसका; गिरह–गीर नहीं है–
"गोविन्द" भक्ति एक की; जागीर नहीं है॥"

सुना आगमन भूपने; किया द्वार–सत्कार।
शोभा–मय–दरबारमें; प्रवशे शोभागार॥
"ज्ञान–चक्षु" सन्देश सुन; धाये संजय–साथ।
धार्तराष्ट्र–दरबारमें; ब्राजे यादव–नाथ॥

स्वागत-अभिवादन-प्रेम-मिलन; फिर कुशल-प्रश्न हो जानेपर।
भोजनका प्रश्न उपस्थित था; तो साफ़ साफ़ बोले यदुवर॥
"सुनिये, राजन्! भोजन करना; केवल दो जगह सुहाता है।
या पारस्परिक-मयत्री है; या आपस में कुछ नाता है॥
मेरा आपसे न नाता है; आपस में कुछ मेल भी नहीं।
आख़िर नीति ही सोचियेगा; ऐसे भी भोजन हुआ कहीं?॥"

"ज्ञान–चक्षु" कहने लगे;–"है अचरज की बात।
हमसे जाति न मिल सकी; थी शवरी हम ज़ात॥

जिसके बेरोंको बेर बेर; बतला बतला कर खाया है।
कच्चे चावल खा लेने में; नाता कौन सा निभाया है?॥

नटवर ! न समझमें आता है;किससे ? क्यों प्रीति तुम्हारी है?
सेवक-मनुष्य सच्चे न मिले; बनरों से सच्ची यारी है ॥"
केशव बोले—"उन नातोंका; इस जगह न ज़िक्र कीजियेगा ।
उफ़ ! छाती उमड़ी आती है; बस, यहीं से रहने दीजियेगा ॥
वह रिश्ते, ऐसे रिश्ते हैं; जिन में जातीय सवाल नहीं ।
वह पद, उस पदके ऊपर है; जिस में दुनियाकी चाल नहीं ॥
उस श्रद्धा से; उस भक्ती से; मुझ को सौ बार खिलाइयेगा ।
पहिले वह हृदय बनाइयेगा; पीछे से भोजन लाइयेगा ॥
निःस्वार्थ-भाव, निर्लोभ-प्रेम; त्रै-गुण-त्रि-दोष से दूर थी वह ।
"सायुज-गति"की अधिकारिण थी;दुनियामें नीच ज़रूर थी वह।
उस बन्धनमें बँधता हूँ मैं; जिस जगह कपट का जाल नहीं ।
वह ग्वाल-बालसे ग्वाल नहीं;तो"कृष्ण"वहां"गोपाल" नहीं॥
इसके अतिरिक्त लोकसे भी; क्या नाता यहां हमारा है ? ।
राजन् ! हम यादव-वंशी हैं; और"तापति-वंश"तुम्हारा है ॥"

अस्तु; छोड़िये यहीं से; यह जातीय--विचार ।
आया हूँ, जिस काम से; करो वही सत्कार ॥

जो न्याय दिलाये; सो लीजे; मन—चाही लूट नहीं अच्छी ।
हे कुरुपति ! मेल पालियेगा; आपस की"फूट"नहीं अच्छी ॥
आधा मत दो—पाँच ही गाँव; देने से आज निबटती है ।
देखो—इस समय तुम्हारी ही; सब उलटी सीधी पटती है ।"

कहा नीच ने--"बस मुझे;रही न तनिक सँभाल ।
दुःशासन ! इस को अभी; दे आगे से टाल ॥

ग्वालों का जूठन खा खाकर; उपदेश सुनाने आया है ।
पागल ! क्या इन नीतज्ञों में; षड्यन्त्र रचाने आया है ? ॥

अये वनिताओं के बणिक-चेर!; तू नीति-रीति क्या पहिचाने?।
हाथों का मटकाने वाला; हथयारी झगड़े क्या जाने ?।"

उग्र--वचन सुन नाथ ने; किया दीर्घाकार।
थल-मण्डल हिलने लगा; काँप उठा दरबार॥

मतवाले योधा दुबक रहे; प्रतिभा-मय-विद्युत मन्द हुई।
आनन्द-कन्द के उठते ही; दुष्ट की बोलती बन्द हुई॥
केशव ने केवल यही कहा-"क्या करूँ ? न आज्ञा लाया हूँ।
पापी ! इतनी लाचारी है; मैं दूत-रूप में आया हूँ॥
वरना, इस दल-बल का सारा; क्षण भरमें नशा घटा जाता।
सेनायें वहीं पड़ी रहतीं; मैं ही कुरु-वंश मिटा जाता॥
अच्छा है-अभी कुछ समय तक; तेरी भी आयु दिखाती है।
दीपक जब बुझा चाहता है; तो उसकी "लौ" बढ़ जाती है॥
मौतके समय आंखोंसे वह; निर्मल-शशि भी न दिखाता है।
वह मसल है--वृद्ध पतिंगे के; पंखे ईश्वर उपजाता है॥

सावधान होकर सुनें; जनता और जनेश।
अब न बचेगा दुष्ट यह; आयें स्वयं महेश॥

सुन कान खोलकर, अये पापी !; माने तो, तुच्छ मनौती है।
वरना श्री धर्मराज की यह; अन्तिम बार की चिनौती है॥
बस कुछ ही दिन पीछे-पापी !; अब बृहद्-घोर संग्राम समझ।
धर्मका यह सन्देश समझ; मौत का यही पैग़ाम समझ॥"

इतना कह कर वहांसे; गमने करुणागार।
भीष्म-सहित पहुँचे हरी; भक्त-विदुरके द्वार॥
जहां विदुरके धाम में; पहुँचे करुणा-धाम।
वृद्धा कुन्ती को किया; सबसे प्रथम प्रणाम॥

अकुलाई सी, मुरझाई सी; गिरती, पड़ती सी आती है ।
चोटी सूँघ कर मनोहर की; केशव को कंठ लगाती है ॥
आनन्द कन्द बोले—"फूफी !; भाई ने मुझे पठाया है ।
तेरे पास में कुशलता का; शुभ-सन्देशा पहुँचाया है ॥"

वृद्धा देवी ने कहा—"ज़रा जोश के साथ ।
क्या सन्देशा लाये हो !; बेटा यादव-नाथ ! ॥

जो किसी शख्सका सेवक है; जिसकी माँ टुकड़े खाती है ।
वह सच्ची विपद—अमंगल है; यह कुशल नहीं कहलाती है ॥
ग़ैरों के यहाँ ग़ुलामी कर; दुश्मन से जान छिपाई है ।
बस ज़रा लोभ के पीछे ही; गहने रख दी ठकुराई है ॥
जब ऐसे ही कापुरुष नीच; कुछ लालच में आ जाते हैं ।
तब आन, बान, मर्य्यादा क्या !; ईमान बेच खा जाते हैं ॥
यदि उनकी कायरता मोहन !; पहिलेसे कहीं समझ पाती ।
तो पैदा होने के दिन ही; गंगा की हवा खिला आती ॥
कुन्ती के बेटे कहला कर; पीछे को दुम दुबकाते हैं ।
"केहरी" कहाते हैं—लेकिन; गीदड़ से गिरे दिखाते हैं ॥
बनियों की तरह सँदेशे क्या !; जो करना हो, वह कर जायें ।
लड़ जायें—अपने स्वत्वों पर; या मार जायँ, या मर जायें ॥
हा ! हा ! हा ! हा; आ गई ज़ंग; तलवार में जिनके जीते जी ।
नारी की वह दुर्दशा हुई; दरबार में जिनके जीते जी ॥
बुड्ढे पन में माँ बाप कृष्ण; बेटों की आश लगाते हैं ।
यह ऐसे ना माकूल हुए; माँ से टुकड़े मँगवाते हैं ॥
अपनी चीज़ के माँग ने को; जो रोते हैं यों "हा हा" कर ।
चूल्हे में जाये वह हिम्मत; लग जाय आग क्षत्रिय पन पर ॥

अर्जुन से कहना-भूल गया; सुर-पुर से हाथीका लाना ।
जो कायरता का पुतला हो; तो जीते मुँह मत दिखलाना ॥

गायन

यह दुखी माँ का सँदेशा; भेज दो माधव ! वहाँ ।
सो रहे हैं सिंहनी के, सैकड़ों बालक जहाँ ॥
सूझता है किस तरह ? सुख-नींद या आरामो ऐश;
हो रहे टुकड़ोंको तुम; और रो रही परतन्त्र मां ।
पापियों के सामने जो, झुक रहे, और गिर रहे;
बाँधते हो किस लिये ?; बेकार फिर तीरो कमाँ ॥
जाबरों के सामने, जबड़े फुलाये फिर रहे;
ख़ाक में जाये तुम्हारी, आनो बानो शेख़ियां ।
शेर की औलाद हो, स्यारों से तो फ़रियाद क्या ?;
मान सकते हैं कभी ? रुक़बा तुम्हारी अर्ज़ियां ॥
मर्द हो, तो सामने आओ, खुले में जंग लो-
या मुझे दे दो ज़हर; और तुम पहिन लो चूड़ियां ॥"

कृष्णचन्द्र कहने लगे-"फूफी रक्खो धीर ।
चन्द रोज़ के बाद ही; आते हैं सब वीर ॥

कुछ दिन में ही बल बंका का; रणका डंका घहरायेगा ।
इस इन्द्रप्रस्थ के गढ़ गढ़ पर; जय का झण्डा फहरायेगा ॥
धीरज रख, तेरे ही बारे; हत्यारे से बदला लेंगे ।
बतला देंगे, अन्याय, राज्य; और तेरा दूध बजा देंगे ॥"

भाँति भाँति समझा बुझा; विदा हुए सुखधाम ।
कर्ण वीर ने भी वहीं; प्रभु को किया प्रणाम ॥

नाथ ने कर्ण का हाथ पकड़; अपने समीप ही बिठलाकर।
भाई-पन का कुछ जोश दिला;यों कहा प्रेमसे समझा कर॥



"प्रिय कर्ण वीर, तुम अपने को;अधिरथ का पुत्र जानते हो।
कुरु-पतिके कुटिल कुसंगोंसे; अपनों को ग़ैर मानते हो॥
लेकिन तुम कौन हो, कैसे हो; जब यह ज़ाहिर हो जायेगी।
तो अपने भ्रात पाण्डवोंसे; खुद ही रंजिश खो जायेगी॥
लो सुनो—तुम्हें कुन्ती माँ ने; क्वांरे पनमें ही जाया था।
व्यभिचार नहीं,अपसंग नहीं; सूर्य का मन्त्र अज़माया था॥
लेकिन जब मन्त्राकर्षणसे; तुम पैदा हुए कर्ण—भाई!।
उस समय तुम्हारी माता को; दुनिया की भी लज्जा आई॥
ले, फेंका, तुम्हें नदीमें, पर; क़िस्मतने तुम्हें बचाया है।
कुन्तीने तुमको जाया है; अधिरथने तुम्हें बढ़ाया है॥

इसलिये हमारी शिक्षा है; छोड़ो उनसे निठुराईको ।
हे कर्ण वीर, विश्वास रखो; तुम धर्म-राजके भाई हो ॥
छोड़ो इसलिये पक्ष इनका; चल भाई की इमदाद करो ।
तुम छः मिलकर रिपु क्षय कर दो; दुखिया माँ को आज़ाद करो ॥
तुम ज्येष्ठ भ्रात हो, राज्य करो; और पांचों को आज्ञायें दो ।
भैया ! सुनीति का मारग लो; छोड़ो इस कुटिल क्रूरता को ॥"

कर्ण वीर कहने लगा-"सुनिये दया-निधान ! ।
यह सब कुछ सुन रहे हैं; कर्ण दासके कान ॥

यह प्राण मातु कुन्तीके हैं; सो चाहे आज दिला दीजे ।
लेकिन पक्षके बदलने पर; समदर्शीनाथ ! कृपा कीजे ॥
मैं धर्मराज का भाई हूँ; एवं कुन्तीने जाया है ।
लेकिन मेरी इस रग रगमें; कुरु-पति का नमक समाया है ॥
मेरे बल पर, मेरे प्रण पर; यह युद्ध रचाया जाता है ।
हे अटल मूर्ति ! क्या वीरों को; यों ही पलटाया जाता है ॥
यह उसी जोश का पारा है; जो उछल गया, सो उछल गया ।
यह ज़बाँ मर्द लोगों की है; जो निकलगया, सो निकल गया ॥
अब भी यदि धर्मराजसे मैं; कोई भी हिस्सा पा लूँगा ।
तो इसी नमकके नातेसे; सब कुरु-पति को दे डालूँगा ॥
धिक्कार है ऐसे पापी को; जो भूल जाय सब यश पिछले ।
इस दुखमें स्वामी को छोड़ूँ; तो रग रग मुझे कोढ़ निकले ॥"

"एक विनय है महा-प्रभु !; समझें जन को दास ।
किन्तु किया ही चाहिये; अब दुष्टोंका नाश ॥

लाखों राजा पृथ्वी भरसे; दल-बल लेकर सज आये हैं ।
आपकी नज़र को देख रहे; रणसे ही आश लगाये हैं ॥

यह प्रभु को एक बहाना है; हे नाथ ! दुष्ट संहारियेगा ।
वास्तविक धर्म उद्धारियेगा; पृथ्वी का भार उतारियेगा ॥
अब अधिक विवाद नहीं अच्छा; बस रण-डंका बजवा दीजे ।
पापी भूमिमें मिला दीजे; अवतार-मर्म प्रकटा दीजे ॥"

इतना कह कर कर्ण--भट; चरण रहा सिर नाय ।
बिदा हुआ भगवान से; नाथ चले मुसकाय ॥
पाण्डव–दल में जिस समय; पहुँचे यादव–राय ।
धर्मराज भीमादि सब; पड़े चरण में धाय ॥

केशव बोले–"बस देर व्यर्थ; अब रण का बाजा बजवा दो ।
सेनाओं को तैयार करो; दल, दलके झण्डे चढ़वा दो ॥

दल–मण्डल से एक दम; उठी यही आवाज़ ।
"बस अब शान्ति न उचित है;युद्ध करो नरराज ! ॥"

गायन

डटें चहूँघा दल बल वारे; कटें सूर सरदार ।
सन्, सन्,सन्, सर छुटवें उहिं दिन; चमक चलै तरवार ।
सांचौ बुंद अरे आरज कौ; काहे आरज कौ ॥
उहि दिन बादर डरिबै फार ।
एकके मारें द्वै २ मरें; घर घर परि है मार पुकार ॥
फुटि हैं चुरियां कुरु-पच्छिन की; मिलै न जल दातार ।
बिलख बिसूरें अरिकै रमनी; छुटैं हार सिंगार ।
फिरै दुहाई मोरे महाराज की; काहे मोरे महाराज की ॥
छैये चहुँघा जय जयकार ।

सम्मति कर ही रहे थे; राजा और राजेश ।
लिये एक अक्षौहिणी; आया "रुक्म" नरेश ॥
सादर आगेसे लिया; उसको पाण्डव-नाथ ।
आते ही कहने लगा-" चलो हमारे साथ ॥
जो तुम्हें चाहिये हक़ तो, लो, पकड़ो दामन मर्दानों का ।
जो जय की इच्छा सच ही है; तो छोड़ो साथ ज़नानों का ॥
अये धर्मराज ! जो अब मेरा; तुम आधिपत्य स्वीकार करो ।
तो चलो, हमारे ही बलपर; सारा कुरु-दल संहार करो ॥
मैं ही ख़ाली अपने बलसे; कुरु-पति को मार गिराऊँगा ।
अपने हाथों, देखना तुम्हें; वह शाही-ताज पिन्हाऊँगा ॥ "
महा-मान के शब्द जब; बोला वह महमान ।
भीम वीर कहने लगे; खल से त्यौरी तान ॥
"अभिमानी ! मति मन्द ! ओ; नालायक़, बदज़ात ! ।
कृष्ण देव के सामने, क्या तेरी औक़ात ? ॥
क्या चाहता है ?-तुझसे मिलकर; हम भाई का संहार करें ।
भ्रात की दासता करें नहीं; दासत्व तेरा स्वीकार करें ॥
जो एक शक्ति को मिटवा कर; दूसरी शक्ति पर रहते हैं ।
वह भी तो एक ग़ुलामी है; आज़ादी उसे न कहते हैं ॥
यदि पराधीनता में रहना; स्वीकार हमें हो जाय कहीं ।
तो व्यर्थ है, सारा सत्याग्रह; यह राज्य भी कोई बुरा नहीं ॥
कर लेंगे कोई ख़ास काम; और ख़ैर-ख्वाह बन जायेंगे ।
दस रुपये के नौकर होंगे; रिशवत में लाखों आयेंगे ॥
चिल्लाते हैं-दुखिया ग़रीब; तो हम को क्या चिल्लाया करें ? ।
"जीहाँ हुजूर" का साया लें, बस हलुआ पूड़ी खाया करें ॥

लेकिन अपना यह दावा है;—टुकड़े खायें स्वतन्त्र रहकर ।
तो वेही सच्चे भोजन हैं; वरना तुफ़ है षट—व्यञ्जन पर ॥
रहने दे—बेअदब ! यह उलटी गुफ्तार ।
हैं दासों के शीश पर; यादवेन्द्र सरकार ॥
इनके आगे-तू मान्य बने; पापी ! क्यों यह मुँह दिखलाये ? ।
केहरी देव के आगे क्या !; गदहे को तिलक दिया जाये ?॥
गुस्सा तो ऐसा आता है; सिर का भेजा निकाल दूँ मैं ।
सरकश का सर कर कसर कसर; कुत्तों के लिये डाल दूँ मैं ॥
लेकिन है ध्यान रुक्मिणी का; माधव का नातेदार है तू ।
वरना मुझ नाहर के आगे; मामूली एक शिकार है तू ॥
बस-चल, बाहर दरबार से हो;अब यहाँ न यह चहरा दिखला ।
जाना हो तो कुरुपति पर जा; या अपने घर को वापिस जा॥
हाथ पकड़ कर रुक्म को; बाहर दिया निकाल ।"
लज्जित होकर चल पड़ा; कुरु-पति पर तत्काल ॥
बस जाते ही वहाँ भी; किया वही प्रस्ताव ।
सुनते ही कुरुनाथ का; बढ़ा यकायक ताव ॥
"ओ पापी ! जब हम खेल रहे; सच्चे स्वराज्य को प्राणोंपर ।
तो क्या स्वतन्त्रता दे डालें ?; चमगीदड़ के महमानों पर ॥
"भीष्म"के सामने तुझे मान्य; कहदें?-क्योंरे ओ नालायक़ !।
"द्रोण"के मुकाबिल तुझे गण्य; कह दें?-क्योंरे ओ नालायक़!॥
जो पराधीनताही चाहूँ, तो क्यों न "धर्म" को बुलवा लूँ ! ।
मैं मन्त्री बनकर काम करूँ; और ताज बन्धु को पहिना दूँ ॥
तेरी औक़ात आज से क्या !; कितने दिन से सुन पाये हैं ।
अये दुष्ट ! मुड़े यह बाल कहीं; मुड़ने को फिर उग आये हैं ॥

बस बाहर हो सभा से; कुशल इसी में मान ।
प्राण छोड़ता हूँ तेरे; कारण ?—है महमान ॥"
बुरी तरह निर्लज्ज को; नृप ने दिया निकाल ।
"रुक्म" वहीं से नगर को, लौट पड़ा तत्काल ॥
जब से आये लौट कर; केशव करुणा-ऐन ।
थी न तभी से वहाँ पर; कौरव-पति को चैन ॥
प्रातकाल गुरु द्रोण पर; पहुँचा कौरव-राय ।
कर प्रणाम द्विज-राज को; बोला शीश झुकाय ॥

"गुरुराज ! आज दास की लाज; ताज या राज्य हाथोंपर है ।
जो आज्ञा देंगे महाराज; वह मेरे सिर-आखोंपर है ॥
आप के भरोसे ही भगवन् !; यह सारा साज सजाया है ।
बैठे ठाले, श्री महाराज !; नाहर का कान खुजाया है ॥
आप की एक शक्ती पर ही; यह व्याधि बिसाई जाती है ।
जब याद कृष्ण की आती है; तो यह छाती थर्राती है ॥ "

गुरुवर ने उत्तर दिया—"सुनिये कौरव-नाथ ! ।
आदि-ब्रह्म-जगदीश-हरि; केशव जिन के साथ ॥

तुम तो क्या ? महा-काल आये; और धर्मराज से युद्ध करे ।
तो याद रहे, उन हाथों से; मौत भी आज बे मौत मरे ॥
पहिले वे ही बल-धारी हैं; दूसरे सहाय बिहारी है ।
बस इसे गाँठ में बाँध रखो; बे माँगे मौत तुम्हारी है ॥
फिर भी जो वचन दे चुके हैं; आजीवन उसे निभायेंगे ।
हम तेरा नमक खा चुके हैं; तुझ पर ही प्राण चढ़ायेंगे ॥"

धैर्य दिया गुरु द्रोणने; उठा शीघ्र कुरु-नाथ।
भीष्म पिताके चरणपर; जाकर रक्खा माथ।

"हे वृद्ध पितामह ! निष्कारण; यह घरमें आग लगाई है।
अब उसका असर याद आया; जब माथेपर बन आई है॥
इसलिये शरणमें आया हूं; चरणोंमें नाथ ! शरण दीजे।
उन पञ्च-मुखी-नर-राजोंसे; अनुगामीकी रक्षा कीजे॥"

भीष्म पिता कहने लगे;—"है अब तेरा भाग्य।
तूने ही बैठे हुए; भूप ! लगा ली आग॥

वे बेचारे क्या करते थे ?; जो दोष है, राजन् ! तेरा है।
हां, पक्ष न तेरा छोडूंगा; बस इतना ही प्रण मेरा है॥
यह पापी कर्ण-शकुनि मिलकर; तुझको यमपुर ले जायेंगे।
यदि आज नहीं कुछ दिन पीछे; पाण्डव झण्डा फहरायेंगे॥"

यह सुनकर भट कर्णको; आया बेहद जोश।
लेकिन वह चुपचापही; चला गया ख़ामोश॥
भीष्मपिताके शब्द तो; थे कांटे के तोल।
सब कुछ था—पर कुछ न था; उन शब्दोंका मोल॥
चला वहांसे क्रोधमें; मूढ़ सहित अभिमान।
कर्ण-वीरके सामने; रख दी तीर कमान॥

फिर विनय-पूर्वक कहने लगा—"भैया ! भीषमको देख लिया।
जब असली सिरपर आनेलगी; तो क्या बेलाग जवाब दिया॥
बच्चे, बुड्ढोंकी बातोंकी; परतीत नहीं की जाती है।
वे बल बुद्धिसे गये समझो; उनकी मति मारी जाती है॥

भैया ! आपके सहारेपर; यह सभी बखेड़े उखड़े हैं ।
आप ही अगर चुप बैठ रहे; तो यहां शेष सब बकरे हैं ॥
उनके शब्दोंपर अगर कहीं; आपका क्रोध दिखलायेगा ।
तो उनका तो जाना क्या है ?; शरणागत मारा जायेगा ॥
इसलिये भीष्मके शब्दोंको; हे भाई ! भूल जाइयेगा ॥
इस दीन-हीनकी ओर देख; जैसे हो काम बनाइयेगा ॥"

अब तो कुप्पा हो गया; "कर्ण" यकायक फूल ।
हाथ मिलाकर भूपसे; बोला अवगुण-मूल ॥

"राजन् ! आप क्या कह रहे हैं; कर्ण तो प्रथम कह हारा है ।
ले लीजे-अभी समर्पित है; रग रगमें रक्त तुम्हारा है ॥
कर्णके सामने खड़ा रहे; देखूं तो किसकी हिम्मत है ? ।
प्रभुपर न हवा आने देगा; जबतक यह सेवक जीवित है ॥
बस अब विलम्बका काम नहीं; तत्काल दूत पहुँचाइयेगा ।
केशवसे और युधिष्ठिरसे; यह सीधे शब्द कहाइयेगा ॥
या तो सेना ले युद्ध करें; या देश छोड़ रणको जायें ।
जो राज-भोगकी इच्छा हो; तो कर्म-योग कर दिखलायें ॥"

बस इतना सन्देश ले; फ़ौरन चला "उलूक" ।
धर्मराजकी सभामें, हुई बात दो टूक ॥

स्पष्ट दूतने कह डाला-"महाराज ! हुक्म है कुरुपतिका ।
जो राज्यकी इच्छा रखते हो; या लोभ है, धन-जन-सम्पतिका ॥
तो तलवारोंकी ताक़तपर; अपना हक़ पाने पाओगे ।
अन्यथा यहींपर पड़े पड़े; निष्कारण मारे जाओगे ॥

या युद्ध करो या भाग बचो; दोहीमें कुशल तुम्हारी है।
वरना क़ानून याद रक्खो; वह सारी भूमि हमारी है॥
जो भूमि न छोड़ोगे राजन्!; तो शूली दे दी जायेगी।
यह केशव की कलगी, मुरली; पगड़ी उड़ती दिखलायेगी॥"

अन्तिम—शब्दोंपर उठे; भीम खींच तलवार।
किन्तु हाथको थामकर; बोले लीलाधार॥
"भीम! दूतके साथमें; ऐसा अत्याचार।
बिगड़ जायगा सदाको; दूतोंका व्यवहार॥"
"धर्मराज" कहने लगे; "पापी कुरु-पति! जाग।
जला जायेगी शान सब; यह दुखियोंकी आग॥

कह देना—उस मतवालेसे;—कल सेना लेकर आऊँगा।
सौगन्ध मुझे है "केशव" की; अब वहीं शक्ति दिखलाऊँगा॥
ब्रह्मा भी अगर सामने हो; तो भी न पीठ दिखलाऊँगा।
श्रीकृष्णचन्द्र की दायासे; कौरव—कुल—अंश मिटाऊँगा॥"

गया; कांपते कांपते; वह "उलूक" निज देश।
राजसभामें खोलकर, समझाया सन्देश॥

सन्देशा सुनकर कर्ण, भूप; बोले—"अच्छा है आने दो।
क्यों मनकी मनमें बनी रहे; मनमानी भी दिखलाने दो॥"
इतनी कहकर कुछ देर तलक; दोनों आपसमें हँसा किये।
"गोविन्द" विचारा सोने लगा; श्रीकृष्ण-चरणमें ध्यान दिये॥

श्रोतागण! बस यहांसे; होना है संग्राम।
कृष्णचन्द्र का ध्यानधर; करो आज विश्राम॥

गायन

काहे भय मानत हो निर्भय सदय जान;
संशय ही संशयमें सिगरी नसै है रे।
अटकी का अटक का खटकी खटक तोहिं;
झटक लैहै माया तौ बीच अटक रैहै रे॥
भाषत "विनीत" जन प्रीति औ प्रतीति पन;
छोड़ पछितै है नीति काम नहिं ऐहै रे।
सुख दुख सहे चल, पीताम्बर गहे चल;
"कृष्ण कृष्ण" कहे चल, पार लगि जैहै रे॥

"धर्मराज" ने प्रात ही; "नन्दलाल" पर जाय।
चरण-कमल में सिर झुका; वचन कहे समझाय॥

प्रण-तारत-प्रणत-पाल! प्रण कर; सेवक स्वामी पर आया है।
दुर्योधन पर प्रात के लिये; प्रण-पूर्वक दूत पठाया है॥
प्रण-रक्षक ! अब प्रणको रख कर; सेनाको हुक्म दीजियेगा।
डंके की चोट "हस्तिनापुर"; भगवन्! प्रस्थान कीजियेगा॥"

"केशव" ने हँसकर कहा—"सैन्य करो तैयार।"
आज्ञा पाकर सज गये; पैदल और सवार॥

हाथी, घोड़े, खच्चर, पाढ़े; गाड़ी, रथ आदि सजाये गये।
डेरों से योधा निकल चले; गहगहे निशान बजाये गये॥
सरदार क़तार क़तार साज; दल-बार दुन्दुभी बजवाई।
रण के बाजों से मिली हुई; भीनी भीनी सी सहनाई॥
"पाञ्चाल-भूप" और "धृष्टद्युम्न"; सेना-युत-"द्रुपद-कुमार" चले।
राजा "विराट—सात्यकी" चले; भट "काशिराज" सरदार चले॥

"सहदेव" चले, भट "शूरसेन"; सम्पूर्ण साज हथयार चले ।
बस इसी तरह दो एक नहीं; राजा चालीस हज़ार चले ॥

स्वर्ण-साज-सज्जित सुभग; बहे माथ मद-धार ।
उस मतंग पर खुद हुए; "धर्मराज" असवार ॥

"भीम"ने अनोखा रथ साजा; "द्रौपदी-कुँवर" तैयार हुए ।
मणि-रचित-सौम्य-रथपर सवार;अर्जुन" मय "लीलाधार" हुए ॥
प्रति-दल की आन, बान न्यारी; दल के दल गोरे—काले हैं ।
दल के दल अलग अनोखे हैं; दल--दलके ढङ्ग निराले हैं ॥

"पार्थ"तथा "श्रीकृष्ण"का;लिखता हूँ कुछ साज ।
है निर्भर बस इन्हीं पर; सारा साज—समाज ॥

खुद"केशव"ने अपने हाथों; "अर्जुन"का साज सजाया है ।
"इन्द्र"का मुकुट सिरपर बांधा;"शिव"का सनाह पहिनाया है॥
श्री "सूर्य्यदेव" के कुण्डल फिर; अक्षयकारी पहिनाये हैं ।
"गाण्डीव" आदि अस्त्रादि सभी; केशवने स्वयं सजाये हैं ॥
जिसकी छाया--दाया पाकर; प्रति दिन कुशल से रहता है ।
वह निर्भय-कर,वह अक्षय-कर; किसलय-कर सिरपर रक्खा है॥
मीठे मीठे शब्दों में फिर; माधव बोले—"सुख—कारी हो ।
रणमें रिपु-दलका खण्डन हो; निश्चय ही विजय तुम्हारी हो॥"

बाँह पकड़ कर पार्थकी; दिया अशीश-प्रसाद ।
भरा भक्तके हृदयमें; भक्ति-भाव—आल्हाद ॥

श्रोता गण ! यह तो साज हुआ; श्री केशवके अनुचारी का ।
अब एक चित्त चिन्तन कीजे; सारथी-वेष "बनवारी" का ॥

नील-मणि-नील-नीरज-नीरद; विमलेन्दु वदन दरशाता है ।
उस ओर अधर-रस चाखनको; कुण्डल किलोल पर आता है ॥
सरपैंच निसर सर पर भासित; सह-मुकुट लपेट तिरंगी है ।
तुर्रा की एवज़ चन्द्र-कला; शुभ-कलगी कुटिल-त्रिभंगी है ॥
पीताम्बर पर कुछ फँसा हुआ; फेंटे की फेंट सी कसी हुई ।
होंठों पर कुछ मुसकाहट सी; कटि-तटमें वंशी बसी हुई ॥

व्रज-पति, यदुपति, लोक-पति; या यह सारथि काम ।
धन्य धन्य जग-पूज्यतम; भक्त-वश्य भगवान् ॥

हे महाराज! कहिये तो आज; क्या अलग कर दिया "दारुक" है?।
इन कर-कमलोंमें ही भगवन् !; कैसी यह ओरी चाबुक है ? ॥
जिसकी भृकुटी के उठते ही; ब्रह्माण्ड सारथी बन जाये ।
वह त्रिभुवन-धनी सारथी बन; अर्जुन के घोड़े सहलाये ॥

गायन

भ्राताओ ! देखो किस प्रकार !; करुणामय इष्ट हमारे हैं ।
कैसे कैसे कष्टों में पड़ !; भक्तोंका काज सँभारे हैं ॥
भृकुटीमें सूर्य्य-चन्द्र जिनके; वे हो सारथी "पार्थ" जनके ।
हे भक्त जनो ! देख लो यहीं; भक्तसे भक्त-पति हारे हैं ॥
गजराज गरुड़को छुड़वा दें; गुहराज जाति-पथ तुड़वा दें;
खग-राज करालें अन्तिम-कृति; कुब्जा पर तन, मन हारे हैं ।
शबरीके जूठे बेर चलें; देवता विचारे हाथ मलें;
प्रभु अपने मुँहसे आप कहें; हमको तो सेवक प्यारे हैं ॥
जीवन-रणमें, कर्त्तव्य-नाव; "गोविन्द" फँसी तो डर क्या है?—
तेरे तो केवल रखवारे; "शैलेन्द्र" बांसुरी बारे हैं ॥

घोड़ों की बांग डोर खींची; जब नीचेसे रण—रंगी ने।
तब 'कपि-ध्वज' की ध्वज फहरा कर; हुंकार भरी "बजरंगी" ने॥



पार्थका रथ।

सब ओरोंसे जय-नाद उठा; वीरों का मंगल—गान उठा।
दल-बादल दल-बल सहित उठा; प्रतिदलका अलग निशान उठा
सारी सेनासे आगे रथ; वायु—गति दौड़ता जाता है।
पीछे टिड्डी—दल की नाईं; दल—बादल उमड़ा आता है॥

दल के चलते ही चली; हल—चल चारों पास ।
भूतल पर भूचाल था; कांप उठा आकाश ॥
दब गये "सहस-फन" के फन तक; दिश-दिश, दिश-पाल चिकार उठे ।
सूर्य्य पर धूरि का पर्दा था; ऊपरसे देव पुकार उठे ॥
वन—पशु चीख़ कर निकल भागे; पक्षी-गण राह भुलाने हैं ।
गुञ्जित हो गया उजाड़—खंड; ऊजड़ आबाद दिखाने हैं ॥
सर्व—सैन्य—सञ्चालकी; पा कर पूर्ण—प्रतीत ।
दल-मण्डल से एक ध्वनि; उठा वीर-सांगीत ॥

गायन

उमड़ घुमड़ कर, रिपु पर चढ़ कर; बढ़ बढ़ कर, सेना-सञ्चार ।
धर-सिर-कर, कर कसर २ अरि; यक सर भर २ जयजयकार ॥
अघ-प्रिय खाकर, धर्म बढ़ा कर; पाप-पुञ्ज करदें संहार ।
जय-यश पावें, शत्रु नसावें; गावें हिल—मिल राष्ट्र—मलार ॥
बढ़ो, स्वदेश—वीर !; देश बचानेके लिये ।
चलो, महात्म-धीर !; धर्म चलानेके लिये ॥
राष्ट्रके यज्ञमें; बलि-दान चढ़ानेके लिये ।
वीर लोहूसे, वीर—बेल बढ़ानेके लिये ॥
हमारे रक्त की बूँदें; जो मही पायेगी—
स्वतन्त्रताका किसी; रोज़ रंग लायेगी ॥
प्राण चढ़ा कर, सैन्य गँवा कर; रख "शैलेन्द्र" सुकीर्ति विचार ।
जन "विनीत" सब पुत्र वीर हों; और खुला हो "भारत-द्वार" ॥

चलते चलते राहमें; कहा धर्मने–“ नाथ ! ।
होगी ? जन को सफलता; किस उपायके साथ ॥”

माधव बोले–“ हे धर्मराज !; ठहरो, एवं स्नान करो ।
शर्वाणी-देवि-भवानी का; उस आदि–शक्ति का ध्यान करो ॥
वह ‘विजय–दायनी’ गुण-खानी; माया-मय-शक्ति हमारी है ।
उसके प्रसन्न हो जाने पर; निश्चय ही विजय तुम्हारी है ॥”

धर्मराजने वहीं पर; किया शौच–स्नान ।
श्रद्धा-युत करने लगे; आदि-शक्तिका ध्यान ॥

गायन

ॐ मायावती ।
कालिका कत्यायनी, आदि, सद्-गति दायनी;
अनपायनी, सीता सती ॥
नमोस्तु देवि चण्डिका; प्रचण्ड–दण्ड, खण्डका;
प्रसीद पाद-रेणु मां !; विमोच सोच पाहि माम्;
भुवनेश्वरी दे सद्-गती ।
समर-स्थल-शोभनी; जय भावगम्य विमोहनी;
मति बोधनी; हर दुर्मती ॥

सच्ची आत्मा से उठी; विनय–भरी झनकार ।
प्रकट हुआ श्री देवि का; “जगज्जयी-अवतार ॥”



दुर्गा-साक्षात ।

जग मगत ज्योति चारो दिशान; महिसे नभ तक उद्योत हुआ।
जिसके आगे सूर्य्य का तेज; सोलहों अंश खद्योत हुआ ॥
वह स्वर्ण-सुसज्जित सिंहासन; चारों दिश चार चारिकायें ।
विद्युत-विकास मणि-जटित स्वच्छ; प्रत्येक करोंमें मालायें ॥
घड़ियाल-घोष, शंख का नाद; पीछेसे चँवर ढुल रहा है ।
कच-भुज प्रलम्ब, सायुध प्रदीप्त; बेणी का बन्द खुल रहा है॥
खप्पर-त्रिशूल-घट धरा हुआ; मृग राज बगलमें खड़ा हुआ ।
आशीश-कर-कमल उठा हुआ; "गोविन्द" चरणमें पड़ा हुआ॥

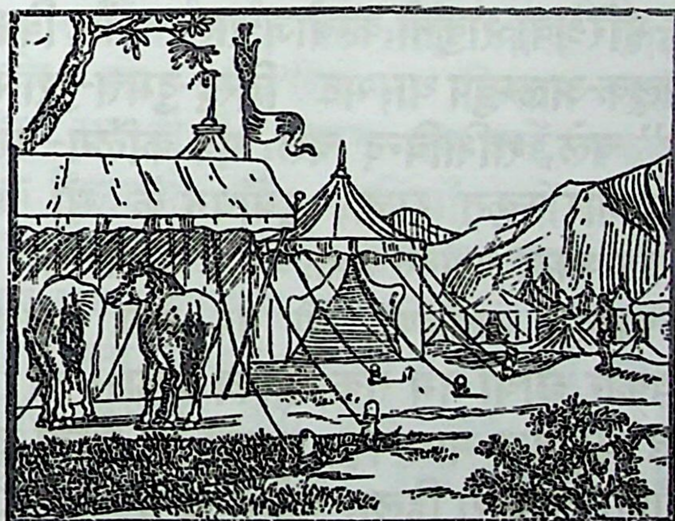
चरणों में माथा झुका; रहे धर्म, साह्लाद ।
देवीके मुखसे उठा; " बरंब्रूहि " का नाद ॥

"हे धर्म-निष्ठ ! हे धर्म-राज !; तुम"कृष्णचन्द्र"के प्यारे हो।
उन " यादवेन्द्रके " नातेसे; सच्चे सद्-भक्त हमारे हो॥
धर्म-मय-याचना से पहिले; इतनी आशीश हमारी है।
इच्छित-फल तुम्हें प्राप्त होवे; रणमें भी विजय तुम्हारी है॥"

धर्मराज कहने लगे—"जगदम्बे ! गुण-खानि !।
आदि-ज्योति-अवतारणी; भव-भय-हरण-भवानि॥

जो मुझ पर हो प्रसन्न देवी !; तो केवल इतना वर दीजे।
भारत में-हे भारती देवि !; भारत-भक्त की विजय कीजे॥"
यह"विनय-वाक्य"सुनकर नृपका; आल्हादित श्री वरदानि हुई
एवं"तथास्तु"कह कर तत्क्षण; "कल्याणी" अन्तर्द्धान हुई॥

कुरु-क्षेत्र तक इस तरह; दल का हुआ चढ़ाव।
कुछ पश्चिम की ओर को; पड़ने लगे पड़ाव॥



शिबिर।

विस्तृत-मैदान चतुर्दिश से; डेरों की ख़ातिर घेरा गया।
दस बीस कोस की फेरी में; घोड़ों का फेरा-फेरा गया॥

ऊँचे ऊँचे तम्बू ताने; जिनपर निशान फहराते हैं।
श्री धर्म राज की जय-घोषित; घण्टा घड़ियाल सुहाते हैं॥
रक्षित,एवं कुछ सुबिधा मय;वह नारि-शिविर बनवाया गया।
अतिथोंका अलग प्रबन्ध हुआ;यक'सेवा-सदन'खुलाया गया॥
सन्देशा सुन कर कुन्ती माँ; बेटों से मिलने आती है।
प्रत्येक लाल को लालन कर; भारत-ललना चुमकाती है॥
ब्रह्मानन्दकी शान्ति एवं; आनन्द महात्मा से पूछो।
बेटे से मिलने की उमंग; माता की आत्मा से पूछो॥

वहाँ सुना संवाद यह; जिस दम कौरव-नाथ।
गाजे बाजे से चला; वह सेना के साथ॥

'दुर्योधन,कर्ण,भीष्म' बलधर;'द्रौणी' गुरु 'द्रोणाचार्य्य' चले।
भट'सोमदत्त,'और'बाहुलीक;'द्विज'कृपाचार्य्य'आचार्य्य चले
"गंगाधर-भूरिश्रवा-शकुनी;कम्बोज-शल्य-और विकरण था।
वृषसेन-उलूक-अलम्बुष था; भट "द्विरद-दुमत्त-दुशासन"था॥
"भगदत्त" चले, शशिबिन्द चले; एवं कलिंग-नर-राई थे।
थे साठ हज़ार फ़क़त् राजा; दुर्योधन के सौ भाई थे॥

इस प्रकार गमनित हुआ; घर से कौरव-नाथ।
एकादश अक्षौहणी; थी सब सेना साथ॥

वह अन्धकार छाया नभ तक;रविका प्रकाश भी टूट गया।
चमगीदड़ चहुँदिश भाग पड़े; चकवों का जोड़ा छूट गया॥
पृथ्वी काँपी, आकाश हिला; बेहोश मृगों की टोली थी।
रोली सी नभ में छाई थी; मानो भारत की होली थी॥
प्रत्येक वीर का साज-बाज; यदि आद्योपान्त लिखा जाये।
तो उसका ही हो महा-ग्रन्थ; पढ़ने से जी उकता जाये॥

इसलिये न उस का कुल वर्णन; भ्राताओ ! हमें बढ़ाना है।
हाँ, दोनों के आने ही का; थोड़ा सा चित्र बनाना है॥
यद्यपि उन रोज़ों मल्ल-युद्ध; कसरत का करना दैनिक था।
भारत का बच्चा बच्चा भी; सच्चा शूरमा-सु-सैनिक था॥
प्रत्येक हृदय में इच्छा थी;-" हम भारत-मान बचायेंगे।"
प्रत्येक वीर यह कहता था-"हम भी लड़ने को जायेंगे॥"
भारत का मान बचाने को, ख़ुद ही सब भागे आते थे।
सत्याग्रह के संग्रामों में; वे पहिले नाम लिखाते थे॥
अपना, अपने बेटों तक का; हँस कर बलिदान चढ़ाते थे।
मर जाते थे मर्य्यादा पर; पर नाम "अमर" कर जाते थे॥

तद्यपि भारी फ़र्क़ था; दोनों के दर्म्यान।
कौरव-दल के पक्ष का; सुनिये थोड़ा ब्यान॥

जब देखी सेना ना काफ़ी; तो देखा टूटी फूटी पर।
गाँवों से भीख मँगाई गई; उठ गई आँख रँगरूटी पर॥
मोटे, ताज़े, हट्टे, कट्टे; खेत पर किसान जहाँ पाये।
ख़ूनी एजेण्ट रात ही में; जबरन बस उन्हें पकड़ लाये॥
बच्चे उन के बिलखाते रहे; रमणियाँ घरों में चीख़ा कीं।
अन्धे बाप भी बिसूरा किये; मातायें छाती पीटा कीं॥
उन के उस करुणा-क्रन्दन पर; करुणा न उठी हत्यारों को।
उन बेगुनाह ख़ूनों पर कुछ; आया न रहम ख़ूँ ख़्वारों को॥
इस के बदले एजेण्टों को; कुछ उहदे नृपने दिलवाये।
उन दीनों का संहार हुआ; वे " राय बहादुर " कहलाये॥

नहीं कहेंगे हम यहाँ; इस श्रम का परिणाम।
अभी शेष है बीच में; दोनों का संग्राम॥

इस ओर ख़ुशी से जो सज्जन; देश के नाम पर आये हैं।
वे ही बल-वीर-धीर-योधा; लड़ने को आने पाये हैं॥

आने में जहां पड़ाव हुआ; तो अपना खाया जाता है ।
उस तरफ़ जहां पर ठहर गये; तो शहर लुटाया जाता है ॥
धर्मने लिया जो भी रस्ता; लोगोंकी रक्षा करते रहे ।
दुष्टने जहांको क़दम धरा; ग्रामीण विचारे डरते रहे ॥
धर्मने जहां डेरा डाला; तो प्रथम मुवाबज़ा चुकवाया ।
दुष्टने मुवाबज़ेकी ऐवज़; दीनोंपर डण्डा चटकाया ॥
धर्मके लिये द्वारे द्वारे; जी भर कर जय जयकार मचा ।
दुष्टके लिये रस्ते रस्ते; करुणा-मय हाहाकार मचा ॥

दोनों सेनायें पहुँच; ठहरीं जब मैदान ।
कौरवपतिके सामने; आये "व्यास" महान ॥
दुर्योधनने व्यासको; झुककर किया प्रणाम ।
आशिष देकर प्रेमसे; बोले करुणा-धाम ॥

"कौरव-पति ! तूने निष्कारण; क्यों घरमें आग लगाई है ? ।
अब भी सचेत हो जा राजन् !; अब बला शीशपर आई है ॥
भाईपर दया-भाव रख नृप !; निष्कारण क्रोध नहीं अच्छा ।
दे दे आधा हिस्सा उनको; यह वंश-विरोध नहीं अच्छा ॥"

दुर्योधन कहने लगा; महामानके साथ ।
"त्यागमूर्ति ! हे तपनिधे !; हे समदर्शी नाथ ! ॥

अब चाहे कुल-संहारण हो; और चाहे प्रलय यहींसे हो ।
थलका जल हो जलका थल हो;सूरजमें प्रभा जमींसे हो ॥
मिल जायें सिंह और मृगगण; चूहे बिल्लीमें यारी हो ।
हो जाये सुलह इन्द्र-बलिमें; पर यहां न सुलह हमारी हो ॥
जो होनी है होने दीजे; इसपर मत ज़ोर दीजियेगा ।
सेवक अब प्रणसे बेबस है; हे भगवन् ! क्षमा कीजियेगा ॥"

व्यासदेव कहने लगे;-"लिखा गया संयोग ।
तुझे हुआ निश्चय नृपति !; अंत समयका रोग ॥

पहिले हीसे ब्रह्माजीने; सबकी होनी बतलाई है।
भीष्मके प्राण लेनेको त्रिय; बन स्वयं "शिखण्डी" आई है॥
कर्णके प्राण लेनेके लिये; पार्थने वीर–तन धारा है।
तुमको सुरपुर दिखलानेको; दुश्मन भट भीम तुम्हारा है॥
बेशक होनी ही होनी है; इसमें न किसीका चारा है।
मरते तक तुम प्रण–बद्ध रहो; यह आशीर्वाद हमारा है।"

एक आह भर चल दिये; श्रीहरि-ध्यान लगाय।
यही हाल धृतराष्ट्रको; कहा नाथने जाय॥
यहां धर्मके शिबिरमें; हुआ एक दरबार।
भावी–कार्योंके लिये; होने लगा विचार॥

केशव बोले–"हे सभासदो !; लो कुरु-क्षेत्र तक आये हैं।
अब अन्तिम राय सोचनेको; सब वीर-धीर बुलवाये हैं॥
डट चुका हमारा भी दल बस; कौरव–पति वहां आ चुका है।
हे सभासदो! अब बतलाओ; सब लोगोंकी क्या इच्छा है ?॥"

गूँज उठी आवाज़ यह; "अब न करें विश्राम।
मुख्य काम है बस यही; करें घोर–संग्राम॥

क्षत्रिय होकर पाया अवसर; यह क्षत्रिय–धर्म निभानेका॥
भारतकी आन बढ़ानेका; माताका दूध बढ़ानेका॥
क्षत्रिय–शूरोंमें निर्भय हो; क्षत्रियपनके दिखलानेका।
शुभ–नाम अमर कर जानेका; बे मांगे मुक्ती पानेका॥
मरते मरते संग्राम मचे; यदुवर ! यह आश हमारी है।
पहिले यह कार्य धर्मका है; फिर साया नाथ ! तुम्हारी है॥

गायन

तुम्हारी हों साया हमको–दिखा दें यमका पुर यमको।
प्रभुका भुजबल पायके; कर दें शची कनीज़।

सूर्य, चन्द्र भी बांध दें; दुर्योधन क्या चीज़ ?॥
लगा दें भारतपर दमको–दिखा दें...
नाथका साथ रहे; दुष्टको अनाथ करें।
मोतके साथ भी; बेख़ोफ़ आज हाथ करें॥
मरें, या मार दें; बलिदान करें सर अपने।
धर्मपर प्राण तजें; और अमर गाथ करें॥
बधाई समझें मातमको–दिखा दें...
जो क्षत्रिय कर्तव्यपर; हो क्षत्रिय बलिदान।
धर्म रहे कीरति बढ़; पा जायें निर्बान॥
नमूना होगा आलमको–दिखा दें....

अभय–दानि कहने लगे;–"अभय रहो धर्मेश !।
एक तुम्हें ही प्राप्त हो; सारा भारत–देश॥
"शरणागत"–रक्षक नाम मेरा; तुमको तो नाम दिला दूँगा।
निश्चिन्त रहो, पृथ्वी पर से; कौरव-कुल नाम मिटा दूँगा॥
विजयी और यशी बना करके; दिलवा दें राज्य-छत्र तुमको।
हे धर्मराज ! इतना न करें; तो शपथ शम्भु की है हमको॥
यादवेन्द्र के वचन सुन; हर्षित हुआ समाज।
सब मिलकर कहने लगे; "जय जययादव-राज॥"
माधव बोले–"बस देर न हो; अब सेनाओं को सजवाओ।
प्रति-दल के झण्डे फहरा दो; और रण का बाजा बजवाओ॥
संग्राम की अब तैयारी हो; आराम की बात नहीं होगी।
अब जो कुछ भी होनी होगी; वह होगी, मगर वहीं होगी॥"
हुक्म द्वारिका–नाथका; पाकर सब नर-नाह।
तैयारी करने लगे; पहिन कुलाह–सनाह॥

सारे हथियार कसे तन पर; तुर्रे कलगियां लगीं बँधने।
जय "यादवेन्द्र" कहकर सब; रथ पर टोलियां लगीं चढ़ने॥
पाचों-भाई भी सज्जित हो; माता के आगे आते हैं।
दोनों हाथों को जोड़ वीर; चरणों में शीश झुकाते हैं॥
"माता, माता ! तेरे बारे; अब धर्म-युद्ध में जाते हैं।
आज्ञा दे; हर्षित हो पूज्ये !; तेरा ही दूध बजाते हैं॥
पुरुषों की आन बचाने को; भारत का मान बढ़ाने को।
तेरे सुकुमारे जाते हैं; जननी पर जान लड़ाने को॥
माथों पर मैया ! कर रख ले; आमोदसे आलिङ्गन कर ले।
इन रण-रङ्गी सुकुमारों के; मुखड़ों का माँ ! चुम्बन कर ले॥
दे लगा कीर्त्तिका तिलक मातु !; और जयकी माला पहिना दे।
हार्दिक-अशीश दे हे अम्बे !; गोदी में थोड़ा बिठला ले॥
जाते हैं वहां, जहां से फिर; आने का ठीक न दावा है।
हे माता ! रण मैदान है वह; जो दो मुट्ठी का काढा है॥
जो जीवित रहे, तो माँ फिर से; चरणों का दर्शन पायेंगे।
वरना अम्बे ! हँसते हँसते; बलि-वेदी पर चढ़ जायेंगे॥"

बेटों के यह वचन सुन; मातु उठी अकुलाय।
प्रेम-दूध बहने लगा; छाती लिया लगाय॥

धीरज धर, आँसू रोक वहीं; वह आर्य-मातु समझाती है।
"बेटा! इस जग में आने पर; फिर मौत सभी को आती है॥
लेकिन सड़ सड़ कर मर जाना; ऐसे तो कुत्ते मरते हैं।
वीरों का मरना वह समझो; जो मरकर भी कुछ करते हैं॥
अर्थात् बाद मरने के वे; वह बीज अमर कर जाते हैं।
जिनके फल उनकी सन्तानें; और देश-निवासी खाते हैं॥
जाओ बेटा ! उत्साह-सहित; अपनी मर्य्याद बचाने को।
दुष्टों का नाम मिटाने को; अपने हक़ पर लड़ जाने को॥

जाओ बेटा ! यह शिक्षा है; जीते जी पीठ न दिखलाना ।
या झण्डा जय का ले आना; या आर्य्य-भूमिपर चढ़ जाना ॥
गोपाल ! लो अपने हाथों में; यह पूँजी एक निधंनी की ।
जीवन-धन ! इसे सँभालो तुम; यह थाथी है ग़रीबिनी की ॥
इस भिखमंगिन के आधारे; ब्रज-बल्लभ ! आज सहारे हैं ।
हे माधव ! यह न भूल जाना; यह बुढ़ियाके सुकुमारे हैं ॥

गायन

ले जाओ गोपाल ! हमारे लाल ।
आंखों के तारे, सुकुमारे, प्राण प्यारे हमारे दुलारे ॥
टूटी फूटी कमरके सहारे, अन्धे घरके सितारे उजारे ।
मुझ वृद्धा के बाल–हमारे लाल; ले जाओ ॥
ले जाओ तुम्हें सौंपा । हो इनपै सदा रक्षा ॥
हो शरण में न कोई भी ख़तरा ।
जन "शैलेन्द्र" का ख्याल; रहे नन्दलाल, हमारे लाल ॥"

रोते रोते सुतों का; दिया हाथ में हाथ ।
धीरज देकर देवि से; बोले यादव–नाथ ॥

"फूफी यक़ीन रख; जैसी ही, तेरी थाथी ले जाऊँगा ।
उस थाथी को विजयी करके; बस वैसा ही लौटाऊँगा ॥
आरती उतारी माता ने; पाँचों बेटों ने चरण छुए ।
श्री यादवेन्द्र को बन्दन कर; पांचों रण–धीर सवार हुए ॥

इति उद्योग पर्व समाप्त ।

इति पूर्वार्ध ।

श्रीः ।

महाभारत-भीष्मपर्व ।

उत्तरार्द्ध.

श्रीगीतामृत.

सरल छन्दोबद्ध.

"आँख खोल देख पार्थ !; मैं ही मैं दिखाता हूँ ।"

लेखक-

काव्य-कला-भूषण अभिनयाचार्य्य कुशल-कवि,

श्री पं० गोविन्ददासजी विनीति, तालबेहट-झाँसी.

और

कविरत्न श्री पं० शैलेन्द्रकुमारजी वाजपेयी.

धर्मालङ्कार, कीर्तनकलानिधि,

आनन्द भवन, गणेशगंज, खण्डवा C.P.

मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास,

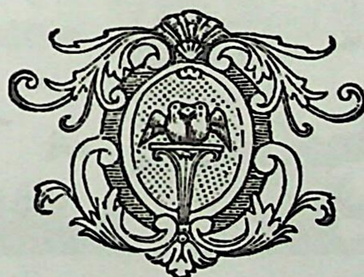
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

श्रीः ।

प्रार्थना.

माधव ! अब सोई साज धरो ।
गोपि--रहस--नट--वेष त्याग के सारथि--रूप करो ॥
जीवन-समर, मोह--दल कौरव, सब अधिकार हरो ।
ममता-मद-वश, द्रोह-द्वेषमें किहि किहि थल न परो ॥
न कोउ सहाय, न सूझ एकु मग, सकल नीति बिसरो ।
पकरहु पारथ वत् रथ कौ पन जो जन कर पकरो ॥
जन "शैलेन्द्र--विनीत" ! उबारो याही द्वार परो ।



श्रीः

❋ कथा-प्रारम्भ । ❋

कौरव-पति यह ख़बर सुन; चला स्व-सैन्य सजाय ।
कुरु-क्षेत्र में उभय-दल; क्षण में उतरे आय ॥
भीष्म-द्रोण को देखकर; वहीं युधिष्ठिर-राय ।
गजपर से नीचे उतर; चले पयादे पाय ॥



श्रीधर्मराज ।

श्री धर्म-नरेश अकेले ही; कौरव-दलमें धँस जाते हैं ।
इस ओर भीम, सहदेव, पार्थ; यह दशा देख अकुलाते हैं ॥

पार्थने कहा-" देखिये नाथ!; यह हाल है, अपने नायक का ।
यह नीति है, अपने नेताकी; यह बल है, खास सहायक का ॥
वे कहे सुने, वे समझे कुछ; रिपुके दलमें जा पहुँचे हैं ।
भगवन ! वे कौरव हत्यारे; छल-कपट-द्वेषके पुतले हैं ॥
जो वे धोखा दे कर इस दम; भाई को बांध लौट जायें ।
तो सारे अनुष्ठान अपने; आपही " इति श्री " दिखलायें ॥
जिनके पीछे सब जोड़-जोड़; प्राणों तक बाज़ी आई है ।
उनकी हालत पहिले ही से; सबसे उलटी दिखलाई है ॥"

दया-धाम कहने लगे-" हो अर्जुन ! अज्ञान ।
धर्मराज की तुम्हें भी; अभी नहीं पहिचान ॥

उनमें बस यही महा-गुण है; सारे जीवों पर श्रद्धा है ।
नीति भी रहे, धर्म भी रहे; यह धर्मराज की इच्छा है ॥
इससे उनकी चिन्ता न करो; द्रोणादिकसे मिल आने दो ।
धर्म है, धर्म की रक्षा को; निर्भीक अकेला जाने दो ॥"

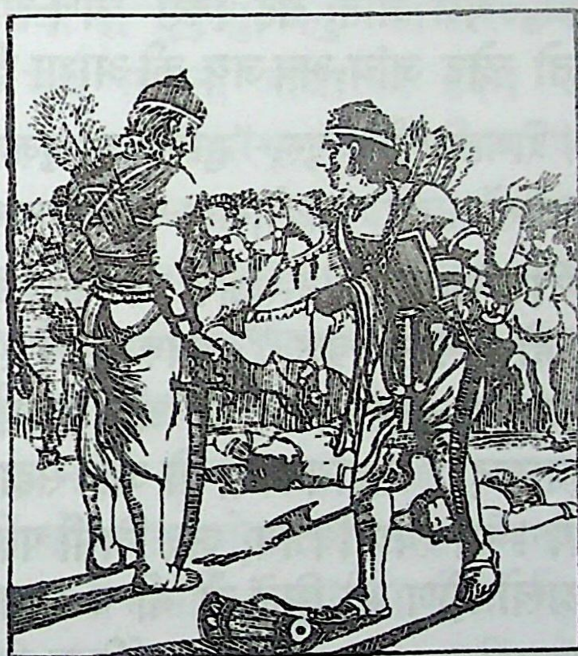
कृष्ण-पार्थमें इस तरह; छिड़ा यहाँ संवाद ।
कौरव-दलमें भी हुआ; इस पर वाद-विवाद ॥

" ओहो ! यह नई बात कैसी !; जो वीर युद्धमें आया है ।
उसने हाथी को छोड़ स्वयं; क्यों दीन-वेष दिखलाया है? ॥
सेनाओंको बटोर कर जो; समता का दावा करता है ।
ज़ाहिर होता है-शायद अब; सैन्य को देख कर डरता है ॥
यह दल-बल देख, उसे कोई; जब मिली न राह भागने को ।
तो पा-प्यादा ही चल दौड़ा; बेचारा क्षमा मांगने को ॥"

" भीष्म-पिता " के निकट जब; पहुँचे पाण्डव-राय ।
छोड़ दिया रथ भीष्मने; छाती लिया लगाय ॥

चरणों को छुआ युधिष्ठिरने; भीष्मने आशीर्वाद दिया।
धर्मज बोले—क्या इसीलिये; हे पूज्य! हमें प्रतिपाल किया?॥
प्रभु को हम दोनों थे समान; दोनों को धर्म सिखाना था।
हे पूज्य! बालकोंके आगे; लड़ने न आपको आना था॥
जब आप स्वयं ही आये हैं;तो क्या है? बस संहार है सब।
सेनायें-अस्त्र-शस्त्र सारे; प्रभुके आगे बेकार है सब॥

कहा "भीष्म" ने-" मैं नहीं; जीत-हार-आधार।
जय--दाता संसारमें; हैं वे जगदाधार॥



भीष्मपितामह और धर्मराज।

उन शक्ति-सिन्धु-प्रण-पालक का;जब तुमको पूर्ण सहारा है।
तो निश्चय विजय तुम्हें होगी; यह आशीर्वाद हमारा है॥

इसलिये उन्हीं की इच्छा पर; यह धर्म-युद्ध हो जाने दो ।
तुम धर्म निभाओ, धर्म-पुत्र !; मुझको भी धर्म निभाने दो ॥"

" धर्मराज " गमनित हुए; पाकर यह आशीश ।
" द्रोण " गुरुके चरण पर; रक्खा नृपने शीश ॥

नृपसे " द्रोणाचार्य्य " ने; कहा सहित आह्लाद ।
" तुमको " यदु-वर " सर्वदा; देवें प्रेम-प्रसाद ॥

"धर्म" नेकहा-"हे धर्मनिष्ठ !; जब खुद श्रीमान् पधारे हैं ।
तब साफ़ समझमें आता है; भगवन ! दुर्भाग्य हमारे हैं ॥
गुरुसे लड़ कर, चेले जीतें; यह निरी व्यर्थ-अभिलाषा है ।
आज्ञा दीजे, तो लौट जांय; अब जय की आशा ही क्या है?॥"

बोले "द्रोणाचार्य्य" गुरु;-"सुनिये धर्म सुजान ! ।
तुमने वशमें कर लिये; माया-पति-भगवान ॥

जिनके घरमें "चिन्ता-मणि" है; राजन् ! उनको चिन्ता कैसी ?।
जिनके द्वारे हो " कल्प-वृक्ष "; उनको कोई शंका कैसी ?॥
हो एक भक्ति का अवलम्बन; फिर और उपाय रहें, न रहें ।
यदि " यादवचन्द " सहायक हैं; तो और सहाय रहें, न रहें॥
वे विजय-रूप ! या स्वयं विजय; जब जिसी पक्षमें हो जायें ।
मैं क्या ? लाखों द्रोण भी मिलें; तो भी न सामना करपायें॥
भाग्य ही तुम्हारा अच्छा है; जो भावी-नाथ सहारे हैं ।
है दया, दया-मय की तुम पर; तो तीनों लोक तुम्हारे हैं ॥"

" कृपाचार्य्य " ने भी दिया; नृप को आशीर्वाद ।
लौटे धर्म-नरेश तब; छाया एक विवाद ॥

भीष्म और द्रोण की जिह्वासे;यह शब्द यकायक निकल पड़े।
"सुन लें सब लोग ध्यान देकर,जो रणके लिये महीप खड़े ॥
इस धर्म-युद्धमें हम सब को; लड़कर जीवन ही खोना है ।
कौरव-दल-पद-तल होना है; धर्म को विजय-यश होना है ॥
इस लिये हमारी सम्मति है; जो भी मरनेसे दहलाये ।
वह इसी समय श्रीयादवेन्द्र;माधव की शरण चला जाये ॥"

इतना सुना "युयुत्सु" ने; पड़ा चरण में धाय ।
वासुदेव-पद-कमल-रज; ली माथ पर चढ़ाय ॥

सेना समेत ज्यों ही"युयुत्सु; प्रभु की शरणागत आया है ।
समदर्शी ने भाई समान; राजा को हृदय लगाया है ॥
यह दशा देखकर दुर्योधन;रथ त्याग"भीष्म"पर आया है ।
बोला सक्रोध—"क्यों महराज !; यह कैसा स्वाँग रचाया है ॥
शत्रु की बड़ाई सुन कर सब; सेना हत-तेज हमारी है ।
दुश्मन को"जय"का तिलक मिले;यह इच्छा साफ़ तुम्हारी है॥
मेरे हितकारी बन करके; यह काम बनाने आये हो ।
अथवा दल के भेदी बनकर; कुरु-पक्ष घटाने आये हो ॥
अपने मित्रों को शत्रु ओर; इस तरह भेजते जाओगे ।
दुश्मन को सबल बनाओगे; मुझ को नीचा दिखलाओगे ॥
अपने दल को कमज़ोर करे; यह धर्म नहीं सेनापति का ।
सेनाओं की हिम्मत तोड़े; यह कर्म नहीं सेनापति का ॥"

भीष्म पितामह ने कहा—"तुम्हें नहीं कुछ ज्ञात ।
सेनापति की नीति में; है यह पहिली बात ॥

जो कायर हैं, वे लड़ने से; पहिले ही अगर निकल जायें।
तो हम अपनी सेना में फिर; सच्चा वीरत्व बढ़ा पायें॥
जो दुश्मन का बल ही सुन कर; इतने ज्यादा घबराते हैं।
वे खुद ही निकल भागते हैं; दस पाँच और ले जाते हैं॥
जब आतीं बाणों की झड़ियाँ; तब यह "युयुत्सु" पिछला जाता।
इस की कायरता देख देख; सारा दल कायर दिखलाता॥
इस लिये निकल जाना उसका; हम को भविष्यमें अच्छा है।
जो गीदड़ थे सो निकल चुके; अब दल सच्चे सिंहों का है॥
क्या सोच रहेहो? कौरव-पति!; वह क्या? गर सभी चले जायें।
जो आज पैज से डट जाऊँ; तो कृष्ण न समता में आयें॥
रोज़ाना दस हज़ार रथ तो; साधारणतः संहार करूँ।
अपने प्रणको प्रणसे रक्खूं; केशव तक का प्रण टार सकूँ॥"

दुर्योधन कह ने लगा—"है कोई सरदार?।
अट्ठारह अक्षौहणी; जो मारे यकबार॥"

"भीष्म" ने कहा-"अये दुर्योधन!; यदि मैं निज तेजसँभार करूँ।
तो दोनों दल दल-मल डालूँ; एक ही रोज़ संहार करूँ॥
जो "द्रोण" क्रोध में आ जायें; तो तीन रोज़ में चूर्ण करें।
धनुधारी "कर्ण" अगर चाहें; तो पाँच रोज़ में पूर्ण करें॥
चाहिये "द्रोणि" को तीन घड़ी; बाकी दिन भर बेकारी है।
"अर्जुन" यदि अपने में न रहे; तो पल को सेना सारी है॥"
दुर्योधन बोला—"अर्जुन का; जब इतना बल बतलाते हो।
तो नीची नज़रों लौट चलो; किस्सा क्यों व्यर्थ बढ़ाते हो?॥"

कहा भीष्म ने—"सुन नृपति !; यह है असली हाल ।
किन्तु न आयेगा उसे; इतना कभी उबाल ॥

जितना भी काम जिसे पहिले; दे रक्खा भाग्य-विधाता ने ।
उतना ही बल, उतनी शक्ती; आया है, वह भी दिखलाने ॥
अपनी शक्ती से पृथ्वी को; क्षण भरमें उलटा दिखलाते ।
रावण या कंस आदि निश्चर; घर बैठे ही मारे जाते ॥
लेकिन शिक्षा कैसे मिलती !; भक्त-जन कौन लीला गाते ? ।
जो लौकिक-चरित दिखाने को; माया-पति आप नहीं आते ॥
देखो—जो कुछ भी होनी है—सब; इच्छा है इच्छा—धर की ।
श्री कृष्ण—चरित की गाथा में; अन्तिम घटना है द्वापर की ॥
इसलिये वही निर्वाह करूँ; जैसा भविष्य—फल तेरा है ।
दस दिन तक तुझे बचाऊँगा; इतने तक जिम्मा मेरा है ॥"

"भीष्म पिता" के शब्द सुन; बिहँसा "कौरव-राय ।"
एवं दोनों ओर से; धौंसा दिया बजाय ॥

ज्योंही धौंसे पर चोट पड़ी; "भीष्म" ने शंख की ध्वनि भर दी ।
त्यों ही "केशव" ने "पञ्चजन्य"; लेकर पृथ्वी गुञ्जित कर दी ॥
"अर्जुन" ने "देवदत्त" फूँका; "विजयी" सद्धर्म—आगरे ने ।
फिर "पौण्ड्र-शंख" की ध्वनि भरदी; बल-बंका-"भीम" बाँकुरे ने ॥
फूँका "सुघोष" जब "नकुल" बीर; "सहदेवी-मणि-पुष्पक" बाजा ।
अपने अपने शंखों को ले; तब लगे बजाने सब राजा ॥
इस ओर बाजने लगे पणव; गो—मुखा, ढोल, भेरी, आनक ।
उस ओर अनगनित शंखों की; ध्वनि गूँज उठी नभ-मण्डल तक ॥

गूँज रहा था जिस समय; भूमि तथा आकाश।
उसी समय कहने लगे; अर्जुन--"जगन्निवास !!।



सारथी वेशमें श्रीकृष्ण।

मेरा रथ दोनों दलों मध्य; कुछ क्षणको स्थिर कीजगा।
कुल-पूज्यों तथा बन्धुओंके; दर्शन कर लेने दीजगा॥
बाणोंसे भरनेके पहिले; आंखोंसे वह स्वरूप भर लूँ।
वह अग्नी उठनेसे पहिले; कुछ आत्माको ठण्डी कर लूँ॥
मिटनेवाला है, बृहद्र-वंश; भावी स्पष्ट दिखाती है।
कुलके दर्शनको एक बार; जन की छाती ललचाती है॥
यद्यपि दुर्योधन-आदि कई; प्रत्यक्ष-रूप निश्वरके हैं।
तो भी हे नाथ ! सोचता हूं; आखिरको अपने घरके हैं॥

वह सुघड़ सजीली शक्लें कल; मुर्दें बनकर दिखलायेंगी।
हे प्रभु ! तो मेरी इच्छायें; मनकी मनमें रह जायेंगी॥

भक्त पार्थकी विनयपर; द्रवित हुए करुणेश।
रास खींचकर बीचमें; जा पहुंचे अखिलेश॥

प्रभु बोले—"यह हैं शत्रु तेरे; इनको शर से संहार सखा !।
यह सब कालके निवाले हैं; जी भरके इन्हें निहार सखा !॥"

भीष्मपिता इत्यादि—पर; ज्योंही पड़ी निगाह।
त्योंही ढीला पड़ गया; जकड़ा हुआ सनाह॥

बोले कांपकर पार्थ—"भगवन् !; यह क्या मुझको दिखलाता है?
क्यों देह मेरी थर्राती है ?; और मुँह क्यों सूखा जाता है ?॥
रग रग ढीली पड़ चली नाथ !; रोमोंमें कम्पन आता है।
यक दबी आग सी भभक रही; धन्वा भी फिसला जाता है॥
इनके चरणोंमें गिरनेको; मेरा मन लहरें लेता है।
धन्वा सँभालते ही कोई; अन्दरसे धक्का देता है॥
यह मामा हैं, यह चाचा हैं; यह ताऊ हैं, यह भैया हैं।
यह भ्राताओंके छैया हैं; हा ! यह साथके खिलैया हैं॥
ओ भैया ! इन्हें मारकर मैं; किसका भैया कहलाऊँगा ?।
सारे कुलमें हाहा ! केशव !; क्या मैं ही मैं रहजाऊँगा ?॥
जिनके वास्ते राज्य—वैभव; धन—सम्पति जोड़ी जाती है।
जिनके साथमें ग़रीबी भी; सुख बनकर शांति बढ़ाती है॥
वे खड़े हैं सब मेरे आगे; अपना बलिदान चढ़ानेको।
केशव ! क्यों मुझको लाये हो ?; कुलकी हत्या करवानेको॥
जिनके हों मुझसे वीर-बन्धु; वे मारे जायँ अनाथोंसे।
हा ! हा ! कुलगुरुओंकी हत्या, और दुष्ट पार्थके हाथोंसे॥

उनपर क्योंकर धन्वा खींचूँ ? जिनके चरणोंको पूजा है ।
क्षत्रीत्व रखूँ, या धर्म रखूँ; हे नाथ ! कहो—आज्ञा क्या है ? ॥
जब वंश नाश हो जायेगा; तो विधवायें रह जायेंगी ।
कुलकी मर्य्याद डुबायेंगीं; तरुणी व्यभिचार बढ़ायेंगी ॥
आचार जहां हो गया नष्ट; बस वहीं भ्रष्ट सन्तान हुई ।
कुल-बलिदानीके साथ साथ; सारी इज्जत बलिदान हुई ॥
बस महाराज ! हो चुका युद्ध; आगे मत कुछ भी कहियेगा ।
भगवान ! चित्त घबराता है; रथको बाहर ले चलियेगा ॥"

धनुष फेंककर पार्थ जब; बैठा दीन मलीन ।
"श्रीमुख" से उस समयपर; निकले वचन प्रवीन ॥



अर्जुनका विषाद ।

"अये पार्थ ! स्वार्थकी गाथामें; यह परमार्थ-मय दीठ कैसी? ।
अग्नीकी एवज़ हिम कैसी ?; सीनेकी जगह पीठ कैसी ? ॥
वह बाना महा–धनुर्धरका; वह दावा महा–वीरताका ।
वह साहस महा–प्रतापीका; !फिर यह प्रलाप कायरताका ॥
अपकीर्ति तथा यम-पुर-दाता; यह भूत कहांसे आया ? चढ़ ।
अये पार्थ ! अनाड़ी-पन न दिखा; धन्वा ले और अगाड़ी बढ़ ॥"

घिघिया कर जन पार्थने; कहे नाथसे बैन ।
"बस अब रणके वास्ते; कहें न करुणा–ऐन ॥

भिक्षा मांगूं मज़दूर बनूँ; मर जाऊँ भूखों प्यासोंसे ।
पर भगवन् ! मुझे बचा लो अब; इन खूनी भोग विलासोंसे ॥
यह भी न कहा जा सकता है; किसके हाथों जय आयेगी ।
किसका झण्डा फहरायेगा; किसकी मिट्टी रह जायेगी ॥
माना, कुल हत्याके पीछे; त्रैलोक्य-विजय मिल जायेगी ।
लेकिन गुरु-स्वजन-मित्र-हत्या; सिरपर चढ़कर चिल्लायेगी ॥
हो गया "धर्म-च्युत" जन, जन-धन!; हे अच्युत! पार लगाइयेगा ।
मैं चेला हूँ–यह समझ नाथ !; कुछ उचित-मार्ग बतलाइयेगा ॥"

"योगिराज" ने तब दिया; "गीता" का आख्यान ।
महामान्य जिस ग्रन्थको; कहते हैं विद्वान ॥

"माया" बनकर मुक्ती देना; जैसे कि लक्ष्य था "सीता" का ।
त्यागमें वीरता भरे हुए; त्यों ही विधान है गीताका ॥
साधू भी या संन्यासी भी; योगी भी और तपस्वी भी ।
सब लोग इसे अपनाते हैं; देशी भी और विदेशी भी ॥
भारत में अन्तिम–समय इसे; आचार्य्य लोग सिखलाते हैं ।
लेकिन वे पाठ–मात्र करके; तत्क्षण गौ–दान कराते हैं ॥

यह ग़लती है, आचार्य्यों की; गीता का यह उद्देश नहीं ।
असली तत्त्व से शून्य उसका; एक भी कहीं उपदेश नहीं ॥
इसलिये पाठ के साथ साथ; अर्थ भी बताना अच्छा है ।
मरने से प्रथम आत्मा को; निर्मोह बनाना अच्छा है ॥
"निर्मोही" यह शरीर तजकर; निश्चय ब्रह्ममें समायेगा ।
यदि गीताजी की शिक्षासे; वह आत्म-त्याग दिखलायेगा ॥
क्यों कर यह ऐसा होता है ?; यह आगे सब समझाऊँगा ।
श्रीगीता जी की शिक्षा पर; दो शब्द यहां कह जाऊँगा ॥
श्री गीता जी नव-युवकों को; सच्चा नव-युवक बनाती है ।
वैराग्य-मार्ग के साथ साथ; शुभ-कर्म-योग सिखलाती है ॥
विभ्रान्ति-जनित संदेहों को; जड़-मूल-सहित विनसाती है ।
निष्पक्ष-भाव से पग, पग पर;जीवन का मार्ग दिखाती है ॥
इसलिये हमारे नव-जवान; भाई इतना ही किया करें ।
कम से कम रोज़ नहा धोकर; अध्याय दूसरा जपा करें ॥
यह श्रीमुखका वचनामृत है; जो कर्म-योग सिखलायेगा ।
जो उपदेशों पर अमल किया; तो ब्रह्म-रूप दिखलायेगा ॥
सौभाग्य है, इस भारत-भू का;जिसमें यह सुधा बरसता है ।
जिसकी तलछट की बूँदों को; सारा संसार तरसता है ॥
हा शोक ! अमृत है हाथों में; और अमर न हम होने पाये ।
आश्चर्य ! सूर्य्य को पाकर भी; हमको अन्धेरा दिखलाये ॥
कारण केवल इतना ही है; हम अपने ग्रन्थ न छानते हैं ।
सञ्जीवन अपने हाथमें है; पर उसका मूल्य न जानते हैं ॥
श्रोतागण ! इस गीता-द्वारा; अनगणितोंका उपकार हुआ ।
इस पतित-उधारण के हाथों; पतितों का भी उद्धार हुआ ॥

इसलिये आप यदि आर्य्य; तथा हिन्दुत्वका दावा करते हो।
तो मेरी यही प्रार्थना है; गीता के सच्चे प्रेमी हो ॥"

अस्तु अन्त में कहूँगा; थोड़ा सा उपदेश।
जो अर्जुन को दे रहे; भारत में योगेश ॥

२ कर्मयोग-

योगिराज-

अर्जुन ! तू तो पण्डित की सी; बातों पर बातें झाड़ रहा।
अबला की तरह रुदन करके; कानों के पर्दे फाड़ रहा ॥
जो सच्चे पण्डित होते हैं; वे ऐसे ध्यान न लाते हैं।
सृष्टि के सकल सम्बन्धों को; विद्वान "अशोच्य" बताते हैं ॥
है मर्त्य-देह, देही अमर्त्य; देह ही जन्म भी लेती है।
आत्मा अजन्म, अक्षय, अवृद्धि; नित्य-सम दिखाई देती है ॥
तू जिनको यों चिल्लाता है; यह भाई चाचा मेरे हैं।
वास्तव विचार करके बतला; कितने सम्बन्धी तेरे हैं ॥
यदि तेरे पिता आदि पूर्वज; तेरे सम्बन्धी कहलाते।
तो तुझे छोड़कर इस प्रकार; क्यों काया त्याग चले जाते? ॥
यह चाचा, मामा, बन्धु पार्थ !; पहिले थे, हैं, फिर भी होंगे।
जिस दिन कपड़े फट जायेंगे; तब फिरसे नये सभी होंगे।

जिस प्रकार नर जीर्ण-पट; बदल नये कर लेय।
वैसे ही जीवात्मा ; काया भी तज देय ॥

इस पञ्च-तत्त्व के पञ्जर में; अपना किसको बतलाता है ?।
अर्जुन ! उसका नाम तो बता; जिससे तुझको कुछ नाता है॥
भौतिक-सम्बन्ध टूटने पर; भूतों में भूत समायेंगे।
सच्चिदानन्द के सूक्ष्म-अंश; अंशों ही में मिल जायेंगे ॥

यदि तन को अपना समझा है; तो नश्वर है, मल-राशी है ।
यदि आत्मासे कुछ ममता हो; तो अक्षय है, अविनाशी है ॥
तन मिट्टी में मिल जाना है; आत्मा ब्रह्म में समाना है ।
तू मार, न मार, एक दिन सब; बे मारे ही मर जाना है ॥
जो गुण हैं, ब्रह्म अमर-अजके; वे गुण हैं, आत्माके अर्जुन ! ।
जो आत्मा एक कीट का है; वह है महात्मा के अर्जुन ! ॥
उस पर न अस्त्र का असर पड़े; एवं अग्नि भी न जला सके ।
ताप से न वह सन्तप्त रहे; वायु भी न उसको सुखा सके ॥
इस सृष्टी में क्षण क्षण पर जो; हो रहा मरण और जीवनहै ।
यह आवागमन सुःख या दुख; पस कर्म-मात्रका बंधन है ॥

उस ही बन्धन-मात्र को; समझ पार्थ ! कर्त्तव्य ।
कर्त्तव्यों का फलाफल; बनता है भवितव्य ॥

बस उसी कर्म के बन्धन से; तू क्षत्रिय बनकर आया है ।
क्षत्रिय-कर्त्तव्य निभाने का; खुद ही यह अवसर आया है ॥
"कर्त्तव्य" जिसे जो कुछ भी है; यदि वह सर्वथा निभाता है ।
नीच से नीच भी कर्म रहे; फिर भी सुकीर्त्ति ही पाता है ॥
इसलिये वीर-क्षत्रिय-पन में; यों ही न कलंक लगा अर्जुन ! ।
क्षत्रिय-कर्त्तव्य निभा अर्जुन ! धन्वा और बाण उठा अर्जुन !॥
वीरों को धर्म-युद्ध उत्तम; कायर को डरना अच्छा है ।
क्षत्रिय पन में कायर हो तो; जीने से मरना अच्छा है ॥

हाँ, अब इतनी बात है; सुख, दुख, जय या हार ।
क्या होगा ?-इस विषय पर, कर मत हृदय विचार ॥

"मैं कर्त्ता हूँ-मैं भोगूँगा"-यह सोच कर्म जो करता है ।
उस के फल अच्छे और बुरे; निश्चय वह प्राणी भरता है ॥

जो इच्छा-रहित-कर्म कर के; "कर्त्ता" न आप को कहता है ।
वह इन द्वन्द्वों के फन्दों से; मुक्त ही सर्वथा रहता है ॥
निष्काम-कर्म-योगी बनकर; क्षत्रिय पनको दिखला अर्जुन ! ।
क्षत्रिय-कुल में होकर भटवर !; माँ का मत दूध लजा अर्जुन !॥

गायन

क्षत्रिय होकर रण से भागे; ऐसे क्षत्रिय को धिक्कार ।
क्षत्रिय हो रण से डर पावे; तो नहिं असली बिन्दु कहावे;
किसी नीच का अंश दिखावे; बेच खाय तलवार । क्षत्रिय...
सड़ सड़ के घरमें मर जावे; आन बानपर जोश न लावे;
दुश्मन के आगे झुक जावे; मर्द नहीं, वह नारि । क्षत्रिय....
देश–धर्म के रक्षक होकर; बैठ जाँय मर्य्यादा खोकर;
कहती हैं अबलायें रोकर–मरें भीरु–भर्त्तार । क्षत्रिय.......
"शूरसिंहजू" के पद पावें; तोप तेग को बाँध दिखावें;
चूहा देख काँपते जावें; नाम वीर सरदार । क्षत्रिय............
बहिनो ! वीर पूत उपजाओ; छुटपन से वीरत्व सिखाओ;
जन "शैलेन्द्र" वीरबन जाओ; करो देश उद्धार । क्षत्रिय.......

कहा पार्थ ने–"दयामय !; कहिये वह आख्यान ।
जिस से "स्थित प्रज्ञ" की; होती है पहिचान ॥

योगिराज–

मानसिक–कामना का त्यागी; आत्मानन्द में समाता है ।
दुखसे न दुखी, सुख की न चाह; गतराग, क्रोध-भय इच्छा है ॥
शुभ-अशुभ एक, हर्ष, दुख एक; इन्द्रिय-जित, योग रमाता है ।
मुझमें तन्मय, मेरा अनन्य; पस "समाधिस्थ" कहलाता है ॥

यह इन्द्रिय दमन न सहज समझ;यह महा कठिन व्रत होता है।
जबतक विषयोंका चिन्तन है;तब तक न विषय-विष खोताहै ॥
"आसक्ति" विषयके चिन्तन से;आसक्ति "कामना" लाती है।
कामना "क्रोध" का कारण है;क्रोध से "बुद्धि" हर जाती है ॥
बुद्धि के नाश हो जाने पर; भ्रान्ति से ज्ञान मिट जाता है ।
जिस का कि ज्ञान हो चुका नाश;वह जीवित मृतक कहाता है ॥

जिस का इन्द्रिय-दमनकर; है मन पर अधिकार ।
स-सुख चलाता है वही; सांसारिक व्यवहार ॥

इस से प्रसन्न मन रहता है; सब दुःख निवारण होता है ।
पस यही नियम स्थिरता का; हे अर्जुन ! कारण होता है ॥
समता के बिना विवेक नहीं; भक्ति भी नहीं, अविवेक जहाँ ।
भक्ति के बिना शान्ती कैसी?,शान्ति ही नहीं तो सुःख कहाँ?॥
इन्द्रिय-अनुगामी-मन नर को; इच्छा चारी भटकाता है ।
जो इन्द्रिय-वश करलेता है; वह "समाधिस्थ" बन जाता है ॥
जिन विषयोंमें दिन मान मनुज; आसक्ति प्रेम दरशाते हैं ।
योगी जन उनको रात्रि समझ; अपने को बिलग बनाते हैं ॥

इच्छा-ममता-अहं-गत; "स्थितप्रज्ञ" बखान ।
ऐसा प्राणी है सखे !; "जीवन्मुक्त" समान ॥

३-कर्म योग ।

अर्जुन-

श्री महाराज ! कर्मसे आप; समता-गति श्रेष्ठ बताते हैं ।
फिर घोर-कर्म की शिक्षा दे; द्विविधामें मुझे फँसाते हैं ॥

योगिराज–

अर्जुन ! यह शंका-विषय नहीं; ध्यानोचित मर्म कहाया है ।
मैंने सांख्य और योगियों का; तुझको वर्णन समझाया है ॥
जैसे केवल ऊपरी साज; कोई सच्चा अनुराग नहीं ।
वैसे ही वाह्य-कर्म तजना; वास्तविक कर्म का त्याग नहीं ॥
प्राणी को प्रकृति-वश्य समझो; कर्म-गत न वह तन-धारी है ।
ऊपरी त्याग, मनसे चिन्तन; ऐसा नर मिथ्याचारी है ॥

गो-जित तथा असंग बन; नियत-कर्म-कर्त्तार ।
उत्तम है निष्कर्मसे; प्रकृति-सिद्ध व्यापार ॥

यज्ञार्थ कर्म करने वाला; बन्धनसे मुक्त कहाता है ।
देव भी तुष्ट हो जाते हैं; पाप भी नाश हो जाता है ॥
अन्नसे भूत उत्पन्न समझ; वर्षासे अन्न उपजता है ।
वर्षा यज्ञोंसे होती है; यज्ञ ही कर्म कहलाता है ॥
हे प्रकृति-जन्य कर्मत्व पार्थ !; प्रकृती का कर्त्ता ईश्वर है ।
अर्थात् यज्ञके कर्मोंमें; व्यापक वह ब्रह्म अगोचर है ॥
इस भांति प्रवर्तित चक्रों का; जो नहीं अनुकरण करता है ।
वह इन्द्रिय-भोगी पापी है; सर्वथा पाप-घट भरता है ॥

आत्म-रमण, सन्तुष्ट नर; कर्म करे निःस्वार्थ ।
बन असंग कर कर्म तू; पायेगा परमार्थ ॥

श्रेष्ठ जन कर्म जो करते हैं; दूसरे उसे अपनाते हैं ।
उत्तम पुरुषोंके मारग पर; सर्वथा अन्य जन जाते हैं ॥
बतला अर्जुन ! मुझको जगमें; क्या करने की आवश्यकता है?।
जो प्राप्त न मुझे हो सका हो; सृष्टीमें वह पदार्थ क्या है?॥

फिर भी मैं कर्म कर रहा हूँ; इस लिये कि मैं पथ-दर्शक हूँ।
यदि अकर्मण्य मैं बन जाऊँ; तो सृष्टी "अकर्मण्य" कर दूँ॥
इससे सु-व्यवस्था बिगड़ेगी; सब लोक नष्ट हो सकते हैं।
इसलिये "जनक" से ज्ञानी-जन; लोकके लिये कृति करते हैं॥
"अज्ञानी" कर्त्ता मान स्वयं; कर्म को "अहम्" से करताहै।
"गुण बर्त्त रहे हैं गुणमें ही" ज्ञानी विचार यह धरता है॥
करने धरने की स्थिति में; ज्ञानी या मूढ बराबर है।
केवल दोनोंके कर्मों में; भावना-मात्र का आन्तर है॥
प्राकृतिक-गुणोंमें मग्न-जीव; आसक्त रहें, तो रहने दे।
उनको विचलित मत कर अर्जुन !; सुख, दुखके धक्के सहनेदे॥

आत्म-वृत्ति रख, मुझे ही; अर्पण कर सब काम।
तज ममत्व, आसक्ति-गति; कर अर्जुन ! संग्राम॥

श्रद्धा पूर्वक जो द्वेष त्याग; मेरा यह मत अपनाते हैं।
वे हो जाते हैं मुक्त पार्थ !; अन्यथा नष्ट हो जाते हैं॥
अपने अपने विषयानुसार; इन्द्रियां द्वन्द्व की द्योतक हैं।
उनके पक्षमें न हो अर्जुन ! वह कर्म-मार्गमें बाधक हैं॥
अपने स्वभावसे कर्मोंमें; लग रहे जगतके सब प्राणी।
कर्म तो सभी को करना है; ज्ञानी हो, चाहे अज्ञानी॥
यदि अपना धर्म विगुण भी हो; तो भी वह करना अच्छा है।
पर-धर्म सुलभ भी भय-प्रद है; निज-धर्ममें मरना अच्छा है॥

अर्जुन—

नाथ ! बिला इच्छा कहीं; बन आता है पाप।
उसका प्रेरक कौन है !; जीवात्मा, या आप॥

योगिराज—

अर्जुन ! इनका प्रेरक अपना; बस काम; क्रोध कहलाता है ।
जो रजोगुणोंसे होता है; जीवों को नाच नचाता है ॥
धूम्रसे अग्नि, मैलसे कांच; झिल्लीमें गर्भ समाया है ।
वैसे ही काम क्रोध हीने; आत्मिक-विज्ञान छिपाया है ॥
यह काम न कभी तृप्त होगा; इससे ही नर अज्ञान हैं बस ।
इन्द्रियां, बुद्धि, मन यही तीन; इस पापीके स्थान हैं बस ॥
इनके ही द्वारा काम, क्रोध, बेसुधि जीवको बनाते हैं ।
संसार उन्हींने जीता है; जो इन पर जय पा जाते हैं ॥
इन्द्रियां सूक्ष्म, उनसे विशेष; यह बुद्धि सूक्ष्म पद पाती है ।
बुद्धिसे विशेष सूक्ष्मतर है; पस वह "आत्मा" कहलाती है ॥

अस्तु आत्म पहिचानकर; कर मनपर अधिकार ।
अर्जुन ! दुर्जय-महा-खल; काम—शत्रु संहार ॥

४-ज्ञान—कर्म—संन्यास योग ।

योगिराज—

अर्जुन ! यह ज्ञान-योग मैंने; पहिले सूर्य्यको सुनाया था ।
सूर्य्यने सुनाया था मनुको; इक्ष्वाकुसे मनुने गाया था ॥
कालान्तरसे वह लुप्त हुआ; तुझको फिर योग सुनाया है ।
कारण इस गोप्य-ज्ञान-मतिका; अधिकारी तुझको पाया है ॥

अर्जुन—

हे श्याम ! आप तो आज हुए; मनु आदि प्रथम हो आये हैं ।
फिर उन्हें कहां, किस भांति देव!; यह·परम·तत्त्व समझाये हैं ?॥

योगिराज-

अर्जुन ! मेरे तेरे अबतक; कितने ही जन्म हो चुके हैं ।
यह ज्ञान अभी है तुझे नहीं; हम ही केवल यह जानते हैं ॥
यद्यपि अजन्म अविनाशी हूँ; भूतोंका आश्रय-दाता हूँ ।
फिर भी अपनी माया-द्वारा; यह लीला सदा रचाता हूँ ॥
जब जब पड़ता है धर्म मन्द; एवं अधर्म बढ़ जाता है ।
तब तब यह "केशव" रूप धार; उद्धार-मात्रको आता है ॥
सन्तोंका दुख दुष्टोंको हर; धर्मका मार्ग बतलाता है ।
जो यह रहस्य पा जाता है; वह जन्म-मुक्त हो जाता है ॥

राग-क्रोध-भय रहित हो; करें हमारा ध्यान ।
मम आश्रित ज्ञानी तपी; पाते हैं निर्वान ॥

जो जैसा आश्रय लेता है; वह वैसा ही फल पाता है ।
फल-प्रेमीको देवों द्वारा; कर्म-फल यहीं मिल जाता है ॥
गुण तथा कर्मसे चार वर्ण; मैंने हे पार्थ ! बनाये हैं ।
पर मुझे अकर्ता-ज्ञाता ही; कर्मोंसे मुक्त कहाये हैं ॥

अर्जुन ! जगमें कर्मकी; गति है सबसे गूढ़ ।
बुद्धिमान भी यहां हैं; "किम् कर्त्तव्य विमूढ़" ॥

कर्मोंमें जो अकर्म देखे; कर्म ही अकर्म बनाता है ।
वह सकल कर्म-कर्त्ता भी है; फिर भी मतिमान कहाता है ॥
कामना तथा सङ्कल्प-रहित; कृति-कर्त्ता सच्चा पण्डित है ।
फल-त्यागी,तुष्ट,अनाश्रित है; आशा-विहीन इन्द्रिय-जित है ॥
संग्रह-त्यागी, तनु-व्यापारी; निर्द्वन्द्व, अद्वेष, अबन्धन है ।
आसक्ति-रहित, ज्ञानातम, मुक्त; उपकारी ही निर्दूषण है ॥

अर्पण, हवि, अग्नि, हवन-कर्त्ता; जो ब्रह्म-रूप ही जानता है ।
वास्तवमें ऐसा ज्ञानी ही; ब्रह्मका रूप पहिचानता है ॥
कितने ही देव–यज्ञ करके; योगकी धारणा धरते हैं ।
कितने ही ब्रह्म–अग्निद्वारा; यज्ञसे यज्ञको करते हैं ॥
श्रवणादि इन्द्रियोंका संयम; शब्दादि विषयका होम नहीं ।
इन्द्रिय, प्राणोंके कर्म–होम; है आत्म-योगमय अग्नि कहीं ॥

द्रव्य-दान; तप, योग-व्रत; स्वाध्याय या ज्ञान ।
इनके कर्त्ता नरोंको; "याज्ञिक" ही पहिचान ॥

कितने ही प्राणायाम साध; प्राण और अपान होम–कर हैं ।
कोई आहार–संयमी हैं; वे सभी यज्ञ–गति–आकर हैं ॥
जो यज्ञ-शिष्ट अमृत पायें; वे ब्रह्म सनातन पाते हैं ।
यज्ञसे विमुख रहनेवाले; दोनों लोकसे नसाते हैं ॥

वेदोंमें इस भांति है; यज्ञोंका आख्यान ।
अर्जुन ! यज्ञोंका विषय; कर्मोंको ही जान ॥

द्रव्य से ज्ञानका यज्ञ श्रेष्ठ; पंडित, विद्वान बताते हैं ।
ऐसे ज्ञानी आत्मा ही में; सारे भूतोंको पाते हैं ॥

ज्ञान नावसे तिरेगा; महा–पापका भार ।
कर्म–मात्र हो जायँगे; ज्ञान–अग्निमें क्षार ॥

श्रद्धालु, जितेन्द्रिय, ईश्वर-रत; ज्ञानसे शान्ति पा जाता है ।
अज्ञानी; अश्रद्धालु, भ्रम-मत; दोनों ओरसे नसाता है ॥
जिसने समत्वसे त्याग किया; ज्ञानसे सभी संशय टाला ।
वह बंध-मुक्त बनकर अर्जुन !; होता है आत्म–तत्त्ववाला ॥

अस्तु, ज्ञान-असि धारके; कर संशयका नाश ।
अर्जुन ! बन उद्योग-प्रिय; योग-समत्व-प्रकाश ॥

५ कर्म संन्यासयोग।

अर्जुन-

कर्म-त्याग फिर योग भी; कहते हो प्रभु ! साथ।
इन दोनों में शान्ति-प्रद; श्रेष्ठ कौन है ? नाथ ! ॥

योगिराज-

अर्जुन ! त्याग और योगका फल; शान्ती के लिये बराबर है।
फिर भी कर्म के त्यागने से; यह कर्म-योग श्रेयस्कर है ॥
जो राग--द्वेष से रहित हुआ; इच्छा--मात्र से उदासी है।
जो नर विमुक्त है द्वन्द्वों से; वह पुरुष सदा संन्यासी है ॥
सांख्य-मत, योग और कर्मों को; अज्ञानी अलग बताते हैं।
एक में सु--स्थिर होकर के; प्राणी दोनों फल पाते हैं ॥
हो कर्म--योग यदि सिद्ध नहीं; तो कर्म-त्याग भी दुष्कर है।
अर्थात् त्याग का सब साधन; इस कर्म--योगपर निर्भर है ॥

योग--युक्त, शुद्धात्मा; मन--गो-जित-सम-भाव।
कर्म देह--व्यापार हीं; समझे जो मति--राव ॥

कर्मों को ब्रह्मार्पण-कर्त्ता; आसक्ति--रहित, समता वाले।
शान्ति-पद शीघ्र पा जाते हैं; कर्म--फल--त्याग-निष्ठा वाले ॥
जो संयम--पूर्वक रह करके; मनमें न कर्म--फल लाता है।
वह नव-द्वारे वाला वासी; कुछ करता है, न कराता है ॥
ईश्वर कर्त्तापन तथा कर्म; अथवा न कर्म--फल रचता है।
यह जो कुछ भी दिखलाता है; सो सारा खेल प्रकृति का है ॥
वह पाप,पुण्य भी अपने सिर; अर्जुन, न किसीका धरता है।
"अज्ञान" मोह उपजाता है; "शुभ-ज्ञान" मोह-तम हरता है ॥

घोर-पाप-तम ज्ञानसे; जिनका हुआ विनाश ।
वे हरि-ध्यानी, लीन, थिर; पाते हैं आभास ॥
विद्वान् गाय, ब्राह्मण, हाथी; श्वान को बराबर कहते हैं ।
वे निष्कलंक के आश्रय से; उसमें ही स्थिर रहते हैं ॥
उनको प्रिय, अप्रिय हैं समान; अक्षय-आनन्द उठाते हैं ।
दुख-दायी भोग-विलासोंमें; ज्ञानी-जन मन न लगाते हैं ॥
देह से कर्म को करते हैं; क्रोध के वेग को सहते हैं ।
वे समता वाले शान्ति-मूर्त्ति; सर्वथा सुखी ही रहते हैं ॥
जिसको अन्तर-आनन्द मिला; शांति-मय-आन्तरिक-ज्ञान मिला ।
हो गये पाप जिनके विनष्ट; शङ्काओं का अवसान मिला ॥
जिसको मनपर अधिकार मिला; पर-हित-साधनका समय मिला ।
जिसको अपनी पहिचान हुई; उसको जीवन-पद अभय मिला ॥
काम और क्रोधपर विजय मिली; जो स्थिर-गति-संयुक्त हुआ ।
जो इन्द्रिय-जित योगस्थ हुआ; समझो-वह जीवन्मुक्त हुआ ॥
यज्ञ तथा तप-भोक्ता; मुझे लोक-पति मान ।
भूत-मात्र के हितैषी; पाते हैं निर्वान ॥

६ ध्यान योग ।

योगिराज-
आसक्ति त्याग जो कर्म करे; "संन्यासी" वही कहाता है ।
कर्मों को जो त्याग दे पार्थ !; वह अज्ञानी ठहराता है ॥
संन्यास, योग ही समझ पार्थ !; इच्छा रखना संन्यास नहीं ।
योग के लिये है कर्म मुख्य; वे कर्म आत्म-विन्यास नहीं ॥
यह बाह्य-विषय, आसक्ति त्याग; नर योगारूढ़ कहाता है ।
आत्मा ही मित्र कहाता है; आत्मा ही रिपु बन जाता है ॥

बल-पूर्वक जिसने मन जीता; तो आत्मा बन्धु कहाता है ।
जिसके वश में मन हुआ नहीं; तो शत्रु रूप हो जाता है ॥
मन विजय हुआ, स्थिर जो है; सर्वदा समान दशा जिसकी ।
अविचल है, ज्ञान-तृप्त जो है; सम्यक-दृष्टि मय प्रथा जिसकी ॥

शत्रु, मित्र सबका हितू; सब में भाव समान ।
अर्जुन ! इन लक्षणों से; योगी-जन पहिचान ॥

स्थिर-चित, सभी वासना या; संग्रह तज कर एकान्त रहे ।
कुश, चर्म, वस्त्र मय सम-आसन; इन्द्रिय-निग्रह कर शांत रहे ॥
धड़, गर्दन, सिर सीधे निश्चल; स्थिर हो दृष्टि नासिका पर ।
निर्भय व्रत ब्रह्मचर्य्य रक्खे; ध्यान-स्थ रहे मम निष्ठा कर ॥

भृकुटि-दृष्टि, परमेश-रत; अविकारी, अभ्रान्ति ।
ऐसे योगी मोक्ष-प्रद; पा जाते हैं शान्ति ॥

अर्जुन ! यह योग न लंघनसे; अति भोजन भी न सहारा है ।
अति निद्रा से यह प्राप्त न हो; जागरण न इसका द्वारा है ॥
परिमित आहार विहार रहे; सब नियम-बद्ध व्यवहार रहें ।
इच्छाओं से निस्पृहता हो; तब योग-योग्य आचार रहें ॥
निर्वायु-ज्योति-सम स्थिर मन; आत्मा में आत्म शान्ति पाये ।
इन्द्रिय-गत, सुख का अनुभव हो; तब योग-स्थित मन कहलाये ॥
यह काम यकायक हो न सके; धीरे धीरे अभ्यास करे ।
चञ्चल-मन क्रमशः दमन करे; चित्त-स्थिर-हेतु प्रयास करे ॥

मन-विकार-गत, योग-रत; सम-दर्शी, सम-भाव ।
जिसे किसी भी विषयमें; मुझसे नहीं दुराव ॥
मैं उसका, वह हमारा; ऐसे जहां विचार ।
मेरे ही में देखता; है जो नर संसार ॥

अपने समान सब को माने; सुख, दुख है एक समान जिसे।
मैं दावेसे कह सकता हूँ, हैं ब्रह्म–ज्ञान आसान उसे॥

अर्जुन–

हे नाथ! समत्व-योग सच है;पर मन भी अजय दिखाता है।
यह चंचल चित क्यों कर वश हो?;यह नहीं समझमें आता है॥

योगिराज–

अर्जुन! तेरा कहना सच है; मन भी दुर्जय कहाता है।
अभ्यास और वैराग्य-नियम;उस पर अधिकार जमाता है॥
जिसका मन ही हाथमें नहीं; वह योग नहीं कर सकता है।
हां, यत्न-शील मन वश करके, धैर्य्य से कहीं कर सकता है॥

अर्जुन–

नाथ! मन्द-मति-वश कहीं; गिर जायें मतिमान।
ऐसे श्रद्धावान की; क्या गति है? भगवान!॥
योग-भ्रष्ट भटका हुआ; क्या पाता है कष्ट?।
लग जाता है पार–या; हो जाता है नष्ट॥

योगिराज–

अर्जुन! ऐसे पथ का गामी; पूँजी न कभी खो सकता है।
पथ हो जाता भ्रष्ट, कभी; पर नष्ट नहीं हो सकता है॥
जिस सीमा तक उसका तप है; वैसे ही पद को पाता है।
कालान्तर तक सुख भोग वहां; फिर उच्च-वंशमें जाता है॥
या ज्ञानवान योगीके घर; उसका शरीर प्रकटाता है।
शुभ--संस्कार पा जानेसे; फिर वही मार्ग मिल जाता है॥
वह पूर्व–जन्म का महाभ्यास; उसको आगे ले जाता है।
जन्मान्तरमें वह लग्न-शील; निश्चय ही शान्ती पाता है॥

ज्ञानियों तपसियोंसे बढ़ कर; योगी को वेद बताता है।
योगी वह बड़ा योगियोंमें; जो मुझमें चित्त रमाता है॥

७–ज्ञान-विज्ञान-योग।

योगिराज–

क्यों कर मेरी भक्तिसे; मिलता है ? विश्राम।
उसी गोप्य-तम विषयको; सुन अर्जुन ? बलधाम॥

सिद्धिके लिये सहस्रों में; बिरला ही कष्ट उठाता है।
फिर उन उद्योगी पुरुषोंमें; बिरला ही मुझको पाता है॥
पृथ्वी,जल,अग्नि,वायु,नभ,मन;बुद्धि और अहम् ही प्रकृती है।
यह "अपरा" है, दूसरी "परा";जीवन-स्वरूप तन बसती है॥

भूत–मात्र इनसे बने; यह जग की आधार।
मेरे द्वारा पार्थ है ! जग–स्थिति, संहार॥

मुझसे आगे कुछ नहीं पार्थ; मुझमें ही जगत पिरोया है।
मुझमें ही जगत जागता है; मेरे ही अन्दर सोया है॥
जलमें रस हूँ, शशि–सूर्य्य-प्रभा; वेदोंमें ॐ कार मैं हूँ।
व्योममें शब्द,पुरुषोंमें बल; साकारमें निराकार मैं हूँ॥
भूमिमें सुगन्धि मुझे समझो; अग्निमें तेज मुझको मानो।
जीव का जीव, तपसी का तप; प्राणी का मुझे प्राण जानो॥
तेजस्वियोंका हूँ तेज, तथा; मति हूँ मैं ही मति–मानोंमें।
धर्म-मय काम, रागके रहित; मैं ही बल हूँ बलवानोंमें॥
सात्त्विक, राजस,तामसी-भाव;सब आश्रित मुझ पर रहते हैं।
मुझको उनका आधार नहीं; वे मुझ पर निर्भर रहते हैं॥
त्रैगुण–मोहित गुण-विगत मुझे; हे पार्थ ! नहीं पहिचानताहै।
जो मेरी शरण पकड़ता है; वह मेरा रूप जानता है॥

मूढ़, अधम, दुश्चरित नर; मेरी शरण न जाय।
उसे आसुरी-प्रकृति ही; निश दिन रही भुलाय॥

आरत, जिज्ञासु, कामना-मय; ज्ञानी जन मुझको ध्याते हैं।
यह चारों भक्त मुझे प्रिय हैं; पर ज्ञानी हृदय कहाते हैं॥
वे जन्म जन्म के उद्योगी; हर जगह मुझे ही पाते हैं।
पर कामोपहत बुद्धिवाले; अन्यान्य देव अपनाते हैं॥
जिसकी जैसी भी श्रद्धा है; वैसे ही पूर्ण कराता हूँ।
दैवी-फल देवोंके द्वारा; अपना आप ही दिलाता हूँ॥
मति-हीन मेरा अनुपम स्वरूप; अविनाशी भेद न जानते हैं।
इसलिये इन्द्रियातीत ब्रह्म; वे इन्द्रियगम्य मानते हैं॥
मैं छिपा योग-माया में हूँ; हर एक न मुझको जानता है।
त्रैकाल-भूत हैं विदित मुझे; संसार नहीं पहिचानता है॥
अधिभूत-तथा अधिदैव और; अधियज्ञ युक्त जो जानते हैं।
मुझको, वे अन्त समय में भी, मेरा स्वरूप पहिचानते हैं॥

८-अक्षर ब्रह्मयोग।

अर्जुन-

ब्रह्म-रूप, अध्यात्म प्रभु !; क्या अधिभूत प्रमाण।
कर्म और अधिदैव सब; कहिये दया-निधान !॥

योगिराज-

सर्वोत्तम अविनाशी है ब्रह्म; अध्यात्म तनस्थ कहाया है।
सृष्टि-क्रम कर्म समझ अर्जुन; अधिभूत भूत-तन गाया है॥
यज्ञ से शुद्ध जीव का रूप; धर कर अधियज्ञ कहाता हूँ।
तात्पर्य्य, जहाँ जो कुछ देखो; मैं ही मैं बस दिखलाता हूँ॥

जो अन्त समय जो ध्यान करे, आगे चलकर वह पाता है।
मुझको जपता जो देह तजे; तो वह मुझको पा जाता है॥

स्थिर-चित्त एकाग्र हो; भक्ति-युक्त धर ध्यान।
देह तजे, जो, वह पुरुष; पाता है निर्वान॥

यह सभी लोक आते जाते, सर्वथा अनस्थिर रहते हैं।
ब्रह्मा का दिन एवं रात्री; दो सहस युगों की कहते हैं॥
दिनमें यह सृष्टि उपजती है; रात में प्रलय हो जाती है।
पर परम-तत्त्व पा जाने पर; जग जन्म-मृत्यु खो जाती है॥
छः मास उत्तरायण, दिन में; या शुक्ल-पक्ष जो पाता है।
वह मरनेवाला निश्चय ही; मेरा स्वरूप पा जाता है॥
इसके विपरीत देह-त्यागी; प्रति बार योनियां पाता है।
अज्ञान-ज्ञान-पथ-निर्णय पर; वास्तविक भेद खुल जाता है॥

९--राजविद्या राजगुह्य योग।

योगिराज--

सकल जगत, भूतात्मा; हैं मेरे आधार।
किन्तु बिलग हूँ सभी से; कारण-मात्र विचार॥

कल्पान्त समय सारे प्राणी; प्रकृती में पार्थ ! समाते हैं।
आरम्भ-काल में वे ही सब; मेरे द्वारा उपजाते हैं॥
आसक्ति-रहित यह कर्म मुझे; बन्धन में नहीं फँसाता है।
सारा जग रहँट-माल-सदृश; माया में चक्कर खाता है॥
झूठी आशा कामनावान; आसुरी प्रकृति अपनाते हैं॥
सज्जन दैवीय-प्रकृति द्वारा; मुझ से ही चित्त लगाते हैं॥
अद्वैत, द्वैत, बहु रूप हूँ मैं; सर्वत्र हूँ मैं, सर्वस्व हूँ मैं।
विश्वम्भर, मैं ही विश्व-धार; विश्वकर समक्ष विश्व हूँ मैं॥

गायन

यज्ञ-संकल्प मैं यज्ञ पितर आधार मैं ही;
यज्ञ की औषधि हूँ मैं ही मन्त्र गाता हूँ।
मन्त्र मैं आहुति मैं हूँ; अग्नि या हवन मैं ही;
मैं ही जग-पिता-मातु, आसरा कहाता हूँ।
मैं ही ओम्कार वेद गति पोषक साक्षी हूँ;
मैं ही निवास, समझ; आश्रय सुहाता हूँ।
उत्पति स्थिति औ नाश, मैं हूँ प्रकाश, सकल;
आंख खोल देख पार्थ, मैं ही मैं दिखाता हूँ।

धूप, मेघ, शीतोष्ण सब; मुझको ही पहिचान।
मैं सत, असत स्वरूप मैं; मैं ही गति निर्वान॥

निष्पाप, सकामी वैदिक-हव; करके स्वर्गादिक पाते हैं।
पुण्य-फल पूर्ण हो जाने पर; फिर से भू-तल पर आते हैं॥
वे यों ही चक्कर खाते हैं; उनका सब सुख कर्मों पर है।
पर अनन्य भक्तों का भारत ! सब भार मुझी पर निर्भर है॥
विधि-रहित, किन्तु श्रद्धावाले; सुर पूज मुझे ही पाते हैं।
जो मेरे रूप न समझे हैं; वे पद से गिरते जाते हैं॥
देवका पुजारी देव--लोक; पित्रों का पितृ--लोक पाये।
भूतों से भूत--लोक पाये; मुझसे विमुक्त जन हो जाये॥

पत्र, पुष्प, फल, नीर जो; अर्पण करें सुजान।
मेरे हित, मैं हृदय से; ग्रहण करूँ हित मान॥
अस्तु;होम,तप, दान सब; कृष्णार्पण कर पार्थ !!
समता—युत, बन्धन—रहित; पायेगा परमार्थ॥

सब में एक हूँ, मुझे कोई; अप्रिय है, और न प्यारा है ।
फिर भी माधव भक्तों का है; एवं वह भक्त हमारा है ॥
जो व्यभिचारी भी हो अनन्य; तो वह भी साधु कहाता है ।
संकल्प–मात्र से वह प्राणी; शीघ्रही शान्ति पा जाता है ॥
ब्राह्मण, राजर्षि भक्त तो क्या?; स्त्रियाँ, वैश्य या शूद्र भी हो ।
जो मुझे भजें, वे पार लहें; योनि या जाति में कोई हो ॥

अर्जुन ! मुझ में चित्त दे; मेरे हित कर दान ।
मुझ को ही सब मान ले; तो होगा कल्याण ॥

१०--विभूति योग ।

योगिराज–

सब देव, महार्षि मुझी से हैं; इसलिये न मुझ को जानते हैं ।
वे पाप-मुक्त हो जाते हैं; जो मुझे अनादि मानते हैं ॥

बुद्धि, क्षमा, भय, अभय दुख; सत्य, अहिंसा, ज्ञान ।
समता, यश, सन्तोष, सुख; जन्म-मृत्यु, तप, दान ॥
इन्द्रिय-निग्रह, शान्ति, ऋषि; सब मुझ से ही जान ।
यह विचार--धारी पुरुष; पाते हैं निर्वान ॥

ऐसे भक्तों की आत्मा में; मैं ज्ञान–प्रदीप जगाता हूँ ।
एवं अपना आश्रय देकर; अज्ञान–विमोह नसाता हूँ ॥

अर्जुन–

अज्ञेय ! स्वयं गति! निज-विभूति; विस्तार-सहित वर्णन कीजे ।
किसमें, किस भाँति निबासी हो?; यह गोप्य-रहस्य बता दीजे ॥

योगिराज—

गायन

प्राणियों में आत्म बन आधार हूँ ।
सर्व—भूतों का अमित—विस्तार हूँ ॥
आदित्यों में विष्णु जान ले; ज्योतिर्धारी सूर्य्य मान ले;
नक्षत्रों में राकेश, सुरों में समझ मुझे देवेश;
वायुओं में मैं मरीचि—प्रकार हूँ ।
वेदों में साम हूँ, यदुकुल में श्याम हूँ, उतपति को काम हूँ;
बाणियों में पार्थ मैं ओंकार हूँ ।
इन्द्रियों में मन समझ, भूतात्म में चेतन समझ;
गिरि मेरु, शंकर, रुद्र, जग-उत्पत्ति का कारण समझ;
अग्नि वसुओं में, बृहस्पति हूँ पुरोहित वर्ग में;
स्वामि कार्त्तिक सैनिकों में; सार सुख हूँ स्वर्ग में;
यज्ञ में जप—यज्ञ हूँ; सब स्वार्थ में परमार्थ हूँ;
भृगु हूँ महर्षि वसन्त ऋतु; और पाण्डवों में पार्थ हूँ;
गंग सरि हूँ; अक्षरोंमें अकार हूँ ॥
अश्वों में उच्चैःश्रवा; ऐरावत गज मान ।
दैत्यों में प्रह्लाद हूँ; ज्ञानवान का ज्ञान ॥
मुनियों में व्यास, पशुओं में सिंह;नागों में शेष कहलाया हूँ ।
सिद्धों में कपिल, हथयार वज्र; सर्पों में वासुकि गाया हूँ ॥
पितरों में आर्यमा पीपल तरु; गन्धर्व चित्ररथ जान मुझे ।
नारद देवर्षि, हूँ गरुड़ पक्षि; शुभ मार्गशीर्ष पहिचान मुझे ॥
दण्ड, जय, निश्चय, तथा सत—सार हूँ ।

कीर्ति, लक्ष्मी, बाणी, स्मृति, मेधा, क्षमा नारियों में धृति;
छन्दों में गायत्री मैं हूँ, द्वन्द्व–समास, वृत्ति हूँ निर्वृति।
मान ले संसार का संसार हूँ॥

एक अंश से जगत का; जान पार्थ विस्तार।
उसी अंश से व्याप्त हैं; भौतिक रूप अपार॥

११–विश्वदर्शन योग।

इसी तरह से नाथ ने; किया ज्ञान–सम्बोध।
किन्तु, पार्थ को इस तरह; हुआ विशेष न बोध॥

बोले–"भगवान ! सुन रहा हूँ; फिर भी विश्वास न आता है।
आश्चर्य ! सूर्य्य जगमगा रहा; पर नहीं अँधेरा जाता है॥
इसलिये दयामय ! दीन हीन; आश्रित पर दया कीजियेगा।
मौखिक–शिक्षा रहने दीजे; प्रत्यक्ष प्रमाण दीजियेगा॥"

जगत–रूप जगदीश ने; किया विराट स्व-वेष।
एवं अर्जुन से कहा–"पार्थ ! इस तरफ़ देख॥
किस प्रकार वर्णन करूँ ?; प्रभु का बृहदाकार।
पृथ्वीसे आकाश तक; बनी एक दीवार॥

मैं ने तो बाल–प्रभु देखे हैं;इस छबि का मुझ को ज्ञान नहीं।
उस रसिक-मूर्त्ति का रसिया हूँ;इस बृहद-रूप का ध्यान नहीं॥
तो भी प्रसंग-वश लिखता हूँ; जैसा अनुभव में आया है।
उन रसिक–विहारी ने मानो; जग–व्यापी वेष बनाया है॥
आकाश था, और भूमि भी थी;दोनों थे कहीं मध्य ही में।
वह पृथ्वी कहीं गेंदसी थी; अर्जुन थे किसी खोखली में॥
नेत्रों में लाखों चन्द्र–सूर्य्य; जगमग विद्युत फैलाते थे।
ब्रह्माण्ड–पतीके रोम, रोम; लाखों ब्रह्माण्ड दिखाते थे॥

कोटिशः माथ, कोटिशः हाथ; कोटिशः चरण; धड़, ग्रीवाएँ।
हो रही कहीं घनघोर वृष्टि; या छूट रही हैं ज्वालाएँ॥
लाखों ब्रह्मा लाखों महेश; लाखों सुरेश दिखलाते हैं।
पैदा भी होते हैं प्राणि; एवं मरते भी जाते हैं॥

आँख मूँद चिल्ला उठे; ऐसा रूप निहार।
"मुझ बालक अज्ञान पर; कृपा करो कर्त्तार॥



विश्वरूप प्रदर्शन।

आँखों में इतनी शक्ति नहीं; जो इस रूप को निहार सकें।
बुद्धि में देव! सामर्थ्य नहीं; जो इस भाव को विचार सकें॥
कीजिये दया, कीजिये कृपा; जो प्रभु मेरे रखवाले हैं।
आखें मेरी चौंधिया चुकीं; और प्राण निकलनेवाले हैं॥"

दिव्य–दृष्टि जन पार्थ को; की नाथ ने प्रदान।
उस विराट-छबिका हुआ; तव अर्जुन को ज्ञान॥
लोट गये बेचैन हो; कर लीं आँखें बन्द।
बोले–"बस करुणा करो; यदु-कुल-कैरव-चन्द॥

श्री विश्वनाथ बोले–"अर्जुन!; देख तो, कहां हैं? सखा तेरे।
भाई तेरे, बेटे तेरे; ताऊ तेरे, चाचा तेरे॥"
पार्थ ने कहा–" हे महाबाहु!; वे मृतक–रूप दिखलाते हैं।
श्रीमहाराज दोनों दल में; जयका झण्डा फहराते हैं॥"
प्रभु बोले–"बस तो इन सबको; अन्त में यही गति पाना है।
यह तो पहिले ही मुर्दे हैं; लड़ने का एक बहाना है॥"
अर्जुन बोले-"बस दया-मूर्त्ति!; यह वेष न अब दिखलाइयेगा।
जगधर! मायाधर! भक्त–हेतु; फिर मुर्लीधर बन जाइयेगा॥

गायन

आंखें झपक रही हैं, भगवान्! हमारी।
देखी नहीं जाती है, यह मूर्त्ति तुम्हारी॥
जुगनू से चमकते हैं, यह सूर्य्य, चन्द्रमा;
भुनगे सी घूमती है, यह भूमि बिचारी।
गड्ढोंसे दिख रहे हैं; यह सारे समन्दर;
राई से जँच रहे हैं, गिरि-खण्ड मुरारी!॥

संसार बन रहा है, और मिट भी रहा है;
लाखों हैं, हरे ! आप में, ब्रह्मा व पुरारी ।
को है समर्थ ! भगवन् !; जो आंख उठाये;
जबतक न कृपा–दृष्टि हो,उस जनपै तुम्हारी ॥
हे विश्वरूप ! "गोविन्द", डरता हूँ बस करो;
"शैलेन्द्र"के लिये फिर;बन जाओ विहारी ।

सञ्जय–

अर्जुनकी इस विनय पर; द्रवित हुए सुर-भूप ! ।
विश्व–रूप को त्याग कर; रक्खा नटवर रूप ॥

अर्जुन–

देव–देव ! यह रूप लख; मिटा मोह,मद,भ्रान्ति ।
शान्ति-सिन्धु !अब दीनको; हुई वास्तविक शांति॥

योगिराज–

अर्जुन ! यह विश्व-रूप मेरा; देव भी नहीं पा सकते हैं ।
केवल अनन्य–गतिवाले ही; इतनी शक्ती ला सकते हैं ॥
जो श्रद्धा–सहित, समत्व धार; मेरा ही ध्यान लगाते हैं ।
वे इन्द्रिय-जित, अनन्य-सेवक; निश्चय ही मुझको पाते हैं ॥
अव्यक्त–उपासक उस पद पर; कठिनाई से जा सकता है ।
मेरा अनन्य आसानी से; वह निश्चल–पद पा सकता है ॥
मुझमें अपना मन सुस्थिर कर; तू निश्चय मुझको पायेगा ।
यह शक्ति न हो, तो "कर्मार्पण"; करते करते तिर जायेगा ॥

यह भी न बने तो यत्न-सहित; फलका त्यागी बन जा अर्जुन!।
तीनों में से ले एक राह; पद का भागी बन जा अर्जुन ! ॥

१२-भक्तियोग ।

जो द्वेष-रहित,इन्द्रिय-जित हैं; सुख दुखमें भी समान जो हैं ।
ममता-मद-विगत, हितू सबके; सन्तोषी दयावान् जो हैं ॥
दृढ़-निश्चय-मति, योगी अकाम; ईर्ष्या-उद्वेग-मुक्त जो हैं ।
इच्छा-चिन्ता-संकल्प-रहित; पावन-दृढ़-योग-युक्त जो हैं ॥
सम-भाव, द्वन्द्व-गत, सर्व-प्रिय; मुझ से ही आशा धारे हैं ।
वे सच्चे भक्त हमारे हैं; हमको प्राणों से प्यारे हैं ॥

१३-क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-विभाग योग ।

योगिराज-

अर्जुन ! शरीर को क्षेत्र समझ; आत्मा "क्षेत्रज्ञ" कहाता है ।
आत्मा स्वरूपमें मेरा ही; अथवा आभास दिखाता है ॥

पांच भूत, दश इन्द्रियां; अहम्, प्रकृति, मन, बुद्धि ।
पांच विषय, धृति, चेतना; तन-प्रविशित अविरुद्धि ॥

शुद्धिता-आत्म-संयम-दृढ़ता; निर्दम्भ, अमान, क्षमा होना ।
गो-विषय-अहम्-ममता-विरक्ति;मम-भक्ति-प्रीति समता होना॥
एकान्त-वास-,नित उदासीन; आध्यात्मिक-प्रेम-भान होना ।
अर्जुन ! इसको ही कहते हैं; वास्तविक प्रकार ज्ञान होना ॥
सत-असत-विगत अविकार सूक्ष्म;वह ब्रह्म''ज्ञेय''कहलाता है।
जड़,चेतनमें, ब्रह्माण्डोंमें; उसका ही भास दिखाता है ॥

अविभक्त विभक्त-समान है वह; वह पालक, पोषक, नाशक है ।
ज्ञेय भी वही, ज्ञान भी वही; है वही प्रकाश, प्रकाशक है ॥

प्रकृति, पुरुष दोनों सखे !; हैं अनादि विस्तार ।
प्रकृति-मात्रसे जनित हैं; त्रैगुण और विकार ॥

है प्रकृति-कार्य्य–कारण-द्वारा; भोगी वह पुरुष कहाता है ।
प्रकृतिस्थ-पुरुष गुण-भोगोंसे; जन्म का हेतु बन जाता है ॥
वह परम-पुरुष ही साक्षी है; भर्त्ता, भोक्ता, मति-दाता है ।
सम्मति-दाता वह परम ब्रह्म; वह ही आत्मा कहलाता है ॥
ध्यान या ज्ञान या कर्म-मार्ग; द्वारा वह जाना जाता है ।
इसका ज्ञाता, या श्रद्धाकर; जन्मसे मुक्त कहलाता है ॥

प्रकृति-पुरुष-संयोग ही; है सृष्टि का विधान ।
नाशवान इस देहमें; आत्मा अमर प्रधान ॥

सम-भाव-सहित सब भूतोंमें; जो मुझे व्यवस्थित जानता है ।
प्रकृती को कर्मों का कर्त्ता; मुझ को "निरीह" पहिचानता है ॥
सर्वस्व ब्रह्ममें देखता है; ब्रह्म को अलिप्त मानता है ।
हे पार्थ ! वही ज्ञानी सज्जन; मेरा स्वरूप पहिचानता है ॥

१४–गुणत्रय–विभाग योग ।

योगिराज–

है प्रकृति-योनि में पुरुष-रूप; बीजारोपण करनेवाला ।
त्रैगुण-समूह हर प्राणोंको; दैहिक–बन्धन करनेवाला ॥
सत-गुण है शान्ति-ज्ञान-दाता; रज-गुण आसक्ति बढ़ाता है ।
तम-गुण अज्ञान मोह-कर है; ममता-पाश में फँसाता है ॥

हर दो के धीमे पड़ने पर; तीसरा प्रबल हो जाता है।
ज्ञान, या प्रवृत्ति मोह-द्वारा; क्रमशः प्रभाव दिखलाता है॥
नर सत्त्व-गुणोदयमें मरकर; निर्मल लोकों को पाते हैं।
रजमें मिलता है कर्म-लोक; तममें विमूढ़ बन आते हैं॥
सात्विक-पद सबसे ऊँचा है; राजस मध्यम कहलाता है।
तामस देता है पतित-योनि; ज्ञानी तीनों बिसराता है॥

"गुण" ही सब कर रहे हैं; ऐसा सोच सुजान।
"अहम्" त्याग कर अन्त में; पाते हैं निर्वान॥
इन सब को बन्धन समझ; करें हमारा ध्यान।
वह अवश्य ही पायगा; अन्त समय निर्वान॥

१५-पुरुषोत्तम योग।

योगिराज—

"अश्वत्थ" नाम संसार है यह;मैं ऊर्ध्व-मूल कहलाता हूँ।
ऊपर नीचे गुण-पलित अमित; शाखायें भी फैलाता हूँ॥
वह आदि-अन्त या नींव-रहित; स्पष्ट नहीं दरशाता है।
वैरागी ही, शरणागत हो; इससे विमुक्त हो जाता है॥
मद-मान-मोह, आसक्ति,द्वन्द्व; तज आत्मानन्द समाता है।
वह शशि-रवि-अनल-अगम्य-नित्य;मेरे धामको सिधाता है॥
मेरा ही अंश सनातन जब; इस जीव लोकमें आता है।
तो इन्द्रिय-मन आकर्षणकर; भोगों का नाट्य रचाता है॥
ज्ञानी जन इसे समझते हैं; रवि-अग्नि-स्वरूप हमारा है।
मैं ने ही भूत बनाये हैं; मैं ने ही पोषण धारा है॥

देहाश्रय से जठराग्निरूप; मैं प्राण अपान वायु द्वारा
अन्नों का पाचन कर्त्ता हूँ; मैं ही हूं वेद–तत्त्व सारा ॥

वेद-ज्ञेय, वेदज्ञ हूँ; समझ मुझे वेदान्त ।
"क्षर" प्राणी "अक्षर" पुरुष; नित्य आत्मा शान्त ॥

क्षर, अक्षर से भी परे पार्थ !; परमात्मा नाम कहाया है ।
इसलिये एक अविनाशी वह; पुरुषोत्तम ब्रह्म समाया है ॥

परम-तत्त्वमय यह विषय; समझें जो गुणवान ।
वे "मनुष्य" संसारमें; जन्म-मुक्त ही जान ॥

१६–देवासुर सम्पत्ति विभाग योग ।

योगिराज–

सत-गुण मय लक्षण जहाँ; दैवी–सम्पत् जान ।
तमो भाव–लक्षण जहाँ; आसुरि–सम्पत् मान ॥

आचार, शौच, का भान न हो; भोगों में जीवन जाता हो ।
वह असुर सरीखा ही समझो; जो निश दिन पाप कमाता हो ॥
प्रभु पर जिन को विश्वास नहीं; हिंसा, चोरी को जीवन है ।
आलस्य, नींद, द्यूतादि-विषय; पर-निन्दा, या चुगलीपन है ॥
विज्ञान-ज्ञान का भान नहीं; सत्संग, भक्ति से प्यार नहीं ।
विश्वास रहे, ऐसे नर का; त्रैकालों में उद्धार नहीं ॥

१७–श्रद्धात्रय विभाग योग ।

योगिराज–

सात्त्विक, राजस, तामसी; श्रद्धा तीन प्रकार ।
अर्जुन ! इनका भी तनिक; कहता हूँ निर्धार ॥

सात्त्विक सुर-पूजक होते हैं; राजस यक्षादि मानते हैं।
तामस भूतादि पूजने में; अपना आनन्द जानते हैं॥
बलवर्द्धक, शुचि, रुचि-रस-सात्त्विक; सात्त्विक लोगोंका भोजन है।
खारे, तीखे, चटपटे, गर्म; राजस जीवों का भोजन है॥
गन्दा, वासी, दुर्गन्धित हो; तो तामस प्रकृति चाहते हैं।
सात्विक जन फल-आकांक्षा-गत; यज्ञों का नियम निभाते हैं॥
राजस फल-इच्छा रखते हैं; एवं पाखण्ड दिखाते हैं।
विधि-त्याग-मन्त्र-श्रद्धा-विहीन; तामसी यज्ञ कहलाते हैं॥
सुर-गुरु-पूजन, संयम, शुचिता; शारीरिक-तप कहलाते हैं।
हितकर-प्रिय, सत्य वचन कहना; वाचिक-तप विदुष बताते हैं॥

मन प्रसन्न, सद्भावना; मौन, सौम्यता, ज्ञान।
आत्म-शुद्धि इत्यादि को; तप मानसिक बखान॥

सम-भाव, फलेच्छा का त्यागी; सात्त्विक-तपसी कहलाता है।
फल-चाहक दम्भी, अनुद्देश; राजस-तप माना जाता है॥
कष्ट-मय दुराग्रह-पूर्वक तप; जो हो औरोंके अनहित को।
ऐसे तप को तामस समझो; अब सुन दानों की प्रतिकृति को॥
प्रतिकार-आश तज, उचित-रूप; सात्त्विकी दान कहलाता है।
बदला, फल, दुखमय राजस है; अनुचित तामस बनजाता है॥

"ओ३म् तत् सत्" में ब्रह्म का; है पूरा आख्यान।
ब्रह्म-वादि, मोक्षार्थी; करें सर्वथा गान॥
शान्ती, सुख, तप, योग, व्रत; हैं इस के आधार।
असत्-कर्म श्रद्धा रहित; हैं सर्वथा असार॥

१८—मोक्ष संन्यास योग।

अर्जुन—

मधु—सूदन, केशी दमन; जग—पति, जगन्निवास।
त्याग तथा संन्यास का; कीजे भेद—प्रकाश॥

योगिराज—

उस काम्य—कर्म का त्याग पार्थ; संन्यास पुकारा जाता है।
सम्पूर्ण कर्म—फल तज देना; बस यही त्याग कहलाता है॥
कोई कहता है—सभी कर्म; त्याज्य हैं; छोड़ देना चहिये।
कोई कहता है,—हवन, दान; तप आदि कर्म लेना चहिये॥
मेरा निश्चय है—दान आदि; आसक्ति छोड़ करना चहिये।
मोह-वश,त्याग कर कर्मों को;"तामस"न व्यर्थ धरना चहिये॥
काया-कष्ट-वश त्याग करना; राजसी त्याग कहलाता है।
फल-इच्छा रहित कर्म करना; सात्त्विकी त्याग बन जाता है॥
संशय-विहीन शुद्धात्म, विद्वुष; सब कर्मों में अलीन होगा।
सुबिधा में न तो लीन होगा; बे सुबिधा में न मलीन होगा॥
जब तक यह प्राणी संज्ञा है; तब तक कर्मों का बन्धन है।
कर्म-फल त्याग देना ही बस; त्याग का श्रेष्ठतर साधन है॥

फल चाहक को तीन बिधि; मिलता है फल पार्थ।
संन्यासी को कर्म भी; एक मात्र परमार्थ॥

सांख्य—मत कर्म की सिद्धी में; कारण पाँच ही बताता है।
काया, कर्त्ता, साधन, करना; पाँचवाँ दैव कहलाता है॥
मनसा, वाचा, कर्मणा—सहित; कोई भी कर्म किया जावे।
उत्तम है, सभी भाँति अर्जुन; बस अहमित त्याग दिया जावे॥

अमलिन–मति, अहमित–रहित; दे जग भी संहार ।
तो भी उसके शीश पर; पड़े न बन्धन–भार ॥

गायन

यह ज्ञान, ज्ञेय, परिज्ञाता तीनों; कर्म-प्रेरणा गाये हैं ।
इन्द्रियाँ, क्रिया, कर्त्ता तीनों; कर्म के अंग कहलाये हैं ॥
जो सब में एक भाव समझे; वह सात्विक-ज्ञान सुहाता है ।
जो भिन्न भिन्न कर देखता है; वह राजस–ज्ञान कहाता है ॥
एक में अनेक बिला कारण; वह तामस माना जाता है ।
आसक्ति-रहित, या सहित तथा; मोह-वश कर्मका नाता है॥
यों ही कर्त्ता के तीन भेद; विद्वानों ने बतलाये हैं। यह ज्ञान० ॥
दृढ़, उत्साही, आसक्ति-रहित; सात्विक-कर्त्ता कहलाता है ॥
रागी, लोभी, आसक्ति-वान; राजस में माना जाता है ।
भक्की, शठ, नीच, आलसी हो; सविषाद, अयुक्त दिखाता है ॥
हो दीर्घसूत्री ऐसा नर; तामसी वेद बतलाता है ।
सात्विक-बुद्धिमें, शुद्ध-निर्णय; कर लेनेके गुण पाये हैं। यह ज्ञा० ॥
राजस-मति निर्णय करती है; पर भूल कहीं हो जाती है ।
तामसी बुद्धि हठ-पूर्वक ही; उलटी रास्ता दिखलाती है ॥
सम्यक-मतिसे सब क्रिया-साध्य; सात्त्विक-धृति पार्थ बनातीहै।
राजस-धृति आसक्ति को बढ़ा; कर्मों की ओर झुकाती है ॥
तामसमें निद्रा, शोक, मोह; आलस मद आदि समाये हैं। यहज्ञा० ।

जिसका प्रारम्भ विष-सरिस है; परिणाम अमृत दिखलाता है।
वह आत्म-प्रसाद-जनित अक्षत; सात्त्विक सुख ही कहलाता है॥
विषयेन्द्रिय-जनित विसुख सतसे; राजस-सुख माना जाता है।
दोनों से भिन्न प्रमाद-पूर्ण; तामस-सुख वेद बताता है॥

पृथ्वी से वैकुण्ठ तक; यही तीन गुण जान।
वर्णों के भी इसी विधि; जन्म, सिद्ध गुण मान॥

शम, दम, तप, क्षमा, शौच, अनुभव; सारल्य ब्राह्मणोंका गुण है।
धृति, शौर्य्य; तेज, दक्षता, दान; शासन क्षत्रियका लक्षण है॥
कृषि, गोरक्षा, व्यापार वैश्य; सेवा का कर्म शूद्र का है।
हे अर्जुन! सारे दुख सह कर; निज धर्म निभाना अच्छा है॥
प्रत्येक कर्म कुछ दूषित है; पर ज्ञातोचित में दोष नहीं।
अर्जुन! अग्नि में धुवाँ होगा; है अग्नि जहां पर धुवाँ वहीं॥

शुद्ध-बुद्धि-दृढ़ता-सहित; विषय-द्वेष सब त्याग।
अल्पाहारी, ध्यान-रत; करे ईश-अनुराग॥
अहम, दर्प, बल, काम-गत; वीत-राग-भय-क्रोध।
ब्रह्म-परायण को समझ; ब्रह्म-रूप का बोध॥

अर्जुन! आत्मा से "अहम्" हटा; आसक्ति त्याग, कर्त्तव्य निभा।
सर्वस्व मुझे ही मान पार्थ!; मुझ में ही केवल चित्त लगा॥
सारे धर्मों को छोड़ भक्त!; केवल मेरी शरणागत हो।
मैं ही विमोक्ष कर दूँगा भट!; तुझको निश्चय, निराश मत हो॥

कहा पार्थ ने—"बस प्रभो!; छूट गया अज्ञान।"
रथ की डोरी लीजिये; माया—पति भगवान॥

गायन

तुम्हारे भेद को भगवन् !; किसी ने कुछ न जाना है।
हमारी कौन गिनती है ?; सभी ने "नेति" माना है॥
तुम्हीं कर्त्ता तुम्हीं कारण; तुम्हीं साधक तुम्हीं साधन।
तुम्हीं तुम हो, तुम्हीं हम हैं; न कुछ अपना बिराना है॥
अनेकों रूप में तुम ही; सभी नाटक तुम्हारा है;
तुम्हीं जय हो, तुम्हीं विजयी; हमारा तो बहाना है।
बिला पाया जगत यह है; न इस में हमने कुछ पाया;
मगर पाया तो यह पाया; कि पाना ही न पाना है।

—: शुभमस्तु :—

इति श्रीगीतामृत।



श्रीः ।

महाभारत-भीष्मपर्व ।

भीष्म-समर ।

सरल छन्दोबद्ध.

" सिखा दो देश को व्यवहार ब्रह्मचारी का ।"

"शैलेन्द्र"-"विनीति" कृत.

प्रार्थना.

मान लो, मान्य हो पै मान मेरा मान गये ।
सुजान ! क्या हुआ?;अजान तुम्हें जान गये ॥
"अहम्"जहां से गया,हो गये हम ही हम तो-
सच तो यह है,कि मिला ज्ञान हमें ज्ञान गये ।
नयन तलाश रहे,उन कमल-नयन का अयन-
कानके साथ ही कानन की ओर कान गये ।
छिपाये चिह्न बहुत, किन्तु चाल छिप न सकी-
हम उन्हें भीड़में भी दूरसे पहिचान गये ॥
"विनीत"आन बचाओ, है यही आन का दिन ।
श्याम ! पाओगे नहीं आन,कभी आन गये ॥

॥ श्रीः ॥

❋ कथा-प्रारम्भ । ❋

" केशव " रथ को ले गये; पाण्डव-दल की ओर ।
दोनों पक्षोंसे उठा; एक भयानक शोर ॥

दोनों जानिबसे दल उमड़े; सेना के वहां पहाड़ चले ।
भट "भीष्म"-"द्रोण" उस ओर चले; इस दलसे "भीम" दहाड़ चले ॥
"केशव" बोले-"हे पार्थ! फक़त; तू "भीष्म पिता" से बाजी ले ।
बाक़ी सेनासे लड़ने को; बल वीर " भीम " को रहने दे ॥"

" अर्जुन " ने दस बाण ले; छोड़े उनकी ओर ।
" माधव " से कहने लगे; मुसका कर शहजोर ॥

"यादव-पति! विजय-रूप, भगवन्!; पाण्डव-भक्तों की किस्मत है ।
जो उनका खुद सारथी-वेष; यह जगत-रूप, त्रिभुवन-पति है ॥
लीला है लीलाधर ! नटवर; अच्छा है खूब लड़ाइयेगा ।
मैं भी इच्छा का पुतला हूं; केशव ! आगे रथ लाइयेगा ॥"
बल वीर "भीष्म" रण धीर "पार्थ;" आपस में युद्ध मचाने लगे ।
"दुःशासन"-"भीम" परस्पर भिड़; अपनी ताकत जतलाने लगे ।
फिर "धृष्टद्युम्न"-"द्रोण" एवं; भट "नकुल"-"जयद्रथ" लड़ते हैं ।
श्री "धर्मराज" हुंकार मार; "शल्य" के सामने बढते हैं ॥
"शकुनी"-"सहदेव" सात्यकीसे; भट "भूरिश्रवा" भिड़ने आया ।
"भगदत्त"-"द्रुपद" से चिपट गया; "उत्तर" ने "सोमदत्त" पाया

सारी सेनामें जुड़े; अपने अपने जोड़ ।
दिये किसीके फोड़ सिर;दिये कहीं धड़ तोड़ ॥

गायन

विक्राल-ब्याल-रिपु-शाल-काल ।
उत्ताल-भाल-भरि भूमि डाल ॥
बल-वीर-धीर * तक तरल-तीर ।
बिन्धत शरीर * बह रुधिर-नीर ॥
शर-शक्ति छण्ड * रण रोष मण्ड ।
उद्दण्ड-चण्ड * कर खण्ड खण्ड ॥
नभ भुज उड़ान * शिर भूमि आन ।
धर कुधर मान * डोलत महान ॥

सेनाओं का युद्ध तो; रहा सैन्य के साथ ।
यहां "भीष्म"के युद्ध को;कहता हूँ,नर-नाथ!॥
"भीष्म"ने बीस शर महा-तीव्र;डाले"हनुमत"बलधारी पर ।
एवं दस बाण सुधार साध; मारे श्री "कुञ्जबिहारी" पर ॥
"पार्थ"पर छोड़ कर सहस बाण;लाख का झुण्डभी छोड़दिया ।
कुछ बाणोंसे छेद दी ध्वजा; कुछसे रथ-अग्र मरोड़ दिया ॥
कोमल-तन पर जिस समय;हुआ बाण-आघात ।
रक्त-धार बहने लगी; अरुण हो गया गात ॥
नव-जात यथा जल जात मध्य; कुंकुमके बिन्दु चुवाये हैं ।
होलीके रसिक-राज अथवा; रण-होलीमें रुचि लाये हैं ॥

प्रभुके तन पर वह चिह्न देख; "पार्थ" ने धनुष टंकोर किया।
षट-शर-समूह एक ही बार; "भीष्म" को लक्ष्य कर छोड़ दिया॥
दस बाण सारथी पर छोड़े; झण्डे पर सात बाण छोड़े।
रथ तोड़ दिया, मोड़ दी ध्वजा; कर दिये सभी घायल घोड़े॥

मुड़ा "भीष्म" की तरफ़ से; रण-केहरि-रण-धीर।
कौरव-दल पर बदल कर; लगा चलाने तीर॥

" पार्थ " के बाण का गुण देखो; धन्वा पर एक चढ़ाते हैं।
लेकिन चढ़कर एक की जगह; दस गुने वहीं हो जाते हैं॥
चलते चलते सौ होते हैं; लगते लगते हों लाखों शर।
पृथ्वी, आकाश बाण-मय था; सर कहूँ! शरोंका था सागर॥

जब "अर्जुन" ने कर दिये; लाखों भट संहार।
"भीष्म पिता" की ओरसे; मची मार पर मार॥

कुछ बाण चला कर साधारण; फिर अग्नि-बाण को सन्धाना।
प्रज्वलित बाण को देखते ही; सारा पाण्डव-दल थर्राना॥
लप् २ लपकत, धक् २ दहकत; जिस समय अग्नि-शर आया है।
घन् २ घहरत, झम् २ झमकत; "पार्थ" का वरुण-शर धाया है॥
पाण्डव-दलमें ज्वाला फैली; "अर्जुन" ने फ़ौरन बरसा की।
"भीष्म" के अग्नि-शर की गरमी; क्षण भर हीमें ठण्डी कर दी॥
कौरव-दल बिलकुल भींग गया; हथयार न चलने पाते हैं।
" भीष्म " भी पवन-शर के द्वारा; वह सारा नीर सुखाते हैं॥
वह हवा चली सन्नाटे की; रथ, घोड़े, पैदल उड़ने लगे।
"पार्थ" के सर्प-शर चलते ही; वह जोश भी ठण्ढे पड़ने लगे॥

दौड़े लाखों काले यकदम; कौरव-सेना को खाने लगे ।
उन सांपों के विषके मारे; बल वीर धीर चिल्लाने लगे ॥
"भीष्म"ने गरुड़-शर छोड़ दिया; तब सांपोंने पीछा छोड़ा।
इसके पीछे विकाल-महा; कुछ बाणों का जोड़ा जोड़ा ॥
"अर्जुन" ने उन्हें काट डाला; एवं वह बाण चलाये हैं ।
रथ पर, घोड़ों पर चार ओर; जो बादल बनकर छाये हैं ॥

"कृष्ण चन्द्र" ने ज़रासा; रथ को और बढ़ाय ।
"भीष्म पिता"के सामने; दिया तनिक मुसकाय ॥
"भीष्म पिता"ने क्रोध से; कहा-'दीन-प्रतिपाल ! ।
अब सँभालिये भक्त को; आया सिरपर काल ॥

"अर्जुन" तो मेरे योग्य नहीं, वह अभी उम्र में लड़का है ।
हाँ, आप बार को सहन करें; आप से हमारी समता है ॥
पाण्डव-दल की रक्षा-निमित्त; सारथी-स्वरूप बनाया है ।
वैसा नाच भी दिखाइयेगा; जैसा यह वेष बनाया है ॥
बस सावधान !-"इतना कहकर; भीष्मका बाण विषयार उठा।
पाण्डव-दल सारा काँप उठा; आकाश में हाहाकार उठा ॥
उस विषम-बाण के उठते ही; इक विषम-अग्नि सञ्चार हुई ।
डगमगी उठी महिपालों में; दिक्पालों में चिक्कार हुई ॥
"कृष्ण"ने कहा-" वह इन्द्र-बाण;किस रोज़ काम में आयेगा?।
अय पार्थ ! उसे जल्दी खींचो; वरना चौपट हो जायेगा ॥ "

आज्ञा पाकर नाथ की; वही चलाया बाण ।
ज्यों त्यों कर उस बाण से, बचे सैन्य के प्राण ॥



भीमका युद्ध ।

"भीम" भी गदा ले कर धाये; दल के दल तोड़मोड़ डाले ।
घोड़े मारे, हाथी मारे; लाखों के माथ फोड़ डाले ॥
रथ से रथ को टकराते हैं; हाथी के दाँत तोड़ते हैं ।
एक को पकड़ रगड़ा देकर; पृथ्वीपर मार छोड़ते हैं ॥

इस हालत पर जुड़ गये; सौ योधा एक साथ ।
दो सौ हाथों पर उठा; एक भीम का हाथ ॥

वह अस्त्र-शस्त्र का महा-घात; इस ओर गदा की मार पड़ी।
क्षण भर में सारी झड़ी रुकी; दल भर में हाय पुकार पड़ी॥
एक को दूसरे से मलकर; फौरन पृथ्वीपर लिटा दिया।
खोपड़ा किसी का खोल दिया; धूल में किसी को दबा दिया॥
अधमरे, मरे, वे लड़े, लड़े; सब पड़े, पड़े सिसकाते हैं।
भीम पर घात करनेवाले; सौ ही मुर्दे दिखलाते हैं॥

उस दिन सन्ध्या से प्रथम; दस सहस्र रथ मार॥
भीष्म—ओर से यकायक; जय की उठी पुकार।

भारत के धीर बीर योधा; यों अपनी टेक निभाते हैं।
जो कुछ मुँह से कह जाते हैं; उस को कर के दिखलाते हैं॥

अस्तु, इसी संग्राम में; होने आई शाम।
शंख—ध्वनि होने लगी; बन्द हुआ संग्राम॥
शान्ति—सूचना पर रुके; लौटे वीर तमाम।
पाण्डव—दल के साथ में; आये श्री घनश्याम॥

उस कोमल-विमल-कमल-तनपर; वह रक्त-बिन्दु दरशाते हैं।
पीताम्बर पर कुछ लाल लाल; छिटके—छिटके दिखलाते हैं॥
भृकुटी में क्वचित कुटिलता सी, नेत्रों में रिससी बढ़ी हुई।
बाहों में तनिक थकावट सी; काकुलकी लट कुछ कढ़ी हुई॥
मुसकान प्राकृतिक होठों पर; वह दया स्वाभाविक नज़रोंपर।
हे नाथ ! कृपा की दृष्टि रहे; "गोविन्द" पड़ा है चरणोंपर॥

आ पहुँचे जब शिविर में; प्रभु सेना के साथ।
नित्य-नियम कर भोज्य-हित; बैठे यादव-नाथ !॥

धीरे धीरे हँसते हँसते; भगवान रसोई पाते हैं।
द्रौपदी स-प्रेम परसती है; प्रभु रण की बात चलाते हैं॥
पाञ्चाली बोली—नाथ ! आज; कैसे तय हुई लड़ाई है ?।
किस की बीरता सुहाई है ?; जय-ध्वज किस भटने पाई है?॥

मधुसूदन कहने लगे; मृदुल—हास्य के साथ।
"आज विजय की ध्वजा तो; रही भीष्म के हाथ॥

जिसने दस सहस वीर मारे; उस की ही जय कहना चहिये।
हाँ, धर्मराज ! अब आगे को; चैतन्य हमें रहना चहिये॥
कल सेनापति शंख को करो, तुम शेष सैन्य संहार करो।
सब कार्य्य सफल हो जायेगा; अब से मत सोच विचार करो॥

भोजन के पश्चात् प्रभु; सोये शान्ति—निवास।
चरण-कमल को चाँपने; बैठा "गोविन्ददास"॥
धर्म—शिबिर में प्रात ही; जमा हुए सरदार।
"केशव" ने फिर रात का; ज़ाहिर किया विचार॥

"जो सब सरदार उचित समझें; मेरे विचार में सहमत हों।
तो आज "धर्म" की जानिब से; रण—धीर "शंख सेनापति हों"॥
जोड़ कर हाथ, बोले "विराट"-"भगवान! आप सब लायक हो।
आपके किये ही भिक्षुक हो; आपके किये ही नायक हो॥
श्री महाराज की दाया से; सेवक भी शोभा पाता है।
इतना सौभाग्य दास का है; यह उसका पिता कहाता है॥"

"श्री पति" की रुचि देख कर; कहा धर्मने—"वीर।
सेना के रखवार हैं; आज तुम्हारे तीर॥"

इतना कह "सेना-नायक" का; "शंख" को मुकुट बँधवाया है ।
आनन्द-कन्द "यदु-नन्दन" को; भट-वर ने शीश झुकाया है ॥
फिर मीठे शब्दों में बोले–"हे विजय–धाम हे बनवारी !॥
हे मुक्ति रूप ! हे दीन बन्धु !; हे गर्भांहारी ! अवतारी !॥
पार्थ से रथी, सारथी नाथ; भीष्म के सामने आये हैं ।
लेकिन उस महा–पुरुष से यश; श्री मुख से स्वयं सुहाये हैं ॥
फिर सेवक उनके आगे हो; यह दुष्कर सा दिखलाता है ।
लेकिन इस मूरति के बल पर; निर्भीक समर को जाता है ॥
इनही आजानु बाहुओं पर; यह सेवा शीश चढ़ाता हूँ ।
लेकिन अपना सारथी देख; कुछ कुछ माधव ! भय खाता हूँ॥
यदि महाराज सा मुझ को भी; दूसरा सारथी मिल जावे ।
तो कौरव-दल दल कर जन भी;जय का झंडा फहरा आवे॥"

शंख-वीर की विनय पर; विहँसे कृपा-निकेत ।
तथा सात्यकी की तरफ; किया तनिक संकेत ॥

"भाई सात्यकी ! आजके दिन; अपना पुरुषार्थ दिखा डालो।
इस धर्म-युद्ध के अवसर पर; अपना जी,जान लड़ा डालो ॥"
सिर पर "माधव" की आज्ञा धर;रथ साजा शीघ्र सात्यकीने।
तब तक पीछे जय कार किया; रण-सज्जित सैन्य कौरवी ने ॥

"शंख" वीर रथ पर चढ़ा; सबको शीश झुकाय ।
"भीष्म पिता" के सामने; चला निशान बजाय ॥

दश बाण "भीष्म"पर छोड़े हैं;"वीर" ने वहीं पर काट दिये।
बाण से बाण का किया काट; सौ बाण निकाल प्रहार किये॥

"भीष्म" के हृदय पर बाण लगे; तो महा क्रोध में छाये हैं।
विकराल-व्याल की भांति वहीं; सैकड़ों बाण सन्नाये हैं॥
छिद गया, शरीर शंख भट का; खूनी फ़व्वारे छूट पड़े।
पीछे से महा बाहु-अर्जुन; सारी सेना पर टूट पड़े॥
जिसको पाया दो टुकड़े कर; पृथ्वी पर उसे सुलाया है।
धड़ नाच गया, फिर लोट गया; नभ में माथा मड़राया है॥

कौरव-पति आगे बढ़ा; देकर एक दहाड़।
मानो चलते में कहीं; टकरा गये पहाड़॥

चिल्लाया दुर्योधन-"दौड़ो !; पहिले इससे संग्राम करो।
सारी सेना की नाक है यह; इसका ही काम तमाम करो॥"
चिल्लाना सुन कर उसी ओर; सैकड़ों महीपत धाये हैं।
"माधव" एवं "अर्जुन" दोनों; बाणों में कहीं छिपाये हैं॥
पार्थ ने कहीं से छिपे छिपे; वह तीक्ष्ण नराच चलाये हैं।
बात की बात में एक सहस; राजा भूमि पर सुलाये हैं॥
मणि-मुकुट लिथड़ते लोहू में; सुकुमार सिसकते जाते हैं।
हथयार कहीं दिखलाते हैं; सिर कहीं लुढ़कते जाते हैं॥
फिर "अर्जुन" ने वह काट किया; कट गया कौरवी अक्खड़पन॥
उस सारथि पर, रथ टूट गया; पृथ्वी पर लोटा दुःशासन॥

"दुर्योधन" इस दृश्य पर; दौड़ा धनुष सँभाल।
तथा "पार्थ" के सामने; जा पहुँचा तत्काल॥

घनघोर युद्ध का शोर सुना; शहज़ोर भीम फौरन आया।
लेकिन "भीम" को "द्रोण" गुरु ने; बीचमें वहीं पर अटकाया॥



युद्धका एक दृश्य ।

भीष्मने कहा-"हे द्रोणराज !; इस जगह न समय नष्ट कीजे ।
मेरी एवज़ जाइये आप; अधि नायक से लोहा लीजे ॥
तब तक मैं "अर्जुन"को देखूँ; "कुरु-पति"के आगे आया है।"
इतना कह "भीष्म पितामह" ने;अर्जुन पर बाण चलाया है ॥
बोले–"हो सावधान अर्जुन !; अब समर–केहरी आया है ।
मेरे परोक्ष में तूने भल; सारा कुरु–दल बिचलाया है ॥

मेरे आगे दिखला ताकत; तब समझूँ तू ताकत वर है ।
बस ध्यान रहे—मेरा शर है; और इस शर को तेरा सर है ॥
पार्थ ने कहा—"आप की शक्ति; मैं तो पहिले ही मानता हूँ।
दादा !"विराट--पुर" ही से वह; ताकत आप की जानता हूँ ॥
कहने से काम नहीं होता; अन्तर है, कहने, करने से ।
दादाजी ! पाण्डु बिन्दु है यह; जो डरा न अब तक मरने से ॥
हाज़िर है, आगे "अर्जुन" भी; हे पिता सामने आजाओ ।
तलवार, तीर या हाथों से; इस मेरे बलको अज़माओ ॥"

इतना कहकर "पार्थ" का; छिड़ा युद्ध घनघोर ।
वहां "द्रोण" से "शख" का; हुआ बराबर ज़ोर ।

"शंख" ने "द्रोण" की सेनाके; घोड़े सारथी काट डाले ।
अति क्रुद्ध युद्ध में व दोनों; भिड़ गये परस्पर मतवाले ॥
झट द्रोण दूसरे रथ पर चढ़; बढ़कर बोले—"क्या बढ़ता है !
यह बाण चढा,बस समझ मूर्ख;यमराज शीश पर चढ़ता है॥
जो इसी बाणसे तुझे शंख !; सुरपुर की हवा न खिलवाऊं ।
तो परशुराम की शपथ मुझे;युद्धमें न फिर मुँह दिखलाऊँ ॥"

ब्रह्म-बाण को द्रोण ने; किया शीघ्र संधान ।
जिसके केवल तेजसे; सुर भागे भय मान ॥

उस महा-बाण का महा तेज; सूर्य्य की भांति दिखलाता है ।
सात्यकी शंखसे हाथ जोड़; तब इस प्रकार समझाता है ॥
"हे कुँवर ! अगर आज्ञा हो तो; यह वार द्रोणका जाने दूँ ।
रथ को पीछे को पलटा दूं; यह आई मौत न आने दूं ॥"

कहा शंख ने-"सात्यकी, क्या करते हो ? बात ।
डरती है आघातसे; कब क्षत्रियकी जात ॥

आने दो ब्रह्म-अस्त्र आये; माथे पर उसे चढ़ायेंगे।
हँसते हँसते मर जायेंगे; पर पीठ नहीं दिखलायेंगे॥
ब्राह्मण से क्षत्री डरता है; जब ब्रह्म वृत्ति दिखलाई है।
लेकिन अब भय का काम नहीं; जब बात बाण पर आई है॥

जब तक द्रोणाचार्य ने; शरको लिया चढ़ाय।
पृथ्वी कांपी, नभ हिला; सुर "बोले चिल्लाय॥

यह पाप महा, अन्याय घोर; यह बाण ज़रा से बालक पर।
फूल पर वज्र का घात; अहो! धिक्कार है! ऐसी ताकत पर॥
हा हा! यह धर्म-युद्ध कैसा ?; स्पष्ट अनीति दिखाई है।
ओ द्रोण! द्रोण! तू बीर नहीं; ब्राह्मण भी नहीं कसाई है॥"

चौतरफ़ा उस बाणकी; फैली सहसा ज्वाल।
कहा "सात्यकी" ने-"कुँवर !;कर निश्चय तत्काल॥

यह महा-काल-कारी-शर है, बच्चों सी बातें करते हो।
आई मौत को डरो भैया !;क्यों जान-बूझ के मरते हो ? ॥"
"शंख" ने कहा-"मरना-जीना; जीवन के पीछे आता है।
लेकिन यह रण की वीर-मृत्यु; क़िस्मत से कोई पाता है॥
सात्यकी ! सत्यकी राह गहो;स्थिर रहने दो अब यहीं हमें।
जो मेरे रथ को लौटाओ; तो केशव की सौगन्ध तुम्हें॥
जीवनके व्यर्थ प्रलोभन में; जो रण से प्राण बचाऊंगा।
तो अपनी जाति-समाजों में; लज्जा से ही मर जाऊँगा॥"

समझा हारा "सात्यकी; तजी न लेकिन टेक।
चली अनेकों-कुँवर पर; चली न लेकिन एक।

जगमगति-ज्योति-मय-ज्वाला-मय;पाण्डव सैन्य को जलाता हुआ।
द्रोणाचार्य्य का वह ब्रह्म-अस्त्र;सात्यकि ने देखा आता हुआ॥

रथ फेर दिया-तो "शंख" सुभट; तत्क्षण ही रथ से कूद पड़ा।
वह सच्चा कर्म-वीर निर्भय; मृत्यु के सामने हुआ खड़ा॥
वह वीर-मातु का वीर-पूत; वीरों में वीर-काम करके।
चल दिया अमर-पुर अमर-शक्ति; अमरोंमें अमर नाम करके॥"

गायन

मान-मर्य्यादा पै, हम; इस तरह मर जाते हैं।
स्यार समझो उन्हें-जो; मौत से घबराते हैं॥
क्षत्रियो! देख लो; कहते हैं, इसे क्षत्रिय-पन-
वह गीदड़ हैं जो भपकियां दिखाते हैं।
ठोकरें पड़ रहीं, फिर भी खुशामदी बातें-
"विनीत" ऐसे ज़नाने यहां क्यों आते हैं?॥

पाण्डव-दलमें छा गया; यकदम हाहा कार।
एवं द्रोणाचार्य्य पर; पड़ी लाख फटकार॥
इस दारुण-संवाद पर; हुए न दल ख़ामोश।
तत्क्षण "धृष्टद्युम्न" का; उमड़ा ज़ाती जोश॥

रथ दौड़ा कर आगे पहुँचा; बोला—"अय आज्ञानी-ब्राह्मण!।
नाकुछ-नादान-दुध मुँहे पर; इतनी शेखी, यह ओछापन॥
समता का यह अर्थ ही नहीं; समतावाले की समता कर।
बालक पर इतनी निर्दयता; धिक्कार है, इस योधापन पर॥
ले चला, अस्त्र मेरे सिर पर; अब समतापन दिखलायेगा।
आटे दाल का भाव तुझको; मालूम आज होजायेगा॥"

"द्रोण" ने कहा-"ऐसा ही सही;अब पक्ष विचारा जायेगा।
अन्याय से वह संहार हुआ; तू न्याय से मारा जायेगा॥
पर ख़बरदार, आगे आकर; पीछे को क़दम न लौटाना।
मेरे अन्यायों का उत्तर; न्यायसे न्याय-प्रिय! दे जाना॥"

"धृष्टद्युम्न" कहने लगा-"हूँ इसको तैयार।
पहिले होना चाहिये; उसी ओर से वार॥"
यह सुन द्रोणाचार्य्य ने; किया बीर पर वार।
"धृष्टद्युम्न"ने काट कर, अपना किया प्रहार॥

खींच कर तीन शर छोड़ दिये;जो"द्रोण"का मस्तक फोड़ गये।
कौरवी-सैन्यके सैनिक-गण; इतने ही में मुँह मोड़ गये॥
उस ओर"भीष्म"ने दस-सहस्र; सेना को काट गिराया है।
एवं संग्राम रोकनेको; जयकारी शंख बजाया है॥

भीष्म-विजय पर होगया; बन्द युद्ध का काम।
दोनों दल वापिस हुए; करने को विश्राम॥
"धर्मराज-सात्यकि"तथा; "भीम-पार्थ"के साथ।
नृप "विराट"के शिबिरमें; पहुँचे"यादवनाथ"॥

करुणामय करुणा कर बोले;"राजन्! अब मोह छोड़ना है।
इस धर्म-युद्ध में एक नहीं; लाखों से नेह तोड़ना है॥
मैं जानता हूँ-पुत्र की चोट; सारी चोटों से बढ़ कर है।
लेकिन प्रण-वीर धीर जन की;सब चोट बचन पर निर्भर है॥
तुम स्वयं बुद्धि-बल-शाली हो; सच्चे हो धर्म-सहायक हो।
मेरे विचारसे वास्तवमें; पाण्डव-दलके तुम नायक हो॥
हे महोदये! इन लहरोंमें; वह अचल सुमेर न हिल जाये।
हे महाव्रते! इन शोकोंमें, मिट्टीमें बचन न मिल जाये॥

किसी विशेष विचार पर; है विशेष अवतार ।"
इसी सूत्र में समझिये; जन्म–मृत्यु–संचार ॥
यों कह समझाने लगे; नृप को करुणा-ऐन ।
लेकिन धीरज-वानने; कहे बिहँसकर वैन ॥

" उपकार-मूर्त्ति ! इन हाथोंसे;हाथ का खिलौना चला गया।
सेवक का छौना चला गया; देश का सलौना चला गया ॥
यद्यपि उसकी मृत्यु का शोक; सेवक को होना ज़ेबा है ।
लेकिन वह बेटा मरा कहां !;वह तो अब अमर हो गया है ॥
क्षत्रिय-कुल की मर्य्यादा पर; श्री धर्मराज की सेवा कर ।
लाला बलिदान होगया है; भारत–लालों की ममता पर ॥
इस लिये शोक की जगह प्रभो!;सेवक का सच्चा सुख कहिये।
दास भी इसी को हाज़िर है; केवल आज्ञा करते रहिये ॥"

गायन

यदुनाथ की सेवा है, कर्तव्य हमारा ।
महाराज की इच्छा है, भवितव्य हमारा ॥
संसार में तुम तक है, संसार सौख्य में–
तुम से विमुख नहीं है, मन्तव्य हमारा ॥
तुम सिन्धु हो, हम बुन्द हैं; भ्रमते हैं, विविध रूप;
इस से अधिक नहीं है ज्ञातव्य हमारा ॥
" शैलेन्द्र " दुःख,सुख सब कृष्णार्पण करो;
" गोविन्द " यही समझो वक्तव्य हमारा ॥

नृप की अविचलभक्तिपर; छाया जय जय कार ।
कह "शैलेन्द्र–विनीत"अब; जय जय करुणागार ॥

भोजन-सम्मति आदिके; पीछे करुणा धाम ।
सारी सेना के सहित; किया रात्रि—विश्राम ॥
प्रातकाल बजने लगा; वही जुझाऊ बाज ।
दोनों जानिबसे चले; भटवर साजे साज ॥

सेनाओं का घन—घोर—युद्ध; फिर से बाढ़ों पर आया है ।
"भगदत्त" भूप तो आज मनो; "जय" का ही बीड़ा लाया है॥



भगदत्तकी चढ़ाई ।

बाज की भांति झपटा सहसा; सेना बटेर सी दबक उठी ।
दल भर में खलबल फैला दी; दावानल मानो भबक उठी ॥
"भीम" ने सैन्य की दशा देख; आगे से जा कर ललकारा ।
"भगदत्त" के भीषण बाणों से; बह चला खून का फ़ौवारा ॥
तबतक हाथी ने रथ लेकर; कोश भर दूर तक फेंक दिया ।
औंधे मुँह घोड़े कहीं गिरे; सारथी कहीं बेहोश किया ॥

यह दशा अचानक होने पर; भटवर को कुछ लज्जा आई।
यक हाथ गदा का वह मारा; हाथी ने भी मूर्छा खाई॥
अंकुश से हाथी को सँभाल; हाथी को धक्का मार दिया।
"भीम"को वहीं पर मूर्छित कर;फिर औरोंका सामना किया॥
"भगदत्त" के एक बाण ही से, द्रुपदेश, उत्तरा, काशीपति-
एवं बलवान शिखण्डी भी; हो गये एक क्षण में मूर्छित॥

अब सेना की ओर को; झपटा वह बलवान।
फूट गया दल बदल कर; रहा न रणका ध्यान॥

गायन

पैदल थके से चले; घोड़ बिंधके से चले।
हाथी चिक्कार चले, वीर हा! पुकार चले;
भूला रण का ध्यान।
चार ओर मार मार; खिसके भटवर सवार;
किसको किसकी सँभार!-उझके झिझके से चले।

धर्मराज इस दशा पर; चले स्वयं ललकार।
"मूर्खों! इस भीरुता पर; कोट कोट धिक्कार॥

तुम मर्द हो, अथवा औरत हो; जो ऐसे भागे जात हो।
क्षत्री के अंश कहाते हो, बकरी बन कर मिमियाते हो॥
इस महा-यज्ञ की वेदी पर; जो जन बलिदान चढ़ायेंगे।
वे कीर्ति जगत में पायेंगे, मरने पर सुर-पुर जायेंगे॥
मौका पड़ने पर अगर तुम्हें; ऐसा साहस दिखलाना था।
तो घर में ही साड़ियाँ ओढ़; अन्दर पर्दा करवाना था॥
भैया! इस महा-समर में तो; प्राणों की बाजी आज की है।
आपके हाथ ही अय वीरो!; यह लज्जा धर्मराज की है॥"

जोश--भरी धिक्कार की; जब पहुँची फटकार।
मुड़ी सैन्य-चलने लगी; घमाशान तलवार॥

चारों जानिब से क्षत्रिय-गण; बाणों की झड़ी लगाते हैं।
लेकिन उस "देवदत्त" गज पर; कुछ असर न करने पाते हैं॥
भगदत्त ने जिसका सिर फोड़ा; हाथी ने उसका रथ तोड़ा।
उस महा-विकट-जोड़े ने बस; लाखों का जोड़ फोड़ छोड़ा॥
सौ "छत्र-धार" संहार वीर; हुंकार मारकर मतवाला।
बोला-"क्या पाण्डु-पक्ष में है ?; कोई योधा लड़नेवाला॥
वह देखो लड़नेवालों के; लाशों को श्वान खा रहे हैं।
अधमरे पड़े, कुछ सैन्य छोड़; वह भागे हुए जा रहे हैं॥
है आज प्रतिज्ञा ही मेरी; पाण्डव-दल मार गिराऊँगा।
भारत में एक छत्र-धारी; दुर्योधन-राज्य बनाऊँगा॥
अय कृष्ण-पार्थ! अब कहां गये;बढ़ आओ, जरा अगाड़ी को।
देखूँ, कुछ साहस रखते हो; या घर के फ़क़त खिलाड़ी हो॥"

इतना कह कर बढ़ चला; धर्मराज की ओर।
अर्जुन से कहने लगे; केशव करुणा-कोर॥

"अर्जुन! यह युद्ध बन्द रक्खो; अब धर्मराज की ओर बढ़ो।
भाई पर संकट आया है; भगदत्त वीर से समर करो॥
इतना कह कर रथ लौटाया; ज्यों ही आगे मधुसूदन ने।
टंकार मार कर धन्वा की; रिपु-दल लौटाया अर्जुन ने॥
पीस कर दांत पार्थ ने कहा; "बस, सावधान हो मतवाले !!
ले बचा प्राण-या लोहा ले; अब आ पहुँचे लड़नेवाले॥
हाथी के बल पर खल ! तूने;दल-मण्डल कुल बिचलाया है।
बस, सावधान ! अब दोनों को;फ़रमान मौत का आया है॥"

बिहँस कहा भगदत्त ने-" हुई पूर्ण अब आश।
तुझको ही कर रहा था; अय रण-धीर ! तलाश॥

अच्छा आया, कुछ आगे बढ़; भगदत्त भी दो दो हाथ करे ।
जब तुझ ऐसा शूरमा मिले; तब चण्डी का कुछ पेट भरे ॥
पार्थ का वार उस भटवर ने; आते ही काट गिराया है ।
उसके बदले में अर्जुन पर; बाणों का जाल बिछाया है ॥
बरों के छाते अंग हुए; पीपल की हण्डी माथ हुए ।
बे वश बेचारे बीर हुए; लोहू से लथ पथ हाथ हुए ॥
घोड़े को बेहद टिसकाया; लेकिन रथ आगे बढ़ा नहीं ।
गज ने रथ ऐसा फेंक दिया;वह पार्थ कहीं, श्रीनाथ कहीं ॥



भगदत्त पराक्रम ।

फिर एक बाण ऐसा मारा; दोनों ही को मूर्छा आई।
लेकिन गिरते गिरते बोले; बजरंगीसे यादवराई ॥
"हनुमान ! तुम्हरे हाथ में है;लज्जा रथ की और अर्जुन की।
प्यारे ! बस यही याद रखियो;अटकी है नाव विभीषण की ॥

गायन

अंजनी कुमार मँझधार निराधार नाव;
ऐ हो बलधार याहिं धारमें बहैयो ना।
हां हां वीर बांकुरे हैं साँकरे बिहारी पाहिं;
बन्धु प्रान पार्थ आन जान बिसरैयो ना ॥
धर्म रवि बचइयौ; कर्म कंठहि मिलैयौ;
बिजयविदेही मोहिं अभय भुलैयौ ना।
खलन निकन्दन पौन नन्दन गराज दै;
काज ब्रजनन्दन कौ; लाज कौं डुबैयौ ना ॥

कहते कहते इस तरह; नाथ हुए ख़ामोश।
अब तो भट भगदत्त का; बढ़ा और भी जोश ॥

" बन गया काम,वह पड़ा श्याम;नाकाम पार्थ वह सोता है।
बस पिंजड़ा अब तो हाथ हुआ; लो–उड़नेवाला तोता है ॥
ठोकर मार कर पार्थ का सिर; पैरों से चकनाचूर करूँ।
भारत के रण–दूल्हे भारत;और कृष्ण का किस्सा दूर करूँ॥"

बिहँस कहा बजरंग ने–" बढ़े न अधिक तरंग।
मन की मन में–मनमरे !; मर जायगी उमंग ॥

रथ को टस से मस ही कर दे; वह मांका कौन दुलारा है।
यादव–पति की ओर से आज, अंजनीलाल रखवारा है ॥

यम-बरुण-कुबेर-इन्द्र आयें; ब्रह्मा आयें, महेश आयें ।
त्रैलोक्य-भुवन सब मिलजायें;यमराज स्वयं बल दिखलायें ॥
स्वामी की आज्ञा पूर्ण न हो;तब तक जन को विश्राम नहीं ।
हूं तोड़ न दांत तेरे गज के; बजरंगी मेरा नाम नहीं ॥

गायन

रथको तज जो समरत्थ कहूँ;
रणके हित राव-रजायसु पाऊँ ।
सिगरे दल सूर लँगूर लपेट;
करौं चकचूर कै धूर उड़ाऊँ ।
प्रतिपच्छ अलच्छहु पच्छ गहैं;
बिनु पच्छ से पच्छिन भच्छ बनाऊँ ॥
किहि काज अबेर, सबेरहि के हित;
एकहि बेर में, बेर से खाऊँ ।

पवन-पूत ने चतुर्दिश; रथ को लिया लपेट ।
एवं करके बीच में; बैठे पूछ समेट ॥
भगदत्त क्रोध में बाणों पर; बाणों की झड़ी लगाता है ।
लेकिन उस महा-वज्र-तन से; बेकार बार दिखलाता है ॥
पर्वताकार बजरंगी से; वह विषम-बाण टकराते हैं ।
लेकिन लगने से पहिले ही; दो टूक पड़े दिखलाते हैं ॥
भगदत्त ने हाथी को पेला; वह आकर रथ से टकराया ।
गजने बीच में सूँड़ डाली; हनुमत ने रथ कुछ छुटकाया ॥
दांव समझ बजरंग ने; दी वह सूंड़ दबाय ।
उखड़ गये दोनों दसन; गिरा वहीं भर्राय ॥

उसी समय चैतन्य हो; अर्जुन, माया–धाम।
भटवर से करने लगे; महा–घोर–संग्राम॥
चेतन होकर जिस समय; जागे चेतन–राशि।
पूँछ खींच बजरंग ने; रथ का किया निकास॥

अर्जुन बोले–"भटवर तू ने; बेशक पुरुषार्थ दिखाया है।
लेकिन अब से नाथ का दास;यह प्रण कर आगे आया है॥
एक ही बाण से यदि तेरा; हाथी अर्जुन से मरे नहीं।
तो केशव की सौगन्ध उसे; फिर धनुष हाथमें धरे नहीं॥"

खींच कान तक ब्रह्म–शर; छोड़ दिया तत्काल।
उसी बाण ने आन में; भेजा दिया निकाल॥

चिक्कार मार पीछे लौटा; दस पांच हाथ तक उछल गया।
सूँड़ को जमीं पर पटक दिया;और प्राण पखेरू निकल गया॥
"भगदत्त" मगर जंघा देकर; हाथी को ठीक सँभाले है।
ऊपर को भुजा उठाये है; तरकश से बाण निकाले है॥

"अर्जुन" ने समझा यही; है हाथीमें जान।
नीचा सिर कर हाथ से; डाल दिया धनु-बाण।

"माधव" बोले-"भैया अर्जुन !; यह कौशल-नीति वहां की है।
क्या तुम्हें नहीं दिखलाता है !; यह दुश्मन की चालाकी है॥
वह देखो, जांघ लगाये हुए; हाथी को शत्रु टिकाये है।
तुमको बद होश बनाने को; मुर्दे में जान बनाये है॥
दुश्मन इस वक्त टेक पर है; देखो क्या समय जा रहा है !।
हाँ वीर ! सँभल ! अय पार्थ सँभल; वैरीका वार आ रहा है॥"

अर्द्ध-चन्द्र-शर तान कर; छोड़ा बलके साथ।
लगा लोटने ज़मी पर; धड़ से कटकर माथ॥



भगदत्त वध ।

फिर पार्थ वीर आगे बढ़कर; वह नामी हाथ बढ़ाते हैं ।
पृथ्वी पर बारह कोस तलक; हाथी ही पड़े दिखाते हैं ॥
रण--भूमिरक्त-सर बनकर अब; बीभत्स रंग दिखलाती है ।
हाथी घोड़े डूबने लगे; लाशें ऊपर उतराती हैं ॥
कुण्डल-किरीट-हथियार मुकुट, मछली से बहते जाते हैं ।
अधमरे सिसकते पड़े पड़े; "जय माधव" कहते जाते हैं ॥

गायन

वीरो, वीर दृष्टि से देखो; यह वीरों की होली है ।
वीर बाँह, तरकश पिचकारी; बाण गुलाल वीर पर मारी ॥
धूल अबीर गगन तक सारी;रक्तरंग की रणरंगोंने केसर घोली है।
नाचत धड़ जनु स्वांग रचाये;भूत, पिशाच स्वान जुड़ आये ।

अपने अपने राग सुनाये; तनके टांके तोड़ २ खन चोली खोली है
वीर बढ़ें, जयकार मचावें; सुर-पुर-देव सुकीर्ति सुनावें।
शिर, भुज, नरियल आदि उड़ावें; कायर भागे–कहैं॥
अरे होली सो हो ली है। वीरो, वीर......होली है।

उस ओर प्रतिज्ञावश भटवर; "भीषम" ने अपना काम किया।
एवं अपनी शंखध्वनि कर; तत्काल बन्द संग्राम किया॥
पीताम्बर पर वह रक्त–विंदु; अलकें बिखरी घुँघरारी सी।
"गोविंद दास" पर दया करें; बड़री अँखियाँ अरुणारी सी॥

गायन

वह मधुर मुसकान आँखोंमें रहे।
दीद का अरमान आँखों में रहे।
कान में आती रहे; झनकार सी;
कान में स्वर, कान आँखों में रहे।
प्रेम के सोते उबालों पर रहें;
रस-भरा "रसखान" आँखों में रहे॥

"धर्मराज" के हृदयमें; हुआ एक सन्देह।
भोजन करते समयमें; बोले सहित सनेह॥
"भगवन्! जो यों ही भीष्म कहीं; सेना संहारे जायेंगे।
तो दो तीन ही रोज़ भीतर; सब योधा मारे जायेंगे॥
कुछ नहीं समझ में आता है; इच्छाधर की इच्छा क्या है?।
अन्तर्यामी! बतला तो दो; आखिर इसका भविष्य क्या है?॥
"यादव-पति" थे अभी तक; मौन तथा चुपचाप।
"द्रुपद–सुता" कहने लगी–क्यों अकुलाते आप॥

प्रभुने आँखों के आगे जो; सेना संहार कराई है ।
हे महाराज ! विश्वास रहे; इसमें भी कुछ अच्छाई है ॥
जिसको न विलम्व हुआ क्षणभर;दुखियाका चीर बढ़ाने में ।
उनको कितना विलम्ब होगा; दासों को विजय दिलाने में ॥
इसलिये प्रार्थना है मेरी; दुर्विषय न आप विचारा करें ।
यह शत्रु-सैन्य संहारा करें; प्रभु, प्रभुके चरण निहारा करें ॥

गायन

जो तर्कना से विमुक्त होकर; इन्हीं की सेवा किया करेंगे ।
उन्हीं को केशव भी मान अपना; सदा सहारा दिया करेंगे ॥
जो मान लेंगे इन्हीं को सरबस;यह मान लेंगे उन्हीं को बरबस ।
वे नाम इनका लिया करेंगे; यह नाम उनका लिया करेंगे ॥
वे इनको ढूंढ़ेंगे होके विह्वल; यह उनमें बैठेंगे होके निश्चल ।
छके रहेंगे सदैव दोनों; जो प्रेम–प्याले पिया करेंगे ।
"विनीत"तुमको शपथ उन्हीं की; जो इस प्रतिज्ञासे दूर भागो-
कि ज़िन्दगी भर उन्हीं के बलपर; मरा करेंगे, जिया करेंगे ।

इन वाक्यों ने धर्मपर; किया सुधा का काम ।
सब ने माया–धाम युत; किया रात्रि विश्राम ॥

फिर प्रात हुआ फिर शंख बजा; फिर हुई युद्धकी तैयारी ।
"भीम" के मुक़ाबिल होने को; थी आज"सुशर्मा"की बारी॥
सौ बाण"भीम" पर चले मगर; बिचले न वीरवर रत्तीभर ।
हो गई लाख पर जब गिनती; तो आया रक्त उबालों पर ॥
एक ही गदा में रथ तोड़ा; और वह लालिमा ज़र्द कर दी ।
हाथों, पैरों से कुचल, कुचल; सब सेना गर्द बर्द कर दी ॥

फिर हाँक मार मुक्का मारा; चिल्ला कर भागा बेचारा।
पीछे से वीर "वृकोदरने; कायर कायर" कह ललकारा॥

"भूरिश्रवा" आगे बढ़ा; जोरों से हुंकार।
"भीम, वृकोदर वीर—वर;अपना तेज सँभार॥

क्या उसे बुलाता है ? मैं हूँ ; ले आगे बढ़ अज़मायश कर।
अये बड़े डीलके अभिमानी !; सो जा शठ मेरे बाणों पर॥



घटोत्कच और अलम्बुषका बाण-युद्ध।

गायन

सरपट सरपट, लपट झपट भट,—
—चपट लपट किलकार ।
हुकार....जयकार ।
बज्र प्रहारी, नेग प्रचारी;
धर मार, धर मार ।
विकट वीर वर, फिरत कुधर—
—धर, धर धर महिधर भार ।
मानी प्रचण्ड हैं, बल निधि अखण्ड हैं,
उद्दण्ड, ब्रह्मण्ड, राखो करतार ।

दोनों में यहाँ लगी चलने; सेनाएँ वहाँ लगीं लड़ने ।
भीम सुत सुबीर लगा बढ़ने; कुरु—दल पर मार लगी पड़ने ॥
जब बढ़ा "घटोत्कच" कुरु—दल पर; सामने अलम्बुष आया है ।
दोनों पिशाच दोनों विराट; दोंनों ने बल दिखलाया है ॥
बाणों की धार मुद्गर की मार; दोनों ने ख़ासी दिखलाई ।
फ़िर छोड़ दिया रथ दोनों ने; और शुरू हुई हाथा पाई ॥



घटोत्कच और अलम्बुषका मल्लयुद्ध ।

गायन

एक एक तें विकट एक पै एक सिधायौ ।
झटक पटक चट उलट पलट पुनि पुनि लपट्यौ ॥
हाथ हाथ दै हाथ, एक आकाश उड़ानौ ।
देखत एक अदेख वेष धर आनु जुड़ानौ ॥
एक उपारौ बिटप, एक पाषाण उठायौ ।
एक लात आघात, एक मूकन मुकरायौ ॥

सुभट सिमट बुट जात अटक कहुँ लटक जनाये ।
नटखट चटकत चोट चपल चौयँन उमड़ाये ॥

अति क्रुद्ध वीर, लपटे सुवीर; फिर पकड़ वीर ने दे मारा ।
छाती में मारी एक लात; मर गया " अलम्बुष " हत्यारा ॥



अलम्बुष–वध ।

कहा इस तरफ़ भीष्मने; "सावधान हो नाथ ! ।
करामात दिखलायेगा; यह बुड्ढे का हाथ ॥"

इतना कह एक बाण द्वारा; रथको पीछे लौटाय दिया ।
मौक़ा पाकर निश्चित दलका; "भीष्म" ने वहीं संहार किया ॥
"यादव-पति" लौट न पाये हैं; और विजय-शंख फिर बाज गया।
पाण्डव मन मारे लौट पड़े; ख़ुश होकर कौरव-राज गया ॥

"धर्मराज" ने आज फिर; कहा "ग़रीब–निवाज़ !।
किस प्रकार से रहेगी; पाण्डव–दल की लाज ॥

"भीष्म" जी रोज़ दश सहस वीर; काटकर अगर यों जायेंगे।
तो किसी रोज़ रण–मण्डल में; ख़ाली केशव दिखलायेंगे ॥"
केशवने कुछ न जवाब दिया; कुन्ती ने उस दिन समझाया ।
"त्रैलोक–नाथ की साया में; बेटा, क्यों इतना घबराया ? ॥
उस महा-ज्वाल-लाक्षागृह में; जब हम को कुरु-पति ने डाला।
चौतरफ़ा आग जल रही थी; था कौन वहाँ पर रखवाला ?॥
वह ही तो नाथ साथ में हैं; सारथी वही करुणाकर हैं ।
हे बेटा ! पहिली याद करो; जो वहाँ थे, वही यहाँ पर हैं ॥
तुम तो उनके अनुगामी हो; जय, यश का ताज उन्हीं को है ।
तुम एक भक्ति में लगे रहो; भक्तों की लाज उन्हींको है ॥"

गायन

भूल जाओ लोक–सौख्य–शोक, परलोक–ध्यान;
भूल जाओ ज्ञान, मान, आन अधिकारी की ॥
भूल जाओ जय औ पराजय की आश सभी;
भूल जाओ वंश–वृद्धि, याद घरबारी की ॥
भूल जाओ इच्छा निज, परीक्षा का काल जान;
भूल जाओ याद आज बन्धु–महतारी की ॥

स्वर्ग भूल जाओ और मुक्ति भूल जाओ पर-
एक मत भूलो आश विपिन बिहारी की ॥

प्रात काल फिर समर के; बजने लगे निशान ।
उसी तरह भिड़ने लगे; धीर वीर बलवान ॥

"पार्थ" ने भीष्म के आगे जा; टंकार मार कर ललकारा ।
भीष्म ने जवाब दिया फ़ौरन; अर्जुन को बाणों के द्वारा ॥
पार्थ ने कहा-"बस पूज्य पिता; चार दिन प्रतिज्ञा रक्खी है ।
हो चुकी आज तक मन मानी; अब मरे न मारे मक्खी है ॥
जो आज मेरी समता में प्रभु !; दस सहस मारकर दिखला दो ।
तो निर्विवाद मैं भी कह दूँ; भगवन् ! तुम सच्चे योधा हो ॥
भीष्म ने कहा-बस उबल न चल;सब करतब खुद दिखलायेगा ।
यह गर्व हवा हो जायेगा; यक सपना सा रह जायेगा ॥
गिन कर दस सहस मार डालूँ; जितने तेरे हमराही हैं ।
है आन मुझे क्षत्रिय-प्रण की; और "यादव-साथ" गवाही हैं ॥"

फिर दोनों जानिब हुआ; वही समर घमशान ।
उसी तरह चलने लगे; वह जादू के बान ॥

अग्निपर वरुण, वरुण पर पवन; वायु पर सर्प,-शर धाये हैं ।
सर्प पर मयूर, मयूरों पर; निशिकारी बाण चलाये हैं ॥
निशिकर पर दिन कर बाण चला;फिरसे प्रकाश ज्यों त्यों पाया ।
भीष्म ने एक ही शर-द्वारा; रथ को फिर पीछे लौटाया ॥
फिर बोले-"माधव सावधान; अब करामात दिखलाता हूँ ।
इस सजी सजाई सेना की; फिर से धिज्जियाँ उड़ाता हूँ ॥
"अर्जुन" ने और सजग होकर; बाणों की वर्षा कर डाली ।
काट पर काट हो गया वहाँ; भट के सब बाण गये खाली ॥

"पर्वत-शर" का अन्त में; किया भीष्म सन्धान ।
क्षण भर में गिरने लगे; लाख लाख पाषाण ॥

भूपर पहाड़, नभ में पहाड़; टकराते उड़ते जाते हैं ।
भादों केसे दल बादल हैं; परनीर नहीं बरसाते हैं ॥
बरसाते हैं, मिट्टी, पत्थर; वीरों से खून बहाते हैं ।
वह अंधकार फैलाते हैं; "माधव" तक नज़र न आते हैं ॥
कृष्ण ने कहा-"अये पार्थ वीर!; क्या बाजू ढीला डाला है?।
खींचो झट "वज्र-बाण", वरना;सब चौपट होने वाला है ॥"

आज्ञा पाकर पार्थ ने; "वज्र-बाण" संधान ।
पलभर में सब तरफ के; तोड़ दिये पाषाण ॥

आकाश से नीचे पटक पटक;चिड़ियों की तरह चींथ डाले ।
मिट्टीकी तरह तोड़ डाले; सुरमे की तरह पीस डाले ॥
जब तक कि'भीष्म'का यह करतब;अर्जुन द्वारा बरवाद हुआ।
तबतक कौरव-दल जानिबसे;फिर "विजय-शंख"का नाद हुआ॥
उस विजय-नाद को सुनते ही; अर्जुन इत उत ताकने लगे ।
"हैं!महाराज ! क्या बात है? यह"?'पुरुषोत्तम'से पूँछने लगे ॥
माधव बोले-"बस बात है क्या?;'भीष्म'ने प्रतिज्ञा पूरी की ।
दस सहस रथी संहारण कर; यह अपनी विजय सूचना दी ॥
अर्जुनने तब समझा मन में, बेशक भीष्म हैं असाधारण ।
प्रत्यक्ष यहाँ दिखलाता है; उस ब्रह्मचर्य का प्रतिपालन ॥

विद्या, बुद्धि, विवेक, बल; ज्ञान-योग-भण्डार ।
तीन लोक की शक्ति का; ब्रह्मचर्य्य आधार ॥

आजीवन शादी हुई नहीं; विषयों में कभी न विचलाये ।
पर ब्रह्मचर्य के कारण ही; वे पूज्य "पितामह" कहलाये ॥

इस कठिन बुढ़ापे में भी जिन्हें; वीरोंका वीर जानते हैं।
साधारण जन तो अलग रहे; माधव तक उन्हें मानते हैं॥
बस इसी तरह जिस दिन यह व्रत;पालन अपना परिवार करे।
उस दिन भारत का बच्चा भी; भारत का बेड़ा पार करे॥

किन्तु, आज उद्धार की; है सब झूठी आश।
भारत का हर नव-युवक; है अध मुर्दा लाश॥

जिस उम्र में बच्चे खेलो में; फूँक से पहाड़ उड़ाते हैं।
उस उम्र के बच्चे हाय! आज; मक्खियाँ मारते खाते हैं॥
परमेश्वर झूँठ न बुलवाये; क्या कहे ? लेखनी बेचारी।
दस वर्ष के प्यारे बच्चे को; क्या है ?-सुज़ाक की बीमारी॥
ओ लापरवाह पिता,माओ !; चुल्लू भर जल में डूब मरो।
ऐसी बद ज़ात कमीनी क्यों; संतान व्यर्थ उत्पन्न करो ?॥
जिस लड़के का मुँह फीका है; एवं कुछ निर्बल सा तन है।
मैं डंका देकर कहता हूँ; लड़का आपका बदचलन है॥
कुछ भोले भाले मात, पिता; इस में ही भूले रहते हैं।
लड़के की कमज़ोरी पर वे; स्पष्ट तौर से कहते हैं॥
"भैया"क्या करें ? छोकड़े का; छुटपन से बदन इकहरा है।
हम खूब खिलाई करते हैं; पर उसके अंग न लगता है॥
कुछ उसका दिल भी आठ पहर; खेलोंमें अटका रहता है।
भोजन भी अधिक न करता है;निशि दिन ही रटता रहताहै॥
फिर इन रोज़ों की बड़ी बड़ी; लम्बी और कठिन पढ़ाई है।
आगे फिर ठीक ठाक होगा; ललुवा की अभी सगाई है॥

मैं कहता हूँ-" मूर्खों !; खोलो अपने कान।
अपने लाला की कथा;सुनो लगा कर ध्यान॥

लालाजी न तो इक हरे हैं; ना दूषित कोई भोजन है।
जो मुझसे साफ़ पूछते हो; बदचलती में उनका मन है॥
किस तरह कहूँ? और क्या कह दूँ; जैसा लालाजी का फन है।
पस इतना ही काफ़ी समझो, जीवन के धन से निर्धन है॥
वह दिन दिन घुलता जाता है; तुम उसे देखते रहते हो।
मैं इतना ही कह सकता हूँ; तुम अंधे बहरे बनते हो॥
जो आंख तुम्हारे होती तो; इसका कारण तलाश करते।
जो अवगुण उसका सुन पाते; तो शठ को मार लाश करते॥
लो सुनो अगर सुनना हो तो; इसका कारण तो ज़ाहिर है।
लेकिन इसका सुबूत क्या है ?;बस अटकी बात इसीपर है॥
जिस बालक की आंखों के तले;कुछ कालापन सा आजाये।
बत्तीस बरस से यदि पहिले; गालों में पोलापन आये॥
बांई ओर की धुक धुकी जो; कुछ तेज़ धड़कती जान पड़े।
माथे पर सिकनें नज़र पड़ें; कुछ कमर लचकती जान पड़े॥
बालापन में बढ़ जाय शौक़; बालों का तेल फुलेलों का।
रस लेने लगे वहां दिन प्रति; शृङ्गार रसीले खेलों का॥
बे वक्त जँभाई, अंगड़ाई; आलस मुँह पर रूखापन है।
बस फ़ौरन आप समझ जायें;यह लड़का निरा बे चलन है॥
क्यों है ? इस को मैं समय देख; ज्यादा तो नहीं बढ़ाऊँगा।
हां, दो शब्दों में इस यम से; बचने का यत्न बताऊँगा॥
सौगन्ध करो—आजसे कभी; बच्चा बाज़ार न टहलेगा।
जो टहलेगा तो साथ साथ; घर के बुज़ुर्ग को ले लेगा॥

बच्चे को कभी अकेला या; आज़ाद नहीं रहने देंगे।
दिन में उसका हम तीन बार, पीछे पड़ इम्तिहान लेंगे॥
अट्ठारह से पहिले उस को; हरगिज़ न अकेला छोड़ेंगे।
जो ज़रा चाल में फ़र्क़ हुआ; तो हड्डी हड्डी तोड़ेंगे॥
हमजोली ! तुम को नमस्कार; हम सबको है दंडवत तुम्हें।
घर में बढ़ना, घर में पढ़ना; बाहर कढ़ना है पाप हमें॥
चाण्डाल चौकड़ी घेर न ले; सुहबत से बचें ज़नाने की।
रंडों संडों से दूर रहें; खाजायें न हवा ज़माने की॥
उन्नति उन्नति चिल्लाते हो; उन्नति की मूल कटाते हो।
इतना प्रबन्ध जो कर न सके; तो व्यर्थ पिता कहलाते हो॥

गायन

सिंगार तो गार सियार का है;अति प्यार मनो अंगार अँगीठी।
बहु बाट अकाट विराट असी;अति चाट जनौ जम-घाट कीचीठी
सतकार हृदै फटकार मुखै; प्रतिकार यहै, बदकार सौं पीठी।
सुकुमार पै मार दुलार सी हो;ललकार रहै चुमकार सौं मीठी॥

खैर दूसरे दिन हुआ; फिर दारुण-संग्राम।
यहां "भष्मि" के सामने; हुए "पार्थ घनश्याम"॥

भीष्म ने कहा-"माधव,अब तक; तुम कुशल-पूर्वक जाते हो।
देखूं पांडव-दल की लज्जा;क्यों कर अब आज बचाते हो ?॥"
इतना कह,बाण तान मारे; "हनुमान" हुवे घायल पहिले।
"केशव, अर्जुन" घोड़े यह सब;मूर्छा से हुये अचल पहिले॥

अर्जुन ने फिर वह हाथ किये; भीष्म को शरों से छेद दिया ।
क्षणमें घोड़े सारथी रथी लाखों वीरों को भेद दिया ॥



भीष्मार्ज्जुन युद्ध ।

कहा "भीष्म" ने पार्थ से–; "सावधान हो पार्थ !।
अब इस बुड्ढे हाथ का; देख ज़रा पुरुषार्थ ॥"

"नारायण-बाण-" भीष्मने पढ़;ज्यों ही सैन्य पर चलाया है।
पृथ्वी काँपी, आकाश हिला; और देव-लोक थर्राया है ॥

भारतकी दशों दिशाओं में; एक दम बिजली सी टूट पड़ी।
जल उठी प्रलय कैसी ज्वाला; दलकी दल-बन्दी टूट पड़ी॥
कहा नाथ ने ज़ोरसे-;" सुनो सभी सरदार।
जो चाहो कुछ ज़िंदगी; तो छोड़ो हथयार॥
यह बाण मुक़ाबिलवालों की; यक साथ लाश कर डालेगा।
जो इसे न पीठ दिखाई तो; यह सर्वनाश कर डालेगा॥
अर्जुन! अर्जुन! मतकर विलम्ब; यह महा-मृत्यु आई तेरी।
छोड़ दे अस्त्र, फेर ले पीठ; हे सखा! तुझे सौगन्ध मेरी॥"
आज्ञा पाकर पार्थ ने; छोड़ दिये हथयार।
पीठ फेर कर झुक गये; बड़े बड़े सरदार॥
जिसकी जानिब वह अस्त्र मुड़ा;उसको निशस्त्र उलटा पाया।
उलटा आया हर जानिब से;भीमकी तरफ़ को झपटआया॥
केशव पुकार कर फिर बोले; " भैया! याचना हमारी है।
इस समय गदाका त्याग करो; वरना मेरी लाचारी है॥"
भीमने कहा-"हे जग तारण!; सेवक आपका पुजारी है।
है आन पै प्राण-दान-कर्त्ता;जीवन का नहीं भिखारी है॥
"विश्वम्भर" की साया पाकर;इस काल-बाण से डर जाऊँ।
तो महाराजका सच्चा और ; विश्वासी दास न कहलाऊँ॥
जीवन जन्म और मरण तीनों; जिनकी दृष्टि के सहारे हैं।
मैं दीन उन्हीं के बल पर हूँ; वे दीना नाथ हमारे हैं॥
फिर ज़रा प्राण के लालच में; क्षत्रियता नाश करा दूँ मैं।
आपको, पिता को, माताको; अपयशका तिलक लगा दूँ मैं॥
क्या कहेगा? कोई भारत में; कोई भी वीर न था ऐसा।
जो "भीष्मपिता" के बाणों को; आकर सहता, वीरों जैसा॥

हे नाथ ! जन्म और देह, गेह; जायेंगे, फिर मिल जायेंगे ।
लेकिन कलंक का टीका फिर, अंत तक न धोने पायेंगे ॥

यहाँ "भीम" कह रहे थे; प्रभु से ऐसे बैन ।
बाण झपट आया, वहाँ; कूदे करुणा-ऐन ॥

देखा जब भक्त-वत्स ने अब; भक्त की टेक ने विवश किया।
रथ छोड़ दिया और सेवक को; पहलू के नीचे छिपा लिया ॥
जब बाण पास में आया तो; प्रभुने खुद उसको पकड़ लिया।
उस तेज में तेज समाप्त हुआ; देवों ने जय जय कार किया ॥

गायन

भक्तों की टेक को जो, माधव ! न तुम निभाते ।
तो आज भीमके भी, दो भाग नज़र आते ॥
क्या चीज़ था ? बिचारा प्रह्लाद खलके आगे ।
सर्वेश ! जो समय पर "नरसिंह" बन न आते ॥
देखो तो यह सरलता त्रैलोक झुके जिनको ।
सेवक के वास्ते वह; जीवों को सर झुकाते॥
"गोविंद" पतित-पावन; देते न हाथ तुझको।
"शैलेन्द्र" तेरे पातक; रौरव में जला खाते ॥

हाथ जोड़कर "भीष्म"ने; कहा त्रिलोकीनाथ।
सद्भक्तों के साथ है; यही दया-मय हाथ ॥

सौभाग्य-वती कुन्ती जी हैं; सुघड़ी में बेटे जाये हैं ।
सौभाग्य-वान यह बेटे हैं; यादव-पतिसे पति पाये हैं ॥
अर्जुन-रूपमें विधाता ने; श्रद्धा का सार निचोड़ा है ।
फिर भक्त-वश्य से सखा मनो; सोना-सुगन्धिका जोड़ा है ॥

भीम सा तेज-बल-शक्ति-मान; धर्म सा सत्य-शान्ती-धारी ।
सहदेव, नकुल से ज्ञान-वान; कुन्ती देवी सी महतारी ॥
भद्रा, द्रौपदी समान त्रिया; अभिमन्यु सरिससुत निर्भय है ।
मैं कहता हूँ ऐसा कुटुम्ब; नर-धाम नहीं देवालय है ॥
स्नेह-सूत्र, एकता, धर्म; श्रद्धा-भक्ति का प्रकाश जहाँ !
जगका बन्धुत्व-विकास जहाँ; निश्चय हैं जगन्निवास वहाँ ॥

भीष्म-विजय-के बाद में; युद्ध हो गया बन्द ।
निज सेना के साथ में; गमने यादव-चन्द ॥
प्रात काल फिरसे उठीं; युद्ध-शंख-ध्वनि घोर ।
फैला चारों ओर फिर; मार मार का शोर ॥

मुद्गर ने गदर मचाया वह; सब सदर बदर से भाग पड़े ।
जब गदा उठी तो शाह व खुद; मानिन्द गदा लाचार खड़े ॥
छूटे त्रिशूल के शूलों ने; वीरों को धूल चटा छोड़ी ।
जब काम न दिया कटारों ने; बाणों की मेघ-घटा छोड़ी ॥

गायन

ता ज़मीं से आसमाँ तक, है वही खूनी बहार ।
हर ज़बाँ से गूँजती है, हर तरफ जय की पुकार ॥
मर्द मैदाँ मारते हैं, ज़र्द हैं बुज़दिल कमीन;
गर्द है हर नर्द, है पुर-दर्द हर प्यादो सवार ॥
लाश पर लाशों का गिरना लडखड़ाना सिर कहीं;
ताजयाने को लिये सिस के कहीं पर ताजदार ॥
ले चला गीदड़ किसी सरदार का सर दाब कर;
ले उड़े ज़ाग़ो ज़ग़न बाज़ू किसी का चोंचमार ॥

दोनों जानिब से बढ़ बढ़कर; सैनिक शक्तियाँ दिखाते हैं।
" हे वीर ! बढ़ो "—इन शब्दों में; दलका उत्साह बढ़ाते हैं॥

कौरव—दलकी ओर से; बढ़ा कलिंग-नरेश।
लाखों हाथी साथ में; महा—भयंकर—वेश॥



भीम और कलिंगराजका युद्ध।

ललकारा उसने आते ही; "अंय भीम ! यहां आगे आओ।
जो कुछ अभिमान शक्ति का हो; तो मेरे आगे दिखलाओ॥"

इतना कह तेरह; बाण छोड़ केहरि को जोश दिलाया है ।
लगते ही बाण पवन-नन्दन; रण में रण-धीर रिसाया है ॥
"ले मूर्ख ! खड़ा रह देख ज़रा; अब अपना तेज संभालूँ मैं ।
रे रे कलिङ्गपति ! शृङ्ग तोड़;अब लिङ्ग धिङ्ग कर डालूँ मैं ॥
इस गदा-पवन के ज़ोरों से; यह हाथी तूदे बना न दूँ ।
गिन गिन कर इन को पृथ्वी से;आकाश में गर्चे उड़ा न दूँ॥
तो मैं कुन्ती का लाल नहीं; बस यही प्रतिज्ञा आन की है ।
दोनों दलवाले साक्षी हैं; और शपथ श्री भगवान की है ॥

गायन

निशान बाण का जो सैन्य को बना न दिया ।
गुमांन गर्व अगर आज ही घटा न दिया ॥
विराट-दल है यह बकरों का समर-चण्ड़ी है,
बज्र से पीस के बलिदान जो चढ़ा न दिया ॥
यह हाथियों का लिये घूमता है काला पहाड़;
जो फेंक के इन्हें आकाश में उड़ा न दिया; ॥
साक्षी "कृष्ण" की, तो "भीम" न कहना मुझ से-
जो तेरी सैन्य को मैदान में सुला न दिया ॥

परम-भक्त ने प्रण किया; प्रण-तारत यह जान ।
गदा-रूप प्रकटे वहीं अतुलित तेज-निधान ॥

थी गदा भीम के हाथों में; और गदा में नाथ गदाधर थे ।
वे निराकार, वे निर्विकार; भीतर भी थे और बाहर थे ॥
संकेत भृकुटि का होते ही; उनचासों पवन उड़ाने लगे ।
दल में कुछ कुछ लहरा देकर; नभ-मण्डलमें मँड़राने लगे ॥

इस तरफ़ भीम निस्सीम-तेज; धारण कर धाया सेना पर ।
मानो भूखा नाहर बढ़कर; खिसियाया आया सेना पर ॥
बिकराल गदा की मार,मार;हाथियों की खाल उड़ा डाली ।
लातों हाथों से खींच खींच;खिचड़ी सी सैन्य बना डाली ॥
सैनिक पर हाथी लोट रहा; हाथी पर रथ टकराया है ।
रथ पर पहिये टूट कर गिरे; पहियों ने चक्कर खाया है ॥
उस गदा–वायु के चक्कर से; उड़ चले गयन्द गगन में यों ।
उड़ते हैं आँधी आने पर; सूखे बबूल के पत्ते ज्यों ॥
फैली थी योजन भर सेना; वह भी इस तरह उड़ाई है ।
जो गई; न वापिस आई है; आकाश में ही मड़राई है ॥
कुछ हथियाँ भी सूँड़ को पकड़; इतने ज़ोरसे उड़ाये हैं ।
जो कुरु–क्षेत्रके मैदाँ से; लंका के ऊपर छाये हैं ॥

यहाँ एक अन्तर कथा; लिखता हूं प्रिय भ्रात ! ।
लंका की उन दिनों की; है हालत सब ज्ञात ॥

जिस समय भीम रण से पहिले;लंका में गये निमन्त्रण ले ।
कितनी सेना है बीर कहो; पूँछा था तब मन्दोदरि ने ॥
भीमने अठारह अक्षौहिण; जब दल की गिनती बतलाई ।
उस समय ज़रा मन्दोदरि को;भारत पर ख़ास हँसी आई॥"
बोली–"बेटा ! जाओ घर को; क्या लिये जारहे हो ? मुझको ।
आपस की घर की खट पट है;सो भैया घरमें लड़ भिड़ लो ॥"

कहा भीम ने क्या कहो ?; देवी जी ! यह बात ।
भारत, भारत ही नहीं; करूँ लोक–विख्यात ॥

हँस कर बोली–"जब स्वामी के; मर चुके सभी दलवाले थे।
जितना तुम दोनों का दल है; उतने तो बाजेवाले थे॥
इसलिये,महारण के आगे;यह गृह–रण क्या देखा जाये?।"
शरमाये भीम, शब्द सुनकर; बेचारे उलटे घर आये॥

किन्तु पराक्रम भीम का; जब देखा इस तौर।
चकित हुई मन्दोदरी; कह न सकी कुछ और॥

उनमें से कितने ही हाथी; अब भी नभ में मड़राते हैं।
भारत की पूर्व शक्तियों का; प्रत्यक्ष प्रमाण दिखाते हैं॥
नव–युग है, नई रोशनी है; 'क्यों,क्या' का मर्ज़ बढ़ रहा है।
उनको यक़ीन की राह नहीं; जिनको भ्रम–भूत चढ़ रहा है॥
हां, जो जिज्ञासा–संयम से; श्रद्धा–औषधि का पान करे।
पहिले शास्त्रीय-निदान करे;फिर इन विषयों पर ध्यान करे॥

बिना धँसे तालाबके; बन न सके तैराक।
सब प्रश्नों का इसी पर; है क़िस्सा बेबाक॥

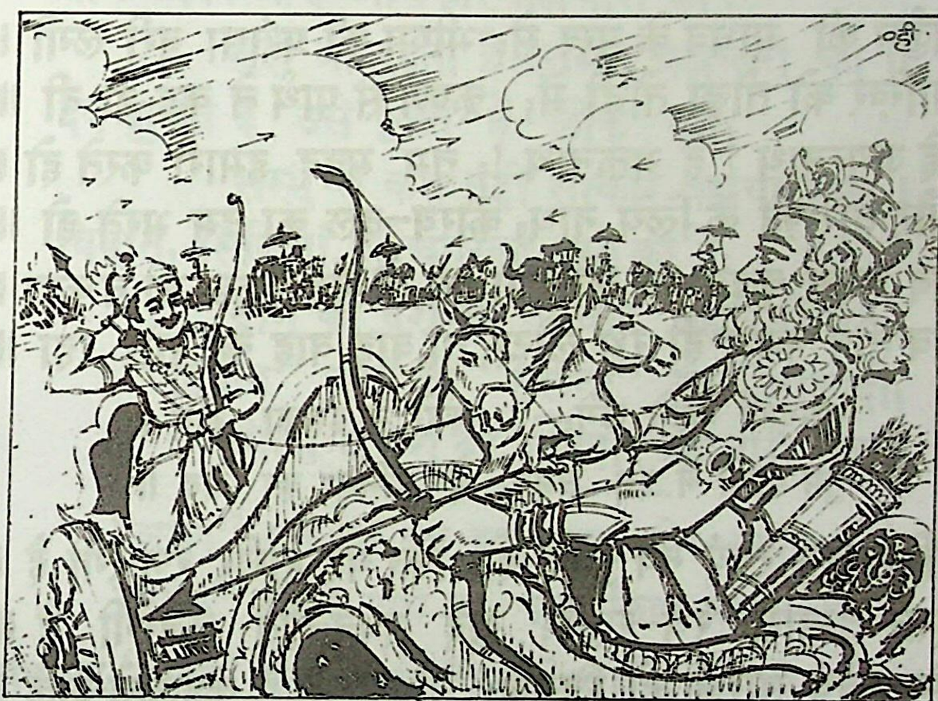
द्रोणाचार्य्य ने हांक देकर; भीम के मुकाबिल रण ठाना।
दोनों जानिब कुछ घड़ियो में; लाशों का मैदां दिखलाना॥

गायन

उमड़ घुमड़ कर, लपट झपट कर, करें मर्द मैदान।
मैदान- घमशान।
उथल पुथल कर दल हलचल कर, बढें बीर वर ज्वान; ॥
क्या आन ? क्या शान ?

तमक तमक भट, झमक झमक भट, चमक चमक करपान ॥
हैरान, बलवान; रण–गान......। हां......

चौपट चरपट मिलाकर; चला दूसरी ओर।
यहां भीष्म के सामने; बढ़ा पार्थ शहज़ोर ॥



भीष्म और अर्जुन।

शहज़ोर ने ज़ोर लगाकर जब; दिव्य शर चलाया युक्ती से।
तो महारथी भीषम का रथ; हट गया हज़ार कदम पीछे ॥

भीष्म ने कहा—"ठहरो अर्जुन!; मैं अपना बल दिखलाता हूँ ।
एक ही बाण में कृष्ण—सहित; तेरा रथ भी लौटाता हूँ ॥"
सामर्थ्यवान ने बाण धार; बाण पर बाण छोड़ा जिस दम ।
तो अर्जुन का रथ वास्तवमें; पीछे हट आया तीन क़दम ।

रथ को हटता देखकर; बोले यादव—वीर ।
"धन्य, धन्य तुम धन्य हो; कौरव-दल-रण-धीर !॥"

अर्जुन को माधव के मुख से; भीष्म की प्रशंसा बुरी लगी ।
आख़िर को तोड़ा तोड़ी में; कृष्ण से पार्थ ने कह ही दी ॥
"हे जगन्नाथ ! हे भक्तनाथ !; तुम मदद हमारी करते हो ।
और तारीफ़ों के लिये नाथ; कौरव—दल का दम भरते हो ॥
जब सहस क़दम रथ लौटाया; तब तो मुँह से कुछ भी न कहा ।
जब तीन क़दम ही रथ लौटा; तो वाह वाह का शोर रहा ॥

समदर्शी कहने लगे;—" करो न इसका खेद ।
तुम दोनों में इस समय; है दुनिया का भेद ॥

पहिले तुम स्वयं नव युवक हो; फिर यह शरीर रण-रंगी है ।
दूसरे तुम्हारा रथ—रक्षक; खुद पवन—पूत बजरंगी है ॥
फिर स्वयं सारथी हों जिसके; "विश्वम्भर" कहलाने-वाले ।
वह चाहे तो त्रैलोकों को; घड़ियोंमें अभी मिटा डाले ॥
इन तीन शक्तियों ने मिलकर; रथ हटा दिया तो कुछ न किया ।
हां वास्तव में उन बलधर ने, आदर्श शक्ति का दिखा दिया ॥
तुम जानते हो, अपने रथके; कितने, कैसे रखवाले हैं ! ।
लाखों पर्वत से भी ज्यादा; हनुमान वार खुद डाले हैं ॥

जितने देवता गगन में हैं; वे सब रक्षा पर रहते हैं।
फिर अर्जुन ! ज़रा विचारो तो; "विश्वम्भर" मुझको कहते हैं॥
इतने ज़ोरों पर ज़ोर मार; यदि तीन क़दम भी हटा दिया।
तो उन बुज़ुर्ग आचारी ने; सबसे बढ़ कर कर्त्तव्य किया।

गायन

तीन लोकों में है अधिकार ब्रह्मचारी का।
मुझे भी रहता है आभार ब्रह्मचारी का॥
देव झुकते हैं उसे पूजते हैं लोक उसे;
शम्भु से कम नहीं सत्कार ब्रह्मचारी का।
विभूति, सिद्धियां परिचारिका उसी की हैं;
भूमि को देश को आधार ब्रह्मचारी का।
"विनीत" चाहें जो "शैलेन्द्र" यहां आज़ादी;
सिखा दें देश को व्यवहार ब्रह्मचारी का।

"अर्जुन" सुन कर चुप हुए; मचा घोर—संग्राम।
"भीष्म" वीर ने पार्थ का; धनुष किया बेकाम॥

जबतक 'अर्जुन' ने धन्वाको; फिर जोड़ मोड़ कर ठीक किया।
तबतक 'भीष्म' ने समय पाकर; बस, दस सहस्र दल मार दिया॥
जैसे ही दल संहार हुआ; वैसे ही विजय-शंख बाजा।
यादव-राजा, एवं राजा; महाराजा—सहित सकल साजा।—

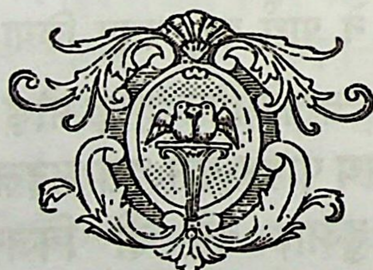
—वापिस आये शिबिरमें; किया रात्रि विश्राम।
जन "विनीत" है टहल में; सोवें श्रीघनश्याम॥

गायन

छोड़ी दुनिया की फ़िक्र, ज़िक्र दीनदारी गया;
छोड़ दी तुलाई डोर मायामय जालकी ।
छोड़ दिया पेट का सवाल भेंट ध्यान क़िस्सा;
फेंट छोड़ रक्खी सब कुटिल कुचाल की ॥
सेवक "विनीत" सब भीत से सताया हुआ;
छोड़ बैठा आप ही से ममता की माल की ।
होकर अलग़रज़ी छोड़ बैठा फ़र्ज़ी ख्याल;
लिखे फ़क़त् अरज़ी, फिर मरज़ी गोपाल की ॥

—: शुभमस्तु :—

इति भीष्म-समर ।



श्रीः ।

महाभारत-भीष्मपर्व ।

भीष्म की वीरगति ।

सरल छन्दोबद्ध.

"वीरा माँ के वीर लाड़ले; भरे जायँ वीरत्व-प्रमाद ।"

"शैलेन्द्र"-"विनीत" कृत.

प्रार्थना

भक्तों की भक्त-वश्य जो; चिन्ता न करेंगे ।
तो भक्त भी भगवान की; चर्चा न करेंगे ॥
क्या और के द्वारे भी हमें; जाना पड़ेगा ?;
जो आप ही से हम सभी; आशा न करेंगे ।
जिसकी त्रिलोक-धामसे; रक्षा न हो सकी;
उसकी त्रिलोक-देव भी; रक्षा न करेंगे ॥
प्रण है हमारा-आपको; देखेंगे किसी दिन;
उनकी शपथ है-द्वार से; निकला न करेंगे ।
"गोविन्द" जब "शैलेन्द्र" की; निभती ही नहीं है;
तब तो यह प्रतिज्ञा है-प्रतिज्ञा न करेंगे ॥

॥ श्रीः ॥

❋ कथा-प्रारम्भ । ❋

"दुर्योधन" के शिबिर में; जमा हुए सरदार ।
कौरव-पति ने भीष्म पर; यों डाली बौछार ॥



दुर्योधन और भीष्म ।

"दादाजी ! हुए सात दिन हैं; आपको युद्ध करते करते ।
आधी सेना रह गई अहो !; धीरे धीरे मरते मरते ॥
इस में भी कुछ सन्देह नहीं; आप ने शक्ति दिखलाई है ।
पर क्या ? कुछ पत्ते टूट गये; जड़ पर तो हवा न आई है ॥

आपके बाणमें प्रलय-कार; यद्यपि शक्ती दिखलाती है।
लेकिन पाण्डव-दलपर शायद; उस समय दया आ जाती है॥
आपके समय में दादा जी !; वह गोल न गर्वे फूटेगा।
तो याद रहे, इसका कलंक; मरने पर्य्यन्त न छूटेगा॥"

कहा "भीष्म"ने क्रोधमें; भीषण-बाण निकाल।
"बस कौरव-पति है यही; पाण्डव-दलका काल॥

विकराल, शत्रु-दल-शाल भूप !; यह महा-काल कहलाता है।
जिसके आगे इन्द्र का वज्र; टुकड़े टुकड़े हो जाता है॥
बस यही एक है बाण मेरा; बस यह एक है कमान मेरी।
बस यही प्रतिज्ञा जान मेरी; बस यही अख़ीरी आन मेरी॥
जो इसी बाण से पाण्डव-दल; कल सुबह न मैं संहार करूँ।
तो केशव की सौगन्ध करूँ; जीते जी यहाँ न पैर धरूँ॥"

गायन

होते ही प्रात सैन्यमें, हलचल न मचा दूँ।
बढ़ता हुआ गुमान न, दिन भर में गिरा दूँ॥
जागी तरङ्ग शत्रु की, क्षणभर में सुला दूँ।
त्रैलोक भी आगे पड़े, तो मार हटा दूँ॥
पाण्डव की सैन्य काट दूँ; पाण्डव भी मिटा दूँ॥
सन्ध्या को कौरवेन्द्र का जय-नाद सुना दूँ।
"गोपाल" की सौगन्ध है, साक्षी है धनुष-बाण—
जो पार्थका सिर कल ही, न इस शरसे उड़ा दूँ॥

"कौरव-पति"कहने लगा; "बस आया विश्वास।
अब निश्चय हो जायगा; पाण्डव—दल का नास॥

हे दादा जी ! आप ही एक; कौरव-लज्जा रखवारे हैं ।
या पूज्य कहो, या पिता कहो; सब कुछ आप ही हमारे हैं॥
जो हाथ पकड़ कर लाये हो; तो अब पूरा आधार करो ।
जो बीच भँवर में पटका हो; तो मेरी नैया पार करो ॥"

इस प्रकार दे सान्त्वना; पहुँचा करने शयन ।
यहां धर्म के शिविर में; बोले करुणा-अयन ॥

"हे धर्म--राज ! हे द्रुपद--राज !; अब कोई युक्ति कीजियेगा ।
कल को क्या ? कैसे ? करना है;कुछ अपनी राय दीजियेगा॥"
"सहदेव" हँसे, बोले-"भगवन् !; जब व्राजे अन्तर्यामी हैं ।
क्या राय हमारी लेते हो ?; हम तो केवल अनुगामी हैं ॥
कौरव-दल की यहनयी बात; ज्योतिष भगवन ! बतलाता है ।
कल प्रात-काल पाण्डव-दल पर; त्रिकाल-चक्र सा आता है ॥
भीष्म ने आज प्रण ठाना है; अपनी शक्ती दिखलाने का ।
उस महा-काल-शरके द्वारा; पाण्डव-दल नाश कराने का॥"

सुने शब्द "सहदेव" के; विचलित हुई उमंग ।
सभा शान्त सहसा हुई; सुस्थिर पड़ी तरंग ॥

मानो रण होने से पहिले; असहाय डाल हथयार चुके ।
मर गये मारने से पहिले; लड़ने से पहिले हार चुके ॥
दब गया जोश, ख़ामोश सभी; युद्ध का होश भी रहा नहीं ।
इतने सरदार सुबीरों में; शब्द भी किसी ने कहा नहीं ॥
वैसे ही भीषण-बल-धारी; फिर "भीष्म-प्रतिज्ञा"भीषमकी ।
वह कौन पूत बल-शाली था ?; जो करता समता भीषमकी ॥
धर्म ने कहा-"बस महाराज !;अब आप न कुशल मानियेगा ।
पाण्डव-दलका हे जगन्नाथ !; निश्चय ही नाश जानियेगा॥"

कमल—नयन कहने लगे—"है ऐसी ही बात।
ब्रह्मचर्य्य की प्रतिज्ञा; है त्रिलोक—प्रख्यात ॥

वास्तवमें "भीष्म पितामह" की, समता करना तो मृग-जल है।
उनके आगे बल दिखलाना; झूठा है, एवं निष्फल है॥
हां; देखो जो चल जायेगी; तो एक युक्ति दौड़ाता हूँ।
जिस शर पर सारा झगड़ा है; वह शर ही माँगे लाता हूँ॥"

धर्म-राज कहने लगे; "दीनबन्धु भगवान!।
महाराज के वास्ते; है सब कुछ आसान॥

लेकिन क्या युक्ति लगाइयेगा; वह जन को भी बतलाइयेगा।
हे महाराज! हाथ की वस्तु; क्या धोखा देकर लाइयेगा॥"
माधव बोले—" यह समता है; सब तरह मिलाई जाती है।
चारों प्रकार की नीति यहाँ; रण में दिखलाई जाती है॥
स्मरण आप को होगा ही; वर है उधार दुर्योधन से।
लाये थे छुड़ा पार्थ उस को; जब उस गन्धर्वी-बन्धन से॥
इस लिये धनञ्जय! साथ चलो; उस वरसे लाभ उठायें हम॥
दुर्योधन और भीष्म को भी; कुछ भेद-नीति दिखलायें हम।"

"दुर्योधन" की शिबिर तक; पहुँचे "यादव-राय"।
कहा नाथ ने पार्थ से; अपना मत प्रकटाय॥

"जाओ" कुरु-पति के आगे, प्रिय!; उस वर की याद दिलाना है।
मेरा आना न जताना है; चुपचाप मुकुट ले आना है॥
आज्ञा पाकर पहुँचे "अर्जुन"; "कुरु-पति" ने हृदय लगाया है।
मीठे मीठे बचनों द्वारा; "अर्जुन"; को निकट बिठाया है॥

हे हृदय ! देख, यह वैरी हैं; पर कैसी आन निभाते हैं ।
रण में बाणों की बरसा है; घरमें अमृत बरसाते हैं ॥
युद्ध के समय हैं अलग अलग; शान्ति में सदैव सहाई हैं ।
लड़ने के समय काल हैं, पर; घर में भाई को भाई हैं ॥
यदि आज कहीं हम लोगों में; शत्रु को अकेला पाजायें ।
तो प्रेम-दया की बात अलग; काबू भर उसको खा जायें ॥
अभिनय–पात्रों ने पग पगपर; सच्चा आदर्श दिखाया है ।
पस ऐसी ही घटनाओं से; यह "धर्म–युद्ध" कहलाया है ॥
अर्द्धासन देकर बिठलाया; फिर पूँछा "आधी रात कहाँ ?।"
"पार्थ"ने कहा हे भ्रात वहाँ; देखी स्वारथ की पूर्त्ति जहाँ ॥
बरदान हमारा बाकी है; आज दिन उसी की बारी है ।
श्री महाराज दे दें उस को; इतनी ही विनय हमारी है ॥ "
दुर्योधन बोला–"धन्य भाग्य !; बोलो भैया क्या इच्छा है ।
तन, मन, धन तीनों आगे हैं; ले जाओ जिसकी इच्छा है ॥
यह राज-ताज-सेना-समाज; जो चाहो ले जाओ भाई ! ।
यदि इस शरीर से बन आये; तो सेवा बतलाओ भाई ॥
सौभाग्य अगर जीते जीही; भुगतान शत्रुओं का ऋण हो ।
लेनेवाला अर्जुन भट हो; देनेवाला दुर्योधन हो ॥
बोलो भाई ! क्या आज्ञा है ?; उसको हाज़िर करवा दें हम ।
धर्म का,तुम्हारा,या सबका;सब ब्यौरा आज चुका दें हम ॥ "
पार्थ ने कहा–"श्री महाराज !; अपना प्रण पूर्ण कीजियेगा ।
केवल आज की रात ही को; यह कुण्डल-मुकुट दीजियेगा ॥"

दान–वीर ने मुकुट को; तत्क्षण दिया उतार ।
जन "विनीत" उस समय की;बार बार बलिहार ॥

जो शत्रु अभी युद्ध स्थल से; लड़ते लड़ते ही आते हैं।
वे दोनों मित्रों की नाईं; आपस में हृदय मिलाते हैं॥
जिस राज–मुकुट की रक्षा पर; लाखों का रक्त बह रहा है।
जिस की लालच में लड़ भिड़ कर;भारत भर कष्ट सह रहा है॥
जिस के अतिरिक्त अन्य-वृति पर;भारत का समर-प्रबन्ध नथा।
उस को इस तरह उतार दिया;मानो कुछ भी सम्बन्ध न था॥
यदि इन रोजों ऐसा दुश्मन; एकान्त कहीं मिलने पाता।
बस क्या था ? अन्दर ही अन्दर;पृथ्वी में गाड़ दिया जाता॥
आदिसे अन्त तक देख चलो; ऐसी ही सब महिमायें थीं।
हम तो यह बात मानते हैं; वे सभी पूज्य आत्मायें थीं॥

गायन

उन दिनों के लोग सब; इस देश के आधार थे।
आन पर बलिदान थे; मर्य्याद पर बलिहार थे॥
था वचन का ध्यान; अपनी टेक पर अभिमान था;
सत्य के सेवक थे; प्रण की नाव के पतवार थे॥
यदि न होती फूट,तो;"शैलेन्द्र" कोई शक न था;
मानते उनको भी हम, वे लोक के अवतार थे॥

अस्तु पहिन कर ताज को; चले "पार्थ" तत्काल।
भीष्म पिता समझे उन्हें; दुर्योधन नर-पाल॥

आगे से लिया,कहा हँसकर; "नरपति!कहिये क्या आज्ञा है?।"
अर्जुन बोले–"दादा ! मैं ने; कुछ यत्न दूसरा सोचा है॥
पाण्डव–दल तथा सैन्य उस की;कल निश्चय मारी जायेगी।
पर मेरी जलती हुई आग; इस तरह न बुझने पायेगी॥

जो अपने रिपु का क्षय भगवन् !; दूसरी ओट से करता है।
वह लड़ता नहीं, भिड़ाता है; वह शक्ति नहीं, कायरता है॥
इस लिये शत्रु-दलका खण्डन; मुझको ही करने दीजियेगा।
वह बाण मुझे ही दीजेगा; बस इतनी कृपा कीजियेगा॥



भीष्म और अर्जुन।

भीष्म पिता ने पार्थ को; दिया भूल में बाण।
उसी समय हँसते हुए; प्रकट हुए भगवान॥

ज्यों ही माधव पर दृष्टि पड़ी; खुल गया भेद त्यों ही सारा॥
उस समय भीष्म ने बेरुख हो; बेतरह कृष्ण को फटकारा॥
"यह छलबल हम जड़जीवों से; आप तो न्याय के सागर हैं।
हे समदर्शी ! आपके पास; हम दोनों एक बराबर हैं॥

मर्यादा–पुरुषोत्तम होकर; मर्यादा से बाहर आना।
आदर्श–पुरुष कहला करके; काली करतूतें दिखलाना॥
समता की यहां लड़ाई है; यह कपट न यहां सुहाता है।
चोरों की भांति काम करना; प्रभु ! तुम्हें कलंक लगाता है॥
जिनको त्रिलोक रटते रटते; केवल "नेति" पर चुपाये हैं॥
वे देखो तो तन, मन, धन से; पाण्डव के हाथ बिकाये हैं॥
मुझ को न लालसा थी भगवन् !; युद्ध में प्रशंसा पाने की।
अत्यन्त घृणा है यादवेंद्र !; अपने प्रण से टल जाने की॥

गायन

हरि हम काहू के न रहे।
तट पायौ न उदधि-पथ पायौ; बीचहिं जात बहे।
जाके अन्न और जल कारन; जग अपमान सहे।
जन-मन-रञ्जन जानि तुम्हें इत उरपद जलज गहे।
अहो ! कृपानिधि ! कौन चूक बस ?; दोउ न पन निबहे।
कहहु दयापति ! का जन जैहै ?; दोउ कलंक लहे।

कृष्ण ने कहा निश्चय इस में; बलधर सब चाल हमारी है।
बस समझ रखो भक्त के लिये; क्या से क्या हुआ बिहारी है॥
भीषम!तुमको क्या पता नही?;क्या क्या गति नहीं जानते हो?।
वह कौन मर्म है ? मोहन का;जो तुम न आज पहिचानते हो?॥
भारत की रंग–भूमि पर जो; यह नाट्य रचाया जाता है।
उस नाटक का प्रत्येक पात्र; कुछ न कुछ योग पहुँचाता है॥

"नायक" एक ही कहाता है; और शेष सहायक रहते हैं।
दिखलाते हैं अनेक नाटक; पर एक रंग में बहते हैं॥

मैं तुम यह सब एक ही; खेल रहे हैं खेल।
भाव-नाट्य-अन्तर फ़क़त; है नायक का मेल॥

तुम से भविष्य भी छिपा नहीं; कारण भी तुम्हीं कहाते हो।
अये परम-भक्त! फिर बातों से; क्यों दोषी मुझे बनाते हो?॥
हां, इतना मैं भी कहता हूँ; कीर्ति पर न धब्बा डालेगा॥
इस प्रण के बदले वाला प्रण; प्रणतारत का प्रण टालेगा॥
मैं अपना प्रण खण्डन करके; आप की प्रतिज्ञा रक्खूँगा।
मैं भी कल अस्त्र हाथ लेकर; आप की प्रतिष्ठा रक्खूँगा॥

गायन

भगतकी सँभार पै सँभार ना रहै आपु;
भक्त भार लाय लाय आपु शीश धारिहौं।
जे जन बिसारे जन धाम संसार सकल;
तिनपै संसार सार धाम हू बिसारिहौं॥
बारिहौं त्रिलोक मान, मानिहौं त्रिलोक मान;
बारिहौं प्रमानु पैज भगत उबारिहौं।
पन है सदा सौं मोर आपन न औरेपन
भगत पन राखौंगो आपु पन टारिहौं॥

इतना कह कर भीष्म से; विदा हुए भगवान ।
धर्मराज के हाथ में; दिया नाथ ने बाण ॥
वह बाण है या है प्राणदान; कुछ नहीं समझ में आता है ।
हर एक सभा—जन चूम-चूम; उसको कण्ठ से लगाता है ॥
क्या "दुर्योधन" की दशा कहूँ ?; कैसे वह रात निकलती है ।
मानो घायल बेचारे की; अन्तिम श्वांसा सी चलती है ॥
जब से संवाद सुना नृप ने; वह बाण भीष्म से छलागया ।
तब से वह विजय—कामना का; सब नशा अचानक चलागया ॥
आंखों को बन्द कर रहा है; पर पलक नहीं ठहराते हैं ।
अंगों को सुस्थिर रखता है; पर सहसा उठ उठ जाते हैं ॥
क्षण भर को तन्द्रा आती है; अर्जुन की मूर्ति दिखाती है ।
त्यों ही आंखें खुल जाती हैं; छाती हिलने लग जाती है ॥
उठकर घूमने लगा थोड़ा; फिर बैठ गया, लेटा जाकर ।
फिर उठा देखने लगा कहीं; फिर बैठ गया कुछ घबरा कर ॥
सुबह हुआ, बजने लगा; धौंसा चारों ओर ।
युद्ध-स्थलमें फिर मचा; "मार-मार" का शोर ॥
बढ़ बढ़ कर लड़ने लगे; धीर-वीर-महिपाल !
यहां भीष्म के सामने; आये श्री गोपाल ॥
"कृष्ण चन्द्र" को देख कर; कहे "भीष्म" ने वैन ।
आज भक्त की प्रतिज्ञा; "सुनिये करुणा ऐन !॥
प्रणतारत ! जो प्रण भंग किया; तो प्रण का बल बतलाऊँगा ।
प्रण के बदले में प्रभु का भी; प्रण—खण्डन कर दिखलाऊँगा ॥

प्रण-धारी देव निशस्त्र नाथ; हथयार आज जो लें न कहीं ।
तो मैं "गंगा" का पूत नहीं; "शान्तनु" का असली बिन्दु नहीं ॥
धन्वा तोड़ूँ, रथ को मोड़ूँ; कपि-ध्वज को जो न उड़ाऊँ मैं ।
तो शपथ तुम्हारे चरणों की; जीते जी मुँह न दिखाऊँ मैं ॥

गायन

धनुष टंकार वार एक ही बिड़ारौं दल;
हाहा पुकार दिस दिसान न मचाऊँ मैं ।
पार्थ धनु तोरौं धर; बाजि सिर फोरौं बेगि;
रथहि मरोरों फेर सारथी गिराऊँ मैं ।
कपि-ध्वज काट डारौं; दोऊ दल डाट डारौं;
हरि हू के हाथ जो पैं अस्त्र न धराऊँ मैं ॥
गंगहि लजाऊँ नहिं शान्तनु-सुत नाऊँ, तो;
शपथ गुपालकी न क्षत्री-गति पाऊँ मैं ।

"भीष्म-प्रतिज्ञा" ने दिये; दोनों खण्ड कँपाय ।
दल में हलचल मच गई; देव गये थर्राय ॥

चर्चा थी चारों ओर यही; लक्ष्य था यही हर इक मन का ।
देखें किसका प्रण रहता है?; जन का, या जन-मन-रंजनका ॥
इस ओर "नाथ" का प्रण यह था; रणमें हथयार न धारेंगे ।
उस ओर "भीष्म" का यह दावा; "प्रण-पाल" प्रतिज्ञा हारेंगे ॥

भीष्म पितामह ने भरी; एक घोर हुंकार ।
केवल उस हुँकार से; कांप उठे सरदार ॥



भीष्म धावा।

"अर्जुन"ने भी क्रोधित होकर; बाणों की वर्षा कर डाली।
सारे दल पर क्षण ही भर में; छागई उजाली में जाली॥
पृथ्वी, आकाश, पूर्व पश्चिम; उत्तर दक्षिण हैं बाण वहीं।
मानो क्षण भरको भू-गृह का; सम्बन्ध कहीं से रहा नहीं॥
सूरज छिप गया, शरों ही में; सारा नभ--मंडल पाट दिया।
"भीष्म" ने एक ही बाण मार; सारे बाणों को काट दिया॥
अरबों, खरबों की संख्या में; फिर तीव्र बाण संचाल किये।
लाखों से ऊपर एक बार; काट कर भूमि पर डाल दिये॥

सारे योधा बाणों की ही; साया में खड़े हो रहे हैं।
मानो कुछ खड़े रो रहे हैं; अथवा कुछ पड़े सो रहे हैं॥
आया है रवि पर महा ग्रहण; शर-रूपी राहु जुड़ाने हैं।
घुप अन्धकार में मुकुट आदि; कुछ तारा गण दिखलाने हैं॥
"हा हा" हल्ला करनेवाले; मानो म्लेच्छ चिल्लाते हैं।
जो योद्धा बाण चलाते हैं; मानो वे दान चुकाते हैं॥

यहां "पार्थ" के बाण से; मिटा "भीष्म" का मेल।
नये रूप से फिर हुआ; दो सिंहों का खेल॥

बाणों की मार मार करके; "भीष्म" का सनाह फोड़ डाला।
सौ बाण सारथी को मारे; रथ का कुछ भाग तोड़ डाला॥
घोड़ों की रग रग फूट गई; सेना की हिम्मत छूट गई।
वह मार पड़ी दोनों दिशसे; दल की दलबन्दी टूट गई॥

गायन

बढ़ चढ़त ज्वान, चटकत कमान; फुंकरत बान, खटकत कृपान।
सिर, भुज उड़ान, छिपरहत भानु; धर कुधर मान, डोलत मैदान॥
पावस प्रमान, शर घन समान; गरजत गुमान, सिसकत निष्प्राण।
कछु हारमान, उलटत अजान कछु; जीत जान, धावत धृतिवान॥
कछु कटत ज्वान, कछु उड़त यान; सरिता महान, रणभूमि प्रधान।
लोहू बहान, अपने विरान; कट छट गिरान, भटवर अवसान॥
शश, स्यार, श्वान, चेतत मशान; नाचत बखान, कर कीर्त्तिगान।
जन बाल जान, दे अभय-दान; निज शुभस्थान, राखौ भगवान॥

यह भीषण रण देखकर; कहा पार्थ से नाथ।
"सखा! हाथ ऊँचा करो; तर्क-बुद्धि के साथ॥

जो आज तनिक भी ढील हुई; तो यहाँ मौत से पाला है।
वह देख भीष्म ने ब्रह्म-बाण; तेरे ही लिये निकाला है॥
उस ब्रह्म-बाण की समता पर; अर्जुन ने कृष्ण-बाण मारा।
अस्त्र से अस्त्रका तेज घटा; न यही हारा, न वही हारा॥
फिर तीक्ष्ण-बाणके घातोंसे; व्याकुल "अर्जुन" रण-धीर हुआ।
सारथी-वेश "श्रीकेशव" का; लोहू से लाल शरीर हुआ॥
बनमाल लाल, गोपाल लाल; रिस-नेत्र लाल, और लाल अधर।
पीताम्बर का वह पीला पन; आ गया बसन्ती रंगत पर॥
काकुल से मिलकर रक्त-बिन्दु; सर पर यों शोभा पाते हैं।
मानों नागिनियों के फण वर; महँदी में रचे सुहाते हैं॥
रिस-मय-अरुणित मुख-अम्बुजपर; श्रम-कणकी कनी जड़ रही है।
मानो गुलाब के गुच्छे पर; ग्रीषम में ओस पड़ रही है॥
तन-वदन लाल, वर-बसन लाल; लाल ही लाल दरसाये हैं।
मानो भारत के रण ही से; "गोपाल-लाल" कहलाये हैं॥

तन अछेद, गत भेद-हरि; कहाँ घात या छेद।
पड़ें न भ्रम-वश वे स्वजन; जो जानें यह भेद॥

उस वीर भूमि से लाल लाल; रक्त के पनारे छूट चले।
नभ में भी लाली लिये हुए; मानो फव्वारे छूट पड़े॥
आया हल चल पर रण-स्थल; घोड़े बेचारे छूट चले।
भ्रात से भ्रात, पुत्र से पिता; प्यारे से प्यारे छूट चले॥
रथ अचल हुआ, दल-बदल हुआ; पृथिवी मर्याद बिसार उठी।
हाथी चिक्कार विकल भागे; व्योम से विषाद-पुकार उठी॥
मेघों मे "घर घर" नाद हुआ; आकाश यकायक हिलने लगा।
सूरज पर फीकापन आया; ब्रह्माण्ड खण्ड भी मिलने लगा॥

चिल्लाये देव—"सँभालो प्रभु !; यह "देव-पुरी" थर्राती है ।
"दिग्गज" रोये—"धाओ भगवन् !" पृथ्वी न आज ठहराती है ॥
कांपने लगे बाराह शेष; पृथ्वी पर हाहाकार हुआ ।
दोनों दल बदल गये उलटे, सब तेज; मान बेकार हुआ ॥
उठ गया शत्रुताका सवाल; कुछ "अर्जुन" खड़े दिखाते रहे ।
वे भी जैसे तैसे करके; कहने को रीति निभाते रहे ॥
हर तरफ़ घोर अँधियारी सी, हाहा-कारी-चिक्कारी थी ।
केशव पर वहाँ "भीष्म"-भट की; बौछार बराबर जारी थी ॥

"यादव-पति" पर जब पड़ी; बाणों की बौछार ।
तथा सैन्यमें मच गया; सहसा हाहाकार ॥

इस ओर पार्थ के बाणों में; पहिले सा पूर्ण प्रभाव न था ।
भीष्म पर बाण सञ्चालन को; भटवर का कोई दाव न था ॥
बेवश; बेकल, बेहाल हाल; जब देखे सेना सारी के ।
तो रहस-रसीले नयनों में; रिस छाई रसिक-बिहारी के ॥
भृकुटी त्रिभंग कम्पित शुभांग; अधरों पर थर्राहट आई ।
विकसित अम्भोज नयन बदले; बाहों में अकुलाहट आई ॥
हलचल पर आया हृदय-स्थल; कँप उठा कुण्डलों का जोड़ा ।
चक्रधर-चक्रधर ने चटपट; चक्कर दे चौंक स्व-रथ छोड़ा ॥
जब "चक्रपाणि" ने चक्र लिया; चक्कर में सब संसार हुआ ।
सूर्यका तेज बेकार हुआ; त्रिभुवन में हाहाकार हुआ ॥
सांवली-मूर्ति, स्फूर्ति तनिक; दुर्धर्ष-भयंकर--भेष नहीं ।
गंभीर नेत्र शान्ती-निकेत; बीभत्सभाव का लेश नहीं ॥
कुछ तीव्र चाल है चरणों की; कुछ नेत्रों की लालिमा बढ़ी ।
माधव पर सुखमा टूट पड़ी, कौरव-दल पर कालिमा चढ़ी ॥

मुख पर से बिन्दु पसीने के; लोहू में मिलते जाते हैं।
दोनों एक ही रूप धर कर; भूतल पर ढलते जाते हैं॥
काकुल की बेणी खुली तनिक; पीताम्बर हिलता जाता है।
कुछ भाग डुपट्टे का गिरकर; पृथ्वी पर खिंचता आता है॥

इस प्रकार पैदल चले; जब विश्वम्भर नाथ।
तीन लोक, चौदह भुवन; हिले एक ही साथ॥

चिक्कार मार दिक्पाल हिले; सूर्य की प्रभायें विकल पड़ीं।
भूचाल हुआ ग्रह-मण्डल पर; शेष की जबानें निकल पड़ीं॥
ज्वाला छूटी चारों जानिब; जल थल में उथल पुथल आई।
आंखें दोनों दल की झपकीं; सुर-मण्डल ने हाहा खाई॥

यह आतुरता नाथ की; एक दास के हेत।
क्यों न कहै ? संसार फिर; "जय जय कृपा-निकेत॥

गायन

अगर भक्त की यों निभाये न होते।
तो भक्तों को भगवान भाये न होते॥
समानी न होती अगर आन उन को।
तो यों आत्मा में समाये न होते॥
जो महिमा मनोहर की छाई न होती।
तो यों कृष्ण भारत में छाये न होते॥

अर्जुन ने श्री जगदाधर को; सहसा पैदल जाते देखा।
"भीष्म" ने कृष्ण-बनवारी को; प्रण-पूर्त्ति-हेतु आते देखा॥
दलवाले नभ मंडलवाले; कुछ देख न पाये अस्त्र गहे॥
जब देखा "श्री गिरधारी" ने; दो भक्त चरण पर लेट रहे॥

उभय-भक्त थे कौन वे—एक "भीष्म" एक "पार्थ" ।
यथा सच्चिदानन्द में; मिला स्वार्थ, परमार्थ ॥

है स्वार्थ—रूप इस जगह पार्थ; परमार्थ—रूप भट भीषम हैं ।
उन दोनों के आधार—रूप; प्रणतारत प्रभु पुरुषोत्तम हैं ॥
" पार्थ"ने नाथ की बांह पकड़; रोते रोते यह बैन कहे ।
"बस-शांति-शील ! करुणा-निधान!;बूढ़े दादा पर दया रहे ॥
एक ही बार में दयागार !; सारा दल मारा जायेगा ।
फिर महा-चक्र का महा-तेज; बाकी किस जगह समायेगा? ॥
बलिहारी ऐसी करुणा पर; करुणित पर इतना अंग दिया ।
दास की प्रतिज्ञा रखने को; अपना प्रण प्रभु ने भंग किया ॥
जब तक इन हाथों में बल है; साथी सेवक के जग-धर हैं ।
तब तक भीष्म और कर्ण तो क्या?;जो भी योधा पृथ्वी पर हैं ।
दूँ एक बार में सब निपात; इतना विश्वास धनुष पर है ।
पर इस स्वभाव पर बश क्या है?;नाम ही कृष्ण करुणाकर'है ॥

कहा"भीष्म"ने—"दया मय!;दलन दीन-दुख-द्वन्द ।
जगन्नाथ, जय जगन्मय; जय जय यादव—चन्द ॥

गायन

आनन्द--कन्द, मुकुन्द—माधव; नन्द—नन्दन--श्री पते ! ।
धूर्जटि—हृदय—ध्यातव्य; धीरोदात्त, ध्रुव—धृत धीमते ! ॥
कमलाक्ष, कमला—कान्त; कमलज—निष्करण—करुणाकरम् ।
विश्वेश—विश्वाधार; विश्व—विमुक्त, विभु, विश्वम्भरम् ॥
चैतन्य, चारु, चिरञ्ज चञ्चल,—चक्षु-चौर चिदात्मकम् ।
अज, अजर, अमर, अशोक, अन्तिम-आश-आरत-नायकम् ॥

सज्जन-स्वगति, सामान्य-गति;सुर–सिद्ध–सिद्धि–सुदायकम् ।
लावण्य, लोचन, लोल गोल–कपोल, लोलक लायकम् ॥
प्रभु पार्थ–परिचर प्रणत--पालन; पुहुमि--प्रहसन -प्रस्तुते ! ।
निर्गुण, निराश्रय, निर्जरं; श्री "कृष्ण" देव ! नमोस्तु ते ॥

जिस प्रण के लिये यत्न करके; पालन न दास कर पाया है ।
वह प्रण प्रण-पालक ने क्षण में; सेवक से पूर्ण कराया है ॥
सब जग की आखें प्रभु पर हैं;प्रभु पर सेवक का आश्रय हो।
भय-भञ्जन ! हों,यदि शान्ति-रूप;तो आज त्रिलोकी निर्भय हो।
प्रण पूर्ण हुआ, मद चूर्ण हुआ;जनको यथेष्ट फल दीजियेगा ॥
पर काँप रही है सकल सृष्टि; हे हे प्रभु ! स्थिर कीजियेगा॥"

दोनों दल से भी उठी; यही एक आवाज़ ।
—"हम ग़रीब रक्षा करो; कृष्ण ग़रीब नवाज़ ॥

करुणा-सागर ! करुणा कीजे; त्रैलोक डिगाये जाते हैं ।
शशि–सूर्य्य भागना चाहते हैं; नभ–मेघ उड़ाये जाते हैं ॥
होता है थर थर भू-मण्डल; पाताल में खल बल छाई है ।
भीष्म पर नाथ की क्रोध दृष्टि;लोककी प्रलय बन आई है ॥
हे क्षमा-सिन्धु ! हे दीन-बन्धु !; अब काज भक्तका कीजेगा ।
हे भक्त-वत्स ! हे प्रणत-पाल!; भक्त को शरण में लीजेगा॥"

भीष्म–प्रतिज्ञा–पूर्त्ति कर; बोले "यादव राय "
"भीष्म !भक्त को सदा ही; है "गोपाल" सहाय॥

गायन

बिसरत साकेत से निकेत संकेत पाय;
बिसर उपाधि लोक-इन्द्र-उमराव की ॥

कमलासी नारी ऐती गरुड़ सी सवारी हूँ;
बिसर जात किंमत हिम्मत हियावकी ॥
परन बिसर जात, जरन बिसर जात;
सरन नेकु ताकौं जो पाय चख चावकी ॥
बिसरत चतुराई, ठकुराई, रजाई पै;
एकु बिसरै ना मोपै बान भक्त भावकी ॥



भीष्मकी बाण-वर्षा ।

भीष्म–प्रतिज्ञा पूर्ण कर; दोनों दल हर्षाय ।
जयकारे करते हुए; गवने शंख बजाय ॥
पाण्डु–तनय माधव–सहित; बैठे भोजन–हेत ।
हर आत्मा में गूँज थी; जय जय कृष्ण-निकेत ॥

"पाञ्चाली"ने फिर प्रश्न किया;-"रण के संवाद सुनाइयेगा ।
क्या नई बात हो चुकी?आज;भगवन्!सब को समझाइयेगा ॥"
"पार्थ"ने कहा-"आज तो पार्थ;चारों खाने चित आया है ।
दादा जी के प्रण के आगे; प्रभु ने भी प्रण बिसराया है ॥"

साध्वी बोली–" आर्य्य सुत !, है यह झूठा ध्यान ।
सभी समझते हैं–कि हैं; भक्त–वश्य–भगवान ॥

हाथी के लिये गरुड़ छोड़ा; "शबरी"पर जाति-पाँति तोड़ी ।
"बलि"के द्वारे मान्यता तजी;महि के पीछे महिता छोड़ी ॥
"वसुदेव"–प्रेममें बाल बने; भूली सारी ईश्वरता है ।
"भीष्म"के लिये प्रण छोड़ दिया;तो इसमें अचरजही क्या है?॥
मानापमान, जय और अजय; इन पर न प्रभाव दिखाते हैं ।
आज क्या नई यह बात हुई?; भक्तों की सदा निभाते हैं ॥

गायन

सनेही रहते हैं ये सनेही के सनेहों में;
थोड़ी भी सहज भाव, रसना सनी रहे ॥
बन ठन बिगड़े या; ठन ठन दिखाये भी;
ठनाठनी ठानने में, लोक से ठनी रहे ॥
कमला कुम्हलाये या, गरुड़ भी उड़ाये या,
सब कुछ बिसराये, धनी निर्धनी रहे ।

इनकी बने न बने, बनी भी बनी न रहे;
पै इनके बने हैं जो; उनकी बनी रहे ॥

नवें दिवस फिर से मचा; महा-घोर-संग्राम ।
दस सहस्र नृप वीर फिर; आये उस दिन काम ॥
"धर्मराज" ने रात को; कहा—"दीन-प्रतिपाल !।
विदित आपको है प्रभो!; आदि-अन्त का हाल ॥

सर्व व्यापक; सर्वेश, सूक्ष्म; सर्वोपरि स्वामि कहाते हैं ।
लेकिन जड़-जीव ज़रा ही में; भुनगे बन कर भन्नाते हैं ॥
मिल गया कहीं कुछ मन चाहा; बन गये वहीं पर मतवाले ।
आ पड़ी ज़रा सी भी उलझन; तो ओछा "हाय" मचा डाले॥
गम्भीर-हृदय, गाम्भीर-भाव; श्रीमानों में ही रहते हैं ।
हम क्या हैं ? एक बुलबुले हैं; इससे अपनी सी कहते हैं॥
जो ज़रा हवा के लगने पर; पानी पर चक्कर खाता है ।
ज्यादा धक्का लग गया कहीं; तो टूट फूट मिट जाता है ॥
नौ दिन में नब्बे सहस-भूप; भीष्म ने नाथ ! संहार दिये ।
उतने ही के लगभग भगवन् !; बाकी वीरों ने मार दिये ॥
जो हुआ, रहयह ध्यान नहीं; लेकिन बिचार प्रभु! अब क्या है? ।
यह रक्त-पात, इतनी शान्ती; आखिर इसका मतलब क्या है?॥"

कहा नाथ ने—"धर्म सुत!; कर न सकें कुछ बीर ।
भीष्म धीर का मारना; है कुछ टेढ़ी खीर ॥

वह कुछ साधारण-शक्ति नहीं; जो शक्ती से मारी जाये ।
वह "भीष्म" असाधारण-भट है; जो इच्छाचारी कहलाये ॥

पहिले वह बाल-ब्रह्मचारी; एवं गंग का दुलारा है।
फिर परम-पराक्रम,परमार्थी;और आत्मिक-भक्त हमारा है ॥
वास्तव में यदि भीष्म चाहें; तो कल ही रण-जय पा जायें।
यह इतनी उनकी दाया है; जो पूरी शक्ति न प्रकटायें ॥
इस लिये उन्हीं के पास चलो; फिर से दर्शन कर आयेंगे।
अपनी जीत के लिये वे ही; राजर्षि युक्ति बतलायेंगे ॥

धर्मराज, अर्जुन तथा; माया—पति—कर्त्तार।
सम्मति लेने के लिये;गये "भीष्म"के द्वार ॥
द्वारपाल ने"भीष्म"पर; पहुँचाया सन्देश।
"—धर्मराज" के साथमें; आये हैं अखिलेश ॥

"भीष्म"ने स्वयं बाहर आकर;प्रभु के पद-कमल पखारे हैं।
बोले-" सौभाग्य ! दीन के घर; जो दीन-दयाल पधारे हैं॥"
फिर"धर्म"तथा"अर्जुन"ने भी;"भीषम"को शीश झुकाया है।
" भीष्म "ने दिया आशीर्वाद; गदगद कण्ठ से लगाया है ॥
"करुणा-निधान!भगवान् !आज;फिर से क्यों कष्ट उठाया है?।
हे भक्त-वश्य ! आज की रात;क्या काम भक्त का आया है ?॥
अर्जुन की जगह धर्म कैसे ?;एक की जगह पहिले दो क्यों?।
हे लीलाधर!मुँह से बोलो;चिन्तित की भांति मौन हो क्यों?॥
"माधव" बोले-"बस भक्तों का;अनुगामी मुझे समझियेगा।
क्यों आया हूँ!—इस का जवाब;श्री"धर्मराज" से सुनियेगा॥"

" धर्मराज कर जोड़ कर; बोले शीश झुकाय।
"—दादाजी ! कुछ इधर भी;कृपा—कोर हो जाय ॥



भीष्म और युधिष्ठिर।

छुटपन से हम अभागियों ने;कुछ सुख न पिता का माना है।
पालक, पोषक, या संरक्षक; दादाजी ! तुम को जाना है ॥
प्रभु ने भी वही निभाया है; जो कुछ निबाह था करने का।
हे पूज्य ! ध्यान भी किया नहीं;दास ने पिता के मरने का ॥
पर काल-चक्र के चक्कर ने; यह चक्कर हमें दिखाया है।
आबरू सभा में गिरवा दी; फिर वन वन में भटकाया है ॥
श्री-चरण-अनुग्रह के बल से; जीते जागते लौट आये।
तो कपट-मूर्ति-दुर्योधन ने; फिर छल के पांसे पलटाये ॥
अन्त में नाथ की सम्मति से; यह धर्म-युद्ध-सामान किया।
लेकिन भगवन् के बाणों ने; बलवानों को पाषाण किया ॥

हे पूज्य ! महाभारत के कुल; नौ दिन गिनती में आये हैं ।
इतने ही में इस सेवक ने; आधे बलवीर गँवाये हैं ॥
दो चार रोज़ में दादा जी !; सब भट स्वाहा हो जायेंगे ।
दोनों दल साफ़ बना करके; नाथ और आप रह जायेंगे ॥
बस इसी राय के लेने को; सेवक सेवा में आया है ।
इतना ही नाथ ! निवेदन है;प्रभु की असली मर्ज़ी क्या है? ॥
जो यही दृश्य दिखलाना हो; तो आज सूचना पायें हम ।
चुपचाप लड़ाई बन्द करें; और लौट वहीं को जायें हम ॥

गायन

कहें ? किससे अपना दुर्भाग ।
जनमत ही पितु-देव सिधाये; बढ़त बढ़ी यह आग ॥
लघु–वय–मूढ़–अनाथ आदिके;पुनि कुटुंब की लाग ।
भरी सभा बिच मान गँवायो; गई पिता की पाग ॥
वन भटकन,अटकन थल थलकी;असन कंद-फल-साग ।
सो हत-भागिन-तियका करि है!;ब्याहत बिलग सुहाग ॥
एते पै बिधना जीवन दै; राख्यौ लासा लाग ।
कहँ "शैलेन्द्र-विनीत"सो दैहैं; निज चरनन अनुराग॥"

पाण्डव-सुत की इस करुणा पर;"भीषम"के आंसू बहने लगे ।
चुमकार, दुलार, प्यार करके;दादा जी, उन से कहने लगे ॥
"बेटा ! बेटा ! क्या कहते हो !; तुम ही सच्चे सौभागी हो ।
जो जगत-पूज्य, आधार–रूप; इन चरणोंके अनुरागी हो ॥
अवलम्ब तुम्हें है भक्ती का; सद्–व्रत का पूर्ण सहारा है ।
यह वृद्ध–भीष्म की बाणी है; निश्चय कल्याण तुम्हारा है ॥

यह रण-संहारण मत समझो; रण का तो तनिक वसीला है।
सब होनहार है राजों की; और नट-नागर की लीला है॥
वास्तव में इसी बहाने से; पृथ्वी का भार हटाना है।
धर्म का तत्त्व दरशाना है; वैदिक-मर्य्याद बढ़ाना है॥
सो मेरे, या अर्जुन द्वारा; उनका संहार करायेंगे।
फिर धर्म--पक्ष की साक्षी दे; तुमको सर-ताज बनायेंगे॥
अब रहा हमारा ही संशय; सो हम भी पुत्र ! धर्म पर हैं।
वास्तव में कौरव-दुष्टोंसे; पाण्डव-जन हम को रुचिकर हैं॥
क्या करें ? अगर-दुर्योधन का; हमने न नमक खाया होता।
तो सच मानो-कि अकेले ही; राजेश्वर बनवाया होता॥
पर ख़ैर वहां की वहीं रही; अब अगली युक्ति जताता हूँ।
हे धर्म-तनय ! ध्यान से सुनो; अपनी ही मौत बताता हूँ॥

सप्तद्वीप-नव-खण्डमें; है न आज वह वीर।
जो तीरों के सामने; जय पाये रण-धीर॥

नाथ के सिवा मुझसे लड़कर; जो भटवर बाज़ी ले जाये।
ऐसा है कोई बीर नहीं; जो मुझ को नीचा दिखलाये॥
जब तक हथयार हाथ में है; वह डोरी चढ़ी कमान की है।
तब तक न किसीकी हिम्मत है;यह दया कृष्ण भगवानकी है॥
हां, कहीं "शिखण्डी" युद्ध-समय; यदि मेरे आगे आयेगा।
उस समय"पार्थ"वह आड़ पकड़; जो मुझपर बाण चलायेगा॥
तो मैं हथयार डाल दूँगा; एवं घायल हो जाऊँगा।
सौभाग्य है, इसी बहाने से; प्रभु की सेवा में आऊँगा॥"

"धर्मराज"को इस तरह; बतलाया सब हाल।
भगवन् ! दे दो एक ही; ऐसा सच्चा लाल॥

भारतमें ऐसा वीर आज; यदि भारत माता पा जाये।
तो मृत्यु-लोक की गिनती क्या?;त्रैलोक-विजयकर दिखलाये॥
मरने को सभी मर रहे हैं; आगे भी मरते जायेंगे।
पर, इस प्रकारके प्रण-धारी; किस रोज़ नाथ फिर आयेंगे?॥
"भारत! तेरी फुलवारी में;वह फूल न अब क्यों फलते हैं?।
अये हिन्द! तेरी कानों से क्यों?;वह हीरे नहीं निकलते हैं॥"
भारत बोला–"नर–जीवनमें; यदि ब्रह्मचर्य्य का ग्रीषम हो।
तो वही फूल फिर खिल जायें; हर बच्चा बच्चा "भीषम"हो॥
युग क्या है? एक समाज-काल; यदि अब भी सत्य-प्रवाह बहे।
तो मैं दावे से कहता हूँ; यह कलियुग, कलियुग ही न रहे॥
"भीषम"के लिये न शोक करो;अपनाओ उन आचारों को।
जो "भीष्म" के सच्चे प्रेमी हो; तो मानो उन व्यवहारों को॥

"भीष्म पिता"को भेंटकर; गमने"श्रीगोपाल"।
प्रातकाल फिर मढ़ गया; महा–समर विकराल॥

बाजे बाजे, साजे सुसाज; राजों को राज-भाव आना।
धौंसे धमके, घोड़े झमके; सैन्य का हुमक कर भिड़ जाना॥
तेजी, तपाक, धीर की धाक; झटकन पिनाक शर बरसाना।
जय जय निनाद,रगरग प्रमाद; आल्हाद-विषाद-शब्दआना॥
वह वीर-ध्वनि, घन-ध्वनिपर चढ़; घन-मंडलसे ऊपर छाना।
वह तीर, तबर, शर, शूल-निकर; सरवरके सरपर मँडराना॥
घोड़े से घोड़ा भिड़ जाना; रथ से रथ का वह टकराना।
हो जाना चूर चूर रथ का; घोड़ों का उलटा गिर जाना॥

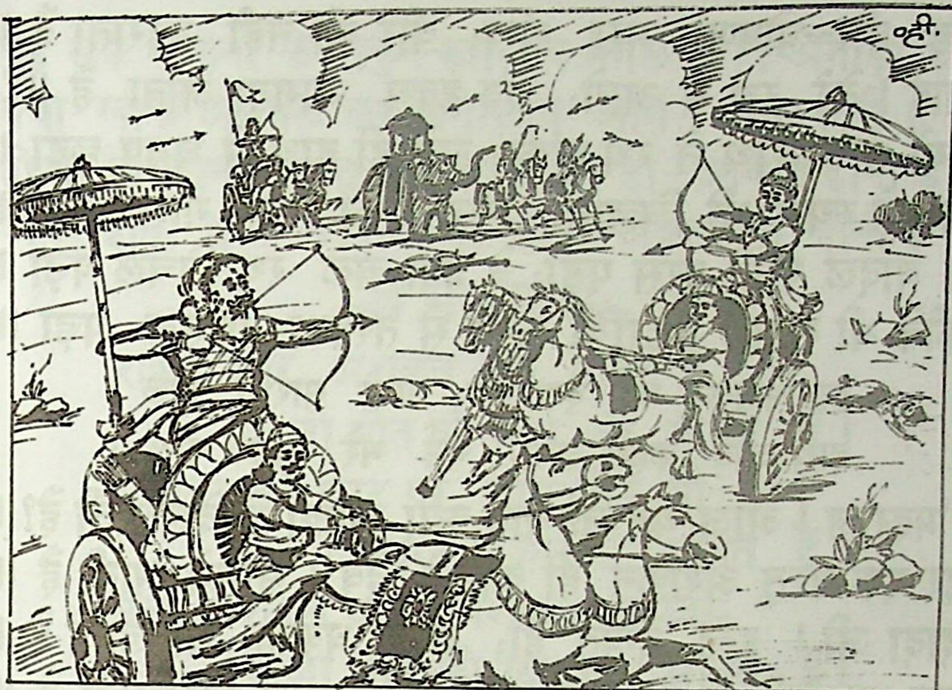
वह एक घड़ी पहिले भट का; जय की आशा में उमगाना ।
वह एक घड़ी पीछे उस का; भूमि पर लोटते दिखलाना ॥
हाथी से हाथी भिड़ जाना; साथी को साथी कर आना ।
गिर जाना कहीं भिटा बन कर; सूँड़ों से सूँड़ें गुथ जाना ॥

मार मार होने लगी; जब यों चारों ओर ।
वहाँ "भीम" से भिड़ गया; "दुःशासन" शहज़ोर ॥

बिकराल-ब्याल से शर निकाल; भट पवन-लाल पर छोड़ दिये।
उस शत्रु-शाल ने गदा टाल; तत्काल बीच में तोड़ दिये ॥
फिर रथ से उतर बीर दोनों; हाथा पाई दिखलाने लगे ।
माधव की जय, कुरु-पति की जय;कंठों से बाहर आने लगे॥
"दुःशासन" बीरासन देकर; घंटों तक भट से खूब लड़ा ।
पर एक गदा के लगते ही; पापी का चूरा निकल पड़ा ॥

गदा-घात से पातकी; वहीं हुआ बेहोश ।
उसे छोड़, आगे बढ़ा; "भीम" सुभट अति-जोश ॥

"द्रोण" ने "भीम" को ललकारा;बाणों की झड़ी लगा डाली ।
उनके सामने वीर वर की; कुछ गदा नज़र आई खाली ॥
ज्यों ही भट घात लगाता है; तत्काल काट हो जाता है ।
काट ही नहीं, वह काट, काट; बीर पर असर पहुँचाता है ॥
घमशान लड़ाई के पीछे; "भीम" का धैर्य्य भी छूट गया ।
घोड़े चारों संहार हुए; सारथी गिरा; रथ टूट गया ॥
रथ टूट गया—यह दशा देख; "अभिमन्यु" कुँवर आगे आया ।
एक ही बारमें, वार डाल; सारथी ज़मी पर खिसलाया ॥



अभिमन्यु और द्रोणका युद्ध ।

फिर चार बाण से अश्व मार; रथ के कुल पुर्जे तोड़ दिये ।
तीरों के तरल तमाचों से; राजाओं के मुँह मोड़ दिये ॥
रथ बिना भीष्म को करके भट; झटपट अनेक चालें बदलें ।
श्रोतागण! अब यह दिशा छोड़; आइये-भीष्म की ओर चलें ॥

पीताम्बर–धर, युगल–कर; गिरिधर, नटवर, नाथ– ।
पार्थ–भक्त–हित–स्वार्थ–गत; जय करुणाकर नाथ ॥
यहां परस्पर लड़ रहीं; सकल सैन्य से सैन ।
वहां "भीष्म" सारथी से; बोले ऐसे बैन ॥

"सारथे ! बढ़ाओ रथ आगे; अब समय दूसरा आया है ।
वह देखो, मुझे बुलाने को, "अर्जुन" ने शंख बजाया है ॥

वह वीर–घोषणा भरा शंख; वीर को नहीं ठहराता है ।
भाई ! तेरे रथ से आगे; यह हृदय भागता जाता है ॥"
ज्यों ही सारथि ने रथ हांका; त्यों ही हाथ से धनुष छूटा ।
सामने स्यार भी चिल्लाये; गिद्धों का एक गोल टूटा ॥
बे बादल पानी बरस पड़ा; बे हवा चले रथ बिचल पड़ा ।
कौवे भी सहसा मडराये; कन्धे से तरकश फिसल पड़ा ॥

इस अशकुन को देख कर; गया सारथी डोल ।
हाथ जोड़ कहने लगा; मर्म भरे कुछ बोल ॥

"महराज ! आज यह नई बात; क्या आंखों से दिखलाती है? ।
हर एक बस्तु अशकुन ही की; हे देव ! सामने आती है ॥
दादा जी ! इन्हें देखते ही; छाती धक्का सा खाती है ।
यह अनहोनी के हैं निशान; होनी न आज दिखलाती है ॥

गायन

मानो नाथ ! आज जनि पारथ को साथ गहो;
हाथ सें कमान, बान, तून खिसलात है ।
काग मड़रात माथ, बोलत बिलाव बीच;
रोवत सियार, नाग, काट गैल जात है ॥
नभ घहरात ध्वजा उलटी फहरात सी;
श्वान फट फटात है कान शिथिल गात है ।
अशकुन सरासर है बीर धीर जाओ ना;
आगे पग देत आजु छाती दहलात है ॥

" भीष्म " बीर कहने लगे–"हो सारथि! अज्ञान ।
हैं आँखों के सामने; साक्षात् भगवान ॥

वह सब शकुनों के शकुन-रूप;जब मंगल–मूर्ति अगाड़ी हैं।
क्या ख़ाक अमंगल कर लेंगे?;जब आगे मंगलकारी हैं॥
होनी, अनहोनी बस्तु है क्या ?; जो हो जायेगी-होनी है।
अन होनी कभी न होनी है; होनी–अवश्य ही होनी है॥

गायन

शकुन और अशकुन वही मानते हैं।
कि जो मौत को मौत ही मानते हैं।
सड़ाया करें खाट पर चाम फिर भी–
मरी ज़िन्दगी ज़िन्दगी मानते हैं।
उन्हें हैं शकुन और अशकुन बराबर;
कि जो मौत को लाड़ली मानते हैं।
विपति और दुख हैं जिन्हे खेल ही से;
वे अशकुन में अपनी खुशी मानते हैं।

इतना कह ज्यों ही "भीष्म" बढ़े; त्योंही धोसोंपर चोट पड़ी।
पृथ्वी बेचारी डोल उठी; शेष के फनों पर चोट पड़ी॥
हुंकार मार, गरजे ज्यों ही; तो इन्द्र–नगारे मन्द पड़े।
कुछ मन्द, मन्द मुसकाते से; दिखलाई यादव चन्द पड़े॥
बोले नाथ से नमित होकर–"यादवपति ! अब रखवारी है।
कल तक "अर्जुन" की बारी थी;अब आज दास की बारी है॥
देखिये आज आखों भर कर; सेवक का काल आरहा है।
भारत–माता की गोदी से; भारत का भक्त जा रहा है॥"
इतना कह कर "भीष्म" ने; प्रभु को किया प्रणाम।
नीची नज़रों देख कर; रोये करुणा–धाम॥

अरुणाई बढ़ी कपोलों की; चहरे पर बढ़ी सिधाई सी।
आंखों में बढ़ी लजावट सी; बोली ले गई बिदाई सी॥
इतने ही में सैकड़ों बाण; अर्जुन के ऊपर आ टूटे।
सुकुमार, सलौने अंगों में; सहसा कितने ही शर फूटे॥
घोड़ों पर बाण-वृष्टि कर दी; वह खून चढ़ा रण-रंगी पर।
धिज्जियाँ उड़ादीं सेना की; कुछ शर मारे बजरंगी पर॥
"अर्जुन"ने भी धन्वा खींचा; बाणोंसे नभ-मण्डल पाटा।
घनघोर अँधेरा सा छाया; लाखों बीरों का सर काटा॥
"भीष्म"के शरों ने शर पर शर; बनकर यकसर विध्वंस किया।
"अर्जुन"का कवच फाड़ डाला; यादव-पतिका तन छेद दिया॥

सेना बिचलित हो चली; दे न सके भट साथ।
पार्थ सखासे उस समय; बोले "यादव नाथ॥"

"अय वीर धनुर्धर! धन्वा को; धनुधारी के आगे न धरो।
पुरुषार्थ धरो आज को छिपा; अय पार्थ! स्वार्थ की युक्ति करो॥
यह कुछ लड़कोंका खेल नहीं; "भीषम" के बाण करारे हैं।
जिन के आगे तू तो क्या है?; हम भी अपना प्रण हारे हैं॥
वह शान्ति-वृत्ति भी रह न सकी; तेरा रथ भी छोड़ना पड़ा।
हाथ में अस्त्र लेना ही पड़ा; और अपना प्रण तोड़ना पड़ा॥
प्रण ही क्या? यदि समता रक्खो; तो जय न कभी पासकते हो।
मैं अभी जताये देता हूँ; जीते न आज जा सकते हो॥
इस लिये हमारी सम्मति से; अब धन्वा बाण चढ़ाओ ना।
लाओ, उन की ही युक्ति काम; अपनी शक्तियाँ लड़ाओ ना॥"

नहीं समझना चाहिये; यह "माधव" की हार।
दो भक्तों की मार में; मार सहें कर्त्तार॥

सर्वदा, अजय, अविनाशी अज; वे नहीं पराजय पाते हैं।
अक्षय, अच्युत, इच्छानुसार; भक्तों की आन निभाते हैं॥
शङ्ख-ध्वनि कर त्रिभुवन-पति ने;सामने"शिखण्डी"बुलवाया।
त्यों ही"अर्जुन"ने हाथ जोड़;यों कहा-"करो यदुपति!दाया॥
इस कपट—युद्ध के करने में; अपकीर्त्ति आपपर आती है।
आता है दाग़ बीरता पर; आन भी दास की जाती है॥
भगवन् ! इस छल से निश्चय ही; दादाजी मारे जायेंगे।
हिजड़े की ओट पकड़ने से; बलवीर नहीं कहलायेंगे॥
क्यों महाराज ! ऐसे जन को; बेचारा करके मार रहे ? ।
जग—बल होकर बल—धारी को; अबला—द्वारा संहार रहे॥"

कहा नाथ ने सकुच से; सुनते हो प्रिय पार्थ ! ।
करा रहा छल—बल सभी; एक तुम्हारा स्वार्थ॥

तुम आज सामने हो उसके; त्रिभुवन भी जिस से डरते हैं।
केवल भक्त की निभाने को; यह सभी युक्तियाँ करते हैं॥
केवल अनन्य-गति के कारण; तुम भट-भीष्म से बच रहे हो।
वरना उन बल—धर के आगे; मामूली एक छोकड़े हो॥
फिर माना इन के बधने में; मेरी करणी कहलायेगी।
लेकिन यह भी तो बतलाओ; वह शाप कहाँ को जायेगी॥
दूसरी ओर उन महा-भक्त; भीष्म का शिखण्डी से प्रण है।
इसलिये इस तरह मरने में; उनका हर तरह बड़प्पन है॥

इतना कह कर नाथ ने; किया उसे संकेत।
तथा हुए कुछ आड़ में; अर्जुन,नीति—निकेत॥

हुआ शिखण्डी सामने; ज्यों ही सैन्य-मँझार ।
त्यों ही बल -आगार ने; डाल दिये हथयार ॥



नीची निगाह, निशस्त्र–बीर; अर्जुन की चोटें सहने लगे ।
करुणामय से करुणामय हो; भारत के लाला कहने लगे ॥
"समदर्शी ! यह छल-बल जन से;आप को न शोभा देता है।
हथियार हाथ से छूट गया; और हृदय किलोलें लेता है ॥
बेबश हैं आज भक्ति–गति से;उस प्रण से प्रभु ! लाचारी है ।
वरना इस अत्याचारी पर; अब खूनी नज़र हमारी है ॥
मर्मज्ञ !कहो, माधव ! बोलो;क्या यही रीति कहलाती है ? ।
ऊपर देखो,ओ नीति-धाम !; क्या यही नीति कहलाती है?॥

ओ भक्त-वत्स ! क्या भक्तों की; यों दुर्गति भी करवाते हो ?।
या मेरे सारे पापों का; आज ही स्वरूप दिखाते हो ?॥
अच्छा है, हम भी सहमत हैं; जो कुछ यदु-पति की सम्मति हो।
उफ़ ! जगन्नाथके आगे क्या; जनकी अनाथ कीसी गति हो?॥"

गायन

हम काठके पुतले हैं; जैसा चहो नचा लो।
आधार तुम्हारे हैं; पटको, चहे उठा लो॥
मिट्टी के खिलौने हैं, खिलवाड़ ! तुम्हारे हम;
जी चाहे बना रक्खो; जी चाहे मिटा डालो।
हमको शपथ तुम्हारी; मुँहसे न "उफ़" कहेंगे;
प्रेमी हैं, कमल-पदके; जब चाहो आज़मालो॥
"शैलेन्द्र" तुम्हारी ही; मर्ज़ी को मानते हैं;
बनती बिगाड़ दो, या बिगड़ी हुई बना लो॥

भीष्म पिता करते रहे; यों माधव पर चोट।
मार रहे अर्जुन वहां; ले हिजड़े की ओट॥

पर चोट बाण से भी ज्यादा; छाती पर पड़ती जाती है।
वह भावी की अद्भुत लीला; प्रभु को भी विवश बनाती है॥
या यों कहिये, वह परम-भक्त; खुद ही प्रायश्चित करते हैं।
वे भक्त-वत्स उस रोगी की; खुद औषधि निश्चित करते हैं॥
वह महा-शाप का महा--भार; बाण से उतारा जाता है।
अथवा कुसंग वाला प्राणी; बाणों से मारा जाता है॥
पिंजड़े में सिंह बन्द करके; जिस तरह खिजाया जाता है।
उन वृद्ध केहरी-भीषम पर; त्यों पार्थ बाण बरसाता है॥

लाचार प्रतिज्ञा-बन्धन में; फिर बेचारे चिल्लाते हैं।
केशव! जड़ जीवोंके ऊपर; क्या क्रूर-नीति दिखलाते हैं?॥
ऐसे ही मुझे मारना हो; तो महाराज ही वार करें।
मरने से पहिले मुक्ति-धाम; वे मुक्त-हाथ संहार करें॥
बेवश करके, छल-बल-द्वारा; मेरा संहार कराया है।
बेशक मेरा ही कर्म आज; काल-स्वरूप बन आया है॥
मैंने भी अपनी चलती में; चालें सैकड़ों चलाई हैं।
सैकड़ों वीर बेवश करके; अपनी जी चही कराई हैं॥
उन विवश-आत्माओंका बल; यह "काल-चक्र" कहलाया है।
अच्छा है, जैसा कर्म किया; वैसा ही आगे आया है॥
पापी का नमक न खाता तो; क्यों मैं गति-हीन किया जाता?।
वह दीन-विवशताका उत्तर; क्यों करके विवश दिया जाता॥
भक्तके हृदय में इस प्रकार; अन्याय-पक्ष क्यों छा जाता?।
श्री इष्ट-देव, देवाधिदेव; "माधव" पर शर क्यों बरसाता?॥

गायन

किस किसका भला हो सका है?; पापी नीचोंकी संगतिकर।
शत्रुता राम-रावण की थी; पर विपदा पड़ी समुन्दर पर॥
सहती है चोटें शुद्ध-अग्नि; लोहे का साथ निभाने से-
है एक घड़ी का असर अभी; बेचारे चन्द्र-दिवाकर पर॥
गुण ही अवगुण कहलाते हैं; सँगति में अन्तर आने से-
दूध भी शराब कहाता है; सहसा कलवारी के घर पर॥
'गोविन्द' वही सत्संग समझ; 'शैलेन्द्र' जहां छल-स्वार्थ न हो-
हो आठ पहर हर जिह्वा पर; जय नटनागर, जय मुरलीधर॥

"भीष्म पिता" जी कर रहे; बार बार फ़रियाद ।
वहां न अंगों में रही; बाणों की तादाद ॥
रग रग नस नस में छिदे बाण; छा गई छावनी बाणों की ।
मानो तरकश की जगह देह; बन गई भावनी बाणों की ॥
फट गया कलेजा तीरों से; मस्तक-कपाल भी फोड़ दिया ।
रह गया अस्थि-पंजर खाली; खून को रगोंने छोड़ दिया ॥
धीरे धीरे उस भटवर को; बेहोशी सी दिखलाने लगी ।
बादल तड़के,आकाश हिला;सूर्य्य पर कालिमा आने लगी ॥
हलचल आया भूमिपर; निश्चल हुए सुवीर ।
"भीष्म पिता"के पास तक;पहुँचे अन्तिम तीर ।
ज़ंजीरों में जकड़ा नाहर; मानो रण–धीर अधीर गिरा ।
बेपीर तीर–की पीड़ासे; घायल होकर रण–वीर गिरा ॥



शर-शय्यापर भीष्म ।

भारत माँ का लाड़ला गिरा; दोनों पक्षका गुमान गिरा ।
सच्चिदानन्द का भक्त गिरा; भूतल का भट सम्मान गिरा ॥

दुर्योधन का आधार गिरा; प्रण का सच्चा पतवार गिरा।
भारत का सारा सार गिरा; या भारत का सरदार गिरा॥
भूतल पर एक कम्प आया;पवनों की गति भी थकित हुई।
उस भव्य-पुरुष के गिरते ही;भावी भी क्षण भर चकित हुई॥
देवों ने जय जयकार किया; देवियाँ फूल बरसाने लगीं।
हर जिह्वायें, हर आत्मायें; वीर की प्रशंसा गाने लगीं॥

गायन

जयति जय भट-वर, भट-कुल-भानु।
आओ सत्कृति-मूर्त्ति, शान्ति-निधि; कृष्णायन, गुणवान॥
प्रथम-पूज्य भारत-भट-दल में; शुद्ध-आर्य्य-सन्तान।
वीर-मौर्य्य, भारत-हित-रक्षक; देश--रत्न, बल-खान॥
जिनकी समता करने आयें; स्वयं कृष्ण भगवान।
अपनी मृत्यु आपही कह कर; किया शत्रु-कल्याण॥
हो आदर्श "विनीत" जगत में; यह विशुद्ध-बलिदान।

"ओ३म् शान्ति..." कहते वहाँ; हुए भीष्म खामोश।
यहाँ भक्त-पति कृष्ण को; रहा न अपना होश॥

रथ छोड़ दिया, पैदल भागे; भक्त को गोद में उठा लिया।
रोते रोते करुणाकर ने; "भीष्म" को हृदय से लगा लिया॥
हा भीष्म भक्त! हा वीर-मूर्त्ति !;हा प्रण-रक्षक !हा व्रत-धारी !।
हा महा-बाहु ! हा अटल-वृत्ति!;कहकह कर रोये "बनवारी"॥
दोनों दल भी विलपाने लगे; सन्ध्या ने कारिख लपटाई।
भारत-माता सुपूत के हित; काली चादर ओढ़े आई॥

दुर्योधन, कर्ण, द्रोण आदिक; उस दल से हाहा बिलपाये ।
धर्म-पति, पार्थ, भीमादि सभी; इस दल से "हाहा" चिल्लाये ॥
हो गया, बन्द रण उसी समय; जब भूपर रण-सरबस आया ।
वीरता भीरुता बन भागी; स्थल में करुणा–रस छाया ॥

गायन

उठ चला वीरत्व भारतवर्ष का ।
वीरता का तत्त्व भारतवर्ष का ॥
भीष्म ही के साथ में सोने लगा–
आन, बान, महत्त्व भारतवर्ष का ॥
उठ रहा अपने बिरानों में से क्यों?–
आप ही अपनत्व भारतवर्ष का ॥
कौड़ियों में अब न पूछेंगे "विनीत" ।
देख लेना स्वत्व भारतवर्ष का ॥

किन्तु धीर के कण्ठ से; उठे वही धृत–बैन ।
"माधव ! अब क्या लाभ है?; होने से बेचैन ॥

भारत के भावी–सूत्रधार !; भारत का सूत्र बाँध जाओ ।
अये सिद्ध-साधको! विजयकरो; द्वापरका अन्त साध जाओ ॥
प्रेरणा तुम्हारी ही भगवन् !; यह सारे नाट्य रचाती है ।
वास्तव में माया की नटनी; अनगणित रूप दिखलाती है ॥

गायन

तुम्हारे काम में जायें तो प्राण अच्छा है ।
वीर–संग्राम में जायें तो प्राण अच्छा है ॥

लोक-मर्य्याद बने, और को उपदेश मिले।
धर्म के नाम में जायें तो प्राण अच्छा है॥
यही आशा है ऐ "शैलेन्द्र" यही इच्छा है।
जो कुरु-धाम में जायें तो प्राण अच्छा है॥

ब्रज-वल्लभ, गोपी-रमण; नागर-नन्द-किशोर !।
करुणाकर ! इस दास पर; डालो करुणा-कोर॥

होना जो था, हो चुका आज; अब तो मतलब के नारह हैं।
सब मिल कर जय श्रीकृष्ण कहो; यह चलती के पौ बारह हैं॥
मेरा शरीर बाणों से अब; पृथ्वी तक पहुँच न पाता है।
शर-शय्या से नीचे झुक कर; माथे पर चक्कर आता है॥
इससे कोई झेकी देकर; इस माथे को आधार करो।
मरनेवाले के कानों में; "श्री राधा कृष्ण" पुकार करो॥"
"दुर्योधन" का संकेत समझ; प्रतिहारी तम्बू में धाया।
उन बल-धरके सिरहाने को; मखमल का तकिया लेआया॥

कुरु-पतिसे कहने लगे; बिहँस जान्हवी-लाल।
" बेटा ! मेरी देह पर; है बाणों का जाल॥

इस वीर-सेज के साथ साथ; शृंगार-साज दिखलाते हो।
योगी को भोग सिखाते हो; मुर्दे का ब्याह रचाते हो॥
वीरोचित मेरी मृत्यु भी हो; अन्त तक वीरका बाना हो।
भाग्य ने वीर-शय्या जब दी; तो वीरों का सिरहाना हो॥
बेटा ! अर्जुन ! क्या देख रहे ?; ख़ाली स्थानों को भर दो।
शय्या की जगह पूर्ण कर दी; तकिया की जगह पूर्ण कर दो॥

गायन

भोग के सामान हैं, बस लोक-चारी के लिये ।
व्यर्थ आडम्बर ज़हर है, ब्रह्मचारी के लिये ॥
मखमली तकिये, गृहस्थों के लिये शृङ्गार है,
चाहिये केवल कुशासन, योग-धारी के लिये।
वीर-बाना, वीर-जाति-समाज, एवं वीर-भूमि;
वीर-रागनियाँ सुनाओ, रण-बिहारी के लिये।
वीर के उद्धार को, संग्राम-नैया चाहिये ।
वीरके विश्राम को, बस बाण-शय्या चाहिये ॥

उठ "अर्जुन" ने "भीष्म" के; तत्क्षण आगे आय ।
तीन बाण झट मार कर; माथा दिया उठाय ॥



भीष्म सिरहाना ।

उस वीर-सेज पर वीर-धीर; वीरों का मान बढ़ाने लगे।
कुल-पूज्य उभय-कुलवालों को; धीरज देकर समझाने लगे॥
" कौरव-पति,धर्मराज दोनों; मेरी बातों को श्रवण करें।
यदि ज्ञान-शक्ति कुछ बाक़ी हो;तो तनिक सोचकर मथन करें॥
यह सन्ध्या-सूर्य्य-सरिस भीषम;मरघट-गिरि-तट तक आया है।
उस की आभासित किरणों पर; मृत्यु का अँधेरा छाया है॥
कुछ दिन हैं,यह अन्तिम-आभा;तुमको न नज़र फिर आयेगी।
जब अपने फल पर पहुँचोगे; उस रोज ख़बर फिर आयेगी॥

चढ़ा दिये हैं आज तक; वीर-पूत बलिदान।
कटती जाती है यहां; आर्य्यों की सन्तान॥

इतने ही पर सन्तोष करो; आधी शक्तियां खो चुकी हैं।
भारत की ना जाने कितनी; ललनायें रांड हो चुकी हैं॥
इस स्वार्थ-द्रोह में निष्कारण; कितने रत्नों को लूट चुके।
कितनी मांओं की गोदों से; गोद के खिलौने छूट चुके॥
बूढे बापों की पूँजी पर; ना जाने कितने वार हुए।
अन्धी माताओं के तारे; कितने अबतक बलिहार हुए॥
मैं जाने को हूँ-जाऊँगा; पर तुम पीछे पछताओगे।
विजयी अवश्य हो जाओगे; पर ऐसे रत्न न पाओगे॥
भारत ग़ारत हो जायेगा; एक भी न वीर दिखायेगा।
पुरुषों का मण्डल मिटने पर;विधवा-मण्डल रह जायेगा॥

भारत का भारत कभी; लायेगा वह ह्रास।
होगा भावी-काल में; सारा भारत दास॥

यह याद रहे, वीर तो चले; बाक़ी हिरनों के छौने हैं।
लड़नेवाले दो चार छोड़; बाक़ी पार्थ के खिलौने हैं॥

दुर्योधन ! देखो, मान जाव; यह बात न फिर सुनपाओगे ।
उस रोज़ तुम्हीं पछताओगे; जब यहीं पड़े रह जाओगे ॥
भारत–मां के सच्चे सुपूत; पाण्डव न प्रतिज्ञा तोड़ेंगे ।
यह तुम्हें मारकर मानेंगे; या छत्र धार कर छोड़ेंगे ॥
सोचो तो जिनके सारथि बन; आये खुद ही बनवारी हैं ।
मानव-बल वहां करेगा क्या ?; जिस जगह मौन त्रिपुरारी हैं ॥
देखना—न माना कहना तो; वह समय शीघ्र ही आयेगा ।
कुरु–कुल मरघट में जायेगा; पाण्डव–कुल-राज्य कहायेगा ॥

गायन

सावधान, भारत न दास बनाओ ।
वीरोंके वीर; सिंह, धीरोंके धीर; हरो, भारतकी पीर;
उठो, जननी की लाज बचाओ ॥
लुट न जायें लाल यह, वीरो ! विरानी लूट में ।
फूट जाये यह न क्यारी; बन्धुओं की फूट में ॥
हां, गुमानियो !; देशाभिमानियो !;
हिल मिलके; खिल खिलके; माताकी आन निभाओ।

भीष्म पिता ने इस तरह; दिया उन्हें उपदेश ।
फिर भटवर कहने लगे—"सुनते हो ? करुणेश ! ॥

जो आश हो, आशावानोंकी; तो मैं भी धारे आश ही हूँ।
यदि दास्य–पक्षके साथी हो; तो म भी कोई दास ही हूँ ॥
इस तरह मुझे वध करवाना; आपको न शोभा देता था ।
दास ही नहीं, सारा भूतल; इसपर आहें सी लेता था ॥

हां, एक बात से घट कर था;आपका विपक्षी था भगवन्! ।
ले पहुँचा स्वयं नतीजे पर; उन खोटे कर्मों का बन्धन ॥
सङ्गतिका फल, शरीरका बल; शाप का दख़ल सब आये हैं।
कर्त्तार ! अन्त में यही दोष; मेरी होनी कहलाये हैं॥
जो हुआ, किन्तु-केशव ! आगे; निठुराई ऐसी धरियो ना ।
इस मृत-शय्या पर पड़े हुए, घायल-वीरको बिसरियो ना ॥
जब तक यह आँखें खुली रहें; तब तक दर्शन देते रहियो ।
जाओ, सुख-सागर कभी कभी; दीनकी ख़बर लेते रहियो॥

गायन

सुनते हो श्याम सुनो, अन्तमें सुनाये जात;
ऐसी ही सुन सुनके, बे सुनी करियो ना ।
धरियो न दो दो बार, एक बार हीमें धार-
पकरियो भले ही दो बाहें पकरियो ना ॥
डरियो ना शील और सकोचन में काहूके-
यमके भौन गौन है, मौन लै हरियो ना ।
पारथके स्वारथ में, बिसारो है इतै नाथ-
पै कौनिहु स्वारथ में, उतै बिसरियो ना ॥

माधव ने उत्तर न दे; आँसू दिये बहाय ।
मोर-मुकुट की चन्द्रिका; घुटवन गई छिपाय ॥

शर-विधित-भक्तका शब्द शब्द; अच्छेद्य-पुरुषको बींध गया ।
करुणाकर का रोते रोते; आधा पीताम्बर भींग गया ॥
शोणित-कण फिरसे सरसित हो; पीताम्बर पर दरशाये हैं ।
मानो प्रभात की ऊषा ने; नभ में मूँगे बिखराये हैं ॥

नयनाभिराम से अश्रु निकल; साँवरे वदन पर छाये हैं ।
मानो विधु–मण्डल–मीनों ने; अम्बुज पर कण बरसाये हैं ॥
काकुल के लट कुछ बिखर गये; पेंच के बन्द भी उतर गये ।
गढ़ गयी भूमिकी ओर दृष्टि; चरणाम्बुजके नख निखर गये ॥

माधव की हिलकी बँधी; वीर रहे सिसकाय ।
भीष्म वीर फिर सबों से; यों बोले समझाय ॥

कुरु-पति! जाओ, जब तक कि सूर्य्य; मकरपर न वापिस आयेंगे ।
तब तक हम प्राण न त्यागेंगे; योगासन यहीं रमायेंगे ॥
सब जाओ, मेरे लिये सिर्फ़; ऊपर से साया करवा दो ।
इस वीर–आँख को मरते तक; वीरों का जमघट दिखला दो ॥

गायन

श्रवण सुनें जीते जी केवल; भारत माँ का वीर–निनाद ।
गायन हो जब तक वीरों में; तब तक सुनें वीर–संवाद ॥
वीरा माँ के वीर लाड़ले; भरे जाँय वीरत्व–प्रमाद ।
मरते समय वीर–जमघट में; पायें केवल वीर–प्रसाद ॥

आज्ञा पाकर शिविर को; लौटा सैन्य–समाज ।
वीर–सेज पर रह गये; वीरों के सिर-ताज ॥

वह बल-धर, कल जिसके बलपर; सब कौरव-दल बल-शाली था ।
वह परम-विकट-भट नट बनकर; कुरु-कटक कुटिल बैताली था ॥
वह त्रिकालज्ञ, योगी, ज्ञानी; कुल-पूज्य भीष्म सा प्रण-धारी ।
श्रद्धेय, स-शक्ति, सर्व प्रिय भी; राजर्षि, विरक्त, ब्रह्मचारी ॥
वह आज कहाँ ? उस मरघट में; हा ! पानी-दाता कोई नहीं ।
सच है, "विनीत" बिलकुल सच है; अन्त में किसी का कोई नहीं ॥

ओ माया-प्रिय ! ओ ओ मदान्ध !; इससे भी कोई सीख गहो ।
"शैलेन्द्र" अरे ओ मतवाले !; अब भी तो राधेश्याम कहो ॥

गायन

आने को आयेंगे संसार में आनेवाले ।
चले भी जायेंगे, पर-लोक में जानेवाले ॥
किन्तु; पायेंगे नहीं, फिर से ज़मानेवाले — ।
अपनी मौत की तदबीर बतानेवाले ॥
भक्त भी होंगे बहुत; और भक्त-वत्सल भी— ।
कहाँ मिलेंगे ? मगर प्रण भी डिगानेवाले ॥
कहाँ है ? हिन्द ! तेरा; भीष्म सा प्यारा लाला— ।
जिस की गाथा के हैं; हर शब्द रुलानेवाले ॥
आज "शैलेन्द्र" ज़रूरत है, उन्हीं बीरों की— ।
देश को चाहिये, बलिदान चढ़ानेवाले ॥

वीर—गाथ, वीरा—मही; वीर—देश सन्तान ।
वीर—भाव जागृत करो; यदि चाहो कल्याण ॥
जन "विनीत" की नाव को; ले चलियो प्रभु ! पार ।
महा-भार-मद-मोह-वश; सके न शीश उघार ॥
विपिन-विहारी, विरद—वर, गहिये बाँह ब्रजेन्द्र ।
करिये पार, मझ धार हैं; जन "विनीत-शैलेन्द्र" ॥

—शुभमस्तु—

इति भीष्मपर्व—भीष्मकी वीरगति ।

श्रीः ।

महाभारत-द्रोणपर्व ।

बलिदानी वीर-अभिमन्यु.

❋ सरल छन्दोबद्ध. ❋

"रह गया भारत में भारत नाम ही;
चल बसा लेकिन खिलौना हिन्दका ॥ "

लेखक—

काव्य-कला-भूषण अभिनयाचार्य्य कुशल-कवि,
श्री पं० गोविन्ददासजी विनीत, तालबेहट—झाँसी.

और

कविरत्न श्री पं० शैलेन्द्रकुमारजी वाजपेयी,
धर्मालङ्कार, कीर्तनकलानिधि,
आनन्दभवन, गणेशगंज, खण्डवा C.P.

मुद्रक एवं प्रकाशक:

खेमराज श्रीकृष्णदास,

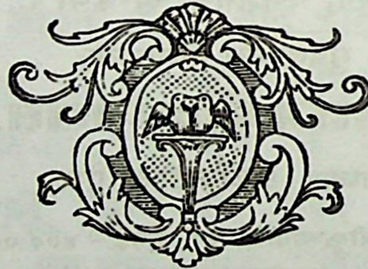
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई – ४०० ००४.

॥ श्रीः ॥

प्रार्थना.

विश्वंभर, विश्व-धार। विश्वेश्वर, विश्व-तार।
इच्छामय नाट्य-कार; निर्विकार, निराकार-
ओ३म्कार.....।
अजर-अमर-अज अच्युत;अद्‌भुत,आदि ब्रह्म कर्त्तार।
वासुदेव यशुदा-नन्द; गोपी-पति कृष्ण चन्द;
जगत-वन्द्य,करुणा कन्द;केशी-दमन,कंस-हार।
गिरधर,नटवर,श्याम सुन्दर हरि,जन"विनीत"उद्धार।



श्रीः ।

❁ कथा-प्रारम्भ । ❁

उभय-शिबिर में रात भर; रहा घोर-कुहराम ।
चिन्ता में डूबे रहे; चिन्ता-मणि घन-श्याम ॥

"दुर्योधन" माथा पीट पीट; "हा पिता! पिता!" चिल्लाता है ।
हाथ को पकड़ कर "कर्ण" बीर; यों बार बार समझाता है ॥
"बल-शाली! दल-शाली! राजन!; यह खेद आपका किस पर है? ।
यदि दादा "भीष्म" न हाज़िर हैं; तो उनका अनुचर हाज़िर है ॥
जो पाजाऊँ "सेना-पतित्व"; तो कल ही उसका बदला लूँ ।
सौगन्ध तुम्हारी करता हूँ; सारा पाण्डव-दल कटवा दूँ ॥"

सेना-पति-पद के लिये; गया द्रोण-सुत डोल ।
कहा क्रोध भर भूप से; खोल ढोल की पोल ॥

"इस के हाथों सेना देना; बीरों को लज्जित करना है ।
ऊँचे ऊँचे कुल-वान तथा; गुरु को अपमानित करना है ॥
जो मुझे नायकी मिल जाये; तो कल ही पाँसा पलटा दूँ ।
पाण्डव-दलका दल भी न रखूँ; जगमें जयकी ध्वज फहरा दूँ ॥"

कर्ण बीर के सामने; यह बेजा तक़रीर ।
दाँत चबा कर एक दम; उठा खींच शमशीर ॥

पर "दुर्योधन" ने हाथ पकड़; "कर्ण" को पास में बिठलाया ।
फिर अपनी दीन-दशा कह कर; वह गुस्सा ठण्डा करवाया ॥
"बलबीर कर्ण! रण-धीर कर्ण!; यह गुस्सा खास भुजाओं पर ।
फिर क्या बल लेकर जाओगे ?; अपने बैरी राजाओं पर ॥
जो घर में आगी सुलग उठी; तो शत्रु तेल बन आयेंगे ।
हम तुम ईंधन बन जायेंगे; खुद ही स्वाहा हो जायेंगे ॥

भैया ! इस समय, समय देखो; दो बातें सब की सहा करो ।
कोई कितना ही बका करे; इस समय शान्त ही रहा करो ॥
स्वार्थ या मान को रहने दो; भटवर ! मेरे ही कहने से ।
कोई अच्छा दल-पति ढूढ़ो; जय पायें जिस के रहने से ॥

कहा "कर्ण" ने-"आप यदि; मानें मेरी सलाह ।
तो गुरु "द्रोणाचार्य्य" को; दे दें मुकुट-सनाह ॥

बुड्ढे है और अनुभवी हैं; बल-शाली तथा मान्य भी हैं ।
आधे से ज्यादा सम्मतियाँ; हे कौरव-नाथ ! उन्हीं की हैं ॥
हो गया अन्त में पास वही; कर्ण का किया प्रस्ताव वहीं ।
कुछ लोग दूसरी ओर रहे; पर खास विरोधी उठा नहीं ॥

अस्तु उसी क्षण द्रोण को; ताज दिया पहिनाय ।
"दुर्योधन" कहने लगा; गुरु से शीश झुकाय ॥



द्रोणाचार्य का सेनापतित्व ।

"द्विजदेव ! जिसी बलि-वेदीपर; दादाजी घायल किये गये ।
गुरुराज ! जिसी मर्य्यादा पर; बलिदान लाल कर दिये गये ॥
उस वेदी की,मर्य्यादा की;अब लाज"लाज-पति"!तुमपर है ।
लो उठा,या कि दो गिरा,देव!;यह भार तुम्हीं पर निर्भर है ॥

गायन

गुरु-राज ! इसे थाम लो, मँझधार है बेड़ा ।
सरदार बिना आज, निराधार है बेड़ा ॥
पतवार है, पति-रक्षक ! मल्लाह पर नहीं-
द्विजदेव ! डुबा दो इसे; बेकार है बेड़ा ।
बहता है पतन ओर को, सेवक अनाथ सा-
लग जाय हाथ नाथ का तो पार है बेड़ा ।

कहा "द्रोण" ने नेग़ ले, रख माथे पर ताज ।
-"ब्राह्मण के दो शब्द भी; सुन ले वीर-समाज ॥

है पाँच रोज़ का भार मुझे; भरसक यह भार उठाऊँगा ।
तलवार, तीर के वारों से; मैं दावादार गिराऊँगा ॥
जो आँख पार्थ से बचा सकूँ; तो लाऊँ बाँध युधिष्ठिर को ।
पलटा दूँ, कुरुक्षेत्र सारा; उलटा दूँ वीर " वृकोदर" को ॥"

"दुर्योधन" कहने लगा-"गुरुवर ! देव सुजान ! ।
भला आप के सामने; "अर्जुन" क्या ? नादान ॥

जो आप जोश पर आ जायें; तो लाखों"पार्थ"गिरा डालें ।
वह बड़े बड़े पग्गड़धारी; घड़ियों में खाक उड़ा डालें ॥
आजीवन से हे वीर-रत्न !; तुम वीर-वृत्ति ही करते हो ।
बलवीरों के गुरु-वर होकर; आश्चर्य्य ! शिष्य से डरते हो ॥"

"द्रोण वीर" कहने लगे—"तुम्हें नहीं मालूम ।
तीन लोक में "पार्थ" के;रहे नगाड़े घूम ॥
पहिले वह खुद बल-शाली है; उस पर कुछ दैवी-शायक हैं ।
फिर यह संसार जानता है; उसके "यदुनाथ" सहायक हैं ॥
मैं वृद्ध हुआ, वह है जवान; उत्साह बिजयका बढ़ा हुआ ।
मन एक लगन में लगाहुआ;अभ्यास हाथ का चढ़ा हुआ ॥
यह तो उन्नति की महिमा है;चेले,गुरु का कुछ ख्याल नहीं ।
मेरी तो सम्मति ऐसी है; पार्थ को युद्ध से टाल कहीं ॥"
कहा "सुशर्मा" ने—"रहो; मैं बतलाऊँ राय ।
"कृष्णार्जुन" को प्रात ही; दूँ बाहर पहुँचाय ॥"
इतना कह कर शीघ्र ही; गया "पार्थ" के पास ।
बैठे थे जिस जगह पर; "अर्जुन—रमा-निवास" ॥
बोला-"कल होगा समर पार्थ; मेरी तेरी बाज़ी बद कर ।
इस लिये जताने आया हूँ; विश्वास रहे इन वचनों पर ॥"
"पार्थ" ने कहा—"कल होने दो; तुम से ही बाजी मारूँगा।
मैं भी प्रण—पूर्वक कहता हूँ; कल तुम को ही संहारूँगा ॥"
प्रात हुआ, धौंसा बजा; शुरू हुआ संग्राम ।
"दुर्योधन"कहने लगा—"सुनिये गुरु बल-धाम ॥
भगवन!वह युक्ति लगाइयेगा; जिसमें कि "युधिष्ठिर"बँध जायें ।
बस एक युक्ति के साधन से; सम्पूर्ण युक्तियां सध जायें॥"
"अर्जुन" ने यहां कहा—"भाई!;जी जान लड़ा दो लड़ने में।
हिम्मत वर! हिम्मत पस्त न हो;ख़म खाये क़दम न बढ़ने में॥
जो तीन लोक हथयार बांध; "द्रोण"के सामने आजायें ।
विश्वास रहे, दो टक्कर में; तो वे सब चक्कर खाजायें ॥

ईश्वर जाने कल के रण में; क्या कौतुक उन्हे रचाना है? ।
दल को दल से भिड़ जाना है;नाथ को उस तरफ़ जाना है॥
खुद "परशुराम" ने जिस भट को;कर दिया सभी गुण-आगर है।
उस से धर्म को बचाने का; अब भार तुम्हारे सिर पर है ॥

गायन

सर्वस्व लगा डालियो, बस "धर्म" के लिये ।
संसार भुला डालियो, बस "धर्म" के लिये ॥
सेना न रहे, तुम न रहो, वंश नाश हो-
बलिदान चढा डालियो,बस "धर्म" के लिये।
माता की आन, धर्म की, मर्य्याद न मिट जाय-
जीवन को मिटा डालियो, बस "धर्म" के लिये ॥

इतना कह गमनित हुए "अर्जुन-यादव-नाथ ।"
बढ़ बढ़ कर होने लगे; यहां परस्पर हाथ ॥
बाजे निशान; गाजे जवान; लरज़ी कमान, वर बाण चले ।
खटकी कृपान, मैदान मांग; बाज़ी बद बद बलवान चले ॥

गायन

एक एक सन भिरत, करत रण-गति चितचाई ।
मल्ल-युद्ध कहूँ, अस्त्र-शस्त्र-सँग विविध लराई ॥
धावत भरे उमंग, तरंगनि-रंग-रँगीले ।
खेलत जनु मिलि समर-फाग छकि छैल छबीले ॥
धरि दबात कोऊ एक, एक लै दौरत पाछे ।
आछे लागत सुभट समर-पट काछनि कछि ॥

जय पुकार इक बढ़त, चढ़त सिर प्राण निकारत।
छटपटात कहुँ बीर, "ॐ" शुभ मन्त्र उचारत॥
एक दूसरे से वहां; लेते थे मैदान।
"धर्मराज" की ओर को; बढ़े "द्रोण" बलवान॥

पर "शूरसेन" ने आगे बढ़, "द्रोण" को बीच में रोक लिया।
सहसा बाणों की झड़ी झाड़; कितने वीरों को गिरा दिया॥
जब कौरव-सेना अटक रही; तब द्विज ने बाण-प्रहार किया।
सेना को काट छांट डाला; भट "शूर सेन" को मार दिया॥
"शूरसेन" को मार कर; बढ़े "धर्म" की ओर।
पाण्डव-दल में मचगया; सहसा "हाहा" शोर॥

"द्रोण" ने विचार किया मनमें; जो "धर्मराज" को मारूँगा।
तो अपने ही हाथों, अपनी; सेना को भी संहारूँगा॥
जो "धर्म-राज" की रक्त-बूँद; एक भी भूमि पर आयेगी।
तो प्रलय-अग्नि उपजायेगी; दोनों दल अभी जलायेगी॥
अस्तु, नहीं वध योग्य हैं; धर्म-राज-नर-नाथ।"
सिर्फ़ बांधनेको बढ़े; नाग-पाश ले हाथ॥

ज्यों ही पाश ले बढ़े आगे; त्यों ही रथ छोड़ धर्म भागे।
पाण्डव-दल में से कोई भी; रह सका न गुरुवर के आगे॥
"हा हा" पुकार हर तरफ़ पड़ी; चिल्लाये-"हा यदुवर! आओ।
इस आफ़त से, इस संकट से; दीनों के प्राण बचा जाओ॥

गायन

कृष्ण! गिरती हुई बाज़ी को उठाने आ जा।
मरनेवाले हैं तेरे दास बचाने आ जा॥

"गजेन्द्र–ग्राह" की गाथासे कम नहीं संकट–
अये कमलेश ! मेरे फन्द छुड़ाने आ जा ।
डिगनेवाला है क़दम, डूबनेवाली है शरम;
ओ मेरी नाव के पतवार ! रखाने आ जा ॥
जो ग़रीबों की सुनाई हो मनोहर मेरे;
"विनीत" दीन की तो बात बनाने आ जा ।"

अन्तर्य्यामी ने वहां कहे "पार्थ" से बैन ।
"सखा ! वहां हो रहे हैं; "धर्मराज" बेचैन ॥

द्विज "द्रोण" पाश में इसी समय; धर्म को बाँधने धाये हैं ।
सारा दल शून्य पड़ गया है;नर-पति रथ छोड़ सिधाये हैं ॥
गुरु आगे बढ़ते आते हैं; नृप यहां वहां चिल्लाते हैं ।
यदि क्षण भी कहीं विलम्ब हुआ;तो नृपति हाथसे जाते हैं ॥
तब "अर्जुन" ने क्रोधित होकर; मन-व्यापक-अस्त्र चलाया है।
जिसने द्विज के कर–बेधन कर; पृथ्वी पर पाश गिराया है ॥
कुछ और बाण आये पीछे; सारथी मरा, रथ टूट गया ।
चारों घोड़े भी रहे खेत, द्रोण का धैर्य्य भी छूट गया ॥

लौट पड़े गुरु बीच से; होने आई शाम ।
वहां "पार्थ" का रात दिन; मचा रहा संग्राम ॥

दोनों दल यहां लौट आये; उनका विश्राम हो रहा है ।
"कुरु-पति" कर्ण को साथ लेकर; गुरुवरके पास रो रहा है ॥
"गुरुदेव ! आप सा सेना-पति; यों देखे अपनी दुर्गति को ।
सोचो तो, क्या कहता होगा ?;संसार हमारी हिम्मत को॥"

कर्ण ने डाह से कहा—"जहां; खुद माथ शर्म पर झुकता हो ।
ऊपरी कर्म पर झुके हाथ; पर हृदय "धर्म" पर झुकता हो॥
उनके बलपर राजन् क्यों कर; सेना रक्षित रह पाती है ? ।
हमको तो गुरुके लड़ने में; कुछ मिली भगति दिखलाती है॥
देखा है हमने कई बार; यह नहीं बाण तक लेते हैं ।
अर्जुन की तीखी चोटों पर; उलटी बधाइयाँ देते हैं ॥
जिसके मनमें द्विविधा होगी; शत्रु के लिये करुणा होगी ।
जो अपना ही दल-घात करे; उस नरसे आशा क्या होगी ?॥"

क्रोधातुर हो "द्रोण"ने; फेंक दिया सिर-ताज ।
बोले—"लो रखलो छिपा; अपना धन महराज ॥

ले लो, सँभाल कर रख छोड़ो; यह ताज बड़ा भारी धन है।
हम अच्छी तरह जानते हैं; मरने के लिये बड़प्पन है ॥
"अर्जुन" के तीखे-कठिन बाण; शर तक न चढ़ाने देते हैं ।
वह भट तन छेदे देता है; यह पापी ताने देते हैं ॥
वह किस कामका बड़प्पन है ?; चूँ कर न सकूँ-दुख सहनेपर ।
अपमानित होकर रहूँ अगर; तो धिक् ! है ऐसे रहने पर ॥
हितकर से जहां दुरावट है; मित्रों से जहां बनावट है ।
खटपट है, जहां हाकिमों से; बैरी से जहां मिलावट है ॥
गुरु—जनको जहां खिजावट है; मतलबकी जहां सजावट है ।
विद्रोह जहां घर ही में है; तो नाशमें नहीं रुकावट है ॥
यह तरकश लो, यह धन्वा लो; दरवेशी हमें मुबारिक हो ।
हम हैं; बिगाड़नेवाले तो यह ओहदा तुम्हें मुबारिक हो ॥

इतना कहकर "द्रोण" ने; फेंक दिये हथयार ।
"कुरुपति" बोला—"ओ मेरी; नैयाके पतवार ॥

यह डगमग डँवा डोल नैय्या, क्या गुरुवर ! छोड़े जाते हो ?।
हे महोदार ! हे शान्ति-मूर्त्ति !; चेलों पर रिस दिखलाते हो॥
जो बात न हमको जँचती है; आख़िर कहनी ही पड़ती है।
जो घर का बूढ़ा होता है; उसको सुननी ही पड़ती है ॥
जो हाथ हमारा पकड़ा हो; तो अब अन्त तक निभाइयेगा।
जो वास्तव में हित-इच्छा है;तो कोई प्रण दिखलाइयेगा ॥"

कहा "द्रोण"ने क्रोधसे-"तो सुन ले कुरु-राज !।
राज-शिविर में वृद्ध-द्विज; करता है प्रण आज ॥

गायन

ईश्वर की आन देकर; संग्राम करेगा।
टल जांय सूर्य्य-चन्द्र; पै ब्राह्मण न टरेगा ॥
कल देखना,-प्रभात से; वह बाण चलेगा-
नीचे अहीश-ऊपर; सुर-राज डरेगा।
सावन की घटाओं का; वह दृश्य खिलेगा-
आकाश का हर पहलू ; बाणोंसे भरेगा ॥
" शैलेन्द्र " कान खोल के, सुन ब्रह्म-वाक्य है।
" कल पाण्डवों का कोई, " बल-वीर " मरेगा ॥"

प्रात काल ही करेंगे; चक्र-व्यूह तैयार।
निश्चय मारा जायगा; कल कोई सरदार ॥
पूर्ण हुआ दरबार यह; धन्यवाद के बाद।
वहां " धर्म-पति" के यहां; पहुँचा यह संवाद ॥

वह जागे हुए जोश फिर से; सहसा सो गये पाण्डवों के।
वह विजय-सूचना के धौंसे; उलटे हो गये पाण्डवों के ॥

यों कहा "नकुल" ने–"बस भ्राता!; सारा संहार समझियेगा ।
कृष्ण का खेल, पार्थ का मेल; अब बंटाढार समझियेगा ॥
संसप्तक–रण में फँसे पार्थ; हम फँसे ब्यूह की बाड़ी में ।
"गिरधारी" बिना आज हा हा !; खम पड़ी धर्म की गाड़ीमें ॥

" धर्मराज " कहने लगे–"हा अर्जुन ! यदुवीर ! ।
क्या निष्फल हो जायेंगे ?; आज तुम्हारे तीर ॥

श्री " वासुदेव " का सब प्रयत्न; धोखे में खाली जायेगा ।
अये पार्थ ! तेरे आते; आते; रण–क्षेत्र शून्य दिखलायेगा ॥
झट भीम भ्रात ! दौड़ो--धावो; झट-सेना में प्रस्थान करो ।
हे रण--सरिता के रण--बंका !; रण-गंगा में स्नान करो ॥
जब तक देह में भुजायें हों; जब तक हो शक्ति भुजाओं में ।
जब तक कि रक्त में तेज रहे; बाकी हो रक्त शिराओं में ॥
तब तक बैरी का रक्त पियो; वह चौंघट–चौपट कर डालो ।
वह कुल-कंटक-कौरवी-कटक; काटो झट ! मरघट कर डालो ॥
प्रिय नकुल ! बढ़ो, सहदेव ! चलो; भारत में कुरबानी करदो ।
आर्य्यों की तरह आर्य्य मां पर; अये आर्य्यों ! बलिदानी करदो ॥
यदि इस प्रयत्न से सफल हुए; तो जयी–यशी कहलायेंगे ।
चढ़ जायेंगे बलि–वेदी पर; तो राज्य स्वर्ग का पायेंगे ॥

अकुलाहट सुन "नकुल" ने; कहा जोड़ कर हाथ ।
इतने शोकातुर हुए ?; क्यों पाण्डव नर–नाथ ॥

"धर्म" ने कहा-"क्या सुना नहीं?; या सुन कर समझ न पायेहो? ।
हम से क्या प्रश्न कर रहे हो ?; तुम खुद सन्देशा लाये हो ॥
तुम भी बल-धर, धनु-धारी हो; जाओ, वह ब्यूह तोड़ आओ ।
या पाण्डु-वंश पर पर्दा कर; मां की गोदी में सो जाओ ॥

गायन

मर जायेंगे, जो अपनी; माता के नाम पर ।
फहरायेंगे जय की ध्वजा; वह स्वर्ग-धाम पर ।
आती नहीं है, काम फ़कत; डींग मारना;
बे काम हैं-जो काम; न आयें काम पर ॥
टूटे हैं-पर परिन्द के; पिंजड़े में बन्द है-
पिंजड़ा है कुएँ में और; दाना है बाम पर ।
तो भी तड़प दिखाके, अये क़ैदियो ! उड़ो-
मर जाओगे, या जाओगे; मंज़िल मुकाम पर ।
"शैलेन्द्र" है कमज़ोर तो; "गोविन्द" खौफ़ क्या ?-
है बल-भरोसा सारा; जब राधेश्याम पर ॥

धर्मराज ने हर तरह; दिया जोश पर जोश ।
किन्तु किसी भी बीर को;हुआ न रण का होश ॥

सारे समाज-योधाओं को; देखा जब ग़म में पड़ा हुआ ।
अर्जुन-कुमार,"अभिमन्यु"लाल;बल-वीर-बांकुरा खड़ा हुआ॥
" हे आर्य्य-पिता ! यह महा-ताप;सेवक से सहा न जाता है।
बेटे का शुद्ध-रक्त भगवन् !; सहसा उबाल पर आता है ॥
" है पार्थ नहीं-जय पालेंगे"; गुरुवर का यह ख़याल होगा ।
लेकिन यह उनको पता नहीं;पारथ का पार्थ-लाल होगा ॥
यदि शुद्ध-रक्त इस तन में है; हूँ पूत "पार्थ" बल-धारीका ।
देखना सुबह करतब, यदि हूँ;मैं कृपा-पात्र "वनवारी" का॥
जब तक कि'पार्थ'का अंश रहे;जब तक"कंसारि"सहाय करें।
तब तक न बाल बांका होगा; वे पापी लाख उपाय करें ॥"

"धर्मराज" कहने लगे;—"क्या कहते हो ? वीर !।
कहां ? कुमार—शरीर यह; कहां ? द्रोण के तीर ॥



धर्मराज और अभिमन्यु ।

उस महा—जाल में, बाल लाल!; तुम क्यों कर जाने पाओगे ।
सुकुमार सलौने अंगों से; क्यों कर वह वार बचाओगे ? ॥
यह उम्र तेरी, यह देह तेरी; यह दिन तेरे, यह प्रण तेरा ।
वह महा-ज्वाल का जलता थल; यह लाल! बाल-जीवन तेरा॥"

"अभिमन्यु"कुँवर बोला-"कोमल;कब भट मर्दाने होते हैं ? ।
वह तो असली फ़ौलादी हैं; सुकुमार ज़नाने होते हैं ॥
यह चमक-दमक या सुन्दरता; है काँच में भी, हीरेमें भी ।
चलने फिरने की शक्ति-चाह; सिंह में, और कीड़ेमें भी ॥
काँच पर ज़रा सी चोट पड़े; तो कनी, कनी दिखलाती है ।
चोटों पर चोटें पड़ा करें; हीरे की आब न जाती है ॥
क्षत्रिय-कुमार सुकुमार भी हैं; सर-मार भी हैं,सरदार भी हैं ।
मुख्तार भी हैं,सरकार भी हैं; दिलज़ार भी हैं,दिलदारभी हैं॥
इसलिये बालपन पर मेरे; ध्यान मत चचाजी ! कीजेगा ।
यह बाल-खेल भी देखियेगा; निर्भय हो आज्ञा दीजेगा ॥"

"धर्मराज" कहने लगे-"ब्यूह नहीं आसान ।
उसके बेधन का लला !; है विशेष ही ज्ञान ॥

ब्यूह का तोड़ना तो बेटा; अर्जुन मात्र ही समझता है ।
बे समझे हुए घाट उसका; कोई भी क्या कर सकता है ?॥"
"अभिमन्यु" वीर बोला-"मुझको; वह विद्या याद गर्भसे है ।
इस कारण सेवक निर्भय है; हर खटके से बेखटके है ॥
जिन दिनों गर्भ में यह जन था; उन दिनों उनींदी माई थी ।
उनकी तबियत बहलाने को; यह कथा पिताने गाई थी ॥
उस दिन से आज तलक सेवक; उसको प्रतिदिन दुहराता है ।
शंका है केवल इतनी ही; बाहर न निकलना आता है ॥
कारण कि-सोगई माता जी; तात ने न आगे बतलाया ।
सुन सका जहाँतक भी उस दिन;उतनाही फ़क़त् समझ पाया॥"
"धर्म"ने कहा-"बेटा ! बेशक!; तुम ब्यूह-युद्धमें सच्चे हो ।
लेकिन इतनी त्रुटि के कारण; वास्तविक-तत्वसे कच्चे हो ॥

ऐसी हालत में अगर तुझे; उस रण में भेजा जायेगा।
तो तू भी हाँनि उठायेगा; मुझको भी बट्टा आयेगा॥"

कहा वीर "अभिमन्यु" ने-"क्या कहते हो?तात!।
जब जाना आसान है; फिर आना क्या बात?॥

वह मेरी पहिली विद्या है; उसको अवश्य अज़माऊँगा।
मैं प्रण के साथ कह चुका हूँ; व्यूह को तोड़ने जाऊँगा॥
आकाश भूमि पर आ पहुँचे; या ज़मीं, आसमाँ बन जाये।
पलटा खाये त्रैलोक आज; पर वचन न अब पलटा खाये॥"

कहा "भीम" ने-"है अगर; यह वीरकी तरंग।
तो निकालने दीजिये; मनकी भरी उमंग॥"

"धर्म" ने कहा-"यह इच्छा है; तो मेरे प्राण-प्यारे! जाओ।
माताके दृग-तारे जाओ; अर्जुन के सुकुमारे! जाओ॥
आर्य्यों का गौरव रखने को; वीरों का मान बढ़ाने को।
जाओ, स्वदेश की रक्षाको; भारत का दूध बजाने को॥

गायन

व्यूह-खण्डनको मेरे, पार्थ-दुलारे! जाओ।
धर्म-मण्डनके लिये; धर्म के प्यारे! जाओ॥
कटेंगे आज तेरे हाथ से; लाखों योधा-
स्वतन्त्रता के लिये; शक्ति के द्वारे जाओ।
स्वर्ग से देवियाँ, "गोविन्द" हार डालेंगी-
राज्य-जय पानेको, युवराज हमारे जाओ॥

भैया भीम! और नकुल तुम भी; पीछेसे तैयारी कर दो।
यह भीतर कार गुज़ार बने; तुम बाहर धर-मारी कर दो॥"

इसी मन्त्रणा-मात्रमें; बीत गई वह रात।
क्रम गत धारे लाल-पट; होने लगा प्रभात॥
आज्ञा पाकर सैन्य सब; चली निशान बजाय।
वहां कौरवी-दल चला; बादल सा उमड़ाय॥
रण-रंगी आगे अभी; सका न पैर बढ़ाय।
तब तक गृहिणी-प्रेम ने; अञ्चल खींचा आय॥

'अभिमन्यु'यकायक ठिठक गया;आगे न बढ़ा,पीछे न डिगा।
कुछ असमञ्जसमें खड़ा खड़ा; आपही आप यों कहने लगा॥
''यह क्या ! रण-रंगों पर मेरे; कोई नव-रंग चढ़ाता है।
गज-वनमें धँसे केहरी को; उपवन की ओर बुलाता है॥
तलवार के वारों के बदले; है याद किसी की चितवनिया।
उस रक्त-मयी मूर्त्ति की जगह; है मूर्त्ति सामने मोहनिया॥
जाना, जाना, यह मधुर-मूर्त्ति; प्यारी ही की दिखलाती है।
जो हृदय-तन्त्रियाँ भड़का कर; अपनी ओरको बुलाती है॥
लेकिन मेरा प्रण रणका है; यह प्रेम दोष-मय कायर है।
वीरता और प्रेम के बीच; आकाश, भूमि का अन्तर है॥
माना-प्रेम के अखाड़े में; तलवार व्यर्थ हो जाती है।
चतुराई, निठुराई सारी; उसके आगे खो जाती है॥
तो भी जो सच्चा प्रेमी है; वह सच्चा वीर दिलावर है।
इसलिये वीर-पथ-गामी को; पहिले विश्वास प्रेम पर है॥

अस्तु, वीरते ! धैर्य्य धर; कर न अधिक अब शोर।
युद्धस्थल का पथिक है; रंगस्थल की ओर।
प्रेम-प्रणयनी के निकट; पहुँचा प्रेमी-वीर।
सहसा शीतल पड़ गया; जलता हुआ शरीर॥

प्रेमिका प्रेम से प्रेमी को; प्रेम का हार पहनाती है।
कोकिल–कंठा हृद–कण्ठा को; बढ़कर कण्ठ से लगाती है ॥
फिर मृदु-बैनी मृदु-बैनों से; बोली–"महराज ! आइयेगा।
हे हृदय–देव ! आराध्य-देव !; रण के संवाद सुनाइयेगा ॥"
प्रियतम बोला–"बस आने को; इतना ही भद्रे ! आया हूँ।
आने में आगे संशय है; बस यही सँदेशा लाया हूँ॥
द्रोण ने कपट से "चक्र-व्यूह"; सेना का साज सजाया है।
उसके वध करने को भद्रे !; अभिमन्यु ने बीड़ा खाया है ॥
इसलिये हुक्म दे दो महिले !; पाण्डव–दल की नैया देखूँ।
फूलों की शय्या से पहिले; शूलों की रण-शय्या देखूँ ॥"

काँप रही थी प्रथम ही; स्वयं "उत्तरा" नारि।
हिला रहे थे हृदय को; कुछ स्वप्न के विकार।

उन वारों पर यह महा–वार; भर्त्तार युद्ध को जाते हैं।
बँध गई क़तार आँसुओं की; होठोंपर शब्द न आते हैं॥
तो भी वह शोक दमन करके; बोली-"प्रियतम अवश्य जायें।
रिपु-दल दल दल कर दहलायें; बेखटके ख़ंजर खटकायें॥
जायें–इन प्यासे बाणों की; वह खूनी प्यास बुझा आयें।
माता की कीर्त्ति बढ़ा आयें; चाचा की आन बचा आयें॥
पर नाथ ! न जाने क्या कारण !; रह रह कर मेरा हृदय डरे।
बढ़ती हैं; भीरु-भावनायें; भगवान आपका भला करे॥
इस कारण आज विवश होकर; मैं यही प्रार्थना करती हूँ।
आज को समर में मत जाओ; हाहा कर, पैरों पडती हूँ॥
यद्यपि सतीत्व-व्रत से उलटी; दासी इस समय कह रही है।
क्या करूँ ! मगर देखिये नाथ !; जल-धारा स्वयं बह रही है ॥

गायन

जाओ न पीतम! आजु साजु साजि मानो मोर;
कैधों संग लीजे मौहिं, मोह तरकात है।
आपहिं अलसात हौं, जँमात गात काँपै है;
होत चित भंग दाँय अंग फरकात है।
बेनी बन्द बेसर की गूँज खुलै बार बार;
बिन ही विचार नैन नीर ढरकात है।
सारी सरकात, हीय दरकत दरार सी;
होत हरकात आयु चूड़ी करकात है।

दशा देख कर दुख भरी; बोला दुख-हर्त्तार।
वीर-हृदय के हृदयमें; यह बे-सुरे विचार? ॥

तुम वीराङ्गना कहाती हो; फिर वीर-वल्लभा बनती हो।
हैं! वीर-बालिका हो कर भी; यह कैसी बातें करती हो? ॥
है सभी भार मेरे सिर पर; जो उसे न आज उठाऊँगा।
तो माँ की कीर्त्ति बढाने का; फिर किस दिन अवसर पाऊँगा?॥
जो आज शकुन, अशकुन देखूँ; तो और रूप में गुण होगा।
जाना ही प्रिये! शकुन होगा; ना जाना ही अशकुन होगा॥
आनन्द पूर्वक बिदा करो; द्विविधा निस्सार तुम्हारी है।
उस को भद्रे! किस का भय है?; जिसका रक्षक वनवारी है॥"

वहीं "उत्तरा" ने लिया; उठा काञ्चनी-थाल।
कर आरती सुवीर की; पहिनाई जय-माल॥

जाओ, हे प्राणनाथ! जाओ; रणमें जाओ, लड़ने जाओ।
रिपु के सिर पर चढ़ने जाओ; जननी का दुख हरने जाओ॥

लेकिन आज की लड़ाई में; दासी को भी ले चलियेगा।
हे प्राणनाथ ! दोनों मिल कर, रण-रंगी फाग खेलियेगा ॥"

बिहँस कहा "अभिमन्यु" ने;—मर्दों का संग्राम।
बलवानों के बीच में; अबला का क्या काम ? ॥

नारी ने अपने हिस्से में; पति की सेवा लिखवाई है।
बतला भद्रे ! अबलाओं ने; कब कब तलवार उठाई है ?" ॥
बोली उत्तरा—नारियों ने; ऐसी तलवार चलाई है।
जिस के आगे अच्छे अच्छे; मर्दों ने आँख झुकाई है ॥
जब देवासुर-संग्राम हुआ; "केकयी" ने जय दिलवाई है।
लाखों असुरों की संहारक; रण-चण्डी "दुर्गा" माई है ॥
"महिरावण" की संहारकार; है जगत्पूज्य वह नवनीता।
अब तक घर घर में व्यापक है; बादमें "राम"—पहिले "सीता" ॥
वीरों की वीर नारियां भी, वीरोंका काम दिखायेंगी।
क्या जानें? यह दासियां नाथ!; किस समय? काम में आयेंगी? ॥

कहा वीर ने—"ठीक है; है वीरा त्रिय-जात।
किन्तु नारि की आढ़ में; है लज्जा की बात ॥

सुमुखे ! सुख-सहित विहार करो; भावी बातोंको यों न डरो।
महिले ! हम रण में जाते हैं; तुम महिलों में आनन्द करो ॥"
बोली उत्तरा देवि—"भगवन् !; जो आज्ञा, शीश चढ़ाती हूँ।
जाइये, कृष्ण के आश्रय में; प्राणेश्वर ! तुम्हें पठाती हूँ ॥
जाओ, मैं विजय-माल लेकर; प्रभुके पीछेसे आऊँगी।
यदि जय पा कर आयेंगे नाथ; तो सादर उसे चढ़ाऊँगी ॥
देवेच्छा, स्वत्व-समर में यदि; बलि-वेदीपर चढ़ जाओगे।
तो राज्य स्वर्ग का पाओगे; पृथ्वीपर अमर कहाओगे ॥

प्राण-वल्लभासे बिदा; पाकर वल्लभ-वीर ।
चला समरके वास्ते; वह सुकुमार-शरीर ॥
गौर-वर्ण--नीलाम्बरी; कटि-पट-शर-तूणीर ।
नवल-नील-अम्बुज-सरिस; चपल-नयन-गंभीर ॥

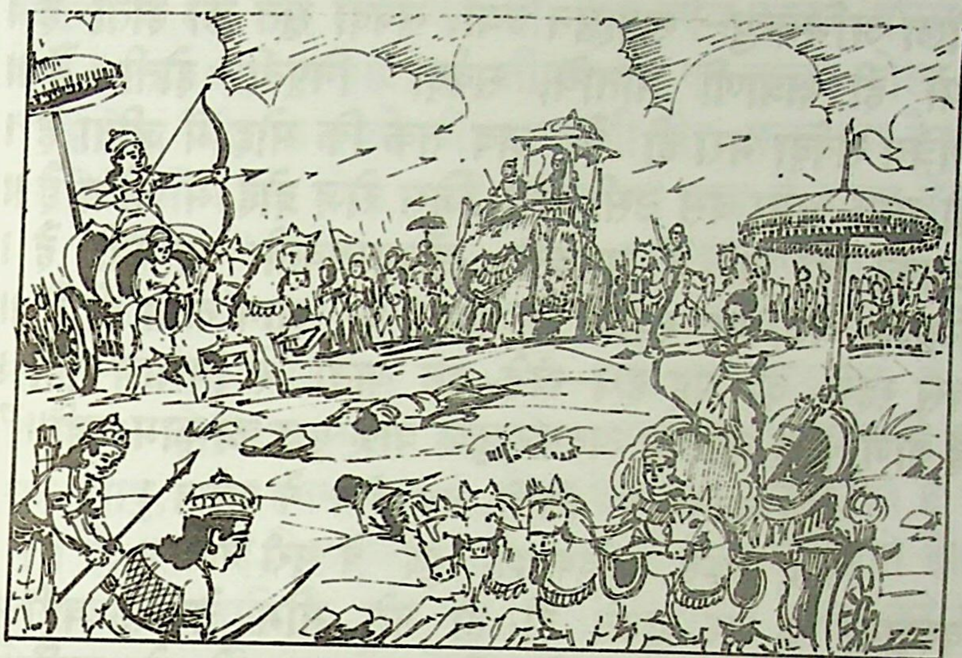
गोला कपोल, मृदु-मधुर-बोल; कुण्डल-किलोल उलझानीसी ।
ग्रीवा सुडौल,नव-नयन-लोल; भृकुटी अमोल रिसियानीसी ॥
नासिका मनोहर, मृदुल-हास्य; अंगार-वीरता भरी हुई ।
चितवन-कमान या काम-बाण; चाञ्चल्य-धीरता भरी हुई ॥
षोडश-वर्षीय-कुमार--आयु; तलवार धारकर आया है ।
सौभाग्य "सुभद्रा" देवी का; जिस ने ऐसा सुत पाया है ॥
विद्या कैसी ! उस हालत की; जिसका न ध्यान भी रहता है ।
ऐसी बातों को सेवक तो; दैवी-लीला ही कहता है ॥
हम सोलह नहीं, साठ के हों; बाहर जाते घबराते हैं ।
रातमें अकेले लेट गये; तो सौ हव्वे लग जाते हैं ॥
रण-भूमि न हो एकान्त सही; यदि चूहे कुछ खटपट कर दें ।
आश्चर्य्य नहीं, हम रो रो कर; बिस्तरे आंसुओंसे भर दें ॥
छुट जाय पसीना तलुवों से; और सन्निपात भी आ जाये ।
क्या अचरज ! भयकी भुतनी वह; प्राण भी हमारे खा जाये ॥
क्यों ? इसका कारण है वह ही; हम छुटपन ही से ऐसे हैं ।
कैसे हैं ? वैसे ही तो हैं; मां बाप हमारे जैसे हैं ॥
गर्भ के समय गर्भिणियों को; वे वीर-कथायें गाते हैं ।
हम लोग सुबह से सन्ध्या तक; बीसों गालियां सुनाते हैं ॥
जिस रोज़ गर्भिणी हुई त्रिया;बस, शौच-सफ़ाई बिदा हुई ।
दिन में रात में जभी चाहा; आंखें मूँदी और लेट गई ॥

ख़ाली ज़मीन, दस बार नींद; नीची-कमीन-सखियां पाना।
फिर कहो, कहां तक सम्भव है?; उत्तम सन्तानों का पाना॥
ज्यों त्यों कर उस दोज़ख़ से जब; औलाद निकल बाहर आई।
तो रक्त-पित्त के कीचड़ के; बदले यह कीचड़ लपटाई॥
संक्रान्ति--श्रावणी में शायद; उनको पानी मिल जाता हो।
काजल की एवज़ कभी कभी; कोयला आंखोंतक आता हो॥
सूखी रोटी हाथ में लिये; मैल के लबादे में तर है।
दोनों स्वर बन्द नाक के हैं; आंखों में छाया कीचड़ है॥
पैदायश से मरने तक भी; वीरता-शब्दको सुना नहीं।
लालाजी पैदा हुए वहीं; और कुछ दिन में मर गये वहीं॥
जातीय-प्रेम देशाभिमान; स्वत्वका ध्यान फिर किसपर है?।
ऐसी "बूदम" सन्तानों का; जीने से मरना बहतर है॥

अस्तु दहाड़ें मारता; वह पार्थ का कुमार।
लगा फाड़ने दलों को; कर धन्वा-टंकार॥
व्यूह-द्वारपर खड़ा था, प्रथम "जयद्रथ" वीर।
बोला अपने आप ही; चढ़ा धनुषपर तीर॥

वरदान है, मुझ को शंकर का; पार्थ से फ़क़त् डर सकता हूँ।
बाक़ी पाण्डव तो घड़ियों में; सहसा परास्त कर सकता हूँ॥
बस भीम, धर्म, सहदेव, नकुल; कोई आया तो साफ़ किया।
कोई भी भट सामने पड़ा; तो एक हाथसे नाप दिया॥
जिस ओर झुके धन्वा मेरा; धुनकी सी रुई नज़र आये।
पाट दूँ ज़मीं को बाणों से; सूरज भी कहीं छिपा जाये॥"

उसी समय अभिमन्युने; की धन्वा-टंकार।
कहा उसे ललकार कर; रे पापी-बदकार!॥



युद्ध स्थलमें वीर-अभिमन्यु ।

भूल जा, स्वप्न की बातों को; प्रत्यक्ष प्रभात दिखाया है ।
भूल जा, धनुष का मान मूढ़ !; खुद धनुर्वेद चढ़ आया है ॥"
हँस कर के कहा जयद्रथ ने-"दुधमुँहे ! न बात बना बढ़कर ।
जल जाय न तेरा दूध कहीं, गुस्से की भट्ठी पर चढ़ कर ॥"
अभिमन्यु कुँवर बोला-"पापी!; यह दूध न उन बच्चों का है ।
जो गर्मी पाकर जल जाये; या तुर्शी से फट सकता है ॥
यह दूध है ऐसी माता का; जो गर्मी से उबाल खाये ।
डर है, कि कहीं उबालों में; तेरी भी अग्नि बुझा जाये ॥"
हँसकर फिर कहा जयद्रथ ने; अये बच्चे ! ज़बाँ सँभाल जरा ।
क्यों मरने नाहक आया है?; दुनिया की हविस निकाल जरा ॥
मत माँ बाप को निपूता कर; उत्तरा को मत विधवा कर दे ।
खाने पीने के दिन तेरे; हथयार अभी घर में धर दे ॥

बोला अभिमन्यु-"खवासन ज्यों; सर्वदा सूत की होती हैं ।
त्यों ही क्षत्राणी मातायें; सर्वदा निपूती होती हैं ॥
क्षत्रिय सर्वदा मरा ही है; जब तक कि मोह में जीता है ।
हो गया अमर बस उसी रोज़; जिस रोज़ द्रोह में जीता है ॥
उसकी ही माँ है पुत्रवती; सौभाग्यवती वह देवी है ।
जिसके बेटे, या स्वामी ने; भारत पर जान लगा दी है ॥
बस रहने दे, यह हथ-खंडे; इन बातों से विश्राम नहीं ।
है बाण--युद्ध का यह अवसर;कुछ वाक्-युद्ध का काम नहीं॥"

दोनों जानिब से खिंची; जब क्रोध में कमान ।
भीम, नकुल, सहदेव की; हुई बे सुरी तान ॥

वरदानी के शर छुटते ही; हो गये भीम बेहोश वहीं ।
सहदेव सिसकते रहे कहीं; और नकुल तड़पते रहे कहीं ॥
गिर पड़े धर्म-पति पृथ्वी पर; सेना ने आना-कानी की ।
एक भी वीर से हो न सकी; समता उस भट वरदानी की ॥

कहा ज़ोर से कुँवर ने;-"अये दर के दरवान !-
सावधान होकर पकड़; अब यह कठिन कमान ॥"
इतना कह कर वीर ने; जहां चलाये बाण ।
अभिमानी रण-धीर के; ख़ता हुए औसान ॥

बाण पर बाण का काट हुआ; सब तरकश खाली कर डाला ।
पाण्डव-कुल के उजियाले ने; खल को बाणोंसे भर डाला॥
जब देखा, बाण समाप्त हुए; तो तेग़ खींच जयद्रथ धाया ।
गिर गई तेग़, वह सिंह-सुवन;खलकी छाती पर चढ़ आया ॥
जब झट का दिया झपट करके; तो पापी ने लटका खाया ।
पटका धड़ाम से धरणी पर; कुछ प्राणों को अटका पाया ॥

खटका न रहा जब उठने का, तो शुद्ध-हृदय-पटका बोला।
बस सटका प्राण पखेरू था; जीवन—रस का मटका खोला॥
"बे होश वीर के वधने में; अपयशी वीर कहलाता है।"
इसलिये नीच को छोड़ वहीं; अभिमन्यु व्यूह में जाता है॥

धँसा वहां अभिमन्यु भट; उठा यहां वह नीच।
झाड़, पोंछ, फटकार, तन; तब बाणों को खींच॥

बोला—"ओहो! अभिमन्यु वीर; तू पार्थ-पुत्र कहलाता है।
है धन्य कोटिशः अर्जुन को; और धन्य सुभद्रा माता है॥
यह आयु, और इतना साहस; जिस के आगे भट रोते हैं।
सच है, सच है, बिलकुल सच है; सिंह के सिंह ही होते हैं॥
अये आर्य्य-जाति के सच्चे धन; तू यों ही फूला फला करे।
मेरी आत्मा भी कहती है;—परमेश्वर तेरा भला करे॥
लेकिन न नीति समझी तूने; यह तेरी भूल सरासर है।
नादान! तुझे मालूम नहीं; "जयद्रथ" छल-बल का सागर है॥
दुश्मन को नीचे लाकर फिर; निष्कारण उसे छोड़ देना।
इसका यह आशय होता है; अपना ही जोड़ फोड़ देना॥
इस ग़लती का यह फल होगा; उलटा तुझ पर ख़ंजर होगा।
वैरी सरदार बचाने में; सरदार! आज बे सर होगा॥

जयद्रथ ने उस द्वार को; तत्क्षण दिया सुधार।
वहां द्रोण के सामने; पहुँचा पार्थ—कुमार॥
बाण मारकर चरण में; गुरु को किया प्रणाम।
अपना अपने पिता का; बतलाया फिर नाम॥

द्रोण ने कहा—"धन्य है वीर!; अनुरागी समर-प्रभाती का।"
वीर ने कहा—"प्रभु! सावधान; संग्राम है दादा-नाती का॥"

गुरु द्रोण आह भर कर बोले-" बेटा ! मेरा कहना मानो ।
व्यूह के क्षेत्र में आने पर; अपनी मत आज कुशल जानो ॥
दुर्योधन के खिजलाने पर; मैंने यह व्यूह रचाया है ।
हा हा ! मौत के निशाने पर; लाड़ला कुँवर ही आया है ॥
उस ओर प्रतिज्ञा खींच रही; इस ओर शिष्यका नाता है ।
हैं ! हैं ! क्या मेरे हाथों ही; पार्थ का खिलौना जाता है ॥
बेटा अभिमन्यु ! वीर नायक !; कुछ ध्यान मेरी सिखपर लाओ।
बस यही तुम्हें सिखलाता हूँ; आज दिन व्यूहमें मत जाओ॥"

कहा वीर अभिमन्युने-"क्या कहते ? गुरु-राज ।
क्या चेले के काज में; नहीं गुरू का काज ? ॥

"अर्जुन" का अंश कहा करके; यदि कायरता दिखलायेगी ।
तो बच्चों का क्या जायेगा; पर, लाज तुम्हारी जायेगी ॥
श्री महाराज ही आज कहीं; मेरी आयु पर दया लायें ।
तो अपनी इज़्ज़त को लेकर; वापिस युद्ध से लौट जायें ॥
नाहक़ मेरे शुचि-धन्वा से; गुरु-हत्या नाथ ! न करवायें ।
मैं भी तो आज कह रहा हूँ; भगवन, आप ही लौट जायें॥"

अश्रु बहाकर कह उठे; द्रोण-देव-गुरु-राज ।
किस बन्धनमें कुँवर प्रिय; फँसा लिया है ? आज ॥

परवाह नहीं, मुझको इसकी; मैं तुझसे मारा जाऊँगा ।
चिन्ता है, तो केवल इतनी; नाती पर हाथ उठाऊँगा ॥
वीर ने कहा-"इसकी चिन्ता; मित्रों के मन में पैदा हो ।
उसके साथ में दया कैसी ?; जिससे प्रत्यक्ष शत्रुता हो ॥"
द्रोण ने कहा-"बेटा ! इसमें; मालिककी नमक-ख्वारी है ।
इस कारण देह उन्हीं की है; पर आत्मा-मेरी तुम्हारी है ॥

इसलिये हमारी सीख मान; अपना न मरण करवा बेटा ! ।
गुरु के हाथ से शिष्यका सुत; बैठे ठाले न कटा बेटा ! ॥"

कहा वहीं "अभिमन्यु"ने;-"रहने दो गुरु-राज ! ।
इसी तरह से मुझे है; अपने कुल की लाज ॥

प्रण करके आप पधारे हैं;-पाण्डव-वीर का मरण होगा ।
मेरा प्रण है-मेरे द्वारा; यह चक्र-व्यूह-भेदन होगा ॥
मर जाऊँगा, मर जाने दो; मरने की चिन्ता नहीं यहाँ ।
इस जगह आप हैं, रण-थल है; मैं हूँ, एवं है तीर कमाँ ॥"

द्रोण विप्र कहने लगे-"तेरी सच्ची नीति ।
अस्तु आज संग्राम में; बेटा ! तेरी जीत ॥

इतना कहकर "द्रोण"भी गये; फिर दुःशासन आगे आया ।
"अभिमन्यु"वीरकी ओर देख;तलवार खींच खल मुसकाया ॥
"अय छोरे ! यह दूधके दांत; और भूत-जमात बीच आना ।
क्यों रे क्या खेल समझता है ?; वीरों से बाज़ी ले जाना ॥
मोड़ दूँ, पकड़ कर गर्दन को; कुछ रिस ऐसी ही आती है ।
लेकिन यह छोटी आयु देख; हाथों को लज्जा आती है ॥"

हँस बोला "अभिमन्यु"भट-"धन्य तुम्हारी लाज ।
जैसी तुमको लाज है; जाने सकल समाज ॥

लज्जा और ऐसे हाथों को; जो लज्जा को लज्जित कर दें ।
शरमिन्दा हों, ऐसे पापी; जो भावी बे इज़्ज़त कर दें ॥
अत्याचारी ! उसके बदले; छाती पर पार्थ-लाल होगा ।
पापी ! उन बालों के बदले; तेरा भी बाल बाल होगा ॥"

इतना कहकर वीर ने; पटका उसे पछार।
एवं पापी से कहा; खींच नग्न तलवार॥

"पातकी ! अगर तू चचा भीम; वीरका शिकार नहीं होता।
तो धड़ अब तलक कहीं होता; और माथा अभी कहीं होता॥
पर-बेवश हूँ, उनके प्रण से; वे ही तुझको संहारेंगे।
तेरे खून से धुला करके; चाची के केश सँभारेंगे॥"

इतना कहकर उसे भी; छोड़ चला प्रण-वीर।
गया सैन्य को काटता; दुर्योधन के तीर॥

"दुर्योधन" बोला-"अये बच्चे !; मत सरपर ज़मी उठाया कर।
खेल ले, और खा ले कुछ दिन; कुछ भय प्राणोंका खाया कर॥
तू कहां ? एक चुहिया-ओहो !; यह चाक यहाँ पर बटनी सी।
नादान ! अगर दे बाँटा तो; सबको न मिलेगी चटनी सी॥
इतना मद, यह रण का विचार; फिर बर्बर सेना में आना।
क्या पुत्र ! तेरी क़िस्मतमें है !; आज ही यम-पुरीको जाना॥"

कहा वीर "अभिमन्यु" ने-"बस, खींचिये कमान।
रहते हैं छिप कर नहीं; बलवीरों के प्राण॥

ज़िन्दगी उसी की सच्ची है; जो वास्तव में ज़िन्दा दिल है।
पार्थकी तरह पाण्डव-दलका; हर बच्चा, बच्चा कामिल है॥
यह मद है, तुम्हें चिढ़ाने को; यह प्रण है, तुम्हें लड़ाने को।
यह तेग़ है बालक के करमें; अन्याय-न्याय निबटाने को॥
इसलिये प्राण की ममता हो; तो मेरे आगे मत आओ।
जो शक्तिवान, बल-शाली हो; तो आओ, ताक़त दिखलाओ॥

दोनों के दर्म्यान में; चली खूब तलवार।
लेकिन हाथ निकाल कर; भाग गया मक्कार ॥



अभिमन्यु और दुर्योधन का युद्ध।

बाकी राजा मिलकर दौड़े; तो दल की काई फिरने लगी।
"अभिमन्यु" वीर अर्जुन-सुत की; हर तरफ़ दुहाई फिरने लगी ॥
चारों ओरोंसे शर--समूह; भटवर के ऊपर आते हैं।
लेकिन एक ही बाण में वे; दो दो टुकड़े हो जाते हैं ॥
मस्तक-विदीर्ण, तन क्षीण-क्षीण; मुखड़े मलीन, चिल्लाते हैं।
जो भाग जहाँ को जाते हैं; वह चोट वहीं पर खाते हैं ॥
जैसे प्रबलानल में तिनके; आ आकर खुद जल जाते हैं।
त्यों ही इस रण की होली में; पापी खुद खिंचते आते हैं ॥

गायन

आये उमड़ाने भरे जौबन जुलाने भट,
परत फिसाने सठ रहिगें रिसाने से।
घूर घुमड़ा ने घन घमंडन घुमाने से;
पौन के डुला ने कूर हरिगें हिराने से।
धाये बढ़ाने से भागे रण उड़ाने से खल;
भवके भौम भावभू भागत भुलाने से।
केते चिल्लाने छटपटाने केते चीख़ चीख़;
दीखत बिलाने कोउ बिलगे बिराने से।

वह देखो, बड़े बड़े योधा; सुकुमारे से हैरान हुए।
कटकर, छटकर, मर कर मिट कर; सब मरघट के सामान हुए॥
रण-गंगा रक्त-प्रवाहों से; कल-कल उमड़ाती जाती है।
वीरों के सिर; धड़, मुकुट, धनुष; तूणीर बहाती जाती है॥
वह देखो, आधे कटे हुए; धड़ धूरि धराकी चाट रहे।
बे मुण्ड-रुण्ड कर खड्ग लिये; अपनी ही सेना काट रहे॥
भागड़-हुल्लड़ पड़ गया; अंधकार की मार।
एक हाथ, चारों तरफ़; बाणों की बौछार॥
सारे दल को उलट कर; धीर-केशरी-वीर।
खड़ा हुआ है मध्य में; चढ़ा धनुष पर तीर॥
"बोला, अय कौरव-दल वालो !; सबका चूरा कर डाला है।
बढ़ लो, अये बढ़नेवालो ! अब; यह नाहर जानेवाला है॥
बाक़ी हो कोई वीर अगर; तो आये, मुझे आज़माये।
इस समर-स्थल में बालक से; अरमान न बाक़ी रह जाये॥"

यहाँ खड़ा नर-केहरी; यों दे रहा दहाड़।
वहाँ जुड़े अधमरे भट; खाये हुए पछाड़॥



द्रोण और दुर्योधन।

"दुर्योधन" बोला-"कहिये गुरु!, लड़ने की इच्छा कहाँ गई?।
ताक़त का दावा कहाँ गया?; वह आर्य्य-प्रतिज्ञा कहाँ गई?॥"
"द्रोण" ने कहा-"इच्छा या प्रण; खोया वीर की लड़ाई में।
मन कहता है, कुछ गीत कहूँ; प्रिय "अभिमन्यु" की बधाई में॥

गायन

"अभिमन्यु" वीर सा वीर; जगत में हुआ न होना है।
वह सुघड़-सलौना-भट-छौना; भारत का सोना है॥
दूध के दाँत पूरे न हुए; यह मार काट के हाथ-
जिस के मारे मुर्दे खाली; छः दिन तक ढोना है॥
धर्म-प्रियता पर धन्यवाद; बे वश पर किया न वार-
हम क्यों न कहें! दोनों दल का; "अभिमन्यु" खिलौना है।
वह त्याग-मूर्त्ति, वह आत्म-वीर; वह धर्म-नीति-अवतार-
ऐसे वीर पर कपट करना; हीरे का खोना है॥

"दुर्योधन" बोला-"क्यों न देव!; शत्रु की बड़ाई गाओगे!।
मालिक के आगे महाराज!; चेले की क्यों न बजाओगे!॥"
"द्रोण" ने कहा-"यश गाने में; थोड़ी भी नहीं बनावट है।
मैं खुले तौर से कहता हूँ; "अभिमन्यु" लाल सच्चा भट है॥
वह सिसक रहे हैं, कटे; छटे; वह देखो, कैसी मार सहें!।
हम सब तो पिट कर आये हैं; हां अपनी बीती आप कहें॥"

"दुर्योधन" कहने लगा-"बिलकुल सच गुरु-राज!।
कर डाला "अभिमन्यु" ने; सचमुच बड़ा अकाज॥

यद्यपि "अर्जुन" भी योधा है; धनु-धारी है, भट-मानी है।
पर उस की ढली अवस्था है; और इसकी नई जवानी है॥
पाण्डव-दल सारा अद्भुत है; अद्भुत ही इस की लीला है।
गुरु देव! सत्य ही कहते हो; ज़हरीले का ज़हरीला है॥

"दुःशासन" ने उसी क्षण; दिया आय सन्देश।
"महाराज! कैसे कहूँ!; अपना कठिन कलेश॥

क्या मुँह लेकर?क्या बात कहूँ?; कैसा सिर वज्र गिराया है? ।
हा ! "लक्ष्मण" को...उस पापीने; सुर-पुरमें मार पठाया है ॥
इस ओर पड़ा "लक्ष्मण" कुमार; उस ओर "शल्य" का भाई है।
"अभिमन्यु" वीर ने महाराज !;दल भर में आग लगाई है॥
अन गिनती राजा काट छाँट; वह वीर अकेला गाज रहा ।
मानो धर बालक वीर-वेष; मरघट में काम विराज रहा ॥"

सुनते ही यह सूचना; नृपति हुआ बेहोश ।
ठण्डेसे पड़ने लगे; कौरव-दलके जोश ॥

गिर गया "शल्य" दूसरी ओर; आह ! का गर्म बाज़ार हुआ ।
मानों अबलायें रोती हैं; सारे दल का संहार हुआ ॥
प्रतिहारी पानी ले आया; "दुर्योधन" का मुँह धुलवाया ।
पुत्र की चोट खाया नाहर, खिजलाकर सहसा चिल्लाया ॥
"ओ सुत-घातक! सुत के बदले; तुझपर भी घोर घात होगा।
सुतपर तब दृष्टि-पात होगा; जब तुझ पर वज्र-पात होगा ॥
अभिमन्यु ! तुझे मारे बग़ैर; कौरव-पति को विश्राम नहीं ।
सुर-धाम न तुझ को भेजा तो; दुर्योधन मेरा नाम नहीं ॥
गुरुराज!कहो, भट कर्ण ! कहो;कौन सी विजय की सूरत है?।
हे शान्ति-मूर्त्ति!बोलो तो क्या?;अब भी शांति की ज़रूरत है॥

"दुःशासन" कहने लगा-"सुनिये कौरव-नाथ ।
चूहे के घर की कुशल; बन बिलाव के हाथ ॥

अफ़सोस ! भाड़ के अन्दर से; बे फूटे चना उछल जाये ।
धिक् ! सात महारथियोंमें से; कल का छोकड़ा निकल जाये ॥
दाब लो, नीच को बग़लों में; पिस्सू की तरह मसल डालो ।
मच्छर की तरह मींज डालो;खटमल की तरह पिचल डालो॥

गायन

बढ़ो, बढ़ो, ओ मेरे बाहु विशालो ! ।
रण-शूर की, उस क्रूर की, जड़ मूरि उखाड़ो,
पृथ्वी पे पछाड़ो, यह कसक निकालो;
भट्टी में फेंक दो, नहीं...आगी में सेंक दो ॥
अजी,बस दाल उबालो । नहीं, अमचूर बना लो ॥

"दुर्योधन,कर्ण,शल्य" सब ने;मिलकर वह राय बराबर की ।
लेकिन इस पाप-प्रणाली से; भर आई छाती गुरुवर की ॥
माथा पीटकर अलग बैठे; आखों से धारा बहती है ।
ब्राह्मण की शुद्ध आत्मा यों; आत्मा ही से दुख कहती है ॥

" हा ! मेरे ही सिर पड़ा, मेरा किया उपाय ।
इन दुष्टों के हाथ से; बालक पर अन्याय ॥

बोले प्रत्यक्ष–"तुम सात जुड़े; वह एक और बेचारा भी ।
ऐसा तो कभी न करता है; कोई पापी हत्यारा भी ॥
लड़ना हो तो फिर एक एक; उस भटवर के आगे जाओ ।
वरना बेशर्मो ! शर्म करो; यह मुँह न लोक में दिखलाओ ॥
एक ही मार में सातों की; धूल तक न अबतक छूटी है ।
उस बेचारेके पास फ़क़त; तलवार–वही कुछ टूटी है ॥"

"दुर्योधन" कहने लगा-"चुप रहिये सरदार ! ।
मेरी मन्त्रणा में तुम्हें; अब न रहा अधिकार ॥

अधिकार तुम्हें दे देख लिया; जैसा प्रतिफल दिलवाते हो ।
अपनी सेना कटवाते हो; शत्रु की प्रशंसा गाते हो ॥

जैसी अब मेरी सम्मति हो; वह तुमको ठहरानी होगी।
अन्याय, न्याय जैसे भी हो; अब विजय हमें पानी होगी।"

"दुर्योधन" के वचन सुन; झुका "द्रोण" का माथ।
खोया सारा बड़प्पन; हाय! नीच के साथ॥

गायन

नीच के साथ में उत्तम भी नीच होते हैं।
बड़े जो खोते हैं नीचों के हाथ खोते हैं॥
यह दाग़ वह है, जो आजन्म धुल नहीं सकता–
खूब धोते हैं, मगर आब से मुँह धोते हैं।
अग्नि पर मांर पड़ी, सिन्धु की मर्य्याद गई–
द्रोण से वीर-हृदय आज खड़े रोते हैं॥
श्रेष्ठ-कुल, श्रेष्ठ हो उत्पत्ति, मगर लाभ नहीं;
बीज जो बोते हैं, बढ़ने के साथ बोते हैं।
"विनीत" दूध कलाली के हाथ है "शैलेन्द्र"
एक अवगुण है, तो गुण भी हज़ार रोते हैं॥

कह न सके कुछ "द्रोण" गुरु; हुआ वहां फिर शोर।
भटवर ने फिर मचा दी; मार मार चहुँ ओर॥
"दुःशासन" कहने लगा–"सावधान सरकार!!
खीजे सिंह–किशोर की; फिर पड़ती है मार॥"

"दुर्योधन" बोला–"मौन रहो; आता है, तो अब आने दो।
बाणों की जगह आज हम को; बातों का जाल बिछाने दो॥
जो बाण चलाया तो उस ने; अपनी बोटियां उड़ा डालीं।
तलवार जो उसके हाथ रही; तो बस धिज्जियां उड़ा डालीं॥"

खड़े रहे चुपचाप सब; आया वह बलवान।
वीर दहाड़ें मार कर; लगा फाड़ने कान ॥



वीर-अभिमन्युकी ललकार।

बलवान वीर योधा कोई; यदि हो तो आगे आ जाये।
जो पिया हो मां का दूध कभी; तो मुझ को ताक़त दिखलाये॥
जो हो सुपूत सच्चा क्षत्री; वह अपनी हविस बुझा जाये।
अर्जुन-नन्दन के बाणों से; बाणों का जोड़ मिला जाये॥"

दुर्योधन कहने लगा-" वीर-बाँकुरे-बाल !।
धन्य धनञ्जय के सुवन !; धन्य सुभद्रा-लाल !॥

यह बाल-वयस,यह काल-रूप;यह धन्वा इन हथेलियों में ।
अचरज है, कैसे वज्र रहा ?; इन नाजुक नर्म उँगलियोंमें ॥"
वीर ने कहा-" प्रेम के समय; जो कोमल नर्म दिखाती है ।
शत्रु के सामने वही देह; वज्र से कठिन बन जाती है ॥
पापी बोला-"सब रण देखा;लेकिन तुझसा न सुभट देखा ।
जिसको तू ने यकटक देखा; बस उस भट ने मरघट देखा ॥
सच्चे क्षत्रिय, सच्चे सुपूत; तलवार से परिचय देते हैं ।
"थू" करते हैं, कायरता पर; प्राणों पर बाज़ी लेते हैं ॥
जिस दिल से मैल न निकल सका;माधव तक के समझाने पर।
वह दिल यकदम हो गया साफ़; तेरी वीरता दिखाने पर ॥
दिल कहता है-"इन नन्हीं सी;हथेलियों का चुम्बन कर लूँ ।
सुकुमार सलौनी मूरति को; इन दुखिया आँखों में धर लूँ ॥
यह जलता हुआ,हृदय अपना; हृदयी से मिल शीतल कर लूँ।
भाड़ में झोंक दूँ; सब झगड़ा;दूँ राज्य तुझे, कफ़नी धर लूँ॥"

कहा वीर अभिमन्यु ने-" धन्य दास का भाग ।
जन्म जन्म की जो कहीं; आज बुझ रही आग ॥

जो पहिले ही सोचा होता; तो यह पछितावा क्यों होता ?।
दादा जी से प्रण वीरों का; यों खून ख़राबा क्यों होता ? ॥
अच्छा है, जो कुछ बचा, सही;अब भी सौभाग्य मनाता हूँ।
लीजिये चचा ! सेवक बन कर;उस प्रेम-गोद में आता हूँ॥"

ज्यों ही आने को हुआ; महाबीर तैयार ।
त्यों ही फिर कहने लगा; कलियुग का अवतार ॥

"सुकुमार ! अगर आते हो तो;तलवार-बाण का काम कहां?।
तलवार, बाण ही बँधे रहे; तो शान्ति और विश्राम कहां ? ॥

आओ, मेरे लाला ! आओ; चाचा मिलने को तत्पर है ।
जो प्रेम-पूर्वक आते हो; तो प्रेम-गोद यह हाज़िर है ॥"

देखी है, और सुनी है; वीरों की यह बान ।
"आन" मात्र के नाम पर; दे देते हैं प्राण ॥

लेकिन ज्यों ही वह आन निभी; फिर ध्यान नहीं प्राणों का भी।
आत्मीय-मान हो जाय पूर्ण; फिर मान नहीं प्राणों का भी॥
या कहो, दूसरे शब्दों में; योधा गण काले होते हैं ।
लेकिन वास्तव में आत्मा के; वे भोले भाले होते हैं ॥
आन पर न रत्ती भर देंगे; विनती पर तन तक दे डालें ।
यदि ढुल जायें तो तन ही क्या!; सारा जीवन तक दे डालें ॥
अभिमन्यु उन्ही वीरों में है; छल है, न हृदय में झांसा है ।
कपटी, कुपूत, हत्यारों ने; निःशस्त्र सिंह को फांसा है ॥

गायन

सहज निर्भीक भाव केहरि-किशोरन में;
चालें बदलना देखीं सियार-सन्तानों में ।
सतनारी में लाज विष-धारी में आशु-गति;
लम्पट में हीन मति दीनता दिवानों में ॥
कवियों में सनक नर्त्तकियों में ढिठाई सी;
योगी वियोगी मौन विकलता अजानों में ।
देखी स्वभाविक हो ये, बातें "गोविन्द" जगत;
वीरों में सिधाई औ बेवफ़ाई ज़नानों में ॥

कहा वीर ने-" यदि नहीं; अस्त्र-शस्त्र का काम ।
तो चाचा जी ! देख लो; है अब इन्हें प्रणाम ॥

हे रण-रक्षक ! रिपु-कुल-भक्षक !; असि-देवी ! सदासहाई है ।
मातेश्वरि ! ले मेरी प्रणाम; अन्तिम-बार की बिदाई है ॥
गर्मी के मित्रो ! नर्मी ने; कर दिया आज नाकाम तुम्हें ।
प्यारे तरकश! प्यारी कमान !; है अन्तिम-बार प्रणाम तुम्हें॥"

गायन

बिदा मेरे प्रिय तीर-कमान ।
सच्चे बन्धु-सखा तुम मेरे, सच्चे जीवन-दान ॥
जबतक तुम सहाय हो दोनों, तब तक निर्भय प्राण ।
जिसे न रहा तुम्हारा बल तो, है वह मृतक समान ॥
तुम तक बल-प्रताप-मद-शक्ती,तुम तक तन-अभिमान ।
मेरे रक्षक, लोक-सहायक, बिदा होओ सुख मान ॥
शान्ति-कामना की वेदी पर; भेटूँ आज कमान ।
रक्त-पान कर चुके बहुत प्रिय ! बैठो शक्ति-निधान !॥

ज्यों ही भोले वीर ने; डाल दिये हथयार ।
घेर लिये चहुँ ओर से; वे पिशाच-अवतार ॥

दुर्योधन झटपट कमर पकड़; "दौड़ो-दौड़ो" चिल्लाया है ।
हां वीरो ! आओ बे खटके; नाहर पिंजड़े में आया है ॥
दुःशासन ! कर्ण ! शल्य ! हाँ-लो;पकड़ो,न छूट जाये,पाज़ी ।
फूटमें फूटकर, तोड़ ताड़; दल पर न टूट जाये, पाज़ी ॥
हां, हां दौड़ो, जल्दी दौड़ो; यह चूहा उछल न जाय कहीं ।
पकड़ो,जकड़ो,मारो मारो; ज़हरीला निकल न जाय कहीं ॥"

काम कर गई बस यही; दुर्योधन की चाल ।
चौदह हाथों का बिछा; एक बालपर जाल ॥

सप्त-महारथि शूरमा; लाल विना हथयार।
क्या था ? पकड़ा ही गया; धोखे में सुकुमार॥



अभिमन्यु पर धावा।

फिर भी झकझोर मरोर बाँह; दो चार को नीचे गिरा दिया।
रण बंका वीर अशंका ने: फँस कर भी जौहर दिखा दिया॥
पर जब बर्छे भालों द्वारा; आघात कराये जाने लगे।
तब वीर बाल कुछ शान्त हुआ;और आततायी मुसकाने लगे॥
कहा ज़ोर से कुँवर ने-"ओ पापी ! बटमार।
ना कुछ एक कुमार पर; इतना अत्याचार॥

क्यों दादा गुरु!क्यों नीति-धाम!; क्या नीति इसीको कहते हैं?।
यदि यह सब के सब सज्जन हैं; तो दुष्ट कहां पर रहते हैं ?!॥
बालक कुमारका छल-द्वारा; करना है उचित शिकार जिन्हें।
थू है, तुफ़ है, लानत, ग़म है; है बार बार धिक्कार उन्हें॥

गायन

सैयाद ! न इस तौर से; कर खून हमारा।
खूनोंसे लिखा जायगा; मज़मून हमारा॥
जल्लाद ! गो वदन में क़तरा न रह सके;
खूनी रहेगा फिर भी; नाखून हमारा।
अये खूनियो! खूँख्वार बनो, पर समझ रखो-
करके ही खून मानेगा, यह खून हमारा॥"

गुरुवर यह हालत देख देख; बच्चों की भाँति रो रहे हैं।
चारों ओरसे मनोहर पर; वारों पर वार हो रहे हैं॥
काम पर या कि सुकुमारे पर; भालों की अनियाँ टूट रहीं।
चन्द्र पर चतुर्दिश से मानो; वज्र की बिजलियाँ टूट रहीं॥
कहते कहते हो गया मौन; बेवश बौछारें सहता है।
छिद गये अंग चलनी ऐसे; माथे से शोणित बहता है॥
दादा गुरु ने बस यही कहा-"ब्राह्मण लाचार हो रहा है।
अपने वचनों का बन्धन ही; हा ! कारागार हो रहा है॥"

गायन

बेटा ! बेटा ! गुरुवर न कहो; हत्यारा कहकर चिल्लाओ।
बटमारा नीच वधिक समझो; ब्राह्मण न दुष्टको बतलाओ॥

थूक दो लाल ! इस मिट्टी पर; तो कुछ पवित्र हो जायेगी ।
गङ्गा की रेणु मान लूँगा; चरणों की धूल दिये जाओ ॥
अये देव ! क्षमा कर ब्राह्मणको; लाचार है यह बेबश है यह।
ओ कुँवर ! शाप दे दो कोई; पर मुझे न ज्यादा शरमाओ ॥"
दुर्योधन बोला—"अरे मूर्ख !; क्या माँगे ? दीन ब्राह्मण से ।
प्राणों की भीख माँगना हो; तो माँग भूप दुर्योधन से ॥
नादान ! ज़रा सी बातों में; समझा था, बस बन आयेगी ।
जीवन भर की जलती ज्वाला; दो शब्दों में बुझ जायेगी ॥
अब बोल, शीघ्र ही बोल, मूर्ख !; प्राणों का दान चाहता है ।
या इसी किशोर-अवस्था में; अपना बलिदान चाहता है ॥"

कहा वीर अभिमन्यु ने—"विष-हृदयी ! मुख-ईख !
क्षत्रिय-बालक के लिये; इन प्राणों की भीख ॥

प्राण की भीख तू क्या देगा; देनेवाला परमेश्वर है ।
तू क्या अब अभय-दान देगा !; जब क्षय-कारी कालेश्वर है ।
दे सकता है ?—तो दे-ला दे; रण-नौका की पतवार मेरी ।
दल-दलदल की आधार मेरी; वह पड़ी हुई तलवार मेरी ॥
उसको पाकर तुम सातों का; जो बन जाऊँ यम-दूत नहीं ।
गिन गिन कर तुम्हें न उलटा दूँ;तो मैं अर्जुन का पूत नहीं॥"
शकुनी बोला—"ओ महाराज !; जो तेग़ नाहर पायेगा ।
तो इसी जगह हम सातों का; भुट्टा सा शीश उड़ायेगा ॥
ज्यों त्यों बच सके केसरी से; लेकिन अब नहीं बचायेगा ।
सारे भारत का इसी रोज़; क़िस्सा तमाम हो जायेगा ॥"

दुर्योधन बोला—"नहीं; दुर्योधन नादान ।
देने से लाचार है; इतना मुश्किल दान ॥"

कहा वीर ने–"कायरो !; तो तुम पर धिक्कार ।
नाचेगा हर शीश पर; यह वीर का शिकार ॥

हैं दशों दिशायें साथ मेरे; श्री सूर्य्य-देव हमराही हैं ।
आकाश ! वायु ! हैं साक्षी-वे; त्रैलोकी-नाथ गवाही हैं ॥
अभिमन्यु वीर, अर्जुन-सुतने; रक्खी है आन धर्म ही पर ।
त्यागा है मान धर्म ही पर; दे डाले प्राण धर्म ही पर ॥
भारत माँ ! तेरा लाल आज; छल से संहारा जाता है ।
हे यादवेन्द्र ! आप का भक्त; धोखे से मारा जाता है ॥

गायन

श्री धर्म के दरबार में; धर्म--प्रियो ! सब आइयो ।
इस धर्म के संग्राम में; निर्दोष जन ठहराइयो ॥
तुम देखते हो, वीर का; भगवान ! नाहक़-खून है– ।
इस आततायी-कर्म का; बदला तुम्हीं दिलवाइयो ॥
चाचा ! पिता ! मामा ! मेरे; इस बालका यदि ध्यान हो–
तो खून के बदले में, इन का खून पीकर जाइयो ॥
मैया सुभद्रे ! हाथ से; तोता ! तुम्हारा चल बसा–
"अभिमन्यु" लालाके लिये; अब गोद मत फैलाइयो ॥
प्रिय वीर-बाले ! वीर-महिले !; वीर-रत्ने ! उत्तरे !--
वह वीर-माला अब वहीं; सुर-धाम में पहिनाइयो ।
जो धर्म-वीरों में कहीं; गायन हो, कवियो ! गायको !–
तो देश के बलिदानियों में; गीत मेरा गाइयो ।
हो कभी "गोविन्द" जब भी; देश में करुणा-कथा;
गाइयो "शैलेन्द्र" तो; बलिदान मेरा गाइयो ॥

माधव मामा ! हो जहाँ कहीं; हे अन्तिम बार प्रणाम तुम्हें।
हे जगज्जये भारत अम्बे !; दें "यादवेन्द्र" विश्राम तुम्हें ॥
भारत-वासियो ! प्रणाम तुम्हें; भारत का सेवक जाता है।
हे अन्तरिक्ष ! पट खोल विहँस; 'अभिमन्यु' दुलारा आता है॥"

"ओ३म्-शान्ति" कहता हुआ; गया वीर सुर-धाम।
उस पवित्र-आत्मा ने; किया पूर्ण-विश्राम ॥

चल बसा वीर, गिर गया रत्न; सो गया बाल भारत माँ का।
भारत माँ पर लड़ते लड़ते; खो गया लाल भारत माँ का ॥
मानो भारती सुहाग अन्त; हो गया हाल भारत माँ का।
बलिवेदी पर बलिदान आज; हो गया लाल भारत माँ का ॥

गायन

लुट गया हाथों से सोना हिन्द का।
उठ गया गोदी से छौना हिन्द का ॥
रह गया भारत में, भारत नाम ही;
चल दिया लेकिन खिलौना हिन्दका ॥
अये मेरे आधार ! आ यक बार फिर;
बैठने वाला है कोना हिन्द का ॥
जो न हों बलवीर तुझ से वीरवर !;
एक है होना, न होना हिन्द का ॥

अभिमन्यु नहीं है आज किन्तु; है अमर नाम "अभिमन्यु! यहाँ।
छाया है जिह्वा, जिह्वा पर; वह कीर्त्ति-धाम अभिमन्यु ! यहाँ ॥

तुम नहीं हो,लाला!पृथ्वीपर;पर हो प्रिय ! सब आत्माओंपर ।
कवियों की उग्र-लेखनी पर; भारत भर की जिह्वाओं पर ॥
ओ स्मृति के पहिले अक्षर; तेरी स्मृति बनवायें कहां ? ।
ओ जानेवाले ! बतला जा; हम तुझे ढूँढ़ने जायें कहां ? ॥
हो कहां ? वीर ! क्या सुर-पुरमें?;जी नहीं,त्रिलोक-प्रभाओंमें ।
आकाश में, सूर्य्य चन्द्रमा में; तारों में दशों दिशाओं में ॥
वह त्याग-मूर्त्ति भौतिक-तन से;हँस हँस के नाता तोड़ गया ।
भारत के बच्चे २ को; आदर्श त्याग का छोड़ गया ॥

गिरते गिरते वीर पर; गिरे शूल पर शूल ।
किन्तु व्योम से देव पर; लगे बरसने फूल ॥

गायन

आओ, आओ, स्वदेश-दुलारे !, हम सब हैं दास तुम्हारे ।
चन्द्र--लोक के चन्द्र पधारो;
हर–आत्मा है भवन तुम्हारो;
आओ, भारत--प्राण हमारे, हम......
आओ, तुम्हें जय–माल पिन्हावें;
अश्रु–धार से चरण--धुलावें;
हृदय लगावें, मन हरषावें;
आओ त्रैलोक के उजयारे; हम......

श्रोता गण ! इस रात में; है विशेष कुहराम ।
कह "शैलेन्द्र" "विनीत" अब;राधा-पति,घनश्याम ॥

गायन

कृष्ण मुरारी लीला धारी ।
घट २ वासी-लोक प्रकाशी; जग-हितकारी ॥
तुम परि पूरण-देव जनार्दन; जय अविकारी ।
समदर्शी करुणा-सुख सागर;
जय नट नागर जय गिरधारी ॥

—ः शुभमस्तु ः—

इति वीर-अभिमन्यु ।



श्रीः ।

महाभारत-द्रोणपर्व ।

द्रोण-वध.

सरल छन्दोबद्ध.

"मिटें या बनें कोई चिन्ता नहीं ।
उन्हीं की यह इच्छा कहा चाहिये ॥"

"शैलेन्द्र"-"विनीत" कृत.

प्रार्थना

जो विरद त्रैलोक में विख्यात है ।
भूल बैठे हो उसे, क्या बात है ? ॥
अये पथिक ! कह दीजियो घनश्याम से-
"श्याम घन" बिन भी यहां बरसात है ।
कंस, दुर्योधन नहीं, पर कर्म हैं-
आज भी घर घर मचा उत्पात है ॥
ले लिया चोरी से चित, दे दो-उसे;
कुछ नहीं बिगड़ा है, घरकी बात है ।
कुञ्ज-वन की झाड़ियां, कुञ्जें वही-
कुञ्ज-पति आओ, वही शुभ रात है ॥
क्या कहें ? "शैलेन्द्र",अय"गोविन्द" प्रभु !;
इस हृदय का हाल तुमको ज्ञात है ।

श्रीः ।

❀ कथा-प्रारम्भ । ❀



कौरव-अत्याचार से; भट का हत्या-काण्ड ।
इस दारुण-संवाद से; गूँज उठा ब्रह्माण्ड ॥
कहा "नकुल" ने धर्मसे-"श्रीराजन्-महराज !
आज आपके ताज पर; गिरी टूटी कर गाज ॥"

इतना कहकर गिर पड़े नकुल; क्षण भरको मूर्च्छा सी आई ।
हैं, हैं, भैया ! क्या हुआ ?-आदि; कहकर बिलखे तीनों भाई ॥
होकर चैतन्य "नकुल" ने; फिर पत्थरसे मत्था फोड़ लिया ।
बोले-"भैया ! दैया ! दैया !; भैयाका छैया गँवा दिया ॥"

गला फाड़ कर, चीख कर; चिल्लाये नर-नाथ ।
"नकुल! नकुल! कुलकी कथा; कहो शांतिके साथ ॥

क्या कहते हो ? हाँ, जल्द कहो; जो हृदय-तन्त्रि कहनेको है ।
सबसे पहिले यह बतलाओ; "अभिमन्यु" हमारा कुशल तो है? ॥
फिर पीट नकुल ने माथे को; छाती पर यक घूँसा मारा ।
बोले-"भाई ! वह पुण्य-पूत; पाण्डव-कुल-कौस्तुभ-सुकुमारा ॥
अर्जुनका सच्चा वीर्य-बिन्दु; आत्मिक-अनुराग सुभद्राका ।
पाण्डव-दलका अभिमान-चिह्न; जीवन-सौभाग्य उत्तराका ॥
सरताज तमाम भटवरों का; लाज-पट पाण्डवोंके बलका ।
युवराज आपका महाराज; शुभ-काज-स्वरूप पुण्य-फलका ॥

उन सप्त–महारथियों को हा; सारे खल-दलका खण्डन कर।
फहरा कर विजय-ध्वजा भटवर;जा चढ़ा स्वयं सुर-मण्डलपर॥
असुरों–द्वारा–संहारित–सुर; सुर मिला रहा सुरभित-सुरमें।
इस मर्त्य–लोकसे मरकर वह; जा पहुँचा आज अमर-पुरमें॥

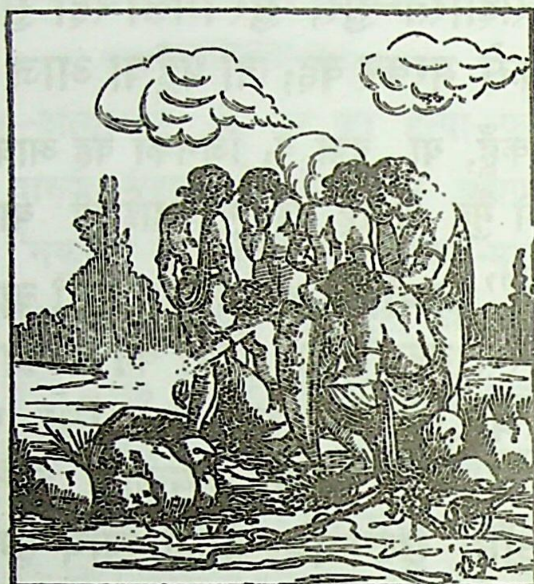
शब्द कहूँ, या वज्र वे; जिनका वह आघात।
मुँह की मुँह में रह गई; मुँह आई सी बात॥

वह हृदय "धर्म" का शीशा था; क्या हुआ ? बातमें टूट गया।
प्रेम का सुधा–रस भरा हुआ; मिट्टी का मटका फूट गया॥
जैसे थे खड़े, वैसे ही गिरे; सब भाई सिर पीटने लगे।
झण्डे झुक गये, सैन्य भरके; जयकारे, नक्क़ारे न रहे॥
कुछ सिसके, और छटपटाये; गोली खाये मृग की नाईं।
फिर उठे, फिर गिरे, उठे, गिरे; सब भूल गई दाईं–बाईं॥

"धर्मराज" के कण्ठसे; उठे करुण–मय–बैन।
"अये दिल ! कब तक रहेगा ?; इसी तरह बेचैन॥

ओ नयनो ! फूट जाओ फ़ौरन; उस हृद्–नैन की जुदाई में।
ओ कानो ! बहिरे हो जाओ; उस मृदु–बैन की जुदाई में॥
ओ हृदय ! टूट, टुकड़े हो जा; उस हृदय-लालका साथी बन।
ओ वृद्ध ! छोड़ दे यह शरीर, उस वीर-बाल का साथी बन॥
अभिमन्यु!वीर अभिमन्यु! ठहर;क्या छोड़ चला मँझधार हमें।
ओ बेटा ! नैया डिगती है; आ जा, बन जा, पतवार हमें॥
ओ मेरे लाल ! ओ मेरे पूत !; हैं, हमें छोड़ के दूर न कर।
ओ,ओ कुमार ! अपना दल-बल;इस दुखसे चकनाचूर न कर॥

तुम विजयी हो कौरव-दलके; मिल चुकी हारपर हार हमें ।
हे लाल ! लाख सौभाग्य तुम्हें; और लाख लाख धिक्कार हमें ॥



धर्मराज का विलाप ।

गायन

मेरा लाल, लाके; गले से मिला दो ।
वह भोली, अमोली सी सूरत दिखा दो ॥
जो आयेगा, अर्जुन; तो क्या कह सकूँगा ?-
अरे ! कोई, मुझको, बहाना-बता दो ।
सुभद्रा की थाती; रक़म उत्तरा की-
कहाँ है ? कहां है ?; वह पूँजी चुका दो ॥
अरे भीम ! हा हा ! उठो; पार्थ आया-
छिपा दो, कहीं अपयशी मुँह छिपा दो ।

गया है जहां, कौन ?; हाँ, वह, वही–लाल–
दया होगी, ओ भीम !; मुझ को पठा दो ॥

पहलू से पहलू बदल रहे; बे कल, कल रही न रत्ती भर।
यह दशा देख कर भ्राता की;आये भट "भीम"उबालों पर॥
"भाई ! भाई ! कायर–हृद का;पृथ्वी पर कोई सहाय नहीं।
बेटा पर प्रेम जताने का; यह रोना कोई उपाय नहीं ॥
"अभिमन्यु"सरीखे लाखों भट; इस भारत में फिर आयेंगे।
भारत की लाज बचाने को; बलि–वेदी पर चढ़ जायेंगे ॥
"अभिमन्यु"ने मरकर सृष्टीमें, अमरत्व–विधान दिखाया है।
भारत के भट–इतिहासों में; आदर्श–नाम लिखवाया है ॥
ऐसे वीर की शान्ति को प्रभु !; यह करुणा-क्रन्दन ठीक नहीं।
ऐसे धीर की याद में यों; अपना कायरपन ठीक नहीं ॥
उठिये, ऐसा उपाय कीजे; उस मणि की दूनी कान्ती हो।
वीरों के वीर उपायों से; उस महा-वीर को शान्ती हो ॥"

"धर्मराज"कहने लगे–"रहने दो अब कान्ति।
मेरे ही बलिदान से; है बेटे की शान्ति ॥

मैंने ? हा मैंने, स्वार्थ-हेतु; सुकुमार समर में पहुँचाया।
मैंने, बेशक; मैंने, बेटा; जलती ज्वाला में जलवाया ॥
मैं मरा नहीं मैं जला नहीं; मैं टला नहीं, मैं गला नहीं।
वह प्राण–परवेरू चला गया; यह प्राण-घातकी चला नहीं ॥
हो चुकी विजय,बस भीम ! उठो;यह ताज नृपतिको पहिना दो।
काटलो गला इस पापी का; सेनायें वापिस करवा दो ॥

गायन

अरे भागो मत, ठहरो लाल ! ।
देव-मूर्त्ति जनि जाव अकेले, ओ मेरे गोपाल ! ॥
आवत हों आरती उतारन, लिये काञ्चनी थाल ।
तुम्हें खोया खिलौने आह ! इस पापी अनारी ने ॥
लुटाया पार्थ का हीरा; इसी निश्चल जुआरी ने ।
है मेरे इस शीश पर; उस हत्या का भार ॥
जिस का कर सकती नहीं; गंगा भी उद्धार ।
ओ जग-पूज्य ! चरण-रज के कण दो इस खलपर डाल॥

खींच तेग़ चाहा जहाँ; करना काम तमाम ।
त्यों ही बढ़ कर "भीम" ने; लिया बीच में थाम ॥
कहा "भीम" ने जोश में—"धीरज धरिये नाथ ! ।
बीर लाल की शान्ति को; कहूँ उठा कर हाथ ॥

"दुर्योधन-दुःशासन" तज कर; बाक़ी उसपर अर्पण न करूँ ।
उन के रक्त से वीर-वर का; जब तक रण में तर्पण न करूँ ॥
है आन "कृष्ण" की धन्वा की; तब तक न लौट कर आऊँगा ।
कुन्ती माँ की सौगन्ध मुझे; कल ही यह ऋण निबटाऊँगा ॥"

गायन

होते ही सुबह युद्ध में, हल चल न मचा दूँ ।
दुष्टों के रक्त-पात से, गंगा न बहा दूँ ॥
उस वीर-हृदय, वीर-केहरी की शान्ति की; ।
अट्ठानवे के रक्त से तर्पण न करा दूँ ॥

"अभिमन्यु"के जयकार से पृथ्वी न हिला दूँ ।
दुष्टों से अगर युद्ध में "हाहा" न बुला दूँ ॥
विचलित अगर वचन से रहूँ-तो न "भीम"हूँ,
जीते जी जो चिता में खुद को न जला दूँ ॥

चले शिबिर की ओर को; करते हाहाकार ।
वहाँ खड़ी थी "उत्तरा"; लिये आरती थार ॥
उमड़ रहा था हृदय में; दर्शन का आल्हाद ।
सुना न था उस ने अभी; वह दारुण--संवाद ॥

आलियों सहित बाग़ीचे में; जय की कामना मनाती थी ।
सुन्दर जय-हार बनाये हुए; आरती थाल सजवाती थी ॥
आल्हाद, तथा आशाओं में; थी एक प्रतीक्षा की रेखा ।
कुछ सखियों ने आगे बढ़कर; पाण्डव-दल को आते देखा ॥
उलझन उतावली में उसने; समझा न वास्तविक हाल वहाँ ।
दौड़ी आई, जल्दी जल्दी; बोली-"आली! जयमाल कहाँ ?॥
वह सुनो, वह सुनो, वीरों के; जयकारी--नाद सुनाते हैं ।
अये वीर—पुजारिन ! आगे बढ़; आराध्य हमारे आते हैं ॥"

देवी हाहाकार को; समझ गई जयकार ।
लिये आरती कुछ बढ़ी; गाती मंगल चार ॥
किन्तु, यकायक देविकी; गई बेणियाँ छूट ।
टपक गया सिन्दूर—कण; पड़ी बींदुरी टूट ॥

चकमक होकर,रह गई खड़ी;चौंचक्की सी कुछ कह न सकी ।
हो गई विकल,रह गई अचल;अब विरह-वेदना सह न सकी ॥
मुँह से चिक्कारी निकल पड़ी; आँखें फाड़कर निहार उठी ।
तब तक और भी पास में वह; करुणा-मय आह पुकार उठी ॥

अध उठी उत्तरा कान लगा; "हाहा अभिमन्यु !" सुनसकी है ।
गिर गई, पछाड़ मार यकदम; रो सकी न माथ धुन सकी है ॥
तब तक रोते पीटते; आये पाण्डु-कुमार ।
दुखियारों में और भी; फैला हाहाकार ॥
चिल्लाकर "धर्मराज" बोले-"ओ भीम ! न अब आगे ले चल ।
ले चढ़ा गधेपर मुझे बन्धु !; तू ऊपर से धक्के दे चल ॥
वह देख, देख, "उत्तरा" बहू; बेहोश पड़ी दिखलाती है ।
ओ भीम ! फोड़ दे यह आंखें; यह दशा न देखी जाती है ॥
हा हा ! मत आगे ले चल अब; उस साहु-मण्डली में भैया !॥
यह बहू यहां बेहोश हुई; आती है, डकराती मैया ॥
माँगेगी जब उत्तरा; अपना जीवन-दान ।
क्या देकर समझाऊँगा; हाय! उसे भगवान !॥"
फैल गया सब शिबिर में; यह संवाद तमाम ।
मचा वहां नर-नारि में; महा-घोर- कुहराम ॥
संसप्तक-गण विजय कर; लौट पड़े "भगवान" ।
एकायक भट 'पार्थ" की; ढीली पड़ी कमान ॥
बोले-"भगवन ! क्या कारण है ?; बे बादल मेघ कड़कता है ।
अप-शकुन सामने आते हैं; प्रभु ! बांया अंग फड़कता है ॥
सामने सियार रो रहे हैं; मृग-टोली बाईं जाती है ।
आजके रोज़ पाण्डव-दलमें; भगवन !न कुशल दिखलाती है॥"
समदर्शी कहने लगे-"फिर अशोच्य" का ध्यान ।
ज्ञानवानको शकुन या; अशकुन एक समान ॥
जब वीरों का जमघट्टा हो; घर मारी यहां-वहाँ से हो ।
तुम जानते हो, आख़िर ऐसी; जगहों पर कुशल कहाँ से हो ?॥

लाखों भट आज मरे होंगे; लाखों अधमरे पड़े होंगे।
लाखों मायें रोती होंगी ; लाखों के घर बिगड़े होंगे ॥
बस यही अमंगल समझ पार्थ !; हैं संकट में दोनों ही दल।
कल्पना, जल्पना छोड़ सखा !;हो रही देर, घर वापिस चल॥"

गायन

बल-वीर होन हार की परवा नहीं करते।
कर्त्तव्य-शील व्यर्थ की चिन्ता नहीं करते।
बनते हैं निकम्मों के क्षण क्षण में फला फल-
वीरों की उम्र ज्योतिषी देखा नहीं करते।
होनी "विनीत" होनी, अन होनी न होनी-
"शैलेन्द्र" हम तो भाग्य का चर्चा नहीं करते।

"कृष्ण चन्द्र" अर्जुन-सहित; पहुँचे दल के पास।
वहाँ अमंगल का हुआ; उन्हें पूर्ण विश्वास ॥
"पार्थ" ने कहा-"देखो केशव ! ; स्पष्ट अमंगल दिखता है।
शिविरों में दिया न जलता है;जय का न नगारा बजता है ॥
आवाज़ न आती किसी ओर; कुछ भेद न समझा जाता है।
भगवान ! शीघ्र ही ले चलिये; सहसा मन उड़ता जाता है॥"
" धर्म-शिविर " के सामने; पहुँचे ज्यों ही नाथ।
त्यों ही हाहाकार-ध्वनि; उठी एक ही साथ ॥
चिल्लाये धर्म-"भीम ! देखो; अर्जुन इस ओर आ रहा है।
ओ ! मेरे दिल के टुकड़े कर;ना जाने कौन खा रहा है ? ॥"
भैया ! "अर्जुन" के बे पूछे; उसके माल को लुटाया है।
"ओ साहुकार ! कर मुझे क्षमा; मैंने तुझको बहकाया है ॥

ओ पार्थ ! पार्थ ! ले, गला काट; मैंने ही तुझे मिटाया है ।
तेरे पीछे; तेरा हीरा; ओ भैया ! आज गँवाया है ॥ ”

कहा “पार्थ” ने–“क्या हुआ ?; हुआ लाल संहार ।
किन्तु; बताओ तो मुझे; मिला किसे जय–हार ? ॥

मरने से पहिले बेटे ने; व्यूह को भेद पाया, या नहीं ? ।
भटवर के जाने से पहिले; जय का झण्डा आया, या नहीं ?॥
बोले “सहदेव”–“ वीरवर ने; वह कौशलता दिखलाई है ।
एक ही द्वार की बात नहीं; सातों द्वारे जय पाई है ॥
जब सारा व्यूह तोड़ डाला; लाखों को घाट उतार दिया ।
तब सात महारथियों ने मिल; धोखा देकर, संहार किया ॥
भैया ! सौगन्ध तुम्हारी है; अत्याचारों से मरा है ।
सच पूछो तो, उन नीचों ने; गोद में बिठा कर मारा है ॥ ”

कहा “पार्थ ” ने–“ मरा है; जो सुत जय के बाद ।
तो चिन्ता किस बात की; किस बात का विषाद ? ॥

बलिहारी उस सुकुमारे की; जो इस अवसर पर डरा नहीं ।
जीवित समझो–जो लाखों को; मार कर–मरा–वह मरा नहीं॥
श्री “धर्मराज” की सेवा में;“सुरपति” भी आज्ञा–कारी हैं ।
“अभिमन्यु” सरीखे लाख लाल;इन चरणोंपर बलिहारी हैं॥
लाखों डाकू कट जाने पर;यदि ब्याज गया, तो कुछ न गया ।
श्री राजेश्वर की सेवा में; युवराज गया , तो कुछ न गया ॥
इसलिये वीर की चिन्ता में; हे तात ! न यों अकुलाइयेगा ।
“अभिमन्यु”कुँवर की हत्या का;असली दोषी बतलाइयेगा॥”

“ धर्मराज ” कहने लगे–“सुनो सहोदर ! बात ।
“ सिन्धुराज ” की ओर से; है असली आघात ॥

जिस समय केहरी-वीर-लाल; जा पहुँचा व्यूह-बेध भीतर।
त्यों ही, हम सब को रोक लिया; उसने पहिले दरवाज़े पर॥
"अभिमन्यु" कुँवर के साथ २; सेना भी गई कहीं होती।
तो मेरी आत्मा कहती है-शायद; यों मौत नहीं होती॥"

कहा "पार्थ" ने- "पालिया; असली दावादार।
कहां जायगा ? निकल कर; वह हाथ का शिकार॥

ओ दगाबाज़ ! ओ जाल साज!; ओ नावकार ! ओ नाकारे!-
ओ क्रूर ! क़साई ! कुटिल! धूर्त्त!; अभिमन्यु-लाल के हत्यारे !॥
ओ काल-निशा के निश्चर-खल!; अर्जुन वीर की कमां पर आ।
ओ पुत्र-प्राण-घातक-पापी !; तू भी मौत के निशां पर आ॥

कान्ह ! तनिक इस ओर को; सुनो लगाकर कान।
एक तुम्हारी आन पर; है अर्जुन की आन॥



श्रीकृष्ण और अर्जुन।

अये तरकश ! धन्वे!बाण!कवच!;तुम सब मेरे हमराही हो ।
हे विपद-बन्धु ! गोपाल!कृष्ण!;हे माधव!तुम्हीं गवाही हो ॥
इस एक खून के बदले में; लाखों का खून बहाऊँगा ।
इस एक माथ के बदले में; लाखों के माथ गिराऊँगा ॥
है आन पिता की माता की;जो लाशों पर लाशें न धरूँ ।
सौगन्ध तुम्हारी है केशव !;जो कल ही जयद्रथ-वध न करूँ॥

"यादवेन्द्र" कहने लगे-" अर्जुन ! होश सँभाल ।
प्रण करना संसार में; समझ महा-जंजाल ॥

भावी-वश कहीं जयद्रथ की; कल को शायद रक्षा होगी ।
तो अये जोशीले ! सोच ज़रा;फिर तेरी भावी क्या होगी?॥"
"अर्जुन"बोले-"बस दयाधाम !; आकाश भूमि पर आजाये ।
अग्निमें कमल-वन फूल उठे; सूर्य्य में मलिनता छा जाये ॥
पृथ्वी को शेष लौट डालें; सृष्टि को "रुद्र" पालन कर दे ।
पर ऐसा नहीं; कहीं कोई; जो मेरा विफल वचन कर दे ॥

गायन

जो मैं जयद्रथ-शिर ना उड़ाऊँ ।
तो लाजौं "कुन्ती" जननी को; पाण्डु-सुवन न कहाऊँ ॥
ब्रह्मा, विष्णु, महेश,काल,यम; जो कल सन्मुख पाऊँ ।
स्वयं नाथ प्रति-पक्ष प्रकट रहिं; तदपि न पीठ दिखाऊँ ॥
सैन्य मार, संहार लक्ष-भट; जयद्रथ--माथ गिराऊँ ।
इतनी न करूँ, मोहिं शपथ कृष्ण की;जीवित अग्नि लगाऊँ॥
बैठ चिता, श्री कृष्ण-ध्यान धर; हौं निज देह जलाऊँ ।

उसी क्रोध—उन्माद में; "पार्थ" गये स्वस्थान ।
तत्क्षण अपने शिविर में; जा पहुँचे भगवान ॥
जन, प्रण करते हैं अहो !; लेकर प्रभु का नाम ।
लेकिन प्रण की पूर्त्ति है; प्रणतारत का काम ॥

चुप चाप चले आये "केशव"; कुछ भी न पार्थ को बतलाया ।
एकान्त समझ माया-पति ने; तत्क्षण माया को बुलवाया ॥
माया आई, करके प्रणाम; नाथ की बग़ल में हुई खड़ी ।
ज्यों ही नज़रों से नज़र मिली; त्यों ही मुसकाहट निकल पड़ी ॥
"माये ! अपने जन "अर्जुन" का; कल पूरा प्रण करवाना है ।
उस के पूरे करवाने में; कुछ तुम को कष्ट उठाना है ॥
"माया" बोली—"हे माया-पति; माया चरणों की दासी है ।
आज्ञा दे दो, हे ब्रह्म-देव !; आज्ञा ही की अभिलाषी है ॥
सेवक क्या हैं ? वह बच्चे हैं; जो केवल रोना जानते हैं ।
वह न तो ज्ञान—को जानते हैं; अथवा न ध्यान पहिचानते हैं ॥
कर्त्ता—धर्त्ता, क्या ? क्रिया-कर्म; वे नहीं एक भी मानते हैं ।
अपने को दास समझते हैं; आप को पिता पहिचानते हैं ॥
जो भूख लगी तो चिल्लाये; जो प्यास लगी तो मचलाये ।
बतलाओ, ऐसों की चिन्ता; आप के सिवा किस को आये ?॥
फिर जैसा बाना धारा है; उसको भी नाथ ! निभाना है ।
प्रण भी पूरा दिखलाना है; लीला भी करते जाना है ॥"

बिहँस कहा "भगवान" ने—"तुम से कहां दुराव ?।
सभी विदित है, तुम्हें तो; भक्ति--मार्ग का भाव ॥

इस लिये हमारे कामों में; तुम भी तो एक सहायी हो।
जो मुझे पिता बतलाती हो; तो तुम भी उनकी माई हो॥
हाँ-देखो, कल किस तरह तुम्हें; वह चर्य्या निबटानी होगी?।
सन्ध्या होने से पहिले ही; सन्ध्या कर दिखलानी होगी॥
कल दिन भर धूर्त्त "जयद्रथ" वह; हर्गिज़ न शक्ल दिखलायेगा।
अर्जुन अपना प्रण भंग समझ; शमशान-भूमि में जायेगा॥
जलने का समय समझ वह भी; पार्थ को चिढ़ाने आयेगा।
उस समय इशारा पाते ही; माया-बादल फट जायेगा॥
बादल फटना "अर्जुन" उठना; शरका छुटना, सरका कटना।
प्रण की सुपूर्त्ति, दास का काम; सृष्टि के लिये हो नव-घटना॥"

"जो आज्ञा" कह कर चली; माया अपने धाम।
किन्तु; रोक कर बीच में; बोले श्री घनश्याम॥

"हाँ-एक काम यह करना है; "श्री कैलासी" पर जाना है।
उस पापी का संहार-कार; "पाशुपत" वहाँ से लाना है॥
शायद कुछ देर लगे हम को; तो इतना काम बना लेना।
मेरे आने से पहिले तुम; सूर्य्य को निकल ने मत देना॥

गायन

हम दोऊ भगतन के चेरे।
एक बार कह भगत हमें निज, हम सौ बार कहें-"तुम मेरे।"
फेर जाँय जन लाख बार मुख; हम से फिर जन जात न फेरे॥
मैं त्रिलोक का नाथ हूँ; भक्त हमारे नाथ।
चौदह भुवन, त्रिदेव हैं; एक भक्त के हाथ॥

भगत भगत हमरे हम निश दिन; भगत भगत निज भगत न केरे।
मैं भक्त हूँ; है भक्त मेरा, एक रूप दो डेरे।
वे दास हैं, मैं दास उन का, धाऊँ शाम सवेरे ॥

आज्ञा पाकर के चली; माया शीश झुकाय ।
प्रभु के कानों में पड़ी; दुखी पार्थ की हाय ॥

देखा–उन्मत्त,–पार्थ विह्वल; सामने झूमते आते हैं।
कुछ मोह भरे, कुछ क्रोध भरे; शब्दों को बकते जाते हैं ॥
"सुकुमार ! सलौने ! मृग-छौने !; तुम को पा लिया क़साईने।
ओ हृदय-पिरोने ! किस प्रकार; तुम को खा लिया क़साईने ॥
ठहरो, बेटा ! ठहरो, लाला !; इसका बदला दिखलाता हूँ।
तेरे घातक जयद्रथ खल को; तेरे ही साथ पठाता हूँ ॥
जब तक हत्यारे के खूँ से; बेटा ! तेरा तर्पण न करूँ।
तब तक न उतारूँ धन्वा को; पानी न पिऊँ, भोजन न करूँ ॥

गायन

ज़ालिम के खूँ की मँहदी; लगा पाऊँ, तो मानूँ।
सैयाद का सर गेंद; बना पाऊँ तो मानूँ ॥
अये मेरे गुल गुलाब के पतझाड़ ! खड़ा रह–
उस गुल को तेरे खूँ से सिंचा पाऊँ, तो मानूँ ॥
अये मेरे धनुष–बाण !; ज़रा सब्र चाहिये–
क़ातिल का लहू तुझ को, पिला पाऊँ, तो मानूँ ॥

"गोविन्द" अपने तेग़से, मुल्की शहीद पर–
ख़्वारे वतन को जब मैं चढ़ा पाऊँ,तो मानूँ ॥"

"अर्जुन" अपने राग में; था बिलकुल मस्तान ।
पीछे से कहने लगे; कृपा–सिन्धु–भगवान ॥

"अर्जुन ! अर्जुन ! वे राह,लक्ष्य; रात्री में कहाँ जा रहे हो ? ॥
बे पता, बे सुरी, बे मतलब; यह क्या रागनी गा रहे हो ?॥"
"अर्जुन" बोले–"हे दया-धाम !; यह राह है एकी त्यागीकी ।
अनुराग भरी, वैराग भरी; यह है रागनी विरागी की ॥
केशव ! जाओ, आराम करो; मैं जाऊँ, जैसा जाने दो ।
बे पता, बेसुरी, बे मतलब; दुख भरी रागनी गाने दो ॥"
प्रभु बोले-"सखा ! खूब गाओ; इस को कोई न रोकता है ।
लेकिन जो प्रण कर बैठे हो; उसकी भी कोई चिन्ता है ? ॥"
"अर्जुन"बोले-"चिन्ता कैसी ?; चिन्ता हो, चिन्तावाले को ।
परवा-हो परवावाले को; क्या फ़िक्र ? कृष्ण-मतवाले को ॥
केशव ! जो अपने बाने की; तुम कुछ भी लज्जा खाओगे ।
तो मुझको क्या?खुद ही भगवन !; सेवक की टेक निभाओगे ॥

गायन

तुम्हारे बल-भरोसे पर, हमें अधिकार है प्रण का ।
निभादें जन की इच्छायें;यह करतब है जनार्दनका ॥
अगर अपने ही पैरों पर, खड़ा होना हमें आता; ।
तो लड़ते, आप ही क्या काम था ?; प्रभु के निमन्त्रण का ॥

धनी हैं भक्त कहने के, धनी हैं नाथ करने के;
तुम्हीं से बल है निर्बल का, तुम्हीं से धन है निर्धन का।
तुम्हारे आसरे माधव ! किये हैं मान यह सेवक—
लगादो पार व्रज वल्लभ !; पकड़ लो छोर दामन का ॥

इन शब्दों से हो गये; स्वयं मौन "भगवान"।
होठों पर आई ज़रा; खेद भरी मुसकान ॥
बोले—"भैया ! मत कहो; ताने की सी बात।
सखा ! पीठ पीछे हुई; वीर—कुँवर की घात ॥

जो हम तुम यहाँ कहीं होते; तो बेटा क्यों लड़ने जाता ? ।
यदि भावी ही सीधी होती; तो धोखे ही में क्यों आता ? ॥
जाना, फँस जाना, मर जाना; यह होनहार की बातें हैं।
भैया ! अब वह उद्योग करो; जो सरोकार की बातें हैं ॥
छोड़ो इस उन्माद को; चलो हमारे साथ।
दुष्ट जयद्रथ के लिये; हैं कुछ निर्बल—हाथ ॥
उसकी मृत्युके लिये भैया !; "पाशुपत" हमें लाना होगा।
आज ही रात में "शङ्कर" पर; जाकर वापिस आना होगा ॥"
"पार्थ" ने कहा-"हे दया—धाम !;तो कहिये,रथको सजवा लें।
गरुड़ध्वज बोले—"रहने दो;आज को गरुड़ ही बुलवा लें ॥"
"जगदाधर" के हुक्म से; प्रकट हुए "खग-राय"।
"कृष्णार्जुन" को पीठ धर; पहुँचे गिरिपर जाय।
जिनके अन्दर रात-दिन; 'मुरलीधर' का ध्यान ॥
उनके आगे प्रकट हैं; स्वयं 'कृष्ण-भगवान ॥



शङ्करजी तथा कृष्णार्जुन ।

श्री "शंकर"के आराध्य-देव; शिवका आराधन करते हैं ।
त्रैदेव-स्तवन-योग्य देव; भक्त का स्तवन करते हैं ॥

गायन

जयति जय शिव-शंकर भगवान;डमरू-नाद बजाने वाले ।
जयति जय गिरजा-पति गुण खान; भक्ति-रस सुधा बहानेवाले॥
सुशोभित जटा-गङ्ग, शशि-भाल;
त्रिलोचन, व्याघ्र-चर्म, अहि-माल;
योगि-वर, धरकर मुण्ड-कपाल, जगत-दुख-जाल नसानेवाले ।

स्वयं "सोऽहं, सोऽहं"-स्वर साधि;
विनायक विभो, विमोचन व्याधि;
स्वर्ण-सन्दीप्त-शरीर, समाधि; प्रथम-योगेश कहानेवाले ॥
हस्त-अमलक-समान यह सृष्टि; सदा सेवकपर करुणा-दृष्टि,
रहे "गोविन्द" सुमंगल वृष्टि; शरणकी लाज बचाने वाले ।

छटपटाय "शंकर" उठे; गिरे चरण लपटाय ।
प्रति उत्तर में इस तरह; बोले बयन सुनाय ॥

गायन

जयति जय दीन-बन्धु ! भगवान; मुरली मधुर बजानेवाले ।
जयति जय राधा-पति-सुख-दानि!; रसिक-छबि-सुधा बहानेवाले
सुशोभित शीश-मुकुट, वन-माल;
चिबुक, वक्षस्थल, बाहु विशाल;
श्रवण, नासा, कपोल, द्युति भाल; त्रिविध जंजाल नसानेवाले ।
नील-मणि-प्रतिभ-शरीर, सु-नैन;
स्वयं "सोऽहं-सोऽहं" गति-दैन;
विरद-वर बलिहारी वर-वैन;
आदि योगेश कहाने वाले ॥
हस्त-कठ-पूतरि-सम यह सृष्टि; सदा सेवकपर करुणा-दृष्टि;
रहे "गोविन्द" सुमंगल-वृष्टि; शरणकी लाज बचानेवाले ॥

पद-पंकज-मंजु विलोक विशोक भये; पथ-पाहन हू सकुचाये।
शुचि-क्षीरके नीरधि, शेषसी सैन; कहाँ कमलासी प्रिया बिसराये।
यहि भूधरने, तरुने, वनने; ब्रजचन्द जू देख अनन्द मनाये ।
जनके भव-भाग कहा कहिये; जो भिखारिनके भुवनेश जुआये॥

श्रीकृष्णचन्द्रजी बोले.

खर तें,पुर तें,खल तारकतैं; वर भीख दई सुर कीन्ह सुखारी ।
रतिको पति,गंग भगीरथको;मोहिं दै बल संग बिनासे सुरारी ॥
यहि योगकी आग विरागिउ भोग विभूतमें लोक विभूति सँभारी ।
भुवनेश न आयौ भिखारिनके; भुवनेशके भौनहि आयौ भिखारी ॥

श्रीशङ्करजी बोले.

सौभाग्य ! आज इस बीहड़में; मन-मन्दिर-मूर्त्ति पधारे हैं ।
कोटिशः धन्य इस कुटियामें; श्री यादवेन्द्र पग-धारे हैं ॥
स्वामी सेवक का मान करे; यह वत्सलता का कारण है ।
जो उन चरणों की धोवन है; वह इस मस्तक की तारण है ॥
त्रैमूर्त्ति ! त्रिदेव ! त्रिकाल-पूज्य !;यह जनका भाग्य बढ़ाया है।
भगवान ! भाषिये,सखा-सहित; किस कारण कष्ट उठाया है?॥



शंकर-कृष्णार्जुन सम्वाद ।

"कृष्णचन्द्र" कहने लगे–है भारत–संग्राम ।
वहां "पाशुपत–अस्त्र" का;सुबह पड़ेगा काम ॥
"शंकर" बोले–"बाण के लिये; यह इतना कष्ट उठाया है ।
या इसी बहाने सेवक को; मुरलीधर वेष दिखाया है ॥
क्या पता किसीको लीलाधर !;किसलिये साज यह जोड़ा है ।
हम तो इतना ही समझे हैं; जो नाथ करें सो थोड़ा है ॥"
अभिमन्त्रित कर"शम्भु"ने;दिया'पाशुपत-बाण'।
प्रेम-मिलन के बाद में; प्रभुने किया पयान ॥
यहां "सुभद्रा, उत्तरा"; मिल दोनों दुखयारि ।
आर्य्य-वीर की लाश पर; "हाहा"रहीं पुकार ॥
जो कोमल कलित-किशोर-कुसुम;कलधौत-कांति था बना हुआ
वह पड़ा हुआ है मुर्दोंमें; लोहू कीचड़ से सना हुआ ॥
उन गोरे गोरे अंगों से; कुछ रक्त निकलता जाता है ।
मानो गुलाब की कलियों से; सिन्दूर उगलता जाता है ॥
फट गये वस्त्र धूसरित देह; काकुल कीचड़ में लिथड़े हैं ।
मानों रण–गंग–तरंगोंमें; शशि देव सशान्ति जा पड़े हैं ॥
जिसकी गोदी से वीर–रत्न; 'अभिमन्यु-कुँवर' जाये भाई ।
सच ही है उस अभागिनी सी; क्या कोई डकराये ? माई ॥
सास से बहू, बहुअर से सास; लिपटें, रोयें,गिर गिर जायें।
लाशे को कभी हृदय लायें; लाशे पर कभी पसर जायें ॥
दुखियारि "सुभद्रा" हाहा कर; चिल्लाई-"सुकुमारे ! आ जा ।
ओ आखों के तारे ! आ जा;ओ प्राणों के प्यारे ! आ जा ॥
आ, खेल–गोद के खिलवाड़े !,ओ मचलाने वाले ! आ जा।
बह रहा प्रेम का दूध लाल !;ओ बारे ! सुकुमारे ! आ जा ॥

बेटा ! बेटा ! छौना ! छौना !; भोले-भाले-लाला ! आ जा ।
लल्लू ! उमंग में गोदी है; बारे, प्यारे, आ जा, आ जा ॥

गायन

ओ दैव ! मेरे हाथ का; तोता कहाँ उड़ा दिया ।
ओ काल ! मेरी गोद का; वह लाल क्यों छुड़ा लिया ? ॥
बोलो दिशाओ ! दिग्गजो !; अये आकाश-बासियो !-
मेरी सनेह-रात का; चन्दा कहाँ छिपा लिया ? ।
थी तुझसे कहाँ की दुश्मनी; जो कर दिया निपूतनी;
अंचल की ओट में भी क्यों; मेरा दिया बुझा दिया ? ।
हा हन्त! ले चल मुझे भी वहाँ; कि अब चैन पायेगी रोगिन कहाँ?
थोड़ा बिठाले मुझे भी वहाँ; लाला जहाँ बिठा लिया ।

दया-धाम को था कहाँ ?; उस निशि में विश्राम ।
उसी समय रण-भूमि में; जा पहुँचे "घनश्याम" ॥

देखा विह्वल की तरह देवि; सुकुमारे का मुँह घूर रही ।
उत्तरा ओट में चीख़ रही; भद्रा लाश पर बिसूर रही ॥
दो आँसू गिरा, सँभाल देह; केशव बोले, अन्तर-पट में ।
"भद्रा ! भद्रा चल डेरों को; रो रही ? यहाँ क्यों मरघट में ॥"

अचैतन्य ही रूप में; बोली-कौन ?-गुपाल ! ।
भैया ! लाला ! बता दो; कहाँ हमारा लाल ? ॥

केशव ! किशोर का पता कहो; भैया ! मेरा छैया ला दो ।
ओ कृष्ण-कन्हैया! दुखिया का; वह कृष्ण-कन्हैया बतला दो ।
"केशव" बोले--"भद्रा! सँभाल, किस जगह ? किसे चिल्लाती है?!
कुछ देख--सामने अरी बहिन!; पागल सी किसे बुलाती है? ॥

सावधान सी देख कर; फिर डकरायी माय।
श्याम ! तुम्हारा भानजा, इस प्रकार खो जाय ? ॥

जग—रत्न ! शीघ्र ही बतलाओ; वह रत्न हमारा कहां गया ?।
धर्म का सहारा कहां गया ?; भक्त का दुलारा कहां गया? ॥
शरणागत ! बोलो—बोलो हरि; वह वंश—सहारा कहाँ गया? ।
सौभाग्य—सितारा भारत का; भानजा तुम्हारा कहाँ गया ? ॥
मोहन!मुझको पागल कहलो; बावली भिखारिन बतला दो ।
पर ला दो; मेरे लाला को; भैया ! ला दो, बेटा ला दो ॥
भैया ! भैया ! क्या ऐसी भी; शोभा देती करतूती है ? ।
क्यों कृष्ण ! पक्ष में रह कर भी; करवा दी बहिन निपूती है ॥

कमल—नयन के नयन भी; रहे अश्रु झर लाय ।
हिलकी भर कहने लगे; भद्रा को समझाय ॥



कृष्ण और सुभद्रा ।

"बहिना ! मैं खूब जानता हूँ; यह महा-अनर्थ हो गया है।
भारत में यदि कुछ खोया है; तो यही सु-रत्न खो गया है॥
मर चुके, मरेंगे, मरते हैं; कितनेही आते जायेंगे।
पर इस हीरे की कमी कभी; पूरी न देखने पायेंगे॥
लेकिन यह धर्म-युद्ध ही है; कितने ही हीरे खोना है।
कितनी निपूतनी होना हैं; कितनी अभागनी होना हैं॥
जो इसी तरह सब अबलायें; आ आ कर रुदन मचाने लगें।
तलवार वार हो रहा जहाँ; उस जगह दांत दिखलाने लगें॥
तो रण अन्याय न्याय कैसा; अबलापन ही दिखलायेगा।
यह यत्न तथा यह अनुष्ठान; सारा स्वाहा हो जायेगा॥
हम लोग युद्ध के नये नये; आयोजन सोच न पाते हैं।
जब आधे से भी अधिक समय; समझाने में ही जाते हैं॥
तुम से ही आज पूछते हैं; हम क्यों कर बलकारियां करें?
यों खड़े खड़े समझाया करें; या रण की तैयारियां करें॥
अभिमन्यु कुँवर ने वास्तव में; अमरों में नाम लिखाया है।
सच पूछो तो, उस हीरे ने; तुम को भी धन्य बनाया है॥
ऐसे पुत्र के बिरह में तुम; यह हाहाकार मचाती हो।
वीरे ! वीर की स्मृती में; यह कायरता दिखलाती हो॥"

कहा सुभद्रा देवि ने, "तुम्हें नहीं मालूम।
माता बेटे के लिये; बन जाती है सूम।

यदि आज इस जगह तुम होते; तो तुम भी ऐसे ही रोते।
ऐसा हीरा खोजाने पर; क्या जाने ? तुम क्या क्या खोते?॥"
माधव बोले-"जो इतना ही; बेटे पर प्रेम समाया था।
तो उस दिन कहीं छिपा लेती;रणमें किसलिये पठाया था॥"

देविने कहा-"क्षत्राणी ने, रण में वीर को पठाया है।
यह पुत्र-प्रेम का नाता है; माता ने रुदन मचाया है॥
माधव ! रहने दो, यह बातें; मेरी दुर्दशा हो रही है।
उस ओर तनिक जाओ भैया !; देखो, वह बहू रो रही है॥"

छुटे क्रेश, मैला-वसन; सुवरण-तन पर धूर।
"पीतम-पीतम" नाम ले; अवला रही बिसूर॥

छिड़का जाये घाव पर नमक; कन्यायें बढ़ें गिरानी में।
उसकी गति वही देवि जाने; जो विधवा बने जवानी में॥
बिलखात, बिसूरत, शोक-मूर्त्ति; प्रियतम को गले लगाती है।
फिर फिर कर माथ उठाती है; फिर फिर कर वहीं सुलाती है॥
"आराध्य-देव ! ओ हृदय-देव; जागो, सेवा में आई हूँ।
लो पहिनो, जय-जय कर पहिनो; जय माल बनाकर लाई हूँ॥
वस, पूर्ण सुहाग हो गया है; फँस चुकी भँवर में नैया है।
है अग्नि हमारी हम जोली; और चिता हमारी शैया है॥

गायन

पियरवा ! छाँड न जाओ; मैं जोगिन तेरे साथ।
हा हा करूँ, कर जोर पुकारूँ; झुक झुक नाऊँ माथ॥
जो कर पकरि भांवरी पारी; जनि छोड़ो सो हाथ।
नाथ ! इस दासी की तुम को, दाद होनी चाहिये॥
वह प्रतिज्ञा आज अपनी, याद होनी चाहिये।
एक तुम्हें तज, आन नहिं, जाहि कोई आधार॥
किहि के बल पर त्याग के, भाजि गये भरतार।
विलपि विसूरति चरनन चेरी; भूलौ जनि हृद-नाथ !॥

रक्त-सनित उस देह को; छाती लिया लगाय ।
बारम्बार बिलोक कर; यों बोली बिलपाय ॥

ओ दिव्य-देह! तू क्षण भर में; क्या से क्या दृष्टि आ रही है ।
वह शोखी, शान, तेज, प्रतिभा; सुन्दरता कहाँ जा रही है ? ॥
यह नैन वही तो नैना हैं; जो मेरे नैन चुराते थे ।
यह बल-मय-बाहु वही तो हैं; जिनसे बल-धर थर्राते थे ॥
हैं, कहां गया ? वह बल-पौरुष; क्या हुई ? मोहनी लाली है ।
किस पंछी के उड़ जाने से; यह पड़ा पींजड़ा खाली है ॥

गायन

किसी को एक दशा पर ही न चलते देखा ।
रंग देखा गया जो, रंग बदलते देखा ॥
दिनेश को भी यहां, अन्त में ढलते देखा ।
जलते देखा है-जिसे फूलते फलते देखा ॥
" विनीत " झूठ है, दावा; हँसी खुशी का यहां;
हम तो देखा है जिसे, हाथ ही मलते देखा ।

हिलकी बँधी मुरारि की; चरण हुए पाषाण ।
बहू उत्तरा की दशा; लख न सके भगवान ॥

ज्यों त्यों कर पहुँचे नाथ निकट; बोले कुछ, लेकिन बँधे हुए ।
दो चार शब्द निकले अवश्य; लेकिन मुँह में ही रुँधे हुए ॥
"उत्तरा ! उत्तरा! शान्ति पकड़; बेकल बनकर खलबल न मचा ।
भूतल न देवि! कम्पितकरदे; नभ-मण्डलमें हलचल न मचा ॥
पाण्डव-दल के सारे विचार; हाहाकार ने दबाये हैं ।
वह देख स्वर्ग-मण्डलवाले; तुझ पर ही दृष्टि लगाये हैं ॥

हो रहे शिथिल वीरत्व-भाव; बढ़ गई घृणा सी इस रण से।
हो रहा ह्रास आत्मिक-बलका; बेटी ! इस करुणा-क्रन्दनसे॥
तेरे इस अश्रु बहाने से; अभिमन्यु नहीं कल पाता है।
बेटी!कल पकड़,नहीं कल तक;कुछ फल और ही दिखाता है॥
घर चल देवी ! सब देकर भी; पापी को बदला देने दे।
उस अमर वीर को मर कर भी;अमरावति में सुख लेने दे॥"
उत्तरा उठा सिर ऊपर को; बोला—"मामा ! आगे आओ।
तुम भी लज्जवन्ती बहुवर का;यह विधवा–वेश देख जाओ॥
घर में आने के समय तुम्हीं; करवा देते थे पर्दा को।
देख लो, खूब देख लो, आज; मुँह खोले हुए उत्तरा को॥
लीलाधर ! सुख ले गये देव;जग में सुख-सागर कहां रहा?।
घर-वर दुखिनी के छीन लिये; बोलो, मेरा घर कहां रहा ?॥
मामाजी ! असल रसायन पर; मिट्टी सब मेरी खांड़ हुई।
माधव के होते हुए आज; भानजी उन्हीं की रांड हुई॥"

माया—पति कहने लगे—"होनी है बलवान।
अरी उत्तरा ! व्यर्थ क्यों?; बनती है अज्ञान॥

किस का घर है ? किस का वर है?;केवल कहने का नाता है।
सब ठाठ यहीं रह जाता है; पंछी तो खाली जाता है॥
कुछ सोच समझ कर कह विदुषी !; तू किसके लिये रोरही है।
यदि देह-मात्र की ममता है; तो अब भी यहीं सो रही है॥
"जीवात्मा" को पति समझे तो; वह मरा, न मरनेवाला है।
ऐसे ही ऐसे असंख्यात; नूतन तन धरनेवाला है॥
घिर गया आज जिस घेरे में; कल देखा, वह घेरा न रहा।
दो दिन "मेरा तेरा" रह कर; मेरा न रहा, तेरा न रहा॥

गायन

जगत में किस को रोना है ? ।
आज पती, कल पिता; वही फिर कुँवर सलोना है ।
एक अटल सम्बन्ध किसीका, हुआ न होना है ॥
आज बना माटी से सोना, माटी सोना है ।
केवल भ्रम की बेगारोंमें, गट्ठे ढोना है ॥
यह लौकिक-व्यवहार एक निद्रा में सोना है ।

"अभिमन्यु"--तुझे ज़ाहिर भी है?;कौनथा?कहांसे आया था ।
कितने दिन को?इस पृथ्वी पर;किसने?किस लिये पठाया था?"
देवी बोली-" वे कुछ भी थे; मेरे जीवन-आधार थे वे ।
इस अबला के शृङ्गार थे वे; इस नैया के पतवार थे वे ॥
मामा ! मामा ! क्यों सहसा ही; सौभाग्य बना दुर्भाग मेरा ।
इस नई उम्र में दया-धाम !; क्यों लूटा गया सुहाग मेरा?॥"

योगिराज कहने लगे-"किसे ? कौन आधार ? ।
किसी ग़ैर की वस्तु पर; तुझको क्या अधिकार ? ॥

था चन्द्र-पुत्र अभिशापित हो;आया,आकर फिर चला गया ।
वीरों का गौरव बढ़ा गया; आदर्श वीर का दिखा गया ॥
आया था, भारतमें केवल; भारत की लाज बचाने को ।
तुझ को बेटी!वह छोड़ गया; आदर्श सतीत्व दिखाने को॥"

कहा सती ने-" वहीं को; है मेरा प्रस्थान ।
इतना ही सौभाग्य है; इतना ही निर्वाण ॥

हृद्धाम बनायें धाम जहां; है वही धाम सुस्थिर मेरा ।
पति-देव जहां पर बैठे हैं; है वही देव-मन्दिर मेरा ॥

उनकी सेवा ही काम करूँ, उन पर ही तन, मन वारा करूँ।
वे मुझे निहारें, चाहें नहीं; मैं उनकी ओर निहारा करूँ॥
मामा ! जाने दो, रोको मत; मुझको है परमानन्द वहीं।
सुख-भोग वहीं, संयोग वहीं;व्रजचन्द्र ! सच्चिदानन्द वहीं॥"
माधव बोले-"समरथ है तू; विदुषी है, और सती है तू।
पर केवल इतनी अड़चन है; हे बेटी ! गर्भवती है तू॥
इस पर्दे में भी कुछ होनी; होने ही की आशंका है।
बस, इतने ही में समझ सभी; ज्यादा; कहने में लज्जा है॥"

इस रहस्य से और भी; बढ़ा उसे उन्माद।
तब तक कानों में पड़ा; आकाशी संवाद॥

स्वर्गीय-रत्न नभ से बोला-" भद्रे ! अपने घर को जाओ।
भारत की रक्षा करने को; गर्भ का लाड़ला प्रकटाओ॥"
इतना कहकर-वह देव-रूप; क्षण भर में अन्तर्द्धान हुआ।
दैवीय भाव पर देवीका; युद्ध-स्थल से प्रस्थान हुआ॥

दुखी "सुभद्रा, उत्तरा"; लौटीं अपने धाम।
प्रात काल से प्रथम ही; सजे समर को श्याम॥
"अर्जुन"के प्रण का सुना;जब'कुरु-पति'ने हाल।
मानो खल की चाल पर; टूट पड़ा भूचाल॥
नीच जयद्रथ का कहें; क्या वर्णन विस्तार ?।
मरने से पहिले हुआ; वह कायर मुर्दार॥

जिस ओर आंख दौड़ाता है; अर्जुन आता दिखलाता है।
उसका विकराल-बाण मानो; प्राणों को चीड़े जाता है॥
पागल सा लगा घूमने वह; " हाहा,हाहा " चिल्लाने लगा।
"मरगया-मरगया"कहकर फिर;दुर्योधनसे घिघियाने लगा॥

" वह देखो, वह देखो, अर्जुन; मेरा सिर काटे जाता है।
राजन् ! दौड़ो, राजन् ! दौड़ो; "अभिमन्यु" कलेजा खाता है॥
ओ महा पुरुष ! ओ पार्थ--वीर !; कर दे, हा! कर दे क्षमा यहीं।
ईश्वर जाने, उस लाला की; यह हत्या मुझसे हुई नहीं ॥"

दुर्योधन कहने लगा-"सिन्धु-राज ! बल--धाम ! ।
भला समर में चलेगा ?; इन बातों से काम ॥

प्रण है उसका, तुम भी करलो; क्यों प्रण सुनकर ही मरते हो।
आगे तुमसे क्या आशा है ?; जब पहिले ही यों डरते हो ॥
चिल्लाकर कहा "जयद्रथ" ने; तुम जो कहते हो, सच ही है।
यह उसे समझ में आती है; जिसके माथे आ पड़ती है ॥
त्रैलोक में कोई आज नहीं; जो मुझे गोद में छिपा सके।
नव-खण्ड में कोई वीर नहीं; जो मुझे मौत से बचा सके॥
"अर्जुन" का प्रण खण्डन कर दे; यह शक्ति बताओ, किस में है?।
आचार्य्य में है ? या तुममें है?; सेना में है ? या मुझमें है ? ॥
उसका बल है; उसका प्रण है; प्रणतारत उसके साथमें है।
क्रोध-मय-तेज उस भट में है; गाण्डीव-धनुष उस हाथमें है॥

समझ लिया—सब भाँति से; होगा सत्यानाश।
आज "जयद्रथ" के लिये; है परलोक-निवास ॥"
"दुर्योधन" कहने लगा; "वही व्यर्थ उन्माद।
भैया ! राँड़ों की तरह; करते हो फ़रियाद ॥

दिन होने दो, रण होने दो; अर्जुन को आगे आने दो।
आचार्य्य के आगे उस शठ को; अपना करतब दिखलाने दो॥
पहिले तो उसकी समता को; देखो, कौरव-दल सारा है।
पहिले कुरु-पति से बाज़ी है; नम्बर बाद में तुम्हारा है ॥"

कहा "जयद्रथ" ने-"नृपति !; तुम क्या कुल संसार ।
कर न सकेगा अब मेरा; किसी भाँति उद्धार ॥

गायन

अहो ! कल ही कल में क्या अवसान होगा ? ।
इसी माथ पर पार्थ का बाण होगा ॥
यह सेजों का गाहक; यह महलों का आदी;
इसे "कल" सुबह घोर "शमशान" होगा ॥
लगाये है, जी जान; जो भूमि के हित;
सुबह भूमि से, उस का प्रस्थान होगा ॥
गिना जा रहा; जानदारों में अब तक–
यही पींजड़ा कल को, बे जान होगा ॥"

"दुर्योधन" बोला-"क्यों गुरुवर !; क्या दोगे! साथ जयद्रथ का।
आज के रोज़, इन हाथों में; जीवन है नाथ ! जयद्रथ का ॥
आशा है–ऐसी हालत में; प्रभु का भी कोई प्रण होगा ।
कहिये गुरु ! मुँह से एक बार; "पापी पार्थ का मरण होगा॥"
"द्रोण" ने कहा-मिथ्यालापी; उत्तापी; सन्तापी तुम हो ।
अये स्वार्थ-वादियो! पार्थ नहीं; वास्तव में खल-पापी तुम हो ॥
जिसने कि भीम को ज़हर दिया; द्रौपदी सभा में नंगी की ।
भ्राताओं को वन--वास दिया; बलिहारी इस भलमंसी की ॥
उस भक्त पार्थ पर प्रण करके; अपना ही प्रण खण्डन होगा ।
मैं भले प्रकार जानता हूँ, उसका ही प्रण पूरण होगा ॥ "

सुनी "जयद्रथ" ने जहाँ; गुरुवर की फटकार ।
खींच म्यान से गले पर; रक्खी कठिन कटार ॥.

बोला-"प्रण ही पूरा होगा; तो मैं प्रण खण्डन करता हूँ।
उसके वार से प्रथम ही, लो-तलवार मार कर मरता हूँ॥
मर जाऊँगा, खुदही कटकर; जब मैं न रहा तो रण कैसा!।
मैं ही न रहा,रण ही न हुआ;तो फिर अर्जुन का प्रण कैसा॥"

कहा द्रोण ने-"यह न कर; कर दूसरा उपाय।
तुझे छिपाऊँगा सुबह; "शकट-व्यूह" रचवाय॥



शकटव्यूह।

अस्तु;हुआ फिर प्रात ही;"शकट-व्यूह"तैयार।
यहाँ "द्रोण" के सामने; पहुँचे इन्द्र-कुमार॥

"द्रोण"ने कहा-"बेटा! ठहरो;आगे को अभी नहीं जाओ।
पहिले रणके नियमानुसार; अपने गुरुका ऋण निबटाओ॥"

"पार्थ"ने कहा-"लीजिये देव!; पहिले ऋण ही भुगताऊँगा।
आशीर्वाद गुरु का लेकर; आगे को कदम बढाऊँगा॥"

इतना कह कर "पार्थ"ने; छोड़े लाखों बाण।
टूट गया रथ, सारथी; रहा वहीं मैदान॥
"द्रोण" कूद कर शीघ्र ही; दौड़े झटकी ओर।
दोनों दिखलाने लगे; अपना अपना ज़ोर॥

"अर्जुन"ने भी रथ त्याग दिया; फिर हाथा पाई होने लगी।
कौशल–छल–बल ऊपरी रहे; धर्म–मय लड़ाई होने लगी॥

गायन

करत दाव धीरे सो, काटत डुभीरे भट;
भिरत अधीरे पार्थ, जनु खिज़लात हैं॥
डाट देत एक बार, काट देत बार बार;
बार पाट देत लेत, दोनिहु सुभांति हैं।
दूरि भाजि जात पुनि आन लपटात दोउ;
दौर सुलझात कछु फेर उलझात हैं॥
मानहु वृद्ध केहरि किसोरहिं किलोलैं त्यौं;
बूढ़े गुरुराज गुरु पार्थहि सिखात हैं।

देखा नाथ ने इसी रणमें; सन्ध्या का समय आ रहा है।
है पता न आज "जयद्रथ"का; प्रणका भी वक्त जा रहा है॥
बोले-"बस अर्जुन! रहने दे; आगे चल ढूँढ़ निशाने को।
यह समय नहीं है,अये भाई!; गुरुवरके खेल खिलाने को॥"

बढ़े "पार्थ" आगे जहां; आया कौरव-नाथ।
"अर्जुन"से कहने लगा; हिला हिला कर हाथ॥

"आओ प्रण-वीर! ज़रा आगे; देखें कैसे प्रणवाले हो?।
हाँ, कृष्ण! आज समझें तुमको; कैसे जनके रखवाले हो?॥"
पार्थ ने कहा—"प्रण पालूँगा; जब तक प्रणतारतका बल है।
त्रैलोक-विजय कर दिखलाऊँ; क्या वस्तु भला कौरव-दल है?॥
इनके ही बल पर कहता हूँ; होगा अवसान "जयद्रथ" का।
मेरे ही बाणों के द्वारा; होगा बलिदान "जयद्रथ" का॥"
"दुर्योधन" बोला—"बेशक तुम; यह गाना ही गा सकते हो।
लेकिन आजको "जयद्रथ" की; तुम हवा नहीं पा सकते हो॥"

कहा "पार्थ" ने—"धैर्य्य धर; दिखलाता हूँ आज।
ले चलिये रथ शीघ्र ही; सेना में "यदुराज"॥
सेनामें ज्यों ही गये; "पार्थ" तथा "घनश्याम"।
सन्ध्या तक होता रहा; वहां घोर-संग्राम॥

गायन

झोकन धनुर्धारी के झुकिगे धनैयां धार;
रुकगे कृपान जब बान चले पारथी।
भूल गये भौन भट, गौन कीन्ह जितै तितै;
होन लागि हाय हाय, मौन भे महारथी॥
एक ना थिरानो वीर, एक ना धरानो धीर;
दीसत कै हींसत कै दीसत कृतारथी।
मार डारे शूरमा बिडार डारे बाजि गज;
चूर चूर कीन्हें रथ धूर धूर सारथी॥

यद्यपि दिन भर "पार्थ" ने; किया घोर-संग्राम।
किन्तु "जयद्रथ" का पता; पा न सके बल-धाम॥

आकाश में सूरज डूब गया; पश्चिमी बदलियां दीख पड़ीं।
अन्तिम नक़्क़ारा बाज उठा; दोनों सेनायें लौट पड़ीं॥
"अर्जुन" रथमें नीचा सिर कर; तम्बू तक वापिस आये हैं।
रथ छोड़, ज़रा मुसकाते से; श्री माया--धाम सिधाये हैं॥

गायन

क्या बला ढायेगी ? मुसकान तुम्हारी मोहन !।
किसके सिर जायेगी ? मुसकान तुम्हारी मोहन !॥
नन्द का धाम नहीं, गोपियों का रास नहीं;
कहाँ समायेगी ?, मुसकान तुम्हारी मोहन !॥
भक्तके शोक पै भी जो न अलग होती है;
तो रंग लायेगी, मुसकान तुम्हारी मोहन !।
"विनीत" उसको कहें और क्या पत्थरके सिवा;
जिसे न भायेगी, मुसकान तुम्हारी मोहन !॥

अब "अर्जुन" के लिये था; क्या दूसरा उपाय।
जा पहुँचे वीरान में; ली यक चिता बनाय॥
"हो गया, आज जो होना था; सूरज पश्चिम में आया है।
इस ओर पार्थ ! तेरा जीवन; अन्तिम सन्देशा लाया है॥
प्यारे धन्वा ! तुझको मैंने; लाखों का रक्त पिलाया है।
पर शोक ! "जयद्रथ" पापीका; लोहू न चखाने पाया है॥
पर क्षमा बन्धु ! उसके बदले; मैं अपना रक्त चढ़ाता हूँ।
प्यारे तरकश! प्यारी कमान !; लो प्रण पर प्राण गँवाता हूँ॥
जिसका जो कुछ भी करतब है; वह उसको पूरा करता है।
अये पृथ्वी-देवि ! देख लो तुम; अर्जुन भी प्रणपर मरता है॥

गायन

जो कह चुके हैं, उससे; उलटा न करेंगे ।
प्रण पर निसार होंगे, परवा न करेंगे ॥
प्रण-वीर का प्रण ही है; जीवन का सगा-बन्धु;
प्रण के लिये, प्राणों की ममता न करेंगे ॥
जीवन ही वह नहीं है; जिस की न बात हो- ।
जीवन के लिये हम कभी चिन्ता न करेंगे ॥
"गोविन्द" देख, देश के; यह हैं प्रतिज्ञी-वीर;
क्या भारतीय आज प्रतिज्ञा न करेंगे ! ॥

ज्यों ही चाहा "पार्थ"ने; "धरूं चिता में ज्वाल ।"
त्यों ही कुछ गंभीर से; आ पहुँचे "गोपाल" ॥
कहा नाथ ने-"क्यों सखा !; कौन मिलाया मेल ।
कहा "पार्थ" ने-"देव वर!;इस क़िस्मत का खेल ॥
तुम ऐसा सखा साथ रहकर; भाग्य की भावना टली नहीं ।
तो मुझको भी विश्वास हुआ; भाग्य पर किसीकी चली नहीं ॥
प्रण एक पूर्ण हो सका नहीं; तो अगले प्रण की बारी है ।
भूतल का जीवन पूर्ण हुआ; सुर-पुर की अब तैयारी है ॥"
कहा नाथ ने-"इस तरह; करना ही है घात ।
तो भैया ! इस मित्र से; कर लो थोड़ी बात ॥"
"पार्थ"ने कहा-"हे जीवन-धन!कह लो,जो कुछ भी कहना हो।
हे सखा ! सामने खड़े रहो; जो बन्धु-बिछोहा सहना हो ॥
मुझको केवल यह कहना है; जैसे अब तक अनुकम्पा की ।
वैसे ही वहाँ, पतित-पावन ! राखियो याद इस दुखिया की ॥

कह दीजो–धर्म, भीम सब से; मरते तक प्रण पर डटे रहें।
कट जायें चाहे शेष सभी; पर सत्य वचन पर डटे रहें॥
भैया! केशव! आओ, मिल लो; फिर ऐसा समय न पाओगे।
पाओगे लाखों मित्र, किन्तु; इतना श्रम नहीं उठाओगे॥

गायन

जो पकड़ा हो हाथ मेरा साँवरे!;–
–तो आख़ीरी समय तक निभा देना॥
जो अपना बनाया हो अये बन्धुवर!–
–तो वहाँ हाथ अपना लगा देना॥
जो पूछे कोई–पार्थ कैसे मरा?–
तो प्रतिज्ञा का बन्धन बता देना॥
वीर बलिदानियों में मेरे नाम के;
ओ दयाधाम! अक्षर लिखा देना॥
मेरे मरने पै मेरे सभी वंश को;
हे कृपा-सिन्धु! इतना जता देना॥
मेरी मृत्यु की सोच फ़िकर न करें;
मेरे लाला की आन निभा देना॥
जो बने तुमसे सर्वेश! तो अन्ततक;
धर्म का हाथ इतना बँटा देना॥
जिस प्रतिज्ञाको तैयार हैं पाण्डु-सुत;
उस प्रतिज्ञा को पूरा करा देना॥

हिल मिलकर रो रहे थे; दोनों सखा सुजान।
चला "जयद्रथ" भी वहाँ, सन्ध्या को पहिचान॥

हँसता, मुसकाता, इठलाता; बोला—"क्यों हुआ ठिकाना है ?।
अज्ञान पार्थ ! यह बहुरुपिया; क्या अब तूने पहिचाना है ?॥
इसका यह बाह्य–वेष–भूषा; बस मोहित करनेवाला है।
जैसा ऊपर से काला है; वैसा ही अन्दर काला है॥
तूने इसकी सम्मति पर ही; विश्वास मान, रण ठान लिया।
भूला था, तब तक भूला था; अब तो इसको पहिचान लिया॥
काले की काली करतूतें; ज़ाहिर हैं, बहुत ज़माने से।
कब कब रण–विजय हो सका है; बहुरुपिये, और ज़नानेसे॥
अब भी देखले-जिसे अर्जुन !; तू "सखा-सखा" चिल्लाता है।
वह कपटी पीछे को मुँह कर; पीताम्बर में मुसकाता है॥"

कहा पार्थ ने—"ओ छली!; हूँ बिलकुल लाचार।
कर देता अन्यथा मैं; तेरा झगड़ा पार॥

अये कायर ! पापी ! दिन भर तो; लहँगे में वदन छिपाया है॥
सूरज छिपने पर अये गीदड़ !; यह मुँह दिखलाने आया है।
दुश्मन से छिप कर जान बचे; लानत है उस मर्दानी पर।
गाली पर भी आना कानी, धिक् ! ऐसी आना कानी पर॥
क्या बतलाऊँ ? लाचारी है; वरना जौहर दिखला देता।
जो सूर्य्य तनिक दर्शन देते; तो तुझे स्वर्ग पहुँचा देता॥

"दुर्योधन" कहने लगा; यों "पार्थ" को चिढ़ाय।
केशव ! अपने सखा की; कर दो आज सहाय॥

तुम तो आख़िर मायापति हो; थोड़ी सी माया दिखला दो।
जब सृष्टि–कर कहलाते हो; तो सूर्य्य कहीं से प्रकटा दो॥
देखो, देखो, जन–प्रण-पालक !; जन ही सामने मर रहा है।
केशव ! कुछ इस पर कृपा करो; आहें यह दीन भर रहा है॥

अर्जुन ! अब ऐसे मित्रों से; बस तू भी नमस्कार कर ले ।
अच्छा हो, "ॐशान्ति" कहकर; अब अन्तिम-संस्कार कर ले॥
उस जले हुए दिल पर पापी; यों नमक छिड़कते जाते हैं ।
माया–पति पश्चिम ओर देख; बस खड़े खड़े मुसकाते हैं ॥
अर्जुन, आखों को बन्द किये; केशव का ध्यान लगाने लगे।
कौरव-गण ठट्ठा मार रहे; माधव कुछ मौन दिखाने लगे ॥
माया–पति का संकेत समझ; कुछ उलटे चिह्न दिखाने लगे ।
बदली टूटी, आकाश फटा; श्री सूर्य्य देव चमकाने लगे ॥

कहा कृष्ण ने-"पार्थ रह; पश्चिम की दिश देख ।
उदय हो रही है, अहो !; तेरी जीवन–रेख ॥

अर्जुन ! सन्ध्या का धोखा था;देख ले प्रकट हैं श्री दिनकर ।
क्या देख रहा है ? धनुष चढ़ा; इस पापी के दो टुकड़े कर॥
वह चित्र विचित्र दृष्टि आया; हलचल सा मचा दुष्ट-दल में।
एक ही बाण से पापी का; धड़ लोट गया पृथ्वी–तल में ॥

गया माथ आकाशमें; धड़ लोटा दर्म्यान ।
दुर्योधन चुपचाप ही; भागा ले कर जान ॥
एक घड़ी में हो गया; पापी का अवसान ।
छाया चारों ओर से; जयति कृष्ण भगवान ॥

गायन

हमें नाथ ही की दया चाहिये ।
भरोसा उन्हीं का किया चाहिये ।
मिटे या बने, कोई चिन्ता नहीं;
उन्हीं की यह इच्छा कहा चाहिये ॥

सहारे है "गोविन्द-शैलेन्द्र" भी-
कृपा-कोर थोड़ी हुआ चाहिये ॥

सुरथ जयद्रथ का पिता; जंगल के दर्म्यान ।
पुत्र-विजय के वास्ते; करता था शिव-ध्यान ॥

अंजलि में पानी लेते ही; वह शिर हाथों में आ टपका ।
बुड्ढे ने उसको छूत समझ; तत्काल भूमि पर दे पटका ॥
शाप-वश शीश के गिरते ही; कट गया सुरथ का माथा भी।
जयद्रथ-वध तक की इसी जगह; होगई पूर्ण यह गाथा भी॥

गायन

मनोहर ! यह अदायें सब; छिपी हैं कौन पर्दे में ? ।
मुरलिया में; मुकुट में; या पिछौरी के फरहरे में ।
प्रकृति की नीति पलटाना; छिपाना सूर्य्य को दिन में-
अजाने से बने रहना, दिखाना जान मुर्दे में ॥
कहां थी ? शक्ति लड़ने की; सूर्य्य-जुगनू की समता थी;
लगा दे आग चिनगारी; भरे बादल के बेड़े में ।
तुम्हारी ब्रह्म-महिमा की; हर इक झोंके से ध्वनि आये-
सुने उसको समझ कर कुछ;कहां यह शक्ति बहिरेमें?।

डेरों पर पहुँचे वहां; "पार्थ" तथा "गोपाल" ।
यहां द्रोण से रो रहा;" दुर्योधन " नर-पाल॥

" आचार्य्य ! खूब ही रक्षा की; बाजू मेरा तुड़वा डाला ।
देखलो, तुम्हीं क्या २ जादू; करता है ? वह केशव काला ॥

जो ऐसा ही होना, हो तो; बस, मेरी भी तबियत भर दो।
मुझको गुरुदेव! मारडालो; अब सारा युद्ध बन्द कर दो॥"
"द्रोण" ने कहा-"अये कौरवेश !;बाहों तक यहां सहारा है।
लेकिन माया की शक्ती पर; मेरा, तेरा क्या चारा है ?॥
लड़ना,युक्तियां सोच लेना; यह सब कुछ अपने हाथ का है।
पर-दिन को सन्ध्या कर देना;यह करतब मायानाथ का है॥
"कृष्णार्जुन" का जोड़ा जबतक;भारत में कुशल दिखायेगा।
तब तक विकराल काल तक भी;उनसे न जीत कर जायेगा॥

आज रात ही में सही; भारत का संग्राम।
दिखलाऊँगा तुम्हें भी; कुछ कौशल का काम॥"
इतना कह कर उसी क्षण; दी सेना सजवाय।
एवं रण-सूचना का; धौंसा दिया बजाय॥

प्रति रथ पर चार मशालों की; छिटकी हर तरफ़ उजाली है।
मानो, संग्राम-भूमि में वह; वीरों की वीर-दिवाली है॥
दोनों ओर के वीर-सैनिक; वह द्यूत खेलने आये हैं।
तलवार-तीर की चौसर पर; प्राणों का दाँव लगाये हैं॥

दोनों पक्षों से उठा; जब सेना का शोर।
"मार मार" मचने लगी; सहसा चारों ओर॥

नीचे प्रकाश में बीरों के; खूनी फ़व्वारे छूट रहे।
ऊपर को मुकुट-किरीट उछल; आकाशी तारे टूट रहे॥
नीचे प्रकाश, ऊपर देखो; बस अन्धकार दिखलाता है।
चहुँ ओर धूल और लोहू का; कीचड़ सा मचता जाता है॥

जुटे बीर से बीर जब; कर के जय जय कार ।
अर्जुन पर तब द्रोण ने; की धन्वा–टंकार ॥

अर्जुन ने काट–छांट कर के; सारा दल–मण्डल मथडाला ।
अन्धेरे में गुरुवर ने भी; आँख भर न कुछ देखा भाला ॥
क्रोध में बढ़े आये आगे; "द्रुपदेश्वर" के सिर वार किया ।
एवं तलवार मार फ़ौरन; भूपतिका माथा काट लिया ॥



द्रोणके बाणद्वारा द्रुपद का वध ।

किन्तु जहाँ "द्रुपदेश" की; हुई उन्हें पहिचान ।
एक घड़ी के वास्ते; भूल गया रण–ध्यान ॥

द्रुपदेश मित्र–हित–चिन्तक थे; गुरु पर वे श्रद्धा रखते थे ।
आत्मा में दोनों, दोनों से; हित ही की आशा रखते थे ॥
लेकिन चिन्ता के लिये उन्हें; रण–स्थल में अवकाश कहाँ? ।
ढीला पड़ गया शरीर यहाँ; चल रहे बराबर बाण वहाँ ॥

यही सोच कर द्रोण ने; युद्ध कर दिया बन्द ।
अपने दल के साथ में; लौटे यादव-चन्द ॥
यहाँ द्रोण के साथ में; लौटा कौरव-राय ।
गुरु को शोकित देखकर; बोला शीश झुकाय ॥

श्री महाराज ! आज तो आप; यक शत्रु मार कर आये हैं ।
पर अहो ! बधाई के बदले; यह शोक-चिह्न क्यों छाये हैं ?॥
"द्रोण" ने कहा-"शत्रुकी नहीं; मित्र की आज हत्या की है ।
अपने ही एक हितैषी की; गर्दन भूल से उड़ा दी है ॥"
"दुर्योधन" बोला-"महाराज !; मेरे घर में तो रहते हो ।
मेरा ही पक्ष निभाते हो; और मित्र शत्रु को कहते हो ॥
कुछ नहीं समझ में आता है; किस लिये प्रेम उमड़ाता है ?।
आपसे तथा द्रुपदेश्वर से; गुरुराज ! कौन सा नाता है ?॥"

द्रोणाचार्य्यने कहा.

करता था मैं जिन दिनों; वन में योग-विधान ।
एक दिवस करने चला; सरवर में स्नान ॥

उस समय दीन-द्रुपदेश मेरे; चरणों में आकर लपटाया ।
अपने राज्य-च्युत होने का; मुझको चरित्र सब समझाया ॥
मैंने उसका बैरी "किरात"; मारा था, राज्य दिलाया था ।
दोनों ने एक दूसरे को; साक्षी दे मित्र बनाया था ॥
उस दिन से "द्रुपद-राज-"; सच्चा; सेवक और सखा हमारा है ।
राजन् ! तेरी बलिवेदी पर; विप्र ने बन्धु संहारा है ॥

दुर्योधन कहने लगा—"गुरु हो स्वयं सुजान ।
जाने; किस किस का हमें; करना है बलिदान ॥

गुरु को चेला, चेले को गुरु; मित्र को मित्र संहार रहे ।
स्वामि को दास, दास को स्वामि; भाई को भाई मार रहे ॥
यदि महाराज ऐसे ज्ञानी; यों पश्चात्ताप दिखायेंगे ।
तो धीर-वीर ! हम से कायर; फिर कहाँ ठहरने पायेंगे ? ॥

यहाँ हृदय में द्रोण के; बढ़ा विशेष विषाद ।
वहाँ "द्रौपदी" ने सुना; यह दारुण-संवाद ॥

गिर गई वहीं मूर्छा खाकर; पर पकड़ "भीम" ने समझाया ।
"ओ वीर-हृदे!तुम को भी क्या;इस कुटिल मोह ने बहकाया?॥
तुम भारत की कारण बन कर;"भारत"के लिये विषाद करो।
मत करो पिता की याद प्रिये!;वह वीर-प्रतिज्ञा याद करो।"

प्रात काल फिर से मचा; वही घोर संग्राम ।
लाखों ही भट क्षणकमें; आये उस दिन काम ॥
"दुर्योधन"कहने लगा—"सुनिये श्री गुरु-राज ।
वीर पार्थ के साथ मैं; युद्ध करूँगा आज ॥

इसलिये विनय है बार बार; जनपर इतनी दाया कीजे ।
सेवक युद्ध में रहे अक्षत; कुछ ऐसी युक्ति बता दीजे ॥"
द्रोण ने उसी क्षण भूपतिको;"नारायण-कवच"प्रदान किया ।
फिर"राम-कवच"को पहिना कर;रक्षाका पूर्ण विधान किया॥
"जाओ, निर्भय हो, युद्ध करो; आजको न हानि उठाओगे ।
मैं वर देता हूँ, आज तुम्हीं, जय पाकर वापिस आओगे ॥"



द्रोणाचार्य दुर्योधनको कवच पहना रहे हैं।

"अर्जुन" का संग्राम में; आधा हुआ निषंग।
पर–कवचोंकी वजह से; छिदा न नृपका अंग॥

"अर्जुन" जो बाण चलाते हैं; वह दो टुकड़े हो जाते हैं।
उत्साह, उमंग, तेज, साहस; सारे निष्फल दिखलाते हैं॥
बोले–"हैं! आज हाथ मेरा; क्या निर्बलता पर आया है?।
अस्त्रका प्रभाव न पड़ता है; हेनाथ! आज क्या माया है?॥"
'केशव' बोले–"हे पार्थ! आज; कुरु-पतिके कवच निराले हैं।
इस कारण, उसने तेरे सब; वे बाण व्यर्थ कर डाले हैं॥

कुरु-पति को छोड़ बीच हीमें; इन घोड़ों का संहारण कर ।
सारथी मार "दुर्योधन"का; "द्रोण"के साथ ही में रणकर ॥"

"अर्जुन" ने कर अन्तमें; वही युक्ति—सन्धान ।
घोड़े, एवं सारथी; कर डाले बे जान ॥

बेहाल देख "दुर्योधन" को; "द्रोण"ने "पार्थको" ललकारा ।
विकराल—बाणका जोड़ जोड़; छाती की ओर लक्ष्य मारा ॥
"अर्जुन" ने भी वह काट दिया; एवं धन्वा टंकार दिया ।
घोड़े मारे; रथ तोड़ दिया; सारथी "द्रोण"का मार दिया ॥

वहां "भीम" इत्यादि ने; वधे अनेकों वीर ।
सन्ध्या होते ही चले; शिविरों को रण-धीर ॥

"धर्म"ने कहा-"हे त्रिभुवन-पति!; "पार्थज"से वीर खो चुके हैं।
चौदह दिन आज हो चुके हैं; पर"द्रोण"न विजय हो सके हैं॥
जब तक माया-पतिने खुद ही; अपना न उपाय बताया था ।
तब तक दादा को रण में से; तिल भर न हटाने पाया था॥
गुरुवर ने सारी सैन्य मार; हलचल का दृश्य दिखाया है ।
हे अन्तर्यामी ! बतलाओ; गुरुवर के लिये राय क्या है ? ॥"

"कृष्णचन्द्र"कहने लगे—"है बस यही उपाय ।
कलको"द्रोणी" वीरसे; भीम सुभट भिड़ जाय ॥

इसके आगे जो होनी है; वह होते ही दिखलायेगी ।
"द्रोणाचार्य्य"के लिये कोई; आप ही युक्ति बन जायेगी ॥

परामर्श कर इस तरह; किया गया विश्राम ।
प्रात हुआ, धौंसा बजा; मचा घोर संग्राम ॥

दोनों दल चढ़े, बढ़े योधा, दल–बादल से दल टूट रहे।
तेग़ों की बिजली चमक रही; बाणों के लच्छे छूट रहे॥

गायन

भिरे समान शूरमा–जुरे महान शूरमा।
पैदल--असवार वीर; खड्ग-भाल, तीक्ष्ण तीर;
डारत यक बार,मार मारकी पुकार,हीय मानत न हार।
बीर.........शूरमा।
गिरत एक,भिरत एक; एक पै अनेक-वीर...शूरमा।

वीरों का होने लगा; यहां घोर–संग्राम।
यहां ''द्रोण''के सामने;हुए ''पार्थ-घनश्याम''॥

पहिले बाण से प्रणाम किया; गुरुवर ने आशीर्वाद दिया।
वीर ने बाण–बादल करके; ''द्रोण''को बीचमें घेर लिया॥
गुरुवर ने सौ बाणों द्वारा; ''पार्थ''का कलेजा छेद दिया।
घोड़ों को घायल कर डाला;''बजरंगी'' का मुँह भेद दिया॥
क्रोधमें ''पार्थ''ने गुरुवर पर; वह तीक्ष्ण-बाण संधान किये।
सारा शरीर जर्जर करके; सेनावाले भी रोक दिये॥

वहां ''भीम'' रथसे उतर; पहुँचे गदा घुमाय।
धँसे जिस तरफ़ वीर वर; काई सी फट जाय॥

भागे योधा हाहा करके; सारा दल भागा यहां वहां।
धर काट छाँट मैदान पाट; हाहा फैला दी जहां तहां॥
''कृतवर्मा'' के साथ में एक; ''अश्वत्थामा'' हाथी भी था।
वह सूँड़ उठा कर एक साथ; ''भीम'' के सामने दौड़ पड़ा॥

"अर्जुन" ने यह देख कर; मारा उसको बाण ।
"अश्वत्थामा" के वहीं; निकल गये बस प्राण ॥

उस ओर "भीम"ने"द्रौणी" से अत्यन्त-घोर-संग्राम किया ।
उसका रथ पकड़ ज़रा हीमें; सेना से बाहर फेंक दिया ॥
वह रथ नौ सो कोस तक उड़ा, घोड़े मर कर के दूर हुए ।
रथ तथा सारथी-यह दोनों; गिरते ही चकना चूर हुए ॥
"शंकर" जीके प्रताप-बल से; भट "अश्वत्थामा" मरा नहीं ।
पर उस के मरने की चर्चा; चल पड़ी सैन्य में कहीं कहीं ॥

"अश्वत्थामा-मरण" का; उठा जहाँ संवाद ।
गुरुवर "द्रोणाचार्य्य"को; हुआ विशेष-विषाद ॥

पूछने लगे-"क्यों क्यों वीरो !; यह क्या संवाद सुनाता है ?।
सेना में प्रिय"अश्वत्थामा";क्यों आज नहीं दिखलाता है?॥"
वीरोंने कहा-"वीर-द्रोणी""भीम"से भिड़ा था अभी यहीं ।
लेकिन दो एक घड़ी से ही; उसका सेना में पता नहीं ॥

कहा "द्रोण" ने "भीम"से-कह भट सच्ची बात ।
क्या तूने कर दिया है !; "द्रोणी" का आघात ॥

"भीम"ने कहा-"हाँ, मैंने ही, उसका अभिमान निकाला है ।
रथ-सहित फेंक रणसे बाहर; उसका चूरा कर डाला है ॥ "
अकुलाने "द्रोण" शीघ्रलौटे; "अर्जुन"से वही सवाल किया ।
"पार्थ"ने कहा-"मेरे आगे; "द्रोणी"को भट ने फेंक दिया॥"

अब तो "द्रोणाचार्य्य" की;बन्द हो गई चाल ।
हाथ उठा कहने लगे-"तुम बोलो गोपाल !॥ "
"भक्त-वश्य" कहने लगे-" है ऐसी ही बात ।
आज समर में हुआ है; अश्वत्थामा-पात ॥"

"द्रोण" ने कहा-"अये भक्त-वश्य !;तुम भक्तों ही में रहते हो ।
और उनकी लज्जा रखने को; वैसी ही बातें करते हो ॥
इसलिये तुम्हारी बात नाथ !; युद्ध में न सच्ची मानूँगा ।
यदि "धर्मराज" ऐसा कह दें; तो अंश २ सच जानूँगा ॥"

"केशव" भागे शीघ्र ही; कहा "धर्म" से जाय ।
"द्रोण–बधन का धर्म–पति !;है बस यही उपाय ॥

तलवार तीर का काम नहीं; थोड़ी सी जुवाँ खोलना है ।
"अश्वत्थामा मर गया"–फ़क़त;इतना ही झूंठ बोलना है ॥"
"धर्म" ने जोड़कर हाथ कहा–"हे नाथ ! क़त्ल करवाइयेगा ।
फिर से वन–वास दिलाइयेगा; पर मिथ्या मत बुलवाइयेगा ॥
खोलूँगा यह तरकश मुड़कर; पर जुवाँ न झूठी खोलूँगा ।
बोलूँगा कौरव–पति की जय; पर झूठ कदापि न बोलूँगा ॥
जिस वैभव, मान, पराक्रम में, झूठकी नाम को भी बू है ।
उस कीर्त्ति,तेज,बल,प्रभुता पर;उस सम्पति,उन्नति पर'थू'है॥"

"कृष्णचन्द्र"कहने लगे;–"सोचो कुछ नर-पाल ! ।
सत्य--झूठ का यहाँ पर, है कौन सा सवाल ॥

मैं तुमको झूठ बोलने पर; हे राजन् ! विवश नहीं करता ।
इस महा–पाप का धर्म राज !; निष्कारण भार नहीं धरता ॥
रण–स्थल में हथयार देख; हथयार सँभारा जाता है ।
गर्मी गर्मी से जाती है; विष से विष मारा जाता है ॥
यदि समय तथा अवसर पाया; तो इसे कभी समझाऊँगा ।
सत्य और झूठ का तत्त्व–रूप; हे भूप ! तुझे दिखलाऊँगा ॥
इस समय हमारे कहने से; इतना ही तुम को कहना है ।
बस इस कहने कहने ही में; मर्य्याद धर्म की रहना है ॥"

तब तक आये "द्रोण" भी; बोले-"कहो नृपाल!-
"अश्वत्थामा" का तुम्हें; है ज़ाहिर कुछ हाल ?।"

धर्म ने कहा-"अश्वत्थामा; निश्चय ही नाथ ! मर चुका है।
पर हाथी है, या मानव है; यह दास नहीं कह सकता है॥"
वाक्य का प्रथम-पद पूर्ण हुआ; केशव ने शंख बजाया है।
दूसरा चरण श्री गुरुवर के; कानों तक पहुँच न पाया है॥

उसी समय आकाश में; ऋषि--वृन्दों ने आय।
'द्रोण' विप्र से शब्द यह; कहे-सुनो द्विज-राय !॥



द्रोणके लिये ऋषियोंका उपदेश।

ऋषि–वंशी होकर, क्षत्रिय का; करतब कर, रक्त बहाते हो।
संयमी, ब्राह्मण होकर भी; हत्याएँ शीश चढ़ाते हो॥
जो किसी शस्त्र से मर कर तुम; परलोक–धाम में आओगे।
हम अभी जताये देते हैं; वीर–गति कदापि न पाओगे॥"
"द्रोण" ने कहा—"हे दया–धाम!; अब रण से हाथ उठाताहूँ।
योगस्थ समाधि साध भगवन्!; ब्रह्माण्ड भेद कर आता हूँ॥"

इतना कह ज्यों ही हुए; द्विज–वर ध्यानासीन।
क्रम क्रम से होने लगे; आत्म–योग–तल्लीन॥

राजा "विराट" आगे बढ़ कर; तब तक यों हांक सुनाते हैं।
"गुरुवर! बस सावधान रहिये; अब बाण हमारे आते हैं॥"
खण्डन हो गया ध्यान गुरु का; योगसे हृदय उचाट किया।
धन्वा-बाणको उठा कर के; मस्तक विराट का काट दिया॥

ऋषियों ने फिरसे कहा—"द्विज वर को संबोध।
भला योग के मध्य में; इस प्रकार का क्रोध॥"

द्रोण ने कहा—"इस योधा ने; आगे आकर ललकारा है।
इस लिये दासने धन्वा ले; आये बैरी को मारा है॥"
फिर नियम-सहित स्नान किये; आत्मीय-वृत्ति को मोड़ दिया।
"त्राटकी–मूल" का वेधन कर; वह पिण्ड वायु का तोड़ दिया॥
"द्रुपदेश–कुँवर" अवसर पाकर; "द्रोण" के सामने आया है।
उस समाधिस्थ ऋषि का मस्तक; पृथ्वी पर काट गिराया है॥
तेज-स्वरूप, तेजस्वी द्विज; इस भाँति समरमें छला गया।
अपना जौहर दिखला करके; दूसरा रत्न भी चला गया॥

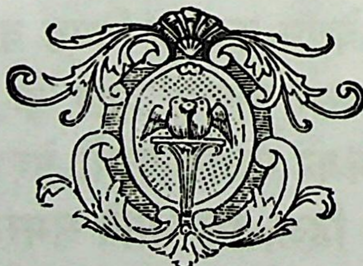
गायन

मिट गईं, फूटोंमें क्या; फ़ुलवारियां।
जल गईं इस आग में; गुलक्यारियां॥
इस लड़ाई की बढ़ी; इतनी जलन;
आज तक बाक़ी हैं; कुछ चिनगारियां।
उठ गये क्या २ दिखा कर; दृश्य वीर-
खँडहरों में रह गईं गुलकारियाँ॥
अब यहां है दो ही बातों पर गुज़र-
वह पुरानी याद; और बेकारियां।

लीला-धर, गिरिधर, कहो; जगदाधर घनश्याम।
जन "विनीत-शैलेन्द्र" को; दें माधव विश्राम॥

—: शुभमस्तु :—

इति द्रोणपर्व-द्रोण-वध।



श्रीः ।

महाभारत-कर्णपर्व ।

कर्ण-वध

सरल छन्दोबद्ध.

"दानियों को भला किस वक़्, कहां, क्या न मिला ? ।
नहीं मिला, तो नहीं का, कहीं मौक़ा न मिला ॥"

लेखक-

कविरत्न श्री पं० शैलेन्द्रकुमारजी वाजपेयी,
धर्मालङ्कार, कीर्तनकलानिधि.
आनन्दभवन, गणेशगंज, खण्डवा C.P.

और

काव्य-कला-भूषण अभिनयाचार्य्य कुशल-कवि,
श्री पं० गोविन्ददासजी विनीत, तालबेहट-झाँसी.

मुद्रक एवं प्रकाशक:

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

॥ श्रीः ॥

प्रार्थना.

माधव ! वे दिन और न जानो ।
जीवन-समर, धर्म-अधरम--दल, देह--क्षेत्र पहिचानो ।
द्रोह, मोह, छल, काम, क्रोध-भय, निज अभिमान भुलानो ।
द्वेष, द्विमति, भ्रम-भाव--विवश हरि !, आपनु भयौ बिरानो॥
पार्थ एक गुण-धार तुम्हें प्रभु ! अपनो करि सन्मानो ।
हौं सब-गुण बिनु, सब मति-गति-गत औचक फिरत डरानो॥
मति-रथ मन--वाहन हरि-सारथि, तौहूं पथ अरुझानो ।
जन "विनीत-शैलेन्द्र" दयामय, निबल पाण्डु-सुत मानो ॥



श्रीः ।

* कथा प्रारम्भ. *

"द्रोण-वीर" का जब हुआ; इस प्रकार अवमान ।
पाण्डव-सेना के वहीं; फहरा उठे निशान ॥

कौरव-गण मुख-मलीन लौटे; पाण्डव-दलमें आनन्द हुआ।
उस ओर 'द्रोण-सुत' चकित हुआ; सारा बिचार-बल मन्द हुआ॥
वह परम-भक्त था "शंकर" का; बोला-"देवेश! दया लाओ ।
हे नाथ ! रात ही के अन्दर; मुझको सेना में पहुँचाओ ॥
भय है, शायद आज के रोज; दुश्मन ने बाज़ी जीती है ।
क्या पता ? नाथ! मेरे बग़ैर; "कौरव-पति" पर क्या बीती है?॥"

एक प्रहर में "शम्भु" ने; दिया उसे पहुँचाय ।
कौरव-दल इस जगह पर; रहा "हाय" चिल्लाय ॥

'कुरु-पति' द्रोणी से लिपट गया; 'गुरु-गुरु!' कह कर बिलपाने लगा।
अपनी बीती बतलाने लगा; रो रो कर दशा सुनाने लगा ॥
"भैया द्रोणी ! लुट गया भाग्य; गुरु द्रोणाचार्य्य खो गये हैं ।
वे लोक-मान्य वे धनुर्धीर; रण में बलिदान हो गये हैं ॥
पापी--पिशाच--हत्यारों ने; इतना अधर्म अपनाया है ।
भैया ! सारा दल एक साथ; तेरा मरना चिल्लाया है ॥
तुम को कह करके मरा हुआ; जब सत्य धर्म ने छोड़ दिया ।
तब साध समाधि "द्रोण" गुरु ने; पृथ्वी से नाता तोड़ दिया॥
उस समय "द्रुपद-सुत" पापी ने; और भी अनर्थ दिखाया है।
उन समाधिस्थ-योगेश्वरका; मस्तक काट कर गिराया है॥"

शोक-क्रोध-अन्याय का, आया एक उबाल ।
आखें लाल निकालकर; बोला द्विजका लाल ॥
"रक्खे हैं आड़ धर्म-पन की; ऐसी हत्यायें करते हैं ।
हम खुले रूप में कहते हैं; धर्म भी स्वार्थ पर मरते हैं ॥
यदि योगासीन ब्राह्मण पर; तलवार चलाना समुचित है ।
तो कोई हमको समझा दे; कौरवी-कर्म क्या अनुचित है?॥
अच्छा २-इसका बदला; कलही जो नृप ! न निकालदूँ मैं ।
तो शपथ-पूर्वक कहता हूँ; द्विज वीर नहीं, चाण्डाल हूँ मैं ॥
जब तक मैं धृष्टद्युम्न पापी; भूतल से नहीं उठाऊँगा ।
तब तक पूज्य-तम-पिताजीका; तर्पण भी नहीं कराऊँगा ॥"
वहां प्रतिज्ञा कर उठा; इस प्रकार द्विज-लाल ।
करुणा-कर से यहां पर; बोले "धर्म" नृपाल ॥
" श्री महाराज ! प्रेरणा-सहित; सेवक से झूठ कहाया है ।
मैं भली भांति से जान गया; यह पाप मेरे सिर आया है ॥"
"माधव" बोले-"पाप या पुण्य; गम्भीर-विषय कहलाता है ।
एक ही कर्म समयानुसार; पापसे पुण्य बन जाता है ॥
लौकिक, सामयिक परिस्थिति से; फिर वही पाप दिखलाता है ।
आशय यह है, प्रत्येक कर्म; अवसर पर शोभा पाता है ॥
"विष" घातक है, पर कई जगह; अमृत से श्रेष्ठ कहाता है ।
"रति-रंग" हानि कर है-तथापि; संसार उसे अपनाता है ॥
"हिंसा" कुकर्म है-किन्तु-कहीं; उसका प्रयोग यदि खोजाये ।
तो प्रकृति-जन्य त्रैगुण-धारी; खल--दमन असम्भव होजाये ॥
यदि अपने प्रति ही नृपति !; लेते हो यह भार ।
तो यह सारा पाप भी; करो तुम्हीं स्वीकार ॥

आप हैं भूप, यह सैनिक--गण; आपके आज्ञाकारी हैं।
इस नाते सारे कर्मों के; आपही एक अधिकारी हैं॥
राजन् ! कर्तृत्व-मान तज दे; दैवीय-विधान चल रहा है।
अपने अपने कर्मों का फल; अवसर के साथ फल रहा है॥
धर्म का तत्व है, परम-गूढ़; बिरले ज्ञानी ही पाते हैं।
अन्यथा कोटिशः जीव नित्य; "क्यों? क्या?" करते ही जाते हैं॥
पाप या पुण्य यह मत समझो; यह धर्म-तत्व कहलाता है।
बनता है, सत्य अधर्म कभी; और झूठ धर्म बन जाता है॥
कितने प्रमाण इन विषयोंके; मिलते हैं, शास्त्र पुराणों में।
अधिकार तुम्हारा नहीं भूप !; कुछ भी दैवीय-विधानों में॥"

"धर्मराज" ने फिर कहा-" हे हे परम-उदार !।
कहां ? किस तरह ? झूठ का; होता है व्यवहार॥

त्रैगुण-सम्पन्न-सृष्टि में नृप !; सब का अधिकार बराबर है।
विष-सुधा, असत्य-सत्य, सत-तम; केवल प्रयोग का अन्तरहै॥
यदि निरपराध-वध होता हो; दीनों पर घोर कष्ट आये।
पापी का दमन न होता हो; पर काम झूठ से बन जाये॥
तो उस अवसर पर वही "झूठ"; अमृत-स्वरूप हो जाती है।
यह पाप-समस्या उस क्षण पर; पुण्य का रूप दिखलाती है॥

कहा "पार्थ" ने-"नाथ ! क्या; था? दैवीय-विधान।
इस प्रकार से क्यों हुआ; गुरु वरका बलिदान॥
प्रभु बोले-"इस मृत्यु में; है दैवीय-विधान।
दक्षिण में इस जगह है; ऋषियों का स्थान॥

खेल रहे थे, एक दिन; कुछ ऋषियों के बाल ।
चलते थे उस खेलमें; अपनी अपनी चाल ॥

"उद्दालक" ऋषि केबालक ने; व्याघ्रका स्वरूप बनाया था ।
अपनी एक ही दहाड़ मार; सारा ऋषि-वन दहलाया था ॥
"द्रोण"ने वास्तविक व्याघ्र समझ;शब्द पर बाण ऐसा मारा ।
बस उसी समय,ऋषि-बाल गिरा;चीखकर मर गया,बेचारा ॥
लड़कों ने जाकर जैसे ही; आश्रम में हाल सुनाया है ।
निष्कारण-बाल-मरण सुनकर; सारा ऋषि-मण्डल आया है ॥

"उद्दालक" को पुत्रका; हुआ घोर-सन्ताप ।
देह छोड़ते हुए यों; दिया "द्रोण"को शाप ॥

"पापी ब्राह्मण ! इस हत्या का; तुझपर भी रंग दिखायेगा ।
मेरी ही तरह जुदाई में; बेटे पर तू मर जायेगा ॥" ॥
बस उसी शाप-वश गुरुवर को; इस जगह आज ही मरना था ।
ऋषि-वाक्य-सिद्ध दिखलाना था;गुरु को प्रायश्चित करना था ॥

राजन् ! सोचो तो तनिक; उन दुष्टों की चाल ।
मचा हुआ है उन्हीं से; भू-तल पर भूचाल ॥

भीम को ज़हर, द्यूत का कपट; वह भरी सभामें मनमानी ।
क्या भूल गयेइतनी जल्दी;"अभिमन्यु"कुँवरकी बलिदानी॥
जो वहाँ न बात बनाते तो, द्रोण की मृत्यु क्यों कर होती? ।
कौरव-दल की सब हार जीत; गुरु-जीवन पर निर्भर होती ॥
गुरु-जीवन सुत पर निर्भर था; पर"अश्वत्थामा"अक्षय है ।
बोलो राजन् !इस अवसर पर;धर्म या पाप,किसकी जय है?॥

"धर्मराज" कहने लगे; सुनिये दया-निधान ।
इस ✻ गति को समझें कहाँ ? हम विमूढ़ अज्ञान ॥
अपनी माया आपही; जानो माया-नाथ ! ।
हमें विजय दे रहा है; केवल प्रभु का हाथ ॥

यदि मेरी आत्मा से पूछो; तो वे सच्चे योधा-गण हैं ।
इस ओर अगर देखा जाये; तो केवल एक "जनार्दन" हैं ॥
'भीष्म'सा वीर, 'द्रोण'सा धीर; 'कर्ण'सा हठी कुरु-पति छल में ।
सत्य है नाथ ! एक भी नहीं; उनके समान पाण्डव-दलमें ॥
श्री महाराज को छोड़ कहीं; सारे पृथ्वी के मिल जाते ।
तो आज कौरवों के द्वारा, घड़ियों में चौपट दिखलाते ॥
यह केवल माया प्रभुकी है; चूहे बिलाव से लड़ते हैं ।
यह शक्ति इन्हीं चरणों की है; बकरे सिंह से झगड़ते हैं ॥

गायन

धूरि चढ़ै नभ, मूरि विना तरु; पाहन पाथ पयोधि तिरावै ॥
पाय पतंग पदै पटबीजन; सागर पार पिपीलक जावै ॥
पंगु चढ़ै गिरि, अन्ध लखैजग; मूक कहे, बहिरौ सुनि पावै ॥
मूढ़ 'विनीत'अनीति गहै; 'यदुनाथ' पै जो पै प्रतीति न लावै ॥

✻ दया-निधि ! तोरी गति लखि न परै ।
धन ते धरम, धरम ते अधरम, अकरम करम करै ।
एक गऊ जो देत विप्रको, सो भव-सिन्धु तरै ।
कोट गऊ राजा नृग दीन्हीं; गिरगिट ह्वै कूप परै ।
पिता वचन मेटै सो पापी, सोउ प्रल्हाद करै ।
ताके बन्द छुडावन को प्रभु; नरसिंह-रूप धरै ।
हरिश्चन्द्र सो दानी राजा; नीच को नीर भरै ।....इत्यादि ।

"सूरदासजी"

"केशव" बोले-"भूप अब; सोचो नया विचार ।
"कर्ण" वीर होगा सुवह; सेनाका सरदार ॥ "
कहा धर्म ने-"दास का; था बस एक उपाय ।
तुम्हें बुलाने तक यहाँ; भय था, यादवराय ! ॥
प्रभु आये, आया सभी; छूटा मेरा जाल ।
अगले सोच विचारकी; तुम जानो गोपाल ! ॥ "

दूसरे रोज़ कौरव-दल में; वीरों का एक जमाव हुआ ।
सेना-नायक-निर्वाचन का; राजों में फिर प्रस्ताव हुआ ॥
द्रोणी बोला-"अब से राजन् !; कर्ण को कीजिये अधिकारी ।
बस उसी वीर के हाथों है; कौरव-दल की लज्जा सारी ॥

"कुरुपति" एवं सभाने; किया उसे स्वीकार ।
तीन रोज़ के वास्ते; "कर्ण" हुआ सरदार ॥

"दुर्योधन" ने अपने हाथों; "कर्ण" को मुकुट बँधवाया है।
वीरों ने जय जय-नाद किया; भूप ने हार पहिनाया है ॥
"कर्ण" भी खड़ा होकर बोला-"हे सभासदो! हे सरदारो!।
वीरो ! राजाओ ! विद्वानो !; कौरव-नौका के पतवारो ! ॥
"श्री कौरवेन्द्र " ने जो मुझको;यह विजय-हार पहिनाया है।
एवं इस महा-श्रेष्ठ-पद पर; मुझसा अयोग्य बिठलाया है ॥
उसके उत्तरमें मैं केवल; शुभ-धन्यवाद ही देता हूँ ।
श्रीमानों की इच्छानुसार; इस महा-भार को लेता हूँ ॥
आशा है यथा-शक्ति इसको;तन, मन से नाथ निभाऊँगा ।
जिस सीमा तक बन आयेगी; सेवा में कसर न लाऊँगा ॥
पाण्डव-दल की परवाह नहीं;"अर्जुन"का ध्यान न करता हूँ ।
केवल विपक्षियों में मित्रो !; सारथी " कृष्ण "से डरता हूँ॥

जो "कृष्ण"-समान-सारथी मैं; पाऊँ-तो शक्ति दिखा डालूँ।
"अर्जुन" ऐसे; लाखों योधा; पहिली ही वार उड़ा डालूँ॥"
"शकुनी" बोला-"श्री महाराज!; इस योग्य यहां मामाजी हैं।
"कर्ण" का सारथी इन्हें करो; जो केशव वहाँ सारथी हैं॥"
"शल्य" ने कहा-"बस मौन रहो; किसका सारथी बताते हो?।
यक परम-स्वतन्त्र-केहरी को; बकरे का दास बनाते हो॥"

"शल्य" सरीखा नामवर; बने "कर्ण" का दास।
शकुनी ! कहते हुए भी; हुआ न हृदय निराश॥

"दुर्योधन" बोला-"मामाजी !; अपना ही काज बनाना है।
अपने ध्येय के लिये हमको; क्या २ न वेश दिखलाना है?॥
मेरी क्या! सब की सम्मति में; "कृष्ण" के समान आपही हैं।
वह उस पक्ष के सारथी हैं; प्रभु इस पक्ष के सारथी हैं॥"

इतने पद से "शल्य" भी; फूले[1] मसक समान।
बोला-"श्रीमहाराज पर; अर्पण हैं यह प्रान॥

"कृष्ण" से अनोखा रथ हाकूँ; वायु का वेग भी रुकवा दूँ।
क्या बात ? विचारे "अर्जुन" की; सूरज के छक्के छुड़वा दूँ॥
अवसर आये तो उसी जगह; "कर्ण" की जगह का काम करूँ।
वह महा-घोर-संग्राम करूँ; भारत में पहिला नाम करूँ॥"
इस ओर हुई दल-बन्दी यों; प्रभु धर्म-शिबिर में जाते हैं।
"श्री-पति" एकान्त जगह पाकर; भूपति को यों समझाते हैं॥

---

१ फूलने का कारण प्रकटमें तो "पद" पाना था, परन्तु आन्तरिक-कारण वह धर्मसंवाद था जो "शल्य और धर्म" से दल एकत्र होते समय हुआ था। अर्थात् शल्य ने समझा कि अब "धर्म" की सेवा करने का समय आगया है।

लेखकः-

"हे धर्मराज ! बस सावधान; अब विप्लव होने वाला है।
यह द्रोण-भीष्म का समर नहीं; बल-वीर "कर्ण" से पाला है॥
हैं पांच बाण "कर्ण" के पास; जो उनके द्वारा रण होगा।
तो अभी जताये देता हूँ; निश्चय पार्थ का मरण होगा॥
इसलिये अगर फूफी जायें; वे पांचों बाण मांग लायें।
तो विजय युद्ध में पा जायें; निश्चिन्त "कर्ण" से हो जायें॥"

"कुन्ती" देवी शीघ्र ही; गई "कर्ण" के धाम।
आगे बढ़ कर वीर ने; मां को किया प्रणाम॥

फिर बोला कर्ण-"कहो माता!; किस कारण कष्ट उठाया है?।
इन्द्र के समान भाग्य--शाली; यह सेवक-सदन बनाया है॥
आज्ञा हो तो तन, मन, धन से; कुछ सेवा अंगीकार करूँ।
जैसी इच्छा हो प्रकट करो; सर्वस्व तुम्हें बलिहार करूँ॥"
माँ बोली-"अपने बेटों का; स्नेह मुझे ले आया है।
वह भेद बताने आई हूँ; जो अब तक नहीं बताया है॥
अब तक बेटा ! इस दुखिया के; छः बच्चे वीर कहाते हैं।
वे बिला वजह बे पहिचाने; आपस में लड़ने जाते हैं॥

बे बूझे मिट जायँगे; कुल के दो पतवार।
भाई से भाई वृथा; होना है संहार॥

तुम को बेटा ! अपनी माँ की; शायद अब तक पहिचान नहीं।
और भी कुटुम्बी है कोई; इसका भी तुम को ध्यान नहीं॥
बस यही भूल मिटवाने को; यह बुढ़िया तुम तक आई है।
तुम सूर्य्य-देव के बेटे हो; और यही तुम्हारी माई है॥
मैंने क्वाँरेपन में तुमको; भगवान सूर्य्य से पाया था।
पर लौकिक-लज्जा के कारण; गंगा में तुम्हें ! बहाया था॥

ईश्वर ने तुम्हें बचाया है; एवं यह दिन दिखलाया है।
इसलिये रहस्य खोलने का; वह समय आज ही आया है॥
इसलिये लाल! यह कहती हूँ; तुम भाई २ लड़ो नहीं।
बेटा! बस यही मांगती हूँ; कुल का संहारण करो नहीं॥

गायन

लला! मैं तुम्हारी कुशल चाहती हूँ।
सुपूतों का जीवन सफल चाहती हूँ॥
न भाई से भाई जुदा चाहती हूँ,
बँधा प्रेम-बन्धन में दल चाहती हूँ।
न काटो सहोदर, न कुलको मिटाओ,
छहों का सदा अन्न--जल चाहती हूँ॥
अरे वीर-वर आज बलियोंके आगे;
तुम्हारा भी अपने में बल चाहती हूँ।"

कहा "कर्ण" ने "क्या करूँ; हूँ माता! लाचार।
एक ओर ले चुका है; सेवक सिरपर भार॥

इसमें कोई सन्देह नहीं; तूने ही मुझको जाया है।
श्री सूर्य्य देव ने स्वयं मुझे, इसका प्रमाण बतलाया है॥
यह भ्रम-सन्देह नहीं कुछ भी; पर नमक यहांका खाया है।
पस उसी नमक के रखने को; जन ने यह पक्ष निभाया है॥
तू क्षत्रिय-धर्म समझती है; जन वाचा-बद्ध हो चुका है।
तोड़ दूँ? प्रतिज्ञा क्या माता!; बच्चे को यही सुशिक्षा है॥
विश्वास रहे, मैया! सेवक; सबको न कभी संहारेगा।
लेकिन प्रण में बँध जाने से; "अर्जुन" को निश्चय मारेगा॥

"अर्जुन"को छोड़"कर्ण"ले ले; फिर भी पांच ही कहायेंगे।
"पार्थ"की जगह कल से माता!; हम तेरी टहल उठायेंगे॥
त्रैलोक-सम्पदा पर"थू"कर; "कुरु-पति"का पक्ष आज लूँगा।
"अर्जुन" के प्राण छोड़ माता !; जो कुछ भी माँगो-दे दूँगा॥

गायन

कहो, चरण पर शीश चढ़ा दूँ।
कहो, त्रिलोक-विजय करवा दूँ॥
कहो, देह का रक्त बहा दूँ;
कहो, चर्म पद-त्रान बना दूँ।
कहो, सकल धन-धाम लुटा दूँ;
कहो, मुक्ति की चाह भुला दूँ॥
जो कुछ भी जन कर सके; है करना स्वीकार।
पर प्रण-खण्डनके लिये; कर न मातु ! लाचार॥
आँखों में बिठा लूँ; माथे पै उठा लूँ।

"कुन्ती"बोली-"हों चहें; दोनों वंश तबाह।
पर प्रण-खण्डनकी कभी; दूँगी नहीं सलाह॥

सारा भारत, सारा जमाव; है केवल एक "प्रतिज्ञा" पर।
यह राज्य-ताज का महा-भाव; है केवल एक "प्रतिज्ञा" पर॥
"भीष्म"सा वीर अवसान हुआ; केवल पक्षकी प्रतिज्ञा पर।
"द्रोण"सा पूज्य बलिदान हुआ, केवल पक्षकी प्रतिज्ञा पर॥
तेरे कारण मेरी रण में; कुछ विजय-मात्र दिखलायेगी।
पर आगे मेरी ही सन्तति; यों नमकहराम कहायेगी॥

इसलिये हमारी सम्मति है; मत पक्ष कभी छोड़ो बेटा ! ।
आज्ञा है, यही हमारी भी; अपना न वचन तोड़ो बेटा ! ॥

दो न बचन, पर दो मुझे; तात ! दूसरा दान ।
पार्थ-प्राणकी जगह पर; पार्थ-प्राण-हर बाण॥"
"दान-वीर"ने हृदयमें; किया न तनिक विचार ।
हँसा-बाण देकर कहा-"करो मातु ! स्वीकार ॥

मैं जान रहा हूँ-बाण नहीं; यह प्राण "कर्ण" के जाते हैं ।
पांचों बाणों के साथ साथ; अरमान "कर्ण" के जाते हैं ॥
पर जायें-इन चरणों पर तो; त्रैलोक-मान भी वारी है ।
सोच ले मातु ! दोनों प्रकार; अब सच्ची विजय हमारी है ॥
प्रण-पूर्वक जय पा गया कहीं; तो दूनी कीर्त्ति बढ़ायेगा ।
यदि वीर-मृत्यु हो गई कहीं; तो मर कर भी यश पायेगा॥"

धन्य कर्ण ! तुझसा कहां ?; दानवीर-सरदार ।
अपने हाथों दे रहा; अपने प्राणाधार ॥

ज़ाहिर है "कर्ण" वीर को यह; यदि बाण हाथ से जायेंगे ।
तो किसी तरह भी "अर्जुन"को; हम रणमें जीत न पायेंगे ॥
उलटे यह बाण हमारे सिर; काल का सन्देशा लायेंगे ।
गुरुके वचनानुसार निश्चय; "पार्थ" को विजय दिलवायेंगे ॥"
पर रत्ती भर संकोच न था; मुख पर आई न मलिनता भी ।
यह दृढ़-प्रतिज्ञ की शक्ति देख; "कुन्ती"बेचारी हिल न सकी ॥

"दान-वीर"ने फिर कहा-"लो माता ! यह दान ।
"पार्थ-प्राण" का दान है; "कर्ण-वीर" का प्राण ॥

मैं खुशी खुशी से देता हूँ; ले जाओ, अब विचार क्या है? ।
बतलाओ बाणों के सिवाय; दूसरी और क्या सेवा है ? ॥
कह देना—उन निर्लज्जोंसे ; मर जायँ डूब कर पानी में ।
जीते जी—मां भिखारनी हो; लग जाय आग मरदानी में ॥
प्राणों का जब इतना भय था;क्यों "अर्जुन" स्वयं न आयाहै? ।
आता, ले जाता प्राण—दान; इतना क्यों स्वांग रचायाहै?॥"
"कुन्ती" कोई यथेष्ट उत्तर; "कर्ण" की बात का दे न सकी ।
उसकी प्रभाव—मय वाणीपर; श्वांस भी बराबर ले न सकी ॥
केवल कुछ बाह्य—भाव द्वारा; बोली—"बेटा ! अब जानी हूँ ।
तेरी वास्तविक शक्ति लाला!, आज के रोज़ पहिचानी हूँ ॥
मैं भी आशीश दे रही हूँ; तुम में यश--धारी प्रभा भरे ।
जाओ सुपूत ! जग कीर्त्ति बढ़े; भगवान तुम्हारा भला करे॥"

"कुन्ती" पाचों बाण ले; चली सहित आह्लाद ।
वहाँ "इन्द्र" के पास भी; पहुँचा यह संवाद ॥

जब "इन्द्र—देव" को ज्ञात हुआ;बल—वीर--"कर्ण" तैयार हुआ ।
तो लगे सोचने मन ही मन----"अर्जुन" का बंटाढार हुआ ॥
यदि कुण्डल—कवच रहे उसपर,तो तन पर असर न आयेगा ।
जो किसी तरह लाया न उन्हें;तो "अर्जुन" धोखा खायेगा॥"
आया उबाल पर वत्स--प्रेम; "कर्ण" के यहां दौड़े आये ।
आगे से लिया--"कर्ण"—भट ने; गंगोदक से पद धुलवाये ॥
फिर कहा—"आज सौभाग्य नाथ!;सबसे उत्तम कहलाये हैं ।
जो देव—देव श्री "इन्द्र"—देव; जन की कुटिया में आये हैं॥"
"इन्द्र" ने कहा—"आये दान—वीर!;मेरे आने में कारण है ।
सारी पृथ्वी पर आज एक; तू ही बस दानि—शिरोमणि है ॥

मैं नाम तेरा सुन आया हूँ; कुछ मेरी कामना पूरी कर।
मैं भी तेरा यक याचक हूँ; बल-वीर ! याचना पूरी कर ॥"

कहा "कर्ण" ने–"क्या कहूँ ?; अपनी किस्मत आज।
दान–वीर हो कर्ण सा; याचक हों सुर–राज।

आज्ञा दीजिये–"सहस्र-नयन !; सब कुछ प्रभुकी इच्छापर है।
तन, धन–सम्पति जो मेरी है; वह चरणों पर नेछावर है ॥
हँस कर तब "इन्द्र"-देव बोले–"तो केवल इतना यश ले ले।
कुन्ती को पांचों बाण दिये; तो कुण्डल–कवच मुझे दे दे॥"

"दान–वीर" के वास्ते; था ही क्या दुशवार ?।
दोनों चीज़ें देहसे; दीं तत्काल उतार ॥

बोला–"लीजिये दया–सागर !; यह भेंट तुम्हें नेछावर है।
और भी आज्ञा हो, कोई; तो जन सेवा में हाज़िर है ॥"
"इन्द्र"ने कहा-"बोलो दानी!;इसका प्रतिफल अब क्या होगा?।
जीवन-रक्षा क्यों कर होगी ?; प्रणवाला करतब क्या होगा?॥
क्यों कर्ण ! आज इनके बल पर; तुम ही इतने इतराते थे ? ॥
इनके विश्वास, भरोसे पर; "पार्थ" को मारने जाते थे ? ॥
क्यों कर्ण ! बिला इन चीज़ों के;अब किस प्रकार जय पाओगे?
क्यों वीर ! बताओ तो, क्या अब; रणमें से जीते आओगे?॥"

कहा "कर्ण"ने बिहँस कर"–सोचें श्रीमहराज।
हार-जीत से प्रथम ही; "कर्ण"हुआ सिर-ताज ॥

जिसके द्वारे भिखारनी कर; माँ को "पार्थ" ने पठाया है।
जिसके द्वारे याचक बनकर; बाप भी बिचारा आया है ॥
उसका तो जीवन मृत्यु ही है; जीत भी "पार्थ"की हार हुई।
मृत्यु भी हमारी जीवन है; हार भी यहाँ शृङ्गार हुई ॥

जो वास्तव में सोचिये नाथ !; "अर्जुन" का नाम खो गया है ।
यह तुच्छ और ना चीज़ "कर्ण"; मर कर भी अमर हो गया है ॥
अपकीर्त्ति मिले, तो थूही है; चाहे त्रिलोक का राज सही ।
हे महाराज ! मरना ही है; कल मरे नहीं, तो आज सही ॥
संसारी सारे कर्म-धर्म; नाम के लिये ही करते हैं ।
वास्तव में अगर पूछिये तो; सब नाम के ऊपर मरते हैं ॥
वह नाम मुझे बेकाम किये; ईश्वर ने स्वयं दिलाया है ।
वास्तव में आज "कृष्ण" प्रभु ने; वास्तविक रूप प्रकटाया है ॥

वह तो ब्रह्म–स्वरूप हैं; हम सब उन के दास ।
यथा–भाव भगवान ने; पूजी सब की आश ॥

"धर्म" या "पार्थ" ने विजय–हेतु; "केशव" से प्रेम बढ़ाया है ।
इसलिये उसी की पूर्त्ति-हेतु; प्रभु ने उपचार लगाया है ॥
"भीष्म" की भक्ति-बल-ब्रह्मचर्य्य; सारे लोक को दिखाया है ।
अपना प्रण तक खण्डन करके; सेवक का मान बढ़ाया है ॥
"द्रोण" की शक्ति, ब्रह्मत्व-योग; पृथ्वी पर अमर बनाया है ।
यह सेवक इसी बहाने से; अब "दान-वीर" कहलाया है ॥
इनके रहते यदि "पार्थ" मुझे; वध करता, तो बलवान था वह ।
यदि कपट न करता वीरों से; तो असल आर्य्य-सन्तान था वह ॥
'भीष्म' पर 'शिखण्डी' का पर्दा; "द्रोण" को झूठ बहकाया है ।
मेरे "विचार" में "अर्जुन" ने; हाहा कर काम बनाया है ॥"

"इन्द्र–देव" के कण्ठ से; उठ न सकी आवाज़ ।
इतना ही कह सके, बस;-"धन्य "कर्ण" सरताज ॥

गायन

जहाँ में आज कोई भी; नहीं हम सर तुम्हारा है।
जगत के दान-वीरों में; प्रथम नम्बर तुम्हारा है॥
नहीं मल्लाह—किश्ती की; तुम्हें कोई ज़रूरत है;
तुम्हारा सत्य—प्रण ही, वीर वर ! रह वर तुम्हारा है॥
लिये जय—माल तुमको देवियाँ, हर ओर हाज़िर हैं;
यहाँ भी घर तुम्हारा है, वहाँ भी घर तुम्हारा है॥
हमारे आत्म—अधिकारी; बनो तुम स्वर्ग—अधिकारी;
कहें क्या ?, किस क़दर ?; अहसान यह हम पर तुम्हारा है॥

हूँ प्रसन्न हर तौरसे; ऋणी मुझे पहिचान।
जो भी तेरी चाह हो; माँग वीर ! वर-दान॥"

"कर्ण" ने कहा—"हे दया—धाम ! सेवक सब शिक्षा पाया है।
लेकिन "माँगना" किसीसे भी, गुरुवर ने नहीं सिखाया है॥
भगवान ! मेरा मरते दम तक; अहमित से ऊँचा माथ न हो।
ईश्वर ! इतनी ही सिद्धि रहे; ऊँचे से नीचा हाथ न हो॥
क्या बात ? बतक्कड़ झूठेसे, क्या लाग ? भागने वाले से।
क्या दाँव ? दूर के दब्बू से; क्या माँग ? माँगने वाले से॥
इसलिये यहीं से रहने दो; मुझको न वचन से बिचलाओ।
माँगना मुझे मंजूर नहीं; देना हो, स्वयं दिये जाओ॥

"इन्द्र देव" कहने लगे—"सुनो कर्ण यश-धाम !।
चलता है संसारमें; लैन—दैन से काम॥

तुमने जिस से विद्या पाई; उस को कुछ दान दिया होगा ।
उपकार किया जिसने तुम से; उसका प्रतिकार किया होगा ॥
लेनेवाले को देना है, देनेवाले को लेना है ।
जो मुझसे अगर पूछते हो, तो जग में लेना देना है ॥"
"कर्ण" ने कहा--"तो महाराज !;इतनी ही अभी दया कीजे ।
अपने हाथों की वज्र-शक्ति; सेवक के लिये दान दीजे ॥"
"इन्द्र"ने कहा-"लो वज्र-शक्ति;यह तुमको विजय दिलायेगी ।
मारकर किसी योधा को यह; फिर पास हमारे आयेगी ॥"

इतना कह कर इन्द्र नें; किया शीघ्र प्रस्थान ।
धर्म--शिविर में पहुँच कर; कहा सभी आख्यान ॥
प्रात हुआ, धौंसा बजा; फहरे समर--निशान ।
सजी पाण्डवी--सैन्य सब; चले "पार्थ--भगवान" ॥
यहां कौरवी-दल-सहित; चला "कर्ण" बल--धाम ।
केवल बाणों से भरा; रथ का भाग तमाम ॥

हाथी, पैदल, ऊंट क्या अश्व; बाणों को लादे आते हैं ।
प्रिय "सूर्य-सुवन" सेना--समेत; सूर्य्य के समान दिखाते हैं ॥
बल--धाम, रँगीला, गर्बीला; "कुन्ती--कुमार" दिखलाता है ।
आधा सफ़ेद, आधा पीला; झण्डा फहराता आता है ॥
"दुर्योधन" भी इन्द्र की तरह;नव--साज साज कर आया है ।
इस ओर "धर्म-पति-अर्जुन" ने; दूसरा ठाठ दिखलाया है ॥
पोशाक श्वेत,शिर--चमर श्वेत;श्वेत ही अस्त्र और असवारी ।
अनुचारी--:भक्त--इन्द्र--सुत की; पकड़े डोरी श्री"बनवारी ॥"

कहा नाथ ने "भीम" से--"सुनो भीम बल--धाम ! ।
आज "कर्ण" के साथ में; करो तुम्हीं संग्राम ॥

कर "धृष्टद्युम्न" को साथी तुम; "कर्ण" के सामने डटे रहो ।
धीरज, साहस, बल, कौशल से; आज दिन वीर के वार सहो ॥"
अर्जुन बोले--"हे माया--पति !; यह भार न इन पर दीजेगा ।
भाई भीम को पठाते हो; चलिये-खुद समर कीजियेगा ॥"
नाथ ने कहा--"कर्ण के पास; जब तक कि वज्र ठहरायेगा ।
तब तक उससे लड़कर कदापि; तू अर्जुन ! विजय न पायेगा ॥
सन्देह मुझे है, कर्ण कहीं; तुझ पर ही वज्र चलायेगा ।
तो सब उपाय करने पर भी; तू निश्चय मारा जायेगा ॥"

इतना कह कर, मोड़ रथ; लौटे करुणा--धाम ।
"अश्वत्थामा" से हुआ; "अर्जुन" का संग्राम ॥

"शल्य" ने 'कर्ण' का रथ हांका; "भट--कर्ण" बीच रणमें आया ।
फेर कर हाथ फिर धन्वा पर; बल--वीर हांक दे चिल्लाया ॥
"है आज कहाँ! "अर्जुन" भटवर; आगे आये, दो हाथ करे ।
या मुझे यम--पुरी पहुँचा दे; या वीर--कुँवर का साथ करे ॥
आये, आये, जल्दी आये; दिल में न हविस रह जाय कहीं ।
डर है, जोश का उबाल भरा; ले कर उफ़ान बह जाय कहीं ॥
अब तो कोई भय रहा नहीं; बस आये, शक्ति आज़माले ।
कुछ और अँदेशा बाक़ी हो; तो फिर से भिक्षा मँगवा ले ॥

गायन

हाज़िर है कर्ण वीर; डटा है कमान पर ।
बल हो जिसे बढ़े वह, मेरे निशान पर ॥

मैदान कुरु-क्षेत्र में, यह वीर-घोष है-
जिस में हो शक्ति, आज लड़े आन बान पर।
चुपका रहे जो हांक पै, आगे न क़दम दे;
लानत है उसके दूध पै, धिक है ग़ुमान पर॥

"कर्ण" वीर की हांक सुन; बढ़े "भीम" बल-धाम।
बोले-"ठहरो, करेगा; भीम, पार्थ का काम॥

तुम को क्या ? कोई वीर सही; अपनी ताक़त अज़मा डालो।
जितने भी जौहर सीखे हो; मुझपर सारे दिखला डालो॥"
कर्णने कहा-"क्यों, क्या अब भी; 'अर्जुन' को मरने का डर है ?।
कुछ और माँगकर ले जाते; भिखमंगा तो सारा घर है॥
किस किस ने इज्ज़त पाई है ?; छिप छिप कर तीर चलाने से।
क्या जौहर ख़ाक दिखायेगा ?; जो होगा मर्द ज़नाने से॥"
"भीम" ने कहा-"आपका युद्ध; पाण्डव लोगों पर निर्भर है।
क्या बात है ? 'अर्जुन' वीर नहीं; "अर्जुन" का भाई हाज़िर है॥"

इतना कहकर "भीम" ने; किये बाण-सन्धान।
"कर्ण-वीर" के शीश पर; पहुँचे वज्र समान॥

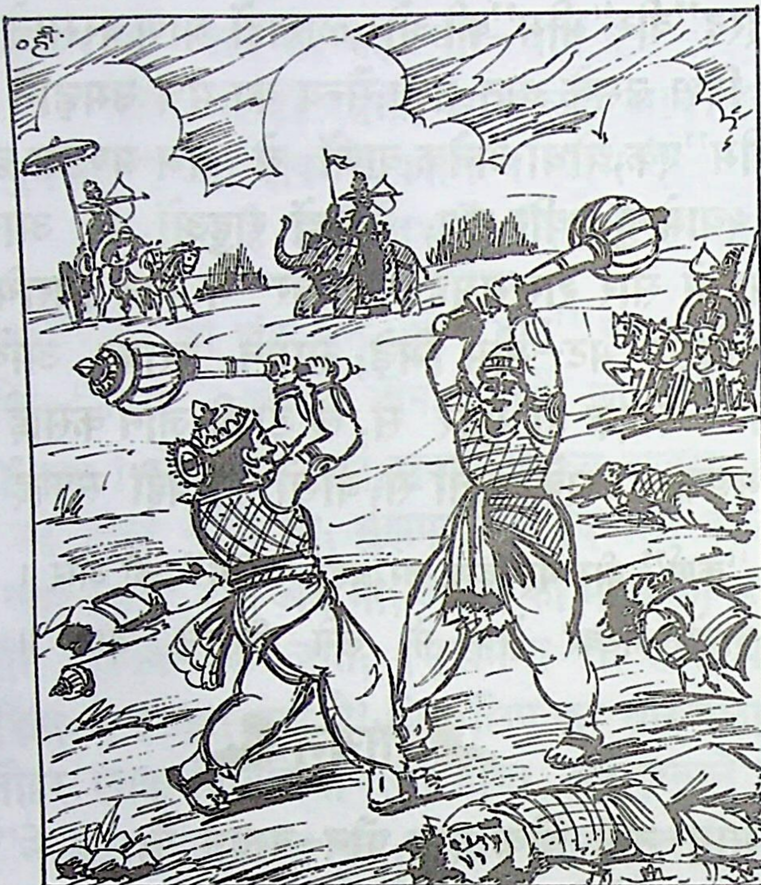
"कर्ण" ने बाण पर बाण मार; बाणों को काट गिराया है।
एक ही घड़ी में रथ मरोड़; घोड़ों को मार दिखाया है॥
हो गये विना रथ "भीम-वीर"; तब "धृष्टद्युम्न" आगे आया।
वह बाण चलाये भटवर ने; दल भर पर अन्धकार छाया॥
पिल पड़े "भीम" ले गदा फ़क़त; हाथी पहाड़ से ढाने लगे।
आगे को बढ़ आने वाले; यम-पुर को बढ़ के जाने लगे॥

बढ़ "द्विरद" वीर "भीम" की ओर; लाखहों बाण बरसाने लगा।
चारों दिश उसके भ्रात तथा; सैन्य का मेघ उमड़ाने लगा॥
भट "भीम" एक, योधा अनेक; बाणों से नभ-मण्डल छाया।
मानो श्यामेन्दु-सुवीर-रूप; सैकड़ों राहुओं में आया॥
क्षण भर में सारे शर-समूह; भट-वर ने काट गिराये हैं।
रणधीर-द्विरद भट–भीम भिड़े; सामने बराबर आये हैं॥
" भीम " ने एक ही मुद्गर से, ले डाली जान कसाई की।
फिर भिड़कर उसके भ्रातों से; बीसों की वहीं सफ़ाई की॥

"कर्ण" वीर यह देख कर; बढ़ा "भीम" की ओर।
दोनों भटवर क्षेत्र में; लगे दिखाने ज़ोर॥

गायन

धायौ भानु–नन्द चौक बन्द पौन–नन्दन पै;
तोरि फन्द ज्यों गयंद, लै अमन्द चाल सौ।
छंड २ बाण कीन्ह खण्ड २ सारथी हू;
छेद छेद धुरवन को राख्यौ पखाल सौ॥
तोर दियौ रत्थै मरोर फोर मत्थे दलन;
जोर दियौ जोरन समरत्थै मृनाल सौ।
तूल सी उड़ात सेन, कर्ण केरि शूलन सौं;
भूल रह्यौ भीम भूरि बावरो विहाल सौ॥



कर्ण और भीमसेन ।

बाणों की लगातार आमद; पैदल बेचारे "भीम" खड़े ।
अन्त में यही परिणाम हुआ; वे घायल होकर लोट पड़े ॥
अब "धर्मराज" की बारी थी; आगे आये, शर छोड़े गये ।
लेकिन "कर्ण" की कुशलता से;बीच ही बीच में तोड़ गये॥
फिर कहा'कर्ण'ने–'क्यों धर्मज!;'अर्जुन'को कहां छिपायाहै?।
भारत का समर रचाया है; गुड़ियों का खेल बनाया है ?॥
अपने आगे बहुरुपिया बन; बातों का ढेर लगाता है ।
जब ख़ासा मौक़ा आता है; तो नहीं सामने आता है ॥

तुम पर पौरुष क्या दिखलायें?;माला तक के अधिकारी हो।
हां "पार्थ" सामने आ जाये; तो इच्छा पूर्ण हमारी हो॥
यों कहकर की, धर्म पर; नाग-पाश-संचार।
बांधा चाहा"कर्ण"ने;दी बढ़ कर हुंकार॥
"लो,नृप को लिये जा रहा हूँ;जो आकर इन्हें छुड़ा जाये।
वह मुझको जीत जाय निश्चय;और विजय पत्रिका पा जाये॥
श्री"धर्मराज"ने यह देखा; तो गरुड़-बाण सन्धान किया।
अपना आप ही बचाव किया;उस नाग-पाश को काट दिया॥
भट "धृष्टद्युम्न"फिर से आया;और"कर्ण"वीरसे लड़ने लगा।
बादल की भांति 'घटोत्कच' भी;सेना के साथ उमड़ने लगा॥
उस मायावी ने चारों दिश; ऐसी कुछ माया फैलाई।
पृथ्वी-आकाश समान हुए; कुछ भी न किसी से बन आई॥



घटोत्कच का पराक्रम।

सारे कौरव-दल पर सहसा; पत्थर और पेड़ छूटते हैं।
दब जाते हैं, पिच जाते हैं; बाँहें और शीश टूटते हैं॥
"दुर्योधन" पर वह मार पड़ी;हाहा करके बिलखाने लगा।
आँखें मूँद कर, झुका गर्दन; "हा कर्ण!कर्ण!"चिल्लाने लगा॥
'ओ भैया ! कर्ण!शीघ्र दौड़ो; वह वज्र काममें लाओ बस।
मरता है वरना दुर्योधन; इस खल से प्राण बचाओ बस॥

कहा "कर्ण" ने—"आज को; नहीं वज्र का काम।
कल होगा इस वज्र से; "कर्ण-पार्थ—संग्राम॥"

जो आज "घटोत्कच" के पीछे; यह वज्र कहीं संचारूँगा।
तो परम-शत्रु,भारत का भट;वह पार्थ किस तरह मारूँगा?॥"
कुरु-पति बोला-'जब आज कहीं;मेरा ही खुद संहार हुआ।
तो "अर्जुन" का बधना तो क्या?;सारा भारत बेकार हुआ॥
मेरे ही लिये उपाय हैं सब; जब मैं ही नहीं, तो रण कैसा?।
मेरी ही रक्षा हो न सकी; तो महा—वज्र का प्रण कैसा ?॥
इच्छा पूरी कर कर्ण आज; उस महा—वज्र का इच्छुक हूँ।
भिक्षा दे, मेरे दान-वीर!; मैं प्राण—दान का भिक्षुक हूँ॥

विवश कर्ण ने वज्र को; किया शीघ्र सन्धान।
क्षण ही भर में हो गया; उस भट का अवसान॥
वज्र निकल कर वहां से; गया इन्द्र के पास।
माया मिटकर हो गया; चारों ओर प्रकाश॥
इसी तरह संग्राम में; होने आई शाम।
चले शिविरको लौटकर;"श्री-पति"माया—धाम॥
वीर—पुत्र के शोक में; "भीम"रहे अकुलाय।
मातु "हिडम्बी"गिर रही; बार बार बिलखाय॥

दीनबन्धु इस हाल पर; बोले करुणा–बैन।
"भीम-भ्रात! क्या पाओगे ?; यों होकर बेचैन॥

प्रिय-पुत्र "घटोत्कच" का मरना; आदर्श-मृत्यु कहलायी है।
समर–स्थल में देश के लिये; उस भट ने देह लगायी है॥
यह पछतावा, यह करुणा-स्वर; यह आँसू तुम्हें न फबते हैं।
वीरों के खेद, वीरता से; वीरों के ऊपर पड़ते हैं॥
अकुलाहट-मोह-त्याग सारा; दुश्मन का दमन करो भैया!।
अबला की तरह शिबिर ही में; इतना मत रुदन करो भैया!॥

गायन

बल-वीर! वीरता में करुणा न दिखाओ!
रण–धीर! रणाङ्गन में रण-साज सजाओ॥
अये त्याग–मूर्त्ति! त्यागमें यह राग न लाओ।
निर्मोह! क्रोध–काल में मत मोह जमाओ॥
वीरों की वीर–अञ्जली आंसू नहीं होते;
उस अञ्जली को रक्तकी धारायें बहाओ।
धाओ, सुधीर! भीरुता शोभित नहीं होती।
इस शान्ति के लिये उठो, "रण-गङ्ग" नहाओ॥

भीम–वीर के शोक में; हुआ क्रोध–सञ्चार।
हाथ गदा पर फेरकर; बोले बल-आगार॥

"हे दीनबन्धु! हे वनवारी!; अब आंसू नहीं बहाऊँगा।
इन अश्रु–बिन्दुओं के बदले; आंसू शत्रु के गिराऊँगा॥
माधव! यदि आज कृपा पाऊँ; तो महा-शक्ति-धर मर्दन हो।
इस वीर पिता के हाथों से; उस वीर–पूत का तर्पण हो॥"

चितय कृपा-कटाक्ष कर;"माधव" भट की ओर।
मनो त्रिलोकी-धाम ने; दिया त्रिलोकी ज़ोर॥
इस ओर "पार्थ" को धर्मराज; ताना देकर शरमाते हैं।
एवं अपने सब ज़ख्मों की; मरहम-पट्टी करवाते हैं॥
"अर्जुन! अर्जुन! बेकार दिया; सारी सेनाका भार तुझे।
तेरे होते, मेरी यह गति; कोटिशः बार धिक्कार तुझे॥
भला "पार्थ" को था कहां!; यह सुनना स्वीकार।
उसी समय चिल्ला उठे-"रहने दो सरकार!॥



धर्मराज और अर्जुन।

जो "केशव" मुझे न ले जाते; "द्रोणी" के आगे लड़ने को।
तो महाराज! कब मौक़ा था!;उस वीर 'कर्ण'के बढ़ने को॥
नाथ के हुक्म से सेवक को; दूसरी ओर भिड़ जाना पड़ा।
इसलिये मेरे ना होने पर; भगवन को कष्ट उठाना पड़ा॥

अब क्षमा कीजिये हे भाई !; कल प्रात दृश्य दिखलाऊँगा ।
इन ज़ख्मों पर उन दुष्टों की; खूनी मरहम चढ़वाऊँगा ॥
"दयासिन्धु" ने "पार्थ" को; किया शान्त तत्काल ।
गमने शयन-निकेतमें; भक्ति-सहित गोपाल ॥
फिर सुबह हुआ, धौंसा बाजा; सेना साजी, सूरज निकला ।
बढ़ चले वीर, घमशान हुई; प्रारम्भ हुआ रण-क्रम पिछला ॥
क्रोधातुर होकर कर्ण वीर; चिल्लाया-"अर्जुन" आगे आ ।
यह साधारण ही अस्त्र देख; सामने तनिक हतभागे ! आ ॥
यदि आज छिपे इस भारतमें; तो है सुरेन्द्र की आन तुझे ।
यदि मैं भी पीठ दिखा जाऊँ; तो है दिनेन्द्र की आन मुझे ॥
"शल्य" विहँस कहने लगा-"धन्य! धन्य! महराज ! ।
बात बनाते हंससे; कहाँ काग को लाज ? ॥
यह व्यंग-शब्द सुन कर्ण वीर; क्रोधित हो दांत चबाता है ।
"क्यों रे पापी ! पार्थ को हंस; और मुझे काग बतलाता है ॥"
शल्य ने कहा-"सुनिये भटवर !; छोटी सी गाथ सुनाता हूँ ।
अपने शब्दों की पुष्टि-हेतु; एक ही प्रमाण बताता हूँ ॥
"हंसोंका कुछ गिरोह मिलकर; जब पार सिन्धुके जाने लगा ॥
तो एक काग भी उनमें मिल; अपना साहस दिखलाने लगा ॥
समझाया उसको हंसों ने-"सागर न पार कर पाओगे ।
थक जाओगे, गिर जाओगे; बे कारण प्राण गवांओगे ॥"
कौवा बोला-"क्या कहते हो ?; मैं तुमसे आगे जाऊँगा ।
आप भी पार हो जाऊँगा; तुमको भी पार लगाऊँगा ॥"
क्या था ? उड़ चला साथही में; दो चार कोसको बल भी था ।
आखिर वे सभी हंस ही थे; वह बेचारा कौवा ही था ॥

नीचे समुद्र, ऊपर ख़ाली; क्या करे ? कहाँ आश्रय पाये ?।
बाजू काँपे वह चिल्लाया; हंसों के झुण्ड खिल खिलाये ॥
धर लिया पीठ पर कौवे को; रख दिया डाल पर उसे कहीं ।
इसलिये मुझे कह आया है; सरवरी सभी की ठीक नहीं ॥
जिस अर्जुन ने समुद्र बांधा; केवल बाणों ही बाणों से ।
उसके आगे तुम जाते हो; पूछो तो थोड़ा प्राणों से ॥
राजा "विराट" के यहाँ हुआ; जिस समय युद्ध क्या आप न थे ? ।
गन्धर्व ने नृप को बाँध लिया; जिस समय क्रुद्ध क्या आप न थे ॥

"कर्ण" क्रोध में छा गया; बोला—"बस नादान ! ।
दिखला देगी हुनर को; मेरी आज कमान ॥

तुम अपनी आँखों देखोगे; ज्यादा संवाद न उलझाओ ।
शीघ्र से शीघ्र मेरे रथ को; "अर्जुन" के आगे पहुँचाओ ॥"
"शल्य" ने चलाया रथ आगे; "भीम" ने उसी क्षण रोक लिया ।
"कर्ण" ने बाण का उत्तर दे; बाण से बाण को काट दिया ॥
तब तक "अर्जुन" भी आ पहुँचे; बोले-"तुम भ्रात! यहाँ न लड़ो ।
पीछे जाओ, सेना देखो; "दुःशासन" से संग्राम करो ॥
सेना-नायक की समता अब, मेरे हिस्से में आई है ।
तुम रहने दो, आज के लिये; मेरी कर्ण की लड़ाई है ॥
"कर्ण" ने कहा—"माँ बाप को तो; भिक्षुक करके पहुँचाया है ।
बेटा कमान खींच कर आज; रजपूती करने आया है ॥
कल दिन भर प्राणों के भयसे; मुँह तलक नहीं दिखलाया है ।
निःशस्त्र समझ कर आज मुझे; क्यों पार्थ! सामने आया है ?॥

गायन

सिंह के पैर में ज़ँजीर बाँध रक्खी है।
क़त्ल को तब कहीं शमशीर बाँध रक्खी है ॥
भेड़ को घेर के गड्ढे में डाल रक्खा है।
वाह रे वीर ! यह तैशा सँभाल रक्खा है ॥
जान ली, जान ली, अये नीच ! सुपूती तेरी।
सुन रहा आज है संसार यह तूती तेरी ॥"

कहा "पार्थ" ने–"चुप रहो; सीधी करो कमान।
अभी प्रकट हो जायगी; अपनी अपनी आन ॥"

इतना कहकर धन्वा खींचा; बाणों की झड़ी लगा डाली।
"कर्ण"ने बाण से बाणों की; क्षण भर में ख़ाक उड़ा डाली ॥
दोनों जानिब से इस प्रकार; बाणों का जाल बिछाया गया।
यक नया लोक तैयार हुआ; सूरज बीच में छिपाया गया ॥
"अर्जुन"ने"अग्नि-बाण"फेंका; चहुँ ओर अग्नि-सञ्चार हुआ।
जल गये वस्त्र, कुछ अंग-रंग; सेना में हाहाकार हुआ ॥
"कर्ण" के"मेघ-शर" चलते ही; सारे अंगारे बुझने लगे।
रथ, घोड़े, पैदल भीग गये; मुर्दे पानी में बहने लगे ॥
"पार्थ"ने चलाया "वायु-बाण;" सारे नीरको सुखा डाला।
रथ पर की ध्वजा उड़ा डाली; घोड़ों का वेग हिला डाला ॥
"कर्ण"का चला जब'सर्प-बाण'; 'पार्थ'ने 'मयूर-बाण' छोड़ा।
बाणों पर बाणों का जोड़ा, बाणों ने बाणों को तोड़ा ॥

गायन

बानन उड़ानौ बान, बानन छिपानौ भान;
बानन बिलानौ मेघ, बानन बिनावरी ॥
बानन झंकार बात, बानन ना डुलै पात; ।
बानन बरसात पै, बानन तपावरी ॥
बानन बनैले ब्याल, बानन ब्यालन शाल; ।
बानन झुकाव बीच, बानन तनावरी ॥
दोऊ बान-धारी भट, आन-बान धारी दोउ;
दोऊकी बानन भई; बानन बराबरी ॥

"कर्ण–वीर" के पास था; "चुंचुक" नामी बाण ।
किया अन्त में धीर ने; वही अस्त्र सन्धान ॥

चुंचुक बोला–"अये कर्ण ! शीघ्र; मुझको कमानसे जाने दे ।
फाड़ लूँ फफोले पहिले के; वह पहिली आग बुझाने दे ॥
"कर्ण" ने कहा-"जाओ, लेकिन; आना "अर्जुन" का भक्षण कर ।
"चुंचुक" बोला–पार्थ ही नहीं; दिखलाऊँ जौहर "केशव" पर ॥

प्रकट हुआ प्रत्यक्ष–शर; महा–दीर्घ–आकार ।
एक प्रलम्बी श्वाँस भर; चला मार फुंकार ॥

"चुंचुक" ने फण को फैलाकर; आकाश में सूर्य्य छिपाया है ।
भादौं का बादल छाया है; या "राहु" दूसरा आया है ॥
"अर्जुन" ने "माधव" से पूछा; "रवि-नन्दन" की माया कैसी ? ।
"केशव" पर ही जादू कैसा ?; सूरज ही पर साया कैसी ? ॥

'केशव' बोले–"खाण्डव-वनकी; उस नागिन का यह लाला है।
जिसको उड़ान के समय वहाँ; मार कर आग में डाला है॥
यह माँ का वैर साधने को; बाण के रूप में आया है।
अपने फण को फैला करके; सूरज का तेज छिपाया है॥"

"चुंचक" पर भट पार्थ ने; छोड़ लाखों बाण।
किन्तु; हुए बेकार सब; गिरि की बूँद समान॥

जो बाण यहाँ से जाते हैं; वे टूट भूमि पर आते हैं।
"अर्जुन" के सारे बल–विक्रम; "चुंचक" पर व्यर्थ दिखाते हैं॥
इतने में "चुंचक" भी बोला–"बस सावधान हो जा अर्जुन!।
जागा है बहुत दिनों से तू; अब मित्र-सहित सो जा अर्जुन!॥"

"चुंचक" टूटा "पार्थ" पर; ज्यों ही मुँह फैलाय।
"धर्मराज" सेना–सहित; गये वहीं सिसकाय॥

चिल्लाये "धर्मराज" नीचे; "भगवान! बचाओ अर्जुन को।"
डकराये ऊपर से सुर–पति; "हनुमान! बचाओ अर्जुन को॥
यदि इसी एक क्षण के अन्दर; रथ नहीं छिपाया जायेगा।
तो "अर्जुन" मारा जायेगा; और दाग़ तुम्हें भी आयेगा"॥

"बजरंगी" के भार से; रथ पहुँचा पाताल।
पर "चुंचक" ने झपट कर; झण्डा लिया निकाल॥

बस उसी पताका को लेकर; "कर्ण" के पास वापिस आया।
पाण्डव–दल धाड़ें मार उठा; कौरव–दल में जय जय छाया॥
पूछा "कर्ण" ने–"कहो चुंचक!; निकला शत्रु का दिवाला है।
'चुंचक' बोला–"हाँ कृष्ण–सहित; अर्जुन मैंने खा डाला है॥"
'शल्य' ने कहा–"मिथ्यावादी !; क्यों झूठ मूठ बहकाता है?।
विश्वम्भर को, जगदाधर को; अपने पेट में बताता है॥

पापी ! वह दामोदर, जग--धर; जिसके कि उदर में आयेगा ।
वह वहीं मुक्त हो जायेगा; लौट कर न मुँह दिखलायेगा ॥

"शल्य" यहां दे रहा था; "चुंचक" को फटकार ।
वहां भूमि से रथ-सहित; प्रकटे जगदाधार ॥
उस रोती मण्डली में; छाया जय जय कार ।
वहां "कर्ण" कहने लगा; "चुंचक" को दुतकार ॥

"चुंचक !चुंचक !क्यों झूठ मूठ; मुझको धोखा दिलवायाहै? ।
वह देख सामने "अर्जुन" का; अर्जुन-समेत रथ आया है ॥
माया--पति से माया करना; बेमौत, मौत बुलवाना है ।
लीला--धर पर लीला करना; अपनी लीला करवाना है ॥"
"चुंचक"बोला--"कृष्ण ने मुझे; बेशक धोखे में डाला है ।
पहिले रथ नीचे दबा दिया; फिर ऊपर उसे निकाला है ॥
फिर से मेरा सन्धान करो; तो अबसे जौहर दिखलाऊँ ।
सारी सेना भक्षण करके;"कृष्ण"और"पार्थ"को खाजाऊँ॥"
"कर्ण" ने कहा-"कोई योधा; छूटा शर फिर न उठाता है ।
जो वार हाथ से निकल गया; वह बारम्बार न आता है ॥
तुमने जो झूठ कहा मुझसे; उसका निश्चय फल पाओगे ।
इस कपट--वचन के कारण तुम; अये नाग!नर्क में जाओगे ॥

"चुंचक" ने भी क्रोधमें; कहा-"कर्ण ! बल-धाम ।
तेरा भी संग्राम में; होगा काम तमाम ॥"
"कर्ण" तथा भट "पार्थ" का; हुआ घोर-घमशान ।
वहां "दुःशासन-भीम" का; कहना है आख्यान ॥

दोनों मद--मस्त हाथियों से; रथ छोड़-छोड़ भिड़ जाते हैं ।
"दुःशासन" तेग़ चलाता है; बल--धारी गदा घुमाते हैं ॥

"भीम"ने कहा--"ओ दुःशासन!;बस आज न जीता जायेगा।
उस पतिव्रता के केशों में; यह रक्त भराया जायेगा॥
वह छल का पांसा आज उठा; देखूं अब कितना कौशल है?॥
मेरा यह सच्चा पौरुष है; या तेरा सच्चा छल--बल है।"
"दुःशासन"बोला--"रहने दे;उस रोज़ न बल दिखलाया था॥
जिस दिन द्रौपदी नग्न करके; दरबारी नाच नचाया था।"
"भीम" ने कहा--"बस वही नाच; नाचेगा तेरी आखों में॥
श्री "धर्मराज" की वही शान्ति; आदर्श बनेगी लाखों में।
जो कर्म--वीर हैं, धर्म-वान; वे वचन--बद्ध ही रहते हैं।
पहिले करके दिखलाते हैं; पीछे कुछ मुँह से कहते हैं॥"

इतना कह कर परस्पर; भिड़ बैठे बलवान।
पड़ने लगीं शरीर पर; चोटें वज्र समान॥

गायन

उछलत अमान, धर धर कमान; ।
कर कर गुमान; डोलत उद्दण्ड॥
खटकत कृपान; पटकत जवान;
सटकत अजान; चटकत ब्रह्मण्ड।
झुक परत वीर; बिड़रत अधीर;
निसरत समीर; बिसरत वर बंड॥
जय जय पुकार; कहुँ मार मार;
बह रुधिर धार, जनु सरि तट छंड।

जब"भीम-वीर"की गदा उठी; तो झुकी तेग़"दुःशासन"की।
जब पड़ी चोट पर नई चोट; तो रुकी तेग़ "दुःशासन"की॥

जंघे पर दांव लगा फ़ौरन; दुष्ट को भीम ने दे मारा ।
फिर गदा मार दो चार बार; हुंकार मार, यों ललकारा ॥
"जा नीच!" "द्रौपदी-केश" पकड़; फिर भरी सभा में नचवा दे ।
ले उठा ! छली ! फिर से पांसा; भाई को वनमें पहुँचा दे ॥
मानी ! उन बालों के बदले; अब बाल २ खिंचवा दूँगा ।
उन बदख़्यालों के उत्तर में; यह खाल खाल खिंचवा दूँगा ॥
मद मत्त ! महा-मद के एवज़; मृत्यु का मद्य पिलवा दूँगा ।
ओ भुज प्रलम्ब ! यह भुजा तोड़; देवी के केश नहा दूँगा ॥"

"दुःशासन" कहने लगा; " कर न भीम ! अभिमान ।
मैं ही वह बलवान हूँ; तू ही वह बलवान ॥

उन दिनों हमारी बारी थी; अब आज तुम्हारी बारी है ।
हमने द्रोपदी उघारी की; तुमने वह कसर निकारी है ॥

गायन

वक़्त है दाव का, और--दाव है अपना अपना ।
कर्म-गति एक है, पर भाव है अपना अपना ॥
सृष्टि में भीम ! भला क्या नहीं उपस्थित है ?-
चाव किसको नहीं ?-हां चाव है अपना अपना ।
कर्म अपकर्म शुभाशुभ सभीसे होते हैं;
"विनीत" सौख्य या पछिताव है अपना अपना ॥"

बदल रहा पापी पड़ा; भांति भांति के भाव ।
कहा "नकुल" से भीम ने; 'नकुल ! शिबिरमें जाव ॥

कह देना "देवि-द्रौपदी" से; प्रण-अवसर खोनेवाला है ।
दावादार का गर्म लोहू; अब ठण्डा होने वाला है ॥

आये, रक्त से नहा जाये; यह अनुष्ठान पूरा कर दूँ ।
इस खल का खण्ड २ करके; रण-खण्ड उदण्डों से भरदूँ ॥
जब तक न "द्रौपदी" आयेगी; यह नीच दबाये रक्खूँगा ।
जब तक न केश नहला दूँगा; संग्राम रुकाये रक्खूँगा ॥"

"नकुल" शिविर में पहुँच कर; बोले-"जय भगवान !
भद्रे ! तेरे वह वचन; प्रभु ने किये प्रमाण ॥

द्रुपदे ! भद्रे ! हे आर्य्य-सुते!, ईश्वर ने समय दिखाया है ।
रण-गंगा में नहलाने को; भाई ने तुम्हें बुलाया है ॥
अभिमानी नीच "दुशासन" को; घुटने के तले दबाया है ।
यह शुभ-सन्देश सुनाने को; भट ने मुझको पहुँचाया है ॥
शीघ्र ही चलो, यह अवसर है; अपने केशों को नहला लो ।
उस महा-नीच के लोहू से; यह छूटी वेणी बँधवा लो ॥"

"पाञ्चाली" हँसती हुई, पहुँची भट के पास ।
बोली-"प्रियतम! प्राण-धन; तेज-पुञ्ज, बल-राशि ! ॥

राजा "विराट" के यहां तुम्हीं; मेरी लज्जा रख लाये हो ।
भारत में तुम मेरे निमित्त; अवतार धार कर आये हो ॥
"भीम" ने दबा कर पापी को; यों कहा-मान हो, जिस जन को ।
वह आज मेरे आगे आये; ले जाये, छीन दुशासन को ॥
पाण्डव-दल में, कौरव-दल में; आकाश में, अथवा भू-तल में ।
त्रिभुवन में और सब लोकों में; वायु में, अग्नि में, या जल में ॥
यदुवंशी, या यदु-वंश-नाथ; जो भी लड़ने के लायक हों ।
वह आयें, अपना ज़ोर करें; इस खल-नीच के सहायक हों ॥
हे चन्द्र ! सूर्य्य ! हे इन्द्र ! वरुण !; हे देव ! पिशाच! नज़र आओ ।
सामर्थ्य अगर हो कुछ तुममें; तो आओ, इसे बचा जाओ ॥

गायन

हां, वीरो ! हां, देवो !; आओ, बचाओ ।
यम-रूप आज "भीम" है;कुछ शक्ति दिखाओ ॥
त्रैलोक आज आयें, बल-बुद्धि दिखायें;
हार जाँय, लौट जाँय; मुँह की वह खायें;
आगे न फिर आयें ।
हिले व्योम काँपे मही; कर दूँ, दल-मल-खण्ड ।
आज एक ही बार में; निगल जाऊँ ब्रह्मण्ड ॥
सूरत न दिखाओ; बस जान बचाओ-
सूरत न दिखाओ-बस जान बचाओ-
धीर, वीर, भट-शरीर-मीर भीम से; हां.........
झगड़ा न बढ़ाओ ।

भरी "भीम" ने इस तरह; जब भारी हुंकार ।
धन्वा ले कर हाथ में; काँपा "इन्द्र-कुमार" ॥

तेजस्वी, वीर, धनुर्धारी; सारथी मित्र "माधव" ऐसे ।
फिर वीर-घोषणा भरी हुई; होती हुंकार सहन कैसे ? ॥
खींची कमान, रख लिया बाण; तान कर उसे छोड़ा चाहा ।
थर्राया कौरव-पाण्डव-दल; चिल्लाये तीन लोक "हाहा" ॥
"केशव"ने धन्वा पकड़ लिया; बोले-"अर्जुन! क्या करते हो?।
अपने ही हाथों, अपने ही; भाई की हत्या करते हो ॥"
'पार्थ'ने कहा-"बस, रहो नाथ !;यह नाद नहीं सुन सकता हूँ।
यक दीन हीन फ़रियादी की; फ़रियाद नहीं सुन सकता हूँ ॥

ना कुछ "दुःशासन" को दबाय; इतनी बढ़ कर कह डाली है।
क्या समझ लिया है ? भाई ने; पृथ्वी वीरों से ख़ाली है ॥
जब कोई वीर घोषणा दे; लड़ने के लिये पुकार करे।
तब भी न जोश में आय खून; तो ऐसा योधा डूब मरे ॥
वह भाई नहीं, आप ही हों; इस नाद पै निश्चय जाऊँगा।
मारूँगा, या मर जाऊँगा; पर इज़्ज़त नहीं गवाऊँगा ॥"

कहा सच्चिदानन्द ने;—"पार्थ ! रहो ख़ामोश।
है वास्तव में यहीं तक; वीर भीम का जोश ॥

मैंने आज के लिये उसको; "नरसिंह-शक्ति" दे डाली है।
उसकी समता को वास्तव में; पृथ्वी वीरों से ख़ाली है ॥
दर असल कहीं त्रैलोक आज; भटवर के आगे जायेंगे।
तो मैं विश्वास दिलाता हूँ; वे जीते लौट न पायेंगे ॥
इसलिये सखा ! ख़ामोश रहो; उस पापी को मर जाने दो।
भूतल का भार घटाने दो; यह अनुष्ठान निबटाने दो ॥

"माधव" के उपदेश पर; हुए "पार्थ" ख़ामोश।
वहां "भीम" की मार से; दुष्ट हुआ बेहोश ॥
किलकिलाय झकझोर झट; मारी वीर-दहाड़।
तले दाब, घुटना लगा; बाजू दिये उखाड़ ॥

उस अधम--नीच—पामर--तनसे; लोहू की धारा जाने लगी।
पति-व्रता-पुण्य-हृद-पाञ्चाली; भर भर कर रक्त नहाने लगी॥
भू-मण्डल, दशों दिशाओंसे; जय जयकी गूँज सुनाने लगी।
वह कृष्ण—अनन्या करुणा भर; 'गोविन्द-गीत' यों गाने लगी ॥

गायन

जय लज्जा-पति वनवारी; जय राधा-पति गिरधारी ।
सभा बिसूरत भये सहाई; प्रकटे अम्बर-रूप कन्हाई;
लाज बचाई जय यदुराई !; सारी कीन्ह पहारी ॥
विपिन बसत प्रभु मोहिं उबार्‍यो ।
"दुर्वासा" भोजन पन पार्‍यो ॥
अन्न सीत भण्डार पसार्‍यौ, भरि भरि करि जेवनारी ।
रण-थलके प्रण राखनेवाले, जय जय गोपीधन जनकारी॥
जन "विनीत" की लाज बचा ले; डूब रहौ मँझधारी ।

हो गई प्रतिज्ञा-पूर्ण बन्धु !; यों "पाञ्चाली" बेचारी की ।
निभ गई बात, इस तरह भ्रात !; भारत में अबला नारी की॥
कट गई नाक, हो गई मृत्यु; "दुःशासन" अत्याचारी की ।
सब मिलकर एक साथ बोलो; "जय जय श्रीकुंज-बिहारी की॥"

वहां "भीम" ने कर दिया; खलका काम तमाम ।
यहां "कर्ण" और "पार्थ" में; हुआ घोर-संग्राम ॥

दोनों समान बलवान-वीर; दोनों गुमान-गर्वीले हैं ।
दोनों कृत-कार्य्य-कटीले हैं; दोनों ही छैल छबीले हैं ॥
बाण पर बाण, चोट पर चोट; काट पर काट दिखलाता है ।
मार पर मार, धार पर धार; केवल धर-मार सुनाता है ॥

गायन

इस ओर से "अर्जुन" ने; झुकाई जहाँ कमान ।
उस ओर से भट "कर्ण" ने, धन्वा को लिया तान॥

बाणों के गुज़रने की, वह राह रुक गई;
हर यक कमां से ता—ब—जबाँ बा क़तार बान।
यक ख़ास न ज़ारा है; दोनों के रथों का;
चलती हैं, चार चरखियाँ मैदान के दर्म्यान॥
कितने ही शाह नामदार नेस्त हो गये;
सालार चित पड़ा है, औंधा पड़ा दीवान।
मैदान में टकरा रहीं, दो ख़ास बिजलियाँ;
उस ओर अग्नि—बाण, यहाँ नाथ की मुसकान॥
पहिये रथों के तैर रहे, ख़ून के दरिया;
गोया बँधे हुए हैं; बहते हुए मचान।
जो एक घड़ी पहिले, भरते थे दहाड़ें;
वह एक घड़ी बाद, बने बैठे हैं मशान॥
"गोविन्द" तुम्हारे सिर; आयेगा न कुछ वार;
बैठे रहो मैदान में, करते रहो गुण—गान।

छिद गये सहसों शर—समूह; संकट था "शंकर—गौरी" पर।
बह चले अंग से रक्त—बिन्दु; प्रियतम की पीत—पिछौरी पर॥
"अर्जुन" के बाण—वेग—द्वारा; हट गया हज़ार क़दम रथ भी।
तब भी क्रोधातुर भटवर ने; ढक दिया शरों से पारथ भी॥
"कर्ण" के बाण से "अर्जुन" का; ढाई पग पीछे रथ आया।
यह शक्ति देख कर—'श्रीपति' के; मुखपर भी 'वाह-वाह' छाया॥
"निश्चयनिश्चय, बिलकुल निश्चय; भारत-पति-राखनहार हो तुम।

दानी, मानी, शूरेन्द्र, धीर; सच्चे सैनिक–सरदार हो तुम ॥
बेशक अये भारत–वीर–पूत !; भारत में नाम कमाया है ।
वीरों में पहिला बीर–रत्न; "कुन्ती–देवी" ने जाया है ॥
होकर निशस्त्र भी धन्य वीर !; इतनी महिमा दिखलाई है ।
बलिहारी तेज-पराक्रम पर; इस बल पर लाख बधाई है ॥"

सुनी प्रशंसा "कर्ण" की; बढ़ा "पार्थ" को क्रोध ।
श्री पति–मायाधाम से; यों बोले सम्बोध–

"श्री महाराज ! लीलाधारी !; पक्ष तो हमारी लेते हैं ।
लेकिन थोड़ी सी विजय देख; शत्रु को बधाई देते हैं ॥"
माधव बोले–"इसका कारण; पहिले तुम को बतलाया है ।
"कर्ण"की वास्तविक–शक्ती पर;'वाह वा'मुझे कह आया है॥"

गायन

दानियों को भला,किस वक्त ? कहाँ ? क्या न मिला ? ।
नहीं मिला, तो नहीं का कहीं मौक़ा न मिला ॥
याद है, आज भी, हरिचन्द तुम्हारी गाथा;
राज्य दे कर के भी क्या राज्य तुम्हारा न मिला ।
याद है, पुत्र का बलिदान चढ़ाने वाले !–
क्या तुम्हें फिर से वही लाड़ला बेटा न मिला ॥
खोल दो झोलियाँ "गोविन्द" गरीबों के लिये; ।
ज़िन्दगी में यह समय,फिर मिला,मिला न मिला ॥

चुप हुए पार्थ, फिर बाण चले; मैदान रहे लाखों योधा ।
थे अर्द्ध-प्राण लाखों योधा; निष्प्राण पड़े लाखों योधा ॥
चुपचापचकितकुछथकितहुए;कुछव्यथित "हाय!" चिक्कार रहे ।
जय कार कहीं पर गूँज रहीं; "हाहा" भट कहीं पुकार रहे ॥

कहा "कर्ण" ने--"कीजिये; अब रक्षा यदुनाथ ! ।
एक हाथ में जायगा; भट "अर्जुन" का माथ ॥

था नील-बाण कर्ण के पास;उसको ज्यों ही सन्धान किया ।
"अर्जुन"का हृदय लक्ष्य करके;कानतक तानकर छोड़दिया ॥
बज्र की भांति वह बाण चला; विह्वल सारे सरदार हुए ।
"पार्थ" ने अनेक बाण छोड़े; लेकिन बिलकुल बेकारहुए ॥

देखा "करुणागार " ने, कठिन-बाण विकराल ।
तत्क्षण रथ को उस जगह; धांस दिया "गोपाल" ॥

इस कारण बाण हृदय तजकर; "अर्जुन"का मुकुट तोड़आया।
भट का अभिमान दबा आया; दबते के प्राण छोड़ आया ॥
"कर्ण"ने कहा-"अये शल्य-राज!;अब ऐसा रथ हांका जाये।
सारे दल में रथ भ्रमण करे; पर रेख न पृथ्वी पर आये ॥
जब मैं'विराट-पुर'में जाकर; 'गौ-हरण-कार्य्य' करवाने लगा ।
"सहदेव"जिस समय भय खाकर;"हाहा २" चिल्लाने लगा॥
"मैथुनि"ने मुझको उसी समय;रथ रुकने का अभिशाप दिया।
एवं एक ही शाप द्वारा; भारत का भी संकेत किया ॥
वह शाप याद आगया मुझे; रह रह कर आत्मा दहलाये ।
भैया ! कैसे होशियार रहो; पृथ्वी में रथ न अटक जाये ॥

"शल्य राज" ने उसी बिधि; हाँका रथ चहुँ ओर ।
फैल गया नभ-खण्डतक; "मार-मार" का शोर ॥

गायन

फुंकरत बाण ❋ खटकत कृपाण ।
जुट जात ज्वान ❋ गज्जत गुमान ॥
जित भिरत भीम ❋ तित झुरत नीम ।
सहदेव शूर ❋ मनु करत घूर ॥
कहुँ रुण्ड-मुण्ड ❋ कहुँ हस्ति-शुण्ड ।
कुण्ठित-कृपाण ❋ निर्वीर यान ॥
द्वै-खण्ड-अश्व ❋ डगमगत विश्व ।
रक्ताम्बु-पूर्ण ❋ भट-सेन-पूर्ण ॥
जनु सरित लाल ❋ जल-जिड-नृपाल ।
जलयान-देह ❋ भैरव स-नेह- ॥
निज सैन्य-संग ❋ नृत्यत अभंग ।
सिर-मुकुट-पाग ❋ ले चलत काग ॥
भू-तरु-पिशाच ❋ लै लै नराच-
छेदत कपाल ❋ डोलत शृगाल ॥
"गोविन्ददास" ❋ प्रभु-चरण-आश ।

कहा नाथ ने "पार्थ" से-सावधान बलवीर ! ।
अब कराल-कौतुक-करण; चला "कर्ण" पर तीर ॥

"कर्ण" के बाण बज्रकी तरह; रथ की धिज्जियाँ उड़ाते हैं ।
जर्जर हो गई देह मेरी; घोड़े न खड़े ठहराते हैं ॥"

"अर्जुन" ने आज्ञा पाते ही; ऐसे बाणों को छोड़ा है।
मुँह मोड़ा "शल्य" सारथी का; घोड़ों का जोड़ा तोड़ा है॥
रुक गया "कर्ण" का रथ सहसा;सारथी विचारा हार गया।
धन्वा सन्धान बाण खींचे; दाईं दिश "इन्द्र-कुमार" गया॥
"शल्य" ने कहा-"हे कर्ण बीर!;कहिये-अब क्या उपायकीजे।
"कर्ण" ने कहा-"क्या चिन्ता है?; योंही रथको रहने दीजे॥"

उसी जगह से कर्ण ने; की बेहद बौछार।
हुए "कृष्ण-अर्जुन"-सहित;जर्जर 'पवन कुमार'॥

जिस ओर "पार्थ" भट जाता है; बाणों से चैन न पाता है।
चौ तरफ़ा एक "कर्ण" द्वारा; बाणों का व्योम दिखाता है॥
लेकिन होनी ही होनी थी; रथ पर से "कर्ण" उतर आया।
उस अटके हुए महा-रथ के; पहियों को उसने उकसाया॥

अवसर पाकर नाथ ने; कहा—"पार्थ ! ले बाण।
इसी समय हो सकेगा; योधा का अवसान॥

"पार्थ" ने कहा-"हे न्याय-मूर्त्ति !; यह तो अन्याय कहाता है।
निःशस्त्र-विपक्षी पर भगवन !; कायर हथयार चलाता है॥"
'माधव' बोले-"जिस समय पार्थ!; 'अभिमन्यु' इन्होंने मारा था।
उस समय किसी भी पापी ने;अन्याय न वहाँ विचारा था॥
तुम न्याय-नीति पर डटे रहो; वे तुमको डाट दिये जायें।
तुम अपनों से भी कटे रहो; वे तुम पर काट किये जायें॥
तुम "धर्म-पक्ष" से लड़ते हो; बस यही न्याय-निबटारा है।
इस समय सिर्फ़ शत्रुका शीश; बाणों का लक्ष्य तुम्हारा है॥

इसलिये न्यायकी इच्छा हो; तो अर्जुन ! रणसे लौट चलो ।
जो"धर्म-विजय"की इच्छा हो; तो रिपुका संहारण करदो ॥

गायन

शत्रु-जय का पार्थ ! आज, उपाय कोई और है ।
न्याय कोई और है, अन्याय कोई और है ॥
"क्यों" तथा "क्या" के लिये; स्थान यह समुचित नहीं;
इस विषय में तर्क का, समुदाय कोई और है ।
डर न, हायों के लिये, उनका विभिन्न प्रभाव है;
"हाय" कोई और है; "अप-हाय" कोई और है ।
शब्द मेरे, हाथ तेरा, प्रेरणा है तीसरी;
जान ले, संकेत-मात्र; सहाय कोई और है ॥

आज्ञा पाकर पार्थ ने; तत्क्षण बाण चढ़ाय ।
एक बारमें "कर्ण"का; मस्तक दिया उड़ाय॥

जय कार किया खुद"केशव"ने;ब्योम से लगी झर फूलोंकी ।
लेकिन प्रतिभा सी उतर गई; अनुकूलों की, प्रतिकूलों की ॥
उठ गया देश का एक-रत्न; सच्चा बल-शाली-प्रण-धारी ।
चल बसा हिन्दका एक लाल;वह दानि-शिरोमणि रण-कारी॥
जय मिली"पार्थ"को किन्तु नहीं; देशकी पराजय होनेलगी।
भारत-माता उन रत्नों पर; धीरे २ क्यों रोने लगी ? ॥
लाड़ले ! अमूल्य रत्न वे थे; लेकिन कीचड़ में गड़े हुए ।
थे सच्चे योग्य, प्रभाव--शील; लेकिन कुसंगमें पड़े हुए ॥

हा ! एक रेख लगजाने से; जौहर न असल खुलने पाया ।
गूदड़ के लालो ! तुम्हें अहो!;असली न मान मिलने पाया॥
उफ़!एक कुसंगति के फल ने;कांटा गुलाब पर खिला दिया ।
धिक् तनिक 'अहम्'की स्याही ने;हीरा मिट्टी में मिला दिया॥

वहां शिविर में पहुँच कर, हुआ "पार्थ"को मान ।
'मार लिया मैंने अहो !; 'कर्ण' वीर सा ज्वान ॥

अन्तर्यामी वह भाव समझ; यों 'अर्जुन' को समझाने लगे ।
गर्वांहारी कुछ गाथा कह; सेवक का गर्व मिटाने लगे ॥
"अर्जुन ! कर्ण से वीरवर को; कुछ नहीं तुम्हीं ने मारा है ।
यदि असली बात पूछते हो; तो छः ने मिल संहारा है ॥
पहिले है"परशुराम"द्विज वर;अभिशापने जिनके काम किया।
दूसरे "मैथुनी" गौ भी है; जिसने भटवर को शाप दिया ॥
तीसरे तुम्हारी माता है; जो बाण मांग कर लाई है ।
चौथे उस योधा के वध में; सुर-पति की भी चतुराई है ॥
पांचवें मुझे शामिल समझो; छठवें फिर नाम तुम्हारा है ।
देखो भैया ! कर्ण सा वीर; कैसे धोखे से मारा है ? ॥"

युक्ति भरे यह बचन सुन; गिरे चरण पर ' पार्थ '
" महाराज ! है आप से; दीन जनों का स्वार्थ ॥

"कर्ण" सा वीर"भीष्म" सा धीर; श्री महाराज ने मारा है ।
सारी इच्छा केशव की है; कुछ द्वारा--मात्र हमारा है ॥
अभिमान-बीज का कुछ अंकुर; जो पैदा होनेवाला था ।
वह उसी जगह से झुलस गया;"गोपाल लाल"रखवाला था॥

गायन

हम क्या हैं ? मेरे नटवर !; कठ पुतलियां तुम्हारी ।
विषयों के लिये, केवल, हैं शक्तियां हमारी ॥
विजयी हुए हैं, जुगनू, सूरज के मुक़ाबिल में-
वास्तव में हैं; यह माधव!,सब युक्तियां तुम्हारी ।
हैं आप जब कि मालिक, चाहें, सो करा डालें-
हम से न पूछिये कुछ, हैं आपके बेगारी ।
तुझ को "विनीत" डर क्या!;कर्मों से-अकर्मों से-
"शैलेन्द्र" पक्षमें हैं, त्रैलोकपति-विहारी ।

शान्ति-सिन्धु ने शान्ति से; किया रात्रि विश्राम ।
कह "विनीत-शैलेन्द्र" अब; कृपा-धाम घनश्याम ॥

—: शुभमस्तु :—

इति कर्णपर्व-कर्ण-वध ।



श्रीः ।

महाभारत-शल्यपर्व ।

शल्य-वध

सरल छन्दोबद्ध.

"रह गई जो आन, तो सब रह गया;
प्रण गया तो जान लो;–सारा गया ।"

लेखक–

काव्य-कला-भूषण अभिनयाचार्य्य कुशल-कवि,
श्री पं० गोविन्ददासजी विनीत, तालबेहट–झाँसी.
और
कविरत्न श्री पं० शैलेन्द्रकुमारजी वाजपेयी,
धर्मालङ्कार, कीर्तनकलानिधि,
आनन्दभवन, गणेशगंज, खण्डवा C.P.

मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

॥ श्रीः ॥

❋ प्रार्थना ❋

तुम्हीं ने साँवरे ! जो; पीर न जानी मेरी ।
सुनेगा कौन ? तो यह; राम-कहानी मेरी ॥
मिटा रहेहो, मिटा दो-पै; मिटाना ऐसा;
कुछ तो संसार में; रह जाय निशानी मेरी ।
लाख समझाया किये; अपनी परेशानी उन्हें-
आह रे भाग्य ! मगर-एक न मानी मेरी ॥
द्वारिकानाथ ! तुम्हें; फिर जताये देते हैं;
द्रुपद-सुता से नहीं; कम है गिरानी मेरी ।
"विनीत" दो ही वचन; जन्ममें निभें "शैलेन्द्र"
देह सेवा में लगे; कीर्त्ति में बानी मेरी ॥



श्रीः ।

❁ कथा-प्रारम्भ । ❁



"दुर्योधन" के शिविरमें; मचा रहा कुहराम ।
"कर्ण ! कर्ण ! हा कर्ण!" कह; रोते रहे तमाम॥

दुर्योधन रोया-"हाय ! हाय !; हाथों से भाई छूट गया ।
भाग्य का सितारा फूट गया; उफ़ ! दाँया बाजू टूट गया ॥
मन्त्री था वह, बल-धन था वह; सम्मति-सूत्रका सहारा था ।
आभार उसी पर सारा था; भाई के तुल्य हमारा था ॥
यह सर-कारी वह बेसर है; जिसका कोई सरदार नहीं ।
यह नाव आज वह नैया है; जिसका कोई पतवार नहीं ॥"

"कृतवर्मा" कहने लगे-"अब धुनते हो माथ ।
उस दिन अपने बन्धु का, पकड़ा होता हाथ ॥

भ्राताओं से, कुलवालों से; अहसान आज तक किये नहीं ।
समझा हारे खुद दीन बन्धु; पर पांच गांव भी दिये नहीं ॥
अब रोने धोने से मतलब ?; आत्मा को कुछ धीरज दीजे ।
बल वीर"शल्य"को मुकुट बांध; सेनाका सेना-पति कीजे॥"

सम्मति सुनकर उसी क्षण;बोला "कौरव-नाथ"।
"कौरव-दल की लाज़ है; मामा जी के हाथ ॥

मामा जी ! हाथ जोड़ता हूँ; अपने ही शीश भार लीजे ।
यह बे पतवार नाव मेरी; जैसे भी बने पार कीजे ॥"

"शल्य"ने कहा-"हे कौरव-पति !;यह सेवा-भार निभाऊँगा ।
जीवन की श्वाँस शेष रहते; सेवा से विमुख न जाऊँगा ॥"

"दुर्योधन"ने"शल्य"को; दिया मुकुट पहिनाय ।
प्रात हुआ, सैनिक सभी; चले निशान बजाय ॥

दोनों दलवाले जोड़ों से; जोड़ का ज़ोर दिखलाने लगे ।
मागध-गण कीर्त्ति सुनाने लगे; क्षत्रिय-गण तेग़ चलाने लगे॥
अपने अपने समान योधा; योधाओं से भिड़ जाते हैं ।
सारथी-रूप श्री "कृष्णचन्द्र"; "शल्य"के सामने आते हैं॥
"भीम"से भिड़ा "अश्वत्थामा";"कृतवर्मा-नकुल"बराबर हैं ।
"शकुनी-सहदेव" लड़ रहे हैं;"धर्मज,कुरुपति"के सिर पर हैं॥
"शल्य" के हाथ से लाखों भट; बेजान हुए, मैदान हुए ।
"पार्थ" के बाण से कितने दल; वीरान हुए, सुनसान हुए ॥

गायन

बिगड़ सकता नहीं हर्गिज; कभी उस भक्त-वर-भटका ।
जिसे कुछ भी सहारा है; हमारे सांवरे नट का ॥
दिखाये सैकड़ों लटके; उसे माया, विपद, संकट-
मगर लटका नहीं सकते; पकड़ ले आसरा लटका ।
चले तीरों पै, लाखों ही; वहां से तीर भी लेकिन-
न खटका एक भी,आकर; अगर्चे खूब ही खटका ॥
जिसे अटका चुका गिरधर; उसे कब ग़ैरसे अटका ?
अगर अटका-तो वह अब तक; नहीं प्रभु-प्रेममें अटका ॥

दिया शर खींच अर्जुनने; पड़ा गर्दन पै सारथिके–
गया खुल द्वार हृद-पटका; ज़मींपर वीर वर पटका।

तत्क्षण भटवर "शल्य" ने; रथ दूसरा मँगाय।
लाखों की तादाद में; योधा दिये गिराय॥
वहां "भीम" बलवीर ने; किया घोर-आघात।
अनगिन योधा गदा से; क्षण में किये निपात॥

वह पवन-पूत, बन काल-दूत; सब सूत सूत सुलझाने लगा।
वह महावीर, रण-धीर–भीम; दल भर में गदा घुमाने लगा॥
भट काट दिये,शठ पाट दिये; शर डाट दिये, उस भटवरने।
चूँ कर न सके, धूँ धूँ वाले; वह हाथ किये, उस भटवर ने॥
लोहू उलीच, रिपु-बाल खींच; मीच की दुलारी देने लगा।
भागड़ पड़ाय, नाहर रिसाय; रण में किलकारी देने लगा॥
खल एक संग,कर ध्वनि अभंग; वीरपर बाण बरसाने लगे।
पर वज्र-अंग, लग भंग भंग; खाली निषंग दिखलाने लगे॥
कुछ मले गये, कुछ दले गये; कुछ क़त्ल आम कर डाला है।
"गोविन्द"स–सुख,लखि माधव-मुख;वंशीवाला रखवालाहै॥

"शकुनी"ने यह देखकर;कहा भूप से–"भ्रात !।
यहां मानने योग्य है; एक हमारी बात॥

दोनों दल यहाँ लड़ रहे हैं; आगे पीछे का ध्यान नहीं।
कहिये तो ऐसे अवसर पर; पीछे सेना ले जाउँ कहीं॥
छेदन कर दूं सारा रिपु–दल; जो इस में प्रभु को खेद न हो।
गिन गिन कर उनका भेदन हो;पर ज्ञात किसीको भेद न हो॥"

"दुर्योधन" कहने लगा—"भाई ! मैं बलिहार।
आगे पीछे का तुम्हें; है सारा अधिकार॥

आगे जाओ, पीछे धाओ; देता हूँ सब अधिकार तुम्हें।
जय यहां रहे, हो हार उन्हें;तो पहिना दूँ"जय-हार" तुम्हें॥"
"दुर्योधन" की आज्ञा पाकर; "शकुनी" पीछे से आता है।
पाण्डव-दल पर चुपके चुपके; बाणों की झड़ी लगाता है॥
सारा दल कटता जाता है; कुछ आगे नज़र न आता है।
प्रत्येक वीर "हाहा" कह कर; पृथ्वी पर गिरता जाता है॥
"केशव"ने यह अन्याय देख;"पार्थ"से कहा—"पीछे धाओ।
इस"शकुनी"धूर्त्त निकम्मे को; अपनी करणी पर पहुँचाओ॥

रथ पहुँचा, रण ठन गया; योधा दिये गिराय।
भागा "शकुनी" युद्ध से; अपने प्राण बचाय॥
यहां "धर्म" के सामने; पहुँचा "शल्य" सुवीर।
बोला—"रहने दीजिये; आज धनुष और तीर॥

रहने दो तीर-कमान आज; तलवार म्यान से खींचेंगे।
भारत की इस फुलवारी पर; खूनी फ़व्वारे सींचेंगे॥"
"धर्म" ने कहा—"जैसे चाहो; संग्राम तुम्हीं से सारेंगे।
हम आज प्रतिज्ञा करते हैं; तुम को अवश्य ही मारेंगे॥"

दोनों ने रथ छोड़ कर; खींची झट तलवार।
आपस में होने लगे; वहीं वार पर वार॥
सारे दल में खिंच गई; वही शूल-तलवार।
एक साथ होने लगी; धर-मार की पुकार।



युधिष्ठिर–शल्यका तलवार युद्ध ।

बस शक्ति–शूल–तलवार–परिघ; बरछे और बिछुए चलते हैं ।
ले कठिन–कुन्त–कोतह–कृपाण; केहरी–किशोर मचलते हैं ॥
करते हैं, कठिन कटार–वार; गन्ने की क्यारी टूट रही ।
अंगों से रक्त–रंग वाली; मानो पिचकारी छूट रही ॥
"सहदेव" वीर के हाथों से; "शकुनी" का काम तमाम हुआ ।
बलवीर "शिखण्डी" वधने में; "अश्वत्थामा" का नाम हुआ ॥
कोई मुद्गर की मार करें; कुछ गदका फरी चलाते हैं ।
सैकड़ों मुकुट, कुण्डल, तरकश; लोहू में बहते जाते हैं ॥
कट गये हज़ारों सुभट विकट; इसही कोतह हथयारी से ।
भारत में लाखों फूल मिटे; इस भारतकी फुलवारी से ॥

"धर्मराज" कहने लगे—"बन्द करो तलवार ।
अब कुछ होना चाहिये; तीरों की बौछार ॥"

अपने अपने रथ पर चढ़ कर; बलवीर धनुष चटकाने लगे ।
"शल्य"के चलाये हुए बाण; पाण्डव-पति काट गिराने लगे॥
"यम-अस्त्र"चला उस जानिब से;तो'इन्द्र-अस्त्र'ने डाट दिया।
एक ही बाण से भूपति ने;"शल्य" का धनुष भी काट दिया॥
धन्वा न वीर के हाथ रहा; तो शूल लिये वह मतवाला—
ज्यों ही दौड़ा, त्यों ही नृपने; वह टुकड़े टुकड़े कर डाला ।

गायन

गरजत भट मेघ-मान ।
झपटत जनु बाज-घात;
उछलत प्रति-पक्ष-ख्यात;
हुमकत दल दै निशान ।
सत-बल, तनु-तेज पक्ष,
हरि-निज-मद लेत रक्ष;
समुझत शठ कै समान ।
लरत, भिरत, धरत, परत;
करत निरत समर भरत;
डरत नाहिं-परत नाहिं ।

दोनों बलवान समान वीर; समता की शक्ति दिखाते हैं ।
होनी के अनहोने लक्षण; "शल्य" के सामने आते हैं ॥

एकायक ही शीश पर; आये गिद्ध अनेक ।
कितने ही अशकुन हुए; किन्तु न किया विवेक ॥

सूरज छिप गया बिला कारण; कौवे सिर पर मँडराने लगे।
धुम गया प्रकाश दिशाओं में; गीदड़ आगे चिल्लाने लगे॥
आकाश से तारे टूट पड़े; खूनी बरसात नज़र आई।
रथ पर की ध्वजा हुई टुकड़े; घोड़ों ने भी ठोकर खाई॥
घुग्घू इत्यादि नज़र आये; कुछ महा-वायु का ज़ोर हुआ।
पृथ्वी पर कुछ कम्प सा हुआ; बादल में "घरघर" शोर हुआ॥

"धर्म राज" ने शक्ति ले; कहा—"सजग हो वीर!
शक्ति वीर-संहारणी; आई तेरे तीर॥
जहाँ शक्ति पहुँची निकट; गई हृदय को छेद।
निकल गया जीवात्मा, सत-सुरों को भेद॥

ज्यों ही "धर्म" ने "शल्य" मारा; त्यों ही क़तलाम मचाया है।
जिसको जो भी जिस जगह मिला; उसने वह मार गिराया है॥
चहुँ ओर मार, हाहा पुकार; जय कार सुनाई देती है।
मानो दो लड़नेवालों की; तलवार सफ़ाई देती है॥
दो वीर बढ़े, साथ ही गिरे; जो जहाँ चढ़े, कर अस्त्र गहे।
क्षण भरमें देखा अहो! वहाँ; यह भी न रहे, वह भी न रहे॥
उमड़ाई रक्त-महा-सरिता; बह रहे वीर-धन्वा-तरकश।
भारत के सरबस लोट गये; वर-बश हो गये, वीर बे वश॥

कुछ योधा लड़ते रहे; महा-मार के बाद।
मानो समर-किलोल-रत; सरित-सुभट-उन्माद॥

देखते देखते घड़ियोंमें; कुल कौरव-दल संहार हुआ।
पाण्डव-दल से आल्हाद भरा; शान्तिके साथ जयकार हुआ॥

लाशों के केवल चिह्न रहे; हर तरफ़ खून की धार बहे ।
कृतवर्मा, कृपाचार्य्य द्रोणी; एवं दुर्योधन बचे रहे ॥
वह भी बेचारे भागड़ में; सब तितिर बितर हो भाग पड़े ।
कुछ बचे खुचे पाण्डव-दलमें, उस कुरुक्षेत्र में खड़े रहे ॥
प्रतिपक्षी वीर-घोषणा की; गति भी गानेवाला न रहा ।
पीछे बढ़नेवाला न रहा; आगे आनेवाला न रहा ॥
मानो विद्वेष–महानल में; जलते जलते सुख–धाम मिला ।
द्रोह में जागनेवालों को; रण-गंगा में विश्राम मिला ॥
चारों ओर से शून्य–नीरव; जब रण-क्षेत्र दिखलाया है ।
तब "धर्मराज" एवं "प्रभु" ने; जय-सूचक-शंख बजाया है ॥

"जय–ध्वनि" करते हुए सब; चले शिविरकी ओर ।
कहो प्रेम से–"जयति जय; नागर नन्दकिशोर ॥ "

—: शुभमस्तु :—

इति–शल्यपर्व ।



॥ श्रीः ॥

महाभारत-गदापर्व।

दुर्योधन-वध.

सरल छन्दोबद्ध.

"शैलेन्द्र-विनीत" कृत.

मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

श्रीः ।

* कथा प्रारम्भ. *

छाया चारों ओर जब; घोर-तिमिर भूपाल ! ।
"दुर्योधन" भी उस समय; भूल गया सब चाल ॥

चहुँ ओर रक्तकी विषम-बाढ़; गीदड़ दहाड़ते फिरते हैं ।
कौवे गिद्धादि परस्पर मिल; आँतें उखाड़ते फिरते हैं ॥
ले कर-कपाल शंकर-समाज; सानन्द ताण्डव करता है ।
चीड़ कर चर्म चूसकर वर्म; खप्पर भर आसव करता है ॥
आँतें निकाल, कण्ठ में डाल; चण्डिनी चाल दिखलाती हैं ।
नव-रक्त लाल भर, भर कपाल, पीती हैं और पिलाती हैं ॥
शमशान शून्य, खाली कुरुपति; अथवा वीरों की लाशें हैं ।
हैं भूत, प्रेत, भैरव, पिशाच; या उनके खेल तमाशे हैं ॥

गायन

घोर-नाद-रक्त-वाह । सुप्त-श्वाँस, सूक्ष आह ॥
गिद्ध-चील-श्वान-स्यार । दे चिकार ज्यों बिदार ॥
लोक-नाथ ज्यों अनाथ । हा ! पुकार पीट माथ ॥
कोउ ना सखा सहाय । रक्ष यादवेन्द्र राय ॥

वह पृथ्वीनाथ अनाथ बना; चौ तरफ़ा हाथ बढ़ाता है ।
जिस लाशे को वह छूता है; वह डूब वहीं पर जाता है ॥
चल सका न जब कोई उपाय; बेचारा "हाय" पुकार उठा ।
उस अन्धकार में एकायक; उसको दैवीय-विचार उठा ॥

गायन

रहा न आज हमें, आह ! सहारा कोई ।
साथ है अपने न कोई, न न्यारा कोई ॥
हम इन के हैं, हमारे हैं यह-झूठा था खयाल;
हम किसी के भी न थे; था न हमारा कोई ॥
बल कोई चीज़ नहीं, वंश का अभिमान वृथा;
कल कोई छोड़ गया, आज सिधारा कोई ॥
वक्त इतना ही है, इतनी ही है हस्ती यारो !;
किसी तरह से हाँ, कर जाये गुज़ारा कोई ॥
खूब ही सोच के "शैलेन्द्र" बताओ तो "विनीत;"
सिवाय कृष्ण के क्या है ? भी तुम्हारा कोई ॥

रोते रोते इस तरह; हुआ विशेष निराश ।
दैव-योगसे उसी क्षण; हाथ लगी यक लाश ॥
उसी लाश को पकड़ कर; आया "कुरु-पति" पार ।
श्रोताओ ! वह भूपका; था प्रिय राजकुमार ॥
अब तो नृप के शोकका; रहा न वारापार ।
रोया माथा पीटकर-"हा हा" कुल-पतवार ! ॥

जीवन में जिस सुकुमारे ने; हँस हँस कर हृदय लुभाया है।
मर कर भी उस आधारे ने; नौका बन पार लगाया है ॥
प्यारे ! सुकुमारे ! यह कलंक; आजन्म नहीं धो सकता हूँ ।
तन,मन,धन अर्पण करके भी; अब उऋण नहीं हो सकताहूँ ॥
हा ! वह भी साधन शेष नहीं; जिससे कुछ संस्कार कर दूँ ।
तूने मुझको रण--पार किया;मैं तुझको जगत-पार कर दूँ ॥

गायन

पुत्र वह है, जो पिता के लिये पतवार बने।
लोक का मान्य बने, वंश का आधार बने॥
ऐक्य, चारित्र्य तथा धर्म हो जिस के घर में;
आप ही वंश वह यक स्वर्ग का आकार बने।
ओ मेरे लाड़ले ! जीते जी न छोड़ा मुझको—
रक्त—गंगा में भी तुम, मर के करणधार बने॥
'विनीत' जिनका हृदय गुरु-जनों का मन्दिर है;
वही सुपूत यहां जाति के शृंगार बने।

रोते रोते इस तरह; गदा भूमि पर मार।
बार बार छाती लगा; गाड़ दिया सुकुमार॥
चला हांपता कांपता; "कौरव-राय" पराय।
जन "विनीत" गोविन्द-पद; रहे मार्ग लपटाय॥
कुरु-पति ज्यों त्यों कर सका; खूनी दरिया पार।
आधे से ज्यादा वहीं; डूब मरे सरदार॥
रोता, धोता शिविर में; पहुँचा जहां नरेश।
रानी अकुलानी उठी; देख रक्त-मय वेश॥

सारा शरीर लोहू लुहान; आंखों से नज़र न आता है।
कट गया निषंग, मुकुट टूटा; कपड़ों से खून चुचाता है॥
सर्वांग लाल, विकराल—वदन; बेहाल, बाल सब छूटे हैं।
पैदल है, और अकेला है; पट्ठे और घुटने टूटे हैं॥
रानी दौड़ी, आगे से ले; पानी से वदन धुलाती है।
फिर स्वच्छ-वस्त्र पहिना करके; शय्या पर उसे बिठाती है॥

कम्पित तन, अधकट वचन; नहीं विवेक-विचार ।
क्रोध, शोक, भ्रम, भय-विवश; चहुँ दिश रहा निहार ॥
महलों के द्वारे दीवारें; गिरती सी नज़र आरही हैं ।
छत की हंडियां डराती सी; ऊपर को उड़ी जा रही हैं ॥
चिकके पर्दे फाड़ते हुए; योधा आते से दीख रहे ।
धीमे धीमे झोंकोंके स्वर; मानों सब साथी चीख रहे ॥
वह दुग्ध-फेन-सदृश शय्या; लोहू की सरित समान हुई ।
यह दशा देख कर बेचारी; रानी बेहद हैरान हुई ॥
बोली-'प्रियतम! प्राण-निधि!; प्राण-नाथ! प्राणेश ! ।
देखा जाता है नहीं; आज आपका वेश ॥
थरथरी न तनकी जाती है; सीधे न देखने पाते हो ।
आखें चौंधी सी जाती हैं; रण-चर्चा नहीं सुनाते हो ॥
बैठे हो, पर डरते डरते; मानो है भाव भागने का ।
हे कौरवेन्द्र ! क्या कारण है?; यों होश-हवास त्यागनेका ॥"
"दुर्योधन" बोला-"प्राणप्रिये!; अब कुशल नहीं दिखलाती है ।
धनुधारी-अर्जुन के आगे; एक भी न पार बसाती है ॥
दो दिन में कभी एक दिनमें; यक नया दृश्य दिखलाता है।
रोज़ाना कोई नया वीर; भारत में मारा जाता है ॥
आज के रोज़ मामा जी ने; सेना--समेत गति पाई है ।
उस महावीर के पञ्जे से; ज्यों त्यों कर जान बचाई है ॥
मृतक--लाल-आधार ले; भाग पड़ा असहाय ।
भद्रे ! अब दीखे नहीं; मुझको एक उपाय ॥
रानी बोली-"आर्य्य-सुत !; दासी बैठी हार ।
पहिले ही प्रियतम ! तुम्हें; कहा पुकार पुकार ॥

यदि उसी रोज आपस में मिल; भाई को हिस्सा दे देते ।
तो यह कलंकमय महा-पाप; हे प्राणनाथ ! सिर क्यों लेते?॥
ऐसा ही था, तो रण ही में; वीरत्व दिखाकर मर जाते ।
चाहे जो कुछ भी हो जाता; पर मुँह मोड़ कर नहीं आते ॥
भारत के महा-वीर-नृप ने; जब आकर यहाँ दुहाई दी ।
तब मुँह से कोई कहे न कहे; भावी स्पष्ट दिखाई दी ॥
अब पूज्य पिताके पास नाथ !; जाकर विश्राम कीजियेगा ।
रण-धीर-भीम, भट "अर्जुन" को; थोड़ा सा टाल दीजियेगा ॥
साहस रखिये, चिन्ता तजिये; निर्भय होकर रण ही कीजे ।
अपना कर्त्तव्य निभा लीजे; होनी है, सो होने दीजे ॥"

'कौरव-पति' यह वचन सुन; चिन्तित चित्त उदास ।
मन मारे, हारे हृदय; गया पिता के पास ॥
हाथ जोड़ कहने लगा—'पूज्य-पिता' गुण-धाम! ।
आज पूर्त्ति पर आ गया; भारत का संग्राम ॥

कुल-पूज्य भीष्म, गुरु-राज-द्रोण; बल-वीर-कर्ण संहार हुए ।
हे गुणागार ! सरदार सभी; भारत में बे पतवार हुए ॥
सेना भी ख़तम हो चुकी है; अब ख़ाली दास दिखाता है ।
क्या कहूँ? किस तरह कहूँ? पिता!; कुछ नहीं समझमें आता है॥
धन धूर्ण हुआ, जन पूर्ण हुए; संकट है अब ऊपर नीचे ।
हे पिता ! यत्न कुछ बतलाओ; पड़ गया भीम मेरे पीछे ॥"

"ज्ञान-चक्षु कहने लगे"; कुशल करें भगवान ।
अब रोने से लाभ क्या ?; भावी है बलवान ॥

मैं तो पहिले ही कहता था; उन लोगों से तकरार न कर ।
आनन्द-कन्द "श्रीकृष्णचन्द"; माया-मुकुन्द से रार न कर॥

हा ! आज हठी की हठ ही ने; हर खाये हार हज़ारी है।
इस घर की भण्डा–फोड़ी से; भू–पति हो गये भिखारी हैं॥
पर रोना है, अब बेमतलब; होनी ख़ुद आगे आयेगी।
जो 'व्यास-सरोवर' में जाये; तो जान तेरी बच जायेगी॥"

'गान्धारी' कहने लगी;–"तजो शोक बलवान !॥
एक दृष्टि में ही तुझे; कर दूँ वज्र समान॥

जिस दिन से ब्याही आई हूँ; आँखों को बांधे रहती हूँ।
श्री प्राणनाथ के साथ साथ; इस दुख को मैं भी सहती हूँ॥
आजके रोज़ तेरे निमित्त; बेटा ! आँखों को खोलूँगी।
एवं तेरा तन देख देख; जयकारी–अक्षर बोलूँगी॥
वह सहसा खुली हुई सुदृष्टि; जितने शरीर पर आयेगी।
स्मरण रहे, विश्वास रहे; वह देह बज्र हो जायेगी॥
इसलिये लाज, संकोच छोड़; बेवस्त्र सामने आ बेटा !।
इस पतिव्रता की दृष्टि–शक्ति; भारत में कल दिखला बेटा!॥

"दुर्योधन" ने वसन सब; त्याग दिये तत्काल।
किन्तु सामने की तरफ; लिया वस्त्र कुछ डाल॥
गान्धारी ने पुत्रको; देखा नयन उघार।
किन्तु जाँघ को देख कर; बोली देवि विचार॥

"बेटा ! इसमें क्या चारा है ?; होनी ही तेरी आई है।
जिसमें अन होनी सी बन कर; तेरी बुद्धि भी नसाई है॥
जो एक दृष्टि में सभी देह; बेटा ! मुझको दिखला जाती।
त्रैलोक में कोई शक्ति न थी; जो उसको भेदन कर पाती॥
वह युवा नहीं, बुड्ढा होवे; माँ को बेटा बालक ही है।
तूने इतना पर्दा करके; लाला ! बेहद ग़लती की है॥

क्या करूँ ? पुत्र ! तेरे मन में; माता तक से जब चोरी है ।
हो गया शरीर बज्र सारा; पर जंघों में कमज़ोरी है ॥
जो होनी, होने वाली है; उसके होने में क्या शक है ? ।
जा बेटा ! अपना करतब कर; अब ईश्वर तेरा रक्षक है ॥"

चला केहरी की तरह; "दुर्योधन" हर्षाय ।
मातु, पिता प्रिय नारिका; सकल मोह बिसराय॥

निर्मोही घर का मोह त्याग; भागा इस तरह उदासी हो ।
"सोऽहं" में यथा धारणा धर; जाता कोई संन्यासी हो ॥
जब धँसने लगा सरोवर में; तो पिछला पैर बढ़ाया है ।
दाँयें पैर का चिह्न उसने; भय से "भीम" के छिपाया है ।

"लक्ष्मी" ने देखा जहाँ; राजा पर आतंक ।
सादर आगे से लिया; बिछा दिया पर्यंक ॥

जैसे "भीष्म" या "द्रोण" में से; प्रत्येक वीर--वर नेता था ।
वैसे ही भटवर "दुर्योधन"; अवतारी उत्तम राजा था ॥
सारी दुनिया 'दुर्योधन' को; शुभ-लक्ष-छत्र-धर कहती थी ।
वैभव उसका अनुगामी था; "लक्ष्मी" कंधे पर रहती थी ॥
यह सब था, लेकिन धर्म न था;सच्चिदानन्दकी भक्ति न थी ।
इस कारण महा--शक्ति--धरमें; जय पानेकी वह शक्ति न थी॥
यदि धर्म-शक्ति कुछ भी होती; भक्ति का सहारा ही होता ।
तो पाण्डव क्या ? त्रैलोक वहां; क्षण भरमें न्यारा ही होता ॥
"कृष्ण"की भक्ति यदि हाथमें है; तो कोई भक्ति रहे न रहे ।
"माधव" की शक्ति साथ में है; तो कोई शक्ति रहे न रहे ॥
धन है, बल है, जन हैं, कुल है; मित्रों का भी आधार है सब ।
यदि एक"कृष्ण"की कृपा नहीं; तो याद रहे, बेकार है सब॥

यहां पार्थ—सेना—सहित; लौटें "श्री गोपाल"।
स्वागत को "कुन्ती" चली; लिये काञ्चनी--थाल॥
बोली माता—"धन्य है भीम!; कुल—कण्टक का संहार किया।
वास्तव में तूने आज पूत!; पाण्डव-कुल का उद्धार किया॥
बेटा! आ, बलिहारी जाऊँ; तुझको जय-हार पिन्हा दूँ मैं।
अये मैया के लज्जा—रक्षक!; आ, छाती तुझे लगा लूँ मैं॥"
"भीम" ने कहा—"क्या कहती हो?; 'दुर्योधन' मुझसे मरा नहीं।
हां, और किसी ने मारा हो; तो इसका मुझको पता नहीं॥"
'कुन्ती' ने पूछा—"क्यों अर्जुन!; क्या कुरुपति तुमने मारा है?।"
"पार्थ" ने कहा—"धर्म से पूछ; मैंने न उसे संहारा है॥"
धर्म, नकुल, सहदेव से; मां ने किया सवाल।
पर न बताया किसी ने; उसके वधका हाल॥
'कुन्ती' बोली--"तो निष्कारण; क्यों इतनी हत्यायें कर दीं?
जड़ रहने दी, तो लाभ ही क्या?; जो छांट सभी शाखायें दीं॥
ईश्वरी—सृष्टि को नष्ट किया; पर सृष्टि-शत्रु ही मरा नहीं।
दोनों कुल बण्टाढार हुए; पर कुल-कण्टक ही टरा नहीं॥
इस रक्त-पात से क्या पाया?; जब भूप नहीं संहार हुआ।
करना, धरना सब व्यर्थ हुआ; भूपपर न यदि अधिकार हुआ॥
बेटा! सहदेव! विचारो तो; वैरी—संहार हुआ, या नहीं।
उस इन्द्रप्रस्थ के शासन पर; अपना अधिकार हुआ, या नहीं॥
सोच कहा "सहदेव" ने--"मरा नहीं कुरु—राज।
करता है विश्राम वह; किसी जगह पर आज॥"
सुनते ही इस खबर को; पांचों भाई साथ—
"दुर्योधन" को ढूँढ़ने; चले त्रिलोकी—नाथ॥

धर्मराज, भीमार्जुन; एवं माया-राशि ।
समर--भूमि में शत्रु की; करने लगे तलाश ॥

लेकिन न वहाँ "दुर्योधन" था; हाँ, मुर्दे बहते जाते थे ।
अधमरे सिसकते जाते थे; कुछ पड़े पड़े तड़पाते थे ॥
कुछ लाश ज़मीं पर बैठ गये; कुछ आधे कढ़े दिखाते हैं ।
कुछ एक किनारे पड़े हुए; बाँध से बँधे दरशाते हैं ॥
रथ--ध्वजा किसी की दीख रही; चीलें, कौवे मँडराते हैं ।
बहती है, कहीं रक्त--धारा; झीलें, गड्ढे दिखलाते हैं ॥
भैरव--पिशाच--योगनी--नाच; जिस समय दृष्टि में आता है ।
हड्डियां चबाना, खड़काना; वह "हूहा" जहाँ सुनाता है ॥
चीखना, तड़पना या रोना; जिस समय कान में आता है ।
उस समय धीर-धर-आत्मा भी; सहसा कम्पित हो जाता है ॥

गायन

सोहत रणथल श्री घन श्याम ।
क्षीरोदधि तज, रुधिरोदधि-गति-निरत सौम्य छबि धाम ॥
जनु सन्ध्या-मय अरुण--उषः--सर, अन्हवत सहचर काम ।
रुण्ड--मुण्ड, मणि--मुकुट--तूण--धनु; बहत डुलत चहुँ धाम ॥
तिन मधि सदल कृष्ण इमि सोहत; जनु शिव रूप ललाम ।
तनु--मुख--बसन--बाँसुरी--भूषण, रुधिर--सनित कछु बिन्दु ॥
जनु रण--सर किल्लोल--निरत, लहि आभा पूरण इन्दु ।
श्रमित, भ्रमत उरझित डरपत से; अनुचर पाँचिहु जाँय ॥
जनु "विनीत" "शैलेन्द्र" भीतसौं; चितवत भय--हर पाँय ।

यक बहेलिया भी वहीं; जाता था उस राह ।
पूछा--देखा है? कहीं; तूने कौरव-नाह ॥
बोला-"मुझको पहिचान नहीं; हाँ,एक व्यक्ति को देखा है ।
जो वस्त्र राजसी पहिने है; माथे पर मुकुट--चन्द्रिका है ॥
कुछ विह्वल सा देखता हुआ; हाथों में गदा घुमाता था ।
वह व्यास-सरोवर की जानिब; जल्दी से भागा जाता था॥"
समझ लिया, बस है वही; निश्चय कौरव--नाथ ।
अस्तु, उसी तालाब पर; पहुँचे यादव-नाथ ॥
गम्भीर-अगाध-सरोवर से; सारे पाण्डव-गण थर्राये ।
पाचों चिन्ता में सोच रहे; सरवर के कौन पार जाये ? ॥
बहुतेरा सोच,विचार हुआ; पर सरवर पर कुछ वश न हुआ ।
तैरना पार जाना कैसा ?; बढ़ने का भी साहस न हुआ ॥
"माधव"बोले-"जलस्तम्भन;केवल'कुरु-पति'ही जानता है ।
कुछ गुण वास्तव में ऐसे हैं; जिनसे जग लोहा मानता है ॥
इस महा-अगाध-"व्यास-सर"में;भय-प्रद लहरें लहराती हैं ।
जिनके बिकराल-दृश्य ही से; आंखें चकराईं जाती हैं ॥
कौरव-पति रमा-भवन में है; तुम वहां नहीं जा सकते हो ।
यदि साहस कर कुछ जाओगे;तो यहां न फिर आ सकते हो॥
हां, एक उपाय दूसरा है; "दुर्योधन" सच्चा योधा है ।
अभिमानी, जाति-गुमानी है; वह हांक नहीं सह सकता है ॥
यदि "भीम" किनारे पर जाकर; जोरों से हांक सुनायेगा ।
तो वीर-नाद पर वीर-हृदय; निश्चय बाहर आ जायेगा ॥"
भूरि-भयावह-भर्त्सना; भरी "भीम" हुंकार ।
ओ कुरु-कुलके कलंकी !; तुझे कोट धिक्कार ॥

पहिले मूँछों पर हाथ फेर; सिंह का कान खुजलाया है।
अब अबला की ओट में नीच!;गीदड़ की तरह छिपाया है॥
भाड़ों की तरह भँड़ौती यह; लुच्चों की तरह छुद्र छलबल।
जो आन है कुछ मर्दानी की; तो अय दुर्योधन!बाहर चल॥

"दुर्योधन" अपकीर्त्ति–भय; सुन न सका हुंकार।
गदा उठा कर के उठा; वीर–धीर–सरदार॥

ज्यों ही 'कुरु-पति' चलना चाहा;त्यों ही 'कमला' ने पकड़ लिया।
एवं हर तरह सान्त्वना दे; भटवर का दामन जकड़ लिया॥
"हे भाग्य–पुरुष!हे भद्र–मूर्त्ति!;धीरज इस समय लाइयेगा।
रिपु चाहे कुछ भी कहा करे,पर आज न बाहर जाइयेगा॥"

"लक्ष्मी" की इस विनय पर;बैठ गया बल-धाम।
उठी दूसरी बार ध्वनि; ओ पापी ! नाकाम !॥

वैरी को पीठ दिखा कर जो; नारी की आड़ छिपाना है।
थू है, थू है, उस के ऊपर; वह योधा नहीं, ज़नाना है॥
जो दम न रहा हो,आने का; तो वहीं डूब जा, पापी खल !-
जो लाज,शर्म कुछ बाकी हो; तो अय दुर्योधन! बाहर चल॥

इस दूसरी पुकार पर; फिर धाया कुरु-नाथ।
किन्तु, लक्ष्मी ने वहीं; पकड़ लिया झट हाथ॥

बोली–"बल–धाम!समय देखो;मत आन,बानके लिये मरो।
कल प्रात चहे जो कुछ करना; पर आज रात सन्तोष करो॥
तुझ सा त्रिलोक में और नहीं; जिसको जी भर अपनाऊँगी।
इस "दर" का कौन दूसरा है; जिसके दरवाज़े जाऊँगी॥

यदि आज तुम्हें हे लक्ष्मी–पति !; बाहर लड़ने पहुँचाऊँगी।
तो तुम अवश्य मर जाओगे; मैं भी अनाथ हो जाऊँगी ॥
यदि आज रात भर धैर्य्य धरो;तो कल ऐसा बल भर दूँगी ।
पाण्डव-दल नाश करादूँगी;तुमको त्रिलोक-पति कर दूँगी॥"

"दुर्योधन" इस बात को; गया दुबारा मान ।
किन्तु; तीसरी बार फिर; पड़ी हांक वह कान ॥

"हत्यारे ! मुँह को ढक बैठा; स्वजनों की नाहक़ हत्या कर ।
रे पापी ! प्राण बचा भागा; भाई बेटों को मिटवा कर ॥
हिजड़े! मुँहपर घूँघट करले; जा कहीं हिमालयमें गल खल ।
जो लाल है,सच्ची जननी का;तो अय दुर्योधन!बाहर चल ॥"

इस तीसरी पुकार पर; रुक न सका रण-धीर ।
उसी समय लेकर गदा; खड़ा हुआ बल-वीर ॥

"लक्ष्मी"ने फिर से बांह पकड़;चाहा कि धैर्य्य दे बिठलाये।
लेकिन अब से उस योधा के; रग रग के रंग उबल आये ॥
बोला–"लक्ष्मी ! बस रहने दो;क्या होगा?-मर ही जाऊँगा ।
लेकिन इन वीर–कलंकों से; मर कर तो तर ही जाऊँगा ॥
जिसके तन में कायरता की; बू भी आजाय पसीने पर ।
लानत है, उस मर्दानीपर; धिक्कार है, ऐसे जीने पर ॥
लक्ष्मी ! लक्ष्मी ! बस जाने दे;यह समय न फिर से पायेंगे ।
इस भू-गर्भा पर मैं न सही; मुझसे लाखों हो जायेंगे ॥
यह "रत्ना" है, डाली डाली; इस की रत्नों ही वाली है ।
नर-रत्नों से यह पुण्य-मही;हो सकी न अब तक ख़ाली है ॥
जो जयी हुआ, यश पाऊँगा; मर गया,वीर-गति पाऊँगा ।
यदि वीर–कलंक न छूट सका; तो जीवित मरा कहाऊँगा॥

गायन

होता है जन्म-मृत्यु का, सम्बन्ध सौ प्रकार ।
मिलता नहीं है किन्तु यह, संयोग बार बार ।
जीवन है नाम आन का, है आन समय की;
चूका समय तो जानिये, है आन को धिक्कार ॥
देखा न समय को तो, फिर आन किस लिये ?
जब आन ही न रह सकी, तो प्राण किसलिये ?॥

वीर गदा ले हाथ में, बाहर निकला आय ।
"धर्मराज" ने दौड़ कर, छाती लिया लगाय ॥

बल-वीर भ्रात ! रण-धीर भ्रात ! तुम कुलके सच्चे योधा हो ।
वीरों के वीर-कलंक नहीं; तुम वीर-वंश की शोभा हो ॥
बलवान हो तुम,हठवान हो तुम;तुम से कुछ कहना नाहक़ है ।
मैं भली भाँति से जान चुका; भारत में स्वत्व तुम्हीं तक है ॥
मेरे भ्राता ! मेरे बाजू ! आओ; कण्ठ से लगा लूँ मैं ।
आजीवन की जलती ज्वाला;इस जलसे आज बुझा लूँ मैं ॥
भैया ! बस, खूब लड़ाई की; खूब ही जोश दिखलाये हैं ।
इस वैर-भाव की वेदीपर; लाखों के शीश चढ़ाये हैं ॥
अब चलो, शान्ति-सुख भोग करो; इतने में पूर्ण लड़ाई हो ।
तुम राजा होकर राज्य करो; हम पांचों को सेवकाई दो ॥
आज भी दीन होकर तुमसे; बस, वही इनाम माँगते हैं ।
धन-धाम न कुछ भी चाहते हैं; बस पाँचों ग्राम माँगते हैं ॥

गायन

अजहुँ तज मान, हठीले मान।
धन जनि दै, सिंहासन जनि दै; दै केवल सन्मान॥
बिछुरे बन्धु कण्ठ लगु जिनके; बिसर पुरबिले ध्यान।
हम तव सेवा ही सौं मानै, राज-मान हित जान॥
जो चितवहु भरि नेह बन्धु इत, निकपट द्वेष मलान।
प्रेम–प्यास तरसत तनु तजिकै, जायँ न जोधन प्राण॥
कछु दिन अदिन मेटि रहु हितकै, करि एतिहु बलिदान।
जन "विनीत" अजहूँ माँगत सोइ, पाँच ग्राम कौ दान॥

"दुर्योधन" के नयन से; लगा बरसने नीर।
कण्ठ पुलकि, रोमाञ्च सब; गद्गद हुआ शरीर॥

बोला-"हे धर्मराज ! तुमने; अन्त तक धर्म ही रक्खा है।
वास्तव में तुमने आज तलक; पापी को भाई समझा है॥
मेरा कर्त्तव्य आज यह है; आज्ञा सिर पर धारण कर लूँ।
श्री "धर्मराज" को राजा कर; जीवन भर सेवा-व्रत धर लूँ॥
लेकिन कल को संसार भ्रात !; यह महा–कलंक लगायेगा।
भारत की वीर-कथाओं में; मुझको कायर बतलायेगा॥
इसलिये विपति में अब मुझको; मत हठ छुड़वाने की कहिये।
यह टेक निभाने ही दीजे; बस, यही कृपा करते रहिये॥
मैं यही अन्त तक कहा करूँ; जी जाये, लेकिन आन रहे।
प्राणों के जाते जाते भी, अपनत्व-स्वत्व का ध्यान रहे॥

गायन

गिर गया जो ज़ात से; फिर ज़ात वह मिलती नहीं।
लाख कोशिश कर मरो; पर बात वह मिलती नहीं॥
हो भले ही जाय कोई; या धनी, गुणवान भी;
किन्तु जो खोई गई; औक़ात वह मिलती नहीं।
एक सुख की रात को; जागा करो तुम रात भर–
सो गये यक रात भी; तो रात वह मिलती नहीं।
बो चलो "शैलेन्द्र" अये "गोविन्द" कुछ नेकी का बीज;
ज़िन्दगी में नौ उमर बरसात फिर मिलती नहीं॥

बन्धुवर ! अन्त तक वही कहूँ; जैसा मैं कहता आया हूँ।
उस ही नाते से रहा करूँ; जैसा कुछ रहता आया हूँ॥
फिर भी मुझको यह कहने दो; तुमसे न मित्रता पालूँगा।
जीवन की अन्तिम श्वाँसातक; सुई भर भी भूमि नहीं दूँगा॥"

"धर्मराज" यह श्रवण कर; हुए पूर्ण सन्तुष्ट।
बोले–"भैया ! जो तुम्हें; कहे–"दुष्ट"–सो दुष्ट॥

तुम दुष्ट नहीं हो, सज्जन हो; सच्चे योधा सरदार हो तुम।
पतवार हो सच्ची इज्ज़त के; वैभव-बल के आधार हो तुम॥
जो कहीं कुसंगति त्याग भ्रात !; तुम न्याय-पक्ष करते रहते।
तो आज तुम्हारी समता में; पाण्डव-गण कोई चीज़ न थे॥
अब भी मैं टेक तुम्हारी को; आत्मा से शीश झुकाता हूँ।
भैया ! अपनी आन पर रहो; मैं भी यह राय बताता हूँ॥
लेकिन तुम तात ! अकेले हो; दो भाई अपनी ओर करो।
फिर तीन तीनकी समता कर; निर्भय हो धर्म–समेत लड़ो॥"

"दुर्योधन" बोला-"पाँच वीर; तुम में बस कहने भर को हैं।
लड़नेवाले, करनेवाले; तुम पाँचों में केवल दो हैं॥
यदि "भीम" और "अर्जुन" दोनों; अपने पक्षमें निकालूँ मैं।
तो तुम्हीं नहीं, इस सृष्टी को; क्षणमें विनष्ट कर डालूँ मैं॥
इससे अये धर्मराज! आओ; हो युद्ध एक का पांचों से।
आख़री वक़्त में इस मुँह से; क्या मांगू मदद दुश्मनोंसे॥"

"धर्मराज" कहने लगे-"तो यों करो विवेक।
रहने दो हम चार को; लड़ो एक से एक॥

'कुरुपति' बोला-"हां; उचित है यह; महराज सामने आजायें।
राजा से राजा युद्ध करे; "भीमार्जुन" शक्ति न दिखलायें॥"
'कृष्ण' ने कहा-"धर्मकी जगह; हम खड़ा 'भीम' को करते हैं।
अपनी ओर से इन्हीं का हम; राजापन का दम भरते हैं॥"
"दुर्योधन" बोला-"कै दिनसे; राजत्व भीम ने पाया है?"
'माधव' बोले-"जब से रणमें; जयका झण्डा फहराया है॥"
'कुरु-पति' बोला-"जो धर्मराज; भीमको झुकायें सर अपना।
तो आज 'गदा-धारी' पर ही; हम दिखलायें जौहर अपना॥"

"कृष्णचन्द्र" की ओर को; लगे देखने दीन।
यह वाणी सुन सभी का; मुँह पड़ गया मलीन॥

जो "धर्मज" शीश झुकाते हैं; तो 'भीम' भस्म हो जायेगा।
वह सत्य-धर्म का महा-तेज; बीर से न उठने पायेगा॥
जो सिर न झुकाया जायेगा; तो समर न होने पायेगा।
थे थकित सभी-यह अनुष्ठान; क्योंकर निबटाया जायेगा?॥
अन्तर्य्यामी वह भाव समझ; "हरि-वंश-रूप" में प्रकटाये।
"भीम" के हाथ में मुरली दे; वह सभी इशारे समझाये॥

'केशव' ने कहा-"देर क्या है?; जल्दी ही शीश झुकाओ अब।
बेकार विलम्ब नहीं अच्छा; संग्राम शीघ्र करवाओ अब ॥"

'धर्मराज' ने नाथ को; मस्तक दिया झुकाय ।
'यादवेन्द्र' भ्रातों सहित; हरषे शंख बजाय ॥

बस क्या था? दोनों खड़े हुए; और गदा-युद्ध दिखलाने लगे।
दोनों भट विकट, महा नटखट; बच बचकर चोट चलाने लगे॥



दुर्योधन और भीम ।

घात पर घात, दांव पर दाँव; वार पर वारकी बारी है ।
आफ़त है, हाहा कारी है; उन वीरों की बलिहारी है ॥
"दुर्योधन" बोला-"सावधान; अब जौहर होनेवाला है ।
हाँ भीम ! होश से गदा पकड़; अब 'दुर्योधन' से पाला है ॥
अन्तिम रण है, जी खोल भीम!; बस दो दो चोटें दिखला जा।
सुर-पुरकी राह पकड़-अथवा; अब मुझको सुर-पुर पहुँचाजा ॥"

'भीम' ने कहा-"मुँह से न कहो; जो करना हो, कर दिखलाओ।
मैं सभी तरह से तत्पर हूँ; जैसे समझो वैसे आओ॥
मेरा भी प्रण है आज यही; अन्तिम संग्राम रचाऊँगा।
भ्राता को राज्य दिलाऊँगा; या यहीं वीर–गति पाऊँगा॥"

'दुर्योधन' ने 'भीम' पर; किया वज्रका वार।
एक धमाका सा हुआ; डोल उठा संसार॥
किन्तु 'भीम' ने रोककर; मारी गदा घुमाय।
'दुर्योधन' ने बीच में; उसको लिया बचाय॥

गौरांग–साँवरे दोनों भट; रण में यों शोभा पाते हैं।
जैसे कुंकुम–कज्जल–गिरि मिलि; आपसमें ज़ोर जनाते हैं॥
रण-सुभट-विकट-नट-वत् झपटत, लपटत, हुमकत, वारी वारी।
धावत चपेट, गहवर अमेट; खेलत अखेट न्यारी न्यारी॥
"दुर्योधन" की आघातों से; भूतल धँसता सा जाता है।
जब "भीम" दाँव दिखलाता है; भूकम्प यकायक आता है॥
दोनों समान, दोनों योधा; दोनों अभिमानी वरदानी।
दोनों स-क्रोध, दोनों सु धीर; क्या कही जाय? खींचा तानी॥

गायन

गदा "भीम" ने जो, बराबर उठाई।
वहीं कौरवाधीश, ने वह रुकाई॥
दुबारा दिया एक, धक्का गदा का;
गदा से गदा–धर, पै आई गदाई।
चले चोट पर चोट, क्या ग़म? कि हारें–
दबी भीम की बाँह, उसकी क़लाई॥

किसे हम कहें ? कम कि "शैलेन्द्र-गोविन्द"
वहाँ हैं रमा, ह्याँ रमा-पति सहाई ।

सब तरह घात पर घात हुए; पर वीर न कोई दूर हुआ ।
'भीम' का अंग लड़ते लड़ते; मिहनत से चकनाचूर हुआ ॥

कम्पित कर थकसे रहे; सभी लगा कर ज़ोर ।
लगे देखने भीम भट; 'करुणा-कर' की ओर ॥
"दया-धाम" ने समझ कर; भक्त-हृदयका हाल ।
जंघा पर संकेत कर; समझा दी सब चाल ॥
उसी समय भट "भीम" ने; तनिक इशारा पाय ।
"दुर्योधन" की जाँघ में; मारी गदा घुमाय ॥

जंघे पर ज्यों ही गदा पड़ी; "दुर्योधन" गिरा लड़खड़ा कर ।
"भीम" ने उठाई लात वहीं; कुरु-पतिपर गुस्सा दिखलाकर ॥
यह देख 'धर्म-पति' चिल्लाये- "जय का हर्गिज न उपाय है यह ।
बस, भीम ! ठहर, पैर मत उठा; अत्यन्त-घोर-अन्याय है यह ॥
इतने शरीर को छोड़ ओह !; जंघे पर बल दिखलाया है ।
वीरत्व नहीं, कायरता है; क्षत्रिय-धर्म को लजाया है ॥"

गायन

जीवन है जिसका कि भोग और विलासों को;
रक्षित स्थान जिसे कामिनी की अंक है ॥
बढ़ें नित्य द्रोही किन्तु उनको न दबा सके;
दलित किसानों पर केवल आतंक है ॥
आगे देख भागे रिपु; पीछा देख लागे साथ;
मृत्यु-काल जान जो कि चाहत पर्य्यंक है ॥

जो करे कुठौर घात, बोले नहीं एक बात;
क्षत्रिय नहीं है वह, क्षत्रिय—कलंक है ॥

"भीम"ने कहा—"श्री महाराज !;आनपर लड़ाई निर्भर की ।
इस कारण भारत में मैंने; तोड़ी है जाँघ वीरवर की ॥
जिस जंघे पर बिठलाने को; इस दुष्ट-प्रकृति का दावा है ।
उस सतवन्ती की आहों का; और उसी पाप का बदला है॥"

कौरव—पति ने तड़प कर; खींची लम्बी आह ।
मुकुट खिसक आया तनिक; ढीला पड़ा सनाह ॥

वह व्यास-सरोवर हिलने लगा; कम्पायमान आकाश हुआ ।
शून्यता दिशाओंपर छाई; पृथ्वी पर शोक-प्रकाश हुआ ॥
"दुर्योधन"की आशा-लतिका; उजड़े रूपक में हुई खड़ी ।
तरसती हुई क्रोध—मय दृष्टि; धीरे धीरे कृष्णपर पड़ी ॥



श्रीकृष्णोपदेश दुर्योधन प्रति ।

'कृष्ण' ने कहा—"क्यों दुर्योधन ! यदि उस दिन बात मान जाते ।
तो सुख-पूर्वक यश-पात्र बने; भारत-राजेश्वर कहलाते ॥
अपने अंगों का पालन कर, यदि अंग सबल करते रहते ।
तो आज तुम्हें दुनियावाले; द्रोही, अप-घाती क्यों कहते ?॥
सम्राट थे तुम, बलवान थे तुम; जो कहीं ऐक्यता अपनाते ।
तो यह कलंक लेकर भटवर !; क्यों इस प्रकार मारे जाते ?॥

गायन

गुंजान को वीरान बनाया है फूट ने ।
इन्सान को हैवान बनाया है फूट ने ॥
जिस में न थी गुंजायश रखने को क़दम भी;
घमशान वह मैदान बनाया है फूट ने ॥
बजते थे जहाँ तब्लो नक़ारे हर इक घड़ी—
उस बज्म को सुनसान बनाया है फूट ने ।
बुलबुल को जिला वतनी, फाँसी पै बाग़वान—
चोरों को पासवान बनाया है फूट ने ॥"

"दुर्योधन" कहने लगा; कर "कृष्ण" पर कटाक्ष ।
कमल—कलेवर, कमल-पद; कमला-प्रिय, कमलाक्ष ! ॥



श्रीकृष्ण और दुर्योधन ।

इच्छा-धर ! अपनी इच्छा से; हम सब को नाच नचाते हो ।
जो चाहते हो, सो करते हो; द्वारा हमको ठहराते हो ॥
हम मानते हैं, कुछ दोष भी था; उस ज़हरीले "कालीदह" में ।
पर समदर्शी ! बतलाओ तो; क्या दोष था ! भीष्म "पितामह" में
वह बाल-ब्रह्मचारी-प्रण-धर; पशुओं की नाईं मारा गया ।
वह भी तो भक्त तुम्हारा था; क्यों वहाँ न पक्ष विचारा गया ? ॥
"कर्ण" सा भक्त एवं दानी; क्या कहीं आपने पाया है ? ।
जिस बेचारे को धोखेसे; बेवश करके मरवाया है ॥

गुरु "द्रोणाचार्य्य" ब्राह्मण थे; भक्त थे, तुम्हारे प्रिय भी थे।
लेकिन इन कठिन कुचालों में;ऐसे सज्जन भी टिक न सके॥
हमने माना यह सभी पक्ष; तुम से विपरीत कहाया था।
पर याद है!माधव! अर्जुन भी;तुम से विरुद्ध चढ़ आया था॥
फिर "अर्जुन" को तो खिला खिला;संग्राम किया,आश्रय देकर।
इन भक्तों की पूछी न बात; केवल एक का पक्ष लेकर॥
मैं यह कुछ नहीं जानता हूं; प्रभु ने ऐसा क्यों काम किया?।
लेकिन इतना कह सकता हूँ; नाम भी बहुत बदनाम किया॥
यदि न्याय तथा धर्म के साथ; हम लोगों से जय पा जाते।
तो बेशक हम मरते मरते; चरणों में शीश झुका जाते॥
इस में कोई सन्देह नहीं; भक्तों को जय दिलवायी है।
लेकिन फिर भी मैं कहता हूँ; अपकीर्त्ति आपने पायी है॥
हम तो भगवन! कठपुतले हैं; नट की इच्छा पर जायेंगे।
लेकिन जो नाच बुरा होगा; तो नट को दोष लगायेंगे?॥

गायन

थे तुम्हीं, हो, या रहोगे, यह तमाशा और है।
हो तुम्हीं तुम, हम तुम्हीं हो, तुम सिवा क्या और है?॥
नाट्य इच्छा-मात्र का है, केलि माया-जीव-मय;
शब्द-गाथा और है, वह गोप्य-महिमा और है।
द्वन्द्व-मय-निर्माण ही; सारे रहस्यों का है तत्त्व;
लोक-आशा और है; लोकेश-लीला और है।
व्याप्त त्रैगुण मध्य तुम; वे व्याप्त हैं संसार में-
दूसरी आखों से देखो; सृष्टि-साया और है।"

मेरी क्या ? जब तक रहा; रही सर्वदा आन ।
अन्त समय हैं सामने; कृपा-सिन्धु भगवान ॥
भक्त-वश्य ने भूप से; कहा बँधा कर धीर ।
'कौरवेन्द्र' ! निश्चय नहीं; तुम ऐसा प्रण-वीर ॥

अपनी जान को खपा डाला; सम्पति मिट्टी में मिलवा दी ।
जीवन,जन,तन सब गँवा दिया;पर बात निभाकर दिखला दी॥
बेशक कुछ लोग इसे सुनकर; मुझको दोषी ठहरायेंगे ।
लेकिन विद्वान; विचार-शील; इतनी न भूल पर जायेंगे ॥
सृष्टि में कर्म का फल ही बस; भावी, भवितव्य कहाता है ।
उसकी पूर्त्ती के लिये कोई; कर्त्ता, कारण बन जाता है ॥
उन का प्रेरक जान कर मुझे; सत्शील वान सुख पायेंगे ।
भारत की सारी करणी पर; "इच्छा धर" मुझे बतायेंगे ॥
दुर्योधन ! मुझको दोष न दे; यह सब होनी का कारण है ।
जो दीन, हीन के हाथों से; झुक गया आज दुर्योधन है ॥

उड़ा गया गिरि मेरु को; फूँक- पवन का ज़ोर ।
एक पतिंगा उड़ गया; क्या सूर्यों की ओर ॥

'भीष्म'में'द्रोण'में या तुममें;सब कुछ था एक झुकाव न था ।
कुछ भले बुरे का ध्यान न था;प्रेम-मय परस्पर भाव न था॥
है "अहम्" जहां-उसका हरना; सर्वथा रहा है काम मेरा ।
तुम ख़ास गर्व-अवतारी थे; और "गर्वाहारी" नाम मेरा ॥
गर्व ही गर्व-हारी बन कर; गर्वान्तर-गौण-प्रकाश हुआ ।
गर्व ही गर्व का भास बना; गर्व से गर्व का नाश हुआ ॥
यह संशय जिन को होता है; भारत में कुछ अन्याय हुआ ।
वे समझ रखें, अन्यायों का; आकर अन्याय सहाय हुआ ॥

आश्रय हूँ,किन्तु स्व-कर्मों का;अधिकार है आश्रित जीवोंको ।
कर्मानुसार फल दे देना; यह हक़ है उन कर्त्तव्यों को ॥

अस्तु, समझना चाहिये; केवल कर्म–निदान ।
वही कर्म भवितव्य में; है दैवीय–विधान ॥

लोक की दृष्टि से दो समान; शक्ति–धर सामने आये हैं ।
हो गई एक की हार वहां; विजयी दूसरे कहाये हैं ॥
एक की वीर–ध्वनि को सुनकर; दूसरा हुआ ख़ामोश नहीं ।
दोनों का इस में नाश हुआ; दुर्योधन ! मेरा दोष नहीं ॥
यह केवल फूट तुम्हारी थी; जो फूट फूट कर निकली है ।
भारत की अन होनी घटना; होनी बन बन कर सँभली है ॥

मैंने ऐसा क्यों किया ?; इस का उत्तर एक ।
एक एक की बात की; पड़ी निभानी टेक ॥

वरदान,शाप जो जिस जन को; जिस समय जहाँ को दिये गये ।
वे उसी तरह, और उसी जगह; उस द्वारा पूरे किये गये ॥
मैं बे अवतार त्रिलोकी को; लय कर देता, क्षय कर देता ।
उस निराकार शक्ती ही से; दीनों को निर्भय कर देता ॥
लेकिन आने में कारण है; यह अटल–युगान्तर का रण है ।
तुम स्वयं जानते हो कुरु-पति!;यह अभिनय-पट-परिवर्त्तन है॥

गायन

सभी लीला के एक सहाय ।
द्वैत–भाव तज समझ विवेकी; कारण–सहित उपाय ॥
भल-अनभल-सुख-दुख-सम-असमहु-न्याय तथा अन्याय ।
नाम–भेद, सब एक विवेकिन; जो समझें सत–भाय ॥

स्व-गुण-गन्य सब, स्व-गति धन्य सब, बिलग-पंथ जग-राय।
जन "विनीत-शैलेन्द्र" कृष्ण जपु; तर्क न पार बसाय ॥

"दुर्योधन" कहने लगा—"माया—पति—भगवान !
यह लीलायें आपकी; क्या जाने ? अज्ञान ॥

सारी लीला का सूक्ष्म भेद; श्री-मुख-द्वारा समझाया है।
क्या हुआ ? और क्या होना है!;स्पष्ट समझ में आया है ॥
मृत्यु का शोक, हार की लाज; दोनों ही बिदा हो चुकी हैं।
वे मलिन वासनायें भगवन् !; ना जाने कहां खो चुकी हैं ? ॥
हो चुका सफल सारा जीवन;शान्ति का अटल-भण्डार खुला।
खुल गया त्रिकालोंका पर्दा;जिस समय'अहम्'का द्वार खुला॥

गायन

क्या हुआ ? कीड़ा अगर मारा गया।
जो गया, वह आपके द्वारा गया।
क्या हुआ ? इतने बड़े ब्रह्माण्ड से—
—आसमां का एक जो तारा गया ॥
रह गई जो आन तो सब रह गया—
प्रण गया तो जान लो सारा गया।

जाओ, सुख—पूर्वक धर्मराज !; इच्छानुसार सुख-भोग करो।
जाओ,मायानिधि !,भावी-मय;लीला का अब संयोग करो ॥

गायन

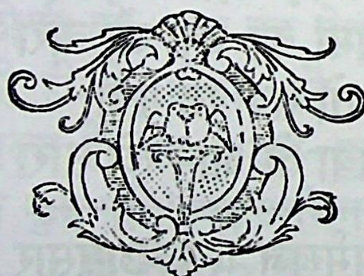
छोड़ जाओ नाथ ! कर अनाथ पै कृपा-कोर !;
छोड़ आयौ जान मेरो छोड़ छोड़ जैयौ ना।

तोड़ रहे नाता इत, तोड़ वे गुमान मोर;
पर असली तोड़ पै; तोड़ तोड़ जैयो ना ॥
जोड़ जोड़ लाख जोड़; जोड़ फोड़ दीन्हों मोर;
यमहू के द्वारे यह जोड़ जोड़ जैयौना ।
मोड़े रहे मुखड़ा सो मोड़े रहे दया धाम;
वैतरणी मोड़ देख मोड़ मोड़ जैयौना ॥"

कौरव-पति की विनय पर; सुखी हुए भगवान ।
सभी भांति सान्त्वना दे; किया नाथ प्रस्थान ॥

—ः शुभमस्तु ः—

इति गदापर्व—दुर्योधन-वध ।



श्रीः ।

महाभारत-सौप्तिकपर्व ।

पाण्डवपुत्र-वध.

सरल छन्दोबद्ध.

"शैलेन्द्र-विनीत" कृत.

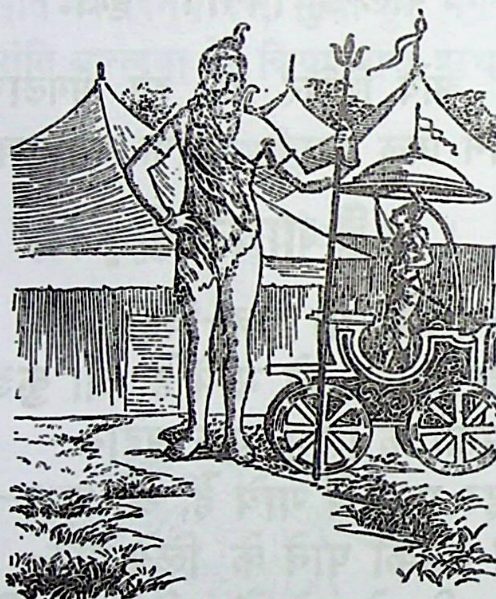
जगधर आये शिविर में; हुए मंगलाचार ।
की सबने मिल आरती; छाया जयजयकार ॥

गायन

उद्धार को आये हैं, श्री कुञ्ज-विहारी ।
हर आत्म को भाये हैं, श्री कुञ्ज-विहारी ।
जय के लिये, मुक्ती के लिये, एक सहारे-
हर ग्रन्थ में गाये हैं, श्री कुञ्ज-विहारी ॥
क्या शेष रहा ? उसको पाने के लिये फिर-
जिस जीव ने पाये हैं, श्री कुञ्ज-विहारी ।
छाया किये रहें, सदा यों ही "विनीत" पर;
जैसे हृदय में छाये हैं; श्री कुञ्ज-विहारी ॥

दीनबन्धु कहने लगे-"सुनिये पाण्डव-राज ।
पांचों भाई इस जगह; करें निवास न आज ॥

"अर्जुन" ने सोचा—"हा भगवन!; अब भी क्या होनेवाला है? ।
क्या पता ? हमारा या किसका, अब स्वाहा होनेवाला है ? ॥
पहिली कृति पर कर पटाक्षेप; क्या दृश्य दिखाये जाते हैं? ।
किसके भयसे? किसके क्षय को; यह शिविर छुटाये जाते हैं॥"
लेकिन प्रभु से कुछ कह न सके; सब रथपर चढ़कर निकर गये ।
डेरे से चार कोस बाहर; जाकर सब पाण्डव ठहर गये ॥
'केशव' ने शिव का ध्यान किया; तो प्रकट शम्भु भगवान हुए ।
कुछ क्षण तक मेल-मिलाप हुआ; कुछ क्षणतक गौरव-गान हुए॥



श्रीकृष्ण और शंकरजी ।

भेंट, विनय; क्षेमादि सब; हो चुकने के बाद ।
लीलाधर कहने लगे; उस दिन का संवाद ॥

"भगवन् ! हम आज जारहे हैं; तुम शिविरों की रक्षा पर हो ।
यह सब मेरी इच्छापर हैं; और तुम मेरे इच्छाकर हो ॥"

"शिव जी" बोले–"आज्ञानुसार; सेवक शिवरोंके द्वारे है।
लेकिन होनी या अनहोनी; यह सब कुछ हाथ तुम्हारे है॥
जो इच्छा है, इच्छाधर की; वह पूर्ण आज हो जायेगी।
माया प्रभु की दिखलायेगी; लीला प्रभु की कहलायेगी॥



श्रीशंकरजी।

चक्र–शूल को हाथ ले; खड़े हुए भगवान।
"अश्वत्थामा"ने वहां; नृप पर किया पयान॥

देखा बेचारा घायल है; हाथों से गदा घुमाता है।
वन-पशुओं से ज्यों त्यों करके, अपनी देह को बचाता है॥
क्षण भरको कभी उसकता है; फिर धरणी पर गिर जाता है।
जीवन की अन्तिम श्वासाएं; निर्जन में पड़ा बिताता है॥
यह दशा हाय! उस राजा की; जो लोक-मान्य कहलाता था।
अपने बल-विक्रम के आगे, इन्द्र का हृदय दहलाता था॥

यह ही है–वह जो लोकों में; भुज–बल से धाक जमाये था।
जीवन से भी प्यारा कहकर; पृथ्वी पर प्राण लगाये था॥
वह सुई बराबर भूमि न दे; सर्वस्व छोड़ने बैठा है।
वह तरह तरह के जोड़ जोड़; अब जोड़ तोड़ने बैठा है॥
वह सूर्य्य-चन्द्र सा प्रतिभा-धर; और हम मरतबा सितारोंका।
कूड़ा है आज रास्ते का; भोजन है, गीध सियारों का॥
वह वैभव घरमें धरा रहा; वह लक्ष्मी द्वारे खड़ी रही।
वह शान ख़ाक में जा पहुँची; वह ज़मीं यहीं पर पड़ी रही॥
है! कहाँ आज सेना-लश्कर; वह विप्लव-वाद-उपाय कहाँ?।
वह भाई-बन्धु-कुटुम्ब कहाँ?; वह सच्चे सखा सहाय कहाँ?॥

सिंहासन धरणी हुई, मीत हुए वन–जन्तु।
सर्व तन्तुओं में रहा; एक हृदय का तन्तु॥
लक्ष्मी दासी थी जहां; घर थे नभ-पाताल।
आज अकेला रो रहा; पड़ा वही नर–पाल॥

गायन

चलनेवालों की सदा; एक सी चलती न रही।
किसी की बेल यहाँ; फूलती फलती न रही॥
धनी, गुणी रहे, न; दीन मूर्ख ही बाक़ी–
एक सी आग कभी; भाग्यकी जलती न रही।
चढ़ाव आया चढ़े, आ गई ढलन ढुलके–
एक चढ़ती न रही, एक ही ढलती न रही॥
"विनीत" पलने लगे वन में वह पलनेवाले–
पालने वालोंकी "शैलेन्द्र" वह पलती न रही।

"द्रोणी" का मुख देखकर; रोया कौरव-नाथ।
एक शोकको छोड़ कर; रहा न कुछ भी हाथ॥

"द्रोणी" बोला-"अय कौरवेन्द्र!; क्यों दुख-मय आहें भरते हो?।
साथ में चलो, संग्राम करो; इस जगह पड़े क्या करते हो?॥
"दुर्योधन" बोला-"विप्र बन्धु!; आओ, क्या मिलने आये हो?।
इस घायल बन्धु-विरोधी को; अब क्या सन्देशा लाये हो?॥
उठने की किससे कहते हो ?; उठने का काम हो चुका है।
भैया ! जाओ, आनन्द करो; मेरा संग्राम हो चुका है॥
वह पहिला पाँसा पलट गया; अब अन्तिम श्वाँसा जारी है।
यह गदा "भीम" ने मारी है; उठने तक से लाचारी है॥
लश्करवाला तो निकल चला; और सारा लश्कर खड़ा रहा।
चल बसा जहाँसे ताजदार; यह ताज ज़मीं पर पड़ा रहा॥

गायन

गयौ कुरु-पति कौ प्रथम गुमान।
धरणि-धूरि-धर, तज, ममता सब; बिसरचौ सकल सयान॥
माटी की ना कछु पूतरि बन; केतौ करि मद-पान।
एते लघु जीवन लगि धिक्क धिक्क; जोरत सात जहान॥
यह वन-स्यार बन्धु सम मोरे, सून-क्षेत्र मम राज।
विपिन-विपद पद मात्र अन्तलौं; भैरव-भूत-समाज॥
मृत्यु–मातु निज अंक पसारें; करत निहोरे लैन।
जन "विनीत-शैलेन्द्र" अजहुँ जप राधावर सुख-ऐन॥"

'द्रोणी' बोला–"भाग्य ही; हुआ समरका नाम।
फिर भी कुछ बतलाइये; मेरे लायक़ काम॥"

'दुर्योधन' बोला-"काम है क्या?, यदि शत्रु-पराजय सुन पाता ।
तो यह अशान्ति से जला हुआ; अन्त में शांतिसे मर जाता॥
क़िस्मत समझूँ, यदि मरने तक; यह काम बना जाये कोई ।
पाण्डव लोगों को वध करके; संवाद सुना जाये कोई ॥"

"द्रोणी" ने उत्तर दिया-,'रण है नृपका काम ।
जब राजा ही चल बसा; फिर कैसा संग्राम?॥

"दुर्योधन" बोला-"मैं अपना; यह ताज तुम्हें पहिनाता हूँ ।
जाओ तुम ही संग्राम करो; मैं राजा तुम्हें बनाता हूँ॥
मैं किसी तरह इस जीवन में; उठकर अब कहीं न जाऊँगा ।
अन्तिम श्वासें भरते भरते; बस इसी जगह गति पाऊँगा ॥

मुकुट बांध कर चल दिया; तत्क्षण द्रोणी वीर ।
तथा रात ही में गया; "कृतवर्मा" के तीर ॥

बोला-"चलिये संग्राम करें; रात ही रात तैयारी है ।
हो चुका आज"कुरु-पति"घायल;अपनी ही अन्तिम बारीहै॥
जो प्रात निशान बजाकर हम; फिर रण-क्षेत्र में जायेंगे ।
तो "पार्थ" के तीखे बाणों से; अब भी न ठहरने पायेंगे ॥
इसलिये उचित है,इसी समय;उनके शिविरों पर चढ़ जायें ।
रात ही रात में काट छांट; मैदान साफ़ कर दिखलायें ॥
आज्ञा पाकर कुछ वीर चले; पाण्डवी-शिविर पर आ पहुँचे
कोट में पहुँचने से पहिले; शिव-अस्त्र शीश पर जा पहुँचे ॥
सन्नाटा भरा चक्र द्वारा; शूल का सनाका खिचने लगा ।
साहस न पड़ा रण-वीरों को;दृढ़ हृदयी"द्रोणी"डिगनेलगा ॥
चौंधी सी आई आखों में; आगे न किसी के हुआ खड़ा ।
तत्काल पीठ देकर उनको; दूसरी ओर को लौट पड़ा ॥

"द्रोणी" को तत्काल ही; सूझा एक उपाय ।
क्यों न शम्भु ही को यहां;कर लूँ आज सहाय।

आये हैं रक्षा को अवश्य; पर भक्त–वश्य कहलाते हैं ।
ढुर गये जिधर अवढर दानी; बस उसके ही बन जाते हैं ॥
हो गये द्रवित दो शब्दों में; केवल इतनी प्रभुताई है ।
ले जाओ,फिर जो भी चाहो; अपनी क्या चीज़ पराई है?॥"

यह विचार आगे बढ़ा; द्रोणी नीति–सुजान ।
श्रद्धा–भक्ति समेत यों; बोला ज्ञान–निधान ॥

गायन

संहार–कार–त्रिपुरारि–हरे !। आश्रित–अनाथ–आधार हरे !।
अघ–हारि–आदि–अवतार–हरे !। कर्त्तार हरे !, हर्त्तार हरे!॥
पतितोन्नति के पतवार हरे !। भव–रोग–वियोग–विदार हरे !।
दुख–हार हरे!,सुख–कार हरे!।"शैलेन्द्र" का हो उद्धार हरे! ॥

"शंकर" बोले–वरदान माग;""द्रोणी"बोला–"दाया कीजे।
आज की रात को हे भगवन!; मुझको अन्दर जाने दीजे ॥"
"शंकर" बोले–"द्रोणी बेटा !; बूढ़े को नाम न धरवाओ।
तुम को अन्दर ही जाना है; तो गढ़ दीवार लांघ जाओ ॥"
"द्रोणी" बोला–दीवारों के; पहिरे पर शूल तुम्हारा है ।
उसके आगे हम लोगों का; चल सका न भगवन्!चारा है ॥"

"शंकर" जीने भस्म दे; दिया उसे वरदान ।
नमस्कार कर वीर ने; तत्क्षण किया पयान ॥

दीवार लांघ भीतर पहुँचा; द्रौपदी–शिविर में जाने लगा ।
उन पाण्डव–पांच कुमारों पर; हत्यारा हाथ चलाने लगा ॥

दासियां उसी क्षण जाग उठीं; "हाहा–हाहा" चिल्लाने लगीं।
शिविरों में हलचल गूँज गई; सब अपने प्राण बचाने लगीं॥
घुप अन्धकार तेग़ की मार; किसके हाथों ?, यह पता नहीं।
जो उठना चाहा, गिरा वहीं; जो सोता था, सो रहा वहीं॥
घड़ियों में उस हत्यारे ने; सारी सेना को पाट दिया।
जो वीर भाग बाहर आया; वह "कृपाचार्य्य" ने काट दिया॥

नारि–जाति को छोड़ कर; हुआ शेष सुनसान।
पांचों शिर ले दुष्ट ने; किया शीघ्र प्रस्थान।

कृतवर्मा कृपाचार्य्य, द्रोणी; दुर्योधन पर वापिस आये।
उन पांचों पाण्डव–बेटों के; मस्तक आगे रख दिखलाये।
"द्रोणी" बोला–"श्री महाराज!; आत्मा को शान्ति दीजियेगा।
दुष्टों के मस्तक ठुकराकर; चलिये, सुख–राज्य कीजियेगा॥
लीजिये, देखिये आंख खोल; यह "अश्वत्थामा" का गुण है।
यह धर्मराज, सहदेव, नकुल,; यह भीम तथा यह अर्जुन है॥

मणि–प्रकाश में जिस समय; दिखलाये वह शीश।
हाथ मार कर माथ से; फिर रोया अवनीश!

अय हत्यारो! यह पाण्डव हैं ?; या पाण्डव-राज दुलारे हैं।
उस पतिव्रता, उस पुण्य-हृदा; "पाञ्चाली" के सुकुमारे हैं॥
अह दुष्टात्माओ! मरने तक; शोक का संदेशा सुना चले।
हा! अन्त समय तक एक नई; यह हत्या सिरपर उठा चले॥
उस पुण्य-हृदा "पाञ्चाली" की; गोदी सूनी करने वाले!।
उन पावन-मूर्त्ति धर्म-पति पर; अनुचित दूषण धरने वाले!॥
अय "मैं-मैं-तू-तू" के वक्ता!, लोभ के बोझ भरने वाले!।
हो चुकी सैर, सो चुका खूब; अब बाँध कमर मरने वाले!॥

ओ दुर्योधन ! हो चुकी शान्ति; क्यों ग़मके घूँट पीरहा है? ।
सब अपनी आँखों देख चुका; अब किसके लिये जीरहा है?॥
चल दे, बस ओ चलने वाले !;इतनी ही गठरी सिर लेकर ।
अब भी पानी में ढूँढ़ जगह; दोनों कुलको पानी देकर ॥

गायन

यह कर्म वह हैं, जो यम को भी हिला डालेंगे ।
यह पाप वह हैं, जो मिट्टी में मिला डालेंगे ॥
रहेगी श्वाँस तलक आश लगी एक नई; ।
आश ही आश में हम श्वाँस गँवा डालेंगे ॥
त्याग दे आश सभी नाम ले पापी उनका; ।
द्वारिका नाथ तेरी त्रास नशा डालेंगे ।
"सच्चिदानन्द,ओ३म्-शान्ति पाठ पढ़ "शैलेन्द्र"–
"विनीत" जाप यही; ताप मिटा डालेंगे ॥

"ओ३म् शान्ति" कहते हुए; नृप ने त्यागे प्राण ।
"कृष्ण चन्द्र" की कृपासे; पाया पद निर्वाण ॥

निर्वाण हुआ, संग्राम हुआ; सत्र हुआ, परंतु असार हुआ ।
उद्धार हुआ, निर्धार हुआ; पर भारत बेपतवार हुआ ॥
ज्ञानी, योगी, तेजसी; वीर सब रत्न हमारे डूब गये ।
हम यही कहेंगे भारत में; भारत के तारे डूब गये ॥
भारत ग़ारत था, किन्तु न थी; इतनी आरत हालत इसकी ।
भारत के पीछे दिन प्रति दिन; गिरती ही गई इज्ज़त इसकी ॥
सामुहिक दृष्टिमें भारत का; इतना प्रभाव दिखलाता है ।
उस दिन का घाटा भारत से; आज तक न चुकने पाता है ॥

"दुर्योधन" की मृत्यु पर; तीनों हुए अधीर ।
अपनी अपनी राह ले; भाग पड़े बेपीर ॥

"कृतवर्मा" भागा जल्दी से; जाकर द्वारावति में ठहरा ।
"द्रोणी" उत्तर की ओर भाग; श्रीबद्री नारायण ठहरा ॥
जब प्रात हुआ, सूरज निकला; तो पाण्डव-लोग लौट आये ।
वह हाहाकार देख सहसा; अचरज में सभी वीर छाये ॥
रो रही "द्रौपदी" एक ओर; "कुन्ती"अन्यत्र बिलखती है ।
छाई सब तरफ़ उदासी है; हर दासी पड़ी बिलपती है ॥

खड़े रह गये"पार्थ"भट; सके न कुछ भी बोल ।
सन्मुख आई "द्रौपदी; मुँह से घूँघट खोल ॥

अधखुले केश, विह्वल कुवेश; अटपटे बोल अकुलाने से ।
रूखे से वचन रिसाने से; कुछ जाने हुए भुलाने से ॥
"हा ! इन निर्भय हाथों वाले; मारे जायें उन हाथों से ।
त्रैलोक-नाथ के साये में; जन मारे जायँ अनाथों से ॥
लीलाधर ! साफ़ न कहते हो; "द्रौपदी" निपूती करनी थी ।
मैं जान गई-इसही निमित्त; रात को जगह भी बदली थी ॥
केशव ! क्या कभी बताओगे ?;भारतकी अन्तिम हद क्या है।
गोपाल ! जान पड़ता है कुछ; आगे भी कोई इच्छा है ॥

"कृष्ण चन्द्र"कहने लगे-"द्रुपदे!कहाँ विचार ।
इन कर्मों में कहाँ है ?; मुझे तुझे अधिकार ॥

तेरी, उनकी, इनकी; सबकी; भावी ही लिये जारही है ।
क्या पता ? तुझे किसकी करणी?;क्या बनकर,कहाँ आरहीहै ? ॥

मैं जिस विचार से ले भागा; उसकी प्रत्यक्ष निशानी है।
हो गई निपूती पाञ्चाली; फिर भी भारत महरानी है॥
"द्रोणी"–द्वारा यह वीर कभी; रात में न रक्षा कर पाते।
मैं निश्चय तुझे बताता हूँ; यह पाँचों पाण्डव मर जाते॥"

"पाञ्चाली" ने फिर कहा;–"समझ गई हूँ भेद।
किन्तु न जायेगा कभी; बातों ही से खेद॥

मेरे बच्चों का हत्यारा; भगवन् ! मेरे आगे ला दो।
उस खूनी पामर को माधव !; खूनों का बदला दिलवा दो॥
भारतकी शान्ति-समस्या तक;यह शान्ति-पाठ प्रभु पढ़वा दो।
या चक्र सुदर्शन से मुझ को; मेरे बच्चोंतक पहुँचा दो॥"

कहा "पार्थ"ने-"आज यदि;बांध न"द्रोणी"लाउँ।
तो जीते जी जगत में; कभी न मुँह दिखलाउँ॥

भ्राता ! बैठो भद्रे ! बैठो; मैं ही मैं केवल जाऊँगा।
माधव ! पकड़ो मेरी लगाम; आपके सहारे लाऊँगा॥"
प्रभु बोले–"हाज़िर हूँ अर्जुन;रथ खड़ा हुआ है,देरी क्या ?।
जब कहो तभी हांकने लगूँ; तैयार रहो तुम, मेरी क्या ?॥"

उसी समय रथ पर चढ़े; पार्थ तथा घनश्याम।
मिला मार्ग ही में उन्हें; वह पापी नाकाम॥

"अर्जुन" बोले-"ओ हत्यारे !; अब भागा कहां जा रहा है?।
ओ नीच ! खड़ा रह;उसी जगह;तेरा भी काल आरहा है॥"
"अश्वत्थमा" ने इतना सुन; वह काल-बाण सन्धाना है।
जिसका तेज-बल-प्रभाव आदि;"पार्थ"ने नहीं पहिचाना है॥

त्रैलोक में हाहाकार मचा; सारे पाण्डव बिलखाने लगे ।
माया-पति उन्हें सान्त्वना दे; तब इस प्रकार समझाने लगे ॥
"हे अर्जुन ! यह शृङ्गी-शर है;जिसकी तुमको पहिचान नहीं।
"द्रौणी" के सिवा दूसरों को; इसका कोई भी ज्ञान नहीं ॥"
फिर चक्र सुदर्शन के द्वारा; पाण्डव भक्तों की रक्षा की ।
रथ छोड़ त्रिलोकी-नाथ उठे; चौतरफ़ा माया फैला दी ॥
श्रीमुख को इतना फैलाया; उस काल-बाण का पान किया।
अर्जुन ने नाग-पाश-द्वारा; अश्वत्थामा को बांध लिया ॥

रथ पर रख कर चल दिये; कृष्णार्जुन तत्काल ।
लज्जा के मारे हुआ; वह पापी बेहाल ॥

सिर उठ न सका, मुँह खुल न सका;आंखों से धारा जारी है।
"भीम"ने क्रोध में "द्रौणी" पर; सहसा तलवार उभारी है ॥
बोले-"कह-दुष्ट-अधम-पापी!; बोटी बोटी खिंचवा डालूँ ।
यह पाप-पूर्ण-पामर-शरीर; कह, कुत्तों से नुचवा डालूँ ॥
ओ हत्यारे ! बतला जल्दी; क्या दण्ड तुझे दिलवा डालूँ ?।
उन पांच बालकों के बदले; कह-बाल २ चिड़वा डालूँ॥"

लाज तथा संकोच से; रोया " द्रौणी " वीर ।
" पाञ्चाली " की आंख से;लगा ढुलकने नीर ॥

वह दया-मयी,वह दशा देख; बोली-"बस नाथ दया कीजे ।
क्या लाभ ? इसे वध करने में; ब्राह्मण है, इसे क्षमा कीजे ॥
क्यों भारत के अन्तिम दिन तक;अपकीर्त्ति-कलंक लगाते हैं?।
ब्राह्मण का लाल मारने से; कुछ लाला मिले न, जाते हैं ॥

हो चुकी शान्त आत्मा मेरी;छोड़ दो आर्य्य ! इस निर्धनको।
हा हा ! धाओ करुणेश कृष्ण!;मृत्यु से बचाओ ब्राह्मणको॥
मेरे आगे--धर्मावतार !; यह हत्या मत करवाइयेगा।
दौड़िये, दौड़िये दीनबन्धु !; ब्राह्मण के प्राण बचाइयेगा॥"

करुणाकर कहने लगे—"धन्य ! देवि का स्वार्थ।
बाक़ी है ? इस हृदय में; किस हद का परमार्थ॥

बेटे कट गये, अनाथ हुई; लेकिन न दया का चाव गया।
सर्वस्व गया, उस देवी का; फिर भी न धर्म का भाव गया॥
ऐसी विदुषी, ऐसी रत्ना; आदर्श—रूप कहलाती है।
अवतार धार कर आती है; दोनों कुल पार लगाती है॥
हो गई अनाथा किन्तु आज; वह उन्नत—माथा बाक़ी है।
"द्रौपदी"नहीं,लेकिन अब तक;वह करुणा—गाथा बाक़ी है॥
महिले आर्य्ये!,भद्रे ! विदुषी!;सच है,यह काम तुम्हीं तक है।
द्रुपदे ! हम आज कह रहे हैं; भारत का नाम तुम्हीं तक है॥

गायन

होती न तुम समान जो भारत में नारियां।
तो कौन सींच जाता ? धर्मों की क्यारियां॥
बिकने को कौन जाती ? पतियों के साथ में;
किस की थी दम, चलाती बेटे पै आरियां।
किस किस सती ने"सीत" से भण्डार भरा है ?;
किस किस सती को दी गईं निःसीम सारियाँ॥
सीता,तुम्हीं, सती तुम्हीं सावित्री हो तुम्हीं;
"गोविन्द" का "शैलेन्द्र" कमल-पद निहारियाँ।

श्रीकृष्णने कहा-

"बस भीम ! छोड़ दो द्रौणी को; द्रौपदि की इच्छा पूरी हो ।
मस्तक चीड़ कर दुरात्मा से; केवल वह इसकी मणि ले लो ॥"

द्रोणी का सिर चीड़ कर; मणिको लिया निकाल ।
उस ब्राह्मण पर दया कर; छोड़ दिया गोपाल ॥
अब आगे की गाथमें; है अमोघ आनन्द ।
कह 'विनीत-शैलेन्द्र' अब; जयति जयति ब्रजचन्द ॥

गायन

कर ले मन ! हरि-गुण-गान ।
बाल-पन बीत चुका, आई जवानी तेरी ॥
खो रही वह भी, मगर बात न मानी मेरी ।
रुख़ से ज़ाहिर है, बुढ़ापे की निशानी तेरी ॥
एक दिन खटकेगी; यह उम्र गँवानी तेरी ।
धर ले माधव का ध्यान ॥...............

-: शुभमस्तु :-

इति सौप्तिकपर्व-पाण्डवपुत्र-वध ।



महाभारत-ऐषिकपर्व।

पाण्डव-राज्यतिलक.

सरल छन्दोबद्ध.

"देश-पति! जाना तुम्हारा देश से; देश को दासत्व का सन्देश है।"

"शैलेन्द्र-विनीत" कृत.

प्रार्थना

तुम्हीं हो भक्तों के आधार।
ना कुछ "ध्रुव" बालक अज्ञानी; पाँच वर्षमें वह प्रण ठानी;
प्रभु ने सो साँची कर मानी; दिया अटल-अधिकार॥
तुम्हीं हो भक्तों के आधार।
कहाँ 'हिरणकश्यपु' बल-धारी?; कहाँ बाल-'प्रह्लाद' अनारी;
किया उसी के हित "बनवारी"; "नरसिंही"-अवतार॥
तुम्हीं हो भक्तों के आधार।
पाण्डव वन वन फिरत दुखारे; दुर्योधन के छल से मारे;
दीन-दयाल! अनन्य तुम्हारे; यश पाया संसार॥
तुम्हीं हो भक्तों के आधार।
भक्त 'विदुर' की भाजी चाखी; 'द्रुपद-सुता' की लज्जा राखी;
दें? भगवन्! किस किसकी साखी; किये अमित-उद्धार
तुम्हीं हो भक्तों के आधार।
गणिका, गीध, अजामिल सारे; परम-पतित "गोविन्द" उबारे;
जन "शैलेन्द्र" शरणमें रखकर; कर दो केशव! पार॥
तुम्हीं हो भक्तों के आधार।

कथा-प्रारम्भ

अट्ठारहवें दिन हुआ; भारत-समर तमाम।
"धर्मराज" से इस तरह; बोले श्री "घनश्याम"॥

"राजन्! अब युद्ध समाप्त हुआ; चलिये, और राज्य कीजियेगा।
"धृतराष्ट्र" तथा गान्धारीको; समझाकर शान्ति दीजियेगा॥"
आज्ञा पाकर सब भ्राताों ने; "हस्तिनापुरी" का मार्ग लिया।
"धृतराष्ट्र" भूप के आगे जा; पांचों ने दण्ड-प्रणाम किया॥



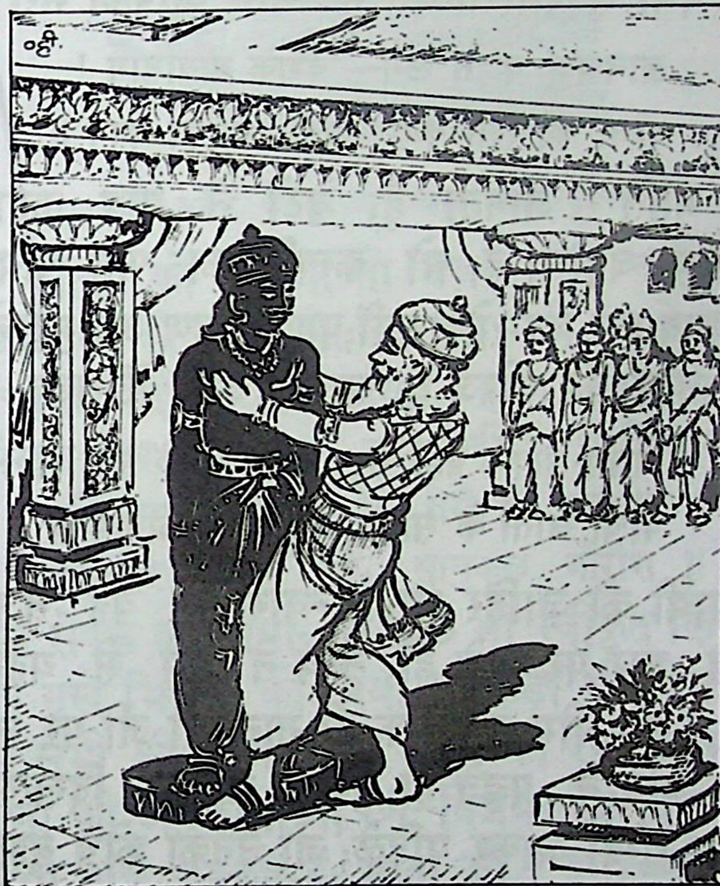
धृतराष्ट्र और पाण्डव।

रूखे मुख "धृतराष्ट्र" ने; दी सब को आशीश।
क्रोध, मोह मय शब्द यों; फिर बोले अवनीश॥

"गोपाल! आज पाण्डव-दल ने; कौरव-दल को संहारा है।
लेकिन इतना तो बतला दो; "दुर्योधन" किस ने मारा है?॥
"केशव" बोले-"दुर्योधनको; भट "भीमसेन" ने मारा है।
उस ही योधा ने वास्तव में; पृथ्वी का भार उतारा है॥"

"ज्ञान–चक्षु" कहने लगे–"धन्य "भीम" बलवीर !।
तनिक कण्ठ से लगा लूँ; आओ, मेरे तीर ॥"

"मायापति" आशय समझ गये; यदि "भीम" हाथमें जायेगा ।
तो उन बलधर के हाथों से; बस ढेर पड़ा रह जायेगा ॥
इस लिये 'भीम' का पहुँचाना; 'केशव' को उचित न जान पड़ा ।
लोहे का "भीम" बना प्रभु ने; भूप के सामने किया खड़ा ॥



धृतराष्ट्र और लोहके भीमका मिलन ।

ज्यों ही मूर्तिका हाथ नृप ने; ज़ोर के साथ में पकड़ लिया ।
त्यों ही एक ही मरोड़ लगा; उसका चूरा कर फेंक दिया ॥

लोह–भीम को चूर कर; फिर रोये बल धाम ।
"हा बलधारी–भीम भट; तू भी आया काम ॥"

नृप "अन्ध-चक्षु" का रोना सुन; माधव बोले कुछ मुसकाकर ।
"राजन् ! क्या लाभ उठाओगे ?; बेकारण रोकर, चिल्लाकर ॥
हे राजन् ! शोक त्यागियेगा; मरकर भी कोई मिला कहीं ? ।
आपकी दया से दयाशील !; भट भीम आपका मरा नहीं ॥"

ज्ञानचक्षु कहने लगे–"बेशक मायाधाम !–
दीनों की रक्षा करें; यही आपका काम ॥

मैं भली भांति से जानता हूँ; बेटों ने पाप कमाया है ।
केशव से वैर बढ़ाया है; सो करणी का फल पाया है ॥
मुझको अब इस का शोक नहीं; पाण्डव-गण अब मुझ से न डरें ।
जायें, जनता को धीरज दें; सानन्द देश में राज्य करें ॥"

आज्ञा पाकर वहां से; गान्धारी के पास ।
पांचों भ्रातों के सहित; पहुँचे जगन्निवास ॥

अन्तर्यामी को ज़ाहिर था; गान्धारी का वह तेज महा ।
इसलिये द्वार पर जाते ही; नाथ ने धर्म से यही कहा–
"राजन् ! जो भीम यकायक ही; गान्धारी जी पर जायेगा ।
तो एक दृष्टि के पड़ते ही; ख़ाक का ढेर दिखलायेगा ॥
इसलिये तुम्हीं जाकर पहिले; जो उनका क्रोध बुझाओगे ।
तो उस तेजस्विन देवी से; भाई की जान बचाओगे ॥"

धर्मराज ने देवि को; झुक कर किया प्रणाम ।
एवं घिघियाते हुए; बतलाया निज नाम ॥



गान्धारी और श्रीकृष्ण--व्यास सहित पाण्डव।

देवी ने आँखों को खोला; तो नज़र पड़ी नाखूनों पर।
उस तेजस्विनी की शक्ती से; आ गये मही पर वे झड़ कर॥
भागे चारों भाई फ़ौरन; हाहा, हाहा चिल्लाने लगे।
श्री धर्मराज सिर नीचा कर; उस देवी से घिघियाने लगे॥

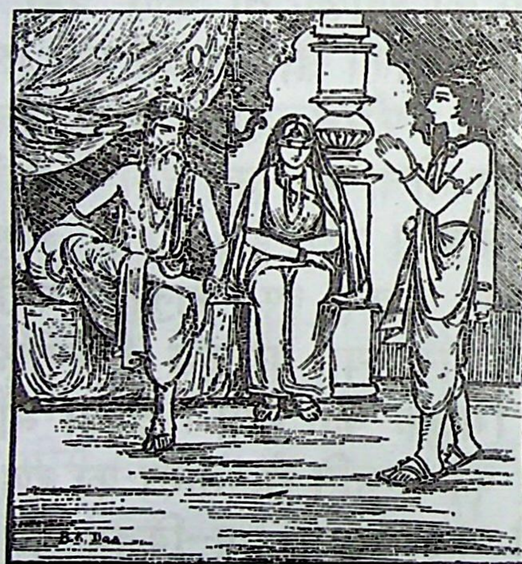
त्राहि अम्ब ! पूरण हुई; तेरी ही आशीश।
कृपा-कोर पाकर हुए; सानुकूल गौरीश॥

हाहा कर सेवक हार गया; पर कुछ भी स्वीकृत किया नहीं।
बरसों के भूखे भिक्षुक को; मैया ! टुकड़ा भी दिया नहीं॥
अन्त में सभी की सम्मति से; भारत का रण ठहराया है।
इन चरणों की अनुकम्पा ने; रण—विजय—पत्र दिलवाया है॥
हम भी तो पांच टहलुवे हैं; माता जी ! दया—दृष्टि कीजे।
दुर्योधन, दुःशासन समान; चरणों में हमें डाल लीजे॥"

"गान्धारी" कहने लगी—"सुनो धर्म-अवतार।
इसमें कोई शक नहीं; थे वे पापागार॥

लेकिन कितना ही हो कुपूत; मां का तो वह छौना ही है।
लोहे से भी कमतर हो-पर; दुखिया को तो सोना ही है॥
"वे क्यों चल दिये?"-सोचकर यह; कुछ मुझे न रोना आता है।
हां, यादव के षड़यन्त्रों पर; कुछ क्रोध अवश्य समाता है॥
दो तरफ़ा आग लगा करके; इतना भारत करवाया है।
वास्तव में केवल "माधव" ने; भारत का दिया बुझाया है॥
मैं कहती हूँ-अब "माधव" भी; सुख-नींद न सोने पायेंगे।
यदुकुलवाले भी इसी तरह; लड़-भिड़ कर मारे जायेंगे॥"

"गान्धारी" का शाप सुन; बिहँसे करुणा-ऐन।
आगे बढ़ कर शान्ति-निधि; बोले मीठे बैन॥



श्रीकृष्ण और धृतराष्ट्र-गान्धारी।

"फूफी ! तुम ही तो कहती थीं; धर्म की विजय हो जायेगी।
एवं अधर्म--प्रिय-खल--समाज; इस भारत में सो जायेगी॥

हो गया तुम्हारा ही कहना; अब क्रोध-मोह किस बातका है?।
हे क्षमा-मये ! अब क्षमा करो; विह्वलतामें रक्खा क्या है ?॥"

"गान्धारी" कहने लगी–"सुनिये लीलाधाम !!
आया है अब पूर्त्ति पर; द्वापर का भी काम ॥

जाइये, इन्हें ले जाइयेगा; भारतका राज्य दिलाइयेगा।
फिर कुरु-क्षेत्र में चलियेगा; कुल के उपकर्म कराइयेगा ॥
यह शाप क्रोध भी स्वयं नहीं; इनके भी तुम उत्तेजक हो।
करुणानिधि ! लीलाधारी हो;सब जीवों के तुम प्रेरक हो ॥"
आज्ञा पाकर श्रीधाम चले; फिर सभा-भवन में आये हैं।
कौरव-पति-पुर की गली गली; जय के धौंसे बजवाये हैं ॥
द्वारे द्वारे बन्दन-वारे; हर राह राह रचनायें हैं।
उस धर्म-सभा में मूर्त्तिमान; मानो सारी शोभायें हैं ॥
शुचि-गन्धों से उबटन करके; नृप को स्नान कराये गये।
पावन-पट,भूषण,साज, साज; सिंहासन पर बिठलाये गये ॥
विप्रों ने वेद-मन्त्र गाये; देवों ने जय जय कार किया।
"माधव" ने अपने हाथों से;पाण्डव-पति का शृङ्गार किया॥
मागध, बन्दी जन, भाटों की; जय कार बराबर आती है।
वामाङ्ग द्रौपदी गांठ बाँध; देवी की भांति सुहाती है ॥
'श्रीपति' ने निज कर-कमलों से;'धर्मज'को मुकुट पिन्हाया है।
चौदह लोकों में एक साथ;"जय जय" का नाद सुनाया है ॥
विप्रों को दान-मान द्वारा; सन्तुष्ट कराया नृपवर ने।
याचक गण और सेवकों को; उपहार दिलाया नृपवर ने ॥

प्रजा-वर्ग ने हृदय से; पूर्ण निभाई नीति ।
जन "विनीत शैलेन्द्र" अब; गाओ कोई गीत ॥

गायन

तुम्हें हिन्द की ताजदारी मुबारिक ।
हमें छत्र-छाया तुम्हारी मुबारिक ॥
हुई मुद्दतों में फ़तह राजवर की-
महानन्द यह शान्ति-कारी मुबारिक ।
मुबारिक विहारी तुम्हें पार्थ से जन-
जनों को विपिन के विहारी मुबारिक ॥
जहाँ दार ! खुश हों, जहां दार तुम से-
हमें यह कथा प्यारी प्यारी मुबारिक ॥

—: शुभमस्तु :—

इति—ऐषिकपर्व ।



महाभारत-स्त्रीपर्व ।

मृतक-संस्कार.

सरल छन्दोबद्ध.

"शैलेन्द्र-विनीत" कृत.

कथा प्रारम्भ.

श्रोतागण ! पाण्डव-राज-तिलक; इस कारण नहीं बढ़ाया है।
एक ही पहर के पीछे फिर; वह करुणा-क्रन्दन आया है ॥
"धृतराष्ट्र" तथा "गान्धारी" ने; सारा दस्तूर निभाकर के ।
उन जलज-नयन करुणा कर से;इस भाँति कहा,करुणाकरके॥-
"हे महामहिम ! इस जगह खूब; जलसे और रंग छा रहे हैं ।
उस जगह कुटुम्बी लोगों को; कौवे और श्वान खा रहे हैं ॥
घर में विधवायें रोती हैं; बाहर अनाथ बिलखाते हैं ।
उस ओर देश के वीरों पर; कौवे और गिद्ध दिखाते हैं ॥
यह शोक-काल का उत्सव है; केवल दस्तूर चुकाना है ।
अधिकारी एक बना करके; अधिकारी पार लगाना है ॥
इसलिये शीघ्र चलकर माधव !; वह अनुष्ठान भी निबटा दो ।
भारत-बलिदानी वीरों की; मिट्टियाँ ठिकाने लगवा दो ॥ "

यह करुणा–मय शब्द सुन; उठे शीघ्र घनश्याम ।
राज–भवन में फिर मचा; महा–घोर–कुहराम ॥

अन्धों की लाठी टूट गई; बाजू गिर गये बुढ़ापे के ।
यह अट्ठारह दिन भारत के; थे मानों ख़ास रँड़ापे के ॥
भगवन ! जिन महलोंमें कलतक;जमघट था इन्द्र अखाड़ोंका ।
वह अड्डा है विधवाओं का; अथवा निकास है राँड़ों का ॥
कुछ यही नहीं, भारत भरकी; उसदिन लाखों ही ललनायें ।
निकली होंगी अपने घर से; बनकर बेचारी विधवायें ॥
ना कुछ घर की चिनगारी ने; ऊँचा नीचा आकाश किया ।
हम तो इतना ही कहते हैं; भारत ने "भारत" नाश किया ॥
सौ विधवायें रोती धोती; महलों से बाहर आती हैं ।
पीछे आलियाँ दासियाँ सब; हाहा चिल्लाती आती हैं ॥
अध खुले केश, रूखे मुखड़े; आँखों से आँसू धार बहे ।
वह महल उन्हें शमशान हुआ; बैरी सारे श्रृङ्गार हुए ॥
छातियाँ पीटती जाती हैं; धूल में लोटती जाती हैं ।
लाड़ों से पाली ललनायें; लोहू में सनी दिखाती हैं ॥

गिरती पड़ती नारियाँ; आई उस स्थान ।
नज़र आरहा हर तरफ़; बियावान शमशान ॥

खूनकी कीच, लोथों का ढेर; कौवों का जमघट खाली है ।
है चहल पहल डाकनियों की; वैसे वह मरघट खाली है ॥
तिरछे रथ कहीं फँसे आधे; रथ के नीचे कुछ लाशें हैं ।
धड़ कहीं नुचा अधकटा पड़ा; खिंच गईं किसी की आंखें हैं ॥
कट गये किसी के हाथ पैर; नाकका किसी की पता नहीं ।
कुत्ता खींचे जा रहा कहीं; गीदड़ दाबे जा रहा कहीं ॥

आधा मुँह कहीं दीखता है; जबड़ों का कहीं निशान नहीं।
माथे की सिर्फ खोपड़ी है; चमड़े का ऊपर नाम नहीं॥
भुजबन्द बँधे बाजू कितने; और मुकुट बँधे मस्तक कितने।
पैरों से कुचले जाते हैं; आँख के भरे गोलक कितने॥
छोटे छोटे से बिरवों में; वीर–गण पड़े हैं अध खींचे।
सिर आगे को, और धड़ पीछे; हाथी ऊपर, सवार नीचे॥

कहूँ ? कहाँ तक वहाँ का; वह बीभत्स-बखान।
श्रोतागण ! बस समझ लो; है आखिर शमशान॥
पहुँचीं बिलपाती हुईं; अबलायें दुखियारि।
अपनी अपनी लाश ले; "हाहा" रहीं पुकार॥

कोई "हा स्वामी" कहती हैं; कोई "हा बेटा" चिल्लाईं।
कोई लाश पर मस्तक रख; बेहोश हुईं, या बिलपाईं॥
अपने अपने स्वामी का यश; आवर्त्त लगा कर गाती हैं।
फिर उठती हैं, फिर गिरती हैं; सिर पीट, पछाड़ें खाती हैं॥
गान्धारी, कुन्ती, पाञ्चाली; दुर्योधन–त्रिय, कुरु–अबलायें।
दुखियारि सुभद्रा आदि सभी; बिलपाईं लाखों महिलायें॥

मायापति कहने लगे–"करो न ज्यादा शोर।
उस भावी के ज़ोर से; हैं सारे कम ज़ोर॥

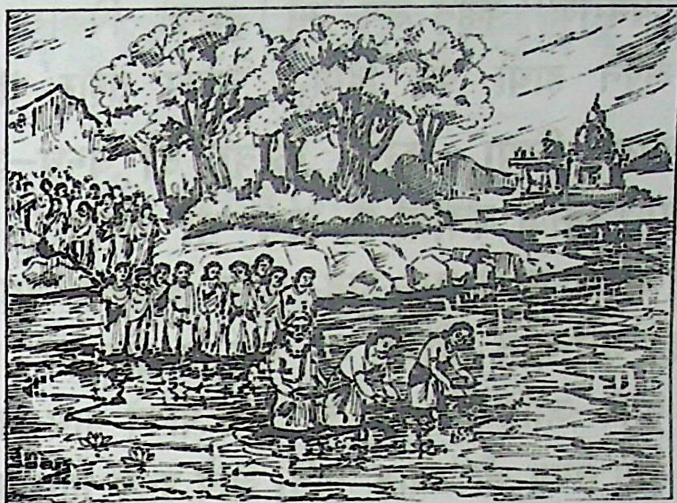
पृथ्वी, आकाश, सूर्य्य, तारे; जल, थल, जो कुछ हैं त्रिभुवन में।
सुर, नाग, असुर, गन्धर्व, मनुज; हैं जन्म-मृत्युके बन्धनमें॥
जो आयेगा, सो जायेगा; इसमें क्यों ? क्या! की गुज़र नहीं।
यह पञ्च-तत्त्व वाला पिंजड़ा; दुनियामें पाया अमर नहीं॥

देवियो ! व्यर्थ क्रन्दन न करो; यह ही सेवा सुख-कारी है ।
पति को गोदी में धरे हुए; शैया अब चिता तुम्हारी है ॥
जैसे जीवन में जीवन दे; जीवन-धन को अपनाया था ।
तन, मन से हुक्म बजाया था; सेवा में प्राण लड़ाया था ॥
वैसे ही अन्तिम-समय आज; उन की ही हितकारिणी बनो ।
दुनियादारी से मोह छोड़; स्वामीकी सहचारिणी बनो ॥

गायन

नारि को है कब तक संसार ? ।
जब तक इस पापोद जगत् में; रहे स्व-पति परिवार ॥
जिस दिन कर्ण-धार कर छोड़; उस दिन सब बेकार ।
निराधार या अन्धकार में, बन्द धर्म का द्वार ॥
फिर क्यों कर दग्ध-तन नारिका, होना है उद्धार ? ।
न धर्म कुछ है, न कर्म कुछ है; केवल पति का भार ॥
हरिसे बढ़कर पतिव्रताको, पति-पद हैं हरि-द्वार ।
पति तक गति है, पतितक रति है; पति तक प्रति शृंगार ॥
पति न रहे, बेपति को सारे, आडम्बर हैं भार ।
कह 'विनीत'-सत और सती का; है सम्बन्ध-विचार ॥

जगन्नाथ के हुक्म से; नारीं गई चुपाय ।
संस्कार होने लगे; चन्दन-चिता बनाय ॥
धर्मराज इत्यादि ने; किये मृतक-उपकर्म ।
वैदिक-नियमों के सहित; हुआ पूर्ण कुल-धर्म ॥



वीरगतिवालोंके लिये तिलाञ्जलि ।

"कुन्ती"बोली–"हे धर्म पुत्र !; कर्ण भी तुम्हारा भाई है ।
कारण-वशात् इतने दिन तक; यह तुम से बात छिपाई है ॥
जैसे तुम खुद धर्मात्मज हो; वैसे ही यह सूर्य्यात्मज था ।
हे तात ! आज बतलाती हूँ; प्रिय "कर्ण"तुम्हारा अग्रज था ॥
इसलिये आज के दिन थोड़ा; उस भाई का उपकार करो ।
उसका मृत-संस्कार कर दो; उसकी आत्मा उद्धार करो ॥"



कुन्ती और पाण्डव ।

"धर्मराज" कहने लगे-"माँ ! तुझको धिक्कार ।
अपने हाथों कर दिया; बेटेका संहार ॥

तूने ही बात छिपा करके; करवा दी बन्धु-जुदाई है ।
क्यों माता ! आज बताती है; कर्ण भी तुम्हारा भाई है ॥
स्त्री-जाति में आज से बस; यह त्रुटि अवश्य आजायेगी ।
कितनी ही गुप्त-बात होगी; पर वह न छिपाने पायेगी ॥

नारि-जाति को शाप दे; लगे पीटने माथ ।
उसी समय श्री"व्यास"मुनि; आये प्रभुके साथ ॥

बोले-"राजन् ! यह रोना तो; सीमा पर कभी न आयेगा ।
उठते, बैठते तथा सोते; आत्मा को सदा जलायेगा ॥
यह मोह-अग्नि कहलाती है; इसको ज्ञान से बुझा डालो ।
श्री"भीष्म-पिता"के पास चलो;सारा सन्देह मिटा डालो ॥"

आज्ञा पाकर"व्यास" मुनि; एवं यादव-नाथ ।
"धर्म राज" जी चल दिये; कुछ ऋषियों के साथ ॥

-: शुभमस्तु :-

इति स्त्रीपर्व ।



महाभारत-शान्तिपर्व ।

भीष्म-निर्वाण.

सरल छन्दोबद्ध.

"शैलेन्द्र--विनीत" कृत.

कथा प्रारम्भ ।

शर--शय्या पर पड़ा था; वह भारत का हाथ ।
जा रक्खा नर--नाथ ने; उन चरणों पर माथ ॥
भीष्म पिता के पास जब; पहुँचे धर्म--नरेश ।
देखा घायल वीर ने; नृप का कठिन कलेश ॥

लाखों नर--हत्या के कारण; नर--पति में वह शोभा न रही ।
सर--ताज सहस्रों कटने से; सर--ताज में वह प्रतिभा न रही ॥
तन--क्षीण, विहीन कान्ति चहरा; आत्मिक मलीनता छाई है ।
श्री दीन--बन्धु के सेवक पर; प्रत्यक्ष दीनता छाई है ॥
जो "श्री" बाक़ी थी उस मुख पर; दर दर के धक्के खाने पर ।
वह "श्री" क्या जाने?--कहां गई?; श्री महाराज बन जाने पर ॥
इसको क्या अधिक बढ़ाना है?; कारण केवल नर--हत्या है ।
आत्मा पर एक धुक धुकी है; चहरे पर ख़ासी लज्जा है ॥

आंखों ने उठना चाहा--पर; ऊपर मस्तक भी उठा नहीं।
जिह्वा ने एक 'प्रणाम' छोड़; 'भटवर' से कुछ भी कहा नहीं॥
नृप का मस्तक स्पर्श किया; उस घायल--वीर--आत्मा ने।
आत्मा से आशीर्वाद दिया; उस सच्ची धीर--आत्मा ने॥

"यादवेन्द्र" के साथ में; बैठे जब नर--पाल।
भीष्म पितामह ने कहा; समझ भूप का हाल॥

"दिन है आनन्द मनाने का; राजन् ! हर तरफ़ बधाई है।
लेकिन ऐसे शुभ--अवसर पर; मुर्दनी किस लिये छाई है?॥"
राजा बोले--"आनन्द नहीं; दिन है--मातमी मनाने का।
रोने का, और रुलाने का; शरमाने का, पछताने का॥
मैं सज्जन नहीं, अनाड़ी हूँ; कुल--द्रोही--हत्या--कारी हूँ।
प्यारे बान्धव, बन्धुवों विना; मैं राजा नहीं--भिखारी हूँ॥
जिसने गुरु, मित्र,बान्धवों का;गिन गिन कर जोड़ा फोड़ा है।
ऐसे पामर, हत्यारे को; जो कहा जाय, सो थोड़ा है॥
कुरबान किये हैं, तात--भ्रात; बलिदान कर दिये बेटे हैं।
गुरु द्रोणाचार्य स्वर्ग में हैं; श्रीमान् यहां पर लेटे हैं॥
सारे वंश की महा--हत्या; माथे पर गीत गा रही है।
मुर्दनी नहीं है यह भगवन!; हत्या ही रंग ला रही है॥"

भीष्म पिता कहने लगे--"सुनिये नृप--सिरताज !।
आज तुम्हारे सामने; हैं श्री यादव--राज॥

उनकी लीला,या कृपा पाय;तुम भारत--विजय कर सके हो।
लेकिन अपने अज्ञानों से; अपने को "कर्त्ता" कहते हो॥
यह काम इन्हीं जगधर का है; भृकुटी में जग--विस्तार करें।
यह काम इन्हीं नट--वर का है; उद्धार करें--संहार करें॥

मेरा-तेरा है नाम फ़क़त; भारत का एक बहाना है।
आना है भावी-नया-काल; द्वापर का अन्त दिखाना है॥

अस्तु, न इसका खेद कर; जपो सदा अखिलेश।
शोक-निवारण के लिये; सुनो धर्म-उपदेश॥"

धर्म ने रुदन कर बार बार; भीष्म से आत्म-वेदना कही।
"हे नाथ! बताओ तो कैसी; क़िस्मत है हम अभागियोंकी॥
छुटपन में जिनका बाप मरा; घर छूटा भरी जवानी में।
दिन आने पर कुटुम्ब खाया; गुज़री ज़िन्दगी गिरानी में॥
यदि उस दिन महाराज खुद ही; प्रतिपालन पर न ध्यान लाते।
तो हम अनाथ भूखे प्यासे; क्या पता? कहाँ पर मर जाते?॥
उस के बदले हम नीचों ने; प्रभु वर पर यह उपकार किया।
अपने पालक, अपने रक्षक; गुरुओं का ही संहार किया॥
उन दुःखों से, उन यादों से; जल रही दास की छाती है।
यह सुख विधवाका भूषण है; यह राज्य सांप की थाती है॥
बस नाथ! आज इस पापी को; कुछ ऐसा मार्ग बताइयेगा।
इस कुल-हत्या, गुरु-हत्या की; यह भीषण-तपन बुझाइयेगा॥
अथवा अब आज्ञा दीजेगा; वन में ज़िन्दगी बिताऊँ मैं।
दुनिया वालों को दीन बन्धु!, हत्यारा मुँह न दिखाऊँ मैं॥

गायन

जाति को, या वंश को; हो हानि जिसकी जाति से।
काट लो, पापी का सिर; दो ठोकरें दो-लात से॥
है वही शृङ्गार इस संसार में त्रैलोक का-
हो सुगन्धित देश भर, जिस कीर्त्ति-मय की ख्याति से।

क्यों कर उसे हम नर कहें ?; वह नाग है-जिसकी कभी-
मां बाप से बनती नहीं; या लाग है, कुल-भ्रात से ॥
फूट, हत्या, स्वार्थ, धोखा; हैं उसी पापी के गुण-
हानि हो संसार को; जिस नीच के अपघात से ।
एक हो, उन्नति करो, छाती लगाओ जाति को-
रंग है "गोविन्द" यह "शैलेन्द्र" की हर बात से ॥

भीष्मपिता कहने लगे- "सुन राजन ! मतिधीर ।
कितने दिन के लिये है, यह क्षण--भंग शरीर ॥

हम सब पानी के बुल्ले हैं; पानी पर तैरा करते हैं ।
जो ग्रन्थि वायु की टूट गई; तो पानी ही में मरते हैं ॥
पानी में उठ, पानी में मिल, पानी का खेल दिखाते हैं ।
वास्तव में पानी-पानी है; कब आते हैं ? कब जाते हैं ? ॥
उठना, मिटना, नैसर्गिक है; जो प्रकृति रूप बन आया है ।
"क्यों?"-का उत्तर सद्-ग्रन्थोंने; "हरि-इच्छा" पर निबटायाहै॥
उठनेवाले उठते ही हैं; मिटनेवाले मिट जाते हैं ।
बनने, मिटने का दृश्य देख; बुल्ले क्यों शोर मचाते हैं ? ॥
तुम भी तो उसी तत्त्व के हो; तुम भी तो उसी चाह में हो।
तैयार रहो, दिन आता है; तुम भी तो उसी राह में हो॥
यह अपना अपना बन्धन है; जो इन गतियों को प्राप्त हुआ।
दिन-रात बराबर चला किये; सीमा पर सफ़र समाप्त हुआ॥
प्यारे धर्मज ! शान्ति का मार्ग; राज्य में, वंश में कहीं नहीं।
है सत्य-धर्म-हरि-भक्ति जहां; प्रत्यक्ष-रूप है शान्ति वहीं ॥

अच्छा हो–कुछ समय तक; कर राजन ! सत्संग ।
निश्चय ही हो जायगा; शोक–मोह–दुख–भंग ॥

गायन

मोह, सन्ताप को सत्संग जला देता है ।
द्रोह–विभ्रान्ति को सत्संग मिटा देता है ॥
खुली है राह यही–भक्ति, मुक्ति, वैभव की–
द्वैत के भाव को सत्संग उठा देता है ।
विदित है लोक को चन्दन की मयत्री राजन् !
स्व-बान्धवों को जो चन्दन ही बना देता है ।
"विनीत" को भी "शैलेन्द्र" हो सत्संग प्रसाद–
कुसङ्ग तो यहां घड़ियोंमें गिरा देता है ॥

जन्म, मृत्यु संसार में; हैं दोना यक साथ ।
पकड़े हैं, प्रति जीवका; प्रति क्षण दोनों हाथ ॥

धनवाले हैं, बलवाले हैं; सब करने–धरनेवाले हैं ।
चाहे लाखों वर्ष भी जियें; फिर भी तो मरने वाले हैं ॥
चल देते हैं, आप ही आप; त्रैतापों को सहते सहते ।
डेरा छोड़ कर सिधाते हैं; "मेरा–मेरा" कहते कहते ॥
ब्रह्मा, शिव, विष्णु मृत्यु-वश हैं; मेरी-तेरी चलती क्या है ?।
त्रैलोक–कर्म-बन्धन में हैं; जड़–जीवों की गिनती क्या है ?॥
जो पैदा है, नापैद है वह; जो आता है, सो जाता है ।
जो जैसी करणी करता है; वह वैसा ही फल पाता है ॥

राजन् ! जिसको अन्तमें; रहता जिसका ध्यान ।
वह पाता है योनि वह; राजा ❀ भरत-समान ॥
इसलिये न झूँठा मोह करो; श्री कृष्ण-नाम स्मरण करो ।
श्री यादवेन्द्र, माया-धारी; बनवारी का चिन्तवन करो ॥
श्री राम-नाम शिरमौर समझ; सर्वदा रटो, सर्वदा कहो ।
श्री राम-छत्र-छाया पाकर; सानन्द रहो, निर्द्वन्द्व रहो ॥

गायन

जिसे निर्द्वन्द्व रहना हो, वह माधवकी शरण पकड़े ।
जिसे भव-पार जाना हो; वह केशव के चरण पकड़े ॥
ज़रूरत है जिसे इस लोक, या परलोक के सुखकी–
वह दोनों लोक-पति के, सेवकों के आचरण पकड़े ।
हुआ चाहे अगर कोई, सुयश, धन, मुक्ति-अधिकारी–
वह पकड़े कृष्ण जीवन-धन, न धन पकड़े, न जन पकड़े ॥
जिसे हो चाह अय "शैलेन्द्र"; नई रंगतकी कविताकी–
तो वह 'गोविन्द' मोहनकी ही; ग़ज़लोंका वज़न पकड़े ।

राजन् ! अब तू श्रवण कर; चतुर्वर्ण के कर्म ।
सब से पहिले कहूँगा; ब्राह्मण के कुछ धर्म ॥
अध्ययन तथा अध्यापन हो; ब्रह्मका बोध, हवि-संध्या हो ।
वैदिक-विधान, शुभ-दान-कर्म; सन्तोष, शान्ति, शुचि-निष्ठा हो ॥

❀ राजा "भरत" एक मृग के बच्चेको कि जिसकी माँ प्रसव-काल हीमें मर गई थी; अपने घर ले आये। उसे बडे ही स्नेहसे पाला; परन्तु बड़ा होने पर वह हिरनोंके साथ वनमें निकल गया। राजाको उसका इतना क्लेश हुआ कि मृत्यु-समय भी वह ध्यानसे न टला; परिणामतः उन्हें वही योनि प्राप्त हुई। कुछ मुनियोंके द्वारा उपदेश पाकर पशु-योनिमें ज्ञान प्राप्त हुआ; और भोजन पानी त्यागकर उस योनिसे मुक्ति पाई।

यह ''जगत--मान्य'' कहलाते हैं;वैदिक–विधान ही के कारण ।
ब्राह्मण का'ब्राह्मण' नाम हुआ;बस'ब्रह्म–ज्ञान' ही के कारण ॥
गौ–द्विज--सेवा, पृथ्वी--पालन; क्षत्रिय का धर्म कहाता है ।
व्यापार तथा खेती करना; वैश्य को शास्त्र बतलाता है ॥
इन तीनों की सेवा करना; शूद्र के धर्म में सम्मत है ।
अपने कर्मों के पालन में; प्रत्येक वर्ण की इज़्ज़त है ॥
तूने शत्रु का दमन करके; क्षत्रिय का धर्म निभाया है ।
यह जाति–वेश का बन्धन है; तेरा इसमें कुसूर क्या है ? ॥
इसलिये शोक को त्याग भूप!;पुत्र–वत् प्रजा का पालन कर ।
गौ-ब्राह्मण की नित सेवाकर;श्रीकृष्ण-चरण का चिन्तनकर॥
राजा का धर्म प्रजा–पालन; है प्रजा–धर्म राजाज्ञा पर ।
मन्त्री का धर्म राज--हित है;तिय-धर्म स्वामि की आज्ञापर॥
दास का धर्म स्वामी की रुचि; गार्हस्थ्य-धर्म अतिथी-सेवा ।
शिष्य का धर्म गुरु की आज्ञा; वैष्णवी–धर्म हरिकी सेवा ॥

अस्तु, दान–सन्मान से; करो कृष्ण का ध्यान ।
राजन् ! कोई धर्म भी; इस के नहीं समान ॥

श्रीविष्णुदेव से बड़ा देव; है, अभी न आगे होना है ।
उन को त्याग कर देव-पूजन; पत्थर–मिट्टी का ढोना है ॥
देवों में विष्णु-देव मानो; सरिताओं में गंगाजी हैं ।
व्रत-संयम में एकादशि है; सतियों में श्री सीताजी हैं ॥
सम्पूर्ण वनस्पतियों में से; तुलसी को श्रेष्ठ बताया है ।
ग्रन्थों में श्री तुलसी-महात्म्य; ऋषियों ने ऐसा गाया है ॥
उन''हरि-कान्ता''के सेवन से; सब रोग-दोष मिट जाते हैं ।
उनका दर्शन–पूजन–अर्चन; लौकिक–सन्ताप नसाते हैं ॥

श्री "तुलसी-पत्र" शीश धरना; उनके द्वारे दीपक धरना।
श्री शालिग्राम मनाने को; तुलसी देवी आगे करना॥

तुलसी का जिस भाँति से; है पौदों में नाम।
तीर्थों में शिर-मौर है; त्यों ही काशी-धाम॥

गायन

मूसक, महाघ-मुख-मसकन बिलारी सी;
सप्त-सोपान सुभग, सरन संन्यासी की।
सुर-सरिहिं सखी सी; कै शिवहिं शिवासी सो;
भैरव की भगनी सी मातु सी निवासी की॥
शान्ति-सुगुन-निधासी, दिव्य दीप्त द्वै दिवासी;
दरन दुगुन खासी, सो चौकी बिसासी की।
पुन्य पूरन प्रकाशी, भव-रोग की दवासी;
है मुक्ति जहाँ दासी, सो कासी अविनासी की॥

मासों में कार्त्तिक-मास तथा; वैसाख कहाया जाता है।
विधि-पूर्वक जो स्नान करे; वह इच्छित-फल पा जाता है॥
दानों में अन्न-दान एवं; कन्या का दान बताया है।
इन दोनों से बढ़ कर महत्व; गौ-दान-मात्र का गाया है॥

राजन्! अब तू श्रवण कर; गंगा का आख्यान।
नाशक है त्रैताप का; जिसका मज्जन पान॥

संसार प्रसिद्ध सूर्य्य-कुल में; बलवान सुजान सगरजी थे।
कोटानुकोट सेनायें थीं; और साठ सहस्र कुँवर भी थे॥
राजा ने अश्वमेध करके; दिग्विजयी घोड़ा छोड़ दिया।
उन साठ सहस्र कुमारों ने; बलवानों का बल तोड़ दिया॥

राजेश्वर की त्रैलोकों में; जय की दुन्दुभियाँ व्याप गईं ।
इस महा शक्ति को देखते ही;इन्द्रकी पिंडलियाँ काँप गईं ॥
उस घोड़े को रस्ते ही में; बस चुरा लिया चुपके चुपके ।
और कपिल मुनीजीके पीछे; वह छिपा दिया चुपके चुपके॥

सारे दल में मच गई; बिला अश्व के त्राह ।
पृथ्वी पर छाना गया; हर कूचा हर राह ॥

पृथ्वी पर जब न पता पाया; तो लगे खोदने पृथ्वी को ।
तब घोड़े के आगे पाया; यक योगासीन तपस्वी को ॥
समझा—"बेशक है यही चोर;" तो गुस्से में आये भारी ।
"चाण्डाल" आदि दुर्वचन कहे; और लात किसीने दे मारी॥

परम तपस्वी कपिल से; है परिचित संसार ।
राजकुमारों को किया; एक दृष्टि में क्षार ॥

वह यज्ञ वहीं से धरा रहा; क़िस्मत के पाँसे पलट गये ।
वह भरा वंश बीरान हुआ; वह जयके बाजे उलट गये ॥
राजा को जो कुछ शोक हुआ; वह नहीं·बताने क़ाबिल है ।
केवल इनका उद्धार मार्ग; इस जगह सुनाने क़ाबिल है ॥
पाठक गण ! ज़रा विचार करें; हैं साठ सहस सरदार जहाँ ।
उनकी तमाम सेना समेत; होगा कितना विस्तार वहाँ ॥
उन सबका संस्कार करना; कोई मामूली काम न था ।
पर मृतक-क्रिया के किये विना; राजाको खुद आराम न था॥

इसी फ़िक्र ही फ़िक्र में; छूटे उनके प्राण ।
"असमंजस" उनकी जगह; हुए तेज-गुणवान ॥

"असमञ्जस" इस असमञ्जसमें; गुरुवर वशिष्ठ के पास गये ।
रो रो कर अपनी गाथा को; विज्ञान-धाम से कहने लगे ॥

"गुरुराज ! ग़रीब गुलाम आज; दुर्गति पर अपनी रोते हैं ।
हम घर में चैन कर रहे हैं; भाई मरघट में सोते हैं ॥
यह राज ताज बेकार है सब; जब तक उनका प्रतिकार न हो!
स्वर्ग भी हमें किस कामका है?;जब तक कुलका उद्धार न हो॥
हे दया-मूर्त्ति, तेजोनिधान; कुछ ऐसा यत्न बताइयेगा ।
हे नाथ ! अनाथ सेवकों का; बेड़ा खुद पार लगाइयेगा ॥"
गुरुवर बोले-"इसके निमित्त; आसान युक्ति समझाता हूँ ।
त्रैलोक-तारणी गंगा का; तुझको मैं पता बताता हूँ ॥
जब विष्णुदेव ने बलि-द्वारे; अपना स्वरूप दरशाया है ।
एवं अपने पादारविन्द; सुर-लोक तलक फैलाया है ॥
उस समय चरण का चरणामृत; रख छोड़ा श्रीब्रह्माजीने ।
एवं उस महाप्रसादी की; की रक्षा श्री ब्रह्माजीने ॥
रख लिया कमण्डल में उसको; उससे यक कन्या प्रकटाई ।
जो पतिततारणी, जगत-मान्य; श्री गंगा देवी कहलाई ॥
यदि तेरी तपस्या के द्वारा; वह देवि भूमिपर आ पाये ।
तो तेरे कुल के साथ साथ; उपकार लोक का हो जाये ॥

असमंजस यह वचन सुन; पहुँचे तप के काज ।
आसमान से उस समय; आई यह आवाज़ ॥

"राजन् ! घर को वापिस जाओ;तुमसे न काम बन आयेगा ।
आपके पौत्र का बेटा ही; श्री गंगाजी को लायेगा ॥"
इतना सुन "असमञ्जस" लौटे; फिर अंशुमान नर-पाल हुए ।
लेकिन सन्तान न होने से; बेचैन हुए, बेहाल हुए ॥

दैवेच्छा उनसे हुए; पैदा कुँवर दलीप ।
एवं हुए दलीप से; भागीरथ कुल-दीप ॥

भागीरथ ने गंगा-निमित्त; केशव का ध्यान लगाया है।
बारह वर्ष की तपस्या से; प्रभु को प्रसन्न कर पाया है॥
करुणाकर कमलाकान्त कृष्ण; करुणित जनपर करुणा लाये।
गोपर गोविन्द गरुड़-गामी; भागीरथके आगे आये॥

शान्ति निकेतन, सौम्य-शुठि, शुद्ध सच्चिदानन्द।
नीलाम्बुजनवदलवदन; रवि-शशी-मणि-द्युति-मन्द॥
भक्त चरण पर गिर पड़ा; हुई कण्ठ से बानि।
जय जय गोपति;गोप्य-गत; जय जय शारँगपानि।

गायन

प्रभु ! आदि देव अवतारी;रख लीजो लाज हमारी;
सुखकारी जय असुरारी; रख लीजो लाज हमारी।
मेरे पूर्वज अभिमानी प्रभु की न भक्ति पहचानी;
सो शाप--अग्नि तनु जारी; रख लीजो लाज हमारी॥
जो चरणोदक पा जाऊँ-तो उन की मुक्ति कराऊँ;
श्रीगंगा चहे भिखारी-रख लीजो लाज हमारी॥

विष्णु देव कहने लगे; चल सुत मेरे साथ।
लिखा हुआ है लोक-सुख; केवल तेरे हाथ॥

श्रीविष्णु देव जन भागीरथ; तब ब्रह्मलोक में आते हैं।
एवं ब्रह्माजी से मिलकर; गंगाजी को बुलवाते हैं॥
बोले-"गंगा बेटी, मेरी; आज्ञा को अंगीकार करो।
आकाश से पृथ्वी पर जाओ;और पतितों का उद्धार करो॥"
गंगा बोली-"श्री महाराज! आज्ञा सिर धरकर जाऊँगी।
इन चरणों के प्रताप से मैं; पतितों को पार लगाऊँगी॥

पानी में मैला धोने से; मैला अवश्य खो जाता है।
लेकिन कुछ दिन में पानी भी; खुद ही मैला हो जाता है॥
श्रीमहाराज की रज-प्रताप; मैले लोगों को तारेगा।
लेकिन उन मैले पापों से; दासी को कौन उबारेगा?॥"

विष्णु देव कहने लगे—"तुझे उबारें सन्त।
उनके चरण-प्रताप से; होगा अघका अन्त॥

तेरे स्पर्श-मात्र से खल; संसार पार हो जायेंगे।
जो सन्त नहाने आयेंगे; वे तुझ को पार लगायेंगे॥"
गंगा सुनकर जल रूप हुई; बोली—"बेटा! आगे चल दे।
पहिले ऐसा धृतधर बतला; जो मेरा भार सहन कर ले॥
भागीरथ ने फ़ौरन आकर; शंकर की कठिन तपस्या की।
एवं गंगा के भार हेतु; उन महामहिम से इच्छा की॥
शिवजी ने वह स्वीकार किया; धारा-प्रवाह से गंग बहीं।
लेकिन शम्भु की जटाओं में; छः महीने तक घूमती रहीं॥

ज्यों ही शिवकी जटों में; गंगा गई समाय।
त्यों ही भोला नाथजी; गये समाधि लगाय॥

भागीरथ ने फिर स्तुति की; तो शंकरजी ने छोड़ दिया।
लेकिन थोड़ा ही चलने पर; हिमगिरि ने उन को रोक लिया॥
अब वेचारे फिर चिल्लाये; गंगा बोली-"मत घबड़ाओ।
इन्द्र के यहाँ जाकर पहिले; ऐरावत गजको ले आओ॥
फिर भागीरथ ने तप करके; ऐरावत ज्यों त्यों पाया है।
लेकिन अब खुद ऐरावतको; अभिमान नाक पर आया है॥
बोला—"जाओ अवकाश नहीं; यह कौन व्यर्थ की मौत मरे।
जो ज्यादा उसे ज़रूरत हो; तो गंगा मुझ से व्याह करे॥

राजाने आकर कहा; गंगासे सब हाल।
देवीने उत्तर दिया; जाओ मेरे लाल॥
कहना उस कामी पापी से; मेरी यक शर्त्त निभा लाये।
तो बिला बहस और बिला उज्र; वह मुझसे शादी कर जाये॥
यदि ऐरावत तीन ही बार; मेरे धक्कों में ठहराये।
तो उसको अपना स्वामी कह; यह गंगा दासी हो जाये॥"
ऐरावत ने गंगकी; ली वह आज्ञा मान।
भागीरथ के साथमें; चला सहित अभिमान॥
लेकिन एक ही थपेड़े में; उस पापी का मन ऊब गया।
दूसरा थपेड़ा लगते ही; अभिमानी जलमें डूब गया॥
चिल्लाया–"हाहा ! मा गंगे !; रक्षा कीजे, रक्षा कीजे।
फल पाया अपने पापों का; सेवक को प्राण–दान दीजे॥
तुम माता हो, तुम देवी हो; तुम जगत तारणी अम्बा हो।
मैं पतित अधम अज्ञानी हूँ; तुम पतित पावनी गंगा हो॥"
करुणा करके देवि ने; दिया प्राण का दान।
देवी बोली–"पुत्र ! अब; मेरी आज्ञा मान॥
बेचारे बहुत सताये हैं; भागीरथ का सुपास कर दे।
फोड़ दे हिमालय का दामन; बेटा! मुझको निकास कर दे॥"
आज्ञा पाकर श्रीगंगा की; हाथी ने पर्वत फोड़ दिया।
गंगाजी को भागीरथ ने; अपने रथ के हमराह किया॥
चलने पाये थे नहीं; राजा ज्यादा दूर।
दखा जह्नु मुनीश ने; गंगाजी का नूर॥
श्रद्धा समेत "जयराम" कहा; एवं फौरन आचमन किया।
मानो भिक्षुकी जमा में से; निर्धन का वह धन हरण किया॥

चिल्लाये रोये राजा भी; लेकिन न प्रभाव हुआ कुछ भी।
हाहा भी की, विनती भी की;लेकिन न लगाव हुआ कुछ भी॥

फिर भागीरथ विष्णुपर; जा पहुँचे तत्काल।
रोरो कर कह ने लगे; अपना सारा हाल॥

फिर विष्णु देव ने आकर फिर; मुनिराज जह्नु को समझाया।
एवं उन के जंघा द्वारा; श्रीगंगा को फिर प्रकटाया॥
जह्नु की जाँघ से आगे बढ़; शुभ सागर तक सञ्चार किया।
भागीरथ के पुरुषाओं का; एवं जग का उद्धार किया॥

गायन

उस ब्रह्म-रूप का ध्यान जहाँ आता है;
तो सहसा सारा साहस उड़ जाता है॥
इस ओर घोर कलिकाल; दोष दुख मान;
स्वार्थ मत शाल; चाल दिखलावे॥
उस ओर महा अज्ञान; मोह मद आज;
अनिश्चल ध्यान; बुद्धि चकरावे-॥
यह हाल कहो फिर कौन मुक्ति पाता है-तो....
पर-हे गंगे; जब याद तुम्हारी आवे॥
नीच से नीच "शैलेन्द्र" शान्ति पा जावे-
"गोविन्द" बूंदभर जल से ही नाता है॥

राजन्! इस गाथा के आगे; शिव का माहात्म्य बताता हूँ।
एवं उन अवढरदानी का; थोड़ा इतिहास सुनाता हूँ॥
था वधिक एक पापी पिशाच; जीवों को मारा करता था।
जीवों का माँस खिलाकर ही; वंश का गुज़ारा करता था॥

दैवात एक दिन व्याधे को; कोई भी जानवर मिला नहीं।
उस रोज़ किसी ने उस कुल में; माँस को हाथ से छुआ नहीं॥
श्रीफल पर बैठा हुआ नीच; भूखों से रुदन मचाने लगा।
उस तरु के नीचे एकायक; सुन्दर प्रकाश दिखलाने लगा॥
उस के नीचे शिव पार्वती; आये-और नृत्य मचाने लगे।
ऊपर से आँसू भरे पत्र; शंकर के शिर पर आने लगे॥
इतनी ही जरा तपस्या से; श्रीआशुतोष ने वर देकर।
कर दिया मुक्ति का अधिकारी;सुख-शान्ति-सौम्य आकर देकर॥

गायन

दोनों लोकों में बात निभाये चहो-
भोले बाबा से ध्यान लगाये रहो॥
ज़हर को पान करें; या रहें ज़हरियों में-
ज़हर को मार दें; ज़हरी हमारे घड़ियों में-॥
जो ज़हरे गुनाह बुझायें चहो-भोले०
त्रिलोक नाथ हैं; त्रिशूल हाथधारी हैं;॥
त्रिदेव गण्य हैं; त्रिकाल पूज्य भारी हैं-
जो देवों के देव मनाये चहो-भोले०॥

राजन्! इसका सन्ताप न कर; ईश्वर ही कर्त्ता धर्त्ता है।
"मैं-तू-मेरा" सब मिथ्या है; जो नाथ करें सो सच्चा है॥
त्रैलोक, त्रिकाल, त्रिदेव तलक; हैं कर्म-पाश के बन्धन में।
जन्म के समय से मरने तक; है कर्म मुख्य प्रतिजीवन में॥
कुल, हानि, लाभ, अपकीर्ति,कीर्ति;जीवन और मृत्यु कर्मसे है।
श्रेष्ठता, श्रेयता, सद् गति सब; पाता मानव निज धर्म से है॥

एक स्वर्ग का मार्ग है, सदा दान सन्मान ।
किन्तु न होना चाहिये; दानी को अभिमान ॥
श्रद्धा समेत जो कुछ भी बने; वह दान सर्वदा किया करे ।
लेकिन दानी देने में भी; सत् पात्र देखकर दिया करे ॥
श्रद्धा, विश्वास, स्व-लक्ष्य नहीं; जिस के दान की प्रवृत्ती में ।
वह मानों बीज डालता है; ऊसर पथरीली पृथ्वी में ॥
थे कुरुक्षेत्र में "मुद्गल" ऋषि; अतिथों की सेवा करते थे ।
पन्द्रह दिन जोड़ अन्न आदिक; हरदम भण्डारा करते थे ॥
दुर्वासा एक बार पहुँचे; ऋषि ने उन को भी भोज्य दिया ।
उच्छिष्ट अन्न का शेष अन्न; अपने अंगों पर लेप लिया ॥
प्रतिफल स्वरूप उन ऋषिवर को; स्वर्ग में श्रेष्ठ स्थान मिला ।
श्रद्धापूर्वक दान के किये; इतने दरजे का दान मिला ॥
शान्ति, कीर्ति, सुख, सुकृति-पद; सदा स्वस्ति अनुकूल ।
सब शास्त्रों में लिखा है; दया धर्म का मूल ॥
शिबि नृप की एक कहानी है; उन के गृह यज्ञ हो रहा था ।
इन्द्रासन जाने के डरसे; देवों का देव रो रहा था ॥
अन्त में परीक्षा का विचार; करके वह बाज रूप धाया ।
अग्नि को कबूतर आकृति दे; राजा शिबि के आगे आया ॥
राजा के आगे जाते ही; पक्षी ने माथा झुका दिया ।
करुणामय ने करुणा कर के; अपनी गोदी में बिठा लिया ॥
बाज ने कहा—"मैं भूखा हूँ; मेरा अहार दे दे राजन् ! ।
मैं बड़ी दूर से लाया हूँ; मेरा शिकार दे दे राजन् ! ॥"
शिबि बोले—"यह शरण में; आया मेरे आज ।
अस्तु मुझे भी चाहिये; शरणागतिकी लाज ॥

जो शरणागत को छोड़ता है; वह हत्या से भी बढ़ कर है।
जो शरणागत का रक्षक है; वह दीनानाथ—बराबर है॥
यह देह, गेह, सम्पत्ति, विभव; सारा नश्वर कहलाता है।
मरने के बाद साथ में, बस; मानवी—धर्म रह जाता है॥
इस लिये विवश हूँ पक्षिराज; मैं शरणागत को पालूँगा।
हां, बदले में देह भी कहो; तो वे खटके दे डालूँगा॥"

कहा बाज ने—"ठीक है; धन्य आर्य्य-सन्तान।
लेकिन मेरे भूखसे; निकल जायँगे प्राण॥

जीवको अहार जीव का है; जीव भी जीव से जीता है।
आहारों का, व्यवहारों का; प्रकृती में अलग सुभीता है॥
एक की आपने रक्षा की; दूसरा जान से चला गया।
कहिये, फिर ऐसी हालत में; वह धर्म आपका कहां रहा !॥
मैं तुमको मना न करता हूँ; जीभर के रक्षा कीजेगा।
लेकिन मैं भी शरणागत हूँ; मुझको भी भोजन दीजेगा॥"

राजा बोले—"तुझे भी; देता हूँ आहार।
जो चाहे सो मांग ले; पालन कर परिवार॥
कहा बाज ने—"धन्य नृप; शरण-पाल मतिधीर।
इस सेवक की क्षुधा को; दीजे भूप शरीर॥

जितना हो वज़न कबूतरका; पल्लड़ पर उसे रखा लीजे।
एवं उसकी ही समता पर; निज—तन का मांस खींच दीजे॥
राजा ने शीघ्र तराजू ले; पक्षी यक ओर बिठाया है।
दूसरी ओर काटकर मांस; तुलना के लिये चढाया है॥
धीरे धीरे सारा शरीर; काटकर चढ़ाता जाता है।
लेकिन मायावी पक्षी के; पल्लड़ न बराबर आता है॥

आख़िर आया मांस का; जब तोल में अख़ीर ।
तब पल्लड़ पर रख दिया; शिबिने सर्व शरीर ॥
दशों दिशाओं में उठा; सहसा जय जय कार ।
दया-धर्म की इस तरह; महिमा अपरम्पार ॥

हो गये प्रकट झट इन्द्र, अग्नि; राजा का स्वस्थ शरीर हुआ ।
लज्जा, संकोच, शील के वश; सुरपति भी बहुत अधीर हुआ ॥
कोटिशः धन्य कह इन्द्र गये; पूरा वह यज्ञ-विधान हुआ ।
हे राजन् ! दया-भाववाला; इस तरह पूर्ण आख्यान हुआ ॥

सब गृहस्थ के लिये है; अतिथों का सत्कार ।
गार्हस्थों को लिखा है; यह धर्मों का सार ॥

अतिथों को ईश्वर-सम माने; श्रद्धा-पूर्वक सम्मान करे ।
ऐसी पवित्र आत्माओं पर; निश्चय दाया भगवान करे ॥
कहते हैं-" एक कबूतर था; एवं उसकी पत्नी भी थी ।
भाग्य-वश एक दिन ब्याधे के; उस मृत्यु-जाल में उलझ गई ॥
देख कर कपोत लगा रोने; लेकिन नारी समझाती है ।
कैसे प्रिय शब्दों में देखो; आतिथ्य-मान दिखलाती है ॥
"प्राणेश ! प्राणधन ! एक जीव; अपने दरवाज़े आया है ।
अफ़सोस, अतिथि की सेवा में; आपका हृदय सकुचाया है ॥
यह ईश-रूप आराध्य देव; प्रभु ! इनकी सेवा कीजेगा ।
मुझ को ही क्या? खुद को देकर; इसको कुछ भोजनदीजेगा ॥
यदि द्वारे आया हुआ अतिथि; भोजन से ख़ाली जायेगा ।
तो नाथ ! गृहस्थी का सारा; वह धर्म नष्ट हो जायेगा ॥"

कहा कबूतर ने-"प्रिये; आया मुझको ध्यान ।
अपने ही सौभाग्य से; आया है महमान ॥

यह दो मुट्ठी पर और बाल; परमार्थ-मार्ग में लग जायें ।
तो बेशक हम से पापी भी; योगीन्द्रों में ही कहलायें ॥
इतना कह कर कपोत फौरन; डाली पर से तड़पाता है ।
शाबास, एक धर्म के लिये; अग्नि में शरीर जलाता है ॥

यह विचित्र गति देखकर; खुले वधिक के नैन ।
चिल्लाया सिर पटक कर; केशव ! करुणा-ऐन ! ॥

"हा! हा! जिसने जीवनभर में; आपका नाम भी नहीं लिया ।
ऐसे पिशाच, पामर शठ को; भगवन्! किसलिये मनुष्य किया ॥
हा, हा, यह पक्षी पशु तक तो; इतना विचार कर सकते हैं ।
हम मानव होकर भी भगवन्!; उलटे रास्तों से चलते हैं ॥
मर जाऊँ, भूखा या प्यासा; त्रैताप जगत के सहा करूँ ।
लेकिन आज से प्रतिज्ञा है; हिंसा का हर्गिज़ नाम न लूँ ॥"

उस कबूतरी को दिया; वहीं छोड़ तत्काल ।
नीचा सिर कर चल दिया; तोड़ मोड़ कर जाल ॥

लेकिन कबूतरी ने सोचा; अब मेरा भी कुछ काम नहीं ।
हैं दासी के मृत-स्वामि जहाँ; बस दासी भी जायगी वहीं ॥
स्वामी के विना रहे जीवित; और देखे दुनियादारीको ।
विधवा होकर सुख चैन करे; धिक्कार है ऐसी नारीको ॥"

यही सोच कर त्रिया भी; गिरी वहीं तत्काल ।
एक जाल से कट गया, जन्म जन्म का जाल ॥

देवों ने देवत्रियाओं ने, स्वागत का शंख बजाया है ।
खुद सुरपति ने सुर-मण्डलमें; उनको ऊँचा बिठलाया है ॥
यह अतिथि-मान का प्रति फल है; जो इसमें जान लगायेगा ।
वह परम धाम को जायेगा; संसार कीर्ति को गायेगा ॥

इतना सुन कहने लगे; गद्‌गद् हो नरराय।
भव–तारण हे पूज्यवर; बतलाइये उपाय॥
भीष्म ने कहा–"निःस्वार्थ तथा निर्लोभ;हृदय होना चहिये।
षट्–रिपु पहिले खोना चहिये; द्वेष के दाग़ धोना चहिये॥
सन्तोष, साम्य, दम, नियम, शौच;हरि-प्रेम,विवेक सहारा है।
अध्यात्म–वृत्ति, निज-धर्म-प्रीति;बस यही मुक्तिका द्वारा है॥
संसार त्याग वन में जाये; श्रीराम-कीर्त्तन किया करे।
ऐसा नर सदा मुक्त ही है; या मर जाये, या जिया करे॥
तप में एवं साम्य में; है इतना ही भेद।
मान अगरचे आ गया; तो आता है खेद॥
तप करते करते अगर कभी; अभिमान बीज उग आता है।
तो तपसी का तप और संयम; जड़ मूल नष्ट होजाता है॥
जाजलि ऋषि की एक गाथा है; वे कठिन तपस्या करते थे।
गर्मी से, वायु, मेघ, जल से; एवं शीत से न डरते थे॥
गर्मी से पञ्चवटी तपना; जाड़े में पानी में रहना।
सर्वदा शीत, वर्षा सहना; ऐसे तपसी का क्या कहना?॥
हो गये ऋषी यक बार खड़े; ऐसे ही यौगिक भावों में।
पक्षी ने रख घोंसला लिया; उन की उन घनी जटाओं में॥
जब योग–नींद से ऋषि जागे; एवं उनको मालूम हुआ।
तो उसी जगह पर खड़े रहे;जब तक चिड़िया का काम रहा॥
अण्डे फूटे, बच्चे जन्मे; पर आये, तथा उड़ाने लगे।
तपसी का सिर घौंसला समझ; उसमें ही आने जाने लगे॥
कुछ दिन में वह तज दिया; चिड़िया ने स्थान।
"जाजलि" को बढ़ने लगा; अब क्षण क्षण अभिमान॥

मेरे समान दूसरा नहीं; कोई तप करनेवाला है।
अपने शरीर को खड़े खड़े;चिड़ियों का घर कर डाला है॥"
गर्वांहारी हैं, इसी लिये; आवाज़ उठी-"मत भूल कहीं।
इतना तप कर के भी तपसी; तू तुलाधार के तुल्य नहीं॥
खुल गये नेत्र, सोचा मनमें; हैं! तुलाधार क्या बढ़ कर है?॥
अच्छा सबसे पहिले चलकर; परिचय करना ही बढ़कर है॥

चलकर पहुँचे ऋषि जहां; तुलाधार के धाम।
उस बनिये ने निकल कर; ऋषि को किया प्रणाम॥

फिर बोला "धन्य भाग्य मेरे; जो ऋषिवरजी चलआये हैं।
लेकिन ज़ाहिर यह होता है; प्रभु भी तापके जलाये हैं॥
तप किया समन्दर के अन्दर; चिडियों के घर भी बना लिये।
लेकिन अपराध क्षमा कीजे;कृतकार्य्य न भगवन्! अभी हुए॥"

अब तो जाजलि का उड़ा; वह सारा विज्ञान।
ना कुछ बनिया जाति का; इतना ऊँचा ज्ञान॥

बोले-"भैया तुम बनिये हो; गार्हस्थ्य मार्ग में रहते हो।
लेकिन सारी बातें तो तुम; योगी से बढ़कर कहते हो॥
यह लेन देन छल कपट भरा; घृत तक व्यापार तुम्हारा है।
कुछ नहीं समझ में आता है;भक्तिका कौन सा द्वारा है?॥"

तुलाधार कहने लगा-"सुनिये देव सुजान!।
वन में जाने से फ़क़त; बढ़े नहीं विज्ञान॥

गार्हस्थ्य मार्ग में रहकर भी; सम्पूर्ण धर्म निभ जाता है।
मेरी आखों में स्वर्ग, नर्क; सारा समान दिखलाता है॥
जो प्रभु ने कर्म सुपुर्द किया; सानन्द उसे भुगतान करूँ।
श्रद्धा रक्खूँ श्री चरणों में; केवल इतना ही ज्ञान करूँ॥

केवल उनकी ही करुणा से; बस इतनी बातें जानता हूँ।
एवं अपनी इस वृत्ती को; उस तप से बढ़कर मानता हूँ॥"

तुलाधार की बात से; आया ऋषि को बोध।
ज्ञान तथा उस साम्य से; मिटा हार्दिक क्रोध॥

इसलिये आप भी "मैं-तू" का; चिन्ता-मय भेद छोड़ दीजे।
राजा से लेकर चिंउटी तक; सर्वथा साम्य दृष्टी कीजे॥
अब धर्म तथा धन दोनों ही; जीवन सहाय कहलाते हैं।
लेकिन ज्ञानी इन दोनों में; धर्म को श्रेष्ठ बतलाते हैं॥
धन से न धर्म हो सकता है; हां, धर्मों से धन होता है।
धनवान धर्म-च्युत होने पर; आजन्म आप ही रोता है॥
जिस की आत्मा में किसी तरह; धर्म का उदय हो जायेगा।
वह धनी रहे, या निर्धन हो; त्रैलोक्य-मान्य कहलायेगा॥
इससे सारी तृष्णा त्यागो; धर्म में धर्म-पति लगे रहो।
होनी पर ही सन्तोष करो; मुँह से श्रीराधे-श्याम कहो॥
धर्मज्ञ हुए, विज्ञान किया; लेकिन तृष्णा में लगे रहे।
तो चन्दन-पादप पाकर भी; मायिक ज्वाला में जले रहे॥

कर करके मर जाइये; फिर भी मिले न नीर।
इस हालत में चतुर नर; कहते हैं तक़दीर॥

ज्ञान का कुठार मार राजन्!; इच्छा-तरुका खण्डन कीजे।
आनन्द-कन्द माधव मुकुन्द; सच्चिदानन्द में चित दीजे॥
चील से सदा यह शिक्षा ले; तृष्णा त्याग कर शांति पाये।
वेश्या से इतनी शिक्षा ले; आशा तोड़े-निद्रा आये॥
तीरन्दाज सा ध्यान बाँधे; लक्ष्य पर निरन्तर लगा रहे।
सर्पों की तरह सर्वदा ही; परिव्राजक ऐसा बना रहे॥

एकान्तवास, वन का प्रवास; स्वच्छन्द, सप्रेम विचार करे ।
जिस आत्मामें यह षट्-गुण हों; वह जग-जालोंसे व्यर्थ डरे॥
जब आत्म-ज्ञान बढ़ जाता है; संसार-तुच्छ दिखलाता है ।
जब "सोऽहं" नाद उपजता है; तब प्रज्ञा-ज्ञान कहाता है ॥
वह धर्म न धन के आश्रित है; उसमें न लोक का पर्दा है ।
हे श्रोतागण ! क्या बतलाऊँ; वह वस्तु वास्तविकमें क्या है॥
उसके आनन्द तथा रसको; क्या जाने मूरख आचारी ।
कन्या को स्वामी-भोग-सौख्य; क्या बतलायें युवती नारी ॥
इस महा-सिन्धु के शान्ति-पूर्ण; रत्नों को वह ही पाता है ।
जो एक साथ तन्मय होकर; उस जल में ग़ोते खाता है ॥

मेरा—तेरा छोड़ कर; गया दूसरी ओर ।
उसे न फिर सुन पड़ेगा; इस माया का शोर ॥

जो मानुष उभय-लोक-तृष्णा; षट्-रिपुका दमन दिखाता है ।
वह अधिकारी इस कक्षा की; पहिली श्रेणी पर जाता है ॥
प्रज्ञा-ज्ञान के लिये नर को; बनना चाहिये ब्रह्मचारी ।
गार्हस्थ्य—धर्म का पालन कर; तजनी होगी माया सारी ॥
जो मायिक आशा विषय छोड़;तन्मय हो ध्यान लगायेगा ।
वह नट नागर, बनवारी का; दर्शन अवश्य पा जायेगा ॥

गायन

सच्चे दिलसे जो कहीं एक ही फ़रियाद उठे ।
तेग़ झुक जाये वहीं—चौंक के जल्लाद उठे ॥
असर है इतना जहां नारोंमें—फिर ना मुमकिन—
जो सदा सुन के न वह, वानिये इमदाद उठे ।

दिलके कचड़ें को उड़ा जाये वह तूफ़ाँ आये-
जला दे द्वन्द्व के पर्दे को वह उन्माद उठे ॥
देखना आप ही "गोविन्द" यहां आयेंगे,
जो "शैलेन्द्र" को सच्चा वही आह्लाद उठे ॥

राजन् ! जब तक है मनुज; गृहकाजी सविधान ।
तब तक करना चाहिये; भूमि, धेनु का दान ॥

जो सुजला, सुफला, हरी भरी; भूमि का दान कर देता है ।
वह उसके बदले में मानो; स्वर्ग में जगह कर लेता है ॥
जो पापी ब्राह्मण याचक की; दी हुई भूमि छिनवाता है ।
वह दुष्ट निशाचर वास्तव में; दोनों लोकोंसे जाता है ॥
भूमि से कई दर्जे बढ़ कर; गौ देवी हमें त्रिवेणी है ।
सुख देनी है, भव-खोनी है; सीधी स्वर्ग की नशेनी है ॥
सारे देवों में केशव है; पुष्पक जैसे यानों में है ।
बस उसी तरह से याद रहे; शुभ अन्न-दान दानोंमें है ॥
लेकिन यह सारी श्रद्धायें; सत्संगति विना न आती हैं ।
उस संगति में सीधी बातें; उलटी झूँठी दिखलाती हैं ॥
सत्संगति चलती गंगा है; औषधि है भव बीमारी की ।
सीधी स्वर्ग की नसेनी है; रस्ता है श्री वनवारी की ॥

सब तीर्थों में श्रेष्ठ है; मन पवित्र, वैराग ।
दम, गुरु-सेवा, क्षम्य-गति; कृष्ण-चरण-अनुराग ॥

सारे तीर्थों में भ्रमण करे; दे दान अन्न, धन जहाँ कहीं ।
लेकिन जब तक मन शुद्ध नहीं; तीर्थों से कोई लाभ नहीं ॥

घट में ही सर्व तीर्थ समझे; मन को विशुद्ध जो किया करे।
मद-मस्त रहे माधव-पदमें; प्रभु-यश का प्याला पिया करे॥
जो दुष्ट दान वापिस कर ले; ब्राह्मण की द्रव्य हरण कर ले।
साधु से लड़े, अपकीर्ति करे; एवं गुरुजन का धोखा दे॥
गौओं के पानी को रोके; छीने धन निर्बल अपहज का।
आत्मा को धक्का दे कोई; अपमान करे प्रभु की रजका॥
भूखे से जो दुर्वाक्य कहे; एवं गुरु से अभिमान करे।
कह कर न करे, देकर ले ले; या अतिथों का अपमान करे॥
हरि कीर्त्तन से जो घृणा करे; छल, बलका सौदा सारा है।
इनमें से कोई भी गुण हो; बस वही ब्रह्म-हत्यारा है॥

धन, बल, विद्या, यज्ञ, तप; योग, भोग या जाप।
सब के लिये कुठार है; एक विप्रकी शाप॥

जब इन्द्र अहिल्या के कारण; सिंहासन से च्युत किया गया।
एवं नीतिज्ञ "नहुष" नृप को; उसका इन्द्रासन दिया गया॥
तो अभिमानी कामातुर हो; इन्द्राणी से मिलना चाहा।
लेकिन विदुषी इन्द्राणी ने; अपना सतीत्व रखना चाहा॥
कहला भेजा इन्द्रणी ने; जो मुझसे नृपति भोग चाहे।
तो परम विचित्र पालकी सज; विप्रों के कन्धों पर आये॥
कामी नृपका हो गया हुक्म; सप्तर्षि शीघ्र बुलवाये गये।
मजबूरन बेचारे तपसी; उस डोली में लगवाये गये॥
कामातुर इस पर भी उनसे; भावी वश शान्त न रहता है।
भीतर से " सर्प-सर्प " यानी; जल्दी जल्दी को कहता है॥
अब तो ऋषियों को उस शठपर; सहसा अपार छाया गुस्सा।
बोले-" कामी, पापी, दुर्जन; जा तूभी अभी सर्प हो जा॥"

हुआ नहुष तत्काल ही; अन्ध कुएँ में सांप।
ब्रह्म–शाप से इस तरह; होते हैं सन्ताप॥
इसी तरह से सत्य पर; है छोटा आख्यान।
कहते हैं श्रोता यहां; सिंह गाय का ब्यान॥

एक दिन एक गौ जंगल में; चारा चरने को जा पहुँची।
दूसरी ओर से झपट वहीं; बलवान सिंह ने आ पकड़ी॥
गौ डरी नहीं–फ़ौरन बोली; "भैया! खाना है तो खा ले।
लेकिन मरने से प्रथम मुझे; बछड़े का मुखड़ा दिखलादे॥
जो आज तेरी अनुकम्पासे; मैं घर तक जाने पाऊँगी।
तो ईश्वर की सौगन्ध करूँ; कल प्रातकाल आजाऊँगी॥"
मुसकाया सिंह तथा बोला–" मुझको चातुरी सिखाती हो।
चातुर को चाल चलाती हो; आक़िल को मूर्ख बनाती हो॥
दुनियामें कौन मूर्ख होगा; जो निकल मौत से जायेगा।
फिर अपनी जान गँवाने को; आप ही लौट कर आयेगा॥
गाय ने कहा–"जान की मुझे; ईश्वर की शपथ, न परवा है।
परवाह है केवल इतनी ही; घर पर नन्हा सा बछड़ा है॥
जो एक बार मृग-नाथ! मुझे; उसका सम्मेलन हो जाये।
तो शान्ति-पूर्वक मरने में; हिचकी तक मुझे न फिरआये॥
आत्मा की साक्षी देती हूँ; मैं अपना वचन निभाऊँगी।
बछड़े को केवल दूध पिला, निश्चय वापिस आजाऊँगी॥"

मृग–पति को आया रहम; दिया गाय को छोड़।
बड़े हर्ष से गाय ने; वन से खाई मोड़॥
घर आते ही सुरभिने; रो रो कर डकराय।
शीश सूँघ प्रिय वत्स का; छाती लिया लगाय॥

हुंकार मार, चूम कर वदन; बोली–" बेटा, ऐसे आओ।
अन्तिम दिन तेरी मां का है;सब दिल की तपन बुझा जाओ॥
आओ बेटा ! पीलो दुधवा; कल सुबह न मैया पाओगे।
मैं तुम्हें स्वर्ग में तरसूँगी; तुम यहां मुझे तरसाओगे॥

रो रो कर सतवती ने; सभी सुनाया हाल।
सुनते ही कहने लगा; कपिलाका प्रिय लाल॥

" माता ! जब सत्य धर्म पर तू; बलिदान चढ़ाने जाती है।
तो अन्त समय इस दुनिया से;क्यों इतना मोह बढ़ाती है?॥
तू मुझे वहां तरसाये क्यों; मैं तुझे यहां तरसाऊँ क्यों ?।
जब तू धर्म पर निछावर है; तो मैं भी प्राण बचाऊँ क्यों॥
माता, गौ बैलों का जीवन; है आजन्म ही भलाई का।
मालिक का पालन पोषण कर; हो जाय शिकार कसाई का॥
फिर ऐसा अच्छा अवसर भी; हर बार न मिलने पायेगा।
माँ ! जहां सुबह को जायेगी; मां का बेटा भी जायेगा॥"

यद्यपि समझाया बहुत; किन्तु न माना लाल।
आगे आगे चल दिया; भोला भाला बाल॥
गया उछलता कूदता, उसी सिंह के तीर।
बिला झिझक कहने लगा; आत्म-वीर धृत-धीर॥

" मामा जी, सत्य धर्म पर हैं; नेछावर मां बेटे दोनों।
आपके वास्ते भोजन को, हैं हाज़िर मां बेटे दोनों॥
पहिले मुझको भक्षण कीजे; पीछे मातु को सताइयेगा।
मेरे आगे मेरे मामा !; मां को न कष्ट पहुँचाइयेगा॥"

बछड़े के यह शब्द थे; गोया छिपी कटार॥
हिंसक नाहर गायका; खुद बन गया शिकार।

बोला—" प्रिय वत्स !, ख़ौफ़ छोड़ो; तुम मेरे सच्चे प्यारे हो ।
जो मुझको मामा कहते हो; तो तुम भानजे हमारे हो ॥
मौतके सामने आपहुँचे; बलिहारी ऐसे आने पर ।
ऐसे सत्य-प्रिय को खाऊँ; धिक्कार है मेरे खाने पर ॥
प्यारे प्यारे बस मौज करो; इस वन में उत्तम चारा है ।
इस पर अधिकार हमारा है; अब से यह हुआ तुम्हारा है ॥
बहुले, तुम केवल गाय नहीं; गायके वेषमें देवी हो ।
सीधी सच्ची उपकार मूर्ति; जीवों पर जीवन देती हो ॥
देवी ! पापी को क्षमा करो; बछड़े को दूध प्रदान करो ।
हे पृथ्वी की हित-मूर्ति—हृदे !; पृथ्वी भर का उत्थान करो ॥

बहुला लौटी वत्स पर; बढ़ा लाड़ और चाव ।
राजन् ! है इस तरह का; उस सत्य में प्रभाव ॥

सारे सद्गुण हैं एक तरफ़; और सत्य रत्न है एक तरफ़ ।
श्रीकृष्ण भक्ति है एक तरफ़; सारे प्रयत्न हैं एक तरफ़ ॥

राजन् ! इतना तो हुआ; ग्रन्थों का आधार ।
अब मेरा निर्धार सुन; है केवल प्रभुसार ॥

सब धर्म जाय सब कर्म जाय; सब प्रथा जाय आचारीकी ।
लोक भी जाय, परलोक जाय; पर लगन न जाय बिहारीकी ॥
सच्चे दिलसे, सच्चे बनकर; सच्चिदानन्द को रटा करो ।
निश्चिन्त रहो निर्द्वन्द्व रहो; सारे कर्मों को किया करो ॥
जब तेरी आत्म-भक्ति पाकर; माधव प्रसन्न हो जायेंगे ।
तो फिर तुझको परवाह नहीं; वे खुद ही पार लगायेंगे ॥

गायन

जिन्हें विश्वास है उनका, वे कब यों आह भरते हैं ? ।
उन्हीं की दम पै जीते हैं; उन्हीं की दम पै मरते हैं ॥
लगा रहना ही है हरवक्त, यह सुख दुःखका जोड़ा;
मगर सुख-मूर्ति के सेवक; कहां परवाह करते हैं ।
सतायें देह-दुख अथवा; गिरायें पाप गड्ढे में;
मगर वे तापहारी तो; तुम्हारी ताप हरते हैं ॥
कसम है, जो दवाओंमें भटकने की करो कोशिश;
फ़क़त् "गोविन्द" जन "शैलेन्द्र"; उन की याद करते हैं ।

इस प्रकार सत्संग में; आया फागुन मास ।
भीष्म पिता कहने लगे-"दीन-बन्धु ! सुख-राशि ॥

शुभ-मास शुक्ल सुन्दर दिन है; सेवक को अब आज्ञा कीजे ।
यह जर्जर-जीर्ण-शरीर नाथ !;आज के दिवस तजने दीजे ॥
यह वीर-भूमि यह स्वजन-संघ; यह जर्जर देह हमारी है ।
यह शुभ मुहूर्त्त, यह पुण्य-क्षेत्र; फिर साया नाथ ! तुम्हारी है ॥
ऐसी पवित्र ऐसी उत्तम; मुनि-जन भी मुक्ति न पायेंगे ।
श्रीचरणों की अनुकम्पा से; दास की कीर्त्ति सब गायेंगे ॥"

"विश्वरूप" कहने लगे;-"सुनो भीष्म बलवान ! ।
हैं जबतक संसार में; विद्यमान गुणवान ॥

जब तक वैदिक-मर्य्यादा है; जब तक कुछ भी प्रतीति होगी ।
जब तक लेखनी-राज्य होगा; तब तक आपकी कीर्त्ति होगी ॥
जाइये शान्ति-पूर्वक बलधर!; आत्मा को शान्ति दीजियेगा ।
सुर-लोक सुशोभित कीजेगा; विष्णु-पुर निवास कीजियेगा॥

भीष्म पिता कर-बद्ध हो; बोले माथ झुकाय ।
जय मुकुन्द ! जय नन्द-सुत!;जय जय यादव राय ! ॥

गायन

हो बस दयामय ! हाथ सिरपर; नाथ ! अन्तिम बार है ।
जा रहा संसार से, संसार का यक भार है ॥
हे महज्ज्योते ! तुम्हारा ही पतिंगा चला रहा;
ज्योति ही में लो मिला, दो तार-आत्मिक-तार है ॥
हम, हमारी सी यहाँ पर, कर चले-कर्त्ता न थे;
तुम, तुम्हारी सी निभाना, यह वहाँ अधिकार है ॥
हे बृहत्सिन्धो ! मिला लो; बिन्दु अपना जानकर-
भ्रम भ्रम थका त्रैलोक में; पाया न आशा-द्वार है ॥
हैं दया के पात्र-यह; "गोविन्द"-जन"शैलेन्द्र" भी-
जिस दया से खल अजामिल का किया उद्धार है ॥

विष्णु-धाम से उसी क्षण; आया दिव्य-विमान ।
देव-पितर-गन्धर्व-नर; करें अप्सरा गान ॥
श्वेत-अश्व, शुचि-सौम्य रथ; सुभग-शुद्ध-सोपान ।
सन्त-समागम में हुआ; सन्त-वीर-अवसान ॥
स्वजन-मण्डली में हुआ; सहसा हाहाकार ।
आज देश से चल दिया; भारत का पतवार ॥

गायन

चल दिया भारतसे-भारत-वेश; उठगया संसारसे बीरेश है ॥
देश-पति ! जाना तुम्हारा देशसे;-देशको दासत्वका सन्देश है ॥
देखना है,कौन अब तेरे गये;आयगा वन देश का दुरवेश है ॥
काम आये हिंदके'गोविंद'कब?;कब कहे'शैलेन्द्र'अपना देश है॥

इति शान्तिपर्व-भीष्म-निर्वाण ।

श्रीः।

महाभारत-अश्वमेधपर्व ।

पाण्डव-दिग्विजय.

सरल छन्दोबद्ध.

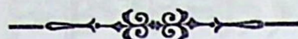
" चिन्ता जरावै जम जातना दिखावै जब;
लीजियो छिपाय तबै पियरी पिछौरी में।"

"शैलेन्द्र-विनीत" कृत.

प्रार्थना

अये खिलवाड़! हमें खेल खिलाते क्यों हो?।
बना बना के, बने, काम मिटाते क्यों हो?॥
मुक्ति की राह ही, जो जीव को बतानी थी-
माया-धाम! तो माया में फँसाते क्यों हो?।
हँसी में सार नहीं है, तो हमें रोने दो-
ना गवारा है-जो रोना; तो रुलाते क्यों हो?॥
शर्म थी, सामने आने में, तो आते ही नहीं-
आगये हो, तो रहो; आज ही जाते क्यों हो?।
शान्ति भारत में नहीं; एक महा भारत से-
हिन्द की गोद से, यह वीर उठाते क्यों हो?
कौन सी बात छिपी है?; "विनीत" मोहन से-
जब यह विश्वास है; तो कष्ट सुनाते क्यों हो?।

❀ कथा-प्रारम्भ । ❀



धर्मराज के शान्ति से; बीत गये कुछ मास ।
यथासमय कहने लगे; उनसे जगन्निवास ॥

"राजन्! अभीष्ट होचुका सिद्ध; शान्ति-मयसुशासन कीजेगा।
कालान्तर यहां हो चुका है; मुझ को भी आज्ञा दीजेगा ॥
देते रहिये, सब समाचार; मैं भी संवाद पठाऊँगा ! ।
आवश्यकता के आ जाने पर; तत्क्षण सेवा में आऊँगा ॥"

गमन-शब्द गोपाल के; सुन न सके नरपाल ।
बिलख उठे शिशु की तरह, बोल उठे बेहाल ॥

"हे जगदाधर!यह महा-भार; किस के सर छोड़े जाते हो? ।
हे जगदीश्वर ! ऐश्वर्य्य-राज्य; किस बल पर छोड़े जातेहो?॥
हम आजीवन के भिखमंगे; क्या शासन-भार सँभालेंगे? ।
भीख से गुज़र करनेवाले; क्या दीन-प्रजाको पालेंगे ? ॥
यदि जनता की हित-चिन्ता है; तो शासन-भार लीजियेगा ।
पालन-पोषण कीजिये आप; सेवायें हमें दीजियेगा ॥"

"करुणाकर" कहने लगे;-"करो न नृप ! सन्ताप ।
प्रेम-पाश में मैं सदा; बँधा हुआ हूँ आप ॥

दूरी भी उन्हें निकटता है; जिनकी आत्मा में श्रद्धा है ।
पास भी उन्हें दूरी समझो; जिन में न प्रेम की प्रतिमा है ॥
प्रत्यक्ष, अलक्ष हमारा ही; भक्तों के लिये सहारा है ।
हे धर्मराज ! है तत्त्व यही; भक्तों में वास हमारा है ॥

जिस समय,जहाँ,जैसी भी कुछ;आवश्यकता हमें दिखायेगी।
उस समय, वहीं, वैसे ही वह; परिपूर्ण करा दी जायेगी ॥"
कुन्ती ने आंसू बहा दिये; बोली–"हे श्याम लाल ! जाओ ।
माधव–मुकुन्द हे नन्द–नँदन; यादवपति ! हे गुपाल जाओ ॥
कह दीजो सब से भेंट–मिलन; सन्देह सदा देते रहियो ।
इस दुखिया के आधारों की; घनश्याम ख़बर लेते रहियो॥"

सुना पार्थ ने जिस समय; जाते हैं गोपाल ।
बैठे थे जिस हाल में; दौड़ पड़े तत्काल ॥

लपटाने, बिलखाने सहसा; हा ! हा ! केशव चिल्लाते हैं ।
बच्चे की तरह बिसूर रहे; बछड़े की तरह रँभाते हैं ॥
"हा मनमोहन !हा मधुसूदन!; हा यादवेन्द्र!यदु-कुल-भूषण ।
हे निर्विकार ! निर्मम ! निरीह!; दूषण–हर !हाहा निर्दूषण !॥
यादव–पति ! कैसे जाते हो?; अर्जुन का काम समाप्त नहीं ।
भारत–संग्राम समाप्त हुआ; जीवन–संग्राम समाप्त नहीं ॥
सारथे !सखे ! जीवन–रथ को; अन्त तक सहारा दिये चलो।
या आप यहीं पर बने रहो; या मुझे साथ में लिये चलो॥"

कृष्णचन्द्र कहने लगे–"अर्जुन ! सखा ! सुजान !।
भूल गये क्या शीघ्र ही; गीता का विज्ञान ॥

तुम ही रथ हो, सारथी तुम्हीं; रथ में गति–मात्र तुम्हारी है।
विश्वास रहे, तुम प्रेरक हो, मोहन केवल बेगारी है ॥
जब जिन भावों से प्रेरित हो; मुझको भक्त-जन बुलाते हैं।
तब उसी रूप में, यथा–समय; वह मुझे उपस्थित पाते हैं ॥
रहना इस जगह ज़रूरी है; तुम रहो; हमें अब जाने दो ।
यदु-कुल की दशा देखने दो;कुछ और विषय निबटाने दो॥"

कहा पार्थ ने—" तो मुझे; ले चलिये प्रभु ! साथ ।
यहां धर्म के साथ है; वीर—भीम का हाथ ॥
मैं यहां नाथ बेकार ही हूँ; कुछ जीवन वहीं बिताऊँगा ।
संग्राम—क्षेत्र के थके हुए; यह अथकित-चरण चपाऊँगा ॥
रथ की डोरी थी अभी हाथ; अब जीवन—डोरी लीजेगा ।
जय-दान दिया इस भारत में; अब मुक्ति-दान प्रभु!दीजेगा॥"
कहा नाथ ने—" हमारा; चिन्तन--मात्र सुजान ।
लोक और परलोक में; होवे विजय—निशान ॥
द्रुपद--सुता भीमादि से; सादर बिदा कराय ।
चले द्वारिका धाम को; दया--धाम, यदुराय ॥
कृष्णचन्द्र गमनित हुए; आपहुँचे मुनि व्यास ।
कर प्रणाम नृप ने कहा—"हे हे करुणा-राशि ! ॥
" सौभाग्य ! आइये, कर कृतार्थ; आज्ञा दासको दीजियेगा।
कुछ समय तपोनिधि!अनुचर के;घर भी विश्राम कीजियेगा ॥
तृष्णा-मय उन उद्योगों में; प्रतिभा है वारि—बतासासी ।
वे सफल—भाव बन गये विफल; आशा बन गई निराशासी॥
शान्ति की योजना के अन्दर; मिट्टी सी जलती जाती है ।
शीतलता आने के बदले; आरी सी चलती जाती है ॥
ज्यों२शान्ति को ढूंढ़ता हूँ;त्यों त्यों अशान्ति ही बढ़ती है ।
मानो विपरीत मन्त्र-द्वारा; ऊपर को बीछी चढ़ती है ॥
हा हा ! भगवन् ! कुछ दिन रहकर; शिक्षामृत-पान कराइयेगा।
अथवा जो उचित-मार्ग समझें;उस पर जन को ले जाइयेगा॥"
व्यासदेव कहने लगे—" सच है राजन् ! बात ।
हँसी समझना भूल है; अपने कुल की घात ॥

पहिले मनुष्य ममता में पड़; भाई का नाश कराता है।
पीछे पछता कर स्वयं एव; वह भी विनष्ट हो जाता है॥
आज ही नहीं, जन्मान्तर तक; हत्यायें होंगी साथ तेरे।
आजीवन खून रुलायेंगे; अय राजन्! खूनी हाथ तेरे॥
इसलिये हमारी सम्मति में; तू इनका प्रायश्चित कर ले।
नर-मेध-रूप-रण पूर्ण हुआ; अब अश्व-मेध निश्चित कर ले॥
रावण-वध कर राघव ने भी; यह अश्वमेध रचवाया था।
मानों उस एक बहाने से; हत्या का दोष मिटाया था॥

द्वापर में सम्राट–पद; करो प्राप्त नर–राज।
होते हैं इस यज्ञ से; एक पन्थ दो काज॥"
धर्मराज कहने लगे–"है आज्ञा स्वीकार।
किन्तु, नाथ को ज्ञात है; हाथ नहीं हथयार॥

धन–कोष युद्ध में पूर्ण हुआ; बल–वैभवका अवसान हुआ।
ऊजड़ हो चुकी इन्द्र नगरी; हस्तिना नगर वीरान हुआ॥
हो चुके सहाय–बंधु स्वाहा; वीरों का बंटाढार हुआ।
सच तो यह है–भारत में ही; सारा भारत संहार हुआ॥
अब मैं हूँ, और कलंक मेरा; अथवा यह चारों भाई हैं।"
मुनिवर बोले–"ऐसा न कहो; जब तक यदुराय सहाई हैं॥
लज्जा–पति के रहते रहते; लज्जा न तुम्हारी जायेगी।
जब तक वह खेवनहारे हैं; नैया न डूबने पायेगी॥

धन की चिन्ता मत करो; बढ़ो ध्येय की ओर।
लज्जा रक्खेंगे वही; नागर–नन्द–किशोर॥

त्रेता में "मरुत" भूप द्वारा; जब "अश्वमेध" रचवाया है ।
तब ऋत्विक और अध्वर्य्यों को; इतना सोना दिलवाया है ॥
ले गये, ले सके जितना भी; फिर भी लाखों मन पड़ा रहा ।
हिम-गिरि की घाटी में अब तक;वह उसी तरह से गड़ारहा॥
वह आज तुम्हें मिल सकता है; यदि दूतों को पहुँचायेंगे ।
उतने धन से एक ही नहीं; दस अश्वमेध हो जायेंगे ॥"

कहा धर्म ने-"दयामय!; यह भी अंगीकार ।
किन्तु, धर्म की आड़ से; उठती है झनकार ॥

वह विप्र--याचकों का धन है; उस पर मेरा हक़ ही क्या है? ।
हे तत्त्व-निधे ! बतलाइयेगा; इस में प्रभुकी आज्ञा क्या है?॥
व्यास ने कहा-सम्पति,पृथ्वी;आजतक किसी की हुई नहीं ।
"मेरी-मेरी" कह गये सभी; पर साथ किसी के गई नहीं ॥
धन, भूमि, प्रजा के अधिकारी; वे ही राजा कहलाते हैं ।
जो अपने शासनके बल पर; "सम्राट-मान" पा जाते हैं ॥
पहिले वह धन"दैत्यों"पर था; फिर देवों का अधिकार हुआ ।
फिर इसी द्रव्य के द्वारा ही; नृप हरिश्चन्द्र-उद्धार हुआ ॥
बलि, परशुराम, कश्यप की भी; इस धन पर आई बारी है ।
क्षत्रिय--हक़ के हो जाने से; तू भी उसका अधिकारी है ॥"

आज्ञा पाकर व्यास की; चले बीर सरदार ।
गज, रथ, ऊँट, तुरंग ले; सैनिक, शूर, सवार ॥

लाखों योधा भर भर सोना; अनगणित,असंख्य भार लाये ।
फिर भी जब पूरा उठ न सका; तो बाक़ी वहीं छोड़ आये ॥

इस ओर द्रव्य एकत्र हुई; उस ओर निमन्त्रण जाने लगे।
विद्वान, वेद–पाठी, मुनीश; याचक, साधू–गण आने लगे॥
श्रीयादवेन्द्र भी यथा समय; दल–बल के सहित पधारे हैं।
मणि–जटित–मनोहर–मण्डप है; रुचि बन्दनवार सँवारे हैं॥
विस्तृत–वितान, नृत–केलि–धाम; शोभाभिराम चौबारे हैं।
अनगणित अतिथि-गृह साजे हैं; अनगणित खुले भंडारे हैं॥
वैदिक–विधान से यथा समय; घोड़े का साज सजाया गया।
आमन्त्रित करके छोड़ दिया; फिर रण-बाजा बजवाया गया॥
हाथी, घोड़े, रथ, अस्त्र, शस्त्र; युद्ध का सभी सामान चला।
आगे आगे वह अश्व चला; पीछेसे विजय-निशान चला॥

हुए सुसज्जित जिस समय; "कृष्णार्जुन" जय-ऐन।
कहे धर्म ने उस समय; प्रभु से करुणा–बैन॥

" हे दीनानाथ ! गमन कीजे; दीनों का हाथ बटाने को।
जन की दीनता मिटाने को; भारत का भार घटाने को॥
पर, आज्ञा हो तो सेवक कुछ; अभिलाषा अपनी प्रकटा दे।
अन्तर्य्यामी के कानों तक; आन्तरिक-वेदना पहुँचा दे॥ "

भक्त–वत्स कहने लगे–"प्रकट करो भूपाल !।
शामिल है हर हाल में; इच्छा पर गोपाल॥"

धर्म ने कहा–"हे दयाधाम !; जो भूप यहाँ पर मारे गये।
अथवा जिनके बेटे पोते; या स्वजन, सखा संहारे गये॥
उन दीन, हीन, असहायों को; निष्कारण सैन्य सताये ना।
उन दुखिया, निबल,अनाथोंपर; यह अर्जुन हाथ उठाये ना॥"

"एवमस्तु" कहकर चले; पार्थ-सहित घनश्याम ।
जगह जगह होने लगे; महा—घोर—संग्राम ॥
नहीं लिखेंगे हम यहाँ; वह सारा मज़मून ।
थकित हो चुकी लेखनी; लिखते लिखते खून ॥

इतने ही में सब आशय है; ज्वाला का अन्तिम रंग था वह ।
बादल की कड़क आख़री थी; भारत का एक अंग था वह ॥
भू—मण्डल के जितने राजे; भारत में शामिल हुए न थे ।
या जितने भूप निमन्त्रणपर; सेवा में हाज़िर हुए न थे ॥
क्रमगत वे सभी दण्ड देकर; नृप की सेवा में लाये गये ।
नियमानुसार नृप-मण्डल को; परिचारिक-कर्म दिलाये गये ॥
आनन्द—राग, वेद का पाठ; नर्त्तकी-केलि, गायन वादन ।
उपदेश, नीति, व्याख्यान, भोज्य; सत्संग,देव-पूजन, अर्चन ॥
सन्मान, दान; वैदिक-विधान; विज्ञान, ज्ञान पर्याप्त हुआ ।
"श्रीवासुदेव" का बल पाकर; वह यज्ञ सकुशल समाप्त हुआ ॥

धर्म—यज्ञ, केशव—कृपा; व्यास देवकी राय ।
उस उत्सव की गाथ फिर; कवि कितनी बतलाय ॥

विप्रों को इतना दान मिला; जिस को पूरा ले जा न सके ।
राजों का वह सत्कार हुआ; जिसको वे कभी चुका न सके ॥
आत्मा से सारे राजों ने; मानी भूप की रजाई है ।
भूमण्डल पर दिल्लीश्वर की; चौतरफ़ा फिरी दुहाई है ॥
श्रीवासुदेव का पूजन कर; जो काम उठाया जाता है ।
वह कुशल-सहित निर्विघ्न स्वयं; यशका कारण बन जाता है ॥

गायन

शिव की विभूति योग, विष्णु के विशाल भोग;
माया के रोग विधिहुँ चाल चतुराई की।
वैभव सुरेश केर, सम्पति कुबेर केर;
मेघन उदार-वृत्ति, शक्ति बहनाई की।
रिद्धि, सिद्धि सारी धरि, योग, भोग पाछैं करि;
युक्ति, भुक्ति हू बिसार; मुक्ति महताई की।
डारौं ल धूरि सकल, जेते जगमाल जाल;
जो पै लखि पावौं, नेकु कामरी कन्हाई की।

यज्ञ–पूर्त्ति पर भूप को; हुआ क्वचित-अभिमान।
आज जगत में एक भी; मेरे नहीं समान॥
अन्तर्यामी ने वहीं; अन्तर की पहिचान।
लीला ही में कर दिया; नष्ट भ्रष्ट अभिमान॥

अर्द्धांग सुनहला एक नकुल; उस यज्ञ–भवन में आता है।
यज्ञ से बची सामग्री पर; मायावी होंठ लगाता है॥
फिर एकायक हो गया खड़ा;बोला-"ओ हो!अचरज क्या है?।
" धर्म " का यज्ञ है,अथवा यह; बच्चों का एक तमाशा है॥
मैं मानता हूँ इससे बढ़कर;सम्मान न अब तक हुआ कहीं।
फिर भी यह कहना पड़ता है; यह सबसे उत्तम हुआ नहीं॥
तुझ से बढ़ कर वह ब्राह्मण था;जो भीख मांग कर लाता था।
एवं अपनी भिक्षा में से; आधे का दान कराता था॥

हो गये चार दिन एक बार; लेकिन कुछ भिक्षा मिली नहीं।
पाचवें रोज़ खेत में उसे; दाना, दुनका मिल गया कहीं ॥

कूट छान कर जिस समय; भोज्य हुआ तैयार ।
आ पहुँचा बस उसी क्षण; एक भिखारी द्वार ॥

अपनी चिन्ता तज ब्राह्मण ने; उस को भोजन करवाया है ।
इस अश्वमेध से लाख गुना; उस भिक्षुक ने फल पाया है ॥
उसके जूठन के छूने से; अर्द्धांग स्वर्ण हो गया वहीं ।
लेकिन तेरे भण्डारे में; दुम भी सोने की हुई नहीं ॥
कारण उसके वे कर्म सभी; कर्त्तव्य-मार्ग पर निर्भर थे ।
तेरे सारे उत्साह धर्म; प्रभुता की ही इच्छा पर थे ॥
यह सारा बल केशव का था;अपने बल का अनुमान न कर।
इन गर्वांहारी के आगे; गर्वीले ! गर्व गुमान न कर ॥"

इस प्रकार उपदेश दे; तत्क्षण गया छिपाय ।
धर्मराज गद्गद हुए; कह-"जय यादव राय ॥

सब तरह आज मालूम हुआ; जैसे केशव हितकारी हैं ।
वास्तविक रूप से समझ गया; बनवारी "गर्वांहारी" हैं ॥
हे देव ! दयामय ! दासों पर; ऐसी ही दाया बनी रहे ।
"शैलेन्द्र-विर्नीति" बिचारे पर;वंशीधर ! साया बनी रहे॥"

यथा समय पूरा हुआ; वह उत्सव सानन्द ।
चले द्वारिका धाम को;यदु-कुल-कैरव-चन्द ॥
विपिन-विहारी ! जिस तरह; की धर्म को सहाय ।
वैसे ही इस देश पर; कृपा-कोर हो जाय ॥

गायन

दुखी है, देश तुम्हारा, ओ कन्हैया ! आओ ।
डूबनेवाली है नैया; ओ खिवैया ! आओ ॥
तुम्हारे केलिके स्थान, कसाई घर हैं;
कट रहीं गौएँ, गौओं के चरैया ! आओ ।
सैकड़ों पार्थ तुम्हें, ढूँढ़ रहे हैं माधव !;
रथ अटका है, अरे हाथ लगैया ! आओ ॥
"विनीत" मोह के बन्धन से, निकालो मोहन !-
अये "शैलेन्द्र" के प्रभु !; नन्द के छैया आओ ॥

धर्मराज करने लगे; स-सुख,न्याय-युत राज्य ।
मनो"न्याय"अंशों सहित;करता हो साम्राज्य ॥

जनता में सच्ची शान्ती थी; घर घर आनन्द बधाई थी ।
भू-मण्डल एक सूत्र में था; दिल्लीश्वर की प्रभुताई थी ॥
मर्य्यादा पर थे चतुर्वर्ण; दारिद्र, शोक का नाम न था ।
जिसमें धर्म का न आदर हो; ऐसा कोई भी धाम न था॥
निष्पक्ष, स्वार्थ-गत, प्रेम-सहित;जनता का पालन होता था ।
शास्त्रीय-नीति पञ्चों द्वारा; शासन-सञ्चालन होता था ॥
निर्भय, निश्छल,सत्यात्म-पुरुष;सात्त्विक की सार सूचना है ।
"श्रीराम-राज्य" के बाद यहां;"श्री धर्मराज्य"की गणना है॥

इसी भांति आमोद में; बीत गया कुछ काल ।
एक रोज यादव सहित; बैठे थे नर-पाल ॥
इसी समय लड़ते हुए; आये विप्र किसान ।
राजन्!सुनने योग्य है; उनका यह आख्यान ॥

एक ने खेत पर गड़ी हुई; कुछ खासी दौलत पाई थी।
पर दोनों उसे न लेते थे; इतनी बात पर लड़ाई थी॥
पहिला बोला—" यह मालिक है; हे राजन ! जोत हमारी है।
इसलिये खेत की गड़ी हुई; सम्पति का यह अधिकारी है॥
जोते, बोये जो पैदा हो; वह जोता के घर जाता है।
बाक़ी स्थायी सम्पतिका; स्वामी हक़दार कहाता है॥"

कहा दूसरे विप्रने—" सुनिये नीति-निधान ! ।
मेरे हक़ में है फ़क़त; उस खेत का लगान॥

देता जाये केवल लगान; उस तक ही मेरा हिस्सा है।
फिर वहां स्वर्ण भी पैदा हो; तो नीति-पूर्वक इसका है॥
कोई बोने पर पाता है; इस ने जोते ही पाया है।
मेरा कोई अधिकार नहीं; इसकी क़िस्मत की माया है॥"

लीलाधर कहने लगे—" दोनों घरको जाव।
इसी रोज़ छः माह में; दोनों वापिस आव॥

सम्पत्ति कोष में धरी गई; ब्राह्मण भी दोनों घर पहुँचे।
श्रीधर्मराज से बिदा पाय; द्वारिका धाम गिरधर पहुँचे॥
इस ओर जहां छः माह हुए; तो फिर दोनों ब्राह्मण आये।
इतने दिन ही में दोनों के; भाव ही दूसरे बन आये॥
हर एक ब्राह्मण सम्पति पर; अपना अधिकार जताने लगा।
न्याय की दुहाई देने लगा; गंगा शीश पर उठाने लगा॥
जोता जो था बोला राजन्!; यह तो लगान का मालिक है।
खेत की उपज या सम्पति पर; जो कुछ है, मेरा ही हक़ है॥"
मालिक बोला—"जोता तो बस; अन्न का सदा अधिकारी है।
स्थायी कुछ भी सम्पति हो; वह तो जागिर हमारी है॥"

व्यास देव कहने लगे;–"है इतना ही न्याय।
आधी आधी द्रव्य वह; दोनों को दी जाय॥

चक्कर में आये धर्मराज; जब भावों का चक्कर देखा।
व्यास की दृष्टिने उसी समय; मृत–शय्या पर द्वापर देखा॥
कांप कर धर्म ने कहा–"नाथ !;यह क्या माया दिखलाई है?।
किस पापी ने इतनी जल्दी; विप्रों की मति पलटाई है?॥
जो महा--पाप बतलाते थे; पर–धन को हाथ लगाने में।
वे नाथ ! आज हिचके भी नहीं; अपना अधिकार बताने में॥

मुनिवर ने हँस कर कहा–"सावधान राजेश !।
है यह तेरे वास्ते; कलियुग का सन्देश॥

द्वापर का अस्त-काल समझो;कलियुग का उदय–काल समझो।
पापों का उषः–काल समझो; पुण्यों का प्रलय-काल समझो॥
उसके प्रभाव से स्वयं एव; सब के स्वभाव पलटायेंगे।
सज्जन गण चने न पायेंगे; पाखण्डी मौज उड़ायेंगे॥
अवतार कुतार कहायेंगे; श्राद्ध का श्राद्ध हो जायेगा।
मूर्त्तियाँ तोड़ दी जायेंगी; वर्णाश्रम ठोकर खायेगा॥
ब्राह्मण का वेद पेट होगा; शूद्रों को शीश झुकायेंगे।
उपदेशक "पोप" कहायेंगे; हत्यारे ज्ञान सिखायेंगे॥
क्षत्री की छतरी उलटेगी; सम्राट बनेंगे व्यापारी।
करनी होगी खेती बारी; चाण्डालों की पेशादारी॥
वैश्यों में हो दारिद्र्य–वास; लालच, असत्य से पेट भरें।
व्यापार सभी छिन जायेंगे; केवल दल्लाली किया करें॥
शूद्रों की दुर्गति दुराभाव; अनुमान नहीं की जायेगी।
राजन् ! कुछ ही दिन के पीछे; दूसरी सृष्टि दिखलायेगी॥

रोग, शोक, भय, धूर्त्तता; मद, मत्सर, पाषण्ड ।
दारिद, द्वेष, अधर्म का; बढ़े प्रताप प्रचण्ड ॥
धन होगा केवल बालों तक; बल रह जायेगा बातों तक ।
कामनियों तक प्रेम की कथा; शृङ्गार देश-कुलटाओं तक ॥
बल वान शूर होगा कोई; तो विद्रोही कहलायेगा ।
राज्य की ओर से बेचारा; क़ानून में जकड़ा जायेगा ॥
उपदेश, न्याय, शासन, पाठन; विज्ञान करे ठेकेदारी ।
मन्दिर में हो दुकानदारी; वैद्यक बन जाये व्यापारी ॥
यक्ष्मा, प्रमेह, स्वराज्य करें; ज़ुल्फों तक सारी शान रहे ।
जीवन पचास साल पर ख़त्म; फिर भी इन्द्रका ग़ुमान रहे ॥
लज्जा, ईर्ष्या, अभिमान, शील; चश्में की ओट छिपाने रहें ।
खोखली पसलियों के ढाँचे; घाघरियों में लपटाने रहें ॥
कहें कहांतक भूपवर!; कलि की दशा कराल ।
अपने भक्तों पर सदा; कृपा करें गोपाल ॥
अन्यथा "विरक्त" नाम-धारी; आगे कोठियां खुलायेंगे ।
मांगेंगे भीख गृहस्थ लोग; फक्कड व्यापार चलायेंगे ॥
इसलिये हमारी सम्मति से; उस युग पर मत विश्वास करो ।
श्री यादवेन्द्र की आज्ञा ले; "बद्री-विशाल" पर वास करो॥"
आज्ञा पाकर ब्यास की; गमने पाण्डव-राय ।
चरण चूम प्रभु के कहा- "जय जय यादवराय ॥

गायन

तुमहिं तज का की सरन गहें ।
लोक किधौं परलोक जतनु हित जे जन सोचु सहें ॥

ते जनु सुधा–सिन्धुतज हिम–कन पातन चातु रहैं ।
बुझत न प्यास आस नहिं पूजत आसहि आस बहैं ॥
जन "शैलेन्द्र–विनीत" दुःख सुख यादवपति सों कहैं ।

पूछा प्रभु ने–"कहिये नृपाल !; किस कारण कष्ट उठाया है?॥
छः माह बीतने ही पर क्यों; प्रतिभा में अन्तर आया है ?।"
धर्म ने कहा–"अन्तर्यामी ! कलिकाल कठोर आ रहा है ॥
जिसकी सूचना–मात्र ही से; सिंहासन हिला जा रहा है।
श्री व्यास देव ने आज्ञा दी; "बद्री विशाल" पर जाने की ॥
देरी है महाराज ! केवल; श्री मुख से आज्ञा पाने की ।"
कृष्ण ने कहा–"सच है राजन् !; कलियुग ऐसा ही आता है ॥
एकान्त–वास ही में अपना; अब हमें भला दिखलाता है ।
इस कठिन–काल से पहिले ही; कूच का नक़ारा बजवा दो ॥
अच्छा है, चलने से पहिले; डेरों को आगे पहुँचा दो ।
लेकिन कुछ और समय यों ही; कहने से धैर्य्य धरो राजन् !॥
जाना, लेकिन कारण–वशात; कुछ दिनों और हठरो राजन्!॥"

आज्ञा पाकर नाथ की; लौटे पाण्डव–राय ।
वहां कहा धृतराष्ट्र ने; संजय से समझाय ॥
"संजय ! जाओ, विदुर को; महलों में ले आव ।
बदल रहे हैं हृदय के; आज यकायक भाव ॥

–: शुभमस्तु :–

इति अश्वमेधपर्व, पाण्डव दिग्विजय ।

महाभारत-आश्रमवासिकपर्व ।

धृतराष्ट्रादि-संन्यास.

सरल छन्दोबद्ध.

"शैलेन्द्र-विनीत" कृत.

कथा प्रारम्भ

विदुर भक्त हाज़िर हुए; जब संजय के साथ ।
अश्रु बहा कहने लगे; ज्ञान-चक्षु नर-नाथ ॥

"हे भाई ! जीवन बीता है; पर ममता अभी न बीती है ।
सारी इन्द्रियां मर चुकी हैं; पर तृष्णा पापिन जीती है ॥
हो चुका वंश सारा समाप्त; आगे पीछे बे बाक़ी है ।
सड़ चुकी मूल, झड़ चुके फूल; पर तना अभी तक बाक़ी है ॥
किस आशा-अग्नी से आगे; अब अन्धी आँख सेंकना है ? ।
बेटों का मरना देख चुके; आगे क्या और देखना है ? ॥
दूसरे समय में दिन पर दिन; परिवर्त्तन होता जाता है ।
अब नये नये नौ रंगों से; आत्मा मेरा अकुलाता है ॥
इसलिये तुम्हें बुलवाया है; इस बन्धन से छुटकारा दो ।
परमार्थ-मार्ग में चलने को; भैया ! कुछ मुझे सहारा दो ॥"

कहा विदुरने-"सत्य है; नृपवर, नीति-निधान !।
इस प्रकार होगा नहीं; ममता से निर्वान ॥
गृह ही मानो माया--गृह है; वंशज ही सदा सहायी हैं।
उनकी चर्चायें ही राजन् !; दुख का कारण कहलायी हैं ॥
इसलिये हमारा भी मत है; ममता का भण्डा फोड़ चलें।
दुनिया का नाता तोड़ चलें; माया का फन्दा छोड़ चलें ॥
कुन्ती, गान्धारी सहित चलो; "व्यासाश्रम"को प्रस्थान करें।
माया-हारी, बनवारी का; श्री यादवेन्द्र का ध्यान धरें ॥
परामर्श इस भाँति कर; हुए सभी तैयार।
धर्मराज के सामने; ज़ाहिर किया विचार ॥
"प्रिय वत्स ! आ गया चौथापन; आज्ञा दो,जाँय तपोवनमें।
अन्तिम जीवन को लगा जाँय; श्रीकृष्णचन्द्र के चिन्तनमें ॥
बेटा ! न्याय से राज्य कीजो; जनता पर प्राण लगा दीजो।
दीनों की सदा ख़बर लीजो; दुखियों का प्रतिपालन कीजो ॥
धर्मावतार ! धर्म को छोड़; भू-तल पर हँसी करैयो ना।
तुमको क्या ज्यादा समझायें; पुरुषों का नाम धरैयो ना ॥"
शीश झुका कर धर्म ने; सुना सभी सन्देश।
चारों प्राणी चल पड़े; धर संन्यासी-वेश ॥
महलों में हाहाकार मचा; जनता में चीत्कार फैला।
भारत भर में धीरे धीरे; यह दारुण-समाचार फैला ॥
परिवार-सहित श्रीधर्मराज; पीछे से रुदन मचाते गये।
कुन्ती विदुरादि धैर्य्य देकर; सब लोगों को समझाते गये ॥
रोते धोते निकल कर; जब पहुँचे कुछ दूर।
कुन्ती माँ से धर्म ने; कहा बिसूर बिसूर ॥

" ओ हम अभागियों की माता !; काटी ज़िन्दगी गिरानीमें।
अपना निशान भी मिटा दिया; दुखियोंकी प्रेम-निशानीमें॥
अब तक तेरे इन पूतों ने; सेवा न तेरी करने पाई।
जब सुख की यहां घड़ी आई; तब तप की वहाँ घड़ी आई॥
वैसे ही माँ से पुत्र कभी; आजीवन उऋण न होते हैं।
हमसे कुपूत तो युग युग तक; ऐसे कुयोग पर रोते हैं॥"

कुन्ती नें सिर चूम कर; कहा—"लाड़ले लाल !।
ईश्वर प्रकटाये सदा; घर घर ऐसे बाल॥

ऊपरी खुशामद से बढ़कर; आज्ञा–पालन सद–निष्ठा है।
भारत माँ की सेवा करना; माता की सच्ची सेवा है॥
बेटा ! तूने रक्खी न कमी; भारत की आन बचाने में।
धर्म के लिये तैयार रहा; प्राणों की तोल लगाने में॥
जाओ सुपूत ! सुखराज्य करो; सब विधि कल्याण तुम्हारा है।
पाओ यश, कीर्त्ति, मुक्ति लाला !;यह आशीर्वाद हमारा है॥"

विदुर आदि के चरण छू; लौट पड़े नर–पाल।
"व्यासाश्रम" में तपस्वी; जा पहुँचे तत्काल॥
कुछ दिन तपकर अन्तमें; गये सभी सुर-धाम।
कृष्णचन्द्र की कृपा से; मिला पूर्ण विश्राम॥
नारदजी ने धर्म से; कहा सभी संवाद।
अब तो सारे नगर में; बढ़ा विशेष–विषाद॥

चारों भाई चीख़ने लगे; नर–पति ने माथा फोड़ लिया।
द्रौपदी विलपती निकल पड़ी;जनता ने धीरज छोड़ दिया॥
धर्म ने आह भर कर ठण्डी; भीम से कहा–"आगे आओ।
रोओ मत, लाल परीक्षित के ; अभिषेकका सामाँ सजवाओ॥

हो चुका, अन्त कुल पुरुषों का; युगका भी अन्त आ रहा है।
अपनी भी तैयारियां करो; निष्कारण समय जा रहा है ॥
जी जान लड़ा कर देख लिया; धन,धाम न कुछ भी अपना है।
दुनिया धोखे की टट्टी है; माया अचेत का सपना है ॥

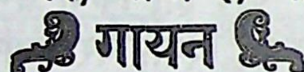
गायन

बेसहारे हैं जहाँ आप, सहारा क्या हो ?।
हम हमारे ही नहीं, कोई हमारा क्या हो ? ॥
वंश–बलिदान किया जाय जिसकी वेदी पर–
वह सामान हमें शान्ति का द्वारा क्या हो ?।
गुज़र रही है जो मुश्किल से गुज़र करती हुई–
उस गुज़र गाह में नादान ! गुज़ारा क्या हो ?॥
अपील लेके "शैलेन्द्र" चलो उनके यहां;
"विनीत"के लिये अब हुक्म दुबारा क्या हो ? ॥

उठे भीम चुप चाप ही; किया सभी सामान ।
राज्य परीक्षित को दिया; धर केशवका ध्यान ॥

योगिया-वेश में पाण्डव–गण; द्रौपदी–सहित तैयार हुए ।
क्षण–मात्र मंगलाचार हुए; फिर दारुण हाहाकार हुए ॥
सिर पीट परीक्षित रोने लगे–"जाते कुछ साथ निभा करके।
भारत का नाथ बनाते हो; हे नाथ ! अनाथ बना करके ॥
इस आर्य–भूमिकी आर्य–प्रथा;हे आर्य ! जगतमें ज़ाहिर है ।
इस महा–देश का महा–भार; मेंढक के माथे मन्दिर है ॥
आशंका है, दादा जी ! जो; प्रण वीरों से भी चला नहीं।
वह इस अज्ञान अनाड़ी से; चल दे न रसातल-ओर कहीं ॥
इसलिये विनय है पूज्य देव!; थोड़ा सा हाथ लगा जाओ।
हे आर्य–भूमिके आर्य-रत्न !; कुछ दिन तो साथ निभा जाओ॥

वदन चूम कहने लगे; धर्मराज समझाय
बेटा ! अकुलाओ नहीं; यादव सदा सहाय ॥
उनकी ही युक्ति, शक्ति-द्वारा; कुल का तू एक प्रधान रहा ।
इन उतरी हुई कमानों का; टूटे पर एक निशान रहा ॥
अन्यथा आज शान्तनु-कुल में; अंजली-दिवैया रहा न था ।
इन पाँच पाण्डवों का पीछे; नाम तक लिवैया रहा न था ॥
तृष्णा, विरोध की वेदीपर; चल दिये स्व-वंश चढ़ा करके ।
"मेरे, तेरे" के झगड़े में; रो चले सुपूत मिटा करके ॥
ज्यादा होने की आशा में; ज्यादा न हुए, कम भी न रहे ।
वह हमें जले, हम उन्हें जले; वह भी न रहे, हम भी न रहे ॥
जो विभव प्राण-प्रिय ज्ञात हुआ; वह बेशक थूक बराबर है ।
सच है बेटा, केवल ईश्वर; बाकी सब माया नश्वर है ॥
इसलिये न्याय को तजियो ना; बस इतना ही समझाना है ।
जाने दो; जानेवालों को; जाना है, आखिर जाना है ॥ "



दुनिया धोखे की टट्टी ।
कर साधो गुण-गान; सदा हरि-ध्यान ।
पड़ी रह जायेगी मिट्टी ॥
जो पाये सन्तोष कर; जो जाये सन्तोष ।
रख "विनीत-शैलेन्द्र" नित, केवल कृष्ण-भरोस ॥
पढ़े जा मन मूरख पट्टी ॥

सेली, कफनी धारकर; पाँचों पाण्डु-कुमार ।
हुए द्रौपदीके सहित; चलने को तैयार ॥

इति आश्रमवासिकपर्व-धृतराष्ट्रादिसंन्यास ।

महाभारत-मुशलपर्व ।

यदुकुल-संहार.

सरल छन्दोबद्ध.

"शैलेन्द्र-विनीत" कृत.

कथा प्रारम्भ.

वहाँ नाथ के हृदय में; उठे अन्य उद्गार ।
नारदजी से इस तरह; बोले लीलाधार ॥

"देवर्षि ! काल-परिवर्त्तन है; अब मेरा जाना निश्चित है ।
पर यदु-कुल के उद्धार-हेतु; आप की खास क्या सम्मति है?॥"
नारद बोले-"लीलाधारी !; लीला का अन्त दिखाना है ।
तो साथ साथ ही लीला के; पात्रों को भी ले जाना है ॥
यदु कुल की प्रभुतक सत्ता है; एवं तुमही तक प्रभुता है ।
इसलिये दास की सम्मति में; सबके जाने में सुबिधा है ॥"

प्रभु बोले-"बस है यही; मेरा भी निर्धार ।
अपने ही आगे करूँ; यदु-कुल का उद्धार ॥

मैं अच्छी तरह जानता हूँ; कलियुग जब भाव दिखायेगा ।
तब यदु-कुल क्या कुल मृत्यु-लोक; दूसरे मार्ग पर जायेगा ॥
लौकिक-नाते से मुझपर भी; उस समय कालिमा आयेगी ।
उद्धार न यदि वंश का हुआ; तो भूल मेरी कहलायेगी ॥

इसलिये सोच कर महा-मुने !; ऐसा उपाय बतलाइयेगा ।
मेरे विचार में सहमत हो; यदुकुल को पार लगाइयेगा ॥ ”

मुनिवर बोले—“हे प्रभो !; कर्त्ता, कारण आप ।
किन्तु ज़रूरी है यहाँ; किसी विप्रकी शाप ॥

मानव-लीला की रीतों से; कोई कारण दिखलाइयेगा ।
ब्राह्मण का मान बढ़ाइयेगा; यादव-कुल पार लगाइयेगा ॥ ”
सम्मति कर नारद बिदा हुए; तब तक चौमासा आया है ।
दुर्वासा आदि तपसियों ने; आसन उस जगह जमाया है ॥
अट्ठासी सहस तपस्वी-गण; जनता से पूजे जाते थे ।
दुर्वासा जी भी उसी जगह; नित्य प्रति भोजन पाते थे ॥
यदुवंशी जब अहेर करने; उस पथ से वन में जाते थे ।
तब दुर्वासा को योग-मग्न; प्रति दिन बैठा ही पाते थे ॥
भावी-वशात् यदु-वंशी-गण; उन की न असलियत जानसके ।
जग-सिद्ध,तपोनिधि तेज-मूर्त्ति;ऋषिराज न वे पहिचान सके ॥

आपस में कहने लगे—“देखो यह छल-छन्द ।
हमें देख कर धूर्त्त ने; नयन कर लिये बन्द ॥”

बोला दूसरा—“आज ही क्या !; जब जब हम आते जाते हैं ।
तब तब इस को बस इसी जगह; ऐसा ही बैठा पाते हैं ॥
तीसरा फड़क कर बोल उठा; यह सब चेटक दिखलाता है ।
हम लोगों की आहट पाकर; लीला करने लग जाता है ॥
चौथा बोला—“अच्छा आओ; सब भेद प्रकट हो जायेगा ।
जाँच की आँच जब व्यापेगी; तब सोना रंग दिखायेगा ॥”

“वाह वाह” कहकर सभी; पहुँचे खेल रचाय ।
एक ग्वाल के उदर पर; लोह-कड़ाह बँधाय ॥

बोले—"मुनिराज ! बताइयेगा; यह क्या माया ईश्वरकी है ।
इस ग्वालिन के गर्भ में छिपा;लड़का है,अथवा लड़की है ॥"
मुनिवर बोले—"यह मायावी; लड़का है और न लड़की है ।
इस ग्वालिन के गर्भ में छिपी;मानियो ! मृत्यु यदुकुलकी है ॥"
मुनिवर का शाप अलाप उठा; यदुकुलकी "हाय" पुकार उठी ।
भावी-बन्धन में बँधी हुई; भावों की फिर झनकार उठी ॥
एक ने कहा-"उफ़ ! रोते हो; आओ; मूल ही मिटा डालें ।
इस लोह—कड़ाहे को घिसकर; पानी में अभी बहा डालें ॥

खुल जायेगा इसी से; मुनि का योग विराग ।
ना होवेगी रेंकड़ी; ना बाजेगा राग ॥"
अस्तु, उसे घिस सिन्धुमें; सब ने दिया बहाय ।
शेष भाग को फेंक कर; लौट पड़े हरषाय ॥

पर इच्छाधर की इच्छा का; कब पार किसी ने पाया है ।
उस कनी, कनी से कुछ दिन में; त्रैधारा बिधि उपजाया है ॥
वह शेष भाग खा गई मीन; मल्लाह मीन को ले आया ।
चीड़ कर उसे, उस लोहे से; उस ने शर का फल बनवाया ॥

यहाँ कृष्णकी ओर से; रचा गया यह खेल ।
वहाँ चला यदुवंश सब; साध मृत्यु का मेल ॥

उद्धव ने इन आचरणों से; अपना भविष्य अनुमान किया ।
श्रीकृष्णचन्द्र की आज्ञा से; बद्रिका धाम प्रस्थान किया ॥
यदु—वंश वहां सिन्धु पर गया; माया का अन्धकार आया ।
या यादव—कुल की सीमा का;वह अन्तिम समाचार आया ॥
उन्मत्त हुए यदु—वंशी—गण; भावीका जहां प्रकाश हुआ ।
केलि ही केलि में,लड़ भिड़ कर;सारा कुल सत्यानाश हुआ ॥

वह प्रखर तिधारे खींच खींच; आपसमें मारा मार हुई।
कुछ ही क्षण में लड़ते लड़ते; यादव-समाज संहार हुई॥
गुणातीत गति धार कर; बैठे लीलाधाम।
पड़े धर्म आकर चरण; "जयति जयति घनश्याम"॥

गायन

जगत्-आदि अन्तं, जगद्रूप, श्यामं।
जगन्नाथ, श्रीनाथ, लीलाभिरामं।
त्रिदेवं, त्रिकालज्ञ, त्रैलोक्य-नाथं।
मनोहार, ओंकार, सन्मुक्ति-माथं॥
भवोद्धारकं, भव्य, भावीश, भानुं।
कुकर्मौपवन-कृत्य-कुञ्जं कृशानुं।
निराकार, निर्द्वन्द्व, निर्लेप, नोऽहं।
सदा सच्चिदानन्द, साकार, सोऽहं॥

जग-तारण ! पतित जा रहे हैं; आज्ञानुसार तैयारी है।
जीवन का युद्ध समाप्त हुआ; अब धर्म-युद्ध की बारी है॥
अगुवा थे यहां नाथ ! जैसे; जग के अधिकार दिलाने में।
वैसे ही वहां ज़रूरत है; वैतरणी पार लगाने में॥
लौकिक-माया-प्रभुता-ममता; केवल जीवन का भार है यह।
हम भली भांति से जान गये; संसार नहीं-निस्सार है यह॥
मद-मोह व्यर्थकी उलझन है; "मैं-मम-मात्र" की कल्पना है।
श्वांसा तक सारा बन्धन है; आशा केवल मृग-तृष्णा है॥
भूले, भटके जब लगे; तभी समझिये पार।
जब प्राणी प्रण ठान ले; केवल प्रभु-आधार॥

दया—धाम ! जैसे बनी; तैसी दई विताय ।
यहां बनी, जैसी बनी; दीजौ वहां बनाय ॥
करुणा—कर कहने लगे;-"राजन् ! नीति—निधान ।
तुम्हें, तुम्हारी वृत्ति से; सर्व—काल कल्यान ॥

भारत-रण में जय प्राप्त हुई;यम-रण में विजय तुम्हारी है।
तुम मरकर भी हो अमर यहां; इतनी आशीश हमारी है ॥
विद्वन्मण्डल की वाचा में; प्रज्ञा-रत प्रति प्रचेतनी पर ।
विदुषों की विशद-भावना में; कवियों की उग्र-लेखनी पर ॥
शास्त्रों के वाद, विवादों में; ऊषा की प्रखर प्रभाओं में ।
अक्षय हो, भक्त—सभाओं में; गायक—गण की जिह्वाओं में॥"

धर्मराज से इस तरह; कहे नाथ ने बैन ।
पीछे करुणा—ऐन के; पड़े पार्थ पर नैन ॥

नैन से नैन के मिलते ही; कर साख्य—सैन-रस चोट गया ।
मैन-मन-मद-हरण माधव के;हरि-शरण चरण पर लोट गया॥
मन-वचन-अगम वह सम्मेलन;किस भांति कहा जा सकताहै?।
जिस जगह शेष-शारद का भी; बोहित न पार पा सकताहै॥
कब झुके नाथ,कब उलझ गये;कब लिपटाने,कब बिलखाने?।
कुछ नहीं पता,कबऐक्य-भाव;क्या कहकर?फिरक्योंमुसकाने?॥

पार्थ शीश पद—धूरि धर; बोले वचन अधीर ।
प्रभु ! प्रमाण हो चुका है; पार्थिव—पार्थ—शरीर ॥

शबरी,गुह, गीध,अजामिल से; नीचों को नव-निर्वाण दिया।
उन प्रणय-प्रहसन-मय प्रभु ने;पारथ सा पतित प्रमाण किया॥
जो हुई, यहां की यहीं रही; अब समर दूसरा आयेगा ।
सारथे ! स्वार्थ—परमार्थ—पथिक; पारथ का रथ अटकायेगा ॥

इस लिये विनय है, उस रथ में; ऐसा ही सगा तुम्हें पाऊँ।
जब जिस योनि में जन्म पाऊँ;जीवन का सखा तुम्हें पाऊँ॥

गायन

पाप समुहाय जमुहाय पुन्य पार देत;
पारियौ पकर कर नाथ ! न्याय-पौरी में।
चैहै ठिठकान कान ! ठौर ठौर मान मोह;
ठगियौ जनि ठाकुर ठगानी ठगौरी में।
दीजियौ बिड़ार तबै, प्रौढ़ अधँयार पाय;
पसु मन बिलावै जौं, मोह की मछौरी में॥
चिंता जरावै, जम-जातना दिखावै जब;
लीजियौ छिपाय तबै पीयरी पिछौरी में।"

विनय पार्थ की श्रवण कर; बोले यादव-भूप।
"भक्त ! भुवन-विख्यात है; तुम हो मेरे रूप॥

हल कर लीं सभी समस्यायें; लोक में सिद्ध-साधन बनकर।
कर लिये अभीष्ट-कार्य सारे; एक ने कार्य-कारण बनकर॥
अच्छा है, जहाँ सूत्र-धर हो; सूत्र के साथ ही साज चले।
लीला कर लीलाधार चले; लीला का साथ समाज चले॥
जाओ,अविरल-सु-शान्ति पाओ;आनियां प्रलय तक ठनी रहें।
भारत की वीर-प्रतिज्ञायें; भूतल पर अक्षय बनी रहें॥"

दीनबन्धु से विदा ले; पाण्डव-गण सुख पाय।
पहुँचे बदरीधाम पर; पर न मिले सुर-राय॥

इति मुशलपर्व।

महाभारत-स्वर्गारोहणपर्व।

पाण्डव-स्वर्गगमन.

सरल छन्दोवद्ध.

"शैलेन्द्र-विनीत" कृत.

कथा प्रारम्भ.

कहा बिलखकर धर्मने; अब क्या करें उपाय।
क्या जाने ? किस पाप से; शंकर रहे छुपाय॥

"भैया ! अपने आते आते, नन्दी के बीच छिपाने हैं।
कुछ पता नहीं, किन पापों से; शंकर भगवान समाने हैं॥"
भीम ने कहा—"छिप रहने दो; आप ही प्रकट हो जायेंगे।
या नन्दी की दुर्गति होगी; या शम्भु सामने आयेंगे॥"

धर्मराज कहने लगे—"छोड़ो अब भी मान।
धरो ध्यान त्रपुरारि का; यदि चाहो कल्याण॥"
धर्माज्ञा पर पाण्डु-सुत; मौन हुए, धर ध्यान।
शीश झुका गाने लगे; शिव का गौरव-गान॥

गायन

नमो भव्य-भूतेश-भोले पुरारी; नमो गंग-धारी, अनंगादि हारी।
नमो काल-व्यालादि, दुर्दोष-हर्त्ता; प्रसन्नाननं नौमि मांगल्य-कारी॥
गिरीशं, सुरेशं, अहीशं, महीशं; महा-दानि, धीमान, गर्व-प्रहारी।
द्रवो देव! 'गोविन्द' द्वारे खड़ा है; जगद्धाम, जोगेश, त्रैलोक्य-चारी॥

यदि हम तन, मन, वचनसे; हों माधवके दास।
तो प्रकटें शंकर यहीं; जन-हित बिना प्रयास ॥



पार्वतीसहित शंकरजी।

प्रेम-भाव पर प्रकट हों; बोले शिव भगवान।
"जाओ, भक्तो ! कृष्ण प्रभु; करें सदा कल्याण॥

सुख--कारी--मार्ग चाहते हो; तो गान करो सुख--कारी का।
वन में भी विजय-कामना हो; तो ध्यान धरो बनवारी का॥
जो वे हैं, वही हमें समझो; जो हम हैं, वही उन्हें समझो।
एक ही शक्ति दो में समझो; उनको समझो, न हमें समझो॥"

पाण्डव-गण आगे बढ़े; पाकर शुभ-वरदान।
"शैलावर्त्त" निहार के; हुए वीर हैरान॥

चारों ही दिश ऊँचे ऊँचे; केवल पर्वत दिखलाते हैं।
आगे को क़दम बढ़ाने का; पाण्डवगण मार्ग न पाते हैं॥
भीम ने तोड़ कर अगम-शृङ्ग; सीधा सा मार्ग बनाया है।
आते आते "विमानवति" पर; यक असुर सामने आया है॥
बोला निश्चर-"बस अवसर है; सत्संगति-लाभ उठाने का।
शत्रु पर दांव दिखलाने का; अपना जौहर अज़माने का॥
धर्मपति! खूब आये, आओ; स्वागत है, लो संग्राम करो।
हाँ, भारत-विजयी-पार्थ बढ़ो; जाते जाते भी नाम करो॥"
धर्म ने कहा-"बेकाम से हैं; अब कैसे काम दिखायें हम?।
तज आये ग्राम-धाम सारे; तब क्या संग्राम रचायें हम?॥
संन्यासी-वेष हमारे हैं; हथयार न हाथों धारे हैं।
भैया! अब रणसे क्षमा करो; पाण्डव-गण विना सहारे हैं॥"
निश्चर बोला-शस्त्रास्त्र विना; वीरत्व नहीं खो सकता है।
हां, शस्त्र-युद्ध का समय न हो; तो मल्ल-युद्ध हो सकता है॥
आशय यह है-बे वश होकर; हमसे संग्राम रचाओगे।
जब मुझ से जय पा जाओगे; तब आगे बढ़ने पाओगे॥"
भीम ने कहा-"आज्ञा दीजे; इसका भी ऋण निबटाये चलें।
सोता वीरत्व जगाये चलें; इस खल को यहीं सुलाये चलें॥"
धर्म ने कहा-यह समय नहीं; भैया! हम लोग उदासी हैं।
नर-राज नहीं हैं, त्यागी हैं; बल-वीर नहीं, संन्यासी हैं॥"

मौन हो गये उसी क्षण; भीमार्जुन, नर-पाल।
किन्तु, द्रौपदी को वहां; ले भागा चाण्डाल॥
बिलख रहे लाचार से; चारों पाण्डु-कुमार।
सह न सके, पर भीम भट; दारुण अत्याचार॥

उसी जगह से तमक कर; एक पहाड़ उखाड़ ।
दे दहाड़ पल–मात्र में; पापी दिया पछाड़ ॥
"वेनवती" स्थान पर; पहुँचे पांचों वीर ।
आगे देखी कामिनी; सुन्दर गौर–शरीर ॥

कामिन बोली–"हे धर्मराज !; निष्कारण कहाँ जा रहे हो ?।
है यहीं स्वर्ग का साज सभी; किस कारण वहाँ जा रहे हो?॥
ठहरिये, उचित आज्ञा दीजे; बस यही याचना मेरी है ।
इच्छित-विलास-सुख भोगियेगा; दासी चरणोंकी चेरी है॥"

कहा धर्मने–"मत दिखा; देवी ! अब भव-रोग ।
इस योगी के वेश में; उचित नहीं है भोग ॥
आगे चल कर फिर मिली; एक नवेली बाल ।
नीति–धर्म–उपदेश कर; दिया उसे भी टाल ॥
कृष्ण–नाम लेते हुए; पहुँचे बदरी–धाम ।
हाथ जोड़ पाण्डवों ने; प्रभु को किया प्रणाम ॥

गायन

हमें राह सीधी लगा दो भोले बाबा ! ।
भटकने से हम को बचा दो भोले बाबा ॥
महा-लोभ–तृष्णा के दाहे हुए हैं–
यह ज्वाला हृदय की बुझा दो भोले बाबा ! ।
यहां तक प्रभो ! मोह, माया न छूटी;
हमें अब भी इन से छुटा दो भोले बाबा ! ॥
हरे ! जन की जैसी अभी तक निभाई–
उसी भांति अब भी निभा दो भोले बाबा ! ।

उसी समय नारद वहां; कुछ ऋषियों के साथ ।
आकर यों कहने लगे; "धन्य धन्य नर–नाथ ! ॥
अपना जीवन कष्ट में डाल; भू–तल का भार उतारा है ।
जनता की हाहा–कारों पर; पापी दुर्योधन मारा है ॥
पर प्रजापाल! इतनी जल्दी; क्यों छोड़ प्रजा का हाथ दिया ।
जिस वैभव का यों साथ दिया; वह क्यों न आजभी साथ लिया?
वह रक्त–सलिल से सिंची हुई; भारत–तरु की डाली डाली ।
ओ दया–मूर्त्ति ! अब तेरे बिन; हो जायेगी ख़ाली ख़ाली॥"
धर्मराज कहने लगे–" मुनि विज्ञान–निधान ! ।
समझ लिया है–जगत है; केवल मोह-प्रधान ॥
सारी आशा, सारी तृष्णा; सारी इच्छा, सारी प्रभुता ।
सारा वैभव, सारा करतब; सारी करणी, सारी ममता ॥
चिउँटी से लेकर बढ़े चलो; सब से आगे इन्द्रासन है ।
पर, नहीं एक भी स्थिर है; केवल माया का बन्धन है ॥
कुछ भी न हाथ आसकता है; धूम्र का भार भरते भरते ।
खाली ही जाना पड़ता है; " मेरा–तेरा " करते करते ॥
जिसको, जब जग का असल तत्त्व; इसभाँति ज्ञात हो जायेगा ।
वह निश्चय ही बे कहे सुने; उस वैभव को ठुकरायेगा ॥
प्रभु ऐसे ऋषिवरों ने; किया मुझे भी पार ।
दयाधाम ! किस भाँति हो; यह जीवन उद्धार ? ॥
ऋषि बोले-'नृप! जिस पर प्रसन्न; वह माया-पति अविनाशी है।
माया उस की अनुचारी है; मुक्ति–गति चरण की दासी है॥
हे यादवेन्द्र के कृपा–पात्र !; यादव ही पार लगायेंगे ।
हे सत्य–मार्ग के पूज्य–पथिक!; तुझको न अकर्म डिगायेंगे॥

'सोऽहं–सोऽहं'की अविरल-ध्वनि; जागेगी आत्म-तन्त्रियों में ।
सम्यक्-गति-साम्य-भाव-शक्ती;व्यापेगी आत्म-तन्त्रियों में ॥
सम्पूर्ण जगत, जग का प्रसार; तुझमें ही तुझे दिखायेगा ।
त्रै-पुरुष-नाम-संज्ञा मिटकर; केवल "सोऽहं" रह जायेगा ॥
उस समय स्वयं जीवन-विमुक्त; सारूप्य-मुक्ति पा जायेगा ।
जग, जगत-जीव, जग का नायक; अपने ही में दरशायेगा ॥
यह मार्ग तुम्हें मंगल–कर हो; सब आशा पूर्ण तुम्हारी हो ।
रक्षक श्री विपिन–विहारी हो;यह सफल अशीश हमारी हो॥

ऋषिगण लौटे इस तरफ़; देकर यों वरदान ।
धर्मराज ने फिर किया; आगे को प्रस्थान ॥

हिम-वेग बढ़ा,तन कांप उठा; शीत–ज्वर–ज्वाला व्याप्त हुई ।
"श्री कृष्ण कृष्ण" कहते कहते; पाञ्चाली वहीं समाप्त हुई ॥
रो उठे भीम-"हा हा देवी !; क्या यह काञ्चनी–शरीर हुआ?।
पीर कर ! अरे ओ पीर–हरण !; दुर्दैव! कहां बे पीर हुआ?॥
जिस के पीछे दुर्योधन सा; भाई मैंने संहारा है ।
जिसके कारण दुःशासन को; मरघट के घाट उतारा है ॥
वह मृगनयनी मृग-जल बनकर; हा ! नयन चुराये चली गई ।
वह हाथ–दायनी हाथों से; हा ! हाथ उठाये चली गई ॥"

कहा धर्म ने–" त्यागमें; नहीं राग का काम ।
भीम ! रटे चल राह भर; माया–पति, घनश्याम ॥

इस के ही कारण युद्ध हुआ; वह दोष इसी ने पाया है ।
इसलिये शीत का महा–वेग; प्रायश्चित बन कर आया है॥
कुछ और बढ़े सहदेव,नकुल; फिर गलित पार्थ बलवान हुआ ।
हो चुका धर्म–शासन समाप्त; भीम का देह–अवसान हुआ॥

गायन

बल-वीर, धीर, हाथ उठाये चले गये ।
धन-शील, शूर, पैर बढ़ाये चले गये ॥
जब बाज उठा, जिसका धौंसा अजलका बस-
उस वक़ वे बिला ही बुलाये चले गये ।
मैं, तू मे जान दे दी,जगत को विजय किया-
एक दिन वे मुँह कफ़न में छिपाये चले गये ॥
जायें-मगर है, उन पर; अफ़सोस अय "विनीत"
जो मूर्ख कृष्ण-नाम,भुलाये चले गये ॥

व्याकुल हुए अनाथ से; ज्ञान-धाम--नर नाथ ।
उसी समय यक श्वान ने; कहा विनय के साथ ॥

"राजन् ! बस थोड़ी कसर रही;लक्ष्यको न छोड़ दीजियेगा ।
ममता को मोड़ दीजियेगा; माया को तोड़ दीजियेगा ॥
अब समय नहीं है रोने का; वैतरणी में स्नान करो ।
श्री यादवेन्द्र माधव-मुकुन्द; ब्रह्म-स्वरूप का ध्यान करो॥
वैतरणी के स्पर्शन से; वह सूक्ष्म-देह पा जाओगे ।
जिसके द्वारा सुर-लोकों में; बेखटके जाने पाओगे ॥
हां,अब विलम्ब का काम नहीं;क्षणक्षण बहु-मूल्य जा रहा है।
राजन् ! जल्दी कर,सुर-पुर से;वह देख विमान आ रहा है ॥

धर्मराज ने किये ज्यों; वैतरणी-स्नान ।
तब तक आया स्वर्ग से; सज्जित-पुष्प-विमान ॥

इन्द्र ने कहा-"हे धर्म-राज !; पुष्पक पर चरण धारियेगा ।
देवता बड़े उत्कण्ठित हैं; राजन् ! वैकुण्ठ पधारियेगा ॥

देव-गण आरती-थाल लिये; नृप-वर का मार्ग निहारे हैं।
देवियां काञ्चनी-माल लिये; जय-जय के गीत उचारे हैं॥"

धर्म राज बोले-मुझे, है आज्ञा स्वीकार।
पर होगा मुझसे प्रथम; मेरा मित्र सवार॥



इन्द्रका युधिष्ठिरके पास आना।

यह स्वर्ग-मार्ग-दर्शक मेरा; यदि पुष्पक पर चढ़ सकताहै।
तो यह उसका अनुचारी भी; कुछ आगे को बढ़ सकताहै॥

हो गये अचम्भित विष्णु-दूत; त्रैलोक में जयजयकार हुए।
श्री "धर्म" कृष्ण-पद-वन्दन कर;श्वान के समेत सवार हुए॥
आलोक त्रिलोकों में फैला; निःशोक देव हरषाने लगे।
देवियां पुष्प बरसाने लगीं; गन्धर्व धर्म-यश गाने लगे॥
स्वागत-पूर्वक इन्द्र ने लिया; अर्द्धासन का व्यवहार हुआ।
श्रीकृष्ण-कृपासे स्वयं एव; स्वर्ग पर धर्म-अधिकार हुआ॥

दया-धाम ! घन-श्याम ! प्रभु!; माया-पति व्रजचन्द।
जन "शैलेन्द्र" "विनीत" को; पार करो यदु-नन्द॥

गायन

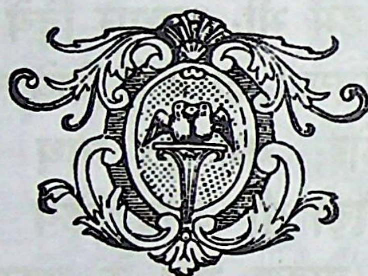
माधव ! तनिक हमें भी; आधार दिये चलियो।
यह हाथ भी दयामय !; हाथों में लिये चलियो॥
लेवे न देख कोई; यम-दूत नाथ ! हमको-
पीताम्बरी की थोड़ी सी ओट किये चलियो।
बढ़ जायेगी कुछ ताक़त यम के मुक़ाबिले में-
कजरी गऊ का कान्हा; कुछ दूध पिये चलियो॥
वैकुण्ठ के द्वारे पर; यदि हो न गुज़र मेरी-
पद-त्रान की तली में तो "दास" सिये चलियो।
बस आख़िरी यही है; "शैलेन्द्र" है तुम्हारा-
जैसे बने, वहां तक; "गोविन्द" लिये चलियो॥

इस प्रकार पूरा हुआ; भारत का आख्यान।
कहो प्रेम से बन्धु-गण; जयति कृष्ण-भगवान॥

जो सप्रेम इस ग्रन्थ को; पढ़ें; सुनें चित लाय।
उन के सब अभिलाष-शुभ; पूजें यादव-राय॥
भीर-भरी जर जरी सी; सहरी परी मँझार।
जन "विनीत–शैलेन्द्र" को;नाथ! लगा दो पार॥

–ः शुभमस्तु ः–

इति उत्तरार्ध महाभारत समाप्त।







खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई